

वर्ष १५ अंक १ पूर्णांक १७६

मई १९५९

(११ वैशाख से १० ज्येष्ठ १८८१)

वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८





"नृत्य से पूर्व" फोटो : 'प्रसाद'



वर्ष १५ | मई १९५९ | अंक १

दो बंगला गीत

गीत

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पावस की घनघोर निशा में है तेरा अभिसार,
हे मेरे प्राणो से प्रिय तुम कहा चल दिए आज।
हे अधीर, अस्थिर निराश मन,
नहीं नींद नयनो में क्षणभर
नाथ! खोल दो द्वार व्यग्र तन,
मेरे नयन बिछे हैं पथ पर।
यही चाह हर बार हमारी, ऐसा ही हो साज,
हे मेरे प्राणो से प्रिय तुम कहा चल दिए आज।
बाहर कुछ पडता न दिखाई,
तेरी राह नही मिल पाई
किसी दूर के नदी-पार में,
गहन वन्य के अन्ध शिविर में
कण-कण किसी व्याप्त निशि घन से,
पार हुए तुम एक बार में।
तेरे बिना अधूरा ही सब रहा हमारा काज।
हे मेरे प्राणो से प्रिय तुम कहा चल दिए आज।

रूपान्तरकार · सिद्धार्थ 'भारती'

गीत

नजरुल इस्लाम

इस भीषण सरिता में
रहा डूबता-उतराता मैं सारा जीवन, प्राण,
तुम्हारी इस भीषण गहरी सरिता में!
बाध तुम्हारा क्या टूटा, लो, डूबा मेरा रैन-बसेरा,
इस अबाध जल की तरग पर उतराता घर मेरा डेरा,
अब तो सब कुछ हार, जनम भर उतराना है प्राण,
तुम्हारी इस भीषण गहरी सरिता में।
टूट गए जो घर, बन सकते फिर से, किन्तु टूटा मन कैसे
एक बार खोकर पा सकता अपना मधुर रतन धन कैसे?
और ज्वार में अगर कही खो जाए, मिलेगा कहा प्राण,
तुम्हारी इस भीषण गहरी सरिता में?
री सरिता की धार! काटती हो जब तुम बसा-भरा किनारा,
और तोडती हो जब तुम मन को बना उसे बेसहारा!
एक बार यदि टूट गया मन, जुड न सकेगा, जुड न सकेगा
इस भीषण गहरी सरिता में!

अनुवादक . चारुचन्द्र 'आकुल'

मेरे हाथ नहीं कांपेंगे

श्रीकान्त वर्मा

यह सच है, अनवरत यन्त्रणा की कीलो में,
ठुक कर ये कमजोर हुए हैं,
पर ये हाथ नहीं कांपेंगे ।
तुमने मेरे हाथो पर विश्वास किया है ।
उखड़-उखड़ कर बार-बार कीलो से
मेरे इन हाथों ने
जब भी जो कुछ लिखा, तुम्हारा नाम लिखा है ।
पढ़ो,
न जाने कितने पेड़ो की पीठो पर
दो विश्वास भरे हाथो की क्षमता का इतिहास लिखा है
मेरे हाथो में मेरे वे शब्द अभी भी महक रहे है ।
जब भी मेरे हाथ
कैद की इस कुंठा से मुक्त हुए हैं,
अपने सोए बच्चे की कोरी स्लेट पर
गौरव की कुछ परिभाषाए लिख आए है ।
सुनो,
ध्यान से सुनो,
अंधेरे में मेरे ये हाथ किसे थपथपा रहे है ?
गा गा कर लोरिया किसे ये सुला रहे हैं ?
हैं ये ही वे हाथ
कील में ठुके हुए जो
सूर्योदय को बुला रहे है ।
मेरे इन हाथो में
मेरे बच्चे का वह नींद भरा विश्वास
हमेशा धड़क रहा है ।
यह सच है, अनवरत यन्त्रणा की कीलो में
ठुक कर ये कमजोर हुए है,
पर ये हाथ नहीं कांपेंगे ।
तुमने इनको हाथो में ले लेकर अपने
जाने कितने युगो रचा है ।
इन पर, किसी अंधेरे में चुम्बन धर इनको
घन फूलो का सहनशील व्यक्तित्व दिया है ।
किसी मेज पर गुपचुप पड़ी हुई कौड़ी से
कुछ मुर्दा ठंडे हाथो को
कौन हाथ ढाढस की मुट्ठी में भर-भर कर जिला रहे है
और नहीं कोई
केवल तुम पहिचानोगी ।
अंधकार के सफे-सफे पर, लिख दी किसने
दिन की बातें
और नहीं कोई
केवल तुम पहिचानोगी ।
किसने सोई हुई नसो में, हांक दिया
जीवन के रथ को,
और नहीं कोई
केवल तुम पहिचानोगी ।
किसने दिन को उठा शंख-सा, बजा दिया
बच्चो के प्रथम प्रथम अनुभव में
और नहीं कोई
केवल तुम पहिचानोगी ।
मेरे हाथो में जैसे भिन्सार हमेशा महक रहा है ।
तुमने इनको हाथो में ले लेकर अपने
जाने कितने युगो रचा है ।

गीत-तरु

शम्भूनाथ सिंह

आओ !
मुझपर आ कर बैठो
और गाओ !
मैं पांच शाख वाला गीत-तरु हूं
एक शाख नभ के तारे गिनती,
एक शाख चिमनी के धुए से

एक शाख धरती से रस लेती,
एक शाख चन्दन-वनों की
गन्ध पीती है
एक शाख वंशी की तान
मरण-वेला का क्रन्दन
मछियारों की चीख
सुना करती है ।
डरो नहीं,
आश्रम के उपवन का बोध-वृक्ष नहीं हूं,
नदी-तीर का तरु हूं ।
चाहो तो
इस खुली हथेली पर
(जो बिलकुल खाली है)
घोसला बनाओ;
मेरे कन्धे पर, माथे पर बैठो,
गीले पंख फड़फड़ाओ !
धारा में बहती
ये गोल-गोल पालों वाली नावें
देखो !
नीले महलों की सोनकेसी जलपरियों के
आमन्त्रण-गीत सुनो !
तट की रेती पर
लहरों के पद-चिह्न
सुरखाबों के झरे पंख
चमचम करते सीपी के टुकड़े
घोंघे और श्वेत खोपड़िया
इन सब को
गिनो ․․․․ गिनो ․․․․․․!
और फिर सहसा पंख खोल
दूर, नील मेघों के पार
चली जाओ !

सर्गान्त

भगवतशरण उपाध्याय

कालिदास की कृतियों में भी अन्य कवियों की ही भाँति सर्ग का अन्त प्रसंगतः होता है। जब प्रतिपाद्य दृश्य समाप्त हो जाता है तब सर्ग अपने आप बन्द हो जाता है। यही स्थिति उनके नाटकों के अंकों की है। परन्तु एक विशेष स्थिति ऐसी भी है जब परिस्थिति की अनिवार्यता के कारण उन्हें अपना सर्गविशेष पटाक्षेप द्वारा समाप्त करना पड़ता है। स्थिति कुछ ऐसी हो जाती है कि उसके बाद प्रबन्ध या कथा का अंकन, कम से कम उस सर्ग या अंक में, अब सम्भव नहीं हो पाता।

यदि कथा का प्रसार निश्चय रूप से वर्णन की अपेक्षा करता है तब बड़े संक्षेप में कवि अगली स्थिति को बता कर आगे का सर्ग शुरू करता है। 'अभिज्ञान शाकुंतल' के पाँचवें अंक में जब राजा शकुंतला के साथ अनिर्वचनीय व्यवहार कर उसे निकाल देता है तब उस नितांत करुण स्थिति को सँभालने के लिये कवि एक आकस्मिक अपार्थिव घटना का उल्लेख करता है —

उत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम—

सहसा एक ज्योति आकाश से उतरी और शकुंतला को उठाकर उड़ गई। वस्तुतः पत्नी-त्याग की परिस्थिति इतनी कठिन थी कि अंकों और दृश्यों का विधायक नाटककार भी उसका विस्तार न कर सका। उसके बाद यदि कुछ कहना बाकी रह गया तो वह मात्र घटना का उल्लेख था जिसकी ओर संकेत कर उसने अंक समाप्त कर दिया।

काव्यों में कालिदास ने ऐसी परिस्थिति को नितांत उदात्त कथन अथवा मुद्रा द्वारा निर्दिष्ट किया है। 'रघुवंश' के चौदहवें सर्ग में जब लक्ष्मण सीता को घने वन में छोड़ते समय राम का आदेश सुनाते हैं तब भी कुछ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है। नारी को उस चोट से कवि स्तंभित कर कथा का विस्तार कर सकता था पर ऐसा न कर उसने उसे संज्ञालुप्त कर दिया है क्योंकि दीर्घकाल तक पति के निकट रहकर और दूर प्रवास में भयंकर परीक्षा के बीच भी जिसने विवेक और सदाचार न खोया था उसका परित्याग एक किंवदंती के परिणामस्वरूप इतना भयंकर था कि उसका संबोधन किसी प्रकार भी सह्य न हो सकता। सो कवि ने ऐसा सोच कर ही उसे बेहोश कर दिया जिससे उस 'शॉक' से उसका परित्राण उस काल हो जाय। पर वह 'शॉक' कितना गहरा हो सकता था, परिस्थिति कितनी नाजुक, दयनीय और कठिन थी इसका बोध कराने के लिये कालिदास ने पराक्रमी लक्ष्मण को अपना लक्ष्य बनाया— 'सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं'— सीता ने उस आदेश को सुन चुकने के बाद परिणामतः होने वाले दुःख को न जाना, पर उसका पूरा 'फोकस' लक्ष्मण के ऊपर पड़ा। कालिदास ने अन्यत्र, आठवें सर्ग में, अज-विलाप के प्रसंग में कहा है कि विधाता के पास विविध जनों को मारने के विविध साधन हैं, जो जिस योग्य होता है उसे उसके अनुकूल साधन से ही वह मारता है —

अथवा मृदुवस्तुहिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।

मृदु वस्तुओं के नाश के लिये काल मृदु साधनों का ही उपयोग करता है, जैसे इस प्रसंग में इन्दुमती के निधन के लिये उसने फूलों की माला का उपयोग किया। सो सीता का दुःख इतना मार्मिक होता कि सालों साल वनों और प्रवास के दुःख झेलने का आदी होकर भी उसका तन उसे बर्दाश्त न कर पाता। इससे उस प्राणान्तक दुःख की एकांतिक आकस्मिक चोट से तत्काल बचा लेने के लिये कवि ने उसे 'लुप्तसंज्ञा' कर दिया। पर उस आनुपातिक विवेक की आवश्यकता कवि को लक्ष्मण के लिये न थी, इससे उन को उसने परिस्थिति की समूची कठोरता जानने और सहने के लिये सर्वथा जागरूक रखा। तब बेहोशी में जागकर, पहली चोट से सँभल कर नूर आचार की रुचि बनाए रख सीता ने यह सोच, कि क्रोध अपराधी से हटकर उसके साधन को अपना लक्ष्य न बना ले, पैरों पर पड़े लक्ष्मण को उठाते हुए समुचित ही कहा—तुमसे प्रसन्न हूँ, सौम्य, चिर जीओ!

प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।

पर जब अनुक्रम से अपनी सासों के प्रति कथनीय कह चुकी तब उसके प्रति यह क्या कहे जिसने उसे भरपूर सती जानकर घने वन में भेजा, इसकी सुधि उसे आई। और उसके प्रति उसने जो संवाद भेजा उसका जोड़ साहित्य में नहीं—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥

मेरी ओर से जाकर कहो उस राजा से कि मुझे आग में तपाकर विशुद्ध पाकर भी जो उसने लोकापवाद के कारण इस प्रकार मेरा परित्याग किया वह क्या उस महान कुल को गौरवान्वित करेगा, उसके योग्य है, जिसमें उसने जन्म लिया है? 'मद्वचनात्'—साधारणतः उस काल की बातचीत में राजकीय परंपरा थी और राजा ही उसका प्रयोग करता था। सो रानी ने राजा के प्रति उन्हीं शब्दों का उपयोग किया जो राजा दूसरों के प्रति किया करता था। अपनी उस गरिमामयी वाणी से सीता ने घोषणा कर दी कि उसकी महिमा परित्याग से घटी नहीं, और उस घोर वन से भी राजा को, जिसने उसे पति की रक्षा न देकर मात्र राजा का अनुचित दण्ड दिया, उसने धिक्कार कर कहा कि उसका वह आचरण अकीर्तिकर है, उसके महान कुल के व्यक्तियों के आचरण के सर्वथा प्रतिकूल। लक्ष्मण के रहते उसने अपनी कायिक अथवा मानसिक दुर्बलता प्रकट न होने दी और यदि वह 'कुररी' की भाँति रोई भी तो तब जब लक्ष्मण सुनने की परिधि से दूर बाहर हो चुके थे, जब नितांत नारीत्व की संज्ञा लौटी और सदा पति की छाया बन कर रहने वाली सीता ने छाया के कारण को निकट न देखा। पर जो संवाद उसने राजा को भेजा वह निश्चय साहित्य में बेजोड़ है। शकुंतला का दुष्यंत के प्रति धिक्कार प्रगल्भ है, प्रगल्भतर व्यापार द्रौपदी का कवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' में प्रकाशित है,

जहां उसने अपने व्यंग्यात्मक बाणों से मार मार अपने पांचों समर्थ पतियों को जर्जर कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप महाभारत का भीषण युद्ध घट पड़ता है। परन्तु सीता की वह शांत विनीत वाणी जो अकथित की ध्वनि उत्पन्न कर सार्थक होती है, उसकी शक्ति वस्तुतः न शकुन्तला के धिक्कार में है न द्रौपदी के वाग्विस्तार में। और उसकी स्थिति का अंत भी वाल्मीकि ने उसके विलाप के बाद एकान्तिक उदात्त कथन से किया है। वाणी की ओजस्विता इस मात्रा में संभवतः स्वयं वाल्मीकिकृत 'रामायण' में इस प्रकार न फूटी––

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते ।

धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या ।।

––मेरी कृपा की भीख मांगने का प्रसंग कहां ? पिता और श्वशुर के तुम्हारे दोनों कुल असाधारण हैं–– तुम्हारे प्रख्यात श्वशुर दशरथ मेरे सखा थे, तुम्हारे विख्यात पिता जनक ज्ञानियों को ज्ञान द्वारा भव-सागर से मुक्त करने वाले हैं, स्वयं तुम पतिव्रताओं की धुरी हो, उनमें अग्रणी, भला तुम्हें मेरी अथवा किसी और की अनुकम्पा की अपेक्षा क्या है ?

परन्तु जिस सर्गान्त की बात हम नीचे कहने जा रहे हैं वह प्रभाव और प्रभाव के विस्तार में इन दोनों प्रसंगों से भिन्न है, शकुंतला के अनादर से भी, सीता के परित्याग से भी। वह प्रसंग है 'कुमारसंभव' के तीसरे सर्ग के अंत का, नितांत अन्त का, अंतिम छंद का। उस सर्ग में उमा अपना बहुविध प्रसाधन कर सखियों सहित समाधिस्थ शिव की विजय के लिये कैलास के लता-गृह की ओर जाती है। मदन उसका सहायक होता है, शिव क्षण भर के लिये विचलित होते हैं और अपनी अधीरता में योगी के प्रतिकूल आचरण कर बैठते हैं। विवेक का तब सहसा उदय होता है और क्षणमात्र में शिव मदन को अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से जलाकर राख कर डालते हैं। ऐसी स्थिति में जो गति उमा की होती है वह मदन की गति से भी भीषण है, विधवा रति की दशा से भी दयनीय।

वस्तुतः निर्मम दैव ने उमा की स्थिति इतनी कठिन कर दी है कि कोई औपचारिक अथवा अनौपचारिक सान्त्वना तब उसे संभाल न पाती। उसने देखा कि वृक्ष निष्कंप हो, भौंरे अपना कूजना बन्द कर, पक्षी चुप हो, पशु अपना संचरण सहसा बन्द कर जैसे सांस रोके योगि-राज पर रूप का यह आक्रमण देखते रहे हैं, कि आसमान में ठसे देवता अपने संकट से रक्षा के लिये सहायक मदन का व्यापार चुपचाप देखते रहे हैं, और देखते ही देखते सहसा सारी आशा का प्रधान उपकरण काम जलकर नष्ट हो गया है। जिस रूप का रूपगर्विता को गर्व रहा था और जिसके बल पर उसने यह पुराण-प्रसिद्ध अभिनय किया था वह असफल व्यर्थ हो गया। और जो घटा भी वह मात्र शाब्दिक प्रतिकार न था, कायिक नाश था, वैधव्यसूचक अशुभ, जिसकी उमा ने कल्पना तक न की थी।

चराचर जो सहसा स्तब्ध हो गया था, क्षुब्ध रुद्र के तीसरे नेत्र के बन्द हो जाने पर भी, उनके क्रोध और संहार के प्रति देवताओं की भीत वाणी मात्र दिशाओं से टकरा टकरा कर आकाश में गूंज रही थी–– क्रोध प्रभो संहर संहरेति ! निश्चय एक शब्द की, एक आवाज की भी तब कहीं गुंजायश न थी और न किसी ने एक शब्द कहा भी, न साथ की सखियों ने और न ऊपर से निहारते-कलपते देवताओं ने। एक शब्द भी स्थिति की कारुणिकता को दूषित कर नाट्यप्रभाव कमजोर कर देता। और कालिदास नाट्यप्रभाव के प्रदर्शन में अपना सानी नहीं रखते। सो उन्होंने इस असाधारण परिस्थिति में असाधारण नाटकीयता का प्रयोग किया। पहले तो उमा को भी परित्यक्ता सीता की ही भांति बेहोश कर दिया––मुकुलिताक्षी––फिर साथ की सखियों को भुला, आकाश के देवताओं को भुला, समस्त चराचर को भुला उन्होंने सहसा उस स्थल पर उस एक व्यक्ति को ला खड़ा किया जो पति द्वारा रक्षा-कार्य भुलाकर परित्यक्ता कन्या को बस अकेला संभाल सकता था––पिता हिमालय को !

पतिपरित्यक्ता शकुंतला को पितृधर्मा माता मेनका ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' में संभाला, पतिपरित्यक्ता सीता को पितृधर्मा वाल्मीकि ने 'रघुवंश' में संभाला, और अब प्रिय के प्रेम से वंचिता, क्रोध से उपेक्षिता कन्या उमा को स्वयं पिता हिमालय ने संभाला। और वह भी बोल कर नहीं, मात्र आचरण द्वारा आश्वस्त कर––

सपदि मुकुलिताक्षीं रुद्रसंरम्भभीत्या

दुहितरमनुकम्प्यामद्रिरादाय दोर्भ्याम् ।

सुरगज इव बिभ्रत्पद्मिनीं दन्तलग्नां

प्रतिपथगतिरासीद्वेगदीर्घीकृताङ्गः ।।

हिमालय बड़ी तीव्रता से घटना-स्थल पर पहुंचे और रुद्र के संहारक भय से भीता प्रायः लुप्तसंज्ञा आधी बन्द आंखों वाली कन्या को जनक-जन्य अनुकम्पा के वशीभूत हिमालय ऐरावत के दांतों से लगी कमलिनी की भांति सहसा भुजाओं में उठाकर अपने ऊंचे शरीर को और ऊंचा करते हुए वेग से जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से लौट गये।

संसार के साहित्य में इतना वेगवान, इतना मूक, इतना प्रभाव-जनक नाट्य-स्थल नहीं, इतना सारभूत सार्थक पटाक्षेप नहीं, सर्वथा शब्दहीन पर नितांत समर्थ, स्थिति पर पूर्णतः विजय पा लेने वाला पटाक्षेप। स्थिति की तेजी जितनी इस श्लोक में प्रकाशित है मूक कार्य-शीलता का सामर्थ्य भी उतना ही अभिव्यंजित है। तीन बार इस छंद में कवि ने तीव्रताव्यंजक शब्दों का प्रयोग किया है––एक बार 'सपदि', दूसरी बार 'वेग' और तीसरी बार गतिध्वनित 'प्रतिपथ' द्वारा। हिमालय तेजी से वनस्थली में प्रवेश करते हैं, कन्या को सहसा भुजाओं पर उठा लेते हैं और ऐरावत की भांति बड़े-बड़े डग भरते तीव्र गति से उलटे पैरों लौट जाते हैं। 'प्रतिपथ' पद में बड़ी शक्ति है, 'सपदि' और 'वेग' से भी अधिक। अर्थ है, जिस राह आये उसी राह लौट जाना, जिन पैरों आए उन्हीं पैरों उलटे लौट जाना। घनी तीव्रता का द्योतक है यह शब्द। श्लोक में कहीं आवाज नहीं, मात्र मूक वेगवती क्रियाशीलता है, और है उसमें ध्वनि की वह एकान्तिक व्यंजना जिसमें सौ-सौ काव्यों की चिरंतन आवाज भरी है। हिमालय की भुजाओं के लिये न कवि ने 'बाहुओं' का इस्तेमाल किया न 'भुजाओं' का, 'दोर्भ्याम्' का किया है। क्यों ? क्योंकि इस प्रकार की उदात्त रक्षापर्याय परिस्थिति में 'दोर्भ्याम्' शब्द का प्रयोग ही होता आया है। भारत की रक्षा के लिये स्कन्दगुप्त की भुजाओं के समर में हूणों से टकरा कर भंवर बना देने की स्थिति को गुप्तकालीन कवि ने 'दोर्भ्याम्' पद से ही प्रकट किया है ––

हूणस्य यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता ।

भीमावर्तकरस्य ––

और हिमालय 'मुकुलिताक्षी' कन्या को वैसे ही उठा लाता है जैसे गजराज

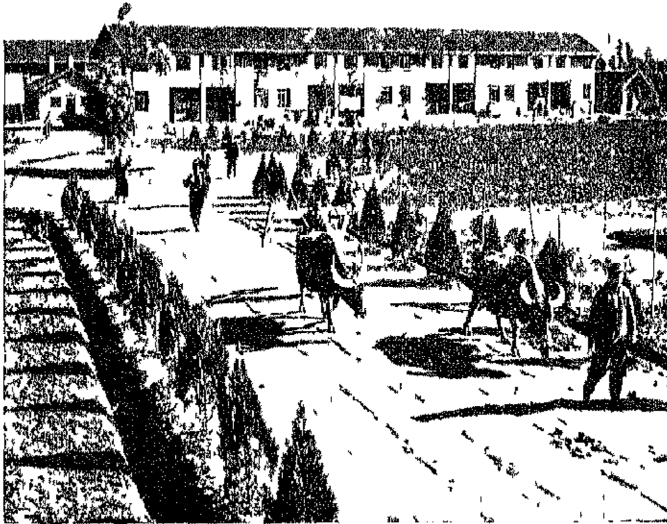
(शेष पृष्ठ १६ पर)

पमौ कमून

राहुल साकृत्यायन

शाड् है चीन का सबसे बडा शहर है, जिसकी ग्राबादी ग्राज ८० लाख है। पेकिंग राजधानी इससे दूसरे नम्बर पर है (६२ लाख)। हम २३ से २७ अक्तूबर तक शाड् है में रहे। इसी बीच २६ ता. को पमौ कमून देखने का ग्रवसर मिला। कमून का हेडक्वार्टर ४५ किलोमीटर पर था, जिसे हमारी मोटर ने एक घंटे में पार किया। चिन्धाउ होटल से निकलने पर कितने ही समय तक हम उपनगर से गुजरते रहे। फिर सडक खेतो के बीच से चली। यहा के नगर हजारो वर्षो से सडको के किनारे नही, बल्कि नहरो के किनारे बसे हुए है। नहरो में बडी नहरे और छोटी नहरें भी है। छोटी नहरो से भी नावें चलती है। नावो के निकलने के ख्याल से ही पुलो के मेहराबो को ऊचा बनाया गया है। बडी नहरो में तो ग्रच्छे खासे बजडे चलते है। इसलिए उनके पालो ग्रौर मस्तूलो के ग्राकार-प्रकार का भी ख्याल रखा गया है। जिस वक्त यह नहरें बनाई गई, उस वक्त इनका उपयोग यातायात (नौ-चालन) ग्रौर मछली के लिए था, सिचाई का कम ही, क्योंकि इनका जल ग्रास-पास की भूमि से प्राय: नीचा रहता है, ग्रौर पुराने साधन जल उठाने के लिए खर्चीले तथा परिश्रमसाध्य थे। ग्रब तो बिजली ने उसे ग्रासान कर दिया है। ग्राज इनका उपयोग सिचाई, यातायात ग्रौर मछली-पालन तीनो के लिए होता है।

चीन की महान दीवार की ख्याति सारी दुनिया में है, ग्रौर वैसा होना ही चाहिए, पर चीन की महान नहर की ग्रोर उतना ध्यान नही दिया गया, हालाकि यह भी दुनिया की ग्रद्भुत चीजो में है। महानहर पेकिंग के पास से निकलती है, ग्रौर हचाउ के पास की नदी से मिलकर समुद्र में चली जाती है। इसकी लबाई ढाई हजार किलोमीटर या दो हजार मील से कम नही है। भारत में यह दूरी कलकत्ता से पेशावर जितनी होगी। महानहर का एक बडा भाग छठी सदी में—ग्राज से १४ सदी पहिले बना था, जिसके द्वारा ह्वागहो (पीत गगा) ग्रौर यागचीक्याग दो महानदो के बीच यातायात का सम्बन्ध स्थापित किया गया। महानहर ने दुर्लंघ्य पहाडो को नहीं लाघा, वहा वह टेढी हो गई है, पर ह्वागहो, हुई ग्रौर यागची जैसी बडी, सैकडो मध्यम तथा छोटी नदियो से कैसे बच सकती थी। उसने उन्हें पार किया—एक तट पर वह नदी से मिली, सामने दूसरी ग्रोर नहर की धार खुदी तैयार थी, जो ग्रपने साथ पानी ले चली। इस प्रकार नहर ग्रागे बढती गई। इस कठिनाई को हम समझ सकते है, यदि कल्पना करें सतलुज से बिहार के पूर्णिया जिले तक जाने वाली नहर के बारे में, जिसे घग्घर, मरकडा, सरस्वती, जमुना, गगा, रामगगा, गोमती, घाघरा, गडक, कमला, कोसी जैसी बडी-छोटी सैकडो नदियो को पार करना पडेगा। महानहर में इस बात का भी ध्यान रखा गया, कि रास्ते में कहीं ऊचा धरातल न ग्रा जाये, नही तो धार वही रुक जाएगी। उस समय समुद्रतल से ऊंचाई नापने के ग्राजकल के यन्त्र नहीं थे। जैसे नदिया महानदिया ग्रपनी सैकडो शाखानदिया रखती है, उसी तरह चीन की यह महानहर हजारों शाखा नहरों वाली है। यागची से दक्षिण ग्रर्थात मध्य ग्रौर दक्षिण चीन में नहरों का वैसा ही जाल बिछा हुग्रा है, जैसा कि कश्मीर उपत्यका में। इनके बनाने में कितना श्रम लगा होगा, यह सोचना भी मुश्किल है, इन्हें जारी रखने में भी पिछले डेढ हजार वर्षों से प्रतिवर्ष भारी श्रम लग रहा है, इसमें



चिन्नूई कमून के नये निवास गृह



चाग्रायिंग कमून का किंडरगार्टन स्कूल

शक नहीं। पर यह शौकीनी की वस्तु नहीं है। इसका उपयोग इतना है, कि महानहर, नहर या नहरियों के किनारे रहने वाले शायद यह समझ भी न पायें, कि नहरों के बिना भी आदमी रह सकता है।

टेढ़ी-मेढ़ी नहर-नहरियों के पुलों को पार करते हम मन ही मन चीन में मानव के इस महान् प्रयत्न पर ही प्रशंसा कर रहे थे, और यह भी सोच रहे थे कि जिन्होंने केवल हाथों और मामूली हथियारों से यह सब कर दिखाया, वह आज आधुनिक साधनों से सम्पन्न हो क्या नहीं कर सकते? कहीं खेतों में पाल का ऊपरी भाग चलायमान दिखाई पड़ता। पहिले तो समझ में नहीं आया, कि खेतों में यह कपड़ा कैसे सरकता जा रहा है। नहरों में से कितनी नहरिया निकल कर कुछ दूर जा समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि उनका वहीं तक उपयोग है। बाज वक्त उनके नदी होने का भ्रम होता, पर जब उनसे सटे हुए घरों को देखने, तो वह दूर हो जाता, आखिर बरसात में तो क्षुद्र नदी भी इतराके चलती है। उनके भीतर मछुओं की नावों को देख कर तो मिथिला भूमि याद आने लगती थी। यहा बारहों महीने मछली घर के पास थी। मिथिला में भी हमारे संस्कृत के भाग्यवान महापंडित अपनी पोखरी जरूर रखते हैं, जहा से अबेरे-सबेरे हर समय मछली निकाली जा सकती है। ठीक सड़क पर शायद ही कोई गाव मिला हो, यह घनी बस्तियों का इलाका था।

आखिर में एक गाव के कुछ घरों के दरवाजे सड़क की ओर दिखाई दिए। उनके देखने से गाव की विशेषता नहीं दिखाई पड़ सकती थी, क्योंकि धनवन्तों ने अपनी हवेलिया नहर के किनारे बनाई थीं। आँगन में दो-एक मोटरें खड़ी थी, जिनसे मालूम हो गया, कि हम अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गये। यहा पहुंचते ही कमून संचालक श्री चेन् चोशान् दो-तीन सज्जनों के साथ पास आये। हाथ मिलाने के बाद परिचय कराया गया। फिर गाव के भीतर आफिस के एक कमरे में बैठ कर कमून का परिचय कराया गया। कमून की लंबाई साढ़े बारह किलोमीटर और चौड़ाई दस किलोमीटर है। उसके १,१६,६६६ एकड़ के क्षेत्रफल में ८८,१७० एकड़ खेत है। शेष भूमि नहर, तालाब आदि की है। कमून की जनसंख्या २१,५३० (आधी स्त्रियां) हैं, जिनमें ६,११३ (आधी स्त्रियां) काम करने वाले हैं। यही औसत प्रायः सभी कमूनों में देखी जाती है। यहा की नागरिक सेना में ४,००० स्त्री-पुरुष हैं। कमकर और नागरिक सैनिक दोनों का संगठन पल्टन के ढंग पर। सेना की एक रेजिमेंट (अफसर कर्नल), ६ बटालियन (अफसर मेजर), ४२ प्लेटून (अफसर लेफ्टिनेंट), और ४०८ दस्ते (अफसर सार्जेंट)। प्रत्येक दल में १२–१५ आदमी होते हैं। संचालक चेन सेना और कमकर समूह के कर्नल भी हैं। यह कमून छनुग् जिला (श्यान) में है, जिसकी आबादी ११ लाख है। सारा का सारा जिला कमूनों में संगठित हो चुका है।

शाड् हे के इलाके में उत्तरी भारत से अधिक सर्दी पड़ती है। हमारे यहा सिर्फ मद्रास की तरफ साल में दो बार धान की फसल होती है। यहा की हालत देखने से मालूम होता है, कि हमारे यहा भी साल में दो फसल हो सकती हैं। हां, धान के लिए पानी की जरूरत होगी, अर्थात् वहां नहरी इलाके में ही दो फसलें पैदा की जा सकती हैं। दो फसलों को *प्रथम धान* और *द्वितीय धान* कहते हैं। यहीं ने १९५८ ई० में प्रथम धान १९४८ एकड़ में रोपा गया था, जिसमें ३ एकड़ के परीक्षार्थ खेत में ४ ८७७ टन प्रति एकड़ धान पैदा हुआ। द्वितीय धान ६,६६० एकड़ में रोपा गया, जो अब कटने के लिए तैयार था। पीछे की ओर से देखने पर और बस्तियों की तरह यही ग्राम भी श्रीहीन सा मालूम होता है। महानहर में नाव पर चढ़ कर या पुल से देखने पर सुन्दरता और समृद्धि का पता लगता है। बीच-बीच में ३० जमींदारों की दोमंजिला तिमंजिला हवेलियां हैं। इन्हीं के पास यहां इलाके की ८० प्रतिशत जमीन थी। अब यह नामशेष रह गए हैं। क्योंकि यह च्यांग के समर्थक थे। उनमें से कुछ देश छोड़ कर भाग गए, कुछ अपने अपराधों के

हाङ्चू कमून में त्योहार का भोज



लिय दंडित हो जेलो में है। पूछने पर मालूम हुआ, सजा भुगत लेने पर चाहें तो वह अपने गाव में लौट सकते हैं।

मैंने चार-पाच टन प्रति एकड धान पैदा होने की बात बहुत सुनी-पढी थी, पर वैसे फसल वाले खेत को नही देखा था। पौने पाच टन एकड वाले खेत की बात सुनते ही मैंने उसे देखने की इच्छा प्रगट की। खेत नहर के पार गाव से बाहर था। पार जाने के लिए एक से अधिक पुल थे, नावे भी थी। हम पुल से पार हुए। लडको और स्यानो की एक काफी बडी पलटन साथ हो गई। शायद मै अकेला होता, तो यह न होता। मेरी पत्नी (कमला जी) की साडी और जया-जेता के छोटे-छोटे भारतीय मुह अधिक आकर्षण कर रहे थे। नहर के दोनो पार नदी से सटी गृह-पंक्तिया थी। उनके पीछे बाजार की पतली सडक थी, जिस पर कार नही जा सकती थी। दुकाने अधिकतर एकमंजिला हमारे यहा जैसी थी। सचमुच उन्हे देखकर मालूम होता था, हम बिहार के किसी कस्बे मे घूम रहे है। दस साल पहले यह सारी दुकाने चलती रही होगी। पहिले दूकान वाले सभी अलग-अलग थे, उन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए दुकानें चलानी पडती थी। थोडा बिके या अधिक दुकान पर एक पुरुष या स्त्री को सबेरे से शाम तक बैठा रहना पडता था। अब दुनिया ही उलट गई है। पहिले से माल अधिक बिकता है, पर बेचने का काम दस-पाच दुकानें कर सकती है, जिनमें उतने आदमियो को अगोरने की जरूरत नही। आज की दुकानें बडी है, घरो में नही, सौदे में। मकान अभी पुराने ही है। जब तक खेती, कारखाने आदि के दूसरे कामो के लिए आदमियो की माग ज्यादा है, तब तक पुराने घरो से ही काम लिया जाएगा।

चाहे गाव मे खपडैल वाले घरो को देखते, या गाव के बाहर खेतो को, साथ चलती बाल सेना को, या शब्दो या नि शब्दता से आत्मीयता प्रकट करते नर-नारी समूह को, मन नही मानता था, कि हम भारत से बाहर है। गाव से बाहर सटे हुए धान के खेत थे। हमारी ही तरह पानी रोकने के लिए खेतो की ऊची मेडें थी, यदि खेतो में पानी भरा होता, तो उन पर चलने में डर लगता। अपने दर्शनीय धान खेत पर पहुचने से पहिले हमें ईंट के कुछ घर बनते दिखाई पडे। सचालक ने बतलाया—यह हमारे कार्यालय बन रहे है। २० आदमी ईंट तैयार करने में लगे थे। जिनकी तादाद आसानी से

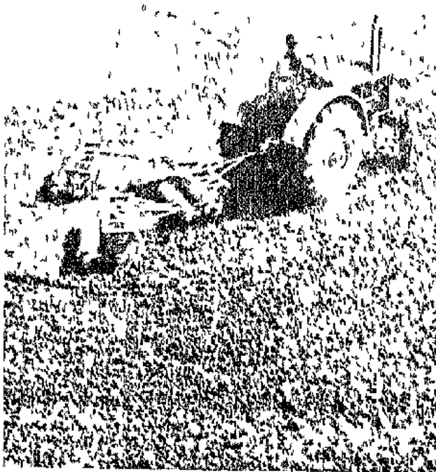
जन-कमन की नर्सरी क्लास





पेहमी कमून की महिलाए ऊन खरीदती हुई

१०० की जा सकती थी। आदमी घर के, मिट्टी घर मे थे, कोयला भी ढो कर लाने भर की देर थी। फिर यदि पमौ कमून कुछ ही वर्षों में अपने सुन्दर नगर का सपना देखे, तो आश्चर्य क्या? कमून हर बात में कितनी मितव्ययता का ख्याल रखता है, यह इसी से मालूम हो रहा था, कि मकान बनाने मे पुराने मकानो की ईंटें भी लगाई जा रही थी। पमौ के आधे के करीब मकान ईंट की दीवारो वाले थे। सभव है, यहा खपडैलो का भी इस्तेमाल हो। चीनी खपडैलें हमारे यहा से अधिक मजबूत होती है। उनकी शक्ल कुछ-कुछ मद्रासी खपडैलो जैसी है। कई कटे क्यारो की मेंडो पर से होते हम दर्शनीय खेत पर पहुचे। वह चमत्कारिक खेत तो था ही। हमारे यहा जापानी ढग की धान की खेती का प्रचार किया जा रहा है, जिसमें धान की तथा हर दो पोध के बीच एक फुट या अधिक अन्तर रखना आवश्यक समझा जाता है। यहा दो पातियो के बीच सिर्फ छ अगुल (४ इच), और दो पौधो के बीच ३ अगुल (२ इच) का अन्तर था। चीन की खेती सम्बन्धी अष्ट-सूत्री है (१) सिचाई, (२) खाद, (३) गहरी जुताई, (४) अच्छा बीज, और खेत को बेहतर बनाना, (५) नजदीक-नजदीक बुवाई-रोपाई, (६) पोधे की रक्षा और कीडो से बचाना, (७) हथियारो में सुधार, (८) खेती का सुप्रबन्ध। नजदीक की बुवाई-रोपाई जापानी तरीके से बिल्कुल उल्टी है। मैंने सुना था, धानों की पाति पर आदमी खडा हो सकता है, और उसके फोटो भी देखे, तब भी विश्वास करना मुश्किल था। यहा वह खेत हमारे सामने था। पातियो के बीच में ६ अगुल और पौधो के बीच में तीन अंगुल का अन्तर। अन्तर भी पौधो में से निकले दूसरे पौधो के कारण लुप्त-सा हो गया था। धान की बालें भी बहुत लम्बी बडी-बडी थी जो दानों के भार से लटक गई थी। धानो की पाति पर लड़के खड़े हो सकते थे। पमौ के



हगक्रुयाग कमून का एक बडा खेत

किसान अपनी सफलता को दिखलाने में बडी प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे।

शाङ् है का यह इलाका अप्रैल १६४८ में कूमिन्ताङ के हाथ से निकल कर कम्युनिस्टो के हाथ में आया। बड़े-बड़े जमीदार और पूजीपति अधिकतर कम्यूनिस्टो के विरोधी एव चाङ कै शेक के समर्थक थे। इसलिए कम्युनिस्टो को आता देख कर उनमें से बहुत से भाग गए। १६५० ई० में कम्युनिस्ट सरकार ने भूमि सुधार का कार्य किया और जमीन का बटवारा आदमी पीछे बराबर के हिसाब से कर दिया। दो साल बाद उन्होंने किसानो को बतलाया, कि खेत अपना रखते काम मिल कर करो। इस प्रकार पहले मेहनत में सहयोग कायम हुआ। खेत मिलने पर किसानो में अधिक अन्न उपजाने का भाव बडे जोर से पैदा हुआ। सन् १६५० तक चीन खाने में आत्मनिर्भर हो गया। श्रम सहयोग से उपज और बढी। लाभ को देख कर किसानो का उत्साह बढा और सन् १६५३ में उन्होंने सहकारी खेती शुरू कर दी। सहकारी फार्म सन् १६५८ के आधे समय तक काम करते रहे। किसानो ने सुभीता देख कई गावो को मिला कर सहकारी फार्म कायम किए। २५ सितम्बर १६५८ में पनी ने ३०० गावो का अपना कमून स्थापित किया। जिस दिन मैं वहा पहुचा था, उस दिन कमून स्थापित हुए छः ही हफ्ते हुए थे। इसमें शक नहीं कि जिस फसल का आकडा उन्होंने दिया था उसका अधिकाश सहकारी फार्म के जमाने में ही काटा गया था। ६ ही हफ्ते के भीतर इतना साफ हिसाब होने का कारण यही था, कि लोगो को अनेक गावो के सम्मिलित सहकारी फार्म का तजर्बा था।

कमून का अर्थ है कृषि और उद्योग धन्धे का साथ-साथ विकास करना। पनी के जीविका के साधन है खेती, मछली पालना, सुअर पालना, लोहा फौलाद बनाना, भेडे रखना। इस साल अपनी नहरो और तालाबो मे ६ लाख मछली के बच्चे डाले। सितम्बर १६५८ मे एक सो टन मछली पकडी गई जिसमें आधी शाङ् है भेजी, आधी कमून के रसोई घरो म गई। सामूहिक होने से अब बच्चा मछलियो को लोग नही पकडते। अगर वह जाल मे फस जाती है, तो उन्हे फिर पानी मे छोड दिया जाता है। कमून के पास ३०० शूकर शालायें है, जिनमे १२,००० सुअर पाल गए है। सूअर की वृद्धि बहुत तेजी से होती है। इसलिये सूअरो के बढाने की ओर लोगो का बहुत ध्यान है। कमून मे ८,००० भेडें है जिनकी वृद्धि की जा रही है। खरगोश, बत्तक, मुर्गी पालना अभी वयक्तिक है। लेकिन यह स्थिति बहुत दिनो तक नही रहेगी।

प्रशासन---कमून के प्रशासन के लिए बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचित ८५ सदस्यो का सम्मेलन है, जिसकी बैठक साल मे एक दो बार होती है। इसके सदस्यो मे तीन प्रतिशत स्त्रिया है। सदा काम करने वाले २० मम्बरो की परिषद है, जिसमे चार स्त्रिया है। परिषद के निर्वाचित एक सचालक और दो उप-सचालक है। कार्यालय के अतिरिक्त ८ विभागो की ८ समितिया है, जैसे---कृषि, उद्योग, वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन, विधि, पुलिस, नागरिक सेना आदि।

नागरिक सेना में चार हजार व्यक्ति है। नागरिक सेना तथा साधारण काम करने वाले किसान नर-नारी भी सैनिक ढग से सगठित है १ रेजीमेंट--(अफसर कर्नल), ६ बटालियन-- (अफसर मेजर), ४२ कम्पनी-- (अफसर कप्तान), १३६ प्लेटून -- (अफसर लैफ्टिनेन्ट) और ४०८ दल--(अफसर सार्जेंट)। प्रत्येक दल में १२ से १५ व्यक्ति होते है। नागरिक सेना मे भर्ती होना ऐच्छिक है। ३२--३८ वर्ष से ऊपर के व्यक्ति नही लिए जाते। नागरिक सैनिको को नियमपूर्वक फौजी कवायद परेड और हथियारो का इस्तेमाल करना सिखलाया जाता है।

कमून के ३०० गावो के लिए सिर्फ १७७ भोजन शालाए है। मैंने पूछा---कि तब तो एक गाव के नर-नारी, बच्चो-बूढ़ो को दूसरे गाव भोजन करने जाना पडता होगा। उन्होने बतलाया--गाव नजदीक-नजदीक हैं। जहा घर पीछे एक स्त्री को भोजन बनाने में व्यस्त रहना पडता था वहा अब एक भोजनशाला में तीन से पाच तक रसोइए (प्राय स्त्रिया) पर्याप्त हैं। इस प्रकार हजारो स्त्रिया चौके-चूल्हे से मुक्त हो उत्पादन के काम मे लगी हुई है। कमून मे निम्न वस्तुए मुफ्त मिलती है। भोजन, दो मौसमो के वस्त्र, मकान, शिक्षा, चिकित्सा, सप्ताह मे एक बार सिनेमा, कपडा धुलाई आदि। हरेक रसोई खाने के साथ धोबीखाना होता है। विवाह के वक्त २० युवान् (४० रुपया) और मृत्यु के समय ५० युवान् (१०० रुपया) खर्च के लिए कमून की ओर से दिया जाता है। विवाह से श्राद्ध में ज्यादा पैसा खर्च होता है, क्योंकि चीनी लोग अपने मुर्दों को बहुत सजा कर दफनाते है। प्रसूति के लिए भी मुफ्त प्रबन्ध है।

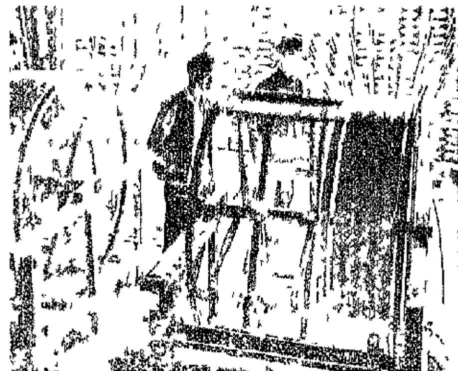
प्रति वर्ष साल में एक मास की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। यह बात उद्योग-धन्धो में काम करने वालो के बारे में है। किसान फसल बोने-काटने आदि के समय काम में लगे रहते हैं। उन्हें छुट्टी कृषि से फुर्सत होने के वक्त मिलती है। प्रतिदिन ८-६ घण्टे से अधिक काम नही करना पडता।

कमून में सास्कृतिक कामो के लिए क्लब और मण्डलिया सगठित हैं। उसकी अपनी नाटक मण्डली, नृत्य-वाद्य मण्डली है। वालीबाल, चीनी शतरज आदि कितनी तरह के खेल भी सगठित हैं।

अभी पमो के गावो के घर प्राय सभी पुराने हैं, जिनमें अधिकाश मिट्टी की दीवारो और खपरैलो वाले हैं। यहा वर्षा ज्यादा होती है, अत मिट्टी की छतें काम नहीं दे सकती। सचालक ने बतलाया कि हम ३०० गावो को हटा कर उनकी जगह चार महाग्राम बसाने वाले हैं। मैंने सोचा २१-२२ हजार की आबादी वाले इस इलाके को चार गावो में बसाना बहुत दिनों का काम होगा। पर सचालक ने बतलाया कि यह हमारा १९५९ का प्रोग्राम है। १९५९ की योजना में निम्न बातें हैं--खेतो की यन्त्र से सिचाई, उत्पादन को प्रति एकड बढाना, आफिस की विशाल तिमजिली इमारत और उसकी महाशाला को पूरा करना, गावो में बिजली की रोशनी लाना, खेतो के लिए आधे दर्जन ट्रैक्टर और ढुलाई के लिए चार लारिया।

१७ वृद्धाओ और ६ वृद्धो के लिए बने 'सुखी सदन' को भी हमने देखा। उनमें से कोई-कोई चावल साफ करने, साग-सब्जी काटने में मदद करते हैं। ऐसे सुखी सदन वृद्धो के लिए और भी हैं। गाव का ौचालय पुराने ढग का था, लेकिन बहुत साफ था। चीनी लोग पाखाने को डी कीमती खाद समझते हैं इसलिए उसको बेकार जाने देना नहीं चाहते। हाग्रामो के बसने पर फ्लश वाले पाखाने बन जायेंगे, लेकिन वहा भी पाखाने ो बेकार नहीं जाने दिया जाएगा। कमून में कई स्नानागार हैं। चीनी लोग चाहे रोज स्नान न करते हो, लेकिन जब करते हैं तो उसमें काफी समय लगाते हैं, गर्म पानी में नहाना, फिर शरीर को गर्म रखते हुए कितनी देर तक स्नानागार में रहना।

हम लोगो के भोजन का इन्तजाम जिले के हैडक्वार्टर युनशान् में किया गया था, जो यहा से १८ किलोमीटर दूर था। फिर खेतो के बीच छोटी-बडी नहरो के पचासो पुलो को पार कर हम युनशान् पहुचे। नहरो के अलावा यहा का एक आकर्षण था विशाल प्राकृतिक सरोवर, और पीछे की तरफ पहाड। सरोवर को मछली पालने के लिए सहस्राब्दियो से उपयोग किया जाता है, लेकिन पहाड के लोहे को कोई नहीं पूछता था। युनशान् ७० हजार की आबादी का नगर है। अभी इसका विकास पूरे तौर से नहीं हुआ है। सडकें पक्की कर दी गई हैं पर टेढी-मेढी हैं। उनके किनारे दुकानें उसी तरह हैं जैसी कम्युनिस्ट शासन के पहले रही होगी। पर उनकी सख्या कम है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वहा कोई वैयक्तिक दुकान नहीं है। दुकानो में सौदो को भरा देख कर ख्याल होता था कि हमारे यहा से कुछ चीजें, विशेषकर शौकीनी की, बहुत महगी हैं, तो भी उनके खरीदार होगे। तभी तो दुकानें भरी पडी हैं। वैयक्तिक जिला मैजिस्ट्रेट तो वहा हो नहीं सकते थे, उनका काम सम्मेलन और परिषद के हाथ में है। सचालक (डायरेक्टर) को जिला मैजिस्ट्रेट कह सकते हैं। उन्ही के प्रबन्ध में एक खासा भोज का प्रबन्ध हो गया था। चीनी लोग अपने मेहमानो को पचासो तरह के भोजन कराने के लिए प्रसिद्ध हैं। पहले जमाने में भोजन में आठवा हिस्सा भी कोई खा नहीं सकता था। अब उतनी फिजूलखर्ची तो नहीं है, पर भोजन में १०--१५ तरह की चीजें होना मामूली बात है। आमिष में मछली, मुर्गी, कछुवे का मास था। न जाने किसके मुह से केकडे का नाम निकल आया और दो ही मिनट में जिन्दा केकडा भी हमारे सामने पहुच गया। केकडे को वहा जिन्दा ही बेचा जाता है। उसमें हड्डी ज्यादा और मास कम होता है। जरा देर में



एक कमून की करघा फैक्टरी का एक करघा

वह बन कर आ भी गया। लेकिन न मेरी पत्नी ने उसे खाना पसन्द किया न दोनो बच्चो ने। न चखने का पीछे मुझे अफसोस रहा, तजुर्बे से वञ्चित हो गया। चावल और कई तरह की सब्जिया थी। मेजबान इस बात की बराबर कोशिश करते रहे, कि हम चीनी भोजन का स्वाद लें। चीनी भोजन में स्वाद तो होता है चाहे उसमें मिर्च-मसाले का अभाव हो। राई सरसो की पत्तिया भी रसेदार रखी जाती हैं, जो भारतीय स्वाद के अनुकूल नहीं है।

भोजन के बाद हमें लोह यज्ञ देखने जाना था। पमो कमून के भीतर कोई पहाड नहीं है। न लोहे का, न पत्थर का। इनके नजदीक ही युनशान् पहाड है, जिसम अपार लोह धून भरी पडी है। चीन में इस साल जो लोह यज्ञ का नारा लगा, तो नगर से कुछ दूर पर स्थित इस पहाड में जगल में मगल होने लगा। युनशान् में जगल नहीं है। कभी रहा होगा, जिसे लोगो ने लापरवाही से उच्छिन्न कर डाला। अब पेड लगाए जा रहे हैं, लेकिन उनके जगल के रूप में परिणत होने में समय लगेगा। पहाड की जड में एक समय तीस हजार आदमी जमा हो गये थे। पमो कमून के १,५१५ भट्टे स्थापित हो गए थे। माओ ने कहा---लोहा बनाने में पुराने-नए सभी ढग इस्तेमाल करने चाहिए। पहले लोगो ने हलवाइयो के चूल्हो जैसे भट्टे खडे कर दिए लेकिन अब एक-डेढ मन के धान वाले भट्टे काम कर रहे थे। लोहा बनाने वाले लोगो की भी सख्या अब १२,००० रह गई है। उनके लिए फूस की झोपडिया थी। सामूहिक रसोईखानों में तीन वक्त भोजन तैयार मिलता था। सभी ओर उल्लास दिखाई पडता था। पमो सचालक ने अपने भट्टे दिखलाए, जिनके लिए काफी नीचे-ऊपर चढना पडा। मालूम हुआ उनके लोह यज्ञ में प्रतिदिन ११३ टन लोहा बनता है। बडा कारखाना खोलने पर करोडो रुपए की मशीनें आवश्यक होती। जिस तरह गाधी जी ने हमारे यहा बिना लाखो रुपए के कारखानो के चर्खा और खद्दर से कपडे में स्वावलम्बी बनाने का पाठ पढाया, वही काम यह लोह यज्ञ कर रहे थे। जिस प्रकार छोटे भट्ठो को तीन या चार महीने में सूना हो जाना पडा, उसी प्रकार हो सकता है, कुछ वर्षों बाद ये भट्टे भी सूने हो जायें जब कि यहा कोई बडा लोह-फौलाद का कारखाना स्थापित हो जाएगा। इन भट्ठो में हवा देने के लिए बिजली के पखे लग गए

(शेष पृष्ठ १६ पर)

मां की प्रतीक्षा में

धीरू बहन पटेल

विजय बहुत सुबह सो कर उठा तो उसने देखा कि सूर्य की सुनहरी किरणें उसकी मसहरी पर एक चित्र-सा आंक रही हैं। उसे लगा जैसे सभी उसे जगाना भूल गए हैं। उसे आराम-सा महसूस हुआ और वह फिर चद्दर में मुंह छिपा कर सोने की कोशिश करने लगा। भला ऐसे भी कोई सो सकता है? कल ही तो विज्ञान के अध्यापक ने बताया था कि अगर मुंह सिर ढककर सोया जाए तो विषैली गैस फेफडों में प्रवेश कर जाती है और स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होती है। विजय मन ही मन मुस्कराया। स्कूल में भी कैसी-कैसी अनोखी बातें सिखाते हैं? वह सोचने लगा—फेफड़े कहां होते हैं? वह कैसे होते हैं? और भगवान, भगवान भी तो कई अजीब बातें कर देता है कभी-कभी? हमें दोनों आंखें बाहर देने के बजाए अगर एक आंख अन्दर की ओर लगा दी होती तो कितना अच्छा होता! हम आसानी से जान सकते कि हमारी नाड़ियों में रक्त संचार कैसे होता है, खुराक कैसे पचती है और दिमाग किस तरह सन्देश भेजता है।

अब और अधिक सोना सम्भव न था। उसने मुंह से कम्बल हटाकर झांका। कहीं कोई उसे दिखाई न दिया। ट्यूटर नौ बजे आ जाएगा। इससे पहले होमवर्क तैयार रखना चाहिए। स्नानघर में जाकर उसने ब्रुश उठाते हुए सोचा, शायद आज सब लोग किसी काम में फंसे हुए हैं। तभी मुझे कोई जगाने नहीं आया, और मैं ही वह काम आज क्यों करूं, जिस के लिए हर रोज मुझ से कहा जाता है।

बड़ी होशियारी से विजय खिड़की पर चढ़ गया और बाहर कूद जाना तो उसके बाएं हाथ का खेल था। वह अपने प्यारे अमरूद के पेड़ की एक मोटी नीची शाखा पर उचक कर बैठ गया और पैर नीचे लटका कर खुशी खुशी झूमने लगा। वह प्रसन्न था, क्योंकि आज सब की आंख बचा कर वह भाग आया था।

अजित ने कल उसे सिगरेट के दो खाली पैकेट दिए थे। वह भी उसे बदले में खाली सिगरेट केस देगा। लाल केस जरा टूटा-सा है और पीले केस का रंग उसे ज्यादा पसन्द नहीं। उसने फैसला कर लिया कि वह उसे पीला केस दे देगा। उसे एक सौ पैकेट इकट्ठे करने हैं, लेकिन अभी तक उसके पास कुल इकसठ ही हैं। न जाने बाकी के कब इकट्ठे होंगे। यह सब पैकेट इकट्ठे करना कुछ हँसी-मजाक नहीं था, सब की आंखों से बचा कर उन्हें रखने में कितनी परेशानी उठानी पड़ती थी उसे। लगातार गोपन-स्थल बदलना कोई खेल नहीं था जबकि उसे साथ साथ यह भी फिकर करनी पड़ती थी कि वह नष्ट न हो जाएं। उस दिन की ही बात है कि उसे छिपाने के लिए पैकेट इसी पेड़ के नीचे गाड़ने पड़े थे और अचानक वर्षा शुरू हो गई, और वह पानी में बुरी तरह से भीग गए। लेकिन दूसरे ही दिन उसने किस चतुराई से सचीन्द्र को दो भीगे पैकेट देकर एक नया बदले में ले लिया था।

अब विजय को भूख लगने लगी। उस का मन चाहा कि वह जाकर दूध पी आए। मगर वह दूध पीने रसोईघर में गया तो महाराज जरूर पूछेगा, 'छोटे बाबू दांत साफ कर लिए?' और लक्ष्मण जरूर शिकायत करेगा—'आज भैयाजी ने दांत साफ नहीं किए।' दांत साफ करना भी एक बेकार की आफत है, इससे तो यही अच्छा है कि दूध पीने के बजाय अमरूद खाकर ही पेट भर लिया जाए। वह बन्दर की तरह पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पुराना था। ज्यादा फल नहीं देता था। बहुत खोज के बाद उसको दो पके अमरूद दिखाई दिए। उन्हें तोड़ कर वह धीरे-धीरे चबाने लगा—तभी उसने दूर से आती हुई कुछ आवाज सुनी, कोई उधर ही आ रहा था। अगर किसी ने उसे इस पेड़ पर बैठा देख लिया तो फिर खैर नहीं। मन ही मन वह अपराधों का हिसाब लगाने लगा। वह सुबह देर से उठा, उसने दांत साफ नहीं किए, लेकिन इतने ही से उसका मन ऊब गया। करने दो उन्हें अपराधों का हिसाब, उसे क्या पड़ी है। इतने में उसने सुना कोई कह रहा था, 'वह जा ही कहां सकता है?' अरे यह तो उसके पापा की आवाज थी। महाराज ने जवाब दिया—'वे इसी पेड़ पर ही चढ़े बैठे होंगे'।

विजय की समझ में न आया कि उसे क्या करना चाहिए। अगर वह पापा के हाथ पड़ गया तो उसे पिटने से कोई भी बचा न सकेगा। और वह मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि अगर वह उसे इस बार बचा ले तो वह फिर कभी ऐसी शरारत न करेगा। उसे आवाज आई—'विजय, नीचे उतर आओ।' विजय चुपचाप नीचे उतर आया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उसके कान नहीं मले गए और पापा की आवाज में गुस्से का आभास तक नहीं था। कितनी अजीब बात थी कि उसको मार नहीं पड़ी। लेकिन कुछ कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि उस दिन की तरह घर के अन्दर जाने पर उसकी ठुकाई करें। घर के अन्दर जाकर पापा ने कोमल उसके सिर पर हाथ फेर कर पूछ भर लिया—'तुमने अभी तक दूध क्यों नहीं पिया? जाओ जाकर पी आओ।'

विजय ने डरते-डरते कहा—'मैंने अभी तक दांत साफ नहीं किए।'

'कोई बात नहीं, जाकर नमक से मुंह साफ कर लो।'

अगर सारा घर उसकी आंखों के सामने घूमने लगता तो भी विजय को इतना आश्चर्य न होता जितना कि उसे यह बात सुनकर हुआ। उसके पापा इतनी मीठी और शान्त आवाज में बोले कि वह खुशी के मारे उछलता हुआ रसोईघर में पहुंचा। महाराज का चेहरा भी कुछ बदला-सा था। जब उसने और शक्कर मांगी तो महाराज ने बिना किसी हीलोहुज्जत के दे दी। जब उसने चिल्लाना शुरू किया कि दूध मलाई से भरा है, जब कि दरअसल उसमें मलाई का नाम भी न था, तो भी महाराज ने बिना कुछ कहे ही दूध दुबारा छान दिया। दूध पीने के बाद जब उसने चिउड़ा मांगा, तो भी महाराज नाराज नहीं हुआ।

जब बिना घर का काम पूरा किए वह अध्यापक के पास पहुंचा, और उसकी पिटाई नही हुई तो उसे इस बात में जरा भी शक न रहा कि कहानी वाली कोई अच्छी परी उस पर प्रसन्न हो गई है। पाठ समाप्त होते ही वह मोहिनी के कमरे में गया। खाना खाने से पहले वह हमेशा अपनी मा को मिलने जाता था। उस दिन उसने मा का बिस्तर खाली पाया। अक्सर वह उसे बिस्तर पर लेटे कोई पुस्तक पढ़ते हुए देखता था या वह कुर्सी पर बैठी कढ़ाई कर रही होती थी। आज पापा उस कमरे में खुली खिड़की के पास खड़े थे।

"पापा, मा कहा है ?" विजय ने पूछा। उन्होंने जल्दी से आसू पोछ डाले। परन्तु विजय ने यह बात पहले ही लक्ष्य कर ली थी कि वह रो रहे थे। उसे लगा शायद उसी से ही कोई भारी कसूर हो गया है। पर तब तक पापा शान्त गम्भीर हो गए थे। बोले—"विजय तुम्हारी मा चली गई है।"

"कहा ?"

"कहा ? वह अहमदाबाद गई है ?"

"वहा किस के पास गई है ?"

वह जल्दी से कुछ उत्तर न दे सके, तो उसने आप ही कहा—"क्या वह सुरू बुआ के पास गई है ?"

"हा।"

"कब आएगी वापस ?"

उन्हें एकाएक कुछ न सूझा कि वह क्या जवाब दें। विजय डरने लगा कि अच्छी परी अभी कोई शरारत करेगी और पापा उसको जरूर पीटेंगे। लेकिन वह मा के बिस्तर पर बैठते हुए बोले "विजय आओ मेरे पास बैठो।"

विजय के लिए उस दिन एक के बाद एक आश्चर्यजनक घटनाएं घट रही थी। उस की यह हार्दिक कामना थी कि वह इस तरह अपने पापा के पास बैठ सके, लेकिन वह हमेशा ही बहुत कठोर रहे है, केवल कल्पना में ही वह उन के इतना समीप जा सका था। । वह भरी-सी आवाज में कहने लगे—"देखो विजय, मा चली गई है।" विजय ने बहुत सावधानी से उत्तर दिया—"हा वह सुरू बुआ के पास गई है न।"

"हा, यह तो ठीक है, लेकिन मै कह रहा था कि अगर वह वहा बहुत दिनो तक रहे तो तुम क्या करोगे ?" जब उन्होंने देखा कि विजय कुछ समझ नही पा रहा तो उन्होंने फिर कहा—"मेरा मतलब है कि क्या तुम मा के बिना रह सकोगे ?" और फिर उनकी आखो में आसू भर आए।

विजय ने सिर हिला कर कहा—"हा क्यो नही रह सकूगा। पर वह आएगी कब ?"

"पाच-छः महीनो के बाद।"

"गर्मी की छुट्टियो से पहले तो आ जाएगी न ?"

"शायद तब तक आ जाए।"

विजय थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ सोचता रहा, उस के बाद बोला—"पर कब गई ?"

"कल रात।"

"उन्होने मुझे क्यो नही बताया ?"

"तुम सो जो रहे थे।"

"तो मुझे जगा क्यो नही लिया ?"

"तुम इतनी गहरी नीद में थे कि तुम उठे ही नही।"

विजय का इस बात से कुछ समाधान हुआ और वह खाना खाने के लिए जाने लगा। कुछ सोचकर वह खड़ा हो गया और उसने पूछा—"पर वह इस तरह चली क्यो गई है।"

"क्यो कि तुम्हारी बुआ बहुत बीमार थी और उसका जाना बहुत जरूरी था।"

"पापा, पर बुआ तो तुम्हारी बहन है न। तुम क्यो नही गए ?"

इस बात से वह जरा खीज से गए और उनके मन में विचार उठा कि क्यो न हमेशा की तरह एक चपत लगा कर उसका मुह बन्द कर दें। लेकिन ऐसा न करके उन्होंने उसे गोदी में उठा लिया। उस का सिर थपथपाते हुए स्नेहपूर्ण स्वर में, जो उनके लिए भी नया था, बोले—"अगर हम दोनो ही चले जाते तो तुम क्या करते ? मा ने कहा था कि तुम उसके बिना नही रह सकते। लेकिन मैंने उन्हें समझा दिया था कि तुम मजे में रह लोगे। हम लोग मिल कर लट्टू चलाएगे, पतग उड़ाएगे और मैं तुम्हें साइकल चलाना भी सिखाऊगा। कितना मजा आएगा ? क्यो विजय तुम क्या कहते हो ?"

"पापा, क्या तुम मुझे सचमुच की साइकल ले दोगे ?"

"क्या मतलब, साइकल हमेशा ही सचमुच की होती है ?"

"मेरा मतलब ऐसी साइकल, जो हमेशा ही घर में रहेगी। पापा खरीद दोगे न मुझे एक साइकल ?"

"हा, जरूर ले दूगा। पर अब तुम खाने के लिए जाओ, नही तो स्कूल जाने में देर हो जाएगी। और तुम कुछ दिन मेरे पास अकेले रह सकोगे न ?"

"क्यो नही।" इतना कह कर वह आज्ञाकारी बालक की तरह जाने लगा। लेकिन दरवाजे तक जाकर घूम कर खड़ा हो गया और उसने पूछा—"अगर हम लोग भी सुरू बुआ के पास जाए तो कैसा हो ?"

"लेकिन तुम्हें तो अभी स्कूल जाना होगा।"

"हा—ठीक है ?" इतना कह कर वह चुपचाप चला गया।

उसके भोले मन की उत्सुकता का पूर्णतया समाधान हो गया और मन ही मन वह उस दृश्य की कल्पना करने लगा, जब उसके पापा उसके साथ लट्टू से खेलेंगे और उसे पतग उड़ानी सिखाएगे। इसी खुशी में उस दिन उसने खाना भी अधिक खाया। जब कन्धे पर बस्ता लटका कर वह स्कूल के लिए तैयार हुआ, तो उसने अपने पापा की खोज की, पहले की तरह ही वह मा के कमरे में बैठे उस के कपड़ो और अन्य वस्तुओ को इस तरह देख रहे थे मानो उन्हें पहले कभी देखा ही न हो। वह बहुत उदास दिखाई दे रहे थे। वह बोला—"पापा, अभी तक तुम नहाए भी नही। तुम्हारे दफ्तर जाने का वक्त हो गया है।"

"मै तो आज दफ्तर नहीं जा रहा।"

"क्यों, क्या तुम्हारी तबीयत खराब है ?"

वह हा कहने ही वाले थे कि विजय के चेहरे की ओर देखकर रुक गए और इतना ही कहा—"नहीं, तबीयत तो ठीक है, लेकिन आलस-सा लग रहा है।"

"अच्छा, मै तो स्कूल जाऊगा।" और जल्दी-जल्दी कदम उठाता हुआ वह बाहर निकल गया।

आज का दिन भी कैसा अजीब सा था। पापा ने उसे सुस्ती करने पर कई दफा डाटा था, और आज वह खुद ही कह रहे थे कि उन्हें सुस्ती आ रही है। लेकिन बड़ा होने में यही तो मजा है। और उसने मन ही मन

सकल्प कर डाला कि बड़ा होने पर जब उसकी मर्जी होगी, तभी दफ्तर जाएगा। वह सिगरेट भी पिएगा, फिर उनके चालीस पैकेट इकट्ठा करने कितने आसान होंगे।

शाम को विजय बहुत थक कर स्कूल से लौटा। तब तक सुबह की सारी घटना वह भूल चुका था। तभी तो मा को उसकी इन्तजार में दरवाजे पर खड़ी न देख कर उसने अनुमान लगा लिया था कि वह सिनेमा देखने गई होगी, या बीमार होगी और तुरन्त ही उसे अपनी बुआ की बीमारी और मा के अहमदाबाद जाने की बात याद आ गई। विजय पापा के पास जाकर बोला—"मुझे एक पोस्ट कार्ड तो देना।"

जब वह स्कूल गया था बिलकुल साफ सुथरा था, परन्तु लौटने पर कितना गंदा लग रहा था। उसके घुटनों पर खरौंचे और हाथों पर स्याही के दाग थे। भूख और थकावट के मारे उस का चेहरा मुरझा गया था। पहली बार ही हरिप्रसाद ने उसको इस हालत में देखा था। बच्चे का ललाट और चमकती हुई आखें उन्हें मोहनी की याद दिला रही थीं। अब बच्चे की देखभाल उन्हें अकेले ही करनी पड़ी। उनकी तरफ देख कर विजय ने सोचा कि शायद पोस्ट कार्ड माग कर उसने कोई बड़ी भारी गलती कर दी थी। वह जाने की बात सोच ही रहा था कि उन्होंने पूछा—"विजय, तुम इतने गन्दे क्यों दिखाई दे रहे हो ?"

"नहीं तो, क्या आप सोचते हैं कि मैं गंदा दिखाई दे रहा हू ?"

उसके इस बालसुलभ भोले से उत्तर को सुन कर हरिप्रसाद अपनी हंसी न रोक सके और वह उसे शीशे के सामने ले गए। जब तक उसने हाथ मुह धोकर कपड़े बदले, उसके दूध पीने का समय हो गया था। लछमन उसे बुलाने आया।

"इसके लिए दूध यहीं ले आओ।" उन्होंने कहा।

"पापा क्या आप मुझे एक पोस्ट कार्ड देंगे ?" विजय ने फिर से दुहराया।

"पोस्ट कार्ड का क्या होगा ?"

"मा और बुआ जी को लिखूंगा।"

"नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकते।"

विजय के स्वाभिमान को चोट लगी। "मैं सचमुच लिख सकता हू, देखो।" उसने कहा।

"विजय, क्या तुम्हें मा की याद आती है ?"

"नहीं, ज्यादा नहीं आती, फिर भी मैं उन्हें एक पत्र लिखना चाहता हू।"

"अच्छा, पत्र लिख कर मुझे दे देना। मैं डाक में डाल दूगा।"

विजय ने उस दिन खेलने के बदले सारा दिन बैठ कर मा को पत्र लिखा। पापा ने उसको एक सुन्दर-सा नीला कागज लिखने के लिए दिया। उसने विस्तारपूर्वक घर का सारा हाल लिखा और गाने के 'स्थाई' की तरह बार-बार दुहराया—"तुम कब वापस आओगी ?" लेकिन अन्त में उसने लिखा, "मैं पापा के पास रहना चाहता हू। अगर तुम चाहो तो बेशक वहीं रहो।" उसका यह अन्तिम वाक्य पढ़ कर ही हरिप्रसाद के दिल को तसल्ली हुई। कोई दस दफा वह पत्र उन्होंने सोए हुए बच्चे के पास बैठकर पढ़ा होगा।

विजय के पिता हरिप्रसाद की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसके और मोहनी के बीच कुछ-कुछ मन मुटाव हो गया था। दस वर्ष के विवाहित जीवन से प्रेम का स्रोत धीरे-धीरे सूख गया था। और यह भी उस से छिपा नहीं था कि हरीश की ओर उसका खिचाव बढ रहा था। लेकिन हिन्दु परम्पराओं में विश्वास रखते हुए उसने इस ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया था। अब उसके विश्वास की नींव हिल गई। मोहनी सचमुच ही उसे छोड़कर चली गई। अपने छोटे से पत्र में न तो उसने बताया कि वह कहा जाएगी या क्या करेगी। लेकिन वह मन ही मन सब समझते थे। अपने दुख और बदनामी की ओर ध्यान न भी दिया जाए, लेकिन बच्चा जो अभी पूरे सात साल का भी नहीं हुआ उसका क्या होगा ? यह विचार आते ही सोए हुए बच्चे की ओर देखकर उनकी आखों में आसू भर आए। अन्त में अपनी सारी वेदना और सन्ताप को भगवान के ऊपर छोड़कर वह उठे और विजय के पत्र को सुरक्षित स्थान पर रखकर सोने का प्रयत्न करने लगे।

दूसरे दिन भी विजय को जगाने कोई न आया और स्वय उठने में उसे कोई आनन्द का अनुभव न हुआ। उसे कोई डाट क्यों नहीं रहा ? उसे बिना बताए मा चली गई ? वह अपने प्रिय पेड़ पर भी नहीं चढा। उसने चुपचाप जाकर दात साफ कर लिए और दूध पी लिया।

जब वह अपना पाठ याद करने के लिए नीचे उतरा तो उसने रसोइये की आवाज सुनी। वह कह रहा था "हमारे मालिक, बहुत ही भलेमानुस हैं, उनको जो भी कोई कष्ट देगा उसे कभी शान्ति न मिलेगी। मुझे आश्चर्य इस बात पर होता है, कि उसका इस प्यारे से बच्चे से भी प्रेम नहीं।"

"मैंने भी कई परिवारों में नौकरी की है, परन्तु ऐसा तो कभी नहीं देखा।" लछमन ने जवाब में कहा। "दुनिया नाश की ओर जा रही है।"

विजय ने रसोइये के पास जाकर पूछा कि वह क्या बात कर रहा था। लेकिन उसे देखते ही रसोइये और नौकर दोनों चुप हो गए और किसी ने उसकी बात का जवाब न दिया। सब को हो क्या गया है ! अब उसने समझने की कोशिश करना ही छोड़ दिया। वह मन लगाकर पाठ सीखता, समय पर स्कूल जाता और खाना भी ठीक से खा लेता। पाठशाला जाने से पहले वह अपने पिता के पास गया। वह अपने मित्र चद्रूलाल से बातें कर रहे थे।

"तो तुम्हारी यही सलाह है ?" उन्होंने कहा।

"तुम खामोश रहो, पहला कदम उसी को उठाने दो। फिर देखी जाएगी।"

विजय को देखते ही वे दोनों चुप हो गए और यह बात उसे बिलकुल पसन्द न आई।

"ओफ, बेचारा बच्चा।" चद्रूलाल ने अग्रेजी में कहा।

विजय समझ गया कि यह शब्द उसी के लिए कहे गए थे। खाना खाने के बाद बाप बेटा दोनों झूले पर बैठे, थोड़ी देर तक दोनों ही मौन रहे। आखिरकार विजय ने पूछा—"पापा आप चुप क्यों हैं ? चद्रू काका ने आपको खामोश रहने के लिए कहा है इसलिए ?"

यह बात सुनकर उन्हें हंसी आ गई। पापा को हसते देख विजय का दिल खिल उठा। उसने कहा—"चद्रू काका, मुझे 'गरीब बच्चा' क्यों कह रहे थे ? हम तो अमीर हैं न—क्यों पापा ?"

"वह कोई दूसरी बात कर रहे थे ?"

दिन बीतने लगे और मोहनी के आने में देरी होने लगी। विजय ने कोई पन्द्रह खत लिखे। परन्तु उसे एक का भी उत्तर न मिला। उसने मलिन मुख से कहा "पापा मैं अब मा को पत्र नहीं लिखूगा। वह तो जवाब ही नहीं देती। गर्मी की छुट्टियां शुरु हो गई, लेकिन अभी तक वे नहीं आई।"

हरिप्रसाद विजय को महाबलेश्वर ले गए। नए वातावरण में वह मा को कुछ-कुछ भूलने लगा। फिर भी उसकी याद उसके अन्तस्थल में बनी रही। एक दिन उसने कहा—"चलो पापा अहमदाबाद चलें।"

"तुम्हारी बुआ शोर-शार पसन्द नही करती, अगर तुम चाहो तो हम किसी दूसरी जगह पर चलें।"

"पापा मै अब शरारत नही करूगा, मुझे मा के पास ले चलो।"

"विजय तुम सचमुच ही मुझे बहुत परेशान करते हो। मने कहा जो है कि हम वहा नही जा सकते।" इतना कह कर वह तुरन्त ही बाहर निकल गए। जब वह वापस आए तो उनकी आखें लाल हो रही थी। विजय को यकीन हो गया कि पापा के सामने मा की बात नही कहनी चाहिए। बम्बई आने तक वह बिलकुल गम्भीर स्वभाव का बालक हो गया था। एक दिन की बात याद करके उसे बहुत पश्चाताप हुआ। बहुत समय पहले एक दिन उसने मोहनी की साडी काट दी थी और उसने नाराज होकर कहा था—"अगर तुम मुझे हर वक्त इस तरह दिक करोगे, तो मै चली जाऊगी और कभी वापस नही आऊगी।"

वह भूल गया कि पापा के सामने मा का नाम न लेने का उसने व्रत किया था, उसने पूछ ही लिया—"पापा, क्या मा मुझ से नाराज हो कर चली गई है? उनको लिख दो न कि अब मै उन्हें बिल्कुल तग नही करूगा।"

ठण्डी सास भर कर उन्होने जवाब दिया—"अच्छा लिख दूगा। अब तुम बाहर जाकर खेलो।"

अब विजय को शरारत करने में भी कुछ मजा न आता। उसके कपडे साफ सुथरे रहते और उसकी पुस्तकें कायदे से रखी रहती। उसका कोमल मुख मुरझा गया था और उसकी उदास आखें सदा कुछ खोजती-सी दिखाई देती।

एक दिन उसे ज्वर आ गया। अब और सहन करना उसकी शक्ति से बाहर था। मा की याद कर वह सुबक-सुबक कर रोने लगा। हरिप्रसाद ने उसको समझाते हुए कहा—"रोओ मत बेटा, अभी डाक्टर आकर अच्छी दवा देगा और तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे।"

"लेकिन मा? वह कब आएगी?"

"वह थोडे दिनो में आ जाएगी।"

"नही तुम झूठ कह रहे हो। तुम मुझे बहका रहे हो। वह कब आएगी?" इतना कह वह वेदना से फूट-फूट कर रोने लगा और उसको शान्त करना कठिन हो गया।

उस रात उसका ज्वर बढ गया और उसने बडबडाना शुरू कर दिया। हरिप्रसाद का दिल पहले ही बहुत दुखी था। अब उन्हें समझ में आया कि वह मा को कितना प्यार करता था। सौभाग्य से विजय का बुखार दूसरे दिन ही कम हो गया। लेकिन हरिप्रसाद से यह बात छिपी न रही कि बच्चे का अन्त करण मां से मिलने के लिए कितना छटपटा रहा था। हरिप्रसाद विजय को प्रसन्न करने के लिए नई-नई चीजें लाते, लेकिन किसी चीज में भी उसका मन न लगता। वे एक दिन प्यारी मैना ले आए, जो बहुत सुरीला गाती भी थी। विजय घण्टो उसके पास बैठा रहता और सोचता क्या, उसी की तरह वह भी अकेलेपन का अनुभव करती है, क्योकि वह भी तो अपनी मा के पास उड कर नहीं जा सकती।

एक दिन उसने पिंजरा खोलकर पक्षी को बन्धन मुक्त कर दिया। मैना तीर की तरह तेजी से उड़ गई। अगर भगवान ने उसे भी पख दिए होते, तो क्या वह भी अपनी मां के पास उड कर न पहुच जाता। लेकिन उसने सोचा कि उसकी मा तो उसकी तनिक भी परवाह नही करती। क्या वह उसे बिल्कुल ही भूल गई है? नही आती तो न आए, वह उसके बगैर अच्छी तरह रह सकेगा। वह अमरूद के पेड पर जा बैठा, जो अब उसका रोज का साथी बन गया था।

वह वार्षिक परीक्षा मे दूसरे दर्जे पर आया और अपने वर्ग का मानिटर बनाया गया। वह एक सुशील बच्चा था। घर में सब कोई उसकी अच्छी तरह से देखभाल करते थे, फिर भी उसका दिल बुझा-सा रहता था। वह अक्सर अपनी मा के विषय में सोचता और इस निश्चय पर पहुचा था कि वह उसे छोडकर कही चली गई है।

लेकिन जब कभी भी वह अपने पापा के साथ मा के विषय में कोई बात करता, तो वह बहुत उदास हो जाते। उनकी बातो से ऐसा लगता कि वह उसे असली बात नही बता रहे, सिर्फ बहला रहे है। पापा उसे कितना प्यार करते है, फिर वह क्यो इस तरह से बहका रहे है?

एक दिन विजय ने सहमे हुए स्वर में पूछा—"पापा, मा मर तो नही गई?"

"तुम यह क्या कह रहे हो?"

"तो फिर वह आती क्यो नही? पत्र भी तो नही लिखती। जबकि मैने इतनी बार लिखा है। तुम सब मुझे ठग रहे हो। सच-सच बताओ मा कहा गई है?"

विजय फूट-फूट कर रोने लगा। हरिप्रसाद कुछ बोले नही। उसे आसुओ से दिल ठण्डा करने दिया। जब विजय शान्त हुआ, तो उन्होने कहा—"देखो बेटा, मा मरी नही है। पर कही चली गई है।"

"कहा?"

"इधर उधर देखने भालने के लिए।"

"यहा भी तो देखने के लिए कितनी चीजें है। तुम उन्हें बुलवा क्यो नहीं लेते?"

"अच्छा बुलवा लूगा।"

लेकिन विजय को कोई खास उम्मीद न थी, इसी लिए जब दो महीनो के बाद मा के आने की खबर विजय को दी गई तो उसे यकीन ही न हुआ।

"वह गर्मी की छुट्टियो में आ रही है।"

विजय का मुह छोटा हो गया—"यह तो तुम पिछली छुट्टियो में भी कहते थे।"

"लेकिन विजय, इस बार तो वह सचमुच ही आ रही है।"

खुशी के मारे विजय पापा के साथ लिपट गया। जब हरिप्रसाद ने विजय को इतना प्रसन्न देखा तो उन्हें सतोष हो गया कि उन्होने ठीक ही फैसला किया है। मोहनी लगातार अपने पत्रो में वापस आने के लिए लिख रही थी। उनसे प्रार्थना कर रही थी कि वह उसे वापस बुलवा लें। वह तो पिछले छ महीनो से लिख रही थी और वह भी, बीती बात को भुला देना चाहते थे। लेकिन उस दूसरे बच्चे को कैसे अपनालें। उस बच्चे को दिन रात अपने समीप पाकर उनका जीवन नरक तुल्य न हो जाएगा। क्या विजय को उस के हाथ में सौपना अच्छा होगा। इस तरह के विचारो ने उनके फैसले को अडिग रहने दिया था। लेकिन मोहनी के प्रार्थना करने के बावजूद भी उनका जो मन कुढ रहा था, विजय के आसुओ ने उसे कोमल कर दिया। उन्होंने मोहनी को आने की इजाजत दे दी और विजय की खुशी की सीमा न थी। उसने रसोइया और नौकर को, यहां तक कि ड्राइवर और माली को भी खबर दी। फिर भी उसका मन न भरा, वह अपने बन्धु पेड

के पास जाकर उसे जोर-जोर से झकझोर कर कहने लगा---"मै कहता हू तुमने खबर सुनी है । मा आ रही है !" और हसते-हसते वह पेड के साथ लिपट गया ।

रात कैसे बीती, उसको पता भी न चला । वह तो अपने आपको और अपनी चीजो को सवारने में लगा था ताकि मा आकर कोई नुक्स न निकाल सके । मा के आने वाली रात तो वह सो ही न सका । उसने अनेकबार हरिप्रसाद से पूछा---"पापा मा सचमुच आ रही है न । अहा, कितना मजा आएगा ।"

अपने पुत्र की प्रसन्नता मे वह अपने सतप्त हृदय और तिक्त भावनाओ को दबाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे ।

दिन निकला, विजय उठा । उसका हृदय उल्लास से छलक रहा था । आठ बजे एक गाडी दरवाजे के सामने रुकी और मोहनी उससे उतरी । मां को मिलने के लिए विजय उछल कर उसकी ओर बढा । लेकिन मोहनी की गोद में एक नन्हीं-सी बच्ची थी,---"विजय, देखना तुम्हारी छोटी बहन को चोट न लग जाए ।"

विजय अपमानित-सा सहम कर एक ओर खडा हो गया । यह वही मा है, जिसके लिए वह इतना रोता था ! यही एक विचार बार-बार उसके नन्हें से हृदय को कचोटने लगा । "अब मा मुझे प्यार नही करती । और यह बहन कहा से आ गई । मेरी तो कोई बहन नही थी ।"

मोहनी अपना सामान ठीक कर और बच्ची को सुलाकर वापस आई । उसने खिसयानी-सी मुसकराहट से कहा---"आओ विजय, मेरे पास आओ ।" उसने विजय को अपने पास खीच कर चूम लिया । लेकिन क्या उस चुम्बन और मुस्कराहट में वह स्नेह था जिसके लिए वह इतना लाला-यित हो रहा था ? अगर वात्सल्य का कुछ आभास हो भी, तो विजय के भोले मन तक उसकी गर्मी न पहुच सकी । वह खोया-सा कडा होकर एक तरफ खडा रहा । मोहनी ने कहा---"क्या बात है विजय ? तुम तो नाराज दिखाई देते हो । देखो तो मै तुम्हारे लिए क्या लाई हू ।"

जब विजय को नाना प्रकार के उपहारो के पास छोडकर वह हरिप्रसाद के कमरे मे गई, तो विजय भी चुपचाप बाहर निकल गया । वह अपने प्रिय बन्धु अमरूद के पेड के साथ लग कर फूट-फूट कर रोने लगा । क्या उन आसुओ के साथ जो उसने मा के वियोग में बहाए थे, इन आसुओ की तुलना की जा सकती है ? यह आसू भी तो मा के लिए ही थे, जो लौट कर भी नही लौटी थी !

विजय इसी तरह कितनी देर तक पेड के साथ चिपट कर रोता रहा । तभी किसी ने घर से उसे पुकारा । उसने चुपचाप आसू पोछ डाले और शान्त होने की कोशिश करने लगा । हरिप्रसाद ने उसे इसलिए बुलाया था ताकि वह उस के प्रसन्न मुख को देख सके ।

विजय ने एक ठडी सास ली और वह पिता की ओर चला ।

सर्गान्त---(पृष्ठ ६ का शेषाश)

ऐरावत नलिनी को दातो से उठा लेता है । बडी व्यजना है इस उपमा में, बडी ध्वनि है । रक्षा का कार्य अत्यन्त उदार होता है, उससे रक्षित और रक्षक के बीच का कायिक अनुपात अत्यन्त बढ जाता है । वहा कमलिनी, वह भी गजेन्द्र के प्रलब दात से लगी, लगी मात्र, जिससे गजराज की अनायासता का बोध होता है, और कहा ऐरावत का उन्नत शरीर । स्थिति बिलकुल वही है जो कालिदास कालीन गुप्त मूर्तिकार ने उदयगिरि की गुफा में पृथ्वी की रक्षा करते हुए महावराह की चट्टान में उभारी है---एक घुटना जरा आगे को झुका हुआ है, कमर अपने आप जैसे आगे को खिच आई है और उस पर हाथ आ टिका है, और थूथन के लबे दात से पृथ्वी की नितात छोटी मूर्ति चिपकी हुई है । कहा पृथ्वी, जिसकी सज्ञा में ही विस्तार और पृथुता का भाव निहित है, और कहा उसके अनुपात में उसके ऊपर तेज दौडने वाला शूकर-वराह ! पर वहा तो वराह पृथ्वी का रक्षक है और दोनो के कायिक अनुपात में इसी कारण घना अतर पड जाता है । रक्षक महावराह विशाल हो जाता है और रक्षिता पृथ्वी नितात क्षुद्र हो जाती है । ठीक इसी प्रकार सुरगज और पद्मिनी के ही अनुपात में हिमालय भी अपनी कन्या के समक्ष अपनी ऊँचाई व्यक्त करता है । यह रक्षिता कन्या के अनुपात म तो महान है ही वैसे भी उसकी प्रकृत ऊचाई धरा पर सबसे अधिक है---२६,००२ फुट । पर हिमालय उससे भी सतुष्ट नही होता, अपने शरीर को खीच कर और ऊचा कर लेता है---'दीर्घीकृताग'--- यह केवल इसलिए कि कन्या आश्वस्त हो जाए, कि उसका आश्रय कुछ साधारण नही है, कि शिव के सहार से उसके सरक्षण की प्रभुता कुछ कम नही, कि अपनी मूक मुद्रा से, अपने असीमित औदार्य से वह रुद्र के क्रोध को भी तुच्छ गिनता है । सही, पति अथवा प्रिय की पालनवृत्ति से वचिता नारी का एकमात्र आश्रय पालक पिता है । और इसी से कालिदास ने कहा कि हिमालय तीव्र गति से वनस्थली में आए, रुद्र के क्रोध के परिणाम से डरी प्राय. लुप्त सज्ञा कन्या को ऐरावत के दात से लगी कमलिनी की भाति अपनी विशाल भुजाओ में नि शब्द उठाकर अपने ऊचे शरीर को और भी ऊचा करते वेग से जिस राह आए थे उसी राह, जिन पैरो आये थे उन्हीं पैरो, लौट गए । और कवि सर्ग समाप्त कर देता है ।

पर्मो कमून---(पृष्ठ ११ का शेषाश)

थे, लेकिन एक समय भाथी के सहारे आक्सीजन पहुचाई जाती थी ।

लोह यत्र देखने के बाद हमें बताया गया कि यहा के चिडिया खाने में बालो वाले कछुवे हैं । संस्कृत में कर्म रोम असम्भव समझा जाता है, वहा छोटे-छोटे कई कछुवे थे, जिनकी पीठ पर हरे-हरे लोमो की पंक्तिया थी । शाम होने आई और हमें ८२ किलोमीटर चल कर शाङ्है पहुचना था ।

भारतीय लोक-साहित्य की मनोभूमि

रामइकबालसिंह 'राकेश'

भारतीय लोक-साहित्य के कोष में हजारो वर्षो की सभ्यता और सस्कृति की अमूल्य सम्पत्ति सुरक्षित है । जैसे ईंधन के सम्पर्क से अग्नि की ज्वाला बढती है, वैसे ही हमारा लोक-साहित्य भी जगलो, पहाडो, खेतो, खलिहानो और चौपालो में बिखरे हुए असख्य सरल तथा हृदयस्पर्शी शब्दो को अपने में समेट कर वर्गाकार विकसित होता रहा है । हमारे लोक-साहित्य का सृजन जनपदीय बोलियो में हुआ है । विदेह जनपद के लोक-साहित्य का मैथिली मे, त्रिगर्त का पश्चिमी पहाडी मे, कुरु जनपद का कौरवी मे, पूर्वी पजाब का पूर्वी पजाबी में, सिंध का सिंधी में—इस प्रकार भिन्न भिन्न जनपदो की बोलियो में साहित्य-रचना होने के कारण लोक-साहित्य ने सार्वजनीन भावनाओ को वाणी देने का गौरव प्राप्त किया है । यहा यह बात विचारणीय है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की भाति लोक-साहित्य ने किसी सस्कारपूत या शिष्ट साहित्य की परम्पराओ को किसी भी रूप में ग्रहण किया है या नही ? वस्तुत किसी भी भाषा और बोली में साहित्यिक परम्पराओ को अपना बना लेने की दिशाए और दशाए अनेक है । परम्पराओ की नूतनता स्थानीय वातावरण में सुरक्षित रहती है । और कोई भी साहित्य प्रगतिशील तभी रहता है, जबकि उसकी अभिव्यजना समाज-सम्बन्धो से प्रभावित हो । असल में लोक-साहित्य का साहचर्य किसी शिष्ट साहित्य से न होने के कारण उसमें अभिव्यक्ति की परम्पराओ को शास्त्रीय रीति से नही, स्वतत्र रीति से अपनाया गया है । वृक्षो और लता-वनस्पतियो की भाति उसने पौरो के नीचे की मिट्टी से ही प्रयोजनीय वस्तुओ और प्राणपोषक तत्वो को अपने रस-वाहक तन्तुओ से खीच कर आत्म-विकास किया है । इसीसे उसमें शिष्ट वर्ग प्रियता के बदले सर्वजनप्रियता का निरूपण हुआ है, और उसके गति-प्रवाहो तथा श्वास-प्रश्वासो में जीवन की विधायक शक्ति आज भी हलचल पैदा कर रही है ।

नृत्य गीत, लोक-कला से सम्बन्धित चित्र गीत, पक्षी परिचय, कृषि-गीत, ऋतु गीत, लग्न गीत, पर्व गीत, वर्ग विशेष के गीत, लोरियाँ और बाल गीत, कथा गीत, ज्योतिष-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान मोटे तौर पर इन्ही वर्ग-वृत्तो में भारतीय लोक-साहित्य की रूप-रेखा का विकास हुआ है । स्थानाभाव के कारण अतर्प्रान्तीय लोकगीतो को दृष्टिपथ में रखते हुए यहाँ लोक-साहित्य के कुछ विशिष्ट पहलुओ का सक्षिप्त परिचयमात्र देने का प्रयत्न किया जाएगा ।

सच पूछा जाए तो भारतीय लोक-साहित्य की मनोभूमि को उर्वरा बनाने में लोक-कला का महत्वपूर्ण हाथ रहा है । भारतीय लोक-कला का अग-प्रत्यग उस विकसित पाटल-प्रसून के समान प्रतीत होता है, जिसमें नई-नई रग-योजनाओ के बेल-बूटे देखने को मिलते है । उसकी मान्यताओ और प्रवृत्तियो पर धार्मिक परम्परा, सामाजिक परिस्थिति और प्राचीन सस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है । इसीसे उसकी मूल प्रकृति में आलकारिक मनोरमता चरम सीमा तक जा पहुची है । वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लिखित रूप-भेद, प्रमाण, भाव-चित्रण, लावण्य, चित्रण में एकरूपता और उपयुक्त रग-योजना भारतीय शिष्ट कला के इन छ अगो का हमारी लोक कला की प्रकृति के साथ साम्य नही है । क्रम-क्रम से निर्माण की अवस्थाओ को पार करती तथा शताब्दियो की सीमाओ को लाघती हुई लोक कला की आत्म-व्यजना की प्रणाली अपनी नई साँस लेकर और अपना चिर-नवीन स्वर जोड कर आगे बढ़ती रही है ।

कोवर घरो के चित्रण के प्रसग में भारतीय नारी-समाज ने मेघो, पर्वत-शृगो, फूलो और पक्षियो के प्रति हार्दिक अनुराग का भाव व्यक्त किया है । भारतीय कला-मण्डपो के निर्माण में त्योहारो या धार्मिक सस्कारो के समय अशोक के हरे सुदर पत्ते और केले के सुहावने वृक्ष अवश्य लगाए जाते है । वातावरण को सुदर-सुहावना बनाए रखने और चित्त को आकर्षित करने के कारण ही सस्कृत में रम्भा, शिशुप्रिया, वनलक्ष्मी आदि केले के कई नाम प्रसिद्ध है । कोवरघरो के चित्रण में अभीष्ट सौन्दर्य की वृद्धि के लिए लाल, पीले और तपाए हुए सोने के रग वाले अनेक जाति के केलो, जैसे ताम्बडी, स्वर्णप्रभी, चम्पा, अनुपान, मर्त्यमान आदि के घौंद, उनके कमल के समान पखुडियो वाले फूल और पल्लवयुक्त आम्र-फल के गुच्छों के चित्र ईंगुर और धवल से लिखे जाते है ।

निम्नलिखित बुदेली लोकगीत में एक तरुणी की कचुकी में हरी और पीली, रग-बिरगी चिडिया जहाँ-तहाँ चिपकी हुई देखने को मिलती है । कही मुग्ध कर देने वाली शैली में लाल मुनियो और सुदर चकोरो को अकित किया गया है । कही पपीहे, कही मयूर और कही गुलाबी रग के कठे से विभूषित तोते सम्पूर्ण रेखा और रगो में चित्रित है, और कही दोनो उरोजो के बीच मे लाचार कर देने वाली आम्रवनवासिनी कोकिलाओं का रग-चित्र अकित है । देखिये—

'जीमें लिखे पपीरा मोरें ऐसी अगियाँ तोरें
मुकसे लाल मुनैयाँ लिपटे चिरवा चारु चकोरें ।
पीरी हरी चिरैयाँ चिपुकी सुआसुरक मुख मोरें,
कायल करन कुयलियाँ ईसुर दो छाती के दोरें ।'

हमारे लोक-साहित्य के अतर्जगत के सौन्दर्य को स्थिर और संतुलित रखने में लोक-कला ने एक विशिष्ट अभिव्यक्ति-प्रणाली का परिचय दिया है । अगो को रगने, काठ में खुदाई का काम करने, मूज की सींको से डलिया बुनने, शय्या-रचना करने, कपोलो के ऊपर पत्र-रचना करने, चावल से चौक पूरने, मिट्टी के सुदर पात्रो का निर्माण करने, कचुकी तथा ओढ़नी की किनारियो पर बेल बूटे काढने और कान के पत्तो को विभिन्न आकार-प्रकारो में काढने-छाटने के प्रसग में नदियो, पुष्प लताओ और पक्षियो ने लोक-रुचि पर सबसे अधिक गहरा प्रभाव डाला है । प्रकृति की मनोरम रूप-रेखा तथा ग्राम्य दृश्यो के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति और चित्रण की शैली में सादगी लोक-कला की लाक्षणिक विशेषता रही है ।

भारतीय लोक-साहित्य में अश्वों को कलापूर्ण रीति से सजाने का विवरण भी मिलता है। बुंदेली लोकगीतों के सकलन के उद्देश्य से जब मैंने विन्ध्य प्रदेश की यात्रा की थी, एक दिन रात्रि के समय मुझे झांसी में एक युवक गडरिये ने सामान्य जनसमाज में प्रचलित गोटों को गाकर सुनाया था। गोटों में गूजरों, अहीरों और गडरियों के देवता कारसदेव के चरित्र और उनके वीरतापूर्ण कार्यो की चर्चा मिलती है। विन्ध्यखण्ड जनपद के हर ग्राम में कारसदेव का चबूतरा बना हुआ है। कारसदेव रण ककण बाध कर एक शत्रु राजा को जीतने रणभूमि की तरफ चल पडने के लिए उतावले हो रहे हैं, और उनका नील नाम का अश्व मेंहदी और मूल्यवान कलगी से सजाया जा रहा है। बुंदेली लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियों में कारसदेव के नील अश्व को सजाने की अनूठी शैली लोक-कला की निजी जीवन-गति की सूचना देती है

'ककई मॅगाई हाथीदाँत की रोम-रोम किये निरवार,
बारन-बारन मोती बेंदे किसयारन हीरा लाल।
चारउँ-ॅडड मेंदी रची पूछ रची सरबोर,
चार पधारक पुट्ठन धरी बगलन लिखी चकोर।
सवा लाख की कलँगी धली लीला के माँझ लिलार,
कलँगी झूले, मोती उगे, मन गंगा हेरा लेय।'

अर्थात हाथी दाँत की बनी हुई कघी से उसके अग-अग के प्रत्येक रोम को अलग-अलग कर दिया। रोम-रोम में मोती पिरो दिए। रोम-रोम में हीरे और लाल जड दिए। चारों खुरियों के ऊपर महीन पीसी हुई मेंहदी रचा दी। पूछ को भी रग में शराबोर कर दिया। पुट्ठों के ऊपर चार टिपकी या बुदकी लिख दी, और बगल में दोनों ओर चकोर पक्षी का चित्र लिख दिया। उस नीलवर्ण अश्व के बीच लिलार पर सवा लाख की मूल्यवान कलँगी रख दी। कलँगी हिल-डुल रही है। मोती मंद गति से झोके खा रहे हैं, और मन की गगा हिलोरे ले रही है।

स्वयंवरकालीन 'सम्मरि' शैली के निम्नलिखित मैथिली लोकगीत के अनुसार जब बाणासुर की कन्या उषा स्वप्न में अनिरुद्ध को देख कर अधीर हो उठती है, तब उसकी सहचरी चित्रलेखा सरलता से उसके जीवन-सर्वस्व का चित्र अंकित कर उसे सिद्धि-लाभ के निकट पहुचा देती है। इससे सूचित होता है कि युग-युग से चित्र लेखन की कलात्मक अभिव्यक्ति एक बलवती प्राणशक्ति के रूप में भारतीय लोक-जीवन को अनुप्राणित करती आ रही है।

'मैं पट लिखों चिह्न लिय मन दै
जे तोहि हृदय निवासे,
तीन भुवन जौं हैत कुँवर वर
आनि मिलत तोहि पासे।
देव, असुर, विद्याधर, चरण
मानुष सकल उरेहे,
यदुकुल तिलक कुँवर अनिरुद्धिहि
उषा चिन्हल वर एहे।'

चित्रलेखा कहती है—'मैं चित्र बनाती हूँ। तेरे हृदय के भीतर प्रवेश कर जिसने अपना घर बना लिया है, तू अपने उस जीवन-सर्वस्व को पहचान कर मुझे बता दे। यदि तेरा प्रियतम त्रिभुवन में कहीं भी होगा, तो वह तेरे निकट आ पहुँचेगा।' यों कह कर योगिनी चित्रलेखा ने देव, असुर, विद्याधर, चारण और मनुष्य सभी के चित्र लिख दिए। जब उसने राजकुमार अनिरुद्ध का चित्र लिखा तब राजकुमारी उषा ने उसे पहचान कर कहा—'मेरा वह जीवन-सर्वस्व यही है।'

लोक-कला की अटूट परम्परा को सजीव बनाए रखने में विवाह-सस्कार के समय स्तम्भारोपण और मण्डप-निर्माण करने की सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण शैली का महत्वपूर्ण हाथ है। भारतीय लोक-कला के विशद चित्रपट पर हमारी धर्मनीति और लोकनीति की परम्परा ने विविध रगों और रेखाओं में अपने आपको व्यक्त किया है, और अपने रोचक तथा मनोरम रग-विधान के कारण उसकी शक्तिशाली प्राणधारा प्रेम की मदाकिनी बन कर कोटि-कोटि जनगण के अतर्देश में धीर गभीर गति से बहती चली जा रही है।

लोक-नृत्य भी लोक कला का एक अभिन्न अग है। नृत्य की चेतन वृत्ति मनुष्य तक ही सीमित न रह कर पशु, कीट, पतग और लता-वनस्पतियो तक में पाई जाती है। पृथिवी, आकाश, दिगत, सूर्य, चाद और तारे सभी नृत्य के मृदग पर गमक रहे हैं। असल में लोक-मानस के रेगिस्तान में आनद की मधु धारा बरसाने का श्रेय नृत्य को ही प्राप्त है। प्रकृति के आतरिक आनद के उद्वेग से मानव-जीवन के उष काल के पूर्व ही नृत्य का आविर्भाव हो चुका था। शिष्ट नृत्य की कृत्रिम गति-व्यजना और लोक-नृत्य की सरल प्रकृति में आश्चर्यजनक अतर पाया जाता है। प्रत्येक लोक-नृत्य शैली-विशेष के गीतों के बधन में ही बँधा है, और लोक-नृत्य की प्रत्येक गीत-शैली का एक निश्चित राग और ताल है। राग-ताल या तान के स्वरपात से ही किस नृत्य शैली का कौन गीत है, यह पहचाना जाता है।

भारत की विविध लोकनृत्य-शैलियों में छोटानागपुर का युद्ध-नृत्य अपनी गति-व्यजन शक्ति के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ऐसा जान पडता है, जैसे उडाव लोक-साहित्य की पुरानी दुनिया में उष्ण भाव-नाओं का ज्वालामुखी धधक रहा है। मुक्ति के रगीन तराने, जो युद्ध के तमाम रूढि-बधनों को तोड रहे हैं, पहाडी लोक-जीवन में घुल-मिल कर तरुणों के मनोराज्य में आत्माहुति की ज्वाला जगा रहे हैं। आदिवासियों के वीर्यशील चरित्रों के चित्रण ने युद्ध के रक्त-प्रपात में तैरते-तैरते सगीत के लचकीले स्वर को कठोरता का कवच पहना दिया है। रन की धार में लथपथ एक फौजी गीत सुनिए। आत्म-विजय और शत्रु-दमन का शानदार नजारा इस गीत में चित्रित है, यह स्पष्ट है। रणबाँकुरी मनोवृत्ति के इगित पर नाचता हुआ युद्ध का यह नृत्य-गान पुरजोश विचारों के पलीते सुलगा रहा है।

"मारू बाजा 'रमझम' बज रहा है। कहीं नील घोडा हिनहिना रहा है, कहीं लाल घोडा आसमान को फाड रहा है। मारू बाजा 'रमझम बज रहा है।

"कोई ढाल तलवार बाँध रहा है, कोई तीर-कमान। लोहे का तीर सन्-सन् छूट रहा है। रूपा का धौसा गरज रहा है। पीतल का झांझ 'रमझम' बज रहा है। रण का डमरू 'डम-डम' शब्द कर रहा है। मारू बाजा 'रम-झम' बज रहा है।

"फौजो के दस्ते बढ रहे हैं। तलवारों के वार पर वार हो रहे हैं। तिलगी तेंगा चमक रहा है। मादर 'गडग-गडग' बज रहा है। मारू बाजा रमझम बज रहा है।

"तलवारों के वार-पर-वार हो रहे हैं। लडाई ठन गई। सिपाहियों के अग-प्रत्यग में तीर घुसने लगे। तलवारें मार-काट करने लगीं। मनुष्यों

के मुण्ड और मनुष्यों के झुण्ड गिरने लगे, आषाढ की पहली वर्षा में टूट-टूट कर गिरने वाले चट्टान खण्डों की तरह। रक्तमयी रणध्वनि हो रही है !"

"रूपा के तीर सन्-सन् छूट रहे हैं। तलवारों के वार हो रहे हैं। रणभूमि रक्त से नहा गई। रक्त की धारा बहने लगी। जैसे वर्षा की बूद बरस रही हो। चारो ओर रक्त का प्रवाह है। पृथिवी भी लथपथ है। दिशाएं भी लथपथ हैं।"

'करम'-गीत-शैली की रचना में तजुर्बेकार कलाकारों का हाथ दीख पडता है। यहाँ इस लोकप्रिय गीत में आजादी पसंद भावबृत्तियों का खूबसूरत शब्द-चित्र अंकित किया गया है। अपनी निहायत जिन्दादिल अभिव्यक्ति के कारण यह उडाव लोकगीत जीवन के भूखे चकोर को जवाँमर्दी के अंगार चुगा रहा है।

जैसे लोक-नृत्यों, सामाजिक रीति-रिवाजों और धार्मिक पर्व-त्योहारों ने भारतीय लोक-साहित्य को प्रेरक प्रवृत्ति के रूप में एक उचित और व्यापक आधार दिया है, वैसे ही उसके बाह्य और अन्तर्जगत के रूप-विधान को विभिन्न जातियों और रंगों के पक्षियों ने अपने सौन्दर्य से चमका दिया है। लोक-जीवन में मिठास घोलने और वातावरण को सप्राण बनाने में सहायक होने के कारण लोक-साहित्य पर पक्षियों के रूप-रंग और गुण की महत्ता का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। हिन्दी और संस्कृत के भिन्न-भिन्न कवियों को भिन्न-भिन्न पक्षियों के रंग-रूप और सौन्दर्य ने आकर्षित किया है, और 'भिन्न रुचिर्हि लोक' के अनुसार ऐसा होना उचित ही है। उदाहरण के लिए जहाँ कालिदास ने हंसों और चक्रवाकों के प्रति निकटतम आत्मीयता व्यक्त की है, वहाँ सूर ने अंगारभक्षी चकोरों और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नीली मखमली ग्रीवावाले मयूरों की आकर्षणमयी विशेषताओं का उल्लेख किया है। लेकिन भारतीय लोक साहित्य के बारे में कहा जा सकता है कि उसने सुंदर-से-सुंदर और कुरूप-से-कुरूप सभी वर्गों के पक्षियों को अपने अंतर्हृदय में स्थान दिया है। भारतीय साहित्य का रोमांचप्रिय जलपक्षी राजहंस आकार की दृष्टि से अपनी जाति में सबसे बड़ा होता है। आदि कवि वाल्मीकि के अनुसार यह अपनी ऊँची उड़ान के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। 'षष्ठस्तु पथा हंसाना वैनतेयगतिः परा।' हंस आकाश के छठे भाग से गमन करता है, और इससे ऊँचे का मार्ग गरुड का है। अमरकोशकार ने श्वेत शरीर, अरुण चंचु और अरुण चरणवाले राजहंस का परिचय इस प्रकार दिया है—'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिता।' विन्ध्य प्रदेश के प्रख्यात लोक-कवि ईसुरी की निम्नलिखित फाग में जन्मभूमि से दूर प्रवासी हंसों की मर्मव्यथा का सजीव चित्र देखिए—

'हंसा फिरें विपत के मारे अपने देश बिना रे,
अब का बैठें ताल-तलैयां छोड़े समुद किनारे।
चुन-चुन मोती उगले उनने ककरा चुनत बिचारे
ईसुर कात कुटुम अपने सो मिलबी कौन दिनारे।'

पपीहा हमारा जाना हुआ बारहमासी पक्षी है। वसंत आने के साथ ही एक रंगीन और सुगंधित वातावरण के बीच यह पक्षी प्रकट होता है। मन को मोह लेने वाली इसकी 'पी कहाँ, पी कहाँ' की टेर विरह की अभिव्यंजना के रूप में हमारे लोक-साहित्य पर छाकर व्याप्त हो गई है। कविवर स्व: श्री झवेरचंदजी मेघाणी से प्राप्त मिठास से पूर्ण अपभ्रंश का निम्नलिखित गुजराती लोकगीत उस हताश पपीहे की प्यास का मार्मिक चित्र अंकित करता है, जिसकी आशा स्वातिनक्षत्र के मेघ ने शीतल सुधा-बिंदु बरसा कर पूरी नहीं की। इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य बात है कि पपीहे में विरहणियों के चरित्र की समस्त विशेषताओं ने आकार ग्रहण किया है। सम्भवतः इसीलिए विरहणियों ने पपीहे का बारम्बार उल्लेख कर अपनी मूक विरह-वेदना को वाणी दी है।

'बप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास,
तुह जलि मह्नु पुणु वल्लहइ बिहु वि न पूरिअ आस।'

रे पपीहे, तू 'पी-पी' रटते-रटते निराश हो गया है। किंतु स्वाति नक्षत्र के जल ने तेरी आशा पूरी नहीं की, और मेरे प्रियतम ने भी मेरी आशा पूरी नहीं की।

हमारे यहाँ कौवे बारहों महीने मौजूद रहते हैं, और प्रति दिन प्रातःकाल जो परिचित शब्द सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह 'चाणक्य' की उपाधि से विभूषित कौओं का ही होता है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार घर के आँगन में स्पष्टभाषी कौओं की बोली अतिथि के आगमन की सूचना देती है। भारतीय लोक-साहित्य में विरहिणियों ने प्रणयदूत कौओं की भविष्यवाणी में निश्चित रूप से विश्वास प्रकट किया है, और अपनी बेचैनी को छंद बना कर उनका हार्दिक अभिनंदन किया है। कौवे के सम्बन्ध में अपभ्रंश का एक गुजराती लोकगीत देखिए—

'वायसु उड्डावन्तिए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति,
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्टतडत्ति।'

कौवे को उडाने जाती हुई तरुणी की (विरह वेदना से सूखी) कलाइयों में से आधी चूडियाँ निकल पडती हैं। पर प्रवासी प्रियतम को आते देख हर्ष के मारे उसकी कलाइयाँ पुनः मांसल हो उठती हैं, और शेष आधी चूडियाँ भी तडातड टूट जाती हैं।

इसी तरह एक मैथिली लोकगीत में भूरे नारंगी और सुनहले रंग के सुरखाब और चिरपरिचित शिकारी पक्षी बाज का सूत्रवत विवरण मिलता है। बाज अपनी झपट और बहादुरी के लिए प्रसिद्ध है। पैनी लोकदृष्टि ने उसकी इन विशेषताओं को आसानी से पहचान लिया है।

'डरहु ने जानि चकवा-शिशु रे
उर कुच युग छाजे,
पवन परस उर-आंचर रे
जनि झपटल बाजे।'

तरुणी के हृदय-प्रदेश पर सुशोभित उरोजों को चक्रवाक-शिशु समझ कर डर मत जाना। पवन तरुणी के अंचल को स्पर्श कर रहा है, जैसे शिकारी पक्षी बाज चक्रवाक-शिशुओं पर आक्रमण कर रहा हो।

भारतीय लोक-साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों को कृषि-कला ने भी बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण से ओत-प्रोत कृषि-सम्बन्धी विचारों की छाप उसकी मुद्रा और भावभंगी पर स्पष्ट रूप से अंकित दिखाई देती है। वस्तुतः कृषि भारतीय संस्कृति का केन्द्र-बिंदु है। अनुमान किया जाता है कि भारत के ग्रामवासियों में नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों को कृषि के द्वारा जीवन-निर्वाह करना पडता है। कृषि के सांस्कृतिक महत्व को दरशानेवाली मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की वाणी बार-बार हमारा ध्यान आकर्षित करती रहती है। पृथिवी में उत्पन्न कई प्रकार के

(शेष पृष्ठ ३० पर)

तेलुगु कलाकार—गोपीचन्द

दोनेपूडि राजाराव

कलाकार श्री गोपीचन्द ने अपनी साहित्यिक आख खोलते ही पश्चिम की ओर देखा, तब उन्हें महान कलाकार बर्नार्डशा, नाटककार इब्सन, मनोवैज्ञानिक फ्रायडआदि के दर्शन हुए। वे बडी उत्कठा के साथ गिरते-पडते उनके साथ-साथ चले। जहा वे रुक गए, वहा गोपीचन्द नही रुके और आगे बढ गए, वहा उन्हें अद्वैतवादी बर्ट्रेन्ड रसेल इत्यादि कुछ दार्शनिक दिखाई पडे। उनसे सबल पाकर वे यात्रा करते ही रहे। लेकिन आगे का मार्ग अस्पष्ट और अधकारमय था। ऐसे ही दो-चार कदम जबर्दस्ती से आगे बढाए, तब भी रास्ता नजर नही आया। बेचारे कलाकार निराश होकर वही एक शिला पर बैठ गए और विचार मग्न हुए। इसी सोच-विचार में तडप-तडप कर आत्मव्यथित हुए। उसी आत्म-व्यथा में कुछ मुड कर देखा तो पूरब की ओर योगी अरविन्द का शान्त आश्रम नजर आया। उसे देख कर आखो में आशा की ज्योति उभरी और ओठो पर मुसकान चमक उठी। कलाकार अपनी बची-खुची शक्ति समेट कर चद मिनटो में हाफते-हाफते आश्रम के द्वार पर आ गिर पडे। योगी अरविन्द ने अपने अध्यात्म-जल के छीटो से कलाकार गोपीचन्द को सचेत किया। कलाकार ने आख खोल कर देखा तो अध्यात्म का एक नया जगत ही दृष्टिगोचर हुआ। चारो ओर उपनिषद, गीता, साख्य, गीताजलि इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थ अपने पखे खोल कर लहरा रहे थे। कलाकार उनको देख-देख कर उनकी ओर खिच गए। अब वही ठहरे हुए है। सक्षेप में तेलुगु के महान कलाकार श्री गोपीचन्द की यही साहित्यिक और दार्शनिक यात्रा है। जीवित कलाकार चिर वधमान होता है और वह एक बहता पानी है। ऐसे जीवित कलाकार को मापना आसान काम नहीं है। लेकिन आज साहित्यिक आदान-प्रदान दिनोदिन बढ रहा है, और तुलनात्मक अध्ययन पर जोर दिया जा रहा है। साहित्य के मूल्याकन का यह एक महान व नया मोड है। भाषा कोई भी हो, साहित्य सब कही एक ही चीज है और सम्पूर्ण विश्व में एक ही चेतन सत्ता काम कर रही है।

श्री गोपीचन्द के आविर्भाव से आधुनिक तेलुगु कथा साहित्य में एक नई बहार आई है। कलाकार ने पुरानी पिटी परम्पराओ पर जोर से कुठाराघात किया है। यथार्थवाद की स्याही से अपनी कलम भर ली है और जीवन-सघर्ष की भट्टी में तप कर स्वर्ण से निखर उठे है। उन्होने समाज की प्रतिकूल परिस्थितियो की दुर्लघ्य घाटी को पार किया है। जीवन के कठोर सत्य को यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रित किया है। इस चित्रण में क्षोभ की अधिकता है और अक्षर-अक्षर में निराशा का निविड अन्धकार। जीवन की लघुता की ओर अपनी साहित्यिक दृष्टि दौडा कर व्यक्ति की दुर्बलताओ का मनोवैज्ञानिक चित्रण खीचा है। इस चित्रण में समाज की रूढियो को पकड लिया गया और व्यक्ति की दुर्बलताओ के प्रति सहानुभूति प्रकट की है और समाज की धूर्तता की पोल खोल कर उसके प्रति कठोर व्यग किया है। व्यक्ति और समाज के बीच की विषमता की खोज मे गोपीचन्द की लेखनी से वेदना नग्नरूप धारण कर विवृत हुई है—यह सब उनके विख्यात उपन्यास 'असमर्थ की जीवयात्रा' में द्रष्टव्य है। 'असमथ की जीवयात्रा' तेलुगु उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसका नायक सीतारामाराव कलाकार गोपीचन्द की अमर सृष्टि है। इसके बराबर का पात्र तेलुगु कथा-साहित्य म मुश्किल से मिलेगा। सीतारामाराव दो विरोधी प्रवृत्तियो को लेकर जीवन यात्रा करता है। वही खुद प्रतिनायक भी है। पात्र के अन्तद्वन्द्व मे कथाकार के चिन्तनपरक उद्गार है। वह सघर्ष सत् और असत् तथा जड-चेतन का है जो चिरन्तन सत्य की ओर सकेत करता है। यह अन्तर्द्वन्द्व दिनोदिन अत्यन्त प्रखर होता है और सीतारामाराव अशात और उद्भ्रात बनता जाता है। अपने प्रति भी उसकी हिंसात्मक प्रतिक्रिया है। उसे इसके पहले जिस किसी से प्रेम था वह अब द्वेष मे बदल जाता है। और इसके पहले जिससे द्वेष था वह प्रेम में बदलता है। पहले वह धनी है, कुलीन है और शिक्षित है। पिता से भी महान दाता बनने के लिए और यश की प्राप्ति के लिए दान करता है। जीवन के पूर्वार्द्ध में उसकी राय में विवाह करना, बच्चे पैदा करना, उनको गोद मे लेकर घूमना आदि हेय है, सो वह भी कुवारा रहना चाहता है और अपने मित्रो में सरकारी नौकर न बनने का प्रण भी करता है। ऐसा उच्च आदर्श रखने वाला सीतारामाराव गुरुकुल म पढते समय एक युवती से प्रेम करता है। वह प्रेम उसे इतना बाध्य करता है कि आखिर उसको ब्याह करना ही पडा। उसका प्रतिफल दो-चार बच्चे हुए और उनके पोषण के लिए विवश होकर सरकारी नौकरी करनी पडी—यह सब वह विवश होकर करता है। इस विवशता म उसका स्वभाव आवेश-पूर्ण हो जाता है। नौकरी को आत्माभिमान का कलक मानता है और पग-पग पर उसका अभिमान जाग उठता है। नौकरी दिलाने वाले ससुर पर गुस्सा करना, बच्चो को दुतकारना तथा बच्चो की मा पर नाराज होकर खान-पान की हरेक चीज को खोटी कहना उसका रोज का कृत्य हो गया। दिन प्रति दिन उसके स्वभाव मे उद्वेग और भाव-जगत में भवडर उठता है। दुनिया कहती है—सीतारामाराव पागल हो गया है। दुनिया के कहते-कहते वह सचमुच उद्भ्रात हो जाता है और घर-बार छोड कर आवारा हो जाता है। समाज उसकी रक्षा या सहायता की नही सोचता। बेचारा निर्जन प्रदेश में छटपटाकर कुत्ते की मौत मरता है। सीतारामाराव का यथार्थवादी चरित्र-चित्रण और उसका विश्लेषण इस उपन्यास की विशेषता है। जैनेन्द्र की बुआ की भाति यह पात्र आत्म-पीडन प्रधान है। जैनेन्द्र की भाति गोपीचन्द को भी आत्म-पीडन में विश्वास है। आत्म-पीडन से ज्ञानोदय अवश्य होता है, ऐसा उन का विचार है। उन्होने ने अपने सस्मरणो में लिखा है—हर तीसरे साल आप के शरीर में एक कम्पन-सी आ जाती है, आत्मा तडप उठती है, उस पीडन से नई सूझ एव भाव-धारा प्रकट होती है। आपने भी आत्म-पीडन की तीव्रता के लिए कामवृत्ति को

प्रधानता दी है। 'गीता परायण' कहानियां इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व देख कर पाठक अवश्य सम्वेदना से भर जाता है। यह अन्तर्द्वन्द्व हृदय-मस्तिष्क का है। कलाकार ने अन्तर्जगत की व्याख्या करते समय समाज की कठोरता के प्रति गहरा व्यंग्य छोड़ा है।

'असमर्थ की जीवयात्रा' तेलुगु कथा-साहित्य में इस ढंग का प्रथम दुखान्त उपन्यास है। इसमें लेखक की सच्ची अनुभूति है और अभिव्यक्तिकरण की लाक्षणिकता है। इस उपन्यास को लेकर लेखक को जितनी प्रशस्ति मिली है, उतनी अन्य तेलुगु कलाकार को शायद ही मिली हो। इस उपन्यास को लेकर आलोचकों ने कलाकार को निराशावादी कह कर लक्ष्य-सिद्धि के अभाव का आरोप किया है और कुछ ने उन्हें अभारतीय कह कर और भारतीय संस्कृति के विरुद्ध ठहराकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। किन्तु गोपीचन्द इस निन्दा से विचलित नहीं हुए। ज्यों-ज्यों समय बीता, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने ताकत पाई तो निन्दा प्रशंसा में बदली और कथा-साहित्य में उन्हें बेजोड़ स्थान मिल चुका है। गोपीचन्द की कुछ कहानियां हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनूदित हुई हैं। ऐसे ही एक और प्रकृतवादी कलाकार हैं श्री चलम। आलोचकों ने इन दोनों को सदा एक ही दृष्टि से देखा है। इन दोनों कलाकारों ने प्रारम्भ की कहानियों में भारतीय परम्परा के प्रति और तथाकथित सिद्धान्तों के प्रति तीखा व्यंग किया है और उसकी जगह कला के क्षेत्र में स्वाभाविकता को स्थान दिया। कलाकार गोपीचन्द की कथाएं समस्या-प्रधान हुई हैं और समस्या के पीछे बौद्धिक चेतना है। इसका श्रेय बर्नार्डशा को है। कलाकार ने अपने अध्ययन काल में शा और इब्सन से प्रभावित होकर प्रेम और विवाह की समस्याएं प्रस्तुत की हैं। प्रेम और काम को अलग-अलग बता कर वे इसको वैयक्तिक अभिरुचि मानते हैं। उनका विचार है कि मानव को प्रेम और काम में स्वतन्त्र रहना चाहिए। इस धारा के ये ही प्रथम कलाकार हैं। इसी विचारधारा को कुछ एक कहानियों में और प्रियतमा (प्रियुरालु) चित्र में दर्शाया है। प्रेम के दोनों रूप एकांतिक और लौकिक कहानियों में द्रष्टव्य हैं। कोई-कोई कहानी या एकांकी वैयक्तिक प्रेम प्रधान होकर अपने में ही सीमित है तो कोई लौकिक प्रेम प्रधान होकर बाह्य संसार में—समाज में समा जाता है। जहां वैयक्तिक प्रेम है, दिल-देह एक होकर बोलते हैं। 'प्रियतमा' की नायिका जिस 'श्याम' को दिल देती है उसे देह भी देने के लिए घर-बार भाई-बन्धु, सब छोड़ देती है। गोपीचन्द जैनेन्द्र के इस मत से पूर्ण सहमत हैं कि दिल दिया है तो शरीर देने में कोई बात ही नहीं, दोनों अभिन्न हैं हृदय देकर शरीर न दिया जाए यह नहीं हो सकता है।

गोपीचन्द रंगमंच के भी अच्छे कलाकार हैं। उन्होंने सिनेमा-क्षेत्र में कथावस्तु, वार्तालाप, दर्शन आदि में युगान्तर उपस्थित किया है। 'लक्ष्मम्मा' चित्र इसका महान उदाहरण है। इसके पात्र वैयक्तिक होकर परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं और विरोधी विचार वाले हैं। 'लक्ष्मम्मा' में एक स्त्री पात्र वेश्या है, उसके जीवन पर आरोप लगाया जाता है कि वेश्या स्वभाव से ही व्यापारी बुद्धि की होती है। वह इस आरोप का विरोध करती है और वह कहती है कि वेश्याओं के भी दिल-दिमाग हैं, वे भी सच्चे दिल से प्यार करती हैं और समर्पण करना जानती हैं। संसार उनका विश्वास भला क्यों न करे? इस तरह प्रतिकार के पात्र भी हैं। और एक चित्र 'पेरटालु' (सेती) में पेरटालु एक ऐसी स्त्री-पात्र है जो जैनेन्द्र की सुग्रा की भांति समर्पण करना ही जानती है। इस चित्र में नई टेकनीक का प्रयोग हुआ है और कथा बीच में ही आरम्भ होती है।

इसकी शैली आत्म-कथात्मक है। एक ओर कथा का विकास, दूसरी ओर पात्र का चरित्र-चित्रण होता है। लेखक का शिल्प-विधान विचित्र होता है। कोई कहानी वार्तालाप से शुरू होती है तो कोई बीच में ही आरम्भ होती है। ऐसी कहानी में परिस्थिति का ज्ञान कराने के लिए बीच-बीच में वातावरण का चित्रण होता है। 'सूदखोरी' (धर्मवड्डी) कहानी इसी ढंग से चली है। कहानी में चरित्र चित्रण का विकास प्रभावपूर्ण है। 'सूदखोरी' का 'सूरय्या' पात्र अन्तर्द्वन्द्व का प्रमुख पात्र होकर अन्तर्मुखी है। लेखक ने चरित्र को ही केन्द्र-बिन्दु बनाया है। इसमें आत्म-निरीक्षण और वैयक्तिक सम्वेदना है। इस पात्र की वेदना से पाठक की आंखें अवश्य गीली हो जाती हैं।

कहानी में घटना को चरित्र से, चरित्र को घटना से अलग नहीं कर सकते। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। हरेक पात्र के मनोभावों का विश्लेषण यथार्थरूप में अंकित किया गया है। कहानी को अन्त तक बिना पढ़े यह नहीं कहा जा सकता कि कहानी सुखान्त होगी या दुःखान्त। गोपीचन्द की कहानियां अक्सर दुःखान्त हुआ करती हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि ये यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर आए हैं और उन्होंने जीवन की लघुता पर दृष्टि दौड़ाई है। घर का नौकर तक नायक बनता है। ऐसे बहुत से उपेक्षित विषय कथा वस्तु बने हैं। उन्होंने मानव की दुर्बलता या अपराधों का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। ऐसी कहानी पढ़ते समय दोषी के प्रति पाठक के हृदय में सहानुभूति अवश्य उत्पन्न होती है। अपने 'विश्व-स्वरूप' एकांकी में उन्होंने गीता के अनासक्त योग का प्रतिपादन किया है। पौराणिक स्थलों को गोपीचन्द ने वैज्ञानिक ढंग से उपस्थित किया है, और ऐतिहासिक पात्रों को लेकर विचारप्रधान बनाया है। 'माचाला', 'तत्त्वमसि' आदि एकांकी इसके उज्ज्वल उदाहरण हैं। 'माचाला' में अध्यात्म-भौतिकवाद का दार्शनिक बोझ है। अन्त में ब्रह्मन्न्यायडु (पुरुष-पात्र) का अध्यात्म ही विजयी होता है। 'तत्त्वमसि' में रवीन्द्र की छाप है। इसमें प्रकृति के साथ मानव का सम्बन्ध जोड़ा है जैसे भावुक कवि करते हैं। और प्रकृति को सजीव माना है। गोपीचन्द की दृष्टि में प्रकृति सत्य और नित्य है। मानव के पूर्व भी प्रकृति थी। मानव के बिना भी प्रकृति है और वह अनादि है। यों वे प्रकृति का अलग अस्तित्व मानते हैं।

लेखक का अनुभव प्राच्य-पश्चिम का संगम है। वे अपनी अनुभूति से जीवन को परखते हैं। रचना में पात्र की मनोग्रन्थियों तथा कुंठाओं को खोलने में कहीं संकोच नहीं किया गया है। हरेक पात्र में कोई न कोई मानसिक उथल-पुथल अवश्य हुई है। ऐसे पात्र सुगमता से बोध-गम्य नहीं होते। 'सूदखोरी' का 'सूरय्या' पात्र ऐसा ही मार्मिक है। उनके पात्र मध्य श्रेणी के होते हैं जैसे जैनेन्द्र के। कुछ प्रेमचन्द की भांति सुसंस्कृत तथा नागरिक हैं। आप के ग्राम्य जीवन के पात्रों की तुलना अकसर पर्ल बक के पात्रों से की जाती है। 'ममकारम्' का प्रधान पात्र खेती से इतना घुल-मिल जाता है कि मरते समय भी खेत के दर्शन के लिए तरसता है और आखिर मुट्ठी भर मिट्टी लेकर शांति से प्रस्थान करता है। उनकी आजकल की रचनाएं खासकर चिन्तन-प्रधान हैं। 'तत्त्वमसि', 'विश्व-स्वरूप' आदि इसके द्योतक हैं।

गोपीचन्द कोरे कलाकार ही नहीं हुए हैं, अपितु गम्भीर विचारक और बड़े दार्शनिक भी हैं। वे अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में

(शेष पृष्ठ २७ पर)

दृश्य तथा श्रव्य साधनों का महत्व

सावित्री निगम

आधुनिक शिक्षा शास्त्रियो ओर विशेषज्ञो ने दृश्य तथा श्रव्य साधनो को शिक्षा का सवश्रेष्ठ साध्यम माना हे, विशेषरूप से उस समय जब देश की लगभग ७२ प्रतिशत जनता को कम से कम इतनी शिक्षा देनी हे जो उसे उसके नागरिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक बना सके और उसे देश की पचवर्षीय योजनाओ में पूर्ण सहयोग देने के लिए उत्साहित कर सकें। दृश्य ओर श्रव्य साधनो से सम्बन्धित वैज्ञानिक अनुसन्धानो ओर चमत्कारो द्वारा एक अभूतपूर्व क्रान्ति लाई जा सकती है। इसमें भी सन्देह नही है कि देश के वर्तमान उपलब्ध एव प्रचलित साधनो जैसे रेडियो, चलचित्र, ग्रामोफोन, और टेप रिकार्डर का यदि समुचित और सतुलित प्रयोग किया जाए तो अपेक्षाकृत कम समय, धन और साधनो द्वारा भी अज्ञान और अशिक्षा को, जो हमारे विकासशील प्रजातन्त्र के बडे शत्रु हैं, पराजित किया जा सकता है और देश के बौद्धिक तथा नैतिक स्तर को ऊचा उठाया जा सकता है।

आविष्कारो के इस युग में दृश्य और श्रव्य साधनो का महत्व पहिले से कही अधिक बढ गया है। आज हर समझदार इन्सान यह अनुभव करता है कि सैटेलाइट की रफ्तार से चलने वाले तीव्रतर युग में यदि हम नवयुगीन आवश्यकताओ के अनुसार ज्ञान-विज्ञान की निरन्तर बहने वाली अक्षुण्ण धारा को आत्मसात न करते रहें और प्राचीन, वर्तमान तथा भविष्य में सतुलन रखने की क्रमिक शिक्षा न लेते रहें तो हम पिछड जाएगे और युग इतना आगे निकल जाएगा कि हमारी पकड के बाहर चला जाएगा। इसीलिए सीमित शक्ति और साधनो के होते हुए भी आज का मानव अपने ज्ञान की भूख को रेडियो, चलचित्र, फिल्मी गीत आदि सभी साधनो से मिटाने के लिए तैयार हो जाता हे। यही कारण हे कि अधिकाश लोग बिना पता लगाए कि रेडियो का क्या कार्यक्रम हे या किस सिनेमा हाउस में क्या चलचित्र चल रहा है, रेडियो खोल कर बैठ जाते हैं या किसी भी सिनेमा हाउस मे, जहा टिकट मिल जाए, जाकर बैठ जाते हैं। आज हमारे सामने यह प्रश्न भी है कि हम इन अत्यन्त प्रभावशाली शिक्षा के माध्यमो को उपयोगी, ज्ञानवर्धक एव महत्वपूर्ण कैसे बनाए जिससे कि वे आज के मानव की ज्ञान-क्षुधा तृप्त कर सकें। हमें यह भी देखना हे कि इन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभावशाली माध्यमो द्वारा जन मानस को विष दिया जा रहा है या अमृत पिलाया जा रहा है अथवा त्याग एव सयम का पाठ पढाया जा रहा है या कि वासना, अश्रद्धा, और उत्तेजना के प्रति आकर्षित किया जा रहा है। और ये साधन जनमानस को एक नया मोड देकर कहा तक इन्सानियत का पाठ पढ़ा सकते हैं?

यह बात मानने से किसी को इन्कार न होगा कि रेडियो, ग्रामोफोन से कहीं अधिक मनोरजक, आकर्षक और सूक्ष्मतर प्रभाव डालनेवाले दृश्य साधन फिल्म स्ट्रिप्स, मैजिक लेण्टन और चलचित्र होते ह। श्रव्य साधनो द्वारा सुनने के पश्चात थोडा चिन्तन, मनन करके किसी चीज की काल्पनिक रूपरेखा मस्तिष्क मे उतारनी पडती हे पर चलचित्रो म देखी हुई घटना को आत्मसात करने में कोई प्रयास नही करना पडता। देखने के साथ ही साथ हर वस्तु मन द्वारा आत्मसात होती जाती ह। इसीलिए किसी शिक्षा-विशेषज्ञ का यह कथन सर्वथा ठीक ही है कि दृश्य साधन उस दुधारी तलवार की भाति है जिनसे यदि पूरी सावधानी न बरती गई तो वे भारतीय सस्कृति के आधार स्थलो को चोट पहुचाएगे और रही-सही श्रद्धा, विश्वास एव त्याग की परम्परा को भी नष्ट कर देगे। प्रतिवर्ष तीन-चार सौ के लगभग बनने वाले चलचित्रो मे कितने ऐसे चित्र होते हैं जिनमें कला, नृत्य और अभिनय के नाम पर सस्ते प्रेम एव वासना उत्तेजक दृश्य न दिखाए जाते हों। नारी के अग प्रत्यगो के भद्दे और अश्लील प्रदर्शन का दर्शको पर नि सन्देह कुप्रभाव पडता ह। यही कारण हैं कि हमारे देश में बाल एव युवक अपराधियो की सख्या बढ़ती जा रही है। आए दिन सडको पर अथवा सुनसान स्थानो पर हमारे युवक स्त्रियो के साथ अभद्र व्यवहार करते पाए जाते हे। ऊचे स्वर से बिना झिझक के गुरुजनो के सामने बालक और बालिकाए हाव-भाव प्रदर्शित करके प्रणय-निवेदन करनेवाले गाने गाते हैं। मारपीट, जेबकतरी, धोखाधडी के दिलचस्प दृश्य देखकर नवयुवक उन्ही का अभ्यास करने लगते हे। युवको मे उद्दण्डता और अनुशासनहीनता बढ़ाने के लिये अन्य बातो के साथ-साथ ये चलचित्र भी बहुत हद तक जिम्मेदार है। कमाल तो यह हे कि हर चलचित्र में नसीहतपूर्ण एक दो दृश्य इसलिए जरूर रखे जाते हैं जिससे सेंसर-बोर्ड के सदस्यो को चका-चौंध कर दिया जाए और इस प्रकार चलचित्रो को आम जनता के प्रदर्शन के लिए पास करवा लिया जाए।

चलचित्र निर्माताओ का यह कहना है कि वे जनता की पसद के ही चित्र बनाते है। जिन चित्रो को जनता बुरा समझती हे उनको देखती ही क्यो है और देखने के बाद एतराज क्यो नही उठाती? ऐसा लगता है कि उनके इस तर्क से सेंसर बोर्ड के सदस्य और अधिकारी भी एक हद तक प्रभावित हैं। अधिकाश चलचित्रो के दर्शको को न तो आलोचना करना आता है, न उन्हें आलोचना करने का तरीका ही मालूम है। और थोडे से लोग जो ऐसे चित्रो को हानिकारक समझते हैं उन्हें इतना अवकाश नही, और न उनके पास इतने साधन हैं कि वे अपना विरोध क्रियात्मक रूप से सेंसर बोर्ड तक पहुचा सकें। जब शिक्षा-शास्त्रियो का इस ओर ध्यान आकर्षित किया जाता हे तो वे यह कह कर छुटकारा पा लेते कि चलचित्र-निर्माताओ से नोंक-झोंक करना उनके बूते की बात नही। इस प्रकार चलचित्र-निर्माताओ को खुली छूट मिल जाती है कि वे जैसे चाहें, बाजारू, सस्ते और अश्लील चित्र बना कर जन-मानस को विषाक्त करते रहें और शिक्षा के इस अद्वितीय माध्यम का अपने स्वार्थ के लिए

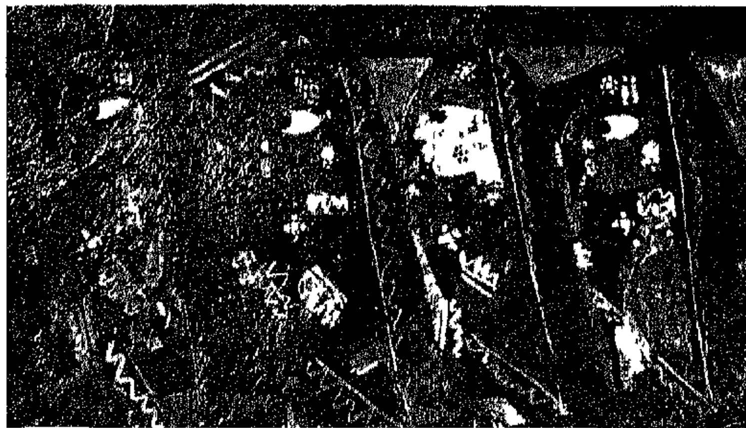


"घोम्पा मे प्रभात की प्रार्थना" सर्वजीत सिह्



"बाउल" जितेन्द्र कुमार

"प्रार्थनाएं" मनहर पकशासा

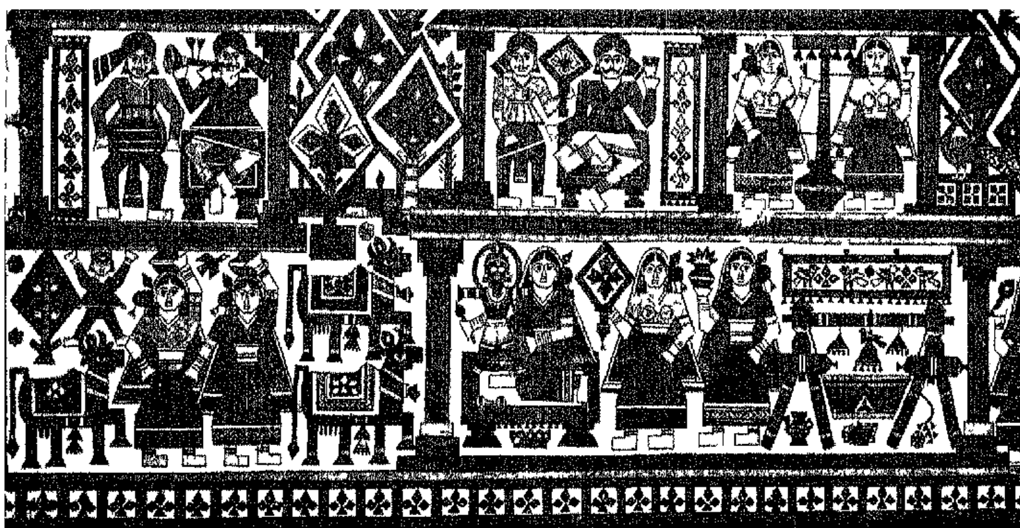


भारतीय चित्रकला
प्रदर्शनी १९५९ के कुछ चित्र

फोटो
मोतीराम जैन



"सुर-ताल-नाद" (प्रस्तर मूर्त्ति) . श्रीधर महापात्र



"जन्म दिन समारोह" खोडीदास बी० परमार

"गाव का जीवन"
जे० सुल्तान अली

"नारी" आर० चेलीहा







"मछली बेचने वाली" ज्योतिष भट्टाचार्य



"चित्र"
एस० जी० निगम

"स्नान" के० जी० सुब्रह्मण्यम



अनुचित प्रयोग करते रहें। सेंसर बोर्ड के होते हुए भी ऐसे चित्र कैसे बन जाते हैं, कई विचारक यह प्रश्न उठाते रहे हैं? लेकिन वे यह बात भूल जाते हैं कि सेंसर बोर्ड के सदस्यों के पथ-प्रदर्शन के लिए जो नियमावली बनी है उसके शब्दमात्र से बचाव की पूरी व्यवस्था कर लेने के पश्चात ही इन चित्रों का निर्माण होता है और उनमें अधिकांश स्थलों पर भद्दापन या अश्लीलता ऐसे रहस्यमय ढंग से व्यक्त की जाती है कि उसका पकड़ा जाना भी असम्भव हो जाता है

चाहे कुछ भी हो, समाज के कर्णधारों और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को बड़ी गम्भीरता के साथ शिक्षा और विकास के सर्वोत्कृष्ट माध्यम दृश्य साधनों को चलचित्र-निर्माताओं के शोषण से बचाना होगा। चाहे उन्हें सेंसर बोर्ड के नियमों को बदलना पड़े, चाहे चलचित्र जांच समिति के द्वारा की हुई सिफारिशों को और कड़ाई से लागू करना पड़े। पर इस प्रकार के चलचित्रों के निर्माण पर रोक लगानी ही पड़ेगी। जिस प्रकार चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायटी बनी है उसी प्रकार यूथ फिल्म सोसायटी भी बननी चाहिए। हर शहर में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को, एक कमेटी बना कर यह अधिकार देना चाहिए कि यदि कोई फिल्म अश्लील प्रदर्शन एवं सस्ते, बाजारू दृश्यों से भरी हो या किसी की धार्मिक भावना को चोट पहुंचाने वाली हो तो वह उसे तुरन्त रोक सकें। अक्सर यह भी सुना जाता है कि सेंसर बोर्ड से पास हो जाने के बाद भी कुछ फिल्मों में भद्दे दृश्य जोड़ दिए जाते हैं। यह तो बहुत ही खतरनाक बात है जिसकी रोक-थाम शीघ्र होनी चाहिए। हाल में धार्मिक और पौराणिक पुस्तकों में वर्णित देवी-देवताओं और भगवान की जीवन-कथाओं के आधार पर जो चित्र बनाए गए हैं उन्हें देखकर चलचित्र-निर्माताओं की मनोवृत्ति का साफ पता लगता है। थोड़े से लाभ के लिए और फिल्म को मनोरंजक और उत्तेजक बनाने के लोभ में श्रद्धास्पद भगवान शिव, पार्वती और मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा लक्ष्मण के जीवन के धार्मिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों को भी वे इच्छानुसार तोड़-मरोड़ सकते हैं और फिर भी अपनी बात की सफाई और बचाव के लिए सफलता पूर्वक सेंसर बोर्ड का सामना कर लेते हैं। शेषनाग, शिव-पार्वती, सावित्री, अजनी और राम-हनुमान युद्ध आदि ऐसी फिल्में हैं जिनमें जगह जगह रामायण, पुराण वर्णित तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा ही नहीं गया है वरन अपनी दमित वासनाओं की पूर्ति के लिए देवताओं के चरित्र में भी वही दुर्बलता, वही चाल ढाल, वेष-भूषा और सरतापन दिखाया गया है।

धार्मिक भावना से प्रेरित होकर जब श्रद्धालु लोग ऐसे चलचित्र देखने जाते हैं और लक्ष्मण को जल्लादों के सामने अपराधी की तरह खड़ा हुआ, पार्वती को थिरक-थिरक कर बाजारू नृत्य करते हुए तथा उर्मिला को लक्ष्मण से टक्कर खाते हुए देखते हैं तो उनकी धार्मिक भावनाओं को कितनी चोट पहुंचती होगी? इसीलिए अच्छा तो यह हो कि धार्मिक चलचित्र बनाने की अनुमति तब तक किसी को न दी जाए जब तक कि धार्मिक ग्रंथों के ज्ञाताओं की एक कमेटी बना कर ऐसे चित्रों की पाण्डुलिपि को पहिले से ही स्वीकृत न करा लिया जाए। पता नहीं इस दिशा में अब तक कोई प्रभावशाली तथा ठोस कदम सरकार या अन्य किसी संस्था ने क्यों नहीं उठाया। पर जब तक कोई ऐसा कदम नहीं उठाया जाता तब तक धार्मिक चित्रों के आकर्षक आवरण में लपेट कर कामोत्तेजक, वासना युक्त, अश्लील दृश्यों को भगवान और धर्म के नाम पर दिखाया जाना शीघ्र ही बन्द किया जाना चाहिए। यदि तथाकथित शिक्षात्मक फिल्म ही बनानी हो तो वह किसी अन्य सामयिक सामाजिक समस्या को लेकर बनाई जा सकती है। जो चित्र भारत के पुनर्निर्माण में सहायक हो सकें और जन-जन के हृदय में त्याग, पवित्रता, तथा देश-प्रेम भर सकें, वही उपयोगी माने जाने चाहिए।

तेलुगु कलाकार--गोपीचन्द--(पृष्ठ २१ का शेषांश)

पाश्चात्य विचारों से--जड़वाद से प्रभावित हुए। उन्होंने हेतुवाद को अपनाकर बुद्धिवाद से काम लिया है। आप की पहली यथार्थवादी कहानी 'शबूक वध' है जो कालेज मैगजीन में १६२८ में छपी। कहानी का शबूक निर्दोष है। लेखक ने शबूक के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। दूसरी यथार्थवादी कहानी 'एक का बड़प्पन' है। इसमें एक महाशय का परिहास करके उसकी आलोचना की है। वह महाशय मुंह में राम बगल में छुरी रखने वाला है। यह कहानी पढ़ते समय फ्रांस के कलाकार बालजाक की आलोचनात्मक शैली याद आती है। कलाकार गोपीचन्द जवानी की उमंग और आवेश में आकर लेखक नहीं बने। उन्हें साहित्यिक प्रतिभा बपौती के रूप में मिली है। वे स्वर्गीय 'कविराट' उपाधिधारी त्रिपुरनेनि रामस्वामी चौधरी की प्रथम सन्तान हैं। गोपीचन्द का जन्म सन् १६१० में अंगलूरु (कृष्णा जिला) में हुआ था। श्री गोपीचन्द जब चार साल के थे, उनकी मां चल बसीं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई, माध्यमिक शिक्षा हाई स्कूल (तैनाली) में हुई। बाद में गोपीचन्द की उच्च शिक्षा गटूर में हुई। यहीं वे १६३० में बी० ए० पास हुए। आजकल आप आकाशवाणी, हैदराबाद के एक प्रोड्यूसर हैं।

गोपीचन्द बचपन से ही अध्ययनशील और चिन्तनप्रिय हैं। उन्होंने अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, चीनी कलाकारों को बड़ी लगन से पढ़ा है। वे सब की सुनते हैं, अपनी कहते हैं। उनकी अपनी एक सूझ है और भावधारा है। संक्षेप में वे तेलुगु के एक महान मौलिक कलाकार हैं। वे भौतिकवाद को भी सत्य मानते हैं और अध्यात्म-भौतिकवाद के समन्वय के लिए आतुर हैं। योगी अरविन्द के अध्यात्मवाद से वे बहुत प्रभावित हुए हैं। उनका विश्वास है कि अरविन्द का दर्शन जगत को नव चेतना प्रदान कर संसार की कुण्ठाओं को मिटाने वाला है।

गोपीचन्द का अध्यात्म मनोविज्ञान पर आश्रित है जिसमें भौतिकता का भी समावेश है। उनकी दृष्टि में मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। सुख-दु:ख के प्रति भी उनका दृष्टिकोण दार्शनिक है। उनके व्यक्तित्व में जो परिवर्तन हुए हैं उनका क्रमिक विकास कृतित्व में हुआ है। उन्होंने कहीं भी अपने अन्तर को छिपाया नहीं है। उनके आत्म-निवेदन में गहरी आर्द्रता प्रकट हुई है।

मीरतक़ी मीर

अहमद सलीम

मीर का स्थान उर्दू के साहित्य में बहुत ऊंचा है। उनकी हैसियत एक जमी हुई इकाई की नहीं है, वह साहित्यिक विकास की एक मजबूत कडी है। उन्होंने केवल अपने ही युग के साहित्य पर चिह्न नहीं छोड़ा है बल्कि भविष्य के मार्ग को भी प्रकाश दिया है।

साहित्य में मीरतक़ी मीर के स्थान का ठीक-ठीक आकलन करने के लिए हमें उनके जीवन और काव्य को इतिहास और साहित्य के बड़े चित्र में देखना होगा।

मीर लगभग नब्बे वर्ष जीवित रहे। इस लम्बे काल में नादिरशाह की चढ़ाई से लेकर अब्दुल कादिर रोहीले के अत्याचारों तक बहुत-सी महत्वपूर्ण घटनाएं भारत में घटीं और मुगल राज्य के पतन की तमाम सीढ़ियां तय हुईं। मीर ने इन घटनाओं का दूर से तमाशा नहीं देखा, इनके कष्ट भी सहे थे। यही कारण है कि उनकी कल्पना और मनोभाव की सजावट इन्हीं परिस्थितियों की बाहरी अवस्था का प्रतिबिम्ब मालूम होते हैं।

मीर छोटी आयु में चचा, बाप और भाई की दया से वंचित होकर उस समय दिल्ली आए, जब उनके लिए दोनों हाथों से पगड़ी संभालना सचमुच मुश्किल था। हर तरफ स्वार्थपरता, तोड़-फोड़ और अस्त-व्यस्तता की परिस्थितियां थीं। ऊंचाई और झुकावट, नाश और विलाप साथ-साथ चलते थे। इस कांच जैसी दुनिया में पग भी उठाना होता था तो सावधानी से, और साँस भी लेना होता था तो आहिस्ता से। मीर का युग एक बड़ी सभ्यता का अन्त है। उस समय, डाक्टर ताराचंद के शब्दों में :

> "राजकोष घरेलू झगड़ों के कारण खाली हो चुका था। राज्य का प्रबन्ध अस्त-व्यस्त हो रहा था। लगान की प्राप्ति सहल न थी। पदाधिकारियों की मासिक वृत्ति चढ़ी रहती थी और राजाओं के बार-बार बदलने से कर्मचारियों की वफादारी में बाधा पड़ने लगी थी। राजाओं से लेकर छोटे कर्मचारी तक पूरे शासक वर्ग का व्यवहार बिगड़ा हुआ था। हर आदमी को अपनी-अपनी पड़ी थी, राज की भलाई का किसी को ख्याल न था।"

इस समय दिल्ली विशेष रूप में आपत्ति का निशाना बनी हुई थी। केन्द्रीय शासन का दिया टिमटिमा रहा था। चारों ओर अशान्ति और विप्लव के लक्षण दिखाई दे रहे थे। मराठे, रोहीले, जाट, अफगान, सिक्ख, सभी उपद्रव मचाने पर तुले हुए थे। मुहम्मदशाह दिल्ली में बैठा भोग-विलास में लगा था और उसे मदिरा की रंग-रलियों में दिन-रात की खबर न थी।

इस अवस्था ने बाहर वालों को भी लूट-खसूट का अवसर दिया। नादिरशाह भारत से हजारों ऊंट धन दौलत लाद कर ईरान ले गया। आनन्दराम मुखलिस के विचार के अनुसार केवल इन रत्नों का मूल्य पचास करोड़ से कम न होगा। यह धन एक दिन में एकत्र नहीं किया गया था, आठ पीढ़ियों का इकट्ठा हुआ था। जान की हानि इससे भी अधिक हुई थी।

उस समय जो आर्थिक दशा थी, उसकी कल्पना आसान नहीं है। मीर के युग में कई बादशाह बदले, उनके सिर काटे गए, लाशें यमुना की रेती पर फेंकी गईं, कुछ को अन्धा किया गया। दरिद्रता की यह हालत हो गई थी कि कई-कई दिन तक राजभवन के रसोई घर में आग तक नहीं जलती थी। राजा और प्रजा सभी की हालत खराब थी और दिल्ली विधवाओं से भी अधिक दुखियारी थी।

यह हालात थे, जब मीर की शायरी उभरी। उस समय भारत में जागीरदारी-प्रथा मृत्यु की अन्तिम हिचकियां ले रही थी। ग्राम्य जीवन का नाश हो रहा था। बंगाल और करनाटक के कोष ने इंगलिस्तान में शिल्प-विप्लव तो मचा दिया था, परन्तु भारत में अभी पूंजीवाद ने कोई रूप नहीं लिया था। सब जमीनें बागी जागीरदारों के पास चली गईं थीं। पुरानी फौजी, कृषि और शिल्प प्रथा सड़ गल चुकी थी, लेकिन देश में न कोई ऐसा बड़ा परिवर्तन हुआ, जो इसको जागीरदारी के घेरे से बाहर निकाल सकता और न प्रजा में कोई ऐसी क्रान्ति बुद्धि आई जो इस दुर्दशा को बदल देती। राजनीति के समुद्र में बहुत-सी लहरें उठीं, परन्तु उस का परिणाम कुछ विशेष नहीं हुआ। कुछ अर्द्ध धार्मिक आन्दोलन बुलबुले के समान उभरे और डूब गए। न वह जागीरदारी को सुधार सकते थे, न धनवालों की शक्ति से टक्कर ले सकते थे और न एक नई दुनिया बना सकते थे।

यह सारा वातावरण मीर की शायरी में समा गया है। उसने शेर नहीं कहे, दिल और दिल्ली के शोक-काव्य कहे हैं। फिर भी उसने स्नेह के दुख और संसार के शोक को पौरुष के साथ स्वीकार किया है। वह डूब कर उभर सकता है और मरने के बाद भी आगे चलने का संकल्प रखता है। उसके यहां जो प्रेम-तपन है, वह मनुष्यता के लिए आवश्यक है। उसके दुख में एक संभली हुई अवस्था, सहन और स्वाभिमान का पुट है। उसका दुख एक परम्परा नहीं, जीवन की कथा है। उसने जिस दुख का प्रकटन किया है, वह केवल अपने उजाड़ जीवन का नहीं, बल्कि अपने बिगड़े हुए वर्ग और उजड़ी हुई सभ्यता का भी दुख है

कैसा चमन कि हम से असीरों को मना है
चाके कफ़स से बाग़ की दीवार देखना।
तलवार के तले ही गया अहदे इंबिसात
मर मर के हमने काटी हैं अपनी जवानियां।
या के सुफ़ैदो सियह में हमको दख़्ल जो है सो इतना है
रात को रो-रो सुब्ह किया या दिन को जों तों शाम किया।

दिल की आबादी की इस हद है खराबी कि न पूछ
जाना जाता है कि इस राह से लशकर गुजरा।
जो जो जुल्म किए हैं तुमने सो सो हम ने उठाए हैं
दाग जिगर पे जलाए हैं छाती पे जराहत खाए हैं।
रौशन है इस तरह दिले वीरां में एक दाग
उजड़े नगर में जैसे जले है चराग एक।

मीर ने वीरानी पर सेकड़ों शेर कहे हैं, एक यह भी देखिए

फर्त गिरया से हुआ 'मीर' तबाह अपना जहाज
तसता मारे गए क्या जानू किधर पानी में।

यों लगता है कि उजड़ी हुई दिल्ली के लोग शहर से बाहर आकर यमुना के किनारे खड़े होकर रो रहे हैं। शब्दों की आवाज से जहाज के डूबने का पूरा दृश्य सामने आ जाता है और मीर का रोना पूरी सभ्यता की एक करुण कहानी बन जाता है।

शेख सलाहुद्दीन ने मीर के युग को रात कहा है और इसका चित्रण करते हुए लिखा है

"मीर की रचनाओं को देखने से यह अनुभव होता है कि एक रात थी, जिसमें बिजली बार-बार चमकती थी और विश्व का एक भाग दीप्त करती थी। और जो कुछ बिजली की इस कौंध में दिखाई देता है, वह वास्तव में ऐसा है कि हर कलाकार को जो कला के आगे सिर झुकाता है, अथाह दुख की अनुभूति देकर उसे द्रवित कर देता है। जिस को भूलने की चेष्टा करके भी भुलाया नहीं जा सकता और वह उस की याद के घेरे में एक महान ग्रह का रूप धारण कर लेता है।" यह रात मीर के काव्य में जीवन का रूपक है

बहुत 'मीर' हम इस जहां में रहेंगे
अगर रह गए आज की शब सहर तक।

मीर के युग में यह रात गुजार लेना भी बड़ा काम था। उन्होंने इस रात को केवल रो-पीट कर व्यतीत नहीं किया, रात के सन्नाटे में कुछ दीपक जलाए और अपने रोने को विद्रोह की घोषणा बना दिया

इश्क में दम मारा न कभी तुम चुपके चुपके 'मीर' खपे
लोहू मुंह पर मल कर अब फरयाद करो तो बेहतर है।
कतरा कतरा अश्क बारी ता कुजा पैदा सहाब
एक दिन तो टूट पड़ ऐ दीदए तर हो सो हो।

मैंने इन शेरों को विद्रोह की घोषणा कहा है। अब जरा यह बल, यह तेवर और यह शक्ति भी देखिए

मैं मुश्ते खाक लेकिन जो कुछ है 'मीर' हम हैं
मकदूर से ज्यादा मकदूर है हमारा।
सब 'मीर' को देते हैं जगह आंखों में अपने
इस खाके रहे इश्क का एजाज तो देखो।
मैं गिरयाए खूनी को रोके ही रहा वरना
यक दम में जमाने का या रंग बदल जाता।

परन्तु इस विपत्ति को क्या कहा जाए, जहां तलवार बरसने पर सिर न छिपाया जा सके :

बड़ी बला है सितम कुदरते मुहब्बत भी
जो तेग बरसे तो सिर को न कुछ पनाह करे।

इतिहास की धारा को बदल सकने की शक्ति मीर में तो क्या, उस समय किसी से भी न थी। पुरानी सभ्यता की पुस्तक के पन्ने बिखरे पड़े थे, मीर ने इनको कलेजे से लगाया, आंखों से चूमा और हृदय-रक्त से जोड़ा। मेरे नजदीक तो इसी बात का बहुत बड़ा महत्व है। फिर यह कि उस समय तो तलवार की जगह मजीरे ने ली थी। राजनीतिक क्षेत्र में जंगल का कानून जारी था। बाहर से लुटेरे तख्त ताऊस, कोहेनूर, लाल किले की मूंगे मोती की टहनियां और सतीत्व के फूल चुन-चुन कर ले गए, और खून की होली तथा पीले चेहरों की बसन्त छोड़ गए। परन्तु इस आपत्ति काल में भी मीर ने अपनी राष्ट्रीय परम्परा, पारिवारिक कुलीनता और साहस को नहीं छोड़ा

मारका गम तो हो लेने दो ख्रेजी का
पहले तलवार के नीचे हमीं जा बैठेंगे।

मीर का जीवन दुखों से भरा था। उनको आजीवन दुखों से छुटकारा नहीं मिला। परन्तु दुख-दर्द मनुष्य के साहस की परीक्षा भी होते हैं। जीवन की ऐसी कठिन राह पर, जहां पथ प्रदर्शक की सहायता भी काम नहीं देती और जहां चलते-चलते पांव शिथिल हो जाते हैं, वहां मीर ने छाती के बल अपना रास्ता बनाया। और यह कोई साधारण बात न थी।

मीर ने युग-शोक को अपना प्रिय शोक बना लिया है और दुखी जीवन में भी विशेष सुन्दरता भर दी है। उनकी आवाज बिलकुल मुरदा और बेजान नहीं है, बल्कि उसमें एक उत्साह है जो हमें तूफान से गुजर जाने में सहायता करता है।

मीर ने हृदय की व्याकुलता की जगह-जगह चर्चा की है और हर जगह गजब का ढंग इख्तियार किया है

यह इजतराब देख कि अब दुशमनों से भी
कहता हूं उस के मिलने की कुछ तुम दुआ करो।
आंखों से पूछा हाल दिल का
इक बूंद टपक पड़ी लहू की।
दिल तड़पे है जान खपे है हाल जिगर का क्या होगा
मजनूं मजनूं लोग कहे हैं मजनूं क्या हमसा होगा।
सब सैल सैल आंसू आते हैं चश्मे तर से
दीवारों दर से कह दो ब इन्तजार हैं हम।

और साथ ही इस बेकली में कितना ठहराव है :

पासे नामूसे इश्क था वरना
कितने आंसू पलक तक आए थे।

मीर अपने मन की जलन से दीप के समान हमेशा जलते रहे, लेकिन कोई नहीं कह सकता कि उनकी यह दशा अश्रुपात करती आँखों के कारण हुई अथवा हृदय की व्याकुलता के कारण :

कहता है दिल कि आंख ने मुझको किया खराब
कहती है आंख यह कि मुझे दिल ने खो दिया
लगता नहीं पता कि सही कौन सी है बात
दोनों ने मिल के 'मीर' हमें तो डुबो दिया
चला न उठ के वहीं चुपके-चुपके फिर तू 'मीर'
अभी तो उसकी गली से पुकार लाया था।

मीर के जीवन और उनकी गजलों का एक विशेष पहलू यही इश्क है। परन्तु इस प्रेम की हैसियत अकेली नहीं है। इसकी एक अपनी प्रथा है, इसकी एक अपनी दुनिया है। न जाने कितनी चीजों से इसकी उत्पत्ति हुई और न जाने कितने तत्व इसके निर्माण में सहायक बने हैं।

मीर ने प्रेम विवरण का जिस सच्चाई के साथ वर्णन किया है, उसकी मिसाल नहीं। मीर की कल्पना विस्तृत ग्रौर सर्वव्यापी थी। उसने माशूक की दिल लुभाने वाली ग्रदाग्रो की चर्चा इतनी नवीनता से की है कि इसकी सहायता से एक चित्रकार चाहे तो जादूगरी कर सकता है

कुछ तुम्ही मिलने से बेजार हो गये वरना
दोस्ती नग नही ऐब नही ग्रार नही ।
नाजो ग्रन्दाजो गमजा इश्वगो ग्रगमाजा हया
ग्रावो गिल में तेरी सब कुछ है मगर प्यार नहीं ।

मीर ने ग्रपनी गजलो में सुन्दरता का जिस रूप से विवेचन किया है, वह बडा ही रगीन ग्रौर ग्राकर्षक है

नाजुकी उसके लब की क्या कहिये
पखडी यक गुलाब की सी है ।

फूलो की महक ग्राने लगेगी, ग्राप जरा इन शेरो की कल्पना तो कीजिए

'मीर' इन नीम बाज ग्राखो मे
सारी मस्ती शराब की सी है ।

यहा ग्रधखुली ग्राखें वह काम कर रही है जो मदिरा के भरे हुए प्याले भी नहीं कर सकते। यही नहीं, प्रेमिका के सिर से पाव तक के तमाम ग्रगो का पद्यात्मक वर्णन जिस कलात्मक ढग से किया गया है वह कुछ मीर का ही हिस्सा है

रुखसार उसके हाय रे जब देखते हैं हम
ग्राता है जी मे ग्राखो को उन मे गडाइए ।
गश के गोया पत्ती गुल की क्या तरकीब बनाई है
रग बदन का तब देखो जब चोली भीगे पसीने मे ।
दिल बाजो न कर इन गेसुग्रो से
नहीं ग्राता खिलाने साप काले ।
ग्राबे हियात की सी हर एक रविश है उसकी
पर जब वह उठ चले है एक ग्रान मर रहे है ।

मीर ने ग्रपनी प्रेमिका के ग्रग-ग्रग में सुन्दरता का रूप देखा है ग्रौर उसको पूजा है। साथ ही उसकी ग्रदाग्रो के घाव सहे है

वा ग्रारसी है वह है या सग है छाती है
जो हम पे गुजरती है वह उसकी बला जाने ।

कभी चोटी ग्रौर दर्पण के सम्मुख कोई पत्थर ग्रौर छाती के कारोबार में लगा हुग्रा है। इस प्रकार निराशा की जो लहरें उठती है, वह हम बहा ले जाती है। दुख-दर्द की जो छाया उभरती है, वह हम सबको ग्रपनी लपेट में ले लेती है। ग्रौर यह मीर की कला का ग्रन्त है।

मीर के काव्य की जडें वास्तविकता की भूमि के भीतर दूर तक चली गई है। उन्होंने जमाने के उतार-चढाव का ग्रनुभव किया, दुर्व्यवहार ग्रौर दरिद्रता के कष्ट सहे। दर्दमन्दी ग्रौर हमदर्दी का ग्रानन्द उठाया था। उनकी ग्रात्मा प्रकृति की मर्मज्ञ थी। उनका हृदय सुन्दरता के हाव-भाव से परिचित था ग्रौर प्रेम की ग्रशान्ति ग्रौर कोलाहल को जानता था। यही कारण है कि उनका कथन सुन्दरता ग्रौर सच्चाई का ऐसा पालना है, जिस में जीवन का ग्रादेश पडा मुस्करा रहा है।

भारतीय लोक-साहित्य की मनोभूमि—(पृष्ठ १६ का शेषांश)

विलक्षण लता-ग्रकुरो, वनस्पतियो ग्रौर धान्यो का वेदो में रोचक वर्णन मिलता है। इस प्रकार लोक-हृदय में शान्ति, तुष्टि, सरलता ग्रौर सहिष्णुता का बीज ग्रकुरित करने के कारण कृषि ने युग-युग का ग्रभिनदन प्राप्त किया है। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो राष्ट्र के जीवन-रथ का सचालन करने वाली कृषि-कला ने जिस प्रकार लौकिक समृद्धि के क्षेत्र में मानव-जाति की महान सेवाए की है, ठीक उसी प्रकार ग्रामो मे केन्द्रित राष्ट्रीय, बौद्धिक तथा परम्परागत सस्कृति के विकास में उसने ग्राधारशिला का काम किया है। भीषण, क्षुधाग्रस्त वातावरण के बीच जीवन की ताजगी ग्रौर हरियाली को बरकरार रखना कृषिगीतो की एक प्रधान विशेषता रही है। थकान ग्रौर ठोकर से ऊब कर हवा के डैनो के सहारे उडना सूक्ष्म-दर्शी लोकगीत-रचयिताग्रो को गवारा नहीं होता। डरावनी गहराइयो को नापने वाली उनकी भावनामूलक ग्रन्तर्दृष्टि व्यक्ति के ग्रदर-बाहर के उस मुरदार ग्रौर प्राणघातक घाव का भी इलाज ढूढती है जिससे व्यक्तित्व चुटीला ग्रौर लहूलुहान रहता है।

सकीर्णता की चीख

गोपाल प्रसाद

हम तलैया के थिर जल है
सीमाग्रो में बधे,
सेवार से ढक गए है!
लेकिन, हम भी चीखते है।

ग्रो पुरवा के झोको!
ग्रो पछुया के झोको!
तुम ग्राग्रो;
हमारी जडता तो लहराए।

या कोई
इस थिरता पर ककर डाले
हम तलैया के थिर जल है
कापना चाहते है।

विपत्ति

विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय

कमरे में बैठा लिख रहा था। प्रभात का समय था। किसी ने आवाज दी—"चाचाजी!"

लिखने में निमग्न था, कुछ विरक्त-सा हो मैंने पूछा—"कौन है?"

बालिका कण्ठ में जवाब मिला—"हाजू, हम हाजू हइ।"

"हाजू? कौन हाजू?"

बाहर आया। मलीन वस्त्र पहने सोलह सत्रह वर्ष की एक तरुणी एक बच्चे को गोदी में लेकर खड़ी थी। पहचाना नहीं। गाव में बहुत दिनों बाद आया हू। कितने लोगो को तो पहचानता ही नहीं। मैंने पूछा—"कौन हो तुम?"

तरुणी लजीले स्वर में बोली—"हमरे पिता थे रामचरण बैरागी।"

अब पहचाना! रामचरण के साथ बचपन में मैं कौडी खेला करता था। वह पाच-छः वर्ष हुए इहलोक की माया से मुक्त होकर साधनोचित धाम को चला गया था, यह मुझे मालूम है। किन्तु उसका कोई पारिवारिक सवाद मैं नहीं रखता था। उसकी इस अवस्था की कोई लडकी भी होगी, मुझे इस बात की धारणा तक न थी। मैंने कहा—"ओ, तुम रामचरण की लडकी हो? शादी हो गई है? ससुराल कहा है?"

"कालीपुर।"

"बहुत अच्छा! यह लडका है क्या तुम्हारा? क्या उम्र हुई?"

"दो साल।"

"बहुत अच्छा। खुश रहो। जाओ अन्दर चली जाओ घर में।"

"आपके पास आई थी चाचाजी। आप नौकरानी रखेंगे?"

"नौकरानी? नहीं तो। ग्वालिन बहू काम कर रही है। क्यों?"

"कौन काम करेगी?"

"हम ही काम करती। मजदूरी न भी मिले—खाए को मिल जाए तो बहुत है।"

"क्यो? तुम्हारे ससुराल?"

तरुणी ने कोई जवाब नहीं दिया। इन सब झगडों से मुझे क्या मतलब? लिखने में देर हो रही थी? साफ जवाब दे डाला—"ना नौकरानी इस समय नहीं चाहिए।"

वह मकान के अन्दर चली गई। पीछे सुना था कि वह भीख मागने आई थी। चावल लेकर चली गई।

उस तरुणी के बारे में मैं भूल ही गया था। सहसा एक दिन देखा—रायपरिवार के घर के छाजन के नीचे बैठी वह एक फाक तरबूज हाउ-माउ कर खा रही थी। जिस मुद्रा से वह तरबूज खा रही थी, उसके लिए 'हाउ माउ' शब्द का प्रयोग मैंने प्रयोज्य समझ कर ही किया है। अत्यन्त मलीन वस्त्र वह पहने थी। बच्चा उसके साथ नहीं था। पास ही में चबूतरे पर दो-एक पपीते के टुकड़े और एक ढेला गुड पड़ा था। अनुमान लगाया, आज अक्षय तृतीया के अवसर पर रायपरिवार में बडा दान उत्सर्ग रहा होगा, ये फल-मूल भिक्षा में प्राप्त हुए होंगे। उसके पैरों के पास एक पोटली थी, जिसमें चावल रहा होगा।

उसी दिन गाव के एक व्यक्ति से मैंने उस तरुणी के बारे में पूछा। उसने बताया कि तरुणी ससुर के घर नहीं जाती। कारण, वहा की परिस्थिति बहुत ही दयनीय है। प्रात और शाम दो मुट्ठी चावल नहीं मिलते खाने को। अनन्योपाय होकर उसके पति ने उसे मैके में छोड दिया है, ले जाने का नाम नहीं लेता। इधर मैके की हालत भी बहुत बुरी है। राम-चरण बैरागी की विधवा पत्नी लोगों के घर में महरिन का काम कर दो दो बच्चों को लेकर बहुत दुदशा में दिन काटती है। और यह तरुणी भी आज एक वर्ष से उसके सिर पर सवार है। मा कहा से कैसे खला पाएगी—इसी से इस तरुणी को अपना रास्ता स्वय ही देखना पडता है।

एक दिन हमारे घर की महरिन ने बातो बातो मे पूछा—"हाजू ने आपसे हमर घर मे काम के लिए कहा था क्या?"

"हा, कहा तो था एक दिन!"

"खबरदार बाबू, उसे घर में जगह न दें। ऊ चोर है।"

"चोर! कैसा चोर?"

"जो कुछ भी सामने मिलेगा, वही चुरा लेगी। मुखर्ज्याबाडी में उसे नहीं रखा। चोरी से दूध पी जाती है, खाना खा लेती है, चावल चुराती है और है भी बहुत पेटू। उसको हाथी के जैसा खाना जुटा न पाकर मुखर्ज्या बाबू ने उसे छुडा दिया है। अब आवारागर्दी करती है।"

"उसकी मा उसे नहीं देखती?"

"वह तो अपना पेट नहीं पाल पाती। हाजू से उसने कह दिया है—कहा से खिलाऊगी तुझे! तू अपना रास्ता देख। अब हाजू दुआर दुआर घूमती रहती है।"

इन बातो को सुन कर उस पर मुझे दया आने लगी। जब भी द्वार पर वह आती, चावल या दाल, एक दो पैसे हम दे देते। दो तीन बार उसने हमारे यहा खाना भी खाया।

प्राय. एक महीना बीता होगा। एक दिन हमारे घर के पास चीख चीख कर रुलाई का शब्द सुनकर बाहर गया तो देखा कि हाजू रोती हुई मेरे ही घर की ओर आ रही है। क्या मामला है? सुनने में आया कि मधु चक्रवर्ती ने उसका कुछ भी नहीं छोडा है। उसके पास एक लोटा था, वह भी मधु ने छीन कर रख लिया है। मधु के घर भीख मागने वह गई थी, इसी अपराध के बदले।

गुस्सा आया। मैं गाव का प्रमुख व्यक्ति जो ठहरा। पल्ली मगल समिति का सेक्रेटरी। उसी क्षण मधु को बुलवा भेजा। मधु सिर पर एक लाल गमछा बाधे उसी घड़ी आ धमका। मैंने पूछा—"मधु, तुमने इसे मारा है?"

"जी हा, भाई जी। एक तमाचा मारा जरूर। गुस्सा सम्हाल न पाने से। वह पूरी चोर है। सुनिए तो। वह गई थी हमारे घर भीख मागने। सहन-पट के मिच के पेड़ो में से कच्ची पक्की करीब पाव भर मिर्चें उसने तोड ली। और एक दिन भीख मागने आई तो बाहर के आगन के पेड से कच्चे पपीते ही तोडने लगी थी। कुछ कहा नही था। किन्तु आज गुस्सा सम्हाल न सका, उसी से जमा दिया एक झापड।"

"नही, यह बहुत अन्याय हुआ है। स्त्री पर हाथ उठाना--यह सब क्या है? छि जाओ, जो कुछ उससे लेकर रखा हो, उसे लौटा दो।"

हाजू से भी मैने कह दिया कि वह मधु के घर भीख मागने न जाए।

इसी समय अकाल शुरू हुआ था। धान चावल बाजार में मिलता नही था। भिखारियो को मुष्टि भिक्षा देना भी बन्द हो गया। एक दिन देखा, हाजू लडके को गोद में लेकर अहीर टोली में भीख मागती घूम रही है। मुझे देखते ही निर्बाध सी बोली--"चाचाजी!" मानो गुरुत्वपूर्ण कोई सवाद देने के लिए बहुत देर से मुझे ही ढूढ रही होगी।

"आज आपके यहा भी जाऊगी।"

"बहुत अच्छी बात है। हमारे यहा प्रसाद मिलेगा--समझी।"

हाजू खुश थी। खाने को मिले तो वह बहुत खुश नजर आती।

कटहल के वृक्ष के नीचे चबूतरे पर जब वह खाना खाने बैठी तो दो व्यक्तियो के लायक चावल उसके सामने परोसा गया। केवल भोज्य वस्तु उदरसात करने में किस प्रकार आनन्द हो सकता है यह जानने के लिए। उस दिन हाजू की भोजन-मुद्रा देखने योग्य थी।

एक दिन बैरागी मुहाल के हरिदास बैरागी से पूछा--"तुम्हारे मुहल्ले की हाजू ससुराल क्यो नही जाती?"

"पति उसे नही लेता है।"

"क्यो?"

"बहुत सी बातें हैं। वह बहुत पेटू भी है। चोरी से रसोई से खाती है। दूध पर मलाई जम नहीं पाती। सब चोरी से खा जाती है। उसी से उसे भगा दिया है ससुराल वालो ने।"

"बस, इसी दोष से? और कुछ नही?"

"इतना ही सुना था। वे अच्छे लोग नहीं है। होते तो घर की बहू को इस तरह भगा देते?"

कुछ दिनो तक हाजू को देखा ही नही। एक दिन उसके मुहल्ले की बैरागी बहू ने कहा--"सुना है?"

"क्या?"

"वही हमारे मुहल्ले की हाजू ने सदर में जाकर नाम लिखाया है।"

मै दुख अनुभव करने लगा। नाम लिखाने का अर्थ हुआ वेश्या वृत्ति ग्रहण कर लेना। हाजू अन्त में पतिता वृत्ति अपनाने को बाध्य हो गई। बहुत आश्चर्यजनक घटना तो नही है, किन्तु दुख इस बात का था कि वह अपने गाव की लडकी है।

यही पर इस घटना का अन्त होना चाहिए था क्योकि गाव में मै सर्वदा नही रहता। वहा रहू तब भी तो सारी बातें मेरे कानो तक नहीं पहुचती।

सन पचास का अकाल चला गया। सडक के किनारोपर अब भी दो एक नरककाल दिखाई पड जाते है। त्रिपुरा जिले से आए हतभाग्यो के दल पृथ्वी के वक्ष पर अपने चिन्ह छोड गए हैं। इस जिले में मन्वन्तर की मूर्ति तीव्र नहीं थी, किन्तु जिस अचल में थी, वहा से नि स्व नर-नारी यहा आए थे और फिर लौटे नहीं।

पूस का महीना। कड़ाके की सर्दी। महकमा के सदर मे एक पाठागार के द्वारोद्घाटन उत्सव के उपलक्ष से गया था। लौटते समय एक गली के रास्ते से होता हुआ बाजार के बीचो-बीच पहुचने के उद्देश्य से मै गली पार ही कर रहा था कि किसी ने पुकारा--

"चाचाजी!"

"कौन है?"

"यहा! मै हू!"

अस्पष्ट अन्धकार के गलिपथ को गौर से देखा। एक झोपडी के सामने रास्ते के किनारे रगीन साडी पहने एक नारी मूर्त्ति खडी मिली। साडी का रग अन्धकार से मिला हुआ था--मैने केवल उसके मुख का धुधला-सा आभास देखा। निकट आकर मैने पूछा--"कौन?"

"वाह-रे-पहचाना भी नही? मै हू हाजू।"

हाजू नाम से कुछ याद नही आया। मैने पूछा--"कौन हाजू?"

वह हसकर बोली--"आपके गाव की। वाह भूल गए! पिताजी थे राम चरण बैरागी! मै तो इस शहर में नटी बन कर रहती हू।"

जिस स्वर से उसने अन्तिम शब्दो का उच्चारण किया, मानो वह जीवन की परम सार्थकता लाभ कर चुकी हो और जिसके चलते वह गर्व अनुभव करती हो। अर्थात इतने बडे शहर में नटी बनने का सौभाग्य क्या कोई साधारण बात है। गाव के लोग देख कर समझ लें, उसका कृतित्व।

मैने कुछ कहा ही नही था कि उसने कहा--"आइए न, कृपा करके घर में।"

"ना, अभी नहीं हो सकेगा। समय नहीं है।"

"क्यो--क्या कीजिएगा?"

"घर जाऊगा!"

निकटता जताती हुई वह बोली--"वाह, आना ही पडेगा। चरणरज अवश्य देनी होगी। आइए।"

कुछ सोच कर उसके साथ मकान के अन्दर घुस गया। नीची छत, पुआल से ढकी। एक ओर उसकी बैठक। एक नीचे तख्त पर साफ सुथरी चादर बिछी हुई थी। दीवाल पर विलायती सिगरेट के विज्ञापन के चित्र टगे थे। मेम साहब सिगरेट पी रही हैं। चारो ओर नया घर बसाने का आभास वर्तमान था।

वह बोली--"यह देखिए मेरा घर।"

"वाह, अच्छा घर है। कितना किराया देती हो?"

"साढे सात रुपए।"

एक लोटे में पानी लेकर हाजू आगे बढ आई। बोली--"पैर धो लीजिए।"

"क्यो? पैर धोने का प्रयोजन नही दिखता। अभी मै चला जाऊगा।"

"थोडा जलपान कराए बिना जाने नही दूगी चाचाजी।"

पतिता के घर में जलपान करने की प्रवृत्ति भी होती है भला? समस्त शरीर घिनघिना उठा। मैने कहा--"नही मै कुछ खाऊगा नही।"

"यह सब मै नही सुनती! बैठें आप।"

वह उठकर एक चीनी का नया प्याला लेकर आई। बोली--"नया है। आपको चाय बना कर पिलाऊगी। चाय बनाना सीख लिया है। सामान्य एक प्याला।"

उसकी मनस्तुष्टि के लिए मैने कहा--"वाह, बहुत अच्छा है।"

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

नई मंजिल : नई राहें

रणजीत

बोधिवृक्ष की छाया में हम भी बैठे हैं
हमने भी सोचा है, मनन किया है
फिर पाया आलोक ज्ञान का
अपने दीप स्वयं बन करके
मुक्ति-मार्ग हमने भी ढूढा
जगती के सुख-दुख के कारण
और निवारण हम भी समझे
बहु जनहित के लिए संघ की शरण ग्रहण की
सुना रहे हैं जन-जन को संदेश सत्य का
घूम घूम कर
पशु-बलि का विरोध हम भी करते हैं
और सभी के लिए मुक्ति-पथ हमने भी तो
खोल दिया है
फिर भी यदि अन्वेषण के परिणाम हमारे
गौतम से कुछ विलग रहे हैं
तो वह बस इसलिए कि
गौतम ने केवल
एक बार जीवन देखा था
---आख खोलकर---
जरा-मृत्यु के एक रूप में
इसीलिए वे
पुनर्जन्म औ' पुनर्मरण के चक्कर को ही
दुख का मूल समझ बैठे थे
किन्तु आज हम जान गए हैं
पुनर्जन्म के दुख तो केवल कल्पित दुख है
अनुमानित हैं
कर्मों के फल से बचने की पूर्ण समस्या
और हमारे आगे
अच्छी तरह जिन्दगी को जी सकने के सच्चे मसले है
अतियो से बचकर खा पी सकने की
उलझी हुई समस्याए हैं
जूझ रहे हैं जिन्हें आज हम सुलझाने में ।
हमने भी वश किया इंगला औ' पिगला को
प्राणो का संयम हमने भी सीखा
---सास रोककर हम भी करते रहे प्रतीक्षा---
युग युग से सोई जीवन को मूल शक्ति को
साध---
जगा कर किया ऊर्ध्व मुख
  ० वैयक्तिक कुडल से मुक्ति दिला कर
  उस सरवर के तीर ले जाने की कोशिश की

  प्रतिपल जहा प्यार के अमृत की वर्षा होती
फिर समझे
अपना यह नाडी मडल तो बहुत सूक्ष्म है
---बहुत तुच्छ है---,
अपनी सासो के नियमन से केवल
जगती के दुख दर्द नही कम हो सकते हैं
इसीलिए तो
अपने से बाहर के जग की नाडी आज टटोल रहे हैं
आत्म दमन तो युग युग से करते आए हैं
  भीतर के रिपुओ से लड लड कर
  बस शक्ति गवाई
किन्तु बाहरी रिपुओ की भी
---सच्चे रिपु जो---
ताकत
आज भुजाओ पर हम तोल रहे हैं
समझ रहे हैं
ऐन्द्रिक क्रिया -कलापो के निग्रह से
इनका दमन नहीं हो सकता
बाह्य परिस्थिति के प्रभाव का जाल
बहुत ही जटिल बिछा है
प्राणो के संयम से केवल
इसका शमन नही हो सकता
जिसकी उलझी गाठो को हम
अब विवेक की अगुलियो से खोल रहे हैं
डोल रहे हैं
मेहनत का तप
और स्वेद की भस्म रचाकर
नगर-नगर में, गाव-गाव में
किन्तु ब्रह्म का नही
साम्य का अलख जगाने
क्योकि आज हर साधक के सम्मुख
शून्य गगन से धरा-सत्य पर आने के अतिरिक्त
नही पथ कोई
टूटी बिखरी मानवता का योग छोडकर
कोई सम्यक योग नही है ।
हम भी झूम झूम कर गाते
मिलो कारखानो खेतो में
गीत प्रीत के
कस-ध्वस के : कान्ह-जीत के
वृन्दावन की कुज गलिन में जैसे सूरा झूम रहा हो

सख्य भाव की भक्ति हमारी भी है
माया का जो जाल
हमारे प्रिय से हमें अलग रखे था
गृह-सुख छोड़ा
किन्तु हमारा कान्ह
सूर के सखा श्याम से अगर भिन्न है
तो वह बस इसलिए कि
सूर ने केवल एक श्याम को पहिचाना था

(अनासक्त था वह भी शायद सखा सूर का
द्वार खड़ा हो सूर टेरता रहा उमर भर
अपनी वफा और उसके प्रण
याद दिलाता रहा, मगर वह
एक बार भी
पत्थर की समाधि से उठकर
हाथ भक्त का थाम न पाया)
और हमारी आखो आगे
लाख करोड़ो कान्ह खड़े है–
जीवित मानव !

विपत्ति—(पृष्ठ ३२ का शेषांश)

वह उत्साहित होकर घर की विभिन्न वस्तुए दिखाने लगी । आइना, लोटा, डब्बा आदि । यह कैसा है ?—वह कैसा है ? ये सब उसने खरीदा है । उसकी खुशी और आनन्द को देख तुच्छ वस्तुओ की भी प्रशसा करनी ही पड़ी ।

जिसने कभी भोग नही किया है, उससे त्याग करने के लिए कहनेवाला परम हितैषी हो सकता है, किंतु ज्ञानी नही । कल वह भिखारिन थी, आज इस पथ पर आने से उसकी अन्न-वस्त्र समस्या मिट गई है । कल वह दूसरो के घर मागने गई, तो मार खा कर लौटी है । आज वह अपने घर में बैठ अपने गाव के लोगो को चाय पिला रही है, अपने पैसे से खरीदे प्याले में । उसके जीवन की यह सफलता उसकी आखो में तुच्छ कर, छोटा कर निन्दा करने की भाषा मुझे नही मिली ।

सकल्प अडिग नही रहा । हाजू चाय बना लाई । एक साफ सुथरी तश्तरी में दो मिठाइया कितने आग्रह से उसने सामने रखी ।

सचमुच ही मेरा शरीर घिनघिना उठा था । आज तक ऐसी जगह बैठ कर कभी कुछ खाया पिया नही । किन्तु हाजू के सरल आग्रह भरे मुख की ओर दे मैने तश्तरी में कुछ भी छोड़ा नही । हाजू बहुत खुश थी, यह उसके मुख के भाव से प्रतीत हो रहा था ।

बोली—"कैसी चाय बनी है ?"

चाय तो अच्छी न थी, न स्वाद, न गन्ध ! फिर भी कहा—"कहा की चाय है ?"

"यहा के बाजार की ।"

"तू भी चाय पीती है–क्या ?"

"हा ! दोनो टाइम चाय न पीने से सुबह कोई काम नही कर पाती ।"

मुझे हसी आ गई । यह वही हाजू है । एक छवि मानो आखों के सामने उभर आई । रायपरिवार के घर के बाहर बैठी तरबूज की फाक लेकर किस क्षिप्रता से वह खा रही थी । वही हाजू आज चाय पिए बिना कोई काम नहीं कर सकती । मैने कहा—"आज तो जाने दे । रात हो गई है । बहुत दूर जाना है ।"

हाजू मुझे इतनी जल्दी जाने नहीं देना चाहती थी । गाव के लोगों के बारे में पूछने लगी । बोली—"एक बात है । मा के लिए पाच रुपए दू तो आप ले जाएगे । छिपा कर देने होगे । मुहल्ले के लोग जान न जाए ? मा बहुत कष्ट में है । हर महीने कुछ न कुछ भेज देती हू । पिछले महीने एक साडी भेजी थी ।"

"किसके हाथ भेजी थी ?"

"विनोद ग्वाला आया था—उसी के हाथ ।"

"लडका कहा है ?"

"मा के पास । सोचती हू उसे बुला लू । वहा खाने को नही मिलता होगा । यहा कोई अभाव नही है । समोसे, कचोडिया, आलू की तरकारी नुक्कड वाली दुकान में इतनी अच्छी मिलती है—क्या कहू । वे बडे बडे आलू, मसालेदार—ले आऊ आपके लिए, चाचाजी ?"

उसकी सरलता देख हसी आती थी । मैने कहा—"नहीं, अब मै जाता हू । रुपए मै नही ले जाऊगा । तुम मनीआर्डर से भेज देना । दूसरो का क्या ठिकाना । विनोद ने तुम्हारी मा को रुपए दिए है इसका भी क्या ठिकाना ।"

हाजू के मन में यह सन्देह नहीं हुआ था । बोली–"ठीक कहा है चाचाजी ! रुपए तो इसके उसके हाथ भेज देती हू— । मा को मिलते है या नही, यह कौन जाने ?"

"अब तक कितने रुपए भेजे है ?"

"बीस पच्चीस होगे । हिसाब क्या जानू ? मा को कष्ट है—मुझे देने में अच्छा लगता है ।"

"किसके हाथ भेजती हे ?"

हाजू सलज्ज हसी हस कर चुप रह गई । समझा, हमारे गाव के लोग आते जाते है ।

"अच्छा दो, पाच रुपए ।"

"फिर आइएगा चाचाजी ! परदेश में रहती हू—कभी कभी देख-सुन जाइएगा ।"

गाव लौटकर हाजू की मा से मिलकर पाच रुपए उसके हाथ में मैने दिए । पूछा—"और किसी ने रुपए दिए है ?"

हाजू की मा ने आश्चर्यचकित हो कहा—"नही तो ! कौन देगा रुपया ।"

विनोद घोष का नाम मैं बता सकता था । किन्तु उससे बात लोगो में फैल जाती । विनोद सोचेगा कि मेरा भी वहा आना-जाना जारी है और हाजू के प्रेमियों के दल में मै भी मिल गया हू । क्या पडी है मुझे ?

अनुवादक—गोविन्द लाल चटर्जी

उत्तरप्रदेश में बिजली का विकास

लल्लनप्रसाद व्यास

उत्तर प्रदेश मे सर्वप्रथम बिजलीघर सन् १६०५-६ मे कानपुर मे स्थापित हुआ। यह बिजलीघर वाष्प-चालित था। १६०६ मे मसूरी मे दूसरे बिजलीघर की स्थापना की गइ, जहा पानी से बिजली बनाइ जाती थी। इन बिजलीघरो की उत्पादन क्षमता क्रमश ६८,५०० किलोवाट तथा ४,५०० किलोवाट थी। इसके कुछ वर्ष बाद ही प्रथम विश्व महायुद्ध छिड गया जिसके कारण बिजली के विकास मे कुछ बाधा पहुची क्योंकि बिजली के यन्त्रादि विदेशो से ही मगाने पडते थे। लेकिन इस बाधा के बावजूद बिजली का विकास पूर्णत न रुक सका और १६१५ में देहरादून में तथा १६१६ में लखनऊ व इलाहाबाद में बिजलीघर स्थापित हो गए। सन् १६३० तक आगरा, मथुरा, बरेली, झासी, शाहजहापुर, नैनीताल, बनारस, गोरखपुर और पडरौना में बिजलीघर बन चुके थे।

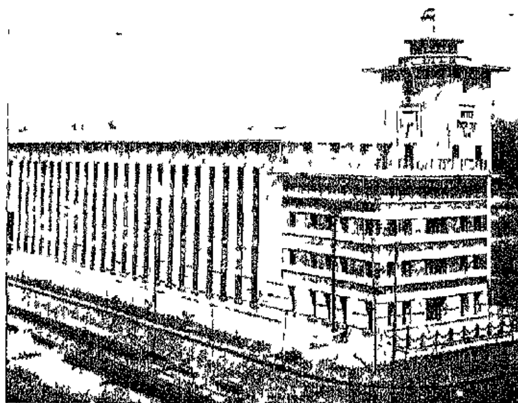
सन् १६२८ में पश्चिमी जिलो में बिजली-प्रसार के लिए गगा नहर जल-विद्युत योजना के नाम से एक व्यापक योजना शुरू की गई जिसके अन्तर्गत हरिद्वार और सुमेरा के बीच ७ जल-प्रपात बनाकर बिजली पैदा करना शुरू किया गया। दो वर्षों में ही भोला, पालरा और बहादुराबाद में बिजलीघर स्थापित हो गए, जिनकी उत्पादन क्षमता कुल ७,७०० किलोवाट थी। इसके बाद निकटवर्ती ४ और बिजलीघर चालू हो गए, जिनकी उत्पादन क्षमता कुल ११,२०० किलोवाट थी। हरदुआगज और चदौसी में भी २ बिजलीघर बन गए जो वाष्प-चालित थे और जिनकी उत्पादन क्षमता क्रमश १० हजार और ६ हजार किलोवाट थी। यह सम्पूर्ण व्यवस्था गगा-ग्रिड के नाम से विख्यात है।

सन् १६३६-४० तक लायसेंस प्राप्त बिजली कम्पनियो ने बहराइच, नानपारा, गोडा, बलरामपुर, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, आजमगढ, हरदोई, सीतापुर, पीलीभीत और फर्रुखाबाद में बिजली पहुचा दी थी। द्वितीय महायुद्ध में गत महायुद्ध की अपेक्षा बिजली के विकास में और अधिक बाधा उपस्थित हुई और विकास एक प्रकार से रुक ही गया। अब तक सरकारी और निजी बिजलीघरो की कुल उत्पादन क्षमता १,५७,३६२ किलोवाट तक पहुच चुकी थी।

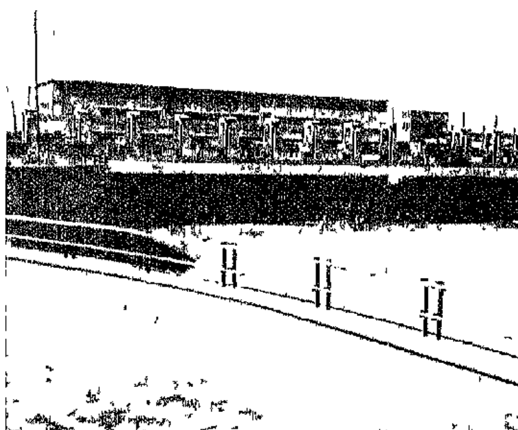
बिजली का वितरण

राज्य में बिजली का वितरण क्षेत्रीय आधार पर किया गया है। उत्तरी क्षेत्र को बिजली गगा-ग्रिड से प्राप्त होती है, जिसमें १८ बिजलीघर शामिल है तथा उनकी उत्पादन-क्षमता ८४ हजार किलोवाट है। इस क्षेत्र में मथुरा, अलीगढ, बुलन्दशहर, मेरठ, आगरा, बिजनौर, रामपुर, मुरादाबाद, इटावा, फर्रुखाबाद, बदायू, मैनपुरी, एटा, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून और गढवाल जिले शामिल है।

बिजली की दूसरी बडी व्यवस्था है शारदाग्रिड, जिसका बिजलीघर खटीमा में है तथा उसकी उत्पादन क्षमता ४१,४०० किलोवाट है। इससे नैनीताल, अल्मोडा, बरेली, शाहजहापुर, पीलीभीत, लखीमपुर खीरी,

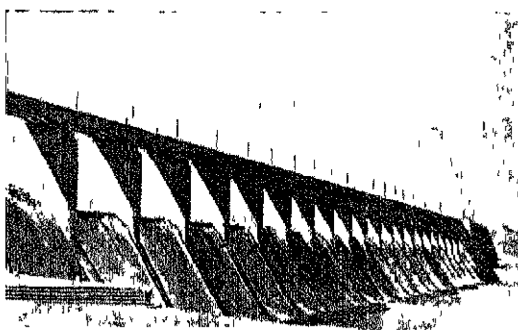


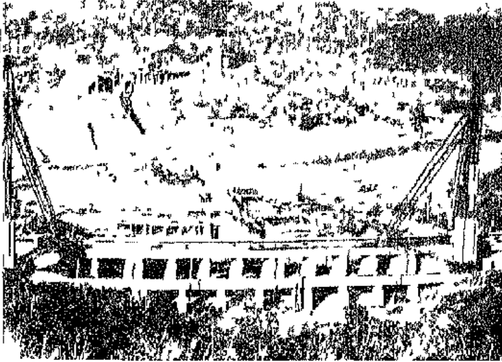
शारदा विद्युत केन्द्र, खटीमा (नैनीताल)



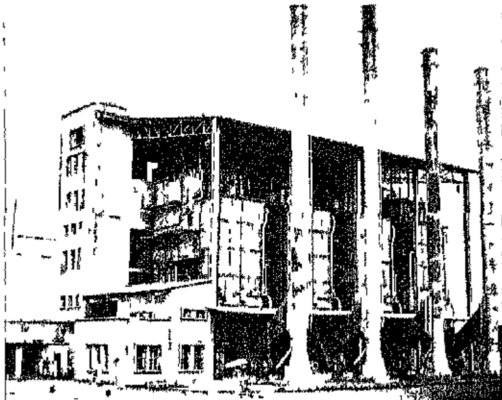
पथरी (जि० सहारनपुर) का बिजलीघर

एक विद्युत केन्द्र



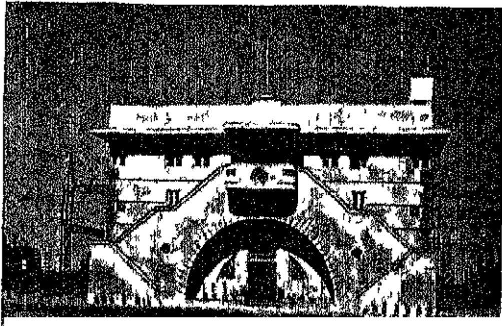


गोरखपुर का बिजलीघर जो भाप से सचालित है



बरेली जिले का एक बिजलीघर

एक अन्य बिजलीघर



हरदोई, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव और बाराबकी के जिले लाभान्वित होते हैं।

पूर्वी क्षेत्र बिजली-योजना के नाम से तीसरी व्यवस्था है, जिसके अ तर्गत ३ बिजलीघर हैं—गोरखपुर, मऊ, और सोहावल। इनसे गोरखपुर देवरिया, बस्ती, आजमगढ़, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, फैजाबाद, सुल्तानपुर और रायबरेली जिले बिजली प्राप्त करते हैं।

योजनाबद्ध प्रगति

प्रथम पचवर्षीय आयोजना के प्रारम्भ के साथ-साथ १९५० से बिजली विभाग, सिचाई विभाग की शाखा के रूप में न रह कर पृथक विभाग बन गया। उस समय विभाग के पास कुल ८७,३४९ किलोवाट क्षमता वाले ही बिजलीघर थे, जिनके द्वारा केवल १४ जिलो को ही बिजली दी जाती थी। किन्तु उसके बाद प्रदेश के बढते हुए औद्योगीकरण तथा कृषि उत्पादन की वृद्धि के उद्देश्य से सिचाई हेतु बनाये गये नल-कूपो को बिजली प्रदान करने के लिए बिजली की अनेक नई योजनायें शुरू की गई तथा वर्तमान बिजलीघरो की उत्पादन क्षमता बढाई गई। योजना के अन्तर्गत राज्य के अबतक उपेक्षित मध्य तथा पूर्वी जिलो की ओर विशेष ध्यान दिया गया। अतएव विभिन्न उत्पादन क्षमता वाले निम्नलिखित बिजलीघर बनाए गए।

सन् १९५१ में मोहम्मदपुर बिजलीघर (९३०० किलोवाट), १९५६ में शारदा बिजलीघर (४१,४०० किलोवाट) और पथरी बिजलीघर (२०,४००), १९५७ मे सोहावल बिजलीघर (१५,०००), मऊ बिजलीघर (१५,०००), गोरखपुर बिजलीघर (१५,०००) और मैनपुरी बिजलीघर (१०,००० किलोवाट)।

थोडी अवधि में बनाए गए नलकूपो को बिजली प्रदान करने के लिए बहराइच, गोरखपुर, देवरिया, मऊ (२ बिजलीघर—डीजल और वाष्पचालित), सोहावल और भदोही में ७ अतरिम बिजलीघर बनाए गए, जिनकी क्षमता १४,३६१ किलोवाट है।

प्रथम पचवर्षीय योजना काल मे १७ बिजलीघर खोले गए जिनके द्वारा उत्पादन क्षमता में ९२,६८२ किलोवाट की वृद्धि हुई। करीब साढ़े-चार हजार मील लम्बी विद्युत वाहक लाइनें फैलाई गई। ४० जिलो को बिजली की सुविधाए दी गई।

द्वितीय आयोजना

पूर्व अनुमान के अनुसार द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत राज्य में बिजली का व्यापक प्रसार करने की योजना थी। किन्तु विदेशी विनिमय सकट के कारण आयोजना के लिये प्रस्तावित ६ विद्युत योजनाओ को केन्द्र ने अस्वीकृत कर दिया। राज्य की सबसे बड़ी योजना रिहद बाध की भी यही गति होने वाली थी किन्तु राज्य सरकार द्वारा पर्याप्त प्रयत्नों के फलस्वरूप वह अस्वीकृत न की जा सकी। रिहद बिजली योजना (मिर्जापुर जिले में) पूर्ण हो जाने पर समीपवर्ती क्षेत्रो में स्थापित बड़े उद्योग, जैसे सीमेंट, अल्युमीनियम, रासायनिक खाद, कागज, मशीन-निर्माण आदि तो इससे लाभान्वित होंगे ही, साथ ही मिर्जापुर, बनारस, आजमगढ़, बलिया, गाजीपुर, जौनपुर, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, फैजाबाद, बहराइच, गोडा, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, बादा, हमीरपुर, जालौन आदि जिले भी यहा से सस्ती बिजली प्राप्त कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश राज्य के कुछ भागो को भी बिजली प्राप्त हो सकेगी तथा पूर्वी रेलवे और उत्तर रेलवे के विद्युतीकरण के लिए भी यह बिजली प्राप्त हो

(शेष पृष्ठ ४५ पर)



दीवान-ए-गालिब तथा शब्दावली (दो जिल्दो में)—सकलनकर्त्ता सरदार जाफरी, प्रकाशक हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट, ३-ना० ताज बिल्डिग, बम्बई-४, पृष्ठ सख्या (गाजकल से भी डेढ गुना आकार के) ४७२ तथा ८०, मूल्य २५) तथा ५) रु० कपडे की जिल्द सहित।

हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट ने उर्दू और हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्य को दोनो लिपियो में एक साथ निकालने का निश्चय किया है। यह अत्यन्त नयनाभिराम ग्रन्थ उसी प्रयत्न का पहला पुष्प है। १८×१२ साइज में खूब बढिया कागज पर विषम-सख्या पृष्ठो पर उर्दू लिपि मे तथा सम-सख्या पृष्ठो पर नागरी लिपि में खूब बडे टाइप (नागरी टाइप १६ प्वाइट है) में बहुत ही सुन्दर रूप में यह ग्रन्थ छापा गया है। इस माला के प्रथम पुष्प के रूप मे दीवान-ए गालिब का चुनाव निस्सन्देह समीचीन और अत्यन्त सराहनीय है।

महाकवि गालिब हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ कवियो में हुए है। उनके कितने ही पद अमर है। आज से ३० वर्ष पूव, जब मेरा विद्यार्थी जीवन भी समाप्त नही हुआ था, महाकवि गालिब का यह शेर सुन कर मै झूम उठा था :

नग्म हा-ए-गम को भी, अय दिल गनीमत जानिये
बेसदा हो जाएगा, यह साज-ए-हस्ती, एक दिन !

उसके कितने ही वर्षों बाद काश्मीर में चन्दनवाडी के बरफ के पुल की साया में मेरे एक मित्र ने गालिब का यह शेर मुझे सुनाया था

सब कहा, कुछ लाल-ओ-गुल में नुमाया हो गई
खाक में क्या सूरतें होगी, कि पिन्हा हो गई !

यह शेर कितने ही दिनो तक मेरे दिमाग में जैसे गूजता रहा था। लाहौर वापस लौट कर मैने गालिब का एक दीवान खरीदा, जिसमें मूल उर्दू के शेरो के साथ अग्रेजी में उसके अर्थ दिए गए थे। मै उर्दू लिपि अच्छी तरह नही जानता, इससे अपने एक मित्र की सहायता से मैंने स्वय दीवान-ए-गालिब का बहुत सा भाग नागरी लिपि में पुस्तक ही पर लिख लिया। मेरी वह पुस्तक भी मेरे पूरे पुस्तकालय के साथ लाहौर ही में छूट गई थी। इससे नागरी लिपि में इतने सुन्दर रूप में छपा यह दीवान-ए-गालिब देख कर मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई है।

मेरा ख्याल है कि हिन्दी में भी गालिब का परिचय देने की आवश्यकता नही है। उनके कितने ही शेर और कितनी ही गजलें हिन्दी क्षेत्र के एक भाग में वैसी तरह लोकप्रिय हैं, जिस तरह तुलसी, सूर और मीरा के दोहे, चौपाइया, पद और गीत।

न गुल-ए-नगम हू, न पर्दं-ए साज,
मै हू अपनी शिकस्त की आवाज !

महाकवि गालिब की यह आवाज वास्तव में मानव को शिकस्त की अनुभूति के बोझ से बचाने वाली आवाज है।

गालिब के चुने हुए शेरो के उद्धरण यहा देने के लोभ का सवरण करते हुए मै यहा एक ही बात कहना चाहता हू, जो बात यह दीवान पढते हुए मुझे कितनी ही बार अनुभव हुई है। कितनी ही बार गालिब की एक ही गजल के कुछ शेर बहुत ऊचे हैं, कुछ कम ऊचे, तो कुछ अत्यन्त साधारण। उदाहरण के लिए 'एक दिन' वाली गजल को लिया जा सकता है, जिसकी क्रम सख्या इस सग्रह में ९१ है, इस गजल के ५ शेर इस प्रकार है

हमसे खुल जाओ, बवक्त ए-मै परस्ती, एक दिन
वर्ना हम छेडेंगे, रखकर 'उज्र ए-मस्ती एक दिन। (१)
गर्र-ए-औज-ए-बिना-ए-'आलम-ए-इम्का न हो
इस बलन्दी के नसीबो में है पस्ती, एक दिन। (२)
कर्ज की पीते थे मै, लेकिन समझते थे, कि हा
रग लाएगी हमारी फाक मस्ती, एक दिन। (३)
नग्म हा-ए-गम को भी, अय दिल गनीमत जानिये
बेसदा हो जायगा, यह साज-ए-हस्ती, एक दिन। (४)
धौल धप्पा उस सरापा नाज का शेव नही
हम ही कर बैठे थे, गालिब, पेश दस्ती एक दिन। (५)
(पृष्ठ १९४ तथा १९६)

अब इन ५ शेरो में से चौथा विश्व काव्य की अमर रचना है, दूसरा बहुत अच्छा है, तीसरा मजेदार है, पहला थोडा-बहुत गुदगुदा देता है

१ बवक्त-ए-मै परस्ती—शराब पीते वक्त।
उज्र-ए-मस्ती—मस्ती का बहाना।
२ गर्र-ए-औज-ए-बिना-ए-'आलम-ए-इम्का—(आलम-ए-इम्का सभावनाओ का ससार, अखिल विश्व) यह गर्व कि ससार अत्यन्त महान है।
बलन्दी—ऊचाई। पस्ती—नीचाई। जवाल—पतन।
३ फाक मस्ती—भूख में भी मस्त रहना।
४ नग्म हा-ए-गम—वेदना के गीत। बेसदा—निस्वर, स्वरहीन।
साज-ए-हस्ती—अस्तित्व का साज, प्राणवीणा।
५ सरापा नाज—सर से पाव तक गर्व, अभिमान की मूर्ति।
शेव—व्यवहार। पेशदस्ती—पहल करना, हाथ बढाना।

और पाचवा नितान्त साधारण है। गालिब शायद मुशायरो के ख्याल से भी लिखते थे, जहा यह जरूरी होता है कि सुनने वाले सुनने के साथ दाद दें। उक्त चौका देने वाली असमता शायद इसी कारण हो। मुशायरो के लिए लिखने से उर्दू शायरी मे जो रचना सम्बन्धी मजाक और निखार आ गया है, उसके अस्तित्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। दूसरा कारण शायद समस्या पूर्ति की भावना ह, जिसमें यह अन्तर स्वाभाविक रूप से आ जाता है।

इस दीवान के सकलनकर्ता श्री सरदार जाफरी स्वय एक सुलझे हुए साहित्यकार और श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होने ६,००० शब्दो की एक लम्बी और अत्यन्त उपयोगी भूमिका लिखी है। गालिब के व्यक्तित्व, दर्शन और काव्य को समझने में इस भूमिका से मूल्यवान सहायता मिलती है।

इसी भूमिका मे श्री सरदार जाफरी ने लिखा ह

"अब, जबकि हिन्दी हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा बन चुकी है और उसको देवनागरी लिपि द्वारा हिन्दुस्तान की विभिन्न भाषाओ की पूँजी को अपने दामन में समेटना ह, यह आवश्यक है कि लिपि के प्रश्नो पर साहित्यिक और वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाए और दूसरी भाषाओ की आवाजो को व्यक्त करने के लिए नई 'अलामतें और सकेत' अपनाए जाए। यह जीवित भाषाओ की विशेषता है और नागरी लिपि भी क, ख, ग, ज और फ के नीचे बिन्दी लगा कर अपने जीवित होने का सबूत दे चुकी है।

उर्दू साहित्य हिन्दी साहित्य से सबसे अधिक निकट है और दोनो की बोलचाल की भाषा और स्थान एक ही है। लेकिन फिर भी उर्दू में कुछ ऐसी विशेषताए है, जो हिन्दी से भिन्न है, जैसे 'अत्फ और इजाफत'।

'अत्फ' दो या दो अधिक शब्दो या वाक्यो को मिलाने का काम देता है। अत्फ के बहुत से अक्षर हैं, लेकिन यहा पर केवल उस वाव से बहस है जो 'और' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे "गुल और बुलबुल" की जगह गुल-ओ-बुलबुल।

इजाफत एक शब्द से दूसरे शब्द का सम्बन्ध प्रकट करती है। इजाफत की 'अलामत जेर से लिखी जाती है जो अक्षर के नीचे लगाया जाता है और उसके प्रयोग से गुल का रग 'रग-ए-गुल' और गालिब का दीवान 'दीवान ए-गालिब' हो जाता है।

नागरी में 'अत्फ और इजाफत के लिखने के जो तरीके प्रचलित है, वे दोषपूर्ण है। उनसे शब्दो का मूल रूप बिगड़ जाता है और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाने की आशका होती है। जैसे साधारणत 'गुल और बुलबुल' को लिखने के लिए 'गुलो बुलबुल' लिखा जाता है या गुल व बुलबुल। एक में गुल का रूप बिगड गया है और दूसरे में उच्चारण की अशुद्धि की सम्भावना है।

इस दीवान में 'अत्फ' के वाव के लिए -ओ- की अलामत अपनाई गई है और 'गुल-ओ बुलबुल' लिखा गया है।

इजाफत के लिए -ए- की 'अलामत अपनाई गई है। और 'दीवान-ए-गालिब' के बजाय, जिसका अर्थ पागल गालिब भी हो सकता है, 'दीवान-ए गालिब' लिखा गया है। इस तरह शब्द का मूल रूप बाकी रहता है और इजाफत का जेर ये में नहीं बदलता।

उर्दू के तीन अक्षरो के लिए भी नए चिह्नो से काम लिया गया है। एक 'झे' दूसरे 'ऐन' और तीसरे 'छोटी हे'।

जिस अक्षर को उर्दू में (झे) लिखते है, उसकी आवाज हिन्दी मे मोजूद नही है। यह ज और श के बीच की आवाज है। इसलिए श के नीचे बिन्दी लगा दी गई ह (श़)

'ऐन' की आवाज उर्दू म अलिफ म मिल गई ह, इसलिए नागरी लिपि में साधारणत दोनो अक्षरो को एक ही तरह लिखा जाता है। जिन शब्दो के आरम्भ मे 'अैन' आता है उन में कोई बाधा नही आती। जैसे 'आशिक' और 'औरत'। लेकिन जिन शब्दो के अन्त में या बीच मे 'अेन' आता ह वहा उसकी अलग आवाज का प्रकट करना आवश्यक हो जाता है। कभी कभी "अैन" अलिफ के साथ भी आता है। जैसे 'आदत या विदा'अ। इस जगह लिखावट में "अेन" को अलिफ से अलग करने की जरूरत पडती है। यही कारण है कि इस दीवान में अलिफ के लिए (अ) और 'अैन' के लिए (ए) की 'अलामत प्रयोग की गई है।

'अैन' दूसरे अक्षरो की तरह गतिवान भी आता है और गतिहीन भी। गतिवान 'अैन के लिखने में कोई कठिनाई नही आती और उसे हर जगह ('अ) लिखा गया है।

गतिहीन 'अैन', जो हमेशा शब्द के अन्त या बीच में आता है, के लिए यह तरीका अपनाया गया है कि शब्द के अन्त म पूरा 'अेन लिखा गया है। जैसे शम्'अ या विदा'अ। लेकिन जहा कही शब्द के बीच मे गतिहीन 'अैन आया है, वहा अ की 'अलामत निकाल दी गई है और केवल (') बाकी रखा गया है। जैसे बा'द या मा'नी या जो'फ, यदि इन शब्दो मे से जो गतिहीन 'अैन की अलामत है, निकाल दिया जाए तो कुछ शब्दो का रूप ऐसा बदलेगा कि उनका मतलब कुछ का कुछ हो जाएगा। बा'द बाद हो जाएगा, मा'नी हवा और मा'नी मानी हो जाएगा जो ईरान के एक प्राचीन चित्रकार का नाम ह।

'अैन पर खत्म होने वाले शब्दो पर जब इजाफत लग जाती है तो गतिहीन 'अेन फिर गतिवान हो जाता है, लेकिन चूंकि इजाफत के लिए दूसरा चिह्न प्रयोग में लाया गया है, इसलिए ऐसे शब्दो के अन्त में आने वाले 'अैन से भी (अ) की 'अलामत खारिज कर के केवल (') बाकी रखा गया है। उदाहरण के लिए (विदा'अ) को जब इजाफत के साथ लिखेंगे, तो वह (विदा'-ए-) हो जाएगा। यही तरीक 'अत्फ की सूरत में भी सही है। शम्'अ का शब्द इजाफत के साथ (शम'-ए-) और अत्फ के साथ (शम'-ओ-) हो जाएगा।

उर्दू में एक बडी 'हे' है और एक छोटी 'हे'। दोनो की आवाजें अलग-अलग है, लेकिन उर्दू में एक हो गई ह। इसलिए नागरी में इन दोनो के लिए (ह) काफी है। लेकिन उर्दू मे आजाने वाले कुछ विदेशी शब्दो के अन्त में जब छोटी हे आती है तो यह जबर की आवाज देती है, जो अलिफ की आवाज को छोटा कर देने से पैदा होगी। जैसे हफ्त, गुलदस्त, नगम वाद। इस 'हे' की आवाज को अलिफ से बदला जा सकता है। लेकिन ऐसा करने से कई स्थानो पर इजाफत मे कठिनाई पैदा हो जाएगी। मसलन यदि (नगमा) लिखा जाए तो इजाफत के बा'द उसका रूप (नगमा-ए-) होगा और उसका उच्चारण (नग़मए) के बजाए (नगमाए) हो जाएगा, यही कारण है कि इस हे के लिए विसर्ग ( ) का उपयोग किया गया है, जिसकी मूल आवाज सस्कृत में छोटी हे की आवाज है। इस दीवान में विसर्ग को हर जगह हे के बजाय अ पढ़ना चाहिए, जो उर्दू में अलिफ की नही बल्कि जबर की आवाज है। अब (नग़म-ए-) लिखा जाए तो (नग़मअे) पढ़ा जाएगा।

कोई लिपि पूर्ण नहीं है और इंसान के गले और मुख से निकलने वाली सब आवाजों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं है क्योंकि मानव मस्तिष्क की तरह मानव कंठ भी असीमित योग्यता का मालिक है। उर्दू के वे शब्द जिनका दूसरा अक्षर बड़ी हे हो और यह हे गतिहीन हो और पहले अक्षर पर जबर हो तो उसे जबर नहीं बोला जाता, बल्कि उसकी आवाज जबर और जेर के बीच में होती है। जैसे अहमद, महबूब, जहूर, वह्शत वगैरह। इनका उच्चारण करते समय पहले अक्षर को हमेशा अ और ए के बीच बोलना चाहिए। कभी कभी छोटी हे के शब्दों के साथ भी यही होता है। जैसे कह्र।

उर्दू की एक और विशेषता यह है कि शाइरी में कुछ शब्दों की याये मज्हूल (मोटी आवाज देनेवाली ये) को खारिज करके उसे जेर से बदल दिया जाता है। इस तरह आवाज छोटी हो जाती है। उदाहरण के लिए 'एक' और 'मेरे' से जब याये मज्हूल खारिज होती है तो 'ए' की आवाज छोटी हो जाती है। नागरी में इस आवाज को, जो वास्तव में जेर की खालिस आवाज है, व्यक्त करने का कोई तरीका नहीं। इसलिए मजबूरन ऐसे स्थानों पर इ की अलामत प्रयोग में लाई गई है। जैसे (इक) और (मिरे)। यही सूरत कहीं कहीं वाव के साथ भी पेश आती है, जहां उसकी पूरी आवाज कट कर पेश की आवाज में बदल जाती है। जैसे कोहसारको मजबूरन (कुह्सार) लिखा गया है।

मेरी राय यह है कि नागरी लिपि की मात्राओं में उर्दू के जेर और पेश को सम्मिलित कर लेना चाहिए। चूंकि जबर, जिसका रूप जेर जैसा ही होता है और अक्षर के ऊपर लगाया जाता है, नागरी अक्षरों में सम्मिलित होता है, इसलिए नागरी लिपि की मात्राओं में सम्मिलित करने की जरूरत नहीं। अलबत्ता किसी अक्षर से जबर की हरकत को खारिज करने के लिये उसके नीचे हलन्त लगा देना चाहिए। जैसे (शम्अ) के 'म' और (बह्र) के 'ह' में लगाया गया है।

इस तरह नागरी लिपि उर्दू की आवाजों को बड़ी हद तक व्यक्त करने में समर्थ हो जाएगी।" (पृष्ठ ४० से ८६ तक)

इस दीवान की नागरी छपाई में ये सब सुझाव व्यवहार में लाए गए हैं। मेरी राय से उक्त सुझाव इस योग्य हैं कि इनकी समुचित परीक्षा की जाए और इन्हें व्यवहार में लाकर देखा जाए। परन्तु दो सुझावों के सम्बन्ध में मुझे आपत्ति है। एक तो यह कि जबर के लिए विसर्ग का प्रयोग उच्चारण को बिगाड़ने का कारण बन सकता है। 'गुलदस्तः' की बनिस्बत 'गुलदस्ता' कहीं अधिक अच्छा रहेगा, इसी तरह 'नग़्मः' की जगह 'नग़मा'। इजाफत की दशा में उसमें से 'ा' कार निकाल कर उसे 'नग़म-ए' किया जा सकता है। यह कहीं अधिक अच्छा रहेगा। दूसरा यह कि मज्हूल को खारिज कर उसे 'जेर' से बदल देने पर छोटी 'इ' की मात्रा देना मेरी राय से कठिनाई उत्पन्न करेगा। 'मेरे' को 'मिरे' लिखने का सुझाव मेरी राय से उच्चारण को और भी अधिक उलझन भरा और अशुद्ध बनाने का कारण सिद्ध हो सकता है। छोटी आवाज के लिए कोई नया चिह्न निश्चित कर देने का सुझाव इससे कहीं अधिक अच्छा सिद्ध होता। मेरी राय से सिद्धान्त यह रहना चाहिए कि नागरी की मात्राओं का उच्चारण तो वही रहे, जो विद्यमान है। उसमें अन्य उच्चारण सम्मिलित करने का कार्य नए चिह्नों से लिया जाए और इन चिह्नों का चुनाव भारतीय भाषाओं के लिए वांछित सभी उच्चारणों को ध्यान में रख कर किया जाए। उर्दू के सभी उच्चारण इन चिह्नों में सम्मिलित किए जा सकते हैं, बल्कि कुछ चिह्न हम उर्दू से ले भी सकते हैं, जैसे बिन्दी ली गई है।

यह दीवान उर्दू और नागरी दोनों में छापा गया है। मूल दीवान उर्दू में है, सम्भवतः इसी कारण पृष्ठ संख्या दाहिने से बाईं ओर दी गई है। शायद हिन्दुस्तानी ट्रस्ट जब हिन्दी साहित्य की कोई रचना दोनों लिपियों में छापेगा, तो उसकी पृष्ठ संख्या बाएं से दाएं चलेगी। पर मेरा सुझाव है कि दोनों लिपियों में एक साथ छपने वाली उर्दू की मूल रचनाओं की पृष्ठ संख्या बाएं से दाहिनी ओर चलनी चाहिए और हिन्दी की मूल रचनाओं की पृष्ठ संख्या दाएं से बाएं। यह सुझाव इस कारण दिया जा रहा है कि इस दीवान के अधिकांश पाठक हिन्दी वाले होंगे, क्योंकि उर्दू में तो यह बहुत पहले से उपलब्ध है और दोनों लिपियों में छपने वाली हिन्दी रचनाओं के अधिकांश पाठक उर्दू वाले होंगे। यों भी यह एक दूसरे के प्रति सदाशयता दिखाने वाला होगा।

मेरी राय से शब्दावली को पृथक न छाप कर मूल पुस्तक के साथ ही छापना चाहिए था। अच्छा तो यह रहता कि नागरी अंश को जरा छोटे (१४ प्वाइण्ट ब्लैक) टाइप में देकर शब्दार्थ प्रत्येक पृष्ठ पर ही फुटनोट के रूप में दे दिए जाते। उससे पाठकों को बहुत सुविधा होती। यह प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। अगले प्रकाशनों की हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।

रैन अंधेरी—लेखक मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या ३५८, मूल्य ६) रु० सजिल्द।

लेखक के शब्दों में "भारत के राष्ट्रीय जीवन में १९२१ से लेकर १९४७ का इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।" इस युग के सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त एक उपन्यासमाला लिख रहे हैं। १९२१ के जन-आन्दोलन के सम्बन्ध में आज से लगभग दो वर्ष पूर्व 'नया सवेरा' नाम से उन्होंने एक उपन्यास लिखा था। 'रैन अंधेरी' उसी कड़ी का दूसरा उपन्यास है, जिसमें १९२२ से लेकर १९२९ तक का कार्यकाल रखा गया है। उपन्यास के कुछ प्रमुख पात्र वही हैं, जो 'नया सवेरा' में थे। इसी कारण जो पाठक 'नया सवेरा' पढ़े बिना इस उपन्यास को पढ़ना प्रारम्भ करेंगे, उन्हें प्रारम्भ के कुछ अध्याय उखड़े-उखड़े से प्रतीत होंगे। पर उसके बाद जब कुछ नए क्रान्तिकारी पात्र इस उपन्यास में आते हैं, तो कथानक में आकर्षण आ जाता है और १२वें अध्याय से, जब इस उपन्यास के प्रमुख पात्र क्रान्तिकारी कुणाल की परित्यक्ता पत्नी रुक्मिणी का आगमन होता है, तो इस रचना में जैसे प्राण संचर हो जाता है।

यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि रुक्मिणी इस उपन्यास की वास्तविक नायिका है, यद्यपि 'रैन अंधेरी' के सबसे महत्वपूर्ण पात्र कुणाल है और उसके बाद दूसरे महत्वपूर्ण पात्र डाक्टर आनन्दकुमार। मेरा ख्याल है कि रुक्मिणी-सा सजीव, रोमाण्टिक और प्रभावशाली पात्र श्री मन्मथनाथ गुप्त के अभी तक के सम्पूर्ण उपन्यासों में कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होगा। इस शक्तिशाली पात्र की रचना के लिए मैं लेखक को हृदय से बधाई देता हूं। 'रैन अंधेरी' के अन्य दोनों महत्वपूर्ण पात्र, कुणाल और आनन्दकुमार, भी यथेष्ट शक्तिशाली और सजीव हैं, पर रुक्मिणी एक ऐसी अविस्मरणीय कल्पना है, जो इस उपन्यास को कलात्मक रूप दे देती है। रुक्मिणी का विवाह बचपन में हो गया था। जब उसने होश सँभाली, तो पाया कि उसके पति सर्वस्व त्याग कर क्रान्तिकारी व्रत

की दीक्षा ले चुके हैं। रुक्मिणी मीरा की तरह दीवानी होकर उनको तलाश में घूमती फिरी। उसमें वह शक्ति आ गई कि कुणाल की गन्ध वह उसके चले जाने के बाद भी पूरी तरह पहचान लेने लगी। पर पति के कल्याण की कामना से वह उनसे दूर रहती रही। इस कारण कि उस का पीछा कर कहीं पोलीस उन्हें गिरफ्तार न कर ले। बरसों के बाद १९२९ में बनारस के एक बाग में पोलीस से सम्मुख युद्ध कर जब कुणाल ने वीरगति प्राप्त की, तब जाकर रुक्मिणी उन की देह का स्पर्श कर पाई। लेखक के शब्दों में "रुक्मिणी की शादी तो उसके बचपन में हो गई थी, पर गौना बरसों बाद आज हुआ था, जब उसके पति कुणाल की लाश सामने पड़ी थी। दोनों दिनों का फासला बहुत लम्बा था।"

रुक्मिणी का चरित्र लोकोत्तर प्रतीत होता है। जैसे कोई रहस्यमय शक्ति उसका परिचालन कर रही है। यह लोकोत्तरता किसी को वास्तविकता की न्यूनता भी प्रतीत हो सकती है, पर मेरी राय में वह 'रैन अंधेरी' की एक अत्यन्त मूल्यवान सम्प्राप्ति है।

चौराचौरी की दुघटना के बाद जब गांधी जी ने सत्याग्रह की योजना वापस ले ली थी, तो उसके बाद के वर्षों में भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन को बहुत बल प्राप्त हुआ था। कितने ही नौजवान निराश होकर इस मार्ग के अनुयाई बन गए थे। लेखक न केवल स्वयं क्रान्तिकारी रहे हैं, अपितु वह उसी युग में क्रान्तिवाद के अनुगामी बने थे। 'रैन अंधेरी' में इसी युग का वर्णन है और स्वभावतः इस में क्रान्ति आन्दोलन को बहुत प्रमुखता दी गई है। यह प्रत्येक लेखक का पूरा अधिकार है कि वह चाहे, जिस पहलू को महत्त्व दे। स्वयं क्रान्तिकारी रहने के नाते गुप्त जी ने इस रचना में क्रान्तिकारियों के कार्यों तथा उनकी विचार शैली का जो वर्णन किया है, वह न केवल बहुत ही सजीव, शक्तिशाली और वास्तविकतापूर्ण है, अपितु वह खूब मनोरंजक भी है।

दूसरी ओर इसी तथ्य के कारण 'रैन अंधेरी' में उक्त काल के चित्रण की दृष्टि से, अनुपात की कमी भी आ गई है। यदि लेखक ने भूमिका में यह दावा न किया होता कि १९२२ से १९२९ के जन जागरण के सम्बन्ध में उन्होंने यह उपन्यास लिखा है, तो अनुपात न्यूनता की यह शिकायत बेमाइना होती। पर उक्त काल के जन जागरण का चित्रण करते हुए १९२९ के कलकत्ता वाले सब दल सम्मेलन और उसकी प्रेरक शक्तियों का वर्णन करना आवश्यक होता, क्योंकि यह एक सचाई है कि उक्त सम्मेलन ने बाद की घटनाओं पर बहुत अधिक और स्पष्ट प्रभाव डाला। यहां तक कि साइमन कमीशन के बायकाट तथा लाला लाजपतराय पर लाठी प्रहार को भी अत्यन्त अल्प महत्ता इस रचना में दी गई है।

उपन्यास के कितने ही स्थल अत्यन्त मार्मिक तथा अर्थपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए रुक्मिणी, जो क्रान्तिकारी की पत्नी होते हुए भी स्वयं उस मत की नहीं है, अविनाश को अपनी बात पर हंसता हुआ पाकर कहती है—'मैं जानती हूं भाई कि तुम हंस रहे हो। पर मैंने अपने सामने जो लक्ष्य रखा है, वह सौ-पचास दुबही पिस्तौलों और दो चार सौ पटाखों से भारत स्वतन्त्र करने के लक्ष्य से कम हास्यास्पद है। अभी उन (कुणाल) में जोश है, कर्मशक्ति है, पर हमेशा ऐसा नहीं रहेगा। पर कभी उन्हें एक आश्रय की जरूरत होगी।" (पृष्ठ ८३)

फांसी की सजा प्राप्त हरकू डाकू फांसी से कुछ ही दिन पहले कहता है—"मरने में क्या धरा है, हमें तो इससे कोई डर नहीं लगता। रही यह बात कि कुछ तमन्नाएं पूरी नहीं हुईं, तो दो हजार साल भी जीते रहते तो भी यही हालत होती।" (पृष्ठ २५९)

क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रमुख नेता कुणाल अपने सहकारी से कहता है—"स्वतन्त्रता ध्येय के रूप में स्वीकृत हो जाते ही, कांग्रेस का रूप कुछ न कुछ बदलेगा और उस हद तक क्रान्तिकारी दल की जरूरत भी जाती रहेगी।"

" 'अभी आपने कहा कि प्रस्ताव पास करने से कुछ नहीं होता, अमल असली चीज है।' —अभिताभ बोले।"

"कुणाल ने कहा—'ठीक है, अमल भी आएगा। आपको याद होगा कि बंग-भंग के बाद जो लड़ाई हुई, उसने किस प्रकार क्रान्तिकारी रूप धारण किया, यहां तक कि पहले जो लक्ष्य था बंग-भंग रद्द कराना, वह तो छूट गया और आन्दोलन का ध्येय स्वतन्त्रता बन गया। ऐसे ही, दिन ब दिन कांग्रेस का रूप बदल रहा है और गांधी चाहें या न चाहें, कांग्रेस जब तक जनता की संस्था रहेगी, तब तक वह क्रान्ति की ओर बढ़ती रहेगी। नेता उसकी गति कम कर सकते हैं, पर उसे पूर्ण रूप से कुण्ठित नहीं कर सकते। देश अब भी स्वतन्त्र होगा, तो वह क्रान्तिकारी ढंग से होगा। मैं यह नहीं कहता कि क्रान्तिकारी दल ही उसे स्वतन्त्र करेगा।' " (पृष्ठ २९३)

रुक्मिणी अपने जीवन में केवल एक बार अपने क्रान्तिकारी पति कुणाल से मिली थी। इस भेंट का वर्णन इस प्रकार है—"रुक्मिणी को यह घटना इतनी अप्रत्याशित मालूम हुई कि थोड़ी देर तक तो वह अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं कर सकी। टूटा हुआ हिमपर्वत जैसे समतल की ओर दौड़ता है, उसी तरह वह दौड़ी और जगदीश उर्फ कुणाल के चरणों में लिपट गई। कुणाल फिर भी एक बुत की तरह अकड़े हुए खड़े रहे। रुक्मिणी आवेश में आकर जाने क्या-क्या कह गई, बोली, 'तुम महासागर हो और मैं एक ऐसी छोटी-सी नदी हूं जो किसी नदी में ही खतम हो जाती है, फिर भी मुझ में मिलन की व्याकुलता किसी महानदी से कम नहीं है। तुमने अपने सामने बहुत बड़े-बड़े लक्ष्य रखे हैं, पर मेरा तो छोटा-सा लक्ष्य है, वह है तुम्हारे चरणों में आश्रय पाना। अब तुम स्वयं आदेश देकर मुझे दूर भेज रहे हो, आगे मैं कैसे जीऊंगी, यह भी तो कुछ बता दो।'

"पर वह मूर्ति कुछ भी नहीं बोली। शायद और भी कड़ी पड़ गई। पता नहीं रुक्मिणी कितनी देर तक उनके चरणों में लिपटी रही, पर एक समय रुक्मिणी को पता लग गया कि अब उसे नहीं रुकना चाहिए। अपने आंसुओं से उन चरणों को सिक्त कर वह अलग हो गई, पर अलग होते समय यह क्या मालूम हुआ! ऐसा लगा जैसे उसके कंधे पर तप्त जल की दो बूंदें गिरी हों। वह मूर्ति तत्काल ही अन्तर्हित हो गई।" (पृ० १४२-१४३)

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

कला के लिए—लेखक मामा वरेरकर, अनुवादक रा० ना० कलकर, प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठसंख्या ८४, मूल्य १.२५) रु०।

मामा वरेरकर आधुनिक भारत के लोकप्रिय नाटककार हैं। उनका विशेष विषय है नाटक। अनेक विषयों पर, पौराणिक, ऐतिहासिक, मनोरंजक और सामाजिक नाटक उन्होंने लिखे हैं। उनकी कला मंजी हुई है और रंगमंच के उपयुक्त है। उनकी शैली ओजमय, वार्तालाप चुटीले और भाषा टकसाली है।

प्रस्तुत नाटक की कथा आज के कलाकार के विद्रोह की कथा है। उसमें पुराने मूल्य के प्रति विद्रोह है और है नये मूल्य की स्थापना का प्रयत्न।

लेकिन परम्परा के प्रेमी भला यह कैसे मान सकते हैं। इसलिए वे इस चित्रकार का अपमान करते हैं, उसके चित्र प्रदर्शन से बाहर फेंक देते हैं। लेकिन तभी ऐसा होता है कि वे ही चित्र किसी तरह पेरिस भेज दिये जाते हैं। वहा उनकी बहुत प्रशंसा होती है। बस, वे ही लोग जिन्होंने कलाकार का अपमान किया था, मालायें लेकर आते हैं। कलाकार यहा भी विद्रोह करता है और उनको अपने घर से निकाल देता है। उसके लिए ऐसे लोगों के जूते और हार दोनो बराबर हैं। वह कलाकार कला का परम उपासक है। उसकी यह उपासना खण्डित न हो इसलिए वह गृहस्थी भी नही बनना चाहता। एक कला और दूसरी गृहस्थी, दोनो की एक साथ उपासना नही की जा सकती।

नाटक की कथा यही है। इसी में नाटककार का सन्देश है। नाटक में इन दोनों का पूरी तरह निर्वाह हुआ है और कथा बिना किसी बाधा के नदी की तरह बहती चलती है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी दो बातें ऐसी हैं जिनसे रस में बाधा पहुचने की सम्भावना है। एक तो यह कि नाटक का फैलाव कुछ अधिक और दूसरी यह कि नाटक के अन्त का बहुत पहले ही पता चल जाता है। दूसरी बात महत्वपूर्ण न हो, लेकिन यह सत्य है कि मञ्च पर तात्विक बहस रस को खण्डित करती है। इसी कारण कथा की पकड भी कम हो जाती है। हो सकता है कि कुछ लोगो को स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धो को लेकर जो स्पष्ट वार्तालाप है वे भी अखरे, लेकिन यह तो मतभेद की बात है। हमें विश्वास है कि हिन्दी रंगमञ्च पर मामा के दूसरे नाटको की तरह इस नाटक का भी स्वागत किया जाएगा और हिन्दी नाटककारो के लिए यह प्रेरणा-स्तम्भ बनेगा।

अशोक चक्र—लेखक मदन मोहन आचार्य, प्रकाशक राजेश्वरी प्रकाशन, पोस्ट चोमू, जयपुर, पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य १ ५० रु०।

'अशोक चक्र' एक सम्पूर्ण नाटक है और जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इसकी कथा का सम्बन्ध सम्राट अशोक से है। इस कथानक को लेकर इतना कुछ लिखा जा चुका है कि उस पर विचार करने को कुछ नही रह जाता। लेकिन श्री आचार्य ने इस कथा को नया रूप देने का प्रयत्न किया है। उनका दावा है कि उन्होंने इस सम्बन्ध में दुर्लभ साहित्य का अध्ययन भी किया है। उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अशोक की सौतेली मा अपने पुत्र वीताशोक को मगध की गद्दी पर बिठाना चाहती थी और उसने धर्माचार्य को अपनी ओर मिलाकर कलिंग का युद्ध कराया तथा युद्ध में वह अशोक को मरवाना चाहती थी। नाटककार ने सम्राट बिन्दुसार को बौद्ध बताया है और बौद्ध श्रमण दोनो ओर से इस युद्ध में शामिल बताये है। दूसरी ओर कलिंग में ही एक षड्यन्त्र की स्थापना की है। कलिंग के महाराज को प्रेम करने वाली उनके मन्त्री की पत्नी अपने पति के द्वारा विश्वासघात करवाती है। यह सब देखने और पढने में नया लगता है। लेकिन इतिहास कही इन बातो का समर्थन करता नही जान पडता। लेखक ने उस सामग्री की ओर भी संकेत नही किया है जहा से इसका समर्थन हो सकता है। नाटककार के पास भाषा का अभाव नही है, लेकिन नाटक की कला से वह शायद अनभिज्ञ है। ३ अंकों के इस नाटक में २२ दृश्य हैं। कोई भी दृश्य ५ पृष्ठ से बडा नही है। इसीलिए किसी भी दृश्य में रस का परिपाक नही हो पाता। एक झाकी सी मिलती चली जाती है और इसीलिए नाटक एक असफल रचना होकर रह जाता है। बीच-बीच में पारसी रंगमंच की तर्ज पर संगीत भी है। क्या ही अच्छा होता कि नाटककार इतिहास और नाट्य-कला दोनो का अच्छी तरह अध्ययन के बाद लेखनी उठाता।

मोतियों वाले (कहानी संग्रह)—लेखक कर्तारसिंह दुग्गल, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ संख्या १७८ मूल्य ३ ५० रु०।

श्री दुग्गल मूलत पंजाबी के लेखक है, लेकिन अब वह हिन्दी के लिए भी नये नही रहे है। उन्होंने यह कहानिया हिन्दी में ही लिखी है। यद्यपि उनकी हिन्दी पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन कहानी की कला कही भी खण्डित नही होती। बल्कि वह प्रभाव हिन्दी शैली को एक विविधता प्रदान करता है और वह विविधता हिन्दी की शक्ति ही है। दुग्गल मानव-मन के कलाकार है। मानव के अन्तर में बैठ कर वह उसकी उलझी हुई परतें इस प्रकार उधेडते चले जाते है कि आश्चर्य होता है। वह ऊपर से जो कुछ दिखाई दे जाता है, उसका चित्रण करके ही नही रह जाते बल्कि उसका वास्तविक अर्थ क्या है, इस बात की खोज में लगे दिखाई देते है। इसीलिए उनकी कहानिया पढते हुए पाठक ऊबता नही, बल्कि अन्त तक पहुचते-पहुचते आश्चर्य से भर उठता है। जैसा कि उन्होंने कहा है कि अच्छी कहानी वह है जिसे पढ कर अच्छे भाव जागृत हो, इन सारी कहानियो को पढ कर अच्छे भाव ही जागृत होते है और आनन्द भी मिलता है। जीवन के सफर में जैसे कोई अच्छा साथी मिल गया हो। दुग्गल व्यंग्य भी कम नही करते। उनका व्यंग्य आरम्भ में बहुत ही निर्दोष होता है, लेकिन जब चित्र साफ होता है तो वह व्यंग्य जैसे कचोट लेता है। पहली ही कहानी 'मोतियो वाले' इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियो में से कुछ कहानिया बडी प्यारी बन पडी है, जैसे, 'खट्टी लस्सी', 'टीले और गड्ढे'। यह कहानी तो सचमुच मानव-मन का बहुत गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है। कुछ कहानिया प्रतीक रूप में हैं जैसे 'करामात'। लेकिन लेखक की सफलता उस समय प्रकट होती है जब वह इस कहानी से वर्णित अस्वाभाविकता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेता है। दुग्गल शोर नही मचाते, विद्वत्ता प्रकट करना भी नही चाहते, बस, दिन प्रति दिन की भाषा में कहते चलते है। लेकिन यही साधारण अन्त में असाधारण हो उठता है और पाठक का मन अनुभूतियो की गहराई से भर उठता है। 'माया का दिल बडा हुआ तो जैसे कमरा भी फैल कर बढ गया।' इस सीधे सादे वाक्य के सीधे-सादे अर्थ के पीछे कितनी महानता है। दुग्गल की सफलता का यही रहस्य है और पंजाबी शैली की चित्रमयता इस महानता में रस भरती है। अत्याधुनिक लेखकों की तरह शिल्प की जटिलता उन्हें प्रिय नही है। यह बुरी बात नही है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी पढने योग्य है।

शोक सभा—लेखक कंचन कुमार, प्रकाशक प्रदीप प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या ८६, मूल्य १ ७० रुपये।

लेखक की मातृ भाषा बंगाली है, लेकिन प्रस्तुत संग्रह को पढ कर ऐसा मालूम नही होता। हिन्दी भाषा-भाषी की तरह उनकी भाषा मंजी हुई और प्रभावमयी है। प्रस्तुत संग्रह में लेखक के २१ हास्य निबन्ध और स्केच संकलित है। यह खुशी की बात है कि लेखक विस्तार से अधिक गहराई के प्रभाव में अधिक विश्वास करता है। इन छोटे-छोटे स्केचो में इसी कारण फैलाव नही है। व्यर्थ का वितण्डावाद नही। बस, लेखक ने, जो कुछ वह कहना चाहता है, बहुत थोडे शब्दों में उसको कहा है। इसीलिए वह अधिक प्रभावशाली हुआ है। इन स्केचो में चित्रमयता और व्यंग्य की कमी नहीं है। हो सकता है कि 'वलगेरिटी' पर हँसने वाले इस संग्रह में बहुत रस न पा सकें। लेकिन लेखक की चुटीली चुटकियो से उनके दिल में गुदगुदी अवश्य होगी। उदाहरण के लिए, 'अपनी बीवी, पराये जूते' को ही लीजिए—मेरे एक तीसरे मित्र जो आफिस में क्लर्क थे, एक दिन हाथ मलते-मलते मैनेजर के पास गये—

"सर !"

"क्या बात है ?"

"जी, बात यह है कि मेरी बीवी ने तनख्वाह बढ़वाने को कहा है।"

"अच्छा, तो मैं अपनी 'उनसे' पूछ कर बताऊंगा।"

लेखक ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की है। लेकिन अगर वह ऐसा करता तो निश्चय ही प्रभाव एकदम नष्ट हो जाता।

इसी तरह 'दुर्घटना' को ले लीजिए—"यही समझिए कि घूमते हुए एक सुन्दरी से टक्कर हो जाना यह आपके लिए आनन्ददायक हो सकता है, फिर भी उसे दुर्घटना की ही सज्ञा मिलेगी। मैं तो समझता हूं कि लड़कियों का सुन्दरी होना भी एक दुर्घटना ही है। फिर उसके बारे में कुछ लिखना भी दुर्घटना से कम नहीं है और उस लेख को देकर सम्पादक से उसके बदले में रुपये मांगते समय हिचकिचाना भी एक तरह की मानसिक दुर्घटना ही कही जाएगी।" यह चन्द लाइनें बहुत कुछ कह देती है। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'जेब एक, पहलू अनेक', 'प्रेम-पत्र', 'कालेज की लड़की', 'पाठिका मेरी आखों में' इत्यादि-इत्यादि निबन्ध थोड़े में बहुत कहने के, गहरे में पैठने के, और शिष्ट हास्य के सुन्दर उदाहरण है। बेशक पाठक कहकहा न लगा सकें, लेकिन रस अवश्य पा सकेंगा। और आज के युग में यह कम सफलता नहीं है।

—विष्णु प्रभाकर

रामराज्य और मार्क्सवाद—लेखक राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ९६, मूल्य १.२५ रु०।

श्री करपात्री जी ने 'मार्क्सवाद और रामराज्य' के नाम से ८१६ पृष्ठ की एक पुस्तक यह प्रमाणित करने के लिए संस्कृत में लिखी कि समाजवाद का आदर्श बिलकुल गलत है। सच तो यह है कि इस पुस्तक को उन्होंने स्वयं नहीं लिखा। श्री राहुलजी ने भूमिका में उस पुस्तक की रचना रहस्य का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—"ऐसा मालूम होता है कि इसमें चेलों ने भी पूरी सहायता की है। सभी पन्नों का गुरु के नाम से प्रकाशित होना अनुचित नहीं है। अद्वैतवाद में गुरु-चेला का भेद नहीं है। ऋषीकेश के एक महात्मा इसके लिए पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। उनके चेले हिन्दी अंग्रेजी में जो कुछ लिखते हैं, सब गुरुजी के नाम से प्रकाशित होता है।"

इस प्रकार करपात्रीजी का प्रयास एक सम्मिलित प्रयास था। राहुलजी ने उसमें उठाई हुई बातों को विरोध में लगभग १०० पृष्ठों की यह पुस्तक लिखी। करपात्रीजी की पुस्तक थोड़े में बाबा वाक्यम् या पोंगापथ का एक बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ है। यानी उसी हद तक प्रामाणिक है जिस हद तक कि ऐसी पुस्तकें हुआ करती हैं। आलोचक को इस पुस्तक को पढ़ने का सौभाग्य नहीं हुआ, पर राहुलजी ने अपनी पुस्तक में उसके जो उद्धरण दिए हैं उसके सम्बन्ध में जो वर्णन किया है उससे करपात्रीजी की पुस्तक पर काफी रोशनी पड़ती है। उदाहरणस्वरूप पुस्तक में "विधवा स्त्रियों को जिन्दा जलाने—सती-प्रथा—का समर्थन किया गया है। हजार वर्ष पहले नहीं, बल्कि हाल में गुजरे अन्धयुग की तरह लड़कियों को बचपन में ही ब्याहने पर जोर दिया गया है।"

इसी प्रकार करपात्रीजी और मामलों में प्राचीन-पंथी मतों का समर्थन करते हैं। उन्होंने विश्वनाथ के मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश का विरोध किया था। यह तो अभी थोड़े दिनों की ही बात है। राहुलजी ने करपात्रीजी को ठीक ही सलाह दी है—"करपात्रीजी अभी बहुजन के रोष को नहीं जानते। उसे देखना हो तो उन्हें मद्रास प्रदेश की सैर करनी चाहिए। वहां भी सनातन धर्म के नाम पर हजारों वर्षों से तीन प्रतिशत ब्राह्मणों ने सब कुछ हड़प रखा था। और ९७ प्रतिशत को शूद्र और अतिशूद्र की संज्ञा देकर उन्हें नरक की जिन्दगी बिताने के लिए विवश किया था। बहुजन को इस धोखे-धड़ी का पता लगते देर नहीं लगी, और अब वे ब्राह्मण के नाम से ही घृणा करने लगे हैं। करपात्रीजी तथा उनके चेलों की हठधर्मी हमारे यहां भी इस प्रकार की कटुता का बीजारोपण कर सकती है। महाराज को यह मालूम होना चाहिए कि जिनके अधिकारों पर प्रहार करने के लिए वह खड्गहस्त हुए हैं, उनकी संख्या सौ में ८० है। महाराज की वाणी बहरे कानों में पड़े, इसी में उनकी भलाई है।"

हमें पुस्तक के सम्बन्ध में अधिक ब्यौरा नहीं देना है। राहुलजी स्वयं प्राचीन भारत के सभी शास्त्रों तथा दर्शनों के प्रकांड विद्वान हैं, यही नहीं उन्होंने इन विषयों पर बहुत सी मौलिक बातों की भी खोज निकाला है। ऐसी हालत में हम यह आशा करते हैं कि इस पुस्तक को सत्य-प्रेमी तथा विद्या-प्रेमी लोग अवश्य पढ़ेंगे। वह चुटकी ले लेकर करपात्रीजी की सारी बातों का खण्डन करते हैं और अमान्य तथा अर्धमान्य शास्त्रीय प्रमाणों के विरोध में सर्वमान्य प्रमाण पेश करते हैं। करपात्रीजी अरबों वर्षों की बात करते हैं जबकि राहुलजी केवल ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक युग की बात करते हैं।

पाठकों के विचार के लिए हम केवल ईश्वरवादी प्रसंग को उद्धृत करते हैं। करपात्रीजी कहते हैं—"लाखों करोड़ों वर्ष का इतिहास वस्तुतः ईश्वरवाद का ही समर्थक है। ईश्वरवादियों ने ही बड़ा-बड़ा पुरुषार्थ किया है। समुद्र में सौ योजन का पुल ईश्वरवादियों ने ही तैयार किया है? अखण्ड भूमण्डल का साम्राज्य, पुष्पक विमान जैसे वायुयान, हाइड्रोजन बम से करोड़ों गुना अधिक शक्तिशाली ब्रह्मास्त्र पाशुपतास्त्र ईश्वरवादियों ने ही प्रकट किए हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त दिव्य शक्तियों, (देवताओं, भूत-प्रेतों) के साथ प्रत्यक्ष व्यवहार भी उन्होंने ही किया है।" (पृ० ५२८)

इसके उत्तर में राहुलजी यह कहते हैं कि हमारे प्राचीन छः शास्त्रों में से तीन अनीश्वरवादी हैं। राहुलजी पूर्ववर्णित चुटकी लेने के ढंग से कहते हैं—"फिर यह कितनी विडम्बना है कि जिस वेद को इतना मान दिया जाता है, उसके प्रबल समर्थक जैमिनी की मीमांसा, करपात्रीजी के कथनानुसार भी अनीश्वरवादी है। कपिल का सांख्य भी अनीश्वरवादी है और कणाद के वैशेषिक में भी ईश्वर का कहीं पता नहीं। छः शास्त्रों में तीन अनीश्वर-वादी है, तब भी करपात्री महाराज के कथनानुसार प्राचीन इतिहास-ग्रंथ ईश्वर को सिद्ध करते हैं। आज दुनिया में जिस धर्म के अनुयायी सबसे अधिक हैं, यह बौद्ध धर्म भी अनीश्वरवादी है।"

हमारे यहां प्राचीन सभ्यता और संस्कृति पर असम्बद्ध और भ्रांतिपूर्ण बातें करने की बहुत जबरदस्त परिपाटी है और कोई भी भला आदमी यह सोचने का कष्ट नहीं करता कि आखिर कौनसी ऐसी बात थी जिसके कारण हम सैकड़ों वर्षों तक गुलाम रहे। लोग अपने छोटे-मोटे बड़प्पनों का ढोल पीटते रहते हैं। दुनिया कहीं से कहीं निकल गई और प्रति क्षण क्या क्या उन्नति हो रही है, पर ऐसे लोगों के कानों में जूं तक नहीं रेंगती। आशा है भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के सम्बन्ध में हरेक जिज्ञासु विद्यार्थी इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ेगा। राहुलजी की तरह महा विद्वान ही यह ग्रंथ लिख सकता था। उन्होंने इस पुस्तक को लिखकर इस संकटकाल में एक बहुत बड़ी सेवा की है।

दशरथनन्दन श्रीराम—रचयिता चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ४३६, मूल्य पांच रुपए।

यह राम कथा का श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य द्वारा प्रस्तुत संस्करण है, जो मूल तमिल से अनूदित है। प्रकाशक ने इस पर लिखा है "यह पुस्तक उन्होंने रामायण के तीनो संस्करणो अर्थात् वाल्मीकि, तुलसी तथा कंबन के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत की है। तभी तो अनेक घटना स्थलो पर वह बता सकते है कि तुलसीदास अथवा कबन ने उनका वर्णन किस प्रकार किया है और किस में क्या विशेषता है। पाठको के लिए यह तुलनात्मक विवेचन बड़े काम का है, कारण यह है कि विविध घटनाओ को नए दृष्टिकोण से देखने तथा समझने में सहायक होता है।"

स्वय श्री राजगोपालाचार्य ने अपने मौलिक ढग से पुस्तक के सम्बन्ध मे लिखा है—"समस्त जीव-जतु तथा पेड-पौधे दो प्रकार के होते हैं। कुछ के हड्डिया बाहर होती हैं और मास भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इस श्रेणी में आते है। कुछ पानी के जतु भी इसी वर्ग के होते हैं। इसके विपरीत कुछ पौधो और हमारे जैसे प्राणियो का मास बाहर रहता है और हाड अन्दर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्वो को हम कही बाहर पाते हैं, कही अन्दर।

"इसी प्रकार ग्रन्थो को भी हम दो वर्गो में बाट सकते हैं। कुछ ग्रथो का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावो में होता है, कुछ का जीवन उनके बाह्य रूप में। रसायन, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि भौतिक शास्त्र के ग्रन्थ प्रथम श्रेणी के होते है। भाव का महत्व रखते हैं। उनके रूपान्तर से विशेष हानि नही हो सकती। परन्तु काव्यों की बात दूसरी होती है।"

वह इस बात को पाठक के सामने रखते है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य में राम को ईश्वर का अवतार नही माना। पर बाद को चलकर लोग राम को भगवान मानने लग गए। राम कथा को हिन्दी में तुलसीदास ने और तमिल में कबन ने लिखा। इन दोनो ने राम को अवतार मानकर कथा का वर्णन किया है। इस प्रकार भक्ति मार्ग का उदय हुआ और मन्दिर और पूजा पद्धति भी स्थापित हुई। थोडे में श्री राजगोपालाचार्य वाल्मीकि और कबन रचित रामायणो की भिन्नता को इस प्रकार दर्शाते हैं—'महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कबन-रचित रामायण में जो भिन्नतायें हैं, वे इस प्रकार हैं। वाल्मीकि रामायण के छद समान गति से चलने वाले हैं, कबन के छद-काव्यों को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते है, वाल्मीकि की शैली में गाभीर्य है, उसे अतुकात कह सकते हैं, कबन की शैली में जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि माधुरी-सम्पन्न है, आभूषणो से अलकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है, किन्तु कबन की रामायण तमिल लोगो के ही समझ में आ सकती है। कबन की रचना को इतर भाषा में अनूदित करना अथवा तमिल में ही गद्य-रूप में परिणत करना लाभप्रद नही हो सकता। कविताओ की सरल भाषा में समझाकर फिर मूल कविताओ को गाकर बताए तो विशेष लाभ हो सकता है।'

श्री राजगोपालाचार्य ने इस सकलन में मुख्यत वाल्मीकि रामायण का ही आश्रय लिया है। कही-कहीं श्री राजगोपालाचार्य बताते जाते है कि कहा किस रामायण में किस कथा के किस अश को किस प्रकार मोडा गया है। भरद्वाज आश्रम की कथा बताते हुए वह कहते है—'दशरथनन्दन श्रीराम' वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा जा रहा है। वाल्मीकि के कथनानुसार भरद्वाज मुनि भी भरत के वहा आने के उद्देश्य पर सदेह करते हैं। उस संदेह-निवारण के लिए भरत से कुछ प्रश्न पूछते हैं।

"तुलसी रामायण मे इस प्रकार का कोई उल्लेख देखने मे नही आता। गोसाईं तुलसीदासजी की रामायण मे तो आदि से अन्त तक भक्ति ही भक्ति है। गोसाईंजी ने यही माना होगा कि ऋषि लोग सर्वज्ञ होते हैं। वे क्यो भरत पर शक करने लगे। पर तमिल कवि कबन ने सर्वत्र वाल्मीकि का ही अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। एकाध जगह उन्होंने भी कुछ थोडा-सा परिवर्तन किया है, वह भी बहुत कम। इसका कारण यह मालूम होता है कि वह टीका करने वालो को कम से कम मौका देना चाहते थे।"

रामायण मे राम ने जो कुछ किया, उस पर किसी भक्त को कोई आपत्ति नही हो सकती। यदि कोई ऊपर से आपत्तिजनक बात दिखाई भी पडती है तो पूर्व जन्म आदि बीच में लाकर सारी बातें सही कर दी जाती है। फिर भी श्रीराजगोपालाचार्य मालूम होता है, बालि के वध का पूर्ण तरीके से समर्थन नही कर पाए। वह लिखते है—"सुग्रीव से कोई अक्षम्य अपराध नही हुआ था। फिर भी अपने शरीर-बल के घमड से बालि सुग्रीव को बहुत सताने लगा था। सुग्रीव ने जब राम से इस बात की शिकायत की तब राम ने उसे अभयदान दे दिया था। ऐसी अवस्था मे बालि को मारना अनिवार्य हो गया था। उसको मारना उसी ढग से हो सकता था, जिस ढग से राम ने मारा। अपनी प्रियतमा की एक साधारण इच्छा की पूर्ति के लिए राम को माया-मृग के पीछे जाना पडा। उसके बाद राम को एक सकट के बाद दूसरे सकट का सामना करना पडा। मेरी अल्प बुद्धि इस विषय पर इससे आगे कुछ नही सोच पाती है।"

सारी रामायण से श्री राजगोपालाचार्य जो निष्कर्ष निकालते है वह भी इस पुस्तक के अन्तिम शब्दो में आ जाता है—"मुनि वाल्मीकि की गाई हुई कथा को अपनी भाषा में लिखने का यह काम आज समाप्त हो गया। सभव है, इसका प्रारम्भ करना मेरी धृष्टता थी, किन्तु यह काम करते हुए मुझे आनन्द-ही-आनन्द प्राप्त हुआ। आज ऐसा लग रहा है कि एक मधुर स्वप्न समाप्त हो गया और मेरी आखें खुल गईं। अयोध्यापुरी को छोडते हुए राम दुखी नही हुए, किन्तु सीता के वियोग से वे विह्वल हो गए।

"बहुत ऊची पदवी और दायित्वो से मुक्त होने पर मैंने यह नहीं सोचा था कि अब क्या करूगा, किन्तु आज दशरथनन्दन की कहानी के समाप्त होने पर एक विचित्र शून्यता का अनुभव कर रहा हू।

"काम करना भार है, ऐसा कोई न समझे। सत्कार्य करना ही जीवन का सार है, रहस्य है। प्रतिफल का लोभ बुरा होता है, पर कर्म का त्याग जीवन को असह्य बना देता है।"

क्या यह निष्कर्ष पूर्ण आशावादी है? मुझे तो इसमें कुछ कसर मालूम होती है। अनुवाद बहुत ही सुन्दर हुआ है।

रणधीर सिन्हा की रचनाएं—लेखक श्री रणधीर सिन्हा, प्रकाशक श्रेष्ठ साहित्यागार, पटना, पृ० सख्या १२८, मूल्य २) रु०।

इस पुस्तक में लेखक की हर तरह की अक्षम रचनाएं बिना किसी सिलसिले के एकत्र की गई हैं।

नागरिक शास्त्र और भारतीय शासन—प्रकाशक, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पृष्ठ सख्या २००, मूल्य १ ७५ रु०।

यह पुस्तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में लिखी गई है। इस रूप में यह उपयोगी है।



दलाई लामा भारत में

ससार भर मे तिब्बत के समान दुगम और शेष दुनिया से विच्छिन्न प्रदेश दूसरा न होगा। तिब्बत सच्चे अर्थों में 'दुनिया की छत' है, जहा १०,००० फीट की ऊचाई सबसे नीचा भूभाग है। अभी तक तिब्बत के बहुत से भाग पर केवल घोडो और खच्चरो द्वारा यातायात होता है। रेलगाडी तक वहा के लिए अज्ञात है। यह स्वाभाविक था कि ऐसे प्रदेश में होने वाली घटनाओ से ससार लगभग अपरिचित रहे। फिर भी बहुत समय से ऐसी खबरें मिल रही थी, जिनसे यह स्पष्ट हो गया था कि 'ससार की छत' पर युगो से चले आने वाला सन्नाटा भग हो रहा है।

पिछले दिनो वहा घटना चक्र अधिक तेजी से घूमा। तिब्बत चीन का अश है। भारत इस तथ्य को स्वीकार करता है। चीन और भारत में परस्पर घनिष्ठ मित्रता है। दोनो महान देशो में आज तक कभी परस्पर युद्ध नही हुआ, यद्यपि दोनो पडोसी देश है और दोनो की सीमा एक दूसरे से मिली हुई है। दोनो देश इस बात के लिए वचनबद्ध है कि वे एक दूसरे के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही करेंगे। इससे तिब्बत में जो कुछ हुआ है या हो रहा है, उसके सम्बन्ध में कुछ भी कहे बिना दो महत्वपूर्ण तथ्यो का निर्देश हम आवश्यक समझते है।

पहली बात यह है कि तिब्बत और भारत के सम्बन्ध सदा से अत्यन्त स्नेहपूर्ण रहे है। तिब्बत में भारतीय पुरातत्व की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान सामग्री विद्यमान है, वहा के गुम्फाओ मे हजारो बल्कि लाखो हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान है, जिनमे से कितने ही भारत के लिए सच्चे अर्थों में अमूल्य है। इसी तरह कितने ही अत्यन्त महत्वपूर्ण चित्र तथा प्रस्तर और काष्ठ मूर्तिया तिब्बत में विद्यमान है, जो भारतीय पुरातत्व के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण है। हम आशा है कि यह सब मूल्यवान सामग्री पूर्ण रूप से सुरक्षित रहेगी।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आज से नही बल्कि बहुत समय से भारत के बहुत से निवासियो के हृदय मे दलाई लामा के लिए अत्यन्त सम्मान के भाव है। दलाई लामा बौद्ध जगत के अत्यन्त सम्मान्य व्यक्ति है। तिब्बत में तो उन्हे ईश्वर का अवतार ही माना जाता है। यह चौदहवे दलाई लामा आज भारत के मेहमान है। यह एक सन्तोष का विषय है कि अभी तक चीन की ओर से कोई भी ऐसा वक्तव्य प्रकाशित नही हुआ, जिससे दलाई लामा के प्रति किसी तरह का दुर्भाव व्यक्त हो। हमे आशा है कि दलाई लामा के प्रति विद्यमान सम्मान की यह भावना दक्षिण-पूर्व एशिया के इस भाग मे शान्ति तथा मैत्री का वातावरण कायम रखने के काम में इस्तेमाल की जा सकेगी।

हमारा जून अक

जैसा कि गत मास सूचित किया जा चुका है, 'आजकल' का जून अक उसका चित्रकला विशेषाक होगा। उसकी पृष्ठ सख्या ६४ होगी और उसके मूल्य में कोई वृद्धि नही की जाएगी।

मार्ग की खोज—लेखक रोहित मेहता, प्रकाशक आनन्द प्रकाशन (प्राइवेट) लिमिटेड, कमच्छा, वाराणसी-१, मूल्य १ ५० रु०।

यह लेखक की अग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। जो लोग थियोसोफी के रहस्य में दिलचस्पी रखते है उन्हें यह पुस्तक पसन्द आ सकती है।

ग्राम निर्माण—लेखक प्रो० ब्रजलाल वर्मा, प्रकाशक हिन्द प्रकाशन, २७।१ कस्तूर बा गाधी मार्ग, कानपुर, मूल्य १) रु०।

इस पुस्तक मे ग्राम निर्माण के सम्बन्ध में बहुत से विषयो पर जैसे ग्राम सगठन, ग्राम पचायत, ग्राम सहकारी समिति आदि पर विचार किया गया है। लेखक ने सरकारी अधिकारियो पर भी लिखा है। लोगो में सरकारी अधिकारियो का विरोध करने की जो प्रथा है, उसकी लेखक ने निन्दा की है। वह रिश्वत के लिए भी लेने वाले को नही बल्कि देने वाला पर ज्यादा दोष डालते है। पर वह मानते है कि जनता का पुलिस में विश्वास उठ गया है और पुलिस का हृदय जनता के साथ नही है। पुस्तक में कही भी स्वतन्त्र विचार दृष्टिगोचर नही होता।

—मन्मथनाथ गुप्त

उत्तरप्रदेश में बिजली का विकास—(पृष्ठ ३६ का शेषांश)

सकेगी। इस योजना के अन्तर्गत पिपरी में रिहन्द नदी पर करीब ३०० फुट ऊंचे बांध के साथ-साथ एक बिजलीघर बनाया जा रहा है, जिसकी उत्पादन क्षमता करीब २,४०,००० किलोवाट होगी। योजना काम तेजी से चल रहा है। निर्माण काय में बिजली पहुंचाने के लिए पिपरी में ३ हजार किलोवाट की उत्पादन क्षमता वाला एक डीजल बिजलीघर स्थापित कर दिया गया है। बाद में एक और मशीन लगाकर इसकी क्षमता में २५० किलोवाट की ओर वृद्धि कर दी गई है। सोन नदी के किनारे चोपान में भी इसी उद्देश्य से ६ हजार किलोवाट की उत्पादन क्षमता वाला एक वाष्प-चालित बिजलीघर बना दिया गया है।

प्रदेश में बिजली की दूसरी प्रमुख योजना है यमुना जल-विद्युत योजना, जिसके पूर्ण होने पर पश्चिमी तथा मध्य के जिलों में और अधिक बिजली उपलब्ध हो सकेगी। इस योजना को दो चरणों में बांट दिया गया था—प्रथम और द्वितीय। प्रथम के अन्तर्गत १७ हजार तथा ३४ हजार किलोवाट की क्षमता वाले दो बिजलीघर तथा द्वितीय में १,५०,००० किलोवाट की क्षमता वाला तीसरा बिजलीघर स्थापित करने की व्यवस्था थी। द्वितीय आयोजना के अन्तर्गत प्रथम चरण का कार्य प्रारम्भ हुआ किन्तु शीघ्र ही केन्द्रीय सरकार के परामर्श पर उक्त कार्य स्थगित कर दिया गया। अब द्वितीय चरण के अन्तर्गत कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय किया है। तदनुसार प्रारम्भिक कार्यवाही की जा रही है।

यमुना जल-विद्युत योजना के प्रथम चरण के कार्य को स्थगित कर दिए जाने के बाद हरदुआगंज (अलीगढ) के बिजलीघर की क्षमता को बढ़ाकर ६० हजार किलोवाट कर देने का निश्चय किया गया है। इस दृष्टि से मशीनें आदि विदेशों से मंगाई गई हैं। आशा है कि सन् १९६२ तक यह काम पूर्ण हो जाएगा।

रुड़की और मुरादाबाद में १३२ किलोवाट की उत्पादन क्षमता वाले दो उप-बिजलीघर बन कर तैयार हो गए हैं। ये बिजलीघर गंगा ग्रिड से हो सम्बन्धित हैं।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में बिजली सुविधाओं की प्रसार-योजना के अन्तर्गत १९५६-५७ में ४३ नगरों तथा १९५७-५८ में ३४ नगरों को बिजली पहुंचाई गई। चालू वित्तीय वर्ष के अंत तक यह आशा की जाती है कि ५२ अन्य स्थानों में भी बिजली पहुंच जाएगी। इस योजना के लिए केन्द्रीय सरकार ने भी सहायता दी थी। नल कूपों को बिजली प्रदान करने की योजना के अन्तर्गत ६६० नल कूप लगाए गए थे। इनमें से लगभग आधी संख्या को अब तक बिजली प्राप्त हो सकी है। शेष को चालू वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक प्राप्त हो जाने की आशा है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक (मार्च, १९६१) राज्य में बिजली विकास का जो लक्ष्य प्राप्त करने का निश्चय किया है, वह इस प्रकार है —

बिजलीघर ३८, उत्पादन क्षमता ५ लाख किलोवाट से अधिक तथा उप-बिजलीघर ८ हजार से अधिक।

स्थायी महत्व की पुस्तकें

	मूल्य रु० नए पैसे	डाक खर्च रु० नए पैसे
रूसी-हिन्दी शब्दकोश (लेखक—वीर राजेन्द्र ऋषि)	३५ ००	—
भारत के पक्षी (लेखक—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह)	१२ ५०	—
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड १)—१८८४-१८९६		
कपड़े की जिल्द	५ ५०	० ८५
कागज़ की जिल्द	३ ००	० ५०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२-१९५६)	३ ५०	० ८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४९-५३)	५ ००	१ ३५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण)	५ ००	१ ३०
भारतीय कविता १९५३	५ ००	१.७५
भारत १९५८	३ ५०	० ९५
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष	३ ००	० ४५
भारत के बौद्ध तीर्थ	२ ००	० ३०
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष	२ ००	० २५
दसवाँ वर्ष	१ ५०	० २५
अशोक के धर्मलेख	१ ००	० २५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

२५ रुपए या इससे अधिक की पुस्तकें मंगाने पर डाक खर्च नहीं लिया जाता है।
सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं या निम्न पते से प्राप्य



पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट
दिल्ली - ८

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad

D—510

आजकल

विश्व-दर्शन सहित



जून १९५९

५० न० पै०



वर्ष १५ अंक २ पूर्णांक १८०

(वार्षिक अंक)

जून १९५९

(११ ज्येष्ठ से ९ आषाढ़ १८८१)

इस मास का फोटो : 'नवसाक्षर' : हरिकृष्ण
आवरण चित्र : सुबह की सैर : ढिल्लन

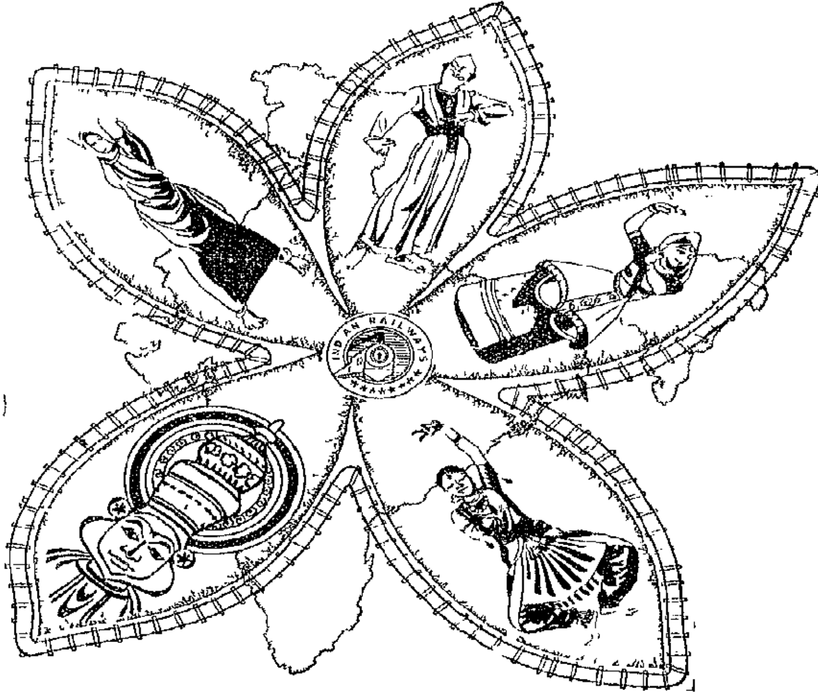
वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८





सांस्कृतिक सम्पर्क



नौर्थर्न रेलवे



वर्ष १५ जून १९५९ अंक २

बंगला कविता

अभीप्सा

विष्णु दे

खोल दो आज इस आकाश को,
लीप दो रात को अन्धकार से,
डुबा दो ज्योत्स्ना को अनिद्रा की
घन-कालिमा में ।
ढाक लो दोनो आंख, बांध कर पवन का व्यूह,
रात्रि के अवगुण्ठनावृत समुद्र की पदक्षेप ध्वनि
ढाक कर, आओ द्रुत पग से,
रोधकर निःश्वास-प्रश्वास,
निःशब्द चरणपात के साथ ।
स्थिरता-निस्तब्ध अन्धकार में,
अनिद्रा के शून्य में हो विलीन
हमारी शुभ-दृष्टि ।
पृथ्वी को चूर्ण-चूर्ण करके
आकाश में बिखेर कर,
चले आओ अन्धकार में
आज मेरे ही भीतर ।

अनुवादक श्रीगोपाल माहेश्वरी

गीत

कमला चोधरी

ध्वनि मधुर-मधुर संगीत मयी
उर-धड़कन में संचार गई

मदमत्त समीरण सारमयी
अति शीतल सुखद फुहारमयी
कोकिल की मधुर पुकारमयी
मृदु अलियो की गुंजारमयी
ध्वनि हुलस पुलक उल्लास भरी
बन मन में नवल बहार गई
मेघो का अन्तरनाद लिए
आकुल पिक का अवसाद लिए

ध्वनि सागर का उन्माद लिए
ऋतु पावस का आह्लाद लिए
शुचि, शान्त, सघन, गम्भीर, गहन
बन मन में पारावार गई
लहरो का व्याकुल रोर लिए
मोरो का उत्फुल शोर लिए
धरती अम्बर की ओर लिए
दिशि-दिशि का विस्तृत छोर लिए

अगणित ज्योतिर्मय रूप बदल
बन मानस का सिंगार गई
नन्दन वन की प्रात पवन सी
सूर्य चन्द्र की प्रथम किरण सी
पारिजात की हीरक कण सी
शेष नाग के फण की मणि सी
ध्वनि अद्भुत अनहद नादमयी
बन सृष्टि एक साकार गई ।

अभिज्ञान

आरसी प्रसाद सिंह

हर कला, हर रूप में, हर रंग में पहचान लूंगा ।
मैं तुम्हारी हर अदा को प्रणय का वरदान दूंगा ।
स्नेह का बन्धन मधुर सुकुमार है, यह मानता हूं ।
फूल के प्रति हर मधुप का भाव भी पहचानता हूं ।
किन्तु, जो कांटे हठीले प्यार का हक मांगते हैं,
उस सहज अनुराग का आभार भी मैं मान लूंगा ।
हर कला, हर रूप में, हर रंग में पहचान लूंगा ।
नागिनी उगले हलाहल, यदि प्रकृति का ही नियम है,
तो, गरल-उत्फुल्ल फण की छांह में जीना न कम है ।
और होंगे वे सपेरे, जो भुजग निर्विष उगाहें,
मैं प्रलय के भी शरासन पर सृजन का बाण दूंगा
हर कला, हर रंग में, हर रूप में पहचान लूंगा
गोद में तूफान की बिजली-कली मुस्का रही हो,
या शरत की चांदनी-गंगा छलकती आ रही हो,
जिन्दगी के रूप दोनों ही नदी के दो किनारे ।
हर मनोरथ को अधर, मैं हर अधर को गान दूंगा
हर कला, हर रूप में, हर रंग में पहचान लूंगा

नए-छोटे लोग

अशोक वाजपेयी

हम नए-छोटे लोग !
हम चाहे अनदेखे बीत जाएं
कोई तो देखेगा
हमारी मुट्ठियों में गुलमुहर के फूल थे
हम चाहे अनजाने मिट जाएं
कोई तो देखेगा
हमारे पैरों से यात्राएं बंधी थीं !
हम चाहे अनचीन्हे झर जाएं
कोई तो चीन्हेगा
हमारे होठों पर कविताएँ थीं !
हम नए-छोटे लोग—
इतिहास हमें छोड़ चला जाएगा,
हमने जो कुछ रचा
मुट्ठी की बालू-सा खिसक नहीं गया,
गुलमुहर के फूल-यात्रा-कविताएँ बन जिया
हम नए-छोटे लोग
मरकर, अन्धे प्रेत बन भटकेंगे नहीं,
हमें तब सन्तोष होगा
इतिहास ने भले छोड़ दिया हो
किसी ने देखा है,
जाना है,
चीन्हा है
हमारे फूल पसीजे नहीं थे,
हमारी यात्राएँ टूटी नहीं थीं,
हमारी कविताएँ मुरझाई नहीं थीं !
हम सिर्फ नए थे, छोटे थे !

रीते घट का वक्तव्य

रमा सिंह

मैं ऋणी हूं
क्योंकि मेरे रीतने का दुःख तुमको है
किन्तु मैं ही तो भरा था,
किन्तु मैं ही तो पुरा था,
रीतता फिर कौन ?
ताप के मारे हुओं को
प्यास से झुलसे हुओं को
सींचता फिर कौन ?
क्योंकि मैं ही तो भरा था
क्योंकि मैं ही तो पुरा था
इसलिए, बस रीतना ही
धर्म मेरा था,
मरुथलों को सींचना ही
कर्म मेरा था,
सच कहूं—
मैं रीत कर भी, हूं बहुत हलका,
क्योंकि, मैंने वह लुटाया
जो सजोया कोष था कल का,
किन्तु मैं फिर भी ऋणी हूं
क्योंकि तुमने ये अदेखे—
घाव कुछ टोहे,
और मेरे रीतने का
दुःख तुमको है ।

'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता'

भगवतशरण उपाध्याय

'रूप का उद्देश्य प्रिय को आकृष्ट कर लेना है'—कालिदास की यह वाणी उनके उमा और शिव के सम्बन्ध में खूब ही घटी है। 'कुमारसभव' के तीसरे सर्ग से पाचवें सर्गो के प्रबन्ध में कवि ने अपनी इस वाणी की सत्यता का उद्घाटन और विस्तार किया है। नारी के जीवन में, चाहे यह नारी उमा के से ऋद्ध श्रीमान परिवार की हो चाहे अकिचन श्रीहीन परिवार की, एक समय आता है जब कायिक सौदय उसे ससार को चुनौती देने पर बाध्य करता है। रूप का यह अहकार नि सदेह अनिवार्य होता है और जब उसकी सत्ता टूट जाती है तभी जीवन का औचित्य दाम्पत्य की परिधि में मौज मार पाता है।

रूपगर्विता उमा का वह अहकार टूट जाने के बाद स्वय शिव ने उस तपस्विनी को उसके एकातिक तप के परिणाम से समझाया था—

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच ।

परन्तु इस सत्य के प्रकाश के पहले जब उमा 'सचारिणी पल्लविनी लतेव' शिव की विजय को निकली तब तो रूपगर्विता का वह अहकार उस पर हावी था ही। सम्यक प्रसाधन कर—कुचित कुतलों में वसन्त के टटके फूल गूथ, कपोलों पर मकरद झरने वाले सिरस के फूलों को कानों पर बाध, चिबुक से दोनों ओर कपोलप्रसारित आकर्ण आकर्षक श्वेत कमनीय त्वचा-भूमि पर पत्र-विशेषक की लता टहनिया लिख, होठों को आलते से रग उन पर लोध का चूर्ण डाल, हाथ-पैरों को महावर के रग डग-डग-डगर पर रक्ताक छोड़ती, हाथ से लीलारविंद धारण कर होठों पर बरबस गिरते भौरों को उससे चकित निवारित करती—जब उमा विजय-वैजयती-सी फहराती शिव की विजय को निकली तब निश्चय उसका अभियान यम के प्रति यमी के अथवा अर्जुन के प्रति उर्वशी के अभियान से कछ कम न था। पर उसकी यह विजय-यात्रा भी उन्हीं के अभियानों की भाति निष्फल हो गई, उन्हीं की भाति वह निराश हो लौटी। अन्तर दोनों में बस इतना था कि जहा उनके अभियान केवल अभिसार के सुख तक सीमित थे उमा का अभियान दाम्पत्य की अभिलाषा लिए हुए था। उसके रूप का गर्व टूट जाने पर साधना की भूमि से उठ वह फिर सफल हुआ और आराध्य शिव 'क्रीतदास' हुए।

असाधारण दृश्य है। कैलाश की उपत्यका, सहसा वसत के साधनों से उमग उठी है। तुषारहत तरु-लताए सहसा फूलों से अघा उठी हैं, उनके कुड्मल मुकुलित हो सर्वत्र पराग बरसाने लगे हैं, कोकिल कूक-कूक माननियों को अपने प्रियों के प्रति मानभजन के निमित्त पुकार-पुकार आश्वासित करने लगे हैं। भौरा कुसुम रूपी एक ही पात्र में मधु ढाल पहले प्रिया को पिला बाद स्वय पीने लगा है, कृष्णसार मृग अपनी मृगी के नेत्र का कोया अपने सीग से खुजा रहा है और उसके स्पर्श से सदी मृगी अर्द्धनिमीलित नयनों से अभिराम लगने लगी है, स्वप्निल है। उधर सरोवर में उतरते हुए गजराज को हथिनिया कमल की गध से बसा जल अपनी सूड में कुछ देर रख आत्मविभोर हो दे रही है और गजराज कमलदण्ड तोड़ तोड़ उनके मस्तक पर साभार रखता जा रहा है। चकवा प्रकृति की क्रूरता से अवगत होने के कारण मृणाल की मिठास पर अनायास विश्वास नहीं कर पाता और उसे पहले चखकर तभी बचे हुए को अपनी 'जाया' चकवी को खिलाता है, दाम्पत्य का अभिराम सहधर्माचरण आचरित करता है।

इस वसत द्वारा पल्लविता, पुष्पिता वनस्थली मे सवत्र स्पदित प्रमत्त जीवन के बीच बस मात्र एक स्थल है, लताओं के घिरे कुज के भीतर एक लिपी वेदी, जिस पर शिव 'चैलाजिनकुशोत्तर' पद्मासन में समाधिस्थ बैठे हैं। ललाट का तीसरा नेत्र बन्द है, शेष नेत्र युगल की अधखिली ज्योति नासाग्र पर टिकी है। श्वेत शरीर भस्मावृत है जिसके सन्धिस्थलों पर लिपटे भुजग स्वामी की समाधिक्रिया से अवगत निश्चल पडे हैं। योगिराज शरीर के नवों द्वारों को बद कर योग की जिस आनदस्थिति मे विचर रहे हैं उसका गुमान भी दूसरे योगी नहीं कर पाते।

उनके इस रूप को देख देवताओं का काम साधने आए हुए सामने के नमेरु वृक्ष की सधि पर अपना तन टेके मदन को भय ग्रस लेता है और निराशा मे उसके हाथ से बाण और धनुष नीचे सरक पड़ते हैं—स्रस्त शर चापमपि स्वहस्तात्। कापते पसीना-पसीना हुए काम की यह गति होनी शम्भु के सान्निध्य से स्वाभाविक ही थी।

और इधर शिव के लतागृह के द्वार पर उनके गणों का नायक नदी बाईं भुजा पर स्वर्णदड टेके, उगली होठों से लगाए गणों को खबरदार कर रहा है—सावधान, चचलता बन्द करो।—'मा चापलाय'। नतीजा यह होता है कि वृक्ष निष्कप हो जाते हैं, भौरे कमलों में दुबक जाते हैं, पक्षी सर्पादि अण्डज नीरव हो जाते हैं, चुप, और मृगों तथा पशुओं का चलना-फिरना नदी के आदेश से सहसा बन्द हो जाता है, समूचा जगल जैसे चित्रित निस्पन्द हो उठता है—

निष्कपवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेवसर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे॥

जब सुरभित वनस्थली, समाधिस्थ शिव और निराश मदन की यह स्थिति है ठीक तभी रूपगर्विणी उमा मदन को धिक्कारती-सी यौवन से उन्मत्त सखियों सहित प्रवेश करती है। और मदन जो उसे देखता है तो सहसा उसे अपने कार्य की सिद्धि में विश्वास हो जाता है—स्वकार्यसिद्धि पुनराशशसे—और वह अपने गिरे हुए धनुष-बाण उठा लेता है।

उमा पूजा के फूल समाधिस्थ शिव के चरणों में रख देती है जिन्हें 'प्रतिगृहीत' शिव साभार स्वीकार करते हैं। मदन मौका देख धनुष पर सम्मोहन नाम का बाण चढ़ाता है और डोरी को कान तक खींच योगिराज के हृदय को लक्ष्य बना बेध देता है। योगिराज का धय तनिक विलुप्त

हो जाता है और जैसे उदित होते चन्द्रमा को देख अम्बुराशि सागर चलायमान हो उठता है वैसे ही उनके नेत्र भी नासाग्र से हटकर उमा के बिबाधरों पर जा लगते हैं—

उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।

न केवल शिव के नेत्र कदम्ब के फूल से पुलकित तन वाली नारी के लाल भरे होंठों की ओर मात्र आकृष्ट हुए बल्कि उनका मधुर स्पर्श पा वे वहीं रम रहे—'व्यापारयामास'—देर तक जैसे उन पर फिरते रहे। शिव का यह व्यापार, योगिराज का यह अधैर्य, रूपगर्विता नारी से छिपा न रह सका। उसने जाना, जैसे मदन ने भी जाना, कि रूप का तीर निशाने पर अचूक बैठा है और नारी ने अपनी सफलता को दोहरी शक्ति दी और चाहा कि उसका आक्रान्त शिकार और भी शिकंजे में कस जाए। सो उसने वह आचरण किया जो तारुण्य के रूपाहकार का अभिमत इष्ट है—

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ।

उमा मुख को तिरछा कर, उसे चारुतर बना, खड़ी हुई और आंखों को कानों तक फैला उसने शिव को देखा। निश्चय यह 'डोरा डालने' वाली बात हुई। एक तो तारुण्य, जब कहते हैं, कुक्कुटी भी सुन्दर होती है, दूसरे उमा का तारुण्य, उमा का असाधारण मदिर रूप, अनाघ्रात पुष्प, *वसन्त और मदन का साहाय्य—इतना ही कुछ कम 'चारु'* न था, चाहे लक्ष्य में योगिराज शिव ही क्यों न रहे हों, पर उमा ने उस 'चारु' मात्र से संतुष्ट न होकर अपने उस रूप को 'चारुतर' किया—'चारुतरेण तस्थौ'—एक विशेष भावभंगी से सिर को तिरछा कर आंखों को कानों तक खींच उसने उस शिव पर अपांगों द्वारा गहरा कटाक्ष किया जिसकी आंखें लगातार उसके होंठों पर फिरती जा रही थीं और जिसकी योगनिद्रा पर रूप का जादू चढ़कर हावी हो चला था।

पर सहसा शिव का विवेक लौटा और उसने जाना कि जिस रूप से उसका धीरज छूट चला है, अन्तर विचलित हो उठा है, वह मात्र रूप है, तपस्याजनित दाम्पत्य साधक आकर्षण नहीं, और अपनी दुर्बलता से क्षुब्ध यह देखने के लिए कि ऐसा हुआ क्यों, उसने अपना तीसरा नेत्र खोल दूर *दिशाओं तक उसके प्रकाश में देखा।* दृष्टिपथ में नमेरु की शाखाओं पर बैठे धनुषचक्रीकृत किए मदन की काया आ अटकी। फिर तो त्र्यम्बक के उस नेत्र से जो आग की लपटें निकलीं उसमें मदन का शरीर जलकर भस्म हो गया। आसमान में ठसे देवता तारकासुर के वध के निमित्त अपने ब्रह्मा के सुझाए एकमात्र साधन काम को नष्ट होते देख लाख चिल्लाते रहे—रोको, प्रभो, रोको अपना यह क्रोध!—पर वह क्रोध न रुक सका, मदन को क्षार कर ही विरत हुआ, उसको भस्मावशेष करके ही तीसरे नेत्र की लपटें लौटीं।

कवि की यह वाणी, जो बाद में शिव ने कही, अब सार्थक हुई—

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।

निश्चय सच है कि रूप पापवृत्ति के लिए नहीं है, उससे आचार का अभ्युदय होता है नाश नहीं होता। जिस रूप का उमा ने व्यवहार किया था वह मात्र रूप का व्यवहार था, रूप के गर्व का व्यवहार, और वह स्वाभाविक ही असफल रहा। इसी से उसने रूप की निन्दा की—

निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।

बाद जब उमा ने 'पापवृत्तये न रूपम्' का वास्तविक रहस्य समझ लिया और दाम्पत्य की अभ्यर्थना से महर्षियों को भी लज्जित कर देने वाले तप से वह सतप्ती हुई तब शिव ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और उनके मुख से सहसा निकल ही पड़ा—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः—

आज से, हे अवनतांगि, तुम्हारा मैं जरखरीद गुलाम हुआ।

दो तार

चमूपति

(एक मित्र की धर्मपत्नी के देहान्त पर)

दो तारे किन दो लोकों के
एक राशि में आन मिले थे?
छवि उनकी आभा बरसाती—
मानो, दोनों को चुंधियाती!

प्रेम-पगी चितचोर कनखियां
हरती हिय बरजोर कनखियां!
एक पुर में धुले दो हृदय,
एक ज्योति में घुले दो हृदय।

था विनोद-निधि अनुपम, अक्षय
युग-युग की स्मृतियों का संचय।
युग-युग के विस्मृत मेलों का
था निचोड़—यह मेल अनूठा।

पुण्यों का परिपाक हुआ था,—
क्षण में ऋण बेबाक हुआ क्या?
पुण्य-प्रेम का एक अमर क्षण
है अनन्त सुख का संजीवन।

एक ओर इकला वसिष्ठ था—
मूर्त टकटकी-सा बना खड़ा
आंखों में बैठी अरुन्धती,
छाती में पैठी अरुन्धती।

था आंखों से पता पूछता,
था छाती की ओर झांकता,
'कहां गई है, किधर गई है?'
कह दो, कह दो—जिधर गई है।'

'वह आंखों के खड़ी सामने,
वह बांहों को बढ़ी थामने!'
—आंखें उलझ रहीं आशा में,
बांहें मचल रहीं माया में।

—आंसू लाते और आवरण—
होता-होता टलता दर्शन।
देखें फिर-कब पूर्ण चक्र हो,
दैव मिलाए इन बिछुड़ों को?

शून्य देखना, व्योम ताकना
—होगी युग-युग यही साधना।
प्रेम अचल हो!—युग क्या?—क्षण है,
स्नेह-सुधा के बिखरे कण हैं।

पत्र-लेखक रवीन्द्रनाथ

नन्दगोपाल सेनगुप्त

रवीन्द्रनाथ के चिट्ठी-पत्री लिखने के ढग से उनकी सामाजिक सहृदयता के एक बहुत बडे पहलू पर प्रकाश पडता है। उनके नाम प्रतिदिन पत्र ही क्या कुछ कम आते थे? देश-विदेश के नाना स्थानो से, नाना व्यक्तियो के आग्रह और अधिकार से पूर्ण। प्रत्येक पत्र कवि अपने हाथो से खोलते और प्रत्येक पत्र को पढते भी थे। इनमे जो पत्र विश्व-भारती के सम्बन्ध में होते वे सेक्रेटरी के दफ्तर में भेज दिए जाते और व्यक्तिगत पत्र वे अपने पास रख लेते और खुद ही उनका उत्तर देते थे। पत्रोत्तर देने के कार्य में वे पात्र अपात्र का कोई ख्याल नही करते थे और न ही प्रसग-अप्रसग की अपेक्षा।

स्कूल के नाबालिक लडके, ऑटोग्राफ चाहनेवाली कालेज की लडकिया, अल्पशिक्षिता अन्त पुर की वधुए, अमार्जितबुद्धि ग्रामीण युवक जो कोई भी उन्हें पत्र लिखता वही उनका उत्तर पाता था। दो लाइन, दस लाइन, जितना बन पडता कुछ न कुछ लिखकर वे उन्हें सन्तुष्ट करते थे। जो लोग आवश्यक कार्यों के बारे में पत्र लिखते उनकी तो कोई बात ही नही थी। जब-तब ऐसा लगता था कि रवीन्द्रनाथ को पत्र लिखकर उसका उत्तर न मिला हो ऐसा अपात्र देश में शायद कोई नही था। इन सारे पत्रो में से अधिकाश बिना प्रयोजन ही लिखे जाते थे। इनमें से बहुतो का उद्देश्य होता था येन-केन प्रकारेण कवि की हस्तलिपि प्राप्त करना। सोच विचार कर कोई भी एक प्रसग खडाकर उसी को ले वे कवि के निकट जा पहुचते। और किसी-किसी के प्रयत्न में युक्तिपूर्वक किसी विषय के सम्बन्ध में उनका अभिमत पा लेने का छल निहित रहता था। सभी सोचते शायद कवि असल उद्देश्य को पकड नही सकेंगे। किन्तु मजा यह कि वे सब कुछ समझते थे और समझते हुए भी उनकी इच्छा पूरी करते थे। सामान्यत देखता रहा हू कि इस प्रकार का बचपन लडके ही करते थे। शायद वे लोग सोचते हो कि इतने बडे व्यक्ति है वे कि कोई न कोई जरूरी वजह बताए बिना पत्र लिखने पर वे उत्तर क्यो देने लगे!

एक बार एक लडके ने उन्हें लिखा—अण्डे को आमिष क्यो कहा जाता है। निरामिष कहने में क्या नुकसान है? उत्तर देते हुए कवि ने उसे लिखा था—"ठीक तो है। अण्डे के ऊपर रेशे या लोम देखे हो ऐसा तो याद नही पडता। दिव्य, गोल-मटोल, अच्छा-खासा आलू की तरह ही तो है।" एक दूसरे लडके ने लिखा था—उसकी यह उत्कट इच्छा है कि वह स्वदेशी आन्दोलन में योग दे किन्तु माता-पिता को इसमें बहुत आपत्ति है। अत कर्त्तव्य निर्धारण के लिए उसे उचित सलाह चाहिए एव यह सलाह कवि को देनी होगी। कवि ने लिखा—"माता-पिता की बात मानो, वह भी किसी विदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत नही आती।"

वास्तव में दोनो को ही कवि के हस्ताक्षरो की आवश्यकता थी। अत बाल-बुद्धि में सबसे जटिल जिज्ञासा योग्य जो प्रश्न उन्हें सूझा उसी को लेकर उन्होने कवि से दरख्वास्त की थी। किन्तु लडकिया इस प्रकार के छल कपट के पास भी नही फटकती थी। व सीधे-सीधे उनसे तरह-तरह की फरमाइश करती। किसी को उसके नाम पर एक कविता लिख देनी होगी। किसी को एक पहेली गढ देनी होगी और किसी को उसके जन्म दिवस के उपलक्ष में बहुत सुन्दर आशीर्वचन लिख देने होगे। सभी अपनी इच्छित वस्तु पाती, एक एक मिनट में एक-एक कविता बन जाती। और वे कविताए भी कितनी चमत्कारपूर्ण होती थी।

एक बार शान्ता नामक एक लडकी ने उन्हें लिखा—उसकी उत्कट इच्छा है कि वह कविता लिखे किन्तु कितने दुःख की बात है कि किसी प्रकार भी चरण पूर्ति नही कर पाती। इतना कहकर उसने एक लाइन लिख ही दी—

'सारादिन बसे आछि जानालार धारे'

एव कवि से आग्रह किया था कि इसी पक्ति को लेकर उसके लिए एक पूरी कविता लिख देनी होगी। कवि ने लिखा

'सारादिन बसे आछि जानालार धारे,
उदास फागुन हवा डाकिछे आमारे।
बाहिर चाघार बने लागे सेइ हवा—
मने मने जागे साध बसे गान गावा।'

—इतना लिख देने पर न जाने कवि के मन में क्या आया उन्होने एक पक्ति और जोडी

'आकाशे मेघेर तरी चले भेसे भेसे'

—तदुपरान्त लिखा—'इसके साथ एक पक्ति तुम्ही जोड लेना।'

इन छोटे-छोटे बालक-बालिकाओ के बचपन से भरे हुए पत्रो के इतने आतरिकता पूर्ण उत्तर कोई विज्ञ व्यक्ति दे सकता है, ऐसा मैने तो कभी सुना नही। आखिर हमारे देश में तो इसका उदाहरण नहीं मिलता। इस देश में छोटे लोग छोटे होने के कारण ही उपेक्षित रहे हैं। इस उपेक्षा के कारण ही छोटे लोग कभी, किसी दिन भी बडो के पास फटकने का साहस नही करते। किन्तु छोटे बच्चे ही नही, वयस्क भी गुरुदेव का प्रतिदिन बहुत-सा समय पत्र लिखने-लिखाने में ले लेते थे। और ये पत्र भी कुछ कम विचित्रतापूर्ण नही होते थे। अधिकतर अवसरो पर बहुत बार ऐसा लगा कि उन लोगो को प्रेरणा पाने की कोई आवश्यकता नही थी, केवल कुतूहल था। एक बार किसी भद्र महिला ने लिखा—उनके लडके के बाद लडकी हुई है, एव लडकी भी खूब गोरी-चिट्टी है। उसका नाम रख देना होगा। कवि ने लिखा—'उसका नाम शुभ्रा रख दो।' एक बार किसी युवक ने जताया कि उन दस जनो ने मिलकर एक सघ बनाया है। उस सघ को क्या नाम दिया जाए, इसे लेकर दसो की दस राय है। कवि को इसका समाधान कर देना होगा। कवि ने सूचित किया— 'दशमिका नाम दे दो।'

बाजारू चीजों, सभा-समितियों के नाम के बारे में तथा लड़के-लड़कियों आदि के नामकरण के आमन्त्रण प्राय उनके पास आते रहते थे। इसके अतिरिक्त जन्म दिन, विवाह, उद्बोधन इत्यादि के उपलक्ष में आशीर्वचन के अनुरोध भी आते। आधे पत्र इसी प्रकार के होते थे। सम्भव हो तो उसी दिन अन्यथा उसके अगले दिन ही कवि सभी अनुरोधों का उत्तर देते थे। किसी प्रकार की अरुचि जाहिर न करते और न दूसरों के सामने पत्र लिखने वालों की दीनता-मूढ़ता का उल्लेख कर उन्हें लज्जित ही करना चाहते। कभी-कभी तो पागलपन से भरे हुए पत्र आते थे। किन्तु वे उनकी भी उपेक्षा न कर पाते। एक बार किसी व्यक्ति ने लिखा था—'सुना है दाढ़ी रखने से मनुष्य दीर्घायु होता है। आपने दाढ़ी रख छोड़ी है अत *इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है, यह जानना चाहता हूं।*' कवि ने उत्तर दिया—'दाढ़ी रखी है और दीर्घायु भी हुआ हूं। किन्तु कह नहीं सकता दोनों के बीच कोई कार्य-कारण सम्बन्ध है या नहीं। लेकिन मुश्किल यह है कि जो अल्पायु होते हैं दाढ़ी उनके लिए अधिक (आयु) का उपार्जन नहीं कर पाती। अतएव उल्टी तरफ से प्रश्न के मूल्यांकन का कोई उपाय नहीं है।' एक भलेमानस ने जानना चाहा कि कवि भूत पर विश्वास करते हैं या नहीं। प्रसंगवश उन्होंने यह भी लिखा कि वे खुद तो विश्वास करते ही हैं, यहां तक कि उन्होंने भूत देखा भी है। कवि ने उत्तर दिया—'विश्वास करूं या न करूं, उसकी निष्ठुरता का अनुभव जब-तब अवश्य करता हूं। साहित्य में, राजनीति में सर्वत्र कभी-कभी तो वे भयंकर उपद्रव खड़ा कर देते हैं। भूत को देखा भी अवश्य है, वो देखने-सुनने में भी वह ठीक आदमी की तरह ही होता है।'

व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर इन सबको बेकार के पत्र ही कहना होगा। इस प्रकार के पत्र पाने पर हमें ही परेशानी होती है। श्रद्धा की बात तो दूर, इन सब चीजों को ममतापूर्वक ग्रहण भी नहीं कर पाते। मन में लगता है मानो यह स्पर्द्धा है, मानो बेवकूफी के द्वारा अपमान करने का कौशल है। किन्तु रवीन्द्रनाथ इन सब बातों को समझते थे। वे उनके भीतर भी बहुत-कुछ पाते थे। कभी हंसी-ठट्ठा, कभी उपदेश-परामर्श और कभी स्नेह-ममता का पथ्य देकर वे इन सब बातों को वरण करने योग्य बना देते थे। आवश्यक विषयों को लेकर जो लोग चिट्ठी-पत्र लिखते थे, स्वभावत आशा की जा सकती है कि वे लोग उत्तर पाते थे और इस प्रकार उत्तर पाना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। (यद्यपि हमारे देश में बड़े लोगों से कदाचित ही इस प्रकार उत्तर मिलता हो)।

किन्तु यह लड़कपन, ये सब बेकार की बातें और सामान्य लोगों की अर्थ-जिज्ञासा आदि के सम्बन्ध में प्रेमपूर्वक विचार करने में वे तनिक भी कृपणता नहीं दिखाते थे। आवश्यक कार्यों से जो लोग उन्हें पत्र *लिखते थे—यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं व्यक्तिगत चिट्ठियों* की बात ही कह रहा हूं—उनके बारे में गुरुदेव का क्या विचार था, वही मैं बताना चाहता हूं। एक मर्तबा एक सज्जन ने उन्हें लिखा कि उनके एक मात्र पुत्र ने पढ़-लिखकर उपार्जन करना आरम्भ कर दिया है किन्तु माता-पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को तनिक भी नहीं समझता। चुपके-चुपके उसने एक लड़की से विवाह कर लिया है। उस लड़की का पूर्व इतिहास सम्मानजनक नहीं एवं उसे लेकर अलग रहते हुए अपना जीवन यापन कर रहा है। बड़ी आशा से जिस लड़के को उन्होंने आदमी बनाया था उसकी भ्रष्ट बुद्धि के कारण उनका दिल टूट गया था एवं वे सज्जन कवि से सान्त्वना पाना चाहते थे। कवि ने प्रत्युत्तर में उन्हें एक विस्तृत पत्र लिखा। गहरी समवेदना प्रकट करते हुए उन्होंने उस कई एक सदुपदेश भी दिए जो आजकल के प्रत्येक माता-पिता के मनन करने योग्य है।

इसे संक्षेप में ही कहता हूं—'वयस्क एवं उपार्जक पुत्र से माता-पिता को कुछ आशा करना स्वाभाविक ही है। उस आशा को पूर्ण करना पुत्र के नैतिक कर्त्तव्य का एक अंग है। किन्तु गृहस्थाश्रम में ऐसी स्थिति भी आ सकती है जब अनिच्छापूर्वक, बाध्य होकर पुत्र को माता-पिता से अलग हो जाना पड़ता है। जैसा कि इस मामले में हुआ। उसने जिससे प्रेम किया उसे लेकर अपना नीड़ निर्माण कर लिया। इसीलिए माता-पिता से उसका सम्बन्ध सूत्र छिन्न हो गया एवं शायद उसकी स्थिति ऐसी नहीं है कि इसके बाद भी वह माता-पिता की आर्थिक स्थिति के बारे में सोच-विचार कर सके। ऐसी अवस्था में माता-पिता का कर्त्तव्य है—प्रसन्नता-पूर्वक उनको इस आत्मनिर्भर छोटी-सी गृहस्थी बसा लेने के कार्य का समर्थन करना एवं शुभेच्छा और आशीर्वाद देकर उनकी जीवन-यात्रा को मंगलमय बना देना।' उन्होंने लड़की के सम्बन्ध में भी दो-एक ममतापूर्ण बातें कही थीं एवं अन्त में लिखा था—'जगत में किसी भी लड़की का प्रेम उपेक्षा की वस्तु नहीं है। यदि उसका प्रेम सच्चा है तो वही लड़के के जीवन-पथ में सर्वश्रेष्ठ पाथेय सिद्ध होगा।' क्या यह सुन्दर नहीं है? सुन्दर होने के कारण ही इस विस्तृत पत्र का सार यहां उद्धृत किया गया है।

अन्त पुर के अन्धकार में अवरुद्ध होने पर भी एक महिला के मन में आचार और अनुष्ठान सम्बन्धी नाना प्रकार के प्रतिकूल तर्क-वितर्क उठ खड़े हुए। कवि को उन्होंने एक के बाद एक कई पत्र लिखे। वे महिला कुछ अधिक पढ़ी-लिखी भी नहीं थीं किन्तु उनके चिन्तन में ऐसी एक कुण्ठाहीन प्रौढ़ता थी, एक ऐसा तेजपूर्ण आत्मनिरीक्षण था जिससे कवि मुग्ध हो गए थे एवं उनके प्रत्येक पत्र का उत्तर देते रहते थे। गुरुदेव ने उन्हें अनगिनत पत्र लिखे। यदि इनका संग्रह किया जाए तो एक अच्छी-खासी पुस्तक हो सकती है। एक दिन बातचीत के दौरान में गुरुदेव ने कहा था—'उनके मन का स्वास्थ्य ऐसा अटूट है कि संसार-भर के सारे संदेह और आशंकाओं की आंधी उनके चिन्तन के आकाश को कभी, किसी दिन भी आच्छादित न कर सकेगी।'

हमारी अन्त पुरचारिणी के किसी अन्य व्यक्ति के निकट इस प्रकार की जिज्ञासा ले उपस्थित होने पर उसे इस प्रकार उत्साहित किया जाता था नहीं मुझे इसमें संदेह है। इसी प्रकार कोई व्यथित हृदय पिता भी उस प्रकार सहानुभूति के दो बोल तक न सुन पाते। महान व्यक्तियों की गहन-गम्भीर चिन्ता और काम-काज की भीड़-भाड़ में नगण्य व्यक्तियों *के मन के बुलबुलों—इन छोटी मोटी जिज्ञासाओं, छोटे-मोटे कुतूहलों* को स्थान ही कब मिला है!

इस प्रकार अकृपण भाव से पत्र लिखने का अभ्यास कभी-कभी कवि के लिए महा झंझट का कारण बन जाता था। बहुत से व्यक्ति उनका स्वभाव जानकर, उनसे ऐसी बातें लिखा लेते थे जिनका बहुत दूर तक असर पड़ता था। कोई-कोई दुःसाहसी व्यक्ति उनसे सहज ही मिल जाने वाले सुयोग को पाकर ऐसे पत्र लिखता जिसके कारण अन्य सभी को लज्जित होना पड़ता था। किन्तु इस पर वे ध्यान ही न देते। पत्र लिखने के बारे में आपत्ति करने पर वे कहते—'जो पत्र लिखता है,

(शेष पृष्ठ १२ पर)

कहानी के पात्र

अमृता प्रीतम

जितनी तमिज़ से कोई जिए, उसके पात्रों में उतनी ही गरिमा होती है। जब किसी ने कोई उपन्यास या कहानी लिखनी हो, कुछ परछाइयां उसके इर्द-गिर्द घूमने लगती हैं। ये आकृतियां दिखाई नहीं देतीं। इनके नाम-पते नहीं होते। यह भी पता नहीं चलता, वे मर्द हैं या औरतें। फिर वे सदा सामने भी नहीं रहतीं। वे प्राय: इस तरह का व्यवहार करते हैं, जैसे कोई आंख मिचौली खेल रहा हो। फिर, कभी किसी क्षण किसी पास से गुजरती परछाईं का आंचल हाथ में आ जाता है। और हाथ उसे भींच कर पकड़ लेता है, उसकी आकृति को पहचानने की कोशिश करता है। यह नहीं कि ये आकृतियां लेखक के लिए बिल्कुल नई या एकदम अपरिचित हों, पर इनके एक-एक मुंह में जैसे अनेक मुंह मिले हुए होते हैं, और तुम इन्हें किसी एक नाम के साथ नहीं जोड़ सकते, इसलिए इन सीमित अर्थों में बिल्कुल नए मुंह भी कह सकते हो।

कभी ऐसा भी होता है कि जो कहानी कल्पना में गढ़ी हुई लगती है, बाद में वह बीती हुई घटना के साथ जुड़ी हुई पहचानी जाती है। कई बार अचेतन मन कुछ कहना चाहता है और उसके कहने पर लेखक कुछ लिख लेता है। उस समय उसे अपना यह लेखन पूरी तरह नया लगता है, बिल्कुल नया, अपनी कल्पना की रचना। पर समय बीतने पर कभी लेखक स्वयं कल्पना के मुंह में से जिन्दगी की राह पर से गुजरा हुआ कोई पूर्व परिचित मुंह पहचान लेता है। कल्पना की पुरानी धूल में से उसे किसी राही के पैर याद आ जाते हैं। रोमा रोलां को एक बार इसी तरह लगा था। उसने लिखा है—'मैं अपनी मित्र मालविदा के घर जा रहा था। उसकी अन्धेरी सीढ़ियों में मुझे एक मुंह दिखाई दिया। मेरे लहू में उसकी खुमारी की एक आग सुलग उठी। तब से लेकर अब तक सब कुछ मैं उसी में से गढ़ता हूं। आग सुलग उठी थी, पर वह उतनी देर प्रचण्ड नहीं हुई, जब तक मैंने उसे अपने उपन्यास की नायिका 'गरेजिया' के रूप में पहचान नहीं लिया।'

तुम एक परछाईं का आंचल पकड़ लेते हो। एक परछाईं से जैसे बाकी परछाइयों का कोई नाता होता है। एक को तुम अपने पास ले आए, बाकी परछाइयों को वह पकड़ में आई परछाईं धीरे-धीरे आवाज देती जाती है, पुकारती चली जाती है। और तुम्हारे इर्द-गिर्द परछाइयों का एक घेरा पड़ जाता है। इन विविध परछाइयों के होंठों तथा उनकी आंखों में से बात का धागा, बात से जुड़ता जाता है, और तब कहानी स्वयं ही अपनी राह बना लेती है।

फिर ये सारे पात्र अपने लेखक के मन में अपनी कहानी खेलने लगते हैं, पर लेखक जैसे एक दर्शक की भांति उन्हें देखता रहता है। उनका दर्द लेखक के अपने दिल में जाग उठता है, और उनकी मोहब्बत लेखक के अपने मन में उभरने लगती है।

मुझे कभी नहीं लगा कि मेरे उपन्यासों और कहानियों के पात्र कहीं नहीं हैं। उनका जो नाम एक बार रख लेती हूं, वे उसी नाम के साथ जुड़ जाते हैं, और उनकी जो घटनावली और चरित्र एक बार गढ़े जाते हैं, वे उसी चरित्र को चरितार्थ करते हुए जी रहे लगते हैं।

कुछ दिनों की बात है, मैं बड़ा उखड़ा हुआ मन लिए सो रही थी। मेरा अनुभव है कि जैसे लेखक के अपने मन में बसा हुआ मुंह उसकी कलम में सैकड़ों मुंह बन जाता है, उसी तरह जब सैकड़ों लोग उसकी कृति को पढ़ लेते हैं और वह एक आदमी नहीं पढ़ सकता, या उसका विश्वास नहीं डुला सकता, तब उसे सब कुछ रेत में बनाए घर की तरह लगता है, जिसे गिरते देर नहीं लगती।

मैं सोई पड़ी थी, और मैंने देखा, एक बड़ी वीरान जगह है। रात का समय है और जंगल में कुछ परछाइयां दिखाई देती हैं। मैं उनके नजदीक जाती हूं, तो सब कुछ की सुध बन जाती है। और अधिक निकट जाती हूं तो उनके मुंह पहचान सकती हूं—डाक्टर देव, ममता, पूरो, तेज, नीना, अंशु, राजन, लहरी, हरदेव, और दूसरे कई। और जिसे हाल ही में मैंने 'अन्तिम पत्र' लिखा था, वह भी।

एक-एक के पास जाती हूं, एक-एक का नाम ले लेकर पुकारती हूं। पर कोई जवाब नहीं देता। कन्धों पर हाथ रखती हूं, हिलाती हूं, पर कोई नहीं हिलता। तड़पकर कहती हूं—'मैं तुम्हारे मन में धड़कती रही हूं, मैं तुम्हारे दुःख में दुःखी होती रही हूं, तुम्हारे सपनों के साथ खिलती रही हूं और तुम्हारे बिछोह के साथ सुलगती रही हूं। मेरे पास सिवाय तुम्हारे कुछ नहीं है। तुम मेरे साथ क्यों नहीं बोलते? मेरी आवाज क्यों नहीं सुनते?' पर कोई नहीं बोलता। सारे जैसे पत्थर हो गए लगते हैं। न मेरी याचना उन्हें हिलाती है, न मेरे आंसू उन्हें पसीज सकते हैं। मैं रोए जा रही हूं। डाक्टर देव से बार बार पूछती हूं—'तुझ में जाने एक प्रेमी की सारी अच्छाइयां डाल दी थीं। तुझे तो पत्थर नहीं बन जाना चाहिए था।' और जिसे मैंने 'अन्तिम पत्र' लिखा था, उसके पास खड़ी होकर पूछती हूं—'तूने मेरा पत्र क्यों नहीं पढ़ा? क्यों नहीं पढ़ा?'

मैं बिलख कर जाग गई और मेरा तकिया मेरे आंसुओं से भीगा हुआ था। मेरे सिर में असीम पीड़ा थी, और जैसे मैं भरपूर सांस तक नहीं ले पा रही थी। मैं जाग कर भी कह रही थी—'मेरे सारे पात्र पत्थर बन गए हैं, वे न बोलते हैं, न हिलते-डुलते हैं। वे मेरी कोई बात नहीं सुनते।' आज तक मैंने जो कुछ लिखा था, क्षण भर के लिए वह सब मुझे बेकार लगने लगा।

फिर एक दिन मेरा 'घोंसला' उपन्यास स्टूडियो में खेला जा रहा था। मैं देखती रही, सुनती रही। और उसी रात घोंसले की नीना मुझ से कह रही थी—'मेरी कौन सी उम्र थी इन दुखों के लिए? मेरी कोई शकल थी इन आंसुओं के लिए? मेरी मौत ने मुझे तेज से क्यों वियुक्त कर दिया? तू ने मेरी कहानी ऐसे क्यों गढ़ दी? मैं रोती हूं, तो क्या तुझे अच्छा लगता है?'

मुझे पिछले महीने अफ्रीका से आई एक चिट्ठी याद आ गई —— 'रात के दो बजे 'घोसला' खत्म हुआ । जानता हू, यह सारी कहानी कल्पना की देन है । फिर भी पूछना चाहता हू, मीना की छोटी रह गई बच्ची अब दुनिया में सुख से है या नही ? '

फिर पूना से 'पिंजर' का मराठी अनुवाद करने वाले की चिट्ठी याद आई——'रशीद और पूरो मेरे मन मे ऐसे बस गए है, मै सोचता हू, अगर कही उन्हें किसी शहर के बाजार में देख लू, तो फौरन पहचान जाऊ ।"

दूसरे दिन की डाक में एक और चिट्ठी आई । हिन्दी में 'अशु' पढ़ कर किसी ने लिखी थी——'दीदी ! इतना दर्द कहा से मिला ? अशु अपने राजन के पास चली गई है, उसे मेरा आशीर्वाद देना ।'

'काकनूस' शीर्षक एक कविता मैंने लिखी थी । उस कविता में काकनूस पछी की कहानी आती है कि वह बसन्त के मौसम में दीपक राग गाता है और उस राग से पैदा हुई आग में जल जाता है । मुझे रोज रात एक सपना आने लगा था कि फूलो से लदा एक बाग है । सफेद फूलो के एक वृक्ष पर बैठकर एक छोटा-सा पछी गा रहा है । फिर उसके पखो में से आग निकलने लग जाती है । जैसे-जैसे आग की लपटें ऊची होती जाती है, उसका गीत विलाप बनता जाता है । लपटे आकाश को छूने लगती है और उसका गीत सारी धरती पर गूंजने लग जाता है । यह सपना कोई छ महीनो तक लगातार आता रहा । मै जब जागती—मेरा माथा, मेरे हाथ और मेरे पैर जल रहे होते । यहा तक होने लगा कि मुझ से पैरो में जूता न डाला जाता । जलते तलुवे कभी ठडे फर्श पर रखती और कभी पानी म—और जिस दिन कोई मेरे उस गीत को गा रहा होता, उस दिन मुझे हलका सा ज्वर हो जाता ।

कहते है कि बालजक जब बीमार पड़ा, किसी डाक्टर का इलाज उसे माफिक नही आता था । उसकी बीमारी दिन दिन बढती जाती थी । और जब बालजक मर रहा था, वह कहने लगा——'बिऐनचन को बुलावा दो, वह मुझे बचा लेगा ।' यह बिऐनचन, बालजक के बहुत से उपन्यासो का एक समझदार और ईमानदार डाक्टर पात्र था ।

तभी तो मैंने कहा न कि जितनी तपिश से कोई जिए, उसके पात्रो मे उतनी ही गरिमा होती है !

★

पत्र-लेखक रवीन्द्रनाथ——(पृष्ठ १० का शेषांश)

स्वभावतः वह कुछ उत्तर पाने की आशा करता है । पत्र का उत्तर न देना निमन्त्रित व्यक्ति की पत्तल में भोजन न परोसने के समान है ।' हठात एक दिन परेशान होकर बोले——'अब मे किसी को चिट्ठी-पत्री नही लिखगा——अब मुझसे यह सब हो नहीं पाता ।' उन्होंने यह कहा अवश्य, किन्तु अगले दिन ही देखा कि वे कागज-कलम लेकर बैठ गए हैं और सुधाकान्त बाबू एक के बाद एक चिट्ठी लिफाफो में डालते जा रहे है । पत्र लिखना और पत्र पाना——ये दोनो ही उनके जीवन के नित्य नैमित्तिक कार्य थे ।

★

दशानन

प्रेमेन्द्र मित्र

जहा बसते हो तुम बनाते हो स्वर्णमय
अपने दुर्जय तपस्याजनित वीर्य से ।
कौन सी भूल तो भी
तुम्हारी कीर्ति की जड को काटती रहती है सर्वदा ?
तुम हो अद्वितीय, फिर भी चिरप्रीतिहीन !
क्या है वह केवल लोभ, केवल भोगी की लालसा
या निबल का निष्फल दभ ?
शायद इन सबका कुछ भी नहीं ।
दुर्बोध विस्मय की वस्तु है
देवताओं के लिए यह दानवीय दुर्बलता ।
सीता को स्पर्श नही कर पाते,
छल, बल और कौशल सब
विफल कर देते स्वयं ही
उनकी सम्मति की भिक्षा में ।
हृदय के इस सम्मान से
बढती है दीप्ति रामायण की ।
अपने लघु कापुरुष हाथों से
जो अपने जीवन को नापते हुए
घरोंदो में निश्चिन्त होकर सचित अर्थ का हिसाब करते है,
ईर्ष्या से, द्वेष से
तुम्हारी विशाल मूर्ति सर्वदा वे
कलकित करते हैं तो करें,
इन सबके बहुत ऊपर तुम दूसरे ही आकाश के नक्षत्र हो !
केवल एक ही पक्ष को समझकर
जीवन खण्डित मत करो,
दशो दिशाओं से करो प्रकाश का अन्वेषण,
तभी तो बनोगे तुम सच्चे दशानन !
सीढी अभी नही बनी है,
स्वर्ग अब भी दूर है ।
किम्वदन्ती——कल्पना मे तुम्हारी चिता की आग
तभी शायद बुझकर भी नहीं बुझती,
हे अतृप्त पृथ्वी-प्राण,
शून्य द्रोही, शाश्वत विद्रोह !

अनुवादक गोपालचन्द्र दास

को० कटम्बराव

हाल की बात ह । एक नौजवान मेरे घर आया, वह मुझ से परिचित नहीं था । मैंने सादर उसे कुर्सी पर बिठाया । पूछा—"कहिए क्या समाचार है ?"

"जी, ऐसी कोई खास बात तो नहीं है, हा एक पत्र निकालने का इरादा है । इस सबध मे आपकी सलाह लेने आया हू ।"—युवक ने कहा ।

"पूजी हो तो पत्र चलाना कोई मुश्किल काम नहीं है ।"— मैंने कहा ।

"चलाने के सबध में सलाह की उतनी अपेक्षा नहीं, क्योंकि चलाने का तो पक्का इरादा मैंने कर लिया है । सलाह आपसे पूछनी यह है कि किस प्रकार पत्र चलाना 'अच्छा' होगा ।"

"अच्छे का क्या मतलब है ?"

मेरा सवाल सुनकर युवक कुछ देर के लिए ठिठक गया । बोला—"पत्र वैसा हो, जो सभी को अच्छा लगे ।"

"इसमें सभी को अच्छा लगने वाला सवाल ही क्या है ? अगर वह पत्र ठीक नहीं बिका तो आपको अच्छा नहीं लगेगा । बिक्री ठीक हुई तो दूसरे पत्रवालो को अच्छा नहीं लगेगा । उन लोगो का अभिशाप सदा आपके पीछे लगा ही रहेगा । वह पत्र उसके लेखको को अच्छा लगा तो पाठकों को अच्छा नही लगेगा ।"—मैंने कहा ।

मेरी ये बातें शायद युवक को कुछ जची नहीं । बोला—"अच्छा लगने से मेरा मतलब जरा देखने में शानदार हो, पढ़ने मे मजेदार हो, उसका प्रचार भी जोरदार हो । वह समाज के लिए कल्याणकारी भी हो, साथ ही हमारे लिए भी लाभकारी हो ।"

"मैंने तो पहले ही कह दिया न कि इतनी बातें एक साथ नहीं हो सकती ।"—मैंने कहा ।

"यह मेरी समझ मे नहीं आ रहा है ।"

"जैसे कि आपने कहा, पहली बात है समाज का कल्याण । मगर जनाब ! समाज अपना कल्याण चाहता हो तब न ? वे लोग पैसा देकर जो पत्र खरीदते है उसमें उनके लिए आवश्यक विज्ञान, प्रबोध, नीति सबधी बातें हो, तो फिर लोगो को वह पत्र रुचेगा कैसे ?"

"क्यो, रुचेगा क्यो नहीं ?"

"हर्गिज नहीं ! अपने पैसे का आनन्द मिल जाए, बस उनके लिए काफी है, लोग सतुष्ट हो जाएगे । पत्र सिर्फ आकर्षक ही न रहे, बल्कि आनन्द-दायक भी हो ।"

"तो फिर बताइए किस प्रकार के लेख छापे जाए उस पत्र में ?"

"कहा न, जो पाठको को आनन्द दे सकें ।"

"कैसे ?"

"उन लोगो के आदर व अभिमान के पात्रों के तिरगे चित्र और सिनेमा के दृश्य आदि धड़ल्ले से छापिए ।"

"वह तो रहेगा ही । लेकिन रचनाओ का सवाल कैसे हल होगा ?"

"रचनाए ? आपका आशय म न समझा ।"

"लेख, कथा-कहानिया, एकाकी आदि ।"

"ओ ! ऐसी चीजें ! मगर ऐसी चीजें पाठको को रुचती तो नहीं ।"

"तो फिर पत्र चलाना ही मुश्किल हो जाएगा ।"

"हा, कुछ हद तक तो मुश्किल है जरूर ।"

मेरी बेवकूफी पर युवक हस पड़ा, बोला—"क्यो, पाठक ऐसे लेख क्यो नहीं पसन्द करेंगे ?"

"चूकि लेख मे भाषा रहती है ।"

"भाषा उनका क्या बिगाड़ेगी ?"

"भाषा समझने के लिए भी तो योग्यता चाहिए न ? हम कुछ भी लिखें, आजकल के पाठकों की समझ में नहीं आता । उलटे यह शिकायत होती है कि मेरी भाषा बोझिल है, कटु है । मेरी रचनाए किसी की समझ में नहीं आतीं । मैं सौ दो सौ से ज्यादा शब्द इस्तेमाल भी नहीं करता । फिर दूसरी शिकायत यह होती है कि मेरी रचनाओ के भाव विलक्षण होते ह ।"

युवक एक क्षण सोचकर बोला—"सुनने मे आया है कि कुछ पत्रो की खूब खपत होती है ।"

"हा, हा, वह सब म जानता हू । उन पत्रो को पढ़ते भी है तो वैसे ही लोग, जिनको चित्र देखना भार मालूम है । फिर भी यह शिकायत होती है कि उसके भी लेख उन लोगो की समझ में नहीं आते ।"

युवक को बड़ा ताज्जुब हुआ ।

"तब यह समस्या हल कैसे होगी ?"

"उसके लिए एक ही मार्ग है । उसका हल उन लोगो के पास जाकर ढूढिए जो अनपढ़ तथा विचार-शून्य लोग है । मेरे ख्याल से आम तौर पर आजकल के किसी युवक को अपनी मातृभाषा के साठ-सत्तर शब्दो से ज्यादा आते भी नहीं । उनकी परिचित शब्दावली से काम चला कर कोई लेख लिखा जा सके, तो सभव है आसानी से उनकी समझ में आ जाए ।"

"तब फिर पहले पत्र चलते कैसे थे ?"

"आजकल चलना भी कोई चलना है ? अलावा इसके उन दिनो शुद्ध प्राथमिक भाषा के पारगत ही पत्र पढ़ा करते थे । वह भाषा क्या थी लोहे के चने चबाना ही समझिए । आज ऐसे लोगो के पास पत्र खरीदने के लिए पैसे कहा है ? मुझे विश्वास नहीं होता कि आजकल के पत्र-प्रेमी कुछ विशेष पढ़े लिखे होते है ।"

उस युवक को एक और सदेह हुआ, बोला "तब क्या पत्र को साहित्यिक रूप देना ठीक न होगा ?"

"ना ना, ऐसी कल्पना स्वप्न म भी न करनी चाहिए । आज साहित्यिक पत्रो की सिर्फ दो सौ कापिया खपती है, जब कि दूसरे पत्र हजारो की सख्या मे खपते है । अगर साहित्य को छोड़कर किसी अन्य कला संबधी हो तब तो मेरा विश्वास है कि एक सौ से भी कम प्रतिया खपेंगी ।"

"वैज्ञानिक पत्र हो तो ?"

"हा, अगर वह समाजिक, विज्ञान सबधी पत्र हुआ तो शायद पाच-छ सौ तक प्रतियां खप जाएँ। अगर उसमें शास्त्र, विज्ञान सबधी लेख हुए तो हो सकता है उससे बहुत ही कम बिकें। मगर हा, अगर यौन विज्ञान सबधी लेखमाला रहे तो इन सबसे कुछ ज्यादा ही खपने की सभावना है।"

"तब ऐसा ही पत्र निकालने में क्या हज है ?"

"लेकिन ऐसे पत्र खुले आम हाथ में लेकर घूमने में लोग हिचकिचाते है।"

"लेकिन हमारे पत्र के लिए तो अर्थ से भी ज्यादा ख्याति की आवश्यकता है। किन्तु एक दो सौ ग्राहको से प्रचार कैसे हो सकता है। इसलिए सर्क्यूलेशन की बात सोच रहा हू।"

"यह सब पैसे के लिए थोड़े ही किया जा रहा है।"

"अगर सिनेमा पत्र निकाला जाए तो एक पथ दो काज हो।"--मैने कहा।

"सिनेमा के बारे में लिखनेवाले योग्य लेखक है कहा ?"

"यही बात आप अब तक समझ नही सके। लेखक की बात तो उठाइए ही नही।"

"तो फिर काम कैसे चलेगा ?"

"मुश्किल तो यही है, सिनेमा से सबध रखनेवाले तो लिखते नही और जो लिखते है उनका सिनेमा से सबध नही होता।"

"तो सिनेमा-पत्र कैसे चलाया जाए ?"

"चित्रो से भर कर।"

"क्या, आप सिनेमा के दृश्यो की बात कर रहे है ?"

"मगर वह भी मेरी दृष्टि में इतना आसान काम नही है। तेलुगु चित्र बनते भी कम है। फिर लोग स्टिल्स ही नही लेते।"

"क्यो ?"

"शायद यह पब्लिसिटी के अनुकूल नही है। मुझे ठीक ठीक इसका पता नही है।"

"तो फिर आपकी सलाह क्या है ?"

"पुराने पत्र में जो चित्र छपते है, उनके ब्लाक्स खरीद सकते है। अग्रेजी, हिन्दी, तमिल के सिनेमा सबधी चित्र आप छाप सकते है। और सिनेमा सितारो के दस साल पहले के फोटो भी छाप सकते है।"

"क्यो ?"

"क्यो नहीं ? अलावा इसके दो तीन लेख दुनिया भर के लोगो की टीका-टिप्पणी करने के लिए भी रहने चाहिएँ। अगर यह नही रहा तो वह सिनेमा पत्र कहलाएगा कैसे ?"

यह सुनकर युवक का मुह फीका पड गया।

"इतना सब होने के बाद भी कुछ सर्क्यूलेशन होगा या नही ?"

"नही।"

"अच्छा हुआ कि आपने जल्दी बता दिया। तो फिर कैसा पत्र निकालना ठीक होगा ?"

"कहानी-प्रधान पत्र निकालिए न।"

"जहा तक मेरा ख्याल है ऐसे लेखक नही के बराबर है, जिनकी कहानिया लोगो की (पत्र खरीदनेवालो) समझ में आती हो।"

"खैर, बच्चो का पत्र ?"

"हा, वह चल सकता है।"

"लेकिन सोच रहा हू कि बच्चो के पास इतना पैसा कहा से आएगा ?"

"ऐसी कोई बात नही। बच्चो का पत्र बड़े ही खरीदकर पढ़ते है। जैसे महिलाओ के पत्र मर्द महाशय ज्यादा पढ़ते है।"

"बच्चो के पत्र कुछ खपते भी है या खाली ढिढोरा ही ढिढोरा पीटा जाता ?"

"मै जहा तक देख रहा हू, खूब खपते है।"

युवक क्षण भर सोच कर एकदम खड़ा हो गया। शायद कोई जरूरी बात याद आ गई। "अच्छा, विदा" कहकर वह चला गया।

एक दिन की बात है। घूम-फिर कर घर आया तो देखता क्या हू कि मेरी मेज पर एक नया मासिक पत्र पड़ा हुआ था। खोलकर देखा। उसका नाम था 'पगला'। पन्ने उलटे। कई तिरगे चित्र भी थे। मुखपृष्ठ आखें चौंधियाने वाला था। परन्तु किसी चित्र में इतनी कला नहीं थी जितनी कि निम्न से निम्न श्रेणी के चित्र में अपेक्षित होती है। फिर लेखो की बात ही क्या ? एक में तो बे-सिर-पैर के साथ ही व्याकरण की अशुद्धियो की भरमार थी। लगा, इतनी भ्रष्ट भाषा बच्चो की भी शायद ही होती हो।

मुझे इस बात का ख्याल नही रह गया था कि किस महाशय का यह विश्व-साहित्य के लिए वरदान है। दुबारा उलट के देखा तो यह समझने में देर न लगी कि यह उसी महाशय का है जो उस दिन मुझसे मिले थे। मुझे आश्चर्य करने का भी मौका नही मिला कि वह महाशय तूफानी चाल से आ धमके।

"जी आपको हमारा पत्र मिल गया होगा, ओ हो शायद आप वही देख रहे है। बताइए, कैसा लगा ?"

"मुझे इसके खपने में शक है।"--मैने असतोष प्रकट करते हुए कहा।

"मगर वह तो यहा खूब बिक रहा है। मैने आज सवेरे यहा के एक एजेंट को ५६० कापिया दी थी। फिर अब एक हजार कापिया माग ले गया है।"-- युवक ने कहा।

"आपने कितनी कापिया छापी थी ?"

"पहला अक था। डर था कि कही नही खपा, तो इतना सब बेकार जाएगा, अत पाच ही हजार कापिया छापी थी। लेकिन अब कम से कम बीस हजार छापे बिना काम नहीं चलेगा।" उसने कहा।

मुझे शक हुआ--शायद वह चकमा दे रहा है।

"कोई बात नही, प्रति लेख के लिए पचास रुपये तो दे ही दूगा। अगले अक में यह घोषित करूगा। आप देखेंगे कि मेरा पत्र वह काम कर दिखाएगा जिसके करने में बाकी पत्र असमर्थ है। कम से कम, लेखको को जीविका का मार्ग तो दिखा सकता हू।"--उसने कहा।

चार महीने भी पूरे नही हुए थे कि 'पगला' की पचास हजार प्रतिया बिकने लगी। सपादक ने ऐलान किया कि लेखको को प्रति लेख के लिए एक सौ रु० पुरस्कार दिया जाएगा।

मैने कहा--अटशट मुझ से जो बन पड़े क्यो न लिख के भेजू ? अपनी शक्ति भर कूड़ा करकट जमा किया। लेख किसी तरह पूरा हुआ। हमारी बीवी ने इसको देख लिया। बस, लगी धमकाने, अगर यह लेख छपा, तो तुम्हारा-मेरा कोई वास्ता नहीं रहेगा। मै मायके चली जाऊगी। मैने कहा दिल में--अरे यह गुस्सा के दिन टिकेगा ? एक बनारसी साड़ी लाया कि गुस्सा हवा हुआ।

मगर तीन दिन के बाद मेरा लेख वापिस आ गया। उसके साथ एक .त्र भी था--"खेद की बात है कि हम ऐसे गभीर और भावुक लेख छापने में असमर्थ है। कोई सरल लेख भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

मै दग रह गया--'पगला' गभीर और भावुक ?

अनुवादिका : डॉ० मजुलता

नई औपन्यासिक प्रवृत्तियां

शचीरानी गुर्टू

हिन्दी उपन्यास इधर पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति के साथ कई मंजिलों से गुजरा है, किन्तु कतिपय ह्रासोन्मुखी धाराएं जो नवीनतम या अत्याधुनिक कला टेकनीक का रूप धर कर हमारे बीच जोर पकड़ती जा रही हैं उनसे कितने ही नए-नए बेबुनियादी पहलू एक नई अनोखी ताजगी और ताकत के साथ अजीबोगरीब ढंग से पेश किए जा रहे हैं। इनका मूल्य और सर्वप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है, क्योंकि आज के रचना-शिल्प और भाववस्तु के काल्पनिक उपादान जिन मानसिक प्रक्रियाओं के दुर्विलास की ओर आकर्षित हैं उनके उत्स्फूर्त प्रसंगों के वैविध्य में गैरवाजिब नाम की कोई चीज नहीं। छायावादोत्तर काल के दशकों की गहराई की थाह लेते हुए जो सम्पर्क या विचार हमारे सामने आए, वे किसी निश्चित जीवन-दर्शन के दायरे में बन्दी नहीं, यों शैलीगत वैशिष्ट्य के अन्तर्गत एकदम निजी और वैयक्तिक प्रयोग ही प्रायः मौजूदा उपन्यासों की कसौटी बन गए हैं।

ज्यों-ज्यों परम्परानुमोदित मान्यताएं एक झटके के साथ अस्वीकारी जा रही हैं, एक नए वस्तु-तत्व, एक नवीन जीवन-दर्शन और एक वीरानी-सी अनपेक्षित सामाजिकता उपन्यास के रूप और शिल्प, भाव-पक्ष एवं कलापक्ष दोनों पर हावी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में वे पुरानी कसौटियां, जिन पर हमें नाज है, कहीं की कहीं पिछड़ कर दूर जा पड़ी हैं।

तो कहें कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, काल्पनिक वर्ग-संघर्ष की गुत्थियां अथवा वाद-विवादों के बवंडर ने उपन्यास को आधुनिकता की ऐसी जकड़बन्दी में कसा है कि जिससे उपन्यासकार के कल्पना-जगत में एक से एक नई परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं और इस कारण उसकी कोई एक खास दिशा निर्दिष्ट नहीं हो पाती।

चूंकि समूचा उपन्यास लेखक की कल्पना से ही सिरजा जाता है, अतएव भिन्न-भिन्न प्रसंगों, घटनाओं और पात्रों की सृष्टि इतनी यथार्थ और नैसर्गिक होनी चाहिए कि वह पढ़नेवाले को बिल्कुल सच्ची और विश्वसनीय लगने लगे। दिल पर वे ऐसे अक्स हो जाएं कि जीते-जागते व्यक्तियों की भांति ही हम उनसे सलूक करें। जैसा चरित्र हो वैसा ही उससे तादात्म्य स्थापित हो जाए, उनकी जीवन समस्याएं हमारी हों और उनकी यथार्थता हमारे जीवन की यथार्थता बन जाए अथवा नितान्त विश्वसनीय बन कर हमारे दिलोदिमाग पर अपनी अमिट रेखाएं आंक जाएं। संघटनात्मक तत्वों के योग से परिस्थितिगत और परिवेशगत उत्थान-पतनों के निदर्शन के साथ-साथ उपन्यास में यदि निम्न बातों का ध्यान रखा जाए, यथा—

(१) किसी पक्ष में अतिरेक की गुंजाइश न हो।

(२) नूतन इकाई पर टिककर अराजकता और अन्तर्विरोध की भ्रांति में न पड़े।

(३) जीवन कितना बड़ा है, पर देखना है कि उसमें केन्द्रित संवेदनात्मक उपलब्धियां या संश्लेषण के तत्व कहां तक विकसित हुए?

(४) भले ही सीधे, समतल पथ के बदले विसंगतियों से गुजरकर विरोधी तत्वों के समन्वय के लिए विकास का विषम पथ अपनाना पड़े, किन्तु विशाल नूतन क्षितिज के अन्तर्गत इस प्रतिक्रिया का एक अटूट और सम्पुष्ट क्रम तो चलता रहना ही चाहिए।

(५) पूर्वाग्रह के पाश से मुक्ति का अर्थ है नई अनखोजी दिशाओं में किसी विशिष्ट विचारणा या खोज का अभियान, अन्यथा मौलिक प्रदेय से विहीन के क्या मानी हो सकते हैं?

(६) उत्साह की उद्वेलित तरंग से या जीवन्त बौद्धिक सहानुभूति से प्रेरित होकर भव्य एकान्वय की ओर गति हो तो व्यापक मूल्य-चेतना के अन्तर्गत वैयक्तिक मूल्यों की संस्थिति क्या है, कौन से उपादान या साधन-सूत्र हैं और कहां से वे उभरते हैं तथा किस माध्यम से उन्हें ग्रहण किया जाता है। लेखक चूंकि एक स्वयम्भू सत्ता है, अतएव उसकी कृति अर्थात उसके द्वारा रचित उपन्यास कहां तक पूर्ण इकाई बन सका है और उसकी विभिन्न व्यष्टियां सापेक्षिक और क्यों कर एक-दूसरे की पूरक बन पड़ी हैं। लेखक की सबसे बड़ी लाक्षणिक विशेषता यह है कि जीवन-जगत के सत्य को अपने मोहमुक्त स्वानुभूत मौलिक चिंतन द्वारा उपलब्ध करे, क्योंकि गतिमान जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, क्षण-क्षण, पल-पल उसका कुछ बदलता रहता है, लेकिन वह एक तरह से नित्य सनातन की ही मनोवैज्ञानिक पुनरावृत्ति है।

तो इस अनुभूत साक्षात्कार को सीखने-समझने की भी एक प्रक्रिया है अर्थात समझकर हृदयंगम करने की एक ऐसी अपराजेय जिज्ञासा जो हर नुक्ते पर नजर रख कर उसकी तह तक पहुंच जाए, उसके तीव्रतम घात-प्रतिघातों को महसूस करे। अन्त में इस अबाध प्रक्रिया को बरतते-बरतते जब अचानक अंधकार फट जाता है तो आर-पार मुक्त प्रकाश में बहुत कुछ नजर आता है। जीवन समग्र के भीतर—भले ही खण्ड रूप में उसे लिया जाए—कोई भी दुःख-दर्द, समस्या, आशंकाएं या संघर्ष हो तो वह उसका उचित आकलन करे और सम्पूर्ण सत्य के प्रकाश में उसे देखे। मेरी सम्मति में लेखक का ऐसा सूक्ष्म निरीक्षण और असाधारण मनोवैज्ञानिक अंकन ही कारगर हो सकता है।

कहने का अभिप्राय है कि उपन्यास में जो चीज जिस ढंग से सामने रखी जाए उसे वैसा ही ग्रहण कर लिया जाए तब बात है, क्योंकि किसी उपन्यास की कल्पना आख्यान मात्र नहीं, वरन एक ऐसा यथार्थ है जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। यह एक ऐसा सच्चा अनुभव है जो विश्लेषणात्मक युक्तियों से और भी गहराई से समझा जा सकता है। उपन्यास भले ही कल्पना हो या किसी व्यक्ति विशेष की सहज प्रवृत्तियों की प्रेरणा से लिखा गया कथाख्यान, कुछ की नजरों में वह मानसिक ऐय्याशी अथवा विश्राम के क्षणों की काल्पनिक सृष्टि भी हो सकती है, मगर उसकी अपनी एक निराली दुनिया है जो अपने ही कार्य-कारण के पारस्परिक सबंधों और नियम-उपनियमों से परिचालित होती है। उसके क्रमप्रसार में अनेक वृत्तियों का प्रदर्शन और तत्सम्बन्धी वस्तुओं का आभ्यन्तर और बाह्य प्रत्यक्ष साकार हो उठता है जिसमें केवल यही अन्तर है कि वास्तविक जीवन में मनुष्य के संकल्प और विकल्प का हाथ रहता है, परन्तु औपन्यासिक संस्कृति की निजी मौलिकता में सृष्ट पात्र ही नाना विधियों से, वाणी-कर्म द्वारा, संघर्ष रूप जीवन के अधिष्ठाता हैं। उनका जीवन परिवृत्त ही नहीं, बल्कि पूर्व निश्चित और नियन्त्रित भी है और उसकी अपनी विवशतावश सीमाएं भी होती हैं।

अनुभूतियों और वृत्तियों की अनुरूपता के कारण उक्त अनुभूतियों से प्राप्त सत्यों और निष्कर्षों का वाहक भी हम उसे कह सकते हैं। साहित्य की लिखित विधाओं के अनुसार उसके अनेक भेद हैं, कितने ही रूप और प्रकार हैं जिनमें जीवन-चित्रों और भाव-क्षितिजों की गतिमयता में बंधा उपन्यासकार अपनी निष्ठा और आत्म विश्वास को उद्भासित करता है।

पर उपन्यास का दृष्टिकोण आज कितना बदल गया है। वह पहले की तरह एकदम कुतूहल की कुंजी अथवा रहस्यमय तिलस्मी अजूबा नहीं है और न ही नूतन संस्कार एवं प्रभावान्विति की दृष्टि से रंग-रेखाओं के हल्के-फुल्के 'स्ट्रोक्स' या इधर-उधर तुक भिड़ा देने से ही काम चलता है। इसके विपरीत हर घटना, क्रिया, भाव, प्रसंग, वर्ण्य विषय और विभिन्न ब्यौरों की गतिमयता के शाश्वत क्रम में, सामाजिक जागरूकता के धरातल पर, प्रगति के नए चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए कुछ ऐसे बदले हुए अनुबन्ध और माध्यम खोजने पड़ते हैं, जो उसके मौलिक आदर्शों और सिद्धान्तों के वाहक बन सकें।

आजकल भिन्न-भिन्न वर्ग के जीवन-दृश्य नए वातावरण और नई परिस्थितियों के साथ संश्लिष्ट करके आंके जा रहे हैं। मुख्यत फ्रायडीय और कम्युनिस्ट—इन दोनों का दाम्भिक कर्मयोग अभिनव प्रतीकों और शब्द-चित्रों में उभर कर सामने आ रहा है। पहले में अपने को स्वयं की परिधि में पूर्ण समझने वाला, एकान्त और वैयक्तिक विचारों का दारुण परिणाम भी कहा जा सकता है, जबकि दूसरे में घृणित शोषक वर्ग के ऊपरी मुलम्मे और भीतरी खोखलेपन की झांकी मिलती है, साथ ही शोषितों की मजबूरी के रोमांचक नजारे भी पेश किए जाते हैं। पहला 'सुपीरियोरिटी काम्प्लेक्स' से पीड़ित है और दूसरा 'इनफीरियोरिटी काम्प्लेक्स' से, दोनों का नैतिक पतन धड़ल्ले से दर्शाया जाता है—शोषक वर्ग का इसलिए कि उनकी उत्कट विलासिता और भोगवृत्ति का पर्दाफाश किया जा सके, शोषित-प्रताड़ितों का इसलिए कि निर्धनता और बेबसी की उन्हें कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

फ्रायडीय चित्रण में एक बिखरे हुए आकर्षण का वैशिष्ट्य है, पर संयत सुखोपभोग के उस बिन्दु तक नहीं जहां सुषुप्ति और चेतना, बाह्य और अन्तर्मन, उल्लास और आहें, हास और अश्रु घुलमिल कर एक हो जाते हैं, इसके विपरीत कामजन्य आवेग के शोले से भड़क कर अपने उद्दाम प्रसार और उत्तेजना से जो उभारते हैं वह है तेज दहकते सांस, सीने का दर्द और एक उमड़ता, अमर्यादित व्याकुल ज्वार। जीवन का एक एक प्रसंग, एक-एक पल, एक-एक अनुभूति स्वच्छन्द और अनुशासनहीन काम-आवेगों का स्फुरण मात्र है जो दमित कुंठाओं से उपजी आत्म-भर्त्सना की अनिरंजित संवेदनाएं जगाता है।

'दमित कुंठा' के अर्थ में आज बहुमुखी विस्तार है जो अधिकाधिक नैतिक यान्त्रिकता में विकसित होती जा रही है। स्वप्न जगत के भावनात्मक पक्ष को उसके स्थूल भौतिक पक्ष से अधिक तूल देकर आज के मानव ने अपनी क्षुधाओं से नियन्त्रण हटा दिया है, क्योंकि उसकी दृष्टि में आचार-बन्धन की सीमाएं कोई मानी नहीं रखतीं। वे कृत्रिम हैं और मौजूदा सभ्यता में उनके व्यावहारिक पहलू नगण्य हैं। 'प्रणय' तो परम्परागत है परन्तु उसका नव्यतम रूप बौद्धिक मूल्यों की अधिकाधिक प्रतिष्ठा के साथ मनोग्रस्त होता जा रहा है और उसको प्रमाणित करने के लिए फ्रायडीय दर्शन में उसे यथेष्ट आधार भी मिल गया है।

फलत लेखकों का मनोविश्लेषणवादी कुण्ठाग्रस्त वर्ग मन के सपनों में डूबी एक अजीब सी कशिश और रहस्यमयता का पर्दाफाश करने या ऐकान्तिक ऊहापोह के समाधान में लगा है तो सर्वहारा वर्ग इसका सारा दोष समाज के मत्थे मढ़कर मध्यवर्गीय संस्कारों से सिरजी अनपेक्षित आकांक्षाओं और नग्न कामुकता के दहकते अंगारों की एक बेहद तीखी और गहरी दहशत पर किसी खामोश बेबस प्यार के शबनम की बूंदें छिटकाने में मजा ले रहा है। पहला वर्ग नैतिकता को नया मनोवैज्ञानिक आधार देना चाहता है तो दूसरा वर्ग इस नए मनो-विज्ञान पर स्वनिर्मित नैतिकता को आरोपित करने में लगा है। इसका परिणाम है कि प्रेम के तौर-तरीके और ढंग बहुत कुछ बदल गए हैं। उसकी गहन गम्भीरता बाहर के उथलेपन को नहीं ढकती, वरन अपनी निषिद्ध जड़ता में भटके हुए उच्छृंखल मन को समो सी लेती है। अन्तर्तम सत्ता का आत्मार्पण जो प्रेम में इतना सुस्थिर, लीन और एकीभूत होता है और अपनी निस्सीमता में आविष्ट कर लेता है, वह निम्नतर तत्त्वों से उपजी आसक्तियों, उद्वेगों अथवा वर्जित इच्छाओं के निदर्शन और आज की नियन्त्रणहीनता में अधिकाधिक प्रश्रय पाकर उस उद्धत आचरण या लेखक के निजी 'अहं' अथवा एक ऐसी बंधी-बंधाई रूढ़ विचारधारा पर आ टिका है जिसे न मन जानता है और न जिसकी चेष्टाओं एवं भंगिमाओं के आधार ही समझ पड़ते हैं।

प्रेम की मूल भावना, स्रोत या उत्स भी पहले से बहुत कुछ भिन्न है। स्त्री-पुरुष की एकात्म-स्थापना का जो सहज आनुपातिक सम्बन्ध है वह मौजूदा मनोविज्ञान में संवेगों की परिभाषानुसार उनके परस्पर प्रणय के स्वरूप का निर्धारण सर्वथा नए ढंग से पेश करता है। असम्भाव्य कल्पना के आधार पर वह एक ऐसी अनहोनी इकाई बन गया है, अचेतन की अबूझ प्रक्रियाओं का एक ऐसा तनाव अथवा मानसिक द्वन्द्वों का एक ऐसा विघटन जिसके ओर-छोर का कोई मापदण्ड नहीं और न ही जिसके सर्वांग का कोई चित्र आंका जा सकता है। कारण—

लेखक के मन की शतखण्ड ग्रहता ही इस तरह के छिछले प्रेम को पैदा करती है, अतएव भ्रामक धारणाओ और भौडी कल्पनाओ के सहारे यह अज्ञात दम्भ की दहक ही उनकी विकासमान शिल्प-साधना को भस्म कर रही है। इसके विपरीत यथार्थवादियो में दैनन्दिन जीवन की निर्विशेष सघर्षमूलकता से टकराकर इसी ग्रह ने चीत्कार उत्पन्न की है। इस ग्रस्तयुग में पैशाचिक नगे नाच की कोई सीमा नही है, गरीब बेकस की जैसे हर उमग पिस रही है। हर अरमान लाचारी बन कर वाष्प उगलता है और आधियो, तूफानो और जलजलो का ऐसा समुन्दर सा उमड रहा है कि लगता है मानव-चेतना का तो विस्तार हुआ है, परन्तु उसका जडतत्व अर्थात 'पशुता' अभी ज्यो की त्यो विद्यमान है। कहना न होगा कि नई औपन्यासिक भावभूमि पर अन्तश्चेतनात्मक के अर्थ में मनोवैज्ञानिक सत्य बहुत कुछ रूढ हो गया है। परम्परावादियो ने उसे जैसा ऐकान्तिक और आत्यन्तिक रूप में लिया यथार्थवादियो की रूमानी प्रतिक्रिया की धकापेल उससे भी अधिक एक ऐसे अनुदार नियन्त्रण की पराकाष्ठा तक पहुच गई कि जहा कुछ भी वर्जित या अवर्ण्य नही। स्पष्ट है कि वर्ग विशेष के जीवन की यह अवसादपूर्ण भ्रान्ति या झूठे समझौतो की अनुगूज एक अवास्तविक प्रत्याभास मात्र है। उसमें सार्वजनीन आशय, स्वस्थ रोमास और युगीन दायित्व नही है बल्कि पेंचीदा या उलझी सवेदनाओ को उकसाने वाली ऐसी सतही मनोवृत्ति है जो देहगत स्वभाव और सामाजिक व्यवस्थाओ में भारी विषमता के आयाम पर टिकी लैंगिक अपरिपक्वावस्था में ही किसी क्रमिक प्रक्रिया द्वारा नही वरन अचानक रूमानी क्षण में--घृणित कामजन्य उद्वेगो का अनधिकार प्रवेश कराती है, जिसकी झुलसी मुर्दा छायाओ में गहरे अर्थ तो खोए हुए लगते है, पर अर्थहीन, छिछले, बेजान चित्र अधिकाधिक उभरते है।

तो क्या आज के साहित्य का 'व्यापक सत्य' हमारी वे परिस्थितिया और नित-नई समस्याए नही बनती जा रही है, जिसने हमारे विचार और भावनाओ को अपने पाश में जकड लिया है और जिसकी वजह से सृजन कल्पना आसानी से उस ऊचाई को नहीं पहुच पाती जहा श्रेष्ठता के प्रतिमानो को कोई मेधावी कलाकार ही यदाकदा छू पाता है।

इधर कुछ आचलिक उपन्यास भी लिखने के प्रयत्न हुए है, परन्तु वे भी एक सकुचित वातावरण की यथार्थता से आगे उभर कर नही आ पाए। जमीन कही की भी हो, किसी भी प्रदेश या अचल की, उसकी मिट्टी भी चाहे किसी रग की हो, मगर लेखक में स्थानीय विशेषताओ को पहचानने और उन्हें ज्यो का त्यो वास्तविक बना देने की क्षमता तो होनी ही चाहिए। वहा की स्वभावगत चेष्टाए, चारित्रिक अन्विति, कथ्य और समूची परिकल्पना के पूर्वापर सम्बन्धो को आकने, उनके आचरण, परिस्थितिगत द्वन्द्व, क्रम-सयोजन और परिवेश को सुनियोजित करने, उनमे रग-रूप भरने, उनकी जिन्दगी के सही कोण, सही पहलू, सही नाक-नक्श, भावमुद्राए, व्यवहार, चेष्टाए--यहा तक कि उनके पसीने की गन्ध पहचानने की भी बुद्धि होनी चाहिए, लेकिन बावजूद स्थानीय रगो, पात्रो, घटनाओ और विधि प्रसगो के प्रभाव-ऐक्य की अभीष्ट सिद्धि के लिए उनकी जिन्दगी का रूप उनका इतना अपना हो कि जिससे हर कहीं--हर मोड़ पर--सहज तादात्म्य स्थापित हो सके।

दरअसल, आज की प्रायोगिक प्रवृत्ति उपन्यास पर भी हावी होती जा रही है। नए प्रतीक, नए साम्य और नई टेकनीक बरती गई है, लेकिन फिर भी कोई खास शिल्पगत मौलिकता और मनोवैज्ञानिक निरूपण दृष्टिगत नही होता। उपन्यास के नए 'पैटर्न' के रूप में रहस्यमय, चमत्कारिक या जादुई वातावरण का निर्माण किया जा सकता है, पर मध्यवर्गीय अतृप्तियो के बहाने 'सेक्स' की भूख अथवा आत्म-प्रतारणा की द्योतक एक स्वप्निल पस्ती और वैवाहिक विपर्यय या सर्वहारा क्रांति के बहाने 'सिने' शिल्प के से नए 'कलाइमेक्स', विषम परिस्थितिया और सबसे बढकर दैहिक बुभुक्षा के उत्तेजक सश्लिष्ट चित्र अर्थात निचले वर्ग की अभिशप्त जिन्दगी के दिग्दर्शक वे ही घिसेपिटे सिद्धान्त, पूर्व धारणाए या थोपी गई 'आइडियोलोजी' ही हमारी मुख्य समस्याओ का मूलाधार बनी हुई है।

कभी सोचती हू कि क्या हिन्दी के उपन्यासकार इस सब इकसाली सडाध अर्थात रोमाचक, सेक्सी और प्रचारात्मक दृष्टिकोणो से ऊपर उठकर सर्वथा भिन्न स्तर की नई चीज नही दे सकते जहा गहरी अनुभूतिमयी बारीकिया सागोपाग सावर्य, मर्यादा, अनुपात के साथ मानवीय सवेदना का ऐसा अत प्रवाह जगा दें जो अपनी असीमता में आप्लावित कर लेने वाला हो। तिसपर भी अहभाव, पक्षपात या पूर्वाग्रहो से मुक्त न हो सकने के कारण वे अपने सापेक्ष ज्ञान और व्यक्तिगत धारणाओ को ही औपन्यासिक चित्रण का माध्यम बनाना चाहते है तो वे मात्र चलती-फिरती परछाइया न हो वरन सनकी, छिछोरे, बेढगे, गलीज, घृणित से घृणित और अदना से अदना—जिस तरह की भी रुचि, 'मूड' या टाइप के व्यक्ति हो—हाड-मास के सच्चे, सप्राण मानव होने चाहिए। विश्व कलाकारो में—हार्डी, डिकेन्स, थैकरे, स्काट, बाल्जाक, पुश्किन, ह्यूगो, ड्यूमा, तुर्गनेव, मोपासाँ, चेखव टालस्टाय, गोर्की आदि कितने ही ऐसे है जिन की कल्पना की निष्ठा इतनी प्रबल और सूक्ष्म है कि उनकी सृजन-सृष्टि का मिथ्यात्व भी यथार्थ बनकर चेतना पर छा जाता है। उनके पात्रो और कथा-चरित्रो की भावनाए, बातचीत, कार्यकलाप सभी कुछ इतने मनोयोग से आका गया है जो स्वयपूर्ण है और जिनके व्यक्तित्व का सम्मोहन यथार्थ के जादू से भी बढकर है। कथा-साहित्य के सभी सम्भव पक्षों को इन्होंने अपनी जादुई कलम से छुआ था। तो क्या भला निरवधि काल की सीमा इन महान कलाकारो के प्रभाव को कम करेगी और क्या कभी भी--किसी भी परिस्थिति में--इनका देय अग्राह्य होगा?

जैसे ईश्वर अपनी सृष्टि मे ऐसे प्राणियो को सिरजता है जिन की अपरिमित रहस्यमयी शक्ति नियति की डोर के सहारे नाचती है, उसी प्रकार उपन्यासकार द्वारा सृष्ट पात्रो के भी व्यावहारिक साचे है जिन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व की जवाबदेही बरतनी पडती है और जिन की नियति एक दूसरे से जुडी हुई महत्तर पर्णत्व की चुनौती स्वीकार करती है। जिस प्रकार ईश्वर प्रत्यक्षत मानव के प्रति विराट अभियान-नाट्य में निजी सत्ता को एक नित नवीन और असीम आकार प्रदान करता है उसी प्रकार लेखक का कथात्मक जगत भी (भले ही कुछ लोग उसे मिथ्या कहें) वास्तविक जगत है जिसका नियामक या सृष्टिकर्त्ता वह स्वय है, जिसकी आस्था एव अनास्था उसके चरित्रो के भाग्य से बधी है और जो विभिन्न प्राणियो के मूल्यगत भेद को कथा-चरित्रो के रहस्यमय आयामो में सश्लिष्ट कर देता है। परन्तु किसके पास है यह निश्चित कसौटी? कौन है जिसकी सृजनशील कल्पना अन्तर्दृष्टि

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

चन्द्र-चकोरी

मामा वरेरकर

पहला दृश्य

[चन्द्रकान्त अपने घर की अटारी की खिड़की में खड़ा है और खिड़की में झाँककर बाहर देख रहा है। सड़क से जा रही मोटरों की आवाज दूर से सुनाई पड़ रही है। वह किसी गीत का एक चरण गुनगुना रहा है। बीच ही में रुककर 'शु शु' करके ताली बजाकर सड़क से जानेवाले व्यक्ति को वह इशारा करता है। इसी समय उसकी बहिन किशोरी आती है।]

किशोरी--दादा !

चन्द्रकान्त--(चौंककर) कौन ?

किशोरी--कितने जोर से चौंके ! किसे इशारा कर रहे थे ?

चन्द्रकान्त--चौंका ? मैं क्यों चौंकूगा ? क्या मैं चोरी कर रहा था या किसी की जेब काट रहा था ?

किशोरी--अब क्यों बन रहे हो ? मैंने साफ-साफ देख लिया। शु शु करके ताली बजा रहे थे--और किसे इशारा कर रहे थे, यह भी कहो तो बता दूं। मैंने उसे सड़क से जाते हुए देख लिया था और इसीलिए तो तुम्हें जताने आ रही थी !

चन्द्र--जरा धीरे-धीरे ! कम-से-कम उसका नाम तो मत लो। ठहरना जरा, ऐं ! शायद वह ऊपर ही आ रही है। अच्छा तो तुम अब जरा यहाँ से खिसको।

किशोरी--क्यों ? क्या तुम समझते हो कि मैं कुछ नहीं जानती ?

चन्द्र--जानती हो न तुम ? फिर क्यों मुझे तंग कर रही हो ? अगर आबा (पिताजी) आगए तो--

किशोरी--आबा के आने से क्या होगा? वह कौन है, इसका आबा को क्या पता ?

चन्द्र--आगई शायद ? सच बताओ, आबा उसे जानते तो नहीं हैं न ? लो, वह आ ही गई। मैं सोच रहा था कि मेरा इशारा उसने सुना या नहीं ?

चकोरी--(प्रवेश करके) ओ मां ! तुम भी हो यहाँ !

किशोरी--डरो मत। मैं सब कुछ जानती हूँ। सुनो चकोरी ? हमारे आबा तुम्हें नहीं पहचानते। तुम्हारा नाम भी वे नहीं जानते।

चकोरी--पर हमारे दाजी साहब (पिताजी) इन्हें पहचानते हैं और इनका नाम भी जानते हैं।

चन्द्र--यही तो बड़ी मुश्किल आ पड़ी है। इसीलिए हमें चोरी-चोरी मिलना पड़ता है। और जब से दाजी को यह पता चल गया है कि मैं कौन हूँ तब से वे इस पर लगातार कड़ी नजर रखते हैं। आज कैसे छूट आईं उनके चुंगल से ?

किशोरी--देखो दादा, स्त्रियों से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते। कैसे भी छूटकर क्यों न आई हो। आ तो गई। जो बातें करनी हों, कर लो। मैं अब जाती हूँ। शायद आबा आ जाएँ। यदि आते हुए देखूंगी तो तुम्हें इशारा कर दूंगी। अब जाती हूँ, ऐं ? (जाती है)।

चन्द्र--देखा, मेरी बहिन कितनी होशियार है ? किसी को भी मैंने पता नहीं लगने दिया था--लेकिन इसे कहां से पता चल गया भगवान जाने ?

चकोरी--मैंने ही बताया है उसे।

चन्द्र--तुमने बताया ? तुम भी खूब हो ! अगर वह किसी दूसरे से कह दे तो हमारी क्या दशा होगी, यह कभी सोचा है तुमने ?

चकोरी--हमारा कुछ नहीं होगा ! और वह किसी से कहेगी भी नहीं। उसे तुम्हारी अपेक्षा मेरी चिन्ता अधिक है। मैंने उससे सब कुछ दिल खोलकर कह दिया है।

चन्द्र--फिर उसने क्या कहा ?

चकोरी--वह कहेगी क्या ? उसे कहने की जरूरत ही क्या है ? बात यह है कि हम तरुणियों को ऐसा ही कुछ अच्छा लगता है। इस तरह का कोई विरोध हुए बिना खिंचाव नहीं बढ़ता, और बिना खिंचाव के प्रेम का मजा क्या ?

चन्द्र--मैं तो अब बिलकुल हार गया हूँ। हम कब तक यूं लुक-छिपकर मिलते रहेंगे। यह भी क्या अजीब दुश्मनी है। तीन सौ साल की पुरानी दुश्मनी अभी तक पाले हुए हैं हमारे ये बुजुर्ग !

चकोरी--अब इसका कोई इलाज नहीं। उन्होंने जो एक बार तय कर लिया है, वह बदलेगा नहीं। हमें ही कोई राह निकालनी होगी।

चन्द्र--राह कैसे निकालें। राह एक ही है। हम दोनों कहीं भाग चलें।

चकोरी--ऐसा सुखमय घर-द्वार छोड़ कर ?

चन्द्र--फिर और क्या उपाय है ? दो में से एक को छोड़ना ही होगा।

चकोरी--कुछ भी नहीं छोड़ना होगा। थोड़ी राह देखनी चाहिए। धीरज रखना चाहिए। भाग जाने से क्या होगा ? हमारी सारी जिन्दगी तो सुख-चैन में गुजरी है। घर-द्वार, नौकर-चाकर, मोटर आदि सभी ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए हमने अभी तक जीवन बिताया है। सिर्फ एक ने ही नहीं, बल्कि हम दोनों ने। हम अगर भाग गए तो घर के लोग हमारा फिर कभी मुंह भी न देखेंगे। बड़े संगदिल होते हैं ये पुराने लोग। उनसे किसी भी प्रकार के समझौते की आशा नहीं करनी चाहिए। हम भागकर क्या करेंगे? अगर कहीं नौकरी करना चाहें तो तुम अभी मैट्रिक भी पास नहीं हो और मुझे तो अंग्रेजी स्कूल की सूरत भी नहीं दिखाई

गई है। मेरा तो काम रहा है खाना-पीना और ऐशोआराम में पडे रहना। यही स्थिति तुम्हारी भी है। तो बताओ हम भागकर करेंगे क्या ?

चन्द्र—भीख मांगेंगे। पर में कष्ट नहीं चाहिए।

चकोरी—यह कह देना कि भीख मांगेंगे सरल है। भीख कैसे मांगोगे ? आजकल कोई भीख भी तो नहीं देता। और रहेंगे कहां ? पैर रखने को कहीं जगह भी तो चाहिए न ? तुमने तो कह दिया कि भीख मांगेंगे। पर मील-भर चलने की आदत भी है हमें ?

चन्द्र—फिर क्या करना चाहिए ?

चकोरी—चुप बैठना चाहिए।

चन्द्र—कितने दिन ?

चकोरी—मौका मिलने तक।

चन्द्र—मौका कब मिलेगा ? मौका तभी मिल सकता है कि जब दोनों के बाप मर जाए।

चकोरी—ना, जी ना—ऐसी अशुभ बातें नहीं करते।

चन्द्र—अब और अशुभ होने को क्या बचा है ?

चकोरी—ऐसा कहने से काम नहीं चलेगा। इसी में से कोई राह निकालनी होगी। अभी पूरी जिंदगी हमारे सामने पडी है। जीवन में आगे बहुत-सी कठिनाइयाँ आएँगी। उस समय क्या करोगे ? क्या सब के मरने की राह ही देखते रहोगे ?

चन्द्र—फिर मौके की राह कब तक देखें ? क्या बुढापा आने तक ?

चकोरी—हाँ-हाँ ! बुढापा आने तक। तब तक राह देखने के लिए तुम तैयार हो क्या ?

चन्द्र—और तुम ?

चकोरी—अगर मैं तैयार न होती तो तुमसे क्यों पूछती ?

चन्द्र—और मान लो तुम्हारे पिताजी ने तुम्हारा किसी दूसरे से विवाह निश्चित कर दिया तो ?

चकोरी—तो क्या करूँगी, यह मैंने पहिले ही अच्छी तरह सोच लिया है।

चन्द्र—क्या करोगी ?

चकोरी—(चिढकर) जान दे दूंगी।

चन्द्र—जूलियट की तरह ?

चकोरी—हाँ-हाँ ! जूलियट की तरह और क्या तुम भी फिर वही करोगे ?

चन्द्र—यह मैंने अभी तक नहीं सोचा है। मैंने तो यही निश्चय किया था कि हम दोनों कहीं भाग चलें। पर तुम्हें यह मंजूर नहीं। अगर तुम्हारा विवाह किसी दूसरे से निश्चित हो जाए तो तुम क्या करोगी, सच-सच बताओ ?

चकोरी—वह मेरा अपना रहस्य है। तुम्हें बताने का नहीं है (भीतर से 'यह कौन है री' कहते हुए आबा साहब भोसले आते है)।

आबा—यह कौन है जी ?

चन्द्र—आबा ! क्या यह यह

आबा—यह-यह क्या करता है ? क्या सीधा नहीं बता सकता ? कौन है री तू ?

चकोरी—क्या मुझ से पूछ रहे है ? मैं हूँ आपकी एक

आबा—मेरी ? मेरी कौन ?

चकोरी—अभी तक आपकी कोई नहीं।

आबा—अभी तक नहीं का मतलब ? क्या आगे चलकर तू कोई होनेवाली है मेरी ?

चकोरी—हाँ। अगर आप स्वीकार कर लें तो—

आबा—स्वीकार कर लूं तो क्या होनेवाली है ?

चकोरी—आपकी बहू।

आबा—क्या यह सच है रे चंदू ? कहाँ से पकड लाया इसे ? और यह छोकरी भी बडी वैसी दिखती है। साफ-साफ कहती है कि मेरी बहू बनेगी। हाँ ! मेरी बहू ! इस आबा साहब भोसले की बहू ! इसका नाम क्या है रे ?

चन्द्र—चकोरी।

आबा—चकोरी कौन ? पूरा नाम बता न ?

चन्द्र—चकोरी शिर—

आबा—(चिल्लाकर) क्या शिरके ?

चन्द्र—जी नहीं। शिरनामे।

आबा—शिरनामे ? जात क्या है ?

चकोरी—मराठा।

आबा—मराठा और शिरनामे ? मराठों में शिरनामे कोई कुलनाम नहीं है। शिरनामे तो ब्राह्मणों में होते हैं। वर्णसंकर तो नहीं है कहीं ?

चकोरी—मैं असली मराठा खानदान की हूँ।

आबा—असली मराठा खानदान की लडकियाँ अपने मा बाप की आँख बचाकर दूसरों के घर जाकर यूं प्रेम की बातें नहीं किया करतीं, समझी ? हम लोग भोसले हैं—असल छत्रपति शिवाजी महाराज के कुल के !—क्यों आई थीं यहाँ ?

चकोरी—किशोरी से मिलने।

आबा—फिर मिल लीं उससे ? घर में है वह ? उसे छोडकर यहां इसके पास कैसे पहुँच गई ?

चन्द्र—यह बात नहीं, आबा ! बात यह हुई——

आबा—तुझ से कौन पूछ रहा है? तू क्यों बीच में बोलता है ? अपने को मराठा की लडकी बताती है ? मुझे विश्वास नहीं होता—कोई भी ऐरा-गैरा अपने को मराठा कहने लगता है। असली मराठा खानदान की बता रही है अपने को ? असली मराठा खानदान की लडकियाँ बिना मा बाप की अनुमति के अपने घर की देहली नहीं लाँघतीं !

चकोरी—उनसे अनुमति लेकर ही आई हूँ मैं।

आबा—उन्हें क्या बताकर आई है ? क्या यह कहकर आई है कि चन्द्रकान्त भोसले से मिलने जा रही हूँ।

चकोरी—नहीं—किशोरी से।

आबा—कहाँ है वह किशोरी ? ('किशोरी'—'किशोरी' कहकर पुकारता है।) अब तेरी परीक्षा ही लेता हूँ। किशोरी!

किशोरी—(प्रवेश करके दूर से ही) —क्या है आबा ? (धीरे से) हाय राम ! धोखा हो गया है।

आबा—इधर आ

किशोरी—(पास जाकर) क्या है आबा ?

आबा—इसका क्या नाम है ?

किशोरी—चकोरी—

आबा—और कुलनाम ?

चकोरी—चकोरी शिरनामे।

आबा—तूने क्यों बताया ? तुझ से किसने पूछा था ? क्यों बोल पड़ी

बीच में ? तूने इसे आगाह कर दिया। अपना कुलनाम शिरनामे बताती है। और कहती है कि असली मराठा खानदान की हूँ! क्यों री किशोरी, कौन है यह ?

किशोरी—मेरी सहेली।

आबा—कहाँ मिली थी यह ? कब से बनी है तेरी सहेली ?

किशोरी—मोहिते के घर। उनकी भाजी है यह।

आबा—कौन मोहिते ?

किशोरी—काका साहब मोहिते जो ठेकेदार है।

आबा—अच्छा तो प्रथम उनके घर भेंट हुई थी इससे ? कब मिली थी ?

किशोरी—यही महीने-डेढ़ महीने पहले।

आबा—अच्छा, यह बात है! महीने डेढ़ महीने पहिले यह लड़की पहली ही बार तुझे मोहिते के यहाँ मिली थी और तब से तेरी सहेली हो गई। ठीक है न ?

किशोरी—हाँ बाबा। यही बात है।

आबा—यह मुझे बता रही है! मोहिते तो यहाँ से अपना डेरा-डंडा उठाकर दिल्ली चले गए।

किशोरी—पर हाल ही में तो गए हैं।

आबा—नहीं। उन्हें गए छ महीने से भी अधिक हो गए। ह! सच बता यह कौन है ?

किशोरी—सच बताऊँ आबा। इससे मेरी बहुत पुरानी पहचान है। हम दोनों प्राइमरी में एक साथ पढ़ती थीं। तब से हम दोनों का परिचय है।

आबा—फिर तूने मुझ से झूठ क्यों कहा ?

किशोरी—थोड़ा मजाक किया आप से।

आबा—मजाक किया ? मुझ से मजाक किया ? इस आबा साहब भोसले से मजाक किया ? क्यों ?

किशोरी—वैसी कोई बात नहीं है, आबा। आप बिना वजह शक कर रहे थे—यू ही खोद-खोदकर पूछ रहे थे। इसलिए दिल में आया कि कह दू कुछ भी।

आबा—अच्छा, तो ऐसा मजाक किया था मुझ से ? तू तरुण पीढ़ी की जो है न ? तुम लोगों को बूढ़ों से मजाक करने में गुदगुदी होती है—क्यों, यही न ?

चकोरी—कुछ भी क्यों कह दिया री, किशोरी ? बिलकुल सच कहती हूँ आबा साहब, हम दोनों बचपन से सहेलियाँ हैं।

आबा—फिर मैंने तुझे अपने घर पहिले कभी क्यों नहीं देखा ?

चकोरी—देखा तो था। जब मैं बच्ची थी, फ्राक पहिनती थी, तब आपके घर हमेशा आती थी। किशोरी की मा मुझ से बहुत प्यार करती थी। उस वक्त आप भी तो मेरे गाल में चुटकियाँ लिया करते थे।

आबा—मैं गाल में चुटकियाँ लिया करता था ? अरी, अपने बच्चों के गालों को भी मैंने कभी छुआ नहीं—और तू कहती है कि तेरे गालों में मैं चुटकी लेता था ? क्या तू भी मुझ से मजाक कर रही है ? और तू रे गधे ?

चन्द्र—जी आबा साहब ?

आबा—गूंगा सा क्या बैठा है ? कुछ बोल न ?

चन्द्र—क्या बोलू ? आपने मुझसे कुछ पूछा ही नहीं।

आबा—पूछने की क्या जरूरत है ? बता, क्या ये दोनों सच कह रही हैं।

चन्द्र—यह मैं क्या जानू ? मैं पुरुष हूँ। मैं स्त्रियों में जाकर नहीं बैठता। उनसे कोई सरोकार नहीं रखता।

आबा—फिर अभी यह क्या बातें कर रही थी तुझ से ?

चन्द्र—यह पूछ रही थी मुझ से।

आबा—क्या पूछ रही थी ?

चन्द्र—पूछ रही थी कि किशोरी कहाँ है ?

आबा—इतने लगाव से ? तेरे दोनों हाथ पकड़कर ? हाथ से हाथ लगाए बिना शायद पूछते नहीं बनता था ?

चन्द्र—क्यों चकोरी, क्या तुमने मेरे हाथ पकड़े थे।

चकोरी—शायद पकड़े हों! मुझे कुछ याद नहीं।

आबा—पर मैंने तो देखा था न ? बड़ी मजबूती से तू उसके हाथ पकड़े हुए थी और आँखों में प्राण समेटकर उसके मुह की ओर देख रही थी।

चन्द्र—आप तो कुछ भी कहे जा रहे हैं ? कम-से-कम मुझे तो याद नहीं आता कि ऐसा कुछ हुआ था।

चकोरी—शायद हुआ भी हो। हो सकता है। बचपन से ही हम दोनों की यह आदत है न ? मैं यहाँ आती, तो ये मेरे हाथ पकड़कर मुझे गोल-गोल चक्कर में घुमाते थे। यह तो इनकी पुरानी आदत है, आबा साहब। वैसे यह हो सकता है कि मैंने अनजाने बिलकुल अनजाने इनका हाथ पकड़ भी लिया हो। हाँ—अब याद आता है—मैंने तुम्हारा एक हाथ पकड़ा था।

आबा—एक हाथ नहीं—तूने इसके दोनों हाथ अच्छी तरह कसकर पकड़ रखे थे! और आँखें

किशोरी—और क्या आँखें भी पकड़ ली थी ?

आबा—मजाक बंदकर किशोरी। तुम लोग मुझे बूढ़ा समझते हो, पर वैसे कोई बिलकुल ही बूढ़ा नहीं हो गया हूँ मैं। मेरी नजर काफी तेज है। सामनेवाले पहाड़ के पेड़ पर बैठा हुआ पक्षी भी मुझे दिख जाता है। ये शिकारी की आँखें हैं। शिकारी की इन्हीं से मैंने यह सब देखा—

किशोरी—क्या देखा ?

आबा—इस छोकरी ने चन्दू की आँखों में अपनी आँखें डाल दी थी और चन्दू भी ललचाए मन से इसके मुह की ओर देख रहा था—

किशोरी—क्या यह पूछते समय कि मैं कहाँ हूँ ?

चकोरी—हाँ-हाँ। ये कुछ गप्पें लगा रहे थे। कभी कहते, किशोरी घर में है। कभी कहते, नहीं है। तब मैंने इनके दोनों हाथ यू पकड़ लिए और इनकी ओर यू देखा। अब याद आया और मैंने कहा—

आबा—(चिल्लाकर) अरी ओ शरीर लड़की, छोड़ उसके हाथ। मेरी आँखों के सामने ही पकड़ती है उसके हाथ ? और तू रे ?

चन्द्र—जी आबा साहब! मैंने क्या किया ?

आबा—क्या उसी तरह नहीं देखा तूने इसकी तरफ अभी भी ?

किशोरी—यह वह कैसे कह सकता है ? उसके सामने यहाँ कोई आइना थोड़े ही लगा है ?

आबा--आइने की क्या जरूरत ? देखते समय क्या लगता है--क्या यह नही बताया जा सकता ?

चन्द्र--वैसे खास तो कुछ नही लगा, आबा साहब !

आबा--और तुझे री ? --क्या नाम बताया अपना ?

किशोरी--चकोरी ।

आबा--हाँ-हाँ । चकोरी ! तुझे क्या लगा चकोरी ?

चकोरी--किस वक्त ? क्या अभी जब आपके सामने हाथ पकडे, या कि आपके आने से पहिले पकडे हुई थी तब ?

आबा--दोनो वक्त । बिल्कुल दोनो वक्त बता तुझे क्या लगा था ?

चकोरी--मुझे क्या लगा था भला ? कुछ लगा हो-- ऐसा कुछ मालूम ही नही होता ।

आबा--अच्छा, ऐसी बात है ? अच्छा, अच्छा ! तो तू किशोरी से मिलने आई थी, क्यो ?

चकोरी--हाँ ।

आबा--फिर वह बहू बनने की बात कैसे आई ?

चकोरी--वह तो मैंने यू ही मजाक में कह दिया था ।

आबा--याने मुझ से कोई जान-पहचान न होते हुए भी तू मुझ से मजाक कर रही थी ? मेरे मुह की ओर क्या ताक रही है ?

चकोरी--ऐसे ताकने की मेरी आदत ही है । ऐसे ही इनकी तरफ भी देख रही थी ।

आबा--ऐसे ही देख रही थी ? क्यो ? --सुना किशोरी, यह क्या कह रही है ? कहती है ऐसे ही देख रही थी ! वह उस तरह देख ही नही रही थी, समझी ? इसकी ओर जिस तरह देख रही थी, उस तरह मेरी ओर नहीं देखती थी ।

किशोरी--याने कैसे ?

आबा--तू चुप बैठ किशोरी ! हाँ, बता न ?--

चकोरी--क्या बताऊँ ? आपका प्रश्न ही मै नहीं समझी--

आबा--तेरी यह सहेली बडी चालाक जान पडती है, किशोरी । और तू रे ?

चन्द्र--जी आबा साहब--

आबा--जी-जी क्या करता है । तब से लगातार मै ही बोल रहा हूँ । और तूने तो मुह से शब्द न निकालने की जैसे कसम ही खा ली है !

चन्द्र--आप उससे बातें कर रहे हैं । वह जवाब दे रही है । मै बीच में व्यर्थ क्यो बोलू ?

किशोरी--हाँ । ठीक तो है । बीच में बोलना आबा साहब से बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होता ।

आबा--तू चुप रह किशोरी । हाँ, अब बता ?

चकोरी--मै क्या बताऊँ ?

आबा--तुझसे नही पूछ रहा हूँ । इससे पूछ रहा हूँ--इस अक्ल के दुश्मन से--अब सच-सच बता--

चन्द्र--क्या मैने कभी झूठ बोला था ?

आबा--सीधी तरह से जवाब दे, समझा ? मेरे सामने ऐसी उडन-छू बाते नही चलेगी--बता कौन है यह लडकी, यहाँ क्यो आई है ? इससे तेरा क्या सम्बन्ध है ? तेरे दोनो हाथो को कसकर पकड सकती है और तेरी आँखो में आँखें डाल सकती है--ऐसी यह कौन है तेरी ?

चन्द्र--मुझे जो कहना था, कह चुका--किशोरी ने भी कहा--इस लडकी ने भी कहा ।

आबा--क्या यह कि मै बहू बनूगी ?

चन्द्र--जी नही । कहा कि मै किशोरी की सहेली हूँ--

आबा--सहेली-सहेली कहते-कहते बहिन का हाथ पकडकर भाई के घर में घुस जाती हैं आजकल की लडकियाँ ।

किशोरी--मान लीजिए कि यही होगया है, आबा साहब !

आबा--यह कैसे होगा ? हमारे यहाँ की यह रीति नहीं । हमारे पूर्वजो ने ऐसा कभी नही किया । हमारी रीति तो यह है कि बाप लडकी को देखे, पसद करे, तय करे और लडका चुपचाप उस लडकी से विवाह करे । यही हमारे खानदान में होता है । यही हमारे पूवजों की रीति है ।

चन्द्र--पर पूर्वजो की सभी रीतियो को हम कहाँ पाल रहे है ? हमारे पूर्वज बहादुर थे, लडाके थे और आज उन्हीं के वशज हम मकान बनाने के ठेके लेकर राज का काम कर रहे है ।

आबा--(सतप्त होकर) मुझे राज कहता है रे ? बेटाजी, म राज बना तभी तो गुलछर्रे उडा रहा है तू । निठल्ला बैठा दोनो जून भरपेट भोजन पा रहा है । मजे उडा रहा है और शहर की आवारा लडकियो के हाथ तुझे मनमाना घूमने को मिल रहा है ।

किशोरी--हैं ! हैं ! आबा साहब ! मेरी सहेली को आप आवारा न कहिए । मै यह बर्दाश्त नही कर सकती । कल मान लीजिए किसी ने--किसी ने क्यो, शिर्के ने ही मुझे आवारा कह दिया तो--

आबा--उनकी क्या मजाल जो तुझे आवारा कहें । मुह तोडकर दाँत झडा दूगा एक-एक के । शिर्के का तो नाम मत लेना इस घर में ! तीन सौ साल से दुश्मनी चली आ रही है शिर्के और भोसले में ।

चन्द्र--तीन सौ वर्ष पहिले सभाजी ने शिर्कों का सत्यानाश किया था । उसके बाद पीढियाँ बीत गईं, पर इस बीच किसी भी भोसले ने किसी भी शिर्के का कुछ भी नहीं बिगाडा और न किसी शिर्के ने किसी भोसले पर आग बरसाई । फिर यह पुराने जमाने की दुश्मनी आज भी क्यो चलती रहे ?

आबा--यह तू नही समझेगा । जो है, वह ऐसा है । यह खानदानी रीति है । पूर्वजों से चली आ रही है । यह-यह इसी तरह चलती रहेगी । इसे तू नही समझ सकता ।

किशोरी--पर आबा साहब, अब भोसलो का भी राज्य गया । राज्य तो सारे ही चले गए ! शिर्कों के पास तो कोई राज्य ही न था--सभी फकीर हो गए है ! तलवार को भी नहीं पहचानते । अगर सम्पत्ति बनी है तो उसका कारण यह है कि कुछ भी ऊँट-पटाग धन्धा कर रहे है । ऐसी स्थिति में यह पुराना वैर व्यर्थ क्यो चालू रखा जाए ?

आबा--अब तू भी कहने लगी ऐसा ? तूने भी खोज लिया है क्या कोई शिर्का ?

किशोरी--'भी' का क्या मतलब, आबा साहब ?

आबा--मतलब यह कि मुझे यह लडकी शिर्के की मालूम होती है । चन्दू ने 'शिर'

कहा और वह रुक गया और फिर इस लडकी ने 'शिरनामे' कहकर उसे सँभाल लिया । तभी मुझे शक हुआ । बता री-कौन है तू ? शिर्के या शिरनामे ?

चकोरी--मैं चकोरी हूँ--चकोरी शिरनामे ।

आबा--शिरनामे तो ब्राह्मण होते हैं ।

चकोरी--तो क्या ब्राह्मणो और मराठो के कुलनाम एकसे नही होते ? --भोसले भी ब्राह्मण है--

आबा--वे भोसले नही--भोसुले है--

चकोरी--'स' क्या और 'सु' क्या --कुल मिलाकर एक ही है ! बोलते समय लोग उन्हें भोसले ही कहते है ।

आबा--अच्छा, अच्छा । समझ गया । व्यर्थ अकल न बघार मेरे सामने । सीधी तरह से बता-- (बाहर कोई दरवाजा खटखटाता है) ।

किशोरी--शायद कोई आया है बाहर ?

आबा--आने दे । मुझे चकमा देना चाहती है--मै तुम लोगो के झासे में नही आऊँगा ।

किशोरी--इसमें झाँसे की क्या बात है ? कम-से-कम देख तो लूं कौन आया है ? (कहते-कहते जाती है) ।

आबा--देखो, तुम लोग सच-सच नही बता रहे हो । पर अब मै तुम्हें छोड़ूंगा नही । मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि--

(डा० को साथ लिए किशोरी आती है) ।

डाक्टर--(आते-आते) ओहो, आबा साहब, यहीं है क्या आप ?

आबा--अब ये आए ? हाँ, यहीं हूँ मै डाक्टर । आप जरा भीतर बैठिए । मै थोडी देर में आता हूँ ।

डाक्टर--ना-ना ! मुझे बिल्कुल वक्त नही । आप जल्दी अपने कमरे में चलिए । झटपट जाँच करके आपको छोड देता हूँ ।

आबा--तो चलिए फिर--और तू री--और तू रे--

डाक्टर--अजी, चलिए भी जल्दी ।

आबा--हाँ, तो चलिए । आ रहा हूँ । (दोनो जाते है) । (चन्द्रकान्त और किशोरी शरारत से खिलखिलाकर हँसते है) ।

किशोरी--कितने अच्छे है हमारे डाक्टर, क्यो ? कैसे ठीक मौके पर हो आ पहुँचे !

चकोरी--अच्छा हुआ मै जरा आड मे थी, वही महाशय हमारे भी डाक्टर है । अगर मुझे देख पाते--

चन्द्र--अरे बाप रे ! तब तो मुश्किल ही थी--

चकोरी--कौन बीमार है ?

किशोरी--कोई नही । हमारे आबा साहब का एक 'फड' है । वे डाक्टर से हफ्ते में एक बार अपनी जाँच कराते है ।

चकोरी--अच्छा, तो अब मै जाती हूँ । डाक्टर अभी आएँगे और उन्होने मुझे कही यहाँ देख लिया तो बडा घुटाला होगा ।

चन्द्र--तो फिर तुम चली ही जाओ ।

चकोरी--नही । मेरे मन में एक विचार उठा है ।

किशोरी--कौनसा विचार ?

चकोरी--डाक्टर को इस जाँच में कितनी देर लगती है ?

किशोरी--वैसे कोई खास देर नही लगती । पर कभी-कभी वे आबा साहब के साथ गप्पें हाकने बैठ जाते है ।

चन्द्र--पर आज वे नही बैठेंगे । अभी कहते थे न कि उन्हें वक्त नही है । शायद कही जल्दी जाना होगा उन्हें ।

चकोरी--तो अब मुझे जाना ही चाहिए । मै उनसे रास्ते में ही मिलना चाहती हू । और, तुम एक काम करना--

किशोरी--क्या करूँ ?

चकोरी--तू नही । मै इनसे कह रही हूँ--तुम आज शाम को शहर के बाहरवाले बाग में, बरगद के पास मुझ से जरूर मिलना । मेरे मन मे एक बडा अच्छा विचार आया है ।

चन्द्र--कौन-सा विचार आया है तुम्हारे मन में ?

चकोरी--अगर अभी बताने लगू और डाक्टर तुरन्त आ धमके तो ? इसलिए मुझे अब जाना ही चाहिए । जाती हूँ । (जाते-जाते) आज शाम को बगीचे में--बरगद के पास--भूलना नहीं, समझे ? (जाती है) ।

किशोरी--कौन-सा विचार आया होगा इसके दिमाग में ?

चन्द्र--यू वह बडी होशियार है । इसीलिए तो मुझे अच्छी लगती है वह । लगता है उसे कोई बढिया उपाय सूझा है ।

किशोरी--क्या तुम्हारी इस समस्या को हल करने का ?

चन्द्र--हाँ ।

किशोरी--पागल हो, तुम दादा । यह तुम्हारा केवल भ्रम है । इस समस्या का हल होना असभव है । शिर्के का नाम सुनते ही आबा साहब का सिर किस तरह एकदम घूम जाता है, यह तुम अभी देख ही चुके हो । मै कहती हू दादा, तुम चकोरी का पीछा छोड दो । रोमियो और जूलियट का किस्सा तो तुमने पढा होगा । एक दिन तुमने वह फिल्म भी तो देखी थी न ?

चन्द्र--मैंने किसी किताब में तो वह कहानी नही पढी । पर उसकी फिल्म जरूर देखी थी । अंग्रेजी में भी और हिन्दी में भी । यह भी मेरे साथ गई थी उस दिन । मै जान-बूझ कर ले गया था उसे वह फिल्म दिखाने ।

किशोरी--हाँ--देखी थी न ? तो फिर कुछ सबक सीखा उससे ?

चन्द्र--हाँ । सीखा । चकोरी ने कहा कि जुलियट मूर्ख थी और रोमियो उससे भी अधिक मूर्ख था--

किशोरी--और यही एक बडी सयानी है । देखती हू कि अब अपनी अक्ल का क्या कमाल दिखाती है ? मै फिर तुमसे यही कहती हू कि चकोरी का पीछा छोडो । आबा साहब जितने जिद्दी है उतने ही शिर्के भी महा जिद्दी है । दोनो में से एक भी किसी की नही मानेंगे । अपने मन को व्यर्थ क्यो कष्ट दे रहे हो ? इस जैसी हजार लडकियाँ दौडती आएँगी तुम्हारे पास ?--

चन्द्र--इस जैसी ? विधाता इतना मूर्ख नही है किशोरी ! इस के सरीखी यही है और मेरे सरीखा मै ही हूँ । तुम्हें अभी तक पता नही चला है इस मर्म का । तुम्हें भी ऐसा कोई मिलता--यदि कोई मिलता भी तो क्या उपयोग--शिर्के का कोई लडका होता-- (आबा साहब और डाक्टर बातचीत करते हुए आते है) ।

डाक्टर--जरा सावधान रहिए आबा साहब । छाती सेंकते रहिए । सेंकने से पहिले

(शेष पृष्ठ २४ पर)

मेरी साहित्य साधना

ताराशकर वन्द्योपाध्याय

संसार मे साहित्य-साधको और साहित्य-सेवियो की भरमार है, यह कहकर उनकी निन्दा की जाती है। बात तो निस्सन्देह सत्य है।

मनुष्य जब जीवन में कोई काम या व्यवसाय अगीकार करता है तब उसकी आखो के सामने जो चित्र प्रस्फुटित होता है वह सोद्देश्य और ठोस होता है, उसका एक स्वरूप होता है, वजन होता है। शुद्ध स्वर्ण और चादी उसका मूल्य होता है। साथ ही, समाज, सरकार एव आम जनता द्वारा आदर-सम्मान प्राप्त करना उसका ध्येय होता है। पर साहित्य-साधना को जिन्होने जीवन की साधना और जीविका के रूप में अगीकार किया है उनके पास यह सब कुछ भी नही होता। विगत काल में तो किसी साहित्यिक के लिए सासारिक सफलता प्राप्त करना और भी अधिक कठिन था किन्तु आज भी उसे जो थोडी बहुत सफलता मिलती भी है, वह भी उसके जीवन काल मे प्रतिफलित नही हो पाती---यह बात मै शपथपूर्वक कह सकता हू। इस काल के जो भी तरुण साहित्यकार है वे निश्चित रूप से मेरी बात का समर्थन करेगे।

हमारे देश में आदि कवि वाल्मीकि साहित्य साधना करते हुए विगत जीवन के अपराधो और पापो के नाश के लिए राम के नाम का जप करते रहे। महाकवि कालिदास राज-जामाता होते हुए भी राज्य के इच्छुक नही थे। उन्होने राजकन्या का हृदय जीत लिया था एव वाक्य और अर्थ के अविच्छेद सम्पर्क के मध्य पार्वती शकर का आस्वाद पाकर धन्य हो गए थे। पत्नी से पथनिर्देश पाकर तुलसीदास ने काव्य-साधना में सीता-राम का प्रसाद पाया था। बगाली कवि चण्डीदास रामी से प्रेम कर काव्य साधना करते हुए समाज में गिर गए थे पर उन्होने राधेश्याम का रसास्वाद पा लिया था। उस काल को छोड कर इस काल में भी हम देखते हैं रवीन्द्रनाथ के काव्य साधना करते समय उनके परिवार वालो का कहना था कि अब रवीन्द्र के पास कुछ नही रहेगा। वाराणसी जिले के धनपतराय (प्रेमचन्द) ने साहित्य-साधना में रत होने के कारण नौकरी छोड कर निष्ठुर दरिद्रता को वरण कर लिया था। बगाल के ग्राम कवि गोविन्द दास ने कहा है, 'अरे भाई बगवासी मरने पर मेरे अनचाना मठ मेरी चिता पर'।

मैने १९२९-३० में साहित्य-साधना का पथ अगीकार किया था। उस समय बगाली साहित्यकारो का अच्छा जमघट था। रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द थे। एक नया दल भी उदय हुआ था। उसके हाथ में योन भावनाओ का एक अस्पष्ट रग वाला झण्डा था। शैलजानन्द, प्रेमेन्द्र, अचिन्त्य, प्रबोध, बुद्धदेव, सरोजकुमार आदि हमारी मातृभूमि में उपस्थित हुए थे। 'आनन्द बाजार पत्रिका' के पूजा अक का प्रचार इतना था कि जितना कागज उसमें खर्च हुआ था यदि उसे बिछाया जाए तो कलकत्ता से पेशावर तक की भूमि ढक जाए। जोडा साको के मकान में भी प्राचीन और नवीन दोनो ओर का अच्छा खासा विवाद और जमघट रहता था पर साहित्य धर्मियो की सीमा को लेकर ही।

इस समय मै राजनीति में था। तभी मैने अचानक शौकिया 'कल्लोल' पत्रिका में 'रसकली' नाम की एक कहानी भेजी। इस कहानी के लिखने का भी एक इतिहास है। 'कालिकलम' पत्रिका में प्रकाशित शैलजानन्द और प्रेमेन्द्र मित्र की दो कहानिया अद्भुत रूप से अच्छी लगी थी। उन्हे ही पढ कर कहानी लिखने की प्रेरणा जगी। लिखी और लिख कर कलकत्ता के एक बडे पत्र में भेज दी। करीब आठ माह तक यह कहानी उसके दफ्तर में पडी रही। उसके बाद एक दिन स्वय उसे लौटा लाया और 'कल्लोल' को भेज दी। 'कल्लोल' में साथ-साथ आदर भी मिला। उसके बाद नाटक लिखा। उस नाटक को कलकत्ता के रगमच के अध्यक्ष के पास अपने गुरु स्थानीय नाट्यकार स्वर्गीय निर्मल शिव बन्द्योपाध्याय के द्वारा पहुचा देना सभव हो गया। पर अध्यक्ष महाशय ने बिना पढे ही उस नाटक को लौटा दिया। मैने उसे आग में जला दिया। कहने का प्रयोजन यह है कि मै इस समय राजनैतिक कार्यकर्ता था। कांग्रेस का काम करता था, हैजा मलेरिया आदि वाले गावो में सेवक दल लिए डोलता और बगाल के मेलो में घूमता फिरता स्वयसेवक का कार्य करता। अस तब मेरे लिए साहित्य केवल सीखने की सामग्री था।

सन् १९२६ में 'कल्लोल' में 'रसकली' प्रकाशित हुई। दो मास बाद 'हारानोतुर' लिख कर भेजा। इन दो कहानियो से ही नए वर्ग में गाव का लेखक कहकर मेरा सामान्य समादर होने लगा। कई नए पत्रो से भी माग आई। ये मेरे लिखने के दिन थे। तब तरुणो के कई पत्र निकलते थे। 'कल्लोल' के अलावा, 'कालिकलम', 'धूपछाया', 'स्वराज्य' इत्यादि। 'उपासना' पुराना पत्र था पर तब तरुणो के ही साथ में था। १९२९ में कई पत्रो में कई कहानिया प्रकाशित हुई। सन् १९२९ के बाद १९३० का साल आया। गाधीजी की पुकार आई। मै कलम रख कर झन्डा हाथ में लिए निकल पडा। पुलिस ने जेल में ठूस दिया। इस जेल में ही मेरे मन में राजनैतिक दलबादिता के बारे में कुछ अवसाद और वितृष्णा ने जन्म लिया। जेल में दल और उपदल, अहिसा और सशस्त्र विप्लववादियो की कलह देख कर मन खिन्न हो गया। सकल्प कर लिया कि अब राजनीति में नही जाऊगा। साहित्य को ही माध्यम बना कर इस नवजीवन की कहानी लिखूगा।

पहली पुस्तक 'चैताली पूर्णिमा' प्रकाशित हुई। पुस्तक छपाने के लिए किसी के पास भाग-दौड नहीं की। खुद ही कष्ट उठा रुपए इकट्ठे कर छाप ली। स्त्री के पास कुछ पैत्रिक नगद रुपये थे। उनके लिए उसके आगे हाथ पसारा। रुपए तो मिले थे पर उस हाथ पसारने में कष्ट भी कम नही हुआ था।

इसी समय मेरी सबसे प्रिय कन्या की मृत्यु हो गई। उसी वेदना को लेकर एक कहानी लिखी। उस कहानी की कन्या का सम्बन्ध श्री रजनीकान्त दास के साथ था। श्री दास तब 'बगश्री' के नाम से नया पत्र निकालते थे। इसे लिख कर प्रथम बार १५) रु० दक्षिणा प्राप्त हुई।

तब पैत्रिक ग्रलग जमीदारी के घर को छोड कर कलकत्ता आ गया पाच रुपए किराये में बस्ती के पास घर ले लिया। रास्ते के नल से पानी भर कर लाता। सस्ते चवन्नी वाले होटल में खाना खाता। दोनो वक्त के पाच आने खच होते। इसके अलावा चाय, बीडी, ट्राम-भाडा आदि के और ऊपर से पाच आने पडते। एक मास में ३० रुपए खर्च होते। इतनी आमदनी उन दिनो साहित्य से होनी असम्भव बात थी। इससे माह में १५ दिन कलकत्ता रहता और उसके बाद चला जाता। फिर लौट आता। एक बार तो मालूम पडा कि पैसे का यहा तक अभाव होने वाला है कि कुछ आने-पैसो को छोड कर कुछ भी सम्बल नही रहा है। प्रति कहानी पाच रुपए दक्षिणा देने वाली एक साप्ताहिक पत्रिका के आफिस में एक कहानी देने के लिए सारे दिन बैठ कर व्यर्थ ही लौटा। तब शीतकाल था, ऊपर से उस दिन बादल थे। सन्ध्या हो गई थी, भीगता-भागता पैदल मध्य कलकत्ता से दक्षिण कलकत्ता लौटा। सोचा निमोनिया से मरने पर शोक सभा होगी। यही सान्त्वना थी। केवल सान्त्वना ही नही एक अद्भुत गौरव भी अनुभव किया। यह नही कहूगा कि मन में क्षोभ नही था तो भी गौरव का बोध होने की तुलना में वह कम था। उसी के लिए कहा है कि साहित्यकार का हिसाब बे हिसाब है। केवल यही समस्या साहित्य-कार के जीवन में एक मात्र विघ्न हो सो बात नही है। और भी बडे एव सबलतर-प्रबलतर विघ्न हैं। इन विघ्नो में योग्यता होते हुए भी पडित एव समालोचको की अस्वीकृति व अवज्ञा प्रमुख है। यह विघ्न सब देशो में ही है। हमारे देश में और भी अधिक सबल व प्रबल मात्रा में है। एक और भी विघ्न है जिसकी सृष्टि प्रकाशको ने की है। इन्होने अवज्ञा के साथ किताबें लौटाई हैं। इनकी ऐसी ही एक मर्मान्तिक घटना मन में बिध गई है। किन्तु आज वह प्रकाशक जीवित नही है। अत. उसको प्रकाश में नही लाऊगा और उस वेदना को भूल जाने की कोशिश करूगा।

समालोचको की भी ऐसी ही बात है। समालोचना के लिए पुस्तक देकर उनके आफिस गया कि समालोचना कब प्रकाशित होगी? गम्भीर भाव से उत्तर मिला है, अभी पढी नही समय नही है।

ससार में जितनी शक्ति है एव जिसकी जैसी शक्ति है वह उतना ही चलता है और जैसी शक्ति है वैसे ही वेग से चलता है। मैं अपनी शक्ति के अनुसार अधिक वेग से ही चला हू एव जितनी मार खाई है, अवज्ञा पाई है उतना ही जीवन को और वेग से धकेला है। इससे स्वास्थ्य टूट गया। जेल से उदर व्याधि लेकर लौटा। चवन्नी वाले सस्ते होटलो में खाकर अपरिमित चाय और बीडी पीकर साथ ही सारे दिन बिना खाए सुबह से शाम तक लिख कर मन के आवेग से आगे बढते हुए 'कोलाइटिस' और 'गैस्ट्राइटिस' की कुव्याधियो से ग्रस्त हो गया। मन में तब भी यही सान्त्वना थी कि बडी सी शोक-सभा होगी। चिता पर मठ न बने एक छोटा सा पत्थर ही लग जाए। मकान बदल कर बहु बाजार स्ट्रीट के मेस में आ गया। वह मैस भी विचित्र था। एक ओर मैस बाकी ओर बाइयो का निवास। यहा रहते हुए ही अन्धकार के मध्य प्रकाश देखा। सूर्य किरण के समान रवीन्द्र नाथ का आशीर्वाद पाया। मेरे 'रायकमल' और कहानी सग्रह 'छलनामयी' पढकर उन्होने लिखा था कि तुम्हारी रचनाए मुझे अच्छी लगी है। रायकमल ने मेरा मन हरण कर लिया है। नाट्याचार्य शिशिर कुमार को पुस्तक नाटकाकार में रूपान्तरित कर अभिनय करने का अनुरोध किया। उसके बाद दिन और उज्ज्वल होते गए। 'रसकलि' पढ़ कर रवीन्द्र ने लिखा—तुमने तो बढिया लिखा है। शान्ति निकेतन आकर मिलो। सूर्य के प्रसाद से अन्धकार कटता है। मनुष्य दिन में सबल होता है। मैं और भी चला। और भी जोर से चलना शुरू किया। आज भी चल रहा हू। आज प्रतिष्ठा पा ली है। देश स्वाधीन हो गया है। भारत माता का प्रसाद पा लिया है। किन्तु आज कल्पना में वही बेहिसाबी, हिसाब की जमा कि मेरी मृत्यु के बाद देश के मनुष्यो की आखो के जल से तर्पण होगा, मेरे पास सबसे बढ़ कर है। स्वर्ग होने से भी बढ़ कर।

अनुवादक सोमदेव

चन्द्र-चकोरी—(पृष्ठ २२ का शेषाश)

थोडा तेल मलवा लिया करें छाती पर। कितनी बार आपसे कहा, पर आप कुछ ख्याल ही नही करते। यह खानदानी मर्ज मालूम होता है। आपके पिताजी हृदय की गति रुक जाने से ही स्वर्गवासी हुए थे, यह तो आपको याद है न? आप अपने मन को जरा भी कष्ट न दिया करें—क्यो रे चन्द्र, लगता है तुम दोनो में कुछ झगडा हो रहा था। शायद तेरे मुह से कोई ऐसी बात निकल गई थी जिसने आबा साहब के मस्तक को झटका दिया था।

चन्द्र—नही तो, डाक्टर—

डाक्टर—नहीं कैसे? मैं डाक्टर हूँ या धोबी? जाँच में मुझे सब पता चल गया। समझा? ऐसी कोई बात न कहा कर जिससे आबा साहब के दिल को धक्का लगे। एक दिन मुझे तेरी छाती भी जाँचनी होगी। अच्छा, आबा साहब, अब जाता हूँ। नमस्ते। क्यो किशोरी, तेरा ठीक चल रहा है न? (बोलते-बोलते जाते है)।

आबा—वह छोकरी चली गई शायद? या कि तूने ही भगा दिया उसे? मैं अच्छी तरह से ठोक-बजाकर पूछनेवाला था उससे। मुझे धोखा देता है, क्यो?

किशोरी—डाक्टर ने क्या कहा था अभी। चलिए अब भीतर। थोडा तेल मलकर छाती सेंक देती हू—

आबा—इसमें शक नही। शिर्के की ही लडकी थी वह। अच्छी छाती सेंकी मेरी उसने। अब तू और क्या सेंकेगी? तू भी उन्ही में से है। तुम सब ने मुझे नीचा दिखाने के लिए कोई षड्यन्त्र रचा है। पर याद रखना—मैं भोसले का बच्चा हूँ!

किशोरी—अब बहुत हो गया। चलिए भीतर—

आबा—फिर से आने दो यहाँ उसे। शिर्के का बच्चा मेरे घर में! तीन सौ बरसो से भोसलो ने शिर्कों के घर की सीढी पर कदम नही रखा और शिर्कों ने भी भोसले घर की कभी देहली नहीं लाँघी—

(इस तरह बकते है तभी किशोरी कहती है—'चलिए अब। बहुत हो गया' और जबरदस्ती खींचकर उन्हे भीतर ले जाती है। चन्द्रकान्त किसी गीत का एक चरण गुनगुनाता रहता है)।

(शेष अगले अंक में)

भारतीय कृषि में सहकारिता

युगलकिशोर सिंह

राष्ट्रीय विकास परिषद ने यह निश्चय किया है कि ग्राम्य क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक विकास का कार्य सहकारिता के आधार पर किया जाए और इसलिए सहकारिता आन्दोलन को सबल और लोकप्रिय बनाया जाए। ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए कृषि उत्पादन तथा स्थानीय जनशक्ति और अन्य प्रकार के साधनो को सहकारिता के सूत्र में पिरोया जाए।

इस काय के लिए ग्राम के जन, सामुदायिक आधार पर सहकारिता की प्राथमिक इकाई खडी करें और इसे जन-आन्दोलन का रूप दिया जाए ताकि इसकी गोद में ग्राम के सभी परिवार बहुत शीघ्र नहीं तो तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक आ जाए।

प्रत्येक ग्राम सहयोग समिति कृषि-उत्पादन के सम्बन्ध में विस्तृत कार्यक्रम अपने ग्राम के लिए तैयार करे और ऐसे उत्पादन-कायक्रम के साथ ऋणपूर्ति का निकट सम्बन्ध हो।

अधिक कृषि उत्पादन के लक्ष्य तथा ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सहकारी समितियों को सिचाई की पूरी सुविधाओ तथा कृषि सम्बन्धी नवीन पद्धति के पूर्ण उपयोग के साथ साथ अन्य तरह के विशेष कार्यक्रम को हाथ में लेना चाहिए। ग्राम के अन्य प्रकार के विकास के कार्यक्रम में पशुपालन और ग्रामोद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अधिक उत्पादन के लिए अनुमानित ऋण से अधिक ऋण की आवश्यकता होगी। अत द्वितीय पचवर्षीय योजना के लक्ष्याक में वृद्धि करनी होगी। ऋण की परिमाण में ही वृद्धि की आवश्यकता नहीं है बल्कि ऋण का वितरण भी इसी प्रकार किया जाए कि जिन किसानो को व्यावसायिक अधिकोषो (बैंको) से ऋण लेने की सुविधा उपलब्ध न हो उन्हें भी सुविधापूर्वक ऋण मिले। सहकारी क्रय-विक्रय का सहकारी ऋण के साथ गठबन्धन होना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि सहकारी सस्थाओ के द्वारा ही किसानो की अतिरिक्त उपज निश्चित मूल्य पर सगृहीत हो सके। इससे शहरी क्षेत्र की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यथेष्ट अन्न सग्रह हो सकेगा और देहाती क्षेत्र के ऋण की आवश्यकता की भी पूर्ति होती रहेगी। खाद्यान्न के विधायन कार्य को सहकारिता द्वारा विस्तृत करना चाहिए।

सहकारिता की सेवा और मार्ग-दर्शन के लिए ग्राम्य नेताओ के प्रशिक्षण का बड़े पैमाने पर प्रबन्ध होना चाहिए। पदाधिकारियो का उत्तरदायित्व लेने के लिए नवयुवको को भी प्रशिक्षित करना चाहिए तथा राज्य सरकारो के विभागो को विस्तृत करना चाहिए।

सहकारी सस्थाओ के निबन्धन तथा प्रबन्ध और ऋण की स्वीकृति की प्रक्रियाओ के सम्बन्ध में नियम और अधिनियम, सरल होन चाहिए। सहकारिता को जन-आन्दोलन का रूप धारण करने में इन नियमो से पूरी सहायता मिलनी चाहिए।

तकावी तथा अन्य प्रकार के सरकारी ऋण सहकारिता के ही माध्यम से वितरित किए जाए। इस तरह के कार्यक्रम ग्राम जनता को सहकारिता में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। द्वितीय पचवर्षीय योजना काल में सदस्यों की सख्या दो करोड तक करने का लक्ष्य है ताकि तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक देश के सभी लोग किसी न किसी प्रकार की सहयोग समिति के सदस्य हो जाए।

सूत्र रूप में परिषद ने राजकीय सहकारी नीति के सम्बन्ध में घोषणा की है अत इस नीति को कार्य रूप में लाने के लिए भारत सरकार के सहकारी मन्त्रालय और राज्य सरकारो को विस्तृत कार्यक्रम बनाना है, देश के सामने इस सम्बन्ध में विस्तृत कार्यक्रम अभी तक नही आया है। आशा है निकट भविष्य में यह कार्यक्रम उपस्थित किया जाएगा।

परिषद के निर्णय में यद्यपि सहकारिता को जन-आन्दोलन बनाने का सकेत किया गया है किन्तु कितने वर्षो में किस क्रम से गैर-सरकारी कार्यकर्त्ताकरण कार्यक्रम लागू किया जाएगा, राजकीय अधिकारियो के हाथो से अधिकार लेकर किस तरह विराजकीय सहकारी कार्यकर्ताओ को हस्तान्तरित किया जाएगा, इसका कोई उल्लेख या सकेत नही है। जन आदोलन का वास्तविक रूप तभी देखने को मिलेगा जब यह आन्दोलन जनता का हो, जनता के लिए हो और जनता द्वारा सचालित हो। परिषद की दृष्टि में यह रूप ओझल हुआ मालूम पडता है फिर भी इस परिषद ने अपने निर्णय से गैर-सरकारी कार्यकर्त्ताओ के लिए एक सुन्दर वातावरण तैयार कर दिया है।

इस निर्णय से ग्राम ऋण सर्वक्षण समिति के बडी-बडी सहयोग समितिया बनाने के सुझाव को सर्वदा के लिए दफना दिया है और ऋण तथा क्रय-विक्रय सहयोग समितियो के कार्यों के समन्वय के सम्बन्ध में उक्त समिति ने जो दूसरी सिफारिश की है, उस का समर्थन किया है।

परिषद के निर्णय के अनुसार अगर हम सहकारिता का आधार व्यापक बनाना चाहते है तो सभी विभागो के कार्यों को जहा तक सम्भव हो, सहकारिता के आधार पर ही करने का निर्णय करना होगा और तदनुसार सभी विभागो के लिए लक्ष्य स्थिर करना और उस लक्ष्य को पूरा करने की जवाबदेही राजकीय अधिकारियो और गैर-सरकारी सस्थाओ को देनी चाहिए। द्वितीय पचवर्षीय योजना के तीन वर्ष पूरे हो गए। सिर्फ दो वर्ष बाकी रह गए। अत अविलम्ब इस कार्य को पूरा करने की चेष्टा होनी चाहिए। गाव-गाव में जितनी सहयोग समितियां बनी है और इस दो वर्ष के बीच जो समितिया बनेंगी उन्हें ग्राम्य अर्थ व्यवस्था को दृढ़ करने के उद्देश्य से अपने क्षेत्र के जन और अन्य तरह के साधनो का सर्वेक्षण करके अधिकतम कृषि उत्पादन का कार्यक्रम तैयार करके कार्यान्वित करना चाहिए।

प्राथमिक सहयोग समितियो का क्षेत्र इस तरह निर्धारित करना चाहिए कि औसतन एक हजार की आबादी एक समिति के कार्य क्षेत्र के अन्दर हो। सम्भवत ग्राम पचायत का क्षेत्र इसका क्षेत्र हो।

इन सहयोग समितियो का काम उत्पादन के कायक्रम के अनुसार अपने निर्धन सदस्यो के लिए ऋण का प्रबन्ध करना होगा और साथ ही सिचाई की सुविधाओ का पूर्ण उपयोग करना तथा लघु सिचाई की योजना का सरक्षण भी होगा । उन्नत बीज, खाद तथा कृषि सम्बन्धी औजारो के वितरण का उत्तरदायित्व इन्ही समितियो का होगा । ये समितिया पशु-पालन, चकबन्दी तथा कृषि के वैज्ञानिक तरीको को प्रोत्साहन देंगी । ऐसी ग्राम सहयोग समिति में गाव के किसान, खेतिहर मजदूर, बढई, मछुआ आदि सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होंगे । सभी कामो को पूरा करने के लिए अधिक समय लगेगा । अत यह आवश्यक है कि प्रारम्भ में कृषि-उत्पादन सम्बन्धी बीज, खाद आदि के वितरण का ही काम किया जाए ।

नए कार्यक्रम को उत्साह से किसान अपनाए, इसके लिए आवश्यक है कि किसानो का उत्साह बढाने के लिए भी कोई कार्यक्रम विशेष रूप से अपनाया जाए । प्रगतिशील किसानो को किसी न किसी तरह का पुरस्कार देने का प्रबन्ध हो ।

एक गाव में सभी तरह के कार्यों को करने के लिए अगर अलग सहयोग समितिया बनाई जाए तो उनको चलाने के लिए पर्याप्त सख्या में सचालक नहीं मिलेंगे और उनकी देख रेख तथा आय-व्ययक निरीक्षण के लिए आवश्यकता से अधिक कर्मचारियो की नियुक्ति करनी होगी । अत यह निश्चय किया गया है कि एक गाव में एक ही सहयोग समिति होगी जो बहुधन्धी सहयोग समिति कहलाएगी ।

इन सहयोग समितियो का विशेष रूप से निर्माण और विकास राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखण्डो में किया जाएगा जहा विशेषज्ञो की सेवाए विशेष रूप से उपलब्ध है । ग्राम्य स्तर के कार्यकर्ताओ को उत्तरदायित्व देने से स्थानीय नेतृत्व का विकास होगा जो सामाजिक प्रजातन्त्र के लिए आधार-शिला का काम करेगा ।

अभी ग्राम पचायत और सहकारी समितियो के कार्य क्षेत्र अलग-अलग नहीं है । ज्यादातर काम सहयोग समितिया और ग्राम पचायत दोनो ही करती है । इनके कामो का विभाजन किया जाएगा । कुछ काम सहयोग समितियो के लिए सुरक्षित किए जाएगे और कुछ काम ग्राम पचायतो के लिए । फिर भी कुछ काम ऐसे होंगे जो दोनो के कार्यक्षेत्र के कहे जाएगे और जहा जैसी आवश्यकता होगी वहा सहयोग समिति या ग्राम पचायत उस काम को करेगी ।

सहयोग समितियो के सदस्यो का उत्तरदायित्व अभी तक ज्यादातर असीमित ही रखा जाता था जिसके फलस्वरूप सदस्यो के ऋण को चुकाने की सामूहिक जवाबदेही सभी सदस्यो पर होती थी । किसी सदस्य के अपराध से अगर किसी सहयोग समिति को हानि उठानी पडी तो उस हानि को सभी सदस्यो को उठाना पडता था किन्तु अब जो समितिया बनेंगी उनके सदस्यो का दायित्व असीमित न होकर सीमित होगा । इससे विशेष लाभ यह हो ा कि एक सदस्य के लिए दूसरे सदस्य जिम्मेदार नही समझे जाएगे ।

इन सहयोग समितियो की पूजी की वृद्धि के लिए सरकार की ओर से सभी तरह की सहायता दी जाएगी । सरकार इनकी अश पूजी की साझीदार होगी । सरकार गोदाम बनाने के लिए ऋण तथा अनुदान देगी और प्रशिक्षित कर्मचारियो की सेवाए भी इन सहयोग समितियो को अर्पित करेगी ।

प्रबन्ध के खर्च में ५ वर्ष के लिए इस क्रम से अनुदान दिए जाएगे कि यह अनुदान प्रथम वर्ष में सबसे अधिक होगा और पाचवें वर्ष में सबसे कम होगा । ऐसे अनुदान का तात्पर्य यह होगा कि ज्यो-ज्यो सहयोग समितियो का अपना आर्थिक आधार सबल होता जाएगा त्यो-त्यो यह अनुदान कम होता जाएगा ।

वर्तमान काल में ऋण सहयोग समितियो की सदस्यता जमीनो के स्वामियो तक सीमित है । जिनके पास अचल और मूल्यवान सम्पत्ति है, वे ही इसके सदस्य हो सकते थे और उनसे लाभ उठा सकते थे किन्तु अब उत्पादक श्रम के लिए भी ऋण की व्यवस्था की जाएगी और उन लोगो को भी सदस्य बनाया जाएगा जिनके पास कोई अचल सम्पत्ति नही है ।

जमीन के बन्धक रखने पर ही कर्ज की व्यवस्था की जाती थी किन्तु अब कुछ सीमाओ के अन्दर अल्पकालीन और मध्यकालीन ऋण जमीनो को बिना बन्धक रखे दर्खास्त देने के बाद तत्क्षण नही तो थोडे समय में मिल जाया करेगा । किसानो को बीज और खाद उधार देने की व्यवस्था की जाएगी ।

वर्तमान काल में सहयोग समितियो के सिर्फ एक करोड सदस्य है । पिछले पाच सालो में प्रति वर्ष सदस्यो की सख्या में जो औसतन वृद्धि हुई है वह इन आकडो से स्पष्ट हो जाती है । १९५२–५३, १९५३–५४ और १९५४–५५ में प्रति वर्ष औसतन सदस्य सख्या ४६ थी । १९५५–५६ में यह सख्या बढ कर ४९ हो गई और १९५६–५७ में यह ५६ तक पहुच गई । अगले दो वर्षों में सदस्यो की सख्या दूनी करके २ करोड सदस्य बनाने का भगीरथ प्रयत्न करना पडेगा ।

ऋण के आकडे १९५४–५५ में ३५ करोड रु० थे, किन्तु १९५७–५८ में १०० करोड रु० हो गए । इस क्षेत्र में भी अगर चेष्टा की गई तो द्वितीय पच वर्षीय योजना का जो २०० करोड रु० का लक्ष्य है, वह भी पूरा होकर रहेगा ।

यह अनुमान किया जाता है कि जिन किसानो के पास ४ या ५ एकड जमीन है उन्हें ४० रु० से ५० रु० प्रति एकड खेत में खर्च करना पडता है । इस हिसाब से ऐसे किसान सदस्यो के लिए प्रति सदस्य २०० रुपए की आवश्यकता होगी । अगर २ करोड सदस्य बनाने का लक्ष्य पूरा हुआ तो ४०० करोड रु० ऋण देने की आवश्यकता होगी ।

१९५६–५७ में सदस्यो के पास ऋण का २२ प्रतिशत बाकी था । ३७ प्रतिशत सहयोग समितियो के जिम्मे ५० प्रतिशत से अधिक ऋण बाकी पडे थे । ऋण देने से ऋण की वसूली की समस्या ज्यादा महत्वपूर्ण है । जिस पैमाने पर इस ऋण की चुकती नहीं हो रही है उससे गम्भीर परिस्थिति पैदा हो गई है । अत. ऋण-वितरण के साथ ऋण वसूली पर भी विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है ।

जिस पैमाने पर रुपये की आवश्यकता है और सहयोग समितियो के सगठन की जैसी स्थिति है उसको देख कर यह आवश्यक समझा जा रहा है कि नई सहयोग समितियो के सगठन के प्रारम्भिक काल में ही इस बात पर जोर दिया जाए कि गाव के अधिक से अधिक लोग सहयोग समितियो के निबन्धन (रजिस्ट्रेशन) के पहले सदस्य हो जाए और प्रति व्यक्ति कम से कम २० रुपए अश पूजी जमा कर दें ताकि अपनी अश पूजी के दस गुना २०० रुपए तक कर्ज लेने की उन की क्षमता हो जाए ।

खेतो में स्थायी रूप से सुधार लाने के लिए बीस तीस साल के लिए दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता होती है । इस ऋण का प्रबन्ध भूमि बन्धक अधिकोषो (बैंको) द्वारा किया जाएगा जिनके पास भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमो की जाच के लिए विशेषज्ञ नियुक्त है ।

(शेष पृष्ठ २९ पर)

तेलुगु भाषा के कबीर—वेमन

भद्रदत्त

कौन ऐसा अभागा भारतीय होगा जो क्रान्तिकारी सन्त कवि कबीर से परिचित न हो । कोई ऐसा दक्षिण भारतीय विशेष कर आन्ध्र प्रदेशीय भी न मिलेगा, जिसके हृदय पटल पर योगि कवि वेमन की छाप न हो। चौदहवीं शताब्दी के मध्यम चरण से लेकर पद्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण तक, सन्त कबीर भारतीय जनता को नवीन क्रान्ति का सदेश अपनी अटपटी वाणी में ही देता रहा है, उसी वाणी में अपनी वाणी मिलाकर, उसी स्वर मे अपना स्वर मिलाकर, साधारण जनता की बोल-चाल तेलुगु भाषा में, अधिकाश में कबीर सा ही सन्देश लिए सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर सत्रहवी शताब्दी के मध्य चरण तक कवि वेमन आन्ध्र प्रदेश ही नही अपितु समस्त दक्षिण भारत में अपनी नवीन विचार धारा की धूम मचाता रहा ।

सन्त कबीर का जन्म जुलाहा वश में हुआ जब कि वेमन एक कापु (किसान) जाति को सुशोभित करते हैं। देखिए दोनो किस प्रकार अपनी अपनी जाति का समर्थन करते है

१ जाति जुलाहा मति को धीर । 'कबीर'

२ कलियुगमुन नुभ्र कापुकुलानिकि
वेमन तनकीर्ति विनयिणचे 'वेमन'

अर्थात वेमन ने अपनी कीर्ति (जन्म सम्बन्धी) से कापु कुल को सुशोभित किया है ।

दोनो पर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा जाति-भेद सम्बन्धी परिस्थितियो ने अपना पूरा पूरा प्रभाव डाला ।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री बकल की उक्ति कि 'युग की विभूतिया काल प्रसूत होती हैं' कबीर और वेमन क लिए अक्षरश सत्य सिद्ध हुई हं । इन दोनो में अन्तर इतना ही है कि कबीर हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति के समन्वय रूप थे, जब कि वमन केवल हिन्दू थ । कबीर के समय तक मुसलमान उत्तर भारत के निवासी बन चुके थे, जब कि वेमन के समय में वे दक्षिण भारत के लिए विदेशी ही थे । इस दृष्टि से कबीर और वेमन मे हिन्दू-मुस्लिम जाति के प्रति अपनी विचारधारा का अन्तर स्वाभाविक ही था । इसीलिए कबीर तो जहा एक ओर

'कहे कबीर एक राम जपहु रे हिन्दू तुरक न कोई'

कहकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश सुना गए थे, वहा भारत के ही दक्षिणी भाग में बैठकर वेमन इन दोनो जातियो में देश-गत भेद की सूचना देते हुए हिन्दू सम्प्रदायवादियो को सावधान करते हुए कहते है

लिगमतमुन दोंगलुगा बुट्टि
नोकरि नोकरू निन्दनोनर जेसि
तुरक जाति चेत धूलियै पोदुरू
विश्वदाभिराम विनुर वेम ।

अर्थात हे हिन्दू लोगो ! शैवादि ढोंगी सकीर्ण साम्प्रदायिक मतो में पडकर, एक दूसरे की निन्दा तथा परस्परिक लडाई झगडो में फसे रहोगे तो, याद रखो मुस्लिम जाति के द्वारा मलिया मेट कर दिए जाओगे ।

वैसे तो कबीर ने भी कई स्थानो पर हिन्दुओ में प्रचलित शैव-वैष्णवादि साम्प्रदायिक झगडो की ओर सकेत किया हे । पर उनका विशेष क्षेत्र तो हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति का समन्वय करना ही रहा हे । हिन्दू सम्प्रदायो में प्रचलित कुरीतियो को दूर करने के लिए वेमन में बडा ही प्रबल उत्साह दिखाई देता है । हिन्दू मत-मतान्तरो का स्वस्थ समन्वय ही वेमन का प्रमुख क्षेत्र रहा है । ईश्वर अल्लाह, मदिर-मस्जिद, हिन्दू-मुस्लिम, प्रार्थना-नमाज, उपवास-रोजा आदि विभिन्नताओ में एकता की भावना का जन्म कबीर ने किया, तो शैव-वैष्णव, बौद्ध-जैन आदि में मानवता की भावना वेमन ने फूक दी । अन्ततोगत्वा मानव मात्र की विभिन्नताओ को नष्ट-भ्रष्ट कर विश्व मानवता को जन्म देने की मूल भावना दोनो सन्तो में समान है, जिसके सामने उपर्युक्त भेद-भावना गौण पड जाती हे । मानव के बाह्या-डबरो की निरर्थकता का भडा-फोड करने में दोनो समान हे ।

माला जपी पाखडियो के ऊपर प्रहार करते हुए कबीर दास जी कहते हैं

'माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर,
कर का मनका डारिके मन का-मनका फेर'

वेमन भी ठीक इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहते है

कपटी, पाखडी लोग केवल अक्ष माला हाथ मे लेकर बडी सुगमता से पेट भर लेते हैं । किसी प्रकार का श्रम करने की तो उन्हें आवश्यकता ही नही । परन्तु इस प्रकार की बगुला भक्ति से मानव जीवन की सफलता या ईश्वर प्राप्ति सभव नहीं ।

स्वाभाविक सासारिक कर्तव्यो से विमुख होकर मुक्ति प्राप्ति का बहाना बना कर तीर्थ स्थान तथा गुफाओं की शरण लेने वाले कपटी लोगो की आज भी कमी नही हे । पर कबीर दास जी तीर्थादि की निस्सारता दिखाते हुए कहते हैं —

'मोको कहा ढूढे बन्दे
ना मै देवल ना मैं मस्जिद,
ना काबे कैलास मैं
नही योग बैराग सें ।'

वेमन में भी इसी प्रकार के भाव पाए जाते है । उनकी वाणी भर्त्स-नात्मक अधिक हैं । उनकी उक्तियो में ढोंगियो के प्रति क्रोध भरी घृणा है । देखिए वे किन शब्दो का प्रयोग करते हैं

"मुक्ति प्राप्त करने क इच्छुक जो कपटी और ढोंगी लोग गुफाओ की खोज में गुफादि के चक्कर काटा करते हैं, उन्हें यदि कोई क्रूर मृग पहले ही आकर मुक्त कर दे तो कितना अच्छा हो"।

कबीर गोरख-पथियो के प्रतीको का प्रयोग करके भी सहज योग के समर्थक थे । वे कहते है

'साधो सहज समाज भलो

आख न मूदो कान न रूधो तनिक कष्ट नही धारण ।'

वेमन तो बडे जोरदार शब्दो में हठ योग का विरोध करते है। वे कहते है —

"ऐसे योग की आवश्यकता ही क्या है जिसमे आसन लगाकर अगो को तोड-मरोड कर जघाओं का व्यर्थ व्यायाम करता रहना पडे ।"

शैव वैष्णवादि के अन्ध-विश्वासो का खडन भी दोनो में समान है। एक ओर जहाँ कबीर दास जी 'सेवैं सालिगराम कू, मन की भ्राति जाई' कहकर मूर्ति पूजा का भडा-फोड करते है तो दूसरी ओर वेमन अपवित्र पात्र से पकाए हुए भोजनादि व्यजनो की तरह ही आत्मा तथा चित्त की पवित्रता के अभाव में शिवादि विग्रह का पूजा पाठ निरर्थक बताते है ।

कबीर का राम इतिहास प्रसिद्ध दशरथ पुत्र राम नहीं था। कबीर दास जी स्वय

'दशरथ सुत तिहु लोक बखाना

राम नाम का मरम न जाना'

आदि उक्तियो मे उसका विरोध करते है। वेमन उस ऐतिहासिक राम को ईश्वर मानने के पक्ष में त्रिकाल में भी नही दिखाई देते। बडे तीखे शब्दो में वे राम के ऊपर प्रहार करते हुए कहते हैं —

'सोने के मृग का होना सम्भव नही, इस साधारण सी बात को न समझ सकने के कारण अपनी लवण पत्नी को छोडकर मृग के पीछे दौडने वाला राम किस प्रकार ईश्वर हो सकता है ?"

और देखिए

यदि राम अग्नि बाण से समुद्र को सुखा सकता था तो उसने इतने धन, समय और श्रम का अपव्यय करके पुल क्यों बाधा ?

इस स्थान पर वेमन का बौद्धिक तर्क बडा तीव्र हो गया है। वेमन के ये विचार सत्रहवी शताब्दी के है। आज इन विचारो का वह सन्त विद्यमान होता तो तथाकथित धार्मिक लोग उसे नास्तिक तथा साम्यवादी आदि उपाधियो से विभूषित करते ।

कबीर और वेमन के समय का समाज अन्धविश्वासी था। स्वार्थी लोग, उच्च कुल तथा शास्त्र ज्ञान की दुहाई देकर निरीह समाज को अपने माया जालो में फसाकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे थे। इन दोनो ने निरीह तथा निरक्षर समाज की आखे खोली। स्वार्थी तथा कपटी लोग तिल-मिला उठे। इन दोनो पर ऊच-नीच के अनेक लाछन लगाए गए। परन्तु दोनो ने बडी निर्भयता पूर्वक उच्च जाति तथा साक्षरता के गर्व में फूले न समाने वालो को ईंट का जवाब पत्थर से दिया। देखिए किस प्रकार वे जवाब देते है

१ एक बूद एक मलमूतर एक चाम एक गूदा

एक जोति ते सब उपजा, कौन ब्राह्मन कौन सूदा ।

२ पढि पढि जग मुआ पडित भया न कोइ । (कबीर)

(३) "अपने आपको ऊचे कुल के होने का दम भरने वाले और अपनी विद्वत्ता के गर्व में चूर होने वाले लोग धनिको के दासी पुत्र हैं ।" (वेमन)

कबीर और वेमन दोनो को अपने समय की जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना था। जनता में परंपरागत रूढिवादिता की चरम सीमा हो गई थी। उसका विश्वासपात्र बने बिना, उसे स्वार्थी मतवादी, मायावी, कपटी और पाखडियो के माया जालो से मुक्त करना सम्भव न था। जनता ऐसे व्यक्तियो की बातो को सुनने के लिए तैयार न थी जो दृढ आत्म-विश्वास के साथ यह कहे कि हमने ईश्वर नही देखा है। ऐसी परिस्थिति से विवश होकर ही गुरु गोबिन्द सिह जी को भी यह कहना पडा था कि शक्ति ने मुझे वरदान देकर मुसलमानो से लडने का आदेश दिया है। इस प्रकार के दृढ विश्वास की घोषणा के पश्चात ही वे एक आदेश पर प्राणो तक देने वाले शिष्य पा सके ।

कबीर और वेमन ने भी इस प्रकार की भावना प्रकट की है। कबीर कहते है

१ 'जाका महल मुनि न लहै सो दोसत किया अलेख

२ दास कबीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धरि दीन्ह् चदरिया'

वेमन ने तो यहा तक कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का प्रत्यक्ष विरोध करने वाला वेमन के अतिरिक्त और कोई दूसरा नही है। उसका स्वयं कथन है

"हे वेमन ! तुम्हें छोडकर और कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नही देता जिसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश का एक साथ विरोध किया हो ।"

इसमें कोई सन्देह नही कि उन दिनो में इन तीनो देवताओ के मानने वालो के ऐसे प्रबल सप्रदाय बन गए थे कि उनका विरोध एक-एक करके भी करना सम्भव न था। पर वेमन ने तो सभी का एक साथ ही विरोध किया। यह काम साधारण व्यक्ति का न था ।

उत्तर भारत में कबीर के समय तक हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष ने हिन्दुओ के आपसी साप्रदायिक सघर्ष को गौण सा बना दिया था। परन्तु इस के उग्र रूप ने दक्षिण में देवासुर सग्राम का रूप धारण कर लिया था। दिन-प्रतिदिन हिन्दुओ की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। वेमन का हृदय दहल उठा। अब वेमन से जनता का यह अध पतन देखा न गया। विवश होकर अन्त में उन्हें सिंह-गर्जना करनी ही पडी ।

तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए कबीर और वेमन के उपर्युक्त आत्म-विश्वास-सूचक वचनो के कारण उन्हें अहकार दोष से दूषित करना अनुचित होगा। वह तो समाज कल्याण प्रेरित वेदोक्त 'मन्युरसि मन्यु मे देहि' का ही एक रूप हैं। इनके उस अभिमान में जन हित का पावन तेज छिपा है। यह तो प्रत्येक महापुरुष का स्वाभाविक एव आवश्यक गुण है।

कबीर और वेमन दोनो मानव के ऐहिक और पारलौकिक विकास के प्रतिपादक थे। इन दोनो का समन्वय ही दोनो सन्तो का महत्व पूर्ण कार्य था। कणाद ने 'यतोऽभ्युदयनि श्रेयस सिद्धि स धर्म ।' कहकर दोनो प्रकार के विकासो की समन्वय-स्थिति को ही धर्म नाम दिया है। कबीर और वेमन की मूल भावना कणाद के इस वास्तविक धर्म लक्षण के अनुकूल ही थी। वेमन कणाद का ही समर्थन करते हुए कहते है —

"मानव स्वर्ण (धन) से सासारिक सुख और आध्यात्मिक विद्या से पारलौकिक सुख प्राप्त करता है। बाकी विद्याएँ बेकार ही है।" यदि वेमन की इस भावना को वैशेषिक दर्शनकार का अनुवाद मात्र कहा जाय तो इस मे कोई अतिशयोक्ति नही दिखाई देती ।

सदा ही समाज के स्वार्थों ने धर्म के सत्य रूप को तिरोहित ही रखा है। तभी तो वेद ने 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्' कहकर समाज की सनातन स्वाभाविक मन-चली प्रवृत्ति को स्वर्णमय शब्दो में चित्रित किया है। कबीर और वेमन में इस वेद मत्र की मूल भावना का

क्रियात्मक रूप विद्यमान था। उनका समस्त प्रयास इसका मूल भूत अर्थ 'सत्य धर्माय दृष्टये' के लिए ही तो था। उन्होंने धर्म के वास्तविक स्वरूप को समाज के सामने रखा था। इसमें भले ही कुछ स्वार्थियों के स्वार्थों में बाधा पडी हो, पर इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि उनकी इस महान क्रान्ति में लोक-मंगल की पावन भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी।

आज राजनैतिक क्रान्ति का बोल बाला है। उन दिनों में धर्महीन राजनीति का कोई अस्तित्व ही नहीं था। धर्म और राजनीति दोनों विषय साथ-साथ चलते थे। धार्मिक क्रान्ति ही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी क्रान्तियों का मूल कारण थी। कबीर और वेमन ने निर्गुण ब्रह्म को अपनी क्रान्ति का मूल आधार बना लिया था। यह उनका निर्गुण ब्रह्म मानव समाज के सामूहिक शक्ति का प्रतीक या प्रतिबिम्ब मात्र था। यह कल्पना कोई नई नहीं है। मानव मात्र की कल्याण साधना की भावना से प्रेरित होकर, भिन्न-भिन्न समयों में समाज में प्रचलित विषमताओं को दूर करने की भावना से समाज की परिस्थितियों के अनुकूल ईश्वरादि की कल्पना की सृष्टि मानव प्रारम्भ से ही करता आ रहा है। महात्मा बुद्ध ने भी अपने समय में प्रचलित कल्पना से भिन्न एक नई कल्पना को जन्म दिया था। परन्तु इन सभी कल्पनाओं का मूल उद्देश्य एक मात्र मानव कल्याण ही रहता आया है। इस दृष्टि से आज अर्थ को आधार बनाकर सायस और अहिंसा, प्रेम, आदि को आधार बनाकर गान्धी जी ने सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में जो क्रान्ति ला दी, वही क्रान्ति कबीर और वेमन ने भी निर्गुण ब्रह्म को आधार बनाकर अपने समय के धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में की थी।

कबीर और वेमन दोनों का आग्रह व्यक्ति के परिशुद्ध ज्ञान और हृदय की पवित्रता की ओर अधिक था। वे व्यक्तिगत सस्कारो की शुद्धि द्वारा ही, समाज कल्याण की सम्भावना मानते थे। देखिए दोनों ही इसी विश्वास का समर्थन किस प्रकार करते हैं --

१ जब दापन लागे काई, तब दरसन किया न कोई
(कबीर)

२ आत्म शुद्धि लेनि आचारमदियल
चित्त शुद्धि लेनि शिव पूजलेल
(वेमन)

अर्थात आत्मा और हृदय (व्यक्ति गत) की पवित्रता के अभाव में ईश्वरोपासना (समाज की सामूहिक प्रतीकात्मक शक्ति की उपासना) सभव नहीं।

कबीर दास जी की सबद, साखी और रमैनी आदि सभी रचनाए बीजक नामक सग्रह में सग्रहीत है तो वेमन की भी सभी कविताए उनकी वेमन शतक नामक पुस्तक में सुरक्षित हैं।

दोनों का काव्य विषय और नीति इतना अधिक जीवन-परक है कि कई आलोचक उनकी रचनाओं को काव्य नाम देना भी उचित नहीं समझते। इसमें सन्देह नहीं दोनों ने ही काव्य-कला कौशल दिखाने के उद्देश्य से कोई रचना नहीं की। दोनों का मूल उद्देश्य समाज-गत विभिन्नताओं और विषमताओं को दूर कर, मानव मात्र में एक समन्वय की भावना को जन्म देना था। पर दोनों प्रतिभाशाली योगी थे। उनकी स्वाभाविक प्रतिभा के कारण उनकी रचनाओं में कुछ इस प्रकार की काव्य-गत विशेषताए अपने आप आ गई है कि उन्हें काव्य जगत से पृथक नहीं रखा जा सकता।

भारतीय कृषि मे सहकारिता--(पृष्ठ २६ का शेषांश)

यह ऋण ग्राम सहयोग समितियों के द्वारा न मिल कर सीधे भूमि बन्धक बैंकों से मिला करेगा।

सहयोग समितियों के पूजी निर्माण में अल्प बचत योजना भी बाधक सिद्ध हो रही है क्योंकि इस योजना के द्वारा ज्यादा आकर्षक सुविधाए प्रदान की जाती हैं, जिससे प्रतियोगिता में सहकारी समितियां पीछे पड जाती हैं। अत सहयोग समितियों की योजनाए भी अल्प बचत योजना से ज्यादा आकर्षक न हो तो उसके समान जरूर होनी चाहिए।

सरकार द्वारा जिस तरह भूमि बन्धक बैंकों के डिबेन्चर की गारण्टी दी जाती है उस तरह अन्य प्रकार की सहयोग समितियों के घाटे के सम्बन्ध में अगर सरकार की ओर से गारण्टी मिले तो पूजी के निर्माण में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

सरकार तथा अर्ध सरकारी सस्थाओं की ओर से सहकारी सस्थाओं के सदस्यों को ऋण देने की व्यवस्था रहने के कारण सदस्यों की भक्ति तथा अपनापन सहयोग समितियों के साथ अटूट नहीं बना रहता है अत सभी तरह के सरकारी ऋण सहयोग समितियों के माध्यम से ही दिए जाए।

पर्यवेक्षण, निरीक्षण तथा सरकारी शिक्षा का काम सरकार के हाथ में न होकर सहकारी सस्थाओं के हाथ में रहेगा। सहकारी सस्थाओं की भी गाव से लेकर जिला, राज्य, केन्द्रीय तथा सघीय आदि विभिन्न ५ स्तरों पर सस्थाए स्थापित होगी और ऐसी सस्थाओं के सचालन के लिए सरकार की ओर से मदद मिलेगी।

कृषि सम्बन्धी क्रय-विक्रय सस्थाओं की सफलता के लिए आवश्यक है कि सरकार की नीति कृषि सम्बन्धी उत्पादन के मूल्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट हो। मूल्य निर्धारण करने में किसानों के उत्पादन खर्च और श्रमिकों के जीवन निर्वाह करने लायक मजदूरी का भी विशेष रूप से ध्यान रखा जाए और क्रय-विक्रय सम्बन्धी सूचनाए समय-समय पर सहयोग समितियों को मिलती रहें ताकि वे बाजारों के भावों को जानकर अपने क्रय-विक्रय का काम अच्छी तरह से चला सकें।

परिषद के निर्णय को अगर अच्छी तरह कार्यान्वित किया गया तो हमारा समाज सुखी और सम्पन्न होगा और समाजवादी व्यवस्था कायम होने में देर न लगेगी।

भारत की आधुनिक कला—कुछ समस्याएं

रामकुमार

हर वर्ष भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला-जगत में कुछ ऐसी नई प्रवृत्तियां दिखाई देती है और नई घटनाएं घटती है, जिनसे यह आवश्यक हो जाता है कि आधुनिक कला में जो नए मोड़ और नए संकेत दिखाई दें, उनकी चर्चा उनके इतिहास की पृष्ठभूमि में की जाए और उनसे जो परिणाम निकलें, उनकी व्याख्या की जाए। इधर भारत की आधुनिक कला न केवल हमारे देश में नए सचेतन बुद्धिवादियों और शहरों के पढ़े-लिखे संस्कृति प्रेमियों को आकृष्ट कर रही है, अपितु दूसरे देशों में भी छोटी बड़ी प्रदर्शनियों के रूप में इसने महत्वपूर्ण कला-आलोचकों और कलाकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। जो लोग आज तक केवल अजन्ता, एलोरा, खजूराहो, कोणार्क और मुगल, राजपूत मिनिएचर के विषय में ही जानते थे, उन्हें धीरे-धीरे अमृता शेरगिल, यामिनी राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हुस्सैन, रजा और सामन्त की कृतियों में भी दिलचस्पी हो रही है और मेरा ख्याल है कि अगले पांच वर्षों में हमारी वर्तमान चित्रकला अवश्य ही विश्व-कला में भी अपने लिए कुछ न कुछ स्थान बना लेगी, जिससे भविष्य में उसके विकास की आशा की जा सकेगी।

यदि पिछले एक वर्ष की घटनाओं का ही मूल्यांकन करें तो पता चलेगा कि पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष भारतीय चित्रकला काफी आगे बढ़ी। लन्दन में सात भारतीय चित्रकारों की एक प्रदर्शनी जुलाई, १९५८ में हुई, जिसकी लन्दन के सब पत्रों ने विस्तार से सराहना की। लन्दन में इससे पहले इस प्रकार की कोई प्रदर्शनी कभी नहीं हुई थी। उसके बाद फरवरी, '५९ में न्यूयार्क में आठ भारतीय चित्रकारों की कृतियों की प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। यह प्रदर्शनी एक वर्ष तक सारे अमेरिका का दौरा करेगी। इसका आयोजन एशिया सोसायटी, अमेरिकन फेडरेशन ऑफ आर्ट्स, इन्टर-नेशनल कल्चरल सेंटर आदि द्वारा हो रहा है। इस अवसर पर दो चित्रकारों, हुसैन और सामन्त को अमेरिका जाने का निमन्त्रण भी मिला। इसी मई में जर्मनी में ५० भारतीय आधुनिक चित्रों की एक प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। और इसी सास जापान की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में १५ चित्र हमारे देश के भी दिखलाए जाएंगे। भारत में भी कई प्रदर्शनियां हुईं, जिनमें दिल्ली में जनवरी में बीस चित्रकारों की प्रदर्शनी एक विशेष महत्व रखती है। विदेश में आधुनिक भारतीय कला पर प्रकाशित पहली पुस्तक 'भारत और आधुनिक कला' में आर्चर ने टैगोर, शेरगिल, यामिनी राय और जार्ज कीट की कला की विस्तृत व्याख्या की है। लन्दन में प्रकाशित यह पुस्तक दूसरे देशों को हमारी आधुनिक कला का अत्यन्त सूक्ष्म और स्पष्ट परिचय देगी। इसके अतिरिक्त व्यापारी रूप से दिल्ली और बम्बई में एक-एक आर्ट गेलरी खुली है, जहां आधुनिक चित्रकारों की कृतियां स्थायी रूप से रखी रहती हैं। इससे कला के प्रचार के साथ कलाकारों को आर्थिक लाभ भी होता है। संक्षिप्त रूप से आज बिना किसी झिझक से यह कहा जा सकता है कि हमारे देश की कला में वे सब अंकुर पैदा हो गए हैं, जिनके आधार पर भारतीय कला के एक व्यापक रूप धारण करने की पूर्व पीठिका तैयार हो गई है। यह भी कहना होगा कि कुछ कमियां अभी तक दिखाई देती हैं, परन्तु वे उपलब्धियों के सामने इतनी कमजोर कड़ियां हैं, जिन्हें तोड़ने में कोई विशेष कठिनाई सामने नहीं आएगी। परन्तु उनके प्रति सावधान अवश्य रहना होगा।

इस दिशा में जो महत्वपूर्ण प्रयत्न स्वाधीन भारत में हुए हैं, उनमें से एक ललित कला अकादमी की स्थापना भी है। आज से ५ वर्ष पूर्व अकादमी की स्थापना के साथ यह आशा की जाती थी कि ललित कला की यह राष्ट्रीय संस्था—जिसे सरकार का पूर्ण सहयोग और आर्थिक सहायता मिलेगी—हमारे देश की उन सब बिखरी शक्तियों को एकत्रित कर, जो किसी न किसी रूप में कला का प्रचार और उसका विकास करती रही हैं, एक ऐसा राष्ट्रीय कला आन्दोलन आरम्भ करेगी, जिसे सब बड़े और छोटे कलाकारों का पूर्ण सहयोग मिलेगा और जो आधुनिक कला की स्वस्थ प्रवृत्तियों के विकास में एक शक्तिशाली अस्त्र बनेगी। कलाकारों में अकादमी के प्रति प्रारम्भ में जो उत्साह था, मेरे ख्याल से उसमें न्यूनता आ गई है। पांचवीं राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अवसर पर तो अकादमी की कार्यकारिणी समिति के कुछ सदस्यों तक ने दूसरे मुख्य कलाकारों के साथ-साथ इस प्रदर्शनी में भाग न लेकर अकादमी की नीति के प्रति अपना विरोध प्रकट किया। हेब्बर, चावड़ा, बेंद्रे, राखो चौधरी, भवेश सान्याल, चिन्तामणि कार, हुस्सैन, सामंत, सतीश गुजराल आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिन्हें पिछली प्रदर्शनियों में कई बार पुरस्कार मिल चुके हैं और जो आधुनिक भारतीय कला का सच्चे मायनों में प्रतिनिधित्व करते है, पर इस वर्ष उन्होंने प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया। यह स्थिति चिन्तनीय है। इस ओर कला के नेताओं को ध्यान देना चाहिए और कोई सर्वमान्य ढंग निकालना चाहिए, जिससे सब को सन्तोष हो।

समय बीतने के साथ पुराने और आधुनिक चित्रकारों के कृतित्व का मूल्यांकन नई दृष्टि और नई चेतना के साथ किया जाने लगा है। यह स्वाभाविक है कि हमारे देश में कला की उन्नति और विकास के साथ कला के ठोस और स्थायी और अपरिवर्तनशील सिद्धान्तों के आधार पर पिछले साठ वर्षों का मूल्यांकन किया जाए। कला-विषयक यह उन्नति अब तक राष्ट्रीयता के मोह से उपजी और बिना किसी ठोस जमीन में जड़ों के अभाव से निकली भ्रांतियों और भावुकताओं पर निर्भर थी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, यामिनी राय और अमृता शेरगिल आदि ने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की शैली का अनुसरण नहीं किया और अपने लिए दूसरे रास्तों की खोज की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंगाल में रहने के बावजूद



"मौलाना ग्राजाद" बसरीथा गागुली



"मा और बच्चा" (काष्ठ) : एम० एम० भटनागर

"बारात" : इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कृत चित्र





"महाकाल" अरूप दास



"जनक सन्तान" खोडीदास परमार



ऊपर बायें . (१)
"राधा की प्रतीक्षा में कृष्ण"
बिहारी परभैया

ऊपर बायें : (२)
"मेज पर मुर्गे"
रामकिंकर

"गोपालक"
[illegible] कंवी

"देव प्रयाग में रघुनाथ जी का मन्दिर"
हरकृष्ण लाल







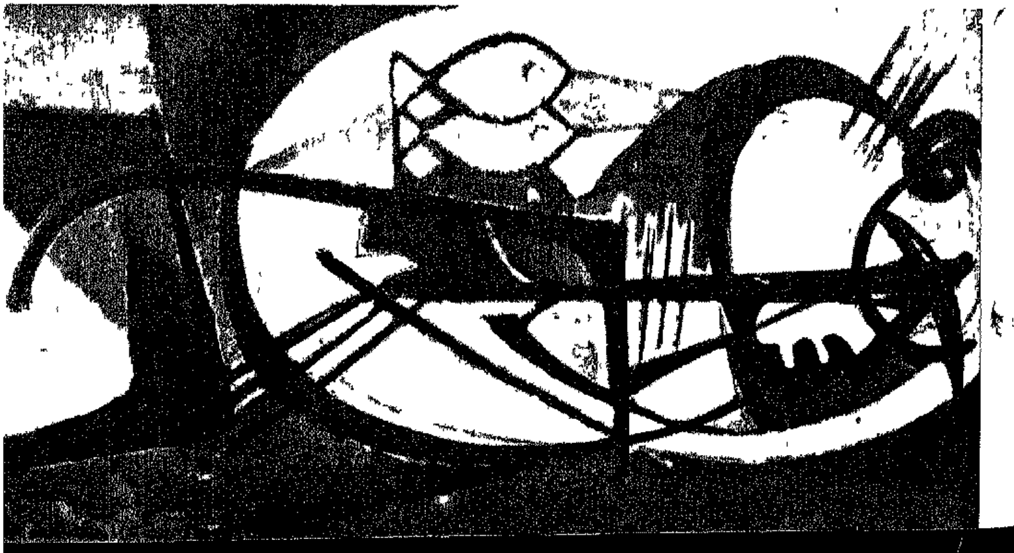


"एक गली" . रजन सेन



"कृष्णा वसना कन्या" . विद्याभूषण

"कल्पना चित्र का किनारा" दिनकर कौशिक



भी कभी इस प्रवाह में नही बहे और अपनी मौलिकता एव स्वतन्त्र चिन्तन के कारण किसी प्रकार के बन्धन में न फस कर उन्होने अपने बनाए सिद्धान्तो के आधार पर चित्र बनाए। पेरिस में उनके चित्रो की एक प्रदर्शनी देखकर अमृता शेरगिल उनसे अत्यन्त प्रभावित हुई, उन्हें उनके चित्र उनकी कविता की अपेक्षा अधिक पसन्द आए। आज रवीन्द्रनाथ को भारत के पहले आधुनिक चित्रकार की उपाधि दी जा सकती है। उनकी अनुभूति और उनकी कला की पाल क्ले और कान्दिस्की के साथ तुलना की जा सकती है। आज उनके चित्रो की महानता का आभास हमें मिलने लगा है।

अमृता शेरगिल की शिक्षा-दीक्षा, उनकी पृष्ठभूमि, उनकी समस्याए दूसरो से अलग थी। वे पहली भारतीय चित्रकार थीं, जिन्होने उन सब जटिल समस्याओ का सामना किया जिनका हल निकालने की कोशिश आज तक हमारे चित्रकार कर रहे है। यूरोप, विशेषकर पेरिस के स्वस्थ और उन्नत प्रभावो के प्रति आखें मूदने के बदले उन्होने उनका अध्ययन करके उन्हें अपनी कला का भाग बनाने का सफल प्रयास किया। एक भारतीय की अनुभूति और उसकी परम्परा के साथ अपना सम्बन्ध जोड कर उन्होने पेरिस की उच्च कला की शिक्षा के सहारे ऐसी भारतीय कला को जन्म दिया जो जातीय होने के साथ-साथ हमारे समय और समय की मागो का प्रतिनिधित्व करती थी। आश्चर्य की बात है कि जिस सीढी तक अमृता शेरगिल बीस वर्ष पूर्व तीस वर्ष की आयु में ही पहुच गई थी, वहा तक उसी दिशा में बढते हुए हमारे चित्रकार नही पहुच सके है। अमृता शेरगिल के बाद यामिनी राय ने लोक-कला के स्रोतो की गहराई में पैठने की कोशिश की। बगाली शैली में डूबी कलकत्ता नगरी में उन्होने भी अपने लिए एक भिन्न मार्ग खोजा और अपने प्रयोगो एव यूरोप की कला के ज्ञान के आधार पर उन्होने एक मौलिकता का परिचय दिया। दुर्भाग्यवश वे उसकी सीमित परिधि में ही फस गए, जिससे न उनकी कला का निर्मुक्त विकास हो सका और न ही उनकी कला का प्रभाव अन्य युवक चित्रकारो पर पड सका। श्रीलका निवासी जार्ज कीट ने भी आधुनिक भारतीय चित्रकला के एक नए रूप को पकडा और काफी दूर तक उसे ले गए। यदि शेरगिल सेजा और गोगा से अधिक प्रभावित हुई, तो जार्ज कीट ने पिकासो और मातीस के नवीन प्रयोगो से प्रेरणा ली और उसी कौशल के साथ उस प्रभाव को अपनी गहराई और अपनी अनुभूति के साथ समो लिया। उन्होने भी अपनी जडें अपनी जमीन और अपनी परम्परा से कभी अलग नही कीं।

सक्षेप में यही भारत की आधुनिक कला के इतिहास की पृष्ठभूमि है और इसके पश्चात १९४७ से लेकर आज तक इन चन्द वर्षों में भारतीय चित्रकारो और मूर्तिकारो ने अपने प्रयोगो के सहारे भारतीय आधुनिक कला के विकास में अपना शक्ति भर सहयोग दिया है। इस बीच स्वतन्त्रता के पश्चात कितने ही कलाकार यूरोप, अमेरिका और पूर्वी देशो में गए जहा उन्होने प्राचीन और आधुनिक कला-कृतिया मौलिक रूप में देखीं, लोगो से मिल कर कला-समस्याओ पर उनके विचार जाने, अपने कृतित्व पर उनकी राय सुनी, जिसके फलस्वरूप उनके अनुभवो और उनके ज्ञान का क्षेत्र बहुत विकसित हुआ जिसकी प्रतिछाया स्वाभाविक रूप से उनकी सृजनात्मक शक्तियो पर भी पडी। निस्सदेह हमारे चित्रो और मूर्तियो में कलाकारो की अनुभूति में विभिन्नता और अधिक गहराई देखने को मिली।

इस विकास के साथ साथ कुछ रुकावटें भी सामने आईं, जिन्होने तेजी से बढती इस धारा के प्रवाह में बाधाए पहुचाई। जीविकोपार्जन के लिए बहुत बडी सख्या में हमारे प्रतिभाशाली कलाकार या तो आर्ट स्कूलो में अध्यापक बन गए या अन्य सरकारी विभागो में कलाकार का काम करने लगे। इससे उनकी आर्थिक कठिनाइया तो अवश्य सुलझ गईं परन्तु समय के अभाव से वे अपना ध्यान पूर्ण रूप से अपनी कला पर केन्द्रित नही कर सके जिससे कुछ ने सृजनात्मक काम को सदा के लिए तिलाजलि दे दी और कुछ केवल अपना नाम चलाने के लिए ही प्रदर्शनियो के अवसर पर चित्र बनाते है। सख्या को देखते हुए इस बृहत देश में केवल चन्द कलाकारो के नाम ही आज लिए जा सकते है। इसी से सम्बन्धित एक अन्य समस्या भी धीरे-धीरे जटिल बनती जा रही है जो भविष्य में हमारी कला पर अवश्य एक महत्वपूर्ण प्रभाव छोडेगी। देश भर में बडी-बडी इमारतो के बनने के साथ और विशाल प्रदर्शनियो के अवसरो पर कलाकारो का सहयोग पाने का प्रश्न भी सरकार के सामने आया जिसको स्वय प्रधान मत्री ने भी महत्व दिया। इससे पिछले वर्षों में दिल्ली एव अन्य शहरो में आयोजित विभिन्न प्रदर्शनियो में हमारे कलाकारो ने विशाल चित्र (म्यूरल) बनाए, मूर्तिया बनाईं और दूसरा काम भी किया। परन्तु उन सब अनुभवो को देखते हुए ऐसा जान पडता है कि इन अवसरो पर उच्च कोटि की कला-कृतिया देने के बदले कुछ कलाकारो ने इस कार्य को केवल रुपए कमाने का साधन मात्र समझा। कम से कम समय में अधिक से अधिक काम करके हजारो रुपए कमाने के लालच में कितने ही कलाकार कला-व्यापारी से बन गए। अपने जिस छोटे से चित्र पर ये १०--१५ दिन काम करते थे, उससे कही बडी एक दीवार पर ८--१० दिनो में यह बना कर एक बेगार टाल दी। यदि इस स्थिति में कोई सुधार नही हुआ तो शीघ्र ही भारत की सृजनात्मक कला का असमय पतन होगा और विकास के पूर्व ही इसका ह्रास आरम्भ हो जाएगा। कठिनाई यह है कि अन्य देशो की नकल तो हम करने लगते है परन्तु यह नहीं देखते कि हमारे देश की स्थिति इस नए प्रयोग के योग्य है एव नही। कोई नया विचार या नई योजना जबरदस्ती लागू नही की जा सकती, जब तक वाता-वरण को उसके उपयुक्त न बना दिया जाए।

गहराई में जाकर देखा जाए तो पता चलेगा कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम जो विभिन्न साधन अपनाते है वह है हमारी समकालीन चित्र और मूर्तिकला की उन्नति और जो कदम इस उद्देश्य के लिए उपयोगी है, वे सरकारी सस्थाओ और स्वय कलाकारो को उठाने चाहिए। कलाकारो के काम करने के लिए स्टूडियो की व्यवस्था, उनके ज्ञान को व्यापक बनाने के लिए विदेशी कलाकारो की कला-प्रदर्शनियो का हमारे देश में आयोजन, कला थ्योरी पर बहस करने के लिए कलाकारो और कला-आलोचको के सैमिनार जिसमे दूसरे देशो से भी कुछ को आमन्त्रित किया जाए---इस प्रकार की व्यवस्था बिना सरकारी सहायता के नही की जा सकती

विभिन्न चित्रकारो और मूर्तिकारो से मैत्री होने के कारण और कुछ से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के बाद मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जो सब से बडी कमी हमारे कलाकारो में है, वह है एक प्रकार की लगन और साधना का अभाव, आत्मविश्वास की कमी, किसी प्रकार

के अनुराग और जिज्ञासा की कमी । यह बात हमें यूरोप में दिखाई नहीं देती । एक प्रकार की उदासीनता और निष्क्रियता की भावना जो हमें अपने देश में दिखाई देती है, वह यूरोप में नहीं पाई जाती । इसका शायद एक कारण यह भी है कि जिस तरह की हलचलें यूरोप के कला जगत में होती रहती हैं वे यहां नहीं होती । परन्तु यह समस्या एक ऐसा दुश्चक्र बन गई है, जिसमें से बाहर निकले बिना उज्ज्वल भविष्य के विषय में सन्देह हो सकता है । हमारे कलाकारों की सीमित जिन्दगी, जिन्दगी के अनुभवों की कमी, संकुचित दृष्टिकोण, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन का अभाव, परम्परा के सही विश्लेषण की अनुपस्थिति आदि, इन सब ने मिल कर सही रास्तों की खोज में काफी अड़चनें डाली हैं । जब कि यूरोप में ख्याति, सम्मान और धन पाने के बाद भी कलाकार अन्त तक अपनी सम्पूर्ण शक्ति अपनी कला पर केन्द्रित करता है, वहां हमारे देश में कलाकारों की सृजनात्मक जिन्दगी बहुत छोटी होती है । कुछ थोड़ी-सी प्रसिद्धि पाकर वे उस पर ही अपना बचा हुआ जीवन बिता देते हैं और कुछ उससे पहले ही अपनी प्रतिभा खो बैठते हैं । यह सच है कि हमारे देश में अभी तक उस स्वस्थ, प्रेरणा-युक्त वातावरण का अभाव है जिसके बीच रह कर कोई कलाकार उन्नति करता है ।

इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी इस बात से कोई मतभेद नहीं होगा कि पिछले दस वर्षों में हमारी आधुनिक चित्रकला और मूर्तिकला ने प्रशंसनीय उन्नति की है । हुसैन, रजा, सामंत, पदमसी, कृष्ण खन्ना, बीरेन डे, गायतोंडे, तैयब मेहता, सतीश गुजराल, सुब्रह्मण्यम, कुलकर्णी आदि नामों की एक ऐसी सूची है, जिसमें प्रत्येक कलाकार ने अपने परिश्रम, अनुभव और प्रयोगों के सहारे अपनी कला को आगे बढ़ाया है । यह शोक की बात है कि आर्ट स्कूलों से हर वर्ष निकलते हुए छात्रों में से एक भी ऐसा नाम दिखाई नहीं देता, जिससे भविष्य में कोई आशा की जा सके । कलाकारों के वही इने-गिने नाम हैं, जो कला सम्बन्धी लेखों और प्रदर्शनियों में दिखाई देते हैं ।

परन्तु इस लेख में मैं उन तीन चित्रकारों की चर्चा करना चाहूंगा, जिन्होंने पिछले दस वर्षों के अपने रचना-काल में अपनी प्रतिभा, अपनी उन्नति और अपने प्रयोगों द्वारा यह आशा दिखाई है कि सचमुच वे भविष्य में भारतीय आधुनिक चित्रकला के कुछ नए रूपों को उभार सकेंगे । हुसैन, रजा और सामन्त के नाम हमारे कला-जगत में जाने-पहिचाने नाम हैं । इन तीन को चुनने से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि ये तीन चित्रकार अन्य चित्रकारों की अपेक्षा बहुत ऊंचे स्तर पर जा खड़े हैं, परन्तु इनके विभिन्न प्रयोगों और इनकी कला किन-किन रास्तों को पार करती हुई आज जहां पहुंची है, उसका अध्ययन करने से इनकी प्रतिभा अधिक उज्ज्वल रूप में हमारे सम्मुख आती है ।

हुसैन संक्षेप में एक भावुक चित्रकार हैं, जिनकी अपनी निजी अनुभूति एवं चिन्तन ने उनकी कला को गम्भीर रूप दिया है । कभी टेकनीक, वाद या कला के रूप की पेचीदगियों में वे नहीं फंसे । उनके चित्र बुद्धिवादी नहीं हैं, वे दर्शकों के हृदय को छूकर अपनी ओर आकर्षित करते हैं । अपने कला-जीवन में कभी सिलसिलेवार वे अपने पथ पर आगे नहीं बढ़े, वरन उन्होंने विभिन्न दिशाओं का स्पर्श करके उनके भीतर झांकने की कोशिश की । इस प्रकार वे रजा की अपेक्षा बिल्कुल विपरीत ढंग से काम करते हैं । रजा में भी भावुकता है, परन्तु उस पर कड़ा संयम उन्होंने लगा रखा है और जब तक पूर्ण रूप से एक शैली, एक टेकनीक की खोज वे नहीं कर लेते तब तक उसी दिशा में वे बढ़ते रहते हैं । परन्तु जहां यह भावना उन्हें गहराई तक ले जाती है, वहां यह उनकी कमजोरी भी बन जाती है जिससे उनके चित्रों में पुनरावृत्ति दिखाई देती है । हुसैन के चित्रों में सदा मानव आकृति प्रमुख रही है परन्तु रजा ने सदा प्राकृतिक दृश्यों को अपने चित्रों में चित्रित किया है । रजा अपनी कला के प्रति अत्यन्त सजग और सचेतन कलाकार हैं और बहुत नियमित रूप से हर रोज काम करते हैं परन्तु इस प्रकार के बन्धन हुसैन को पसन्द नहीं हैं और जब उनका मन नहीं होता तब कितने ही दिनों तक वे ब्रुश को छूते तक नहीं । रजा पिछले दस वर्षों से पेरिस में ही रहते हैं जहां प्रमुख युवक चित्रकारों के साथ उनकी गणना भी की जाती है । सामन्त इन दोनों की अपेक्षा अल्प आयु के हैं परन्तु उनके कृतित्व को देख कर ऐसा नहीं कहा जा सकता । इनसे विपरीत सामन्त ने यह कोशिश की कि किसी तरह अपनी कला का सम्बन्ध उस परम्परा—जिसमें जैन मिनिएचर से वे अधिक प्रभावित हुए—के साथ जोड़ सकें और कुछ हद तक वे अपने प्रयास में सफल भी हुए । पिछले सात-आठ वर्षों के भीतर उनकी कला में जो मोड़ आए, उन्हें उनमें सफलता मिली और लोकप्रियता का मोह त्याग कर वे सदा परिवर्तन करते रहे जिससे उनकी उन्नति और उनका विकास तीव्र गति के साथ हुआ । पौराणिक संकेतों और बिम्बों का उपयोग वे अपने चित्रों में करते हैं और आधुनिक यूरोपीय टेकनीक की खोज से फायदा उठा कर जब वे उसके माध्यम से अपनी भारतीयता का प्रदर्शन करते हैं तो उनकी कला में एक अद्भुत शक्ति और आकर्षण आ जाता है । हाल ही में लन्दन और अमेरिका में उनके चित्रों को विशेष रूप से प्रशंसा मिली है । सामन्त में जो अभाव खटकता है, वह है उनकी अनुभूति की कमी, जिससे रजा और हुसैन की भांति उनकी कला में वह आत्मीयता की भावना नहीं आ पाती । इन तीनों के रास्ते अलग-अलग हैं । यद्यपि थोड़ी-बहुत मात्रा में समानता भी है, परन्तु उनमें परस्पर कोई टकराव नहीं है । तीनों में अपनी कला के प्रति ईमानदारी है, छोटे-छोटे रास्तों (शार्टकट) द्वारा ख्याति प्राप्त करने का मोह नहीं है, अपनी लोकप्रियता के लालच में अपने अनुसन्धानों को वे नहीं भूलते । तीनों ने कुछ हद तक भारतीय युवक चित्रकारों पर अपना प्रभाव डाला है जिसकी परछाइयां हमें कला-प्रदर्शनियों में दिखाई देती हैं ।

इन सब समस्याओं पर विचार करते समय जो एक कमजोर कड़ी दिखाई देती है, वह है समकालीन कला-आलोचना । हमारी प्राचीन कला का कुछ विद्वानों द्वारा बहुत गम्भीरता और परिश्रम के साथ अध्ययन किया गया, उसकी व्याख्या करने के लिए हमारे दर्शन, हमारी संस्कृति और पुराने साहित्य का सहारा लिया गया, किन्तु हमारे आधुनिक कला-आलोचकों में न उतनी गहराई है, न उतना विस्तृत ज्ञान है और न वह समवेदना है, जिसके बिना आलोचना बहुत असंतुलित और बे-सिर-पैर की दिखाई देती है । यह ठीक है कि कला-प्रचार के साथ-साथ कितने ही दैनिक पत्रों ने एक-एक कला-आलोचक भी नियुक्त कर दिया है जो प्रदर्शनियों के विषय में एक-चौथाई कालम भर देता है, परन्तु इनमें से अधिकांश आलोचक इन कालमों के प्रति गम्भीर नहीं हैं । उन्हें अपने जीविकोपार्जन के लिए दूसरे काम करने पड़ते हैं । हमारी आधुनिक कला यूरोपीय कला से प्रभावित हुई है और हमारे

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

कांचन और गेरू

रमणलाल वसंतलाल देसाई

आनन्द और जयन्त दोनों गुरु के प्रिय शिष्य थे। अन्य शिष्यों को जिस पाठ को सीखने में एक मास लगता, आनन्द और जयन्त उस पाठ को एक ही दिन में सीख जाते। आश्रम के अगुआ भी ये दोनों ही थे।

वेद, वेदान्त, षड्दर्शन आदि का अभ्यास पूर्ण कर तथा आश्रम से पात्रता का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर विश्व-रंगमंच में प्रवेश करने के समय गुरु ने दोनों शिष्यों को बुला कर पूछा—"कहो वत्स! जीवन में क्या करना चाहते हो?"

"गुरुजी! दिग्विजय की तृष्णा जाग्रत हुई है।"—आनन्द ने कहा।

"मैं भी दिग्विजय की इच्छा रखता हूँ, गुरुजी!"—जयन्त ने कहा।

"तुम्हारा कल्याण हो। निश्चय ही तुम दोनों में दिग्विजय की शक्ति है।" गुरु ने शिष्यों की महत्वाकांक्षा को प्रोत्साहित करते हुए कहा।

"मात्र, हम दोनों के बीच एक स्पर्धा उत्पन्न हुई है।"—आनन्द ने बीच में कहा।

"कैसी स्पर्धा?"

"दिग्विजय के मार्ग की। आनन्द को लगता है कि सर्वस्व त्याग कर दिग्विजयी हो सकेगा। मेरा विचार है कि सर्वस्व प्राप्त करके ही दिग्विजयी हो सकूंगा।" जयन्त ने कहा।

"अति उत्तम। जीवन एक प्रयोग है। कर देखो अपना-अपना प्रयोग। मैं तो मात्र तुम दोनों को आशीर्वाद दे सकता हूं।" कहकर गुरु ने दोनों को सस्नेह विदा किया।

दोनों साथ ही आश्रम से बाहर निकले। मार्ग में जयन्त ने आनन्द से पूछा—"किस मार्ग से चलोगे?"

"मैं पर्यटन करूंगा।" आनन्द ने कहा।

"पर्यटन तो मैं भी करूंगा। धनिकों, श्रेष्ठियों, विष्टिकारों तथा नृपों के साथ-साथ डग भरूंगा।" जयन्त ने कहा।

"मैं तो अभी आश्रमों की खोज करूंगा, कंदराओं में वास करूंगा तथा भिक्षुओं का मार्ग ग्रहण करूंगा।"—आनन्द ने उत्तर दिया।

"आनन्द! मुझे एक सत्य दिख पड़ता है।"

"आपत्ति न हो, तो वह सत्य मुझे भी बताओ।"

"धन ही सच्ची सत्ता है। समस्त दिग्विजय की कुंजी धन है। धन के द्वारा किसी भी वस्तु को प्राप्त करना अशक्य नहीं।"—जयन्त ने कहा।

"धनिक बनने के पश्चात जब तुम समस्त वस्तु प्राप्त कर लो, तब मुझे स्मरण करना।"

"और तुम? सर्वस्व त्याग कर यदि दिग्विजयी हो सको, तो मुझे भी स्मरण करना।"

"वर्ष-दो वर्ष में हम दोनों मिल कर अपनी प्रगति से एक-दूसरे को परिचित करते रहेंगे।"—आनन्द ने कहा।

इस तरह दोनों शिष्यों ने हँसते-हँसते विश्व-रंगमंच में प्रवेश किया।

वाराणसी के समान पवित्र नगरी तथा गंगा समान पापमोचनी सरिता! दोनों मित्र गंगा-स्नान के हेतु गंगा घाट की सीढ़ियां उतर रहे थे। आने-जाने वालों की दृष्टि सहज ही उनकी तेजस्विता से आकृष्ट हो उन पर केन्द्रित हो रही थी। जल में एक नौका तर रही थी। मल्लाह नौका खेने को तत्पर थे, परन्तु नौका का स्वामी सीढ़ियों पर खड़ा-खड़ा विकलता से किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके निकट खड़ा हुआ उसका एक मित्र कह रहा था—"बहुत विलम्ब हो रहा है, लक्ष्मीनन्दन! हमारे साथ की नौकाएं तो बहुत दूर निकल चुकी हैं।"

"क्या करूं? कर्मकाण्डी पाखंडियों का कोई ठिकाना है? केवल गंगा को चार कुंकुम के छींटें और चार पुष्प ही तो चढ़ाने हैं, परन्तु अभी तक कोई आया नहीं।"—लक्ष्मीनन्दन ने कहा।

"उन दो विद्यार्थियों से पूछ देखें। संभव है, वह पूजा करा सकें।" लक्ष्मीनन्दन के मित्र ने कहा और आनन्द जयन्त की ओर मुखातिब हो आवाज दी—"ब्रह्मकुमार! जरा इधर आइए।"

दोनों विद्यार्थी निकट आए।

"आप दोनों में से कोई गंगा पूजन करा सकेगा?"

"जी हां, अवश्य।"

"कितना समय लेंगे?"

"अधिक नहीं। बस, जरा स्नान-संध्या कर लें।"—आनन्द ने कहा।

"मेरे पास इतना समय नहीं है। हमें शीघ्र ही प्रस्थान करना है।"

"आनन्द! स्नान करके तो हम निकले ही हैं। पहले पूजा करा दें, फिर आराम से गंगा स्नान कर लेंगे?"—जयन्त ने कहा।

"हां, आपका कहना ठीक है।" नौका के स्वामी लक्ष्मीनन्दन ने कहा, "स्नानादि से निवृत्त हो आप कहां जाएंगे?"

"निश्चित तो कुछ नहीं है। अभी गुरु आश्रम से ही चले आ रहे हैं।" निकट रक्खी हुई कुंकुम की पुड़िया तथा पुष्प हाथ में लेते हुए जयन्त ने कहा, और शीघ्रता से गंगा पूजन करा दिया।

"मेरे साथ चलेंगे आप?"—लक्ष्मीनन्दन ने जयन्त से प्रश्न किया।

"आप कहां जाएंगे?"—जयन्त ने पूछा।

"जहां व्यापार ले जाए। इस समय तो सागर संगम तक ही जाने का विचार है, तत्पश्चात संभव हुआ, तो सागर पार।"

"जैसी इच्छा। मैं तैयार हूं।"—जयन्त ने कहा।

"क्यों आदमी बढ़ा रहे हो, लक्ष्मीनन्दन? पहले ही बहुत आदमी साथ हैं।" मित्र ने जयन्त को साथ चलने के लिए तत्पर हुआ देख अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा।

"तुम नहीं समझते। एक कर्मकांडी को साथ रखना अच्छा है। जगह-जगह के पुजारियों से हम स्वतन्त्र रह सकेंगे।" लक्ष्मीनन्दन ने एक कर्मकांडी का उपयोग समझाते हुए कहा और नौका खेने की आज्ञा दी।

"शीघ्र बैठ जाइए, साथ चलने की इच्छा हो तो !"--मित्र ने जयन्त से कहा।

जयन्त ने पीछे घूम कर देखा--आनन्द गगाजी में डुबकी लगा रहा था। बोला--"आनन्द ! मै इस नौका में जा रहा हू।"

"शुभ काय में विलम्ब क्यो ? खुशी से जाओ !" आनन्द ने सम्मति दी, और स्नान से निवृत्त हो घाट की सीढी के एक कोने में बैठ प्रभु-स्मरण करने लगा।

उसने जब नेत्र खोले, तब जयन्त की नौका दृष्टि मर्यादा से दूर जा चुकी थी, और उसके ठीक सामने घाट के निकट एक डोगी तैर रही थी। उस डोगी को पकडे हुए कई मनुष्य स्नान कर रहे थे, और अनेक घाट पर ध्यान मग्न बैठे थे। एक धीर-गभीर प्रौढ पुरुष ने आगे बढ प्रश्न किया "वत्स ! वाराणसीवासी हो ?"

"नही। गुरु आश्रम में से अभी जगत में आया ही हू। गगा स्नान करने के पश्चात भावी कायक्रम निश्चित करुगा।"--आनन्द ने कहा।

"स्नान से तो निवृत्त हो चुके हो न ?"

"हा।"

"मेरे साथ चलोगे ?"

"आप किस ओर पधारेंगे ?"

"इस समय तो केवल समुद्र-सगम तक ही, तत्पश्चात समुद्र पार।"

"कोई व्यापार ?"

"व्यापार एक ही--ज्ञान का आदान-प्रदान।"

"अति उत्तम। मै आपके साथ यात्रा करने के लिए तैयार हू।"

"परन्तु भाई ! मेरे पास नौका नही है। यह छोटी डोगी ही है।"

"कोई चिन्ता नहीं।"

"हमें अपने हाथो पतवार चलानी होगी। साथ में कोई सेवक नही है।"

"मै अभ्यास कर लूगा।"

"वैभव, विलास, अथवा सत्ता की इच्छा हो, तो मेरे साथ चलना व्यर्थ होगा। किसी व्यापारी की नौका ढूढना।"

"व्यापारी की एक नौका को मैने अभी ही छोडा है।"

"अभी और बहुत आएगी।"

"आपका साथ करने में मैने भूल की है, यह अनुभव हुआ, तो तुरन्त डोगी छोड दूगा।"

"कही विलम्ब हो गया तो ?"

"ऐसा भी हुआ यदि, तो भी मै आपके साथ चलना श्रेयस्कर समझता हू।"

यह कहकर वह डोगी में बैठा। उसके साथ साधु, आश्रमवासी तथा विद्या व्यसनियो का समूह था। यात्रा स्थान पर डोगी रुकती, उस स्थल के विद्वान, तपस्वी तथा साधुओ से वार्तालाप होता, और फिर डोगी दूसरे स्थल पर रुकती। डोगी में भी ज्ञान चर्चा होती, विचार-विनिमय होता, भजन कीर्तन भी होता। एक जून भोजन मिलने पर, कल क्या होगा, इसका कोई विचार तक नही करता था। सामान्य मनुष्यो को जिस भाति मिष्टान्न का विचार उत्साह-प्रेरक होता, उसी भाति इस समूह को उपवास का विचार उत्साह-प्रेरक प्रतीत होता।

इसी प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। गगा सागर पार कर डोगी सागर में प्रवेश कर चुकी थी। सागर तट पर स्थित नगर तथा ग्रामो मे उतर कर यह समूह भ्रमण करता, वहा के मनुष्यो में घुल-मिल जाता। जहा-जहा यह समूह जाता, वहा-वहा के मनुष्यो के परिधान, खान-पान, भावना तथा पूजा-विधि मे परिवर्तन हो जाता। समूह में से एक न एक मनुष्य वहा रह जाता, कभी-कभी तट से दूर स्थित प्रदेश में भी यह समूह जाता और कितने ही पुन डोगी मे लौट कर नही भी आते।

प्रौढ पुरुष की नेतागिरी सर्वमान्य थी। तट पर उतरनेवाले शिष्यो से वह कहता--"वत्स ! इस बात का ध्यान रखना कि हम वस्तु के व्यापारी नही, ज्ञान तथा सस्कार के व्यापारी है। हमें सम्पत्ति का स्वामी नही होना है, परन्तु, हमारे पास जो सम्पत्ति है, उसका वितरण करना है। जब जितना दोगे, उतनी ही वृद्धि होगी।"

एक दिन आनन्द के उतरने की पारी आई। नेता--गुरु को प्रणाम कर वह भी विदेशी जनता में अदृश्य हो गया। उसे अपने गुरु का एक वाक्य बहुत पसद आया था--"जहा जहा आय अपने चरण रखेगा, वहा-वहा आर्यावर्त का उद्भव होगा।"

किन्तु आर्यो के चरण का अर्थ ? गुरु ने समझाया था कि, पूजा के योग्य, सम्हाल कर रखने के योग्य, तथा मनुष्य को प्रेरणा देने में समर्थ हो, वही चरण आर्यो के चरण कहलाएगे। भय, भक्षण तथा शोषण जहा हो, वहा आर्यों की आर्यता पथ-भ्रष्ट हो जाती है। ऐसे चरण पूजने योग्य नही, काटने के योग्य है।

आर्य-चरण की भावना ले आनन्द समुद्र छोड धरती पर उतरा। वह प्रदेश भरतखड नही, वरन भरतखड से बाहर का प्रदेश था।

+ + +

वष, दो वष, तीन वष, पाच वर्ष व्यतीत हो गए। ग्राम-ग्राम, खेत-खेत तथा झोपडी-झोपडी में आनन्द जाता था और दीन, दरिद्र तथा दुखी मनुष्यो में धैर्य, उत्साह और शाति का सदेश देता। धनिको के यहा उसका स्थान नही था, परन्तु निर्धनो के यहा उसके चरणो को प्रभु के चरण सदृश सम्मान मिलता। रुग्ण मनुष्यो की वह सुश्रूषा करता, अशिक्षितो को शिक्षण देता, तथा सुख-दुख की सामान्य व्याख्याओ के स्थल पर वह ऐसी व्याख्या करता कि जिससे बाह्य दृष्टि से साधना-रहित दिखते मनुष्यो को बाहुल्य का आभास होता।

"तुम्हें खुले स्थल में रहना पडता है ? रहने को हवेली की इच्छा है ? मैं भी खुले में ही रहता हू। हवेली में रहनेवालो से पूछ देखो कि, क्या उन्हें सितारे दिखते हैं ? सूर्य-दर्शन कर पाते हैं वे ? बावली में स्नान कर पाते है कभी ? तुम्हारा यह वैभव हवेली में रहनेवालो के पास नही है।" इस प्रकार झोपडी में रहनेवालो को वह झोपडी का महत्व समझाता।

निर्धनो को पकवान की इच्छा होना स्वाभाविक है। वह उनसे कहता--"स्वाद जिह्वा में है, वस्तु में नही। जानते हैं, धनिको को षटरस व्यजन क्यो बनाने पडते हैं ? उन्हें छप्पन भोग में से किसी से किसी भी प्रकार का स्वाद नही मिलता, और तुम्हारी रोटी और चटनी ? कितनी स्वादिष्ट बनी रहती है ? तुम्हारी रसना जीवन्त है, धनिको की रसना मृत-प्राय है।"

आनन्द के इस प्रवचन से निर्धनो को अपनी रोटी अधिक स्वादिष्ट लगने लगती है। धनिक तथा सत्ताधीशो को तो उससे मिलने अथवा वार्तालाप करने का समय नही मिलता। सत्ता और धन से मिलनेवाला आनन्द ही उनके लिए पर्याप्त था।

देश-देशान्तरो में भ्रमण करता आनन्द एक दिन चम्पा प्रदेश की चम्पा नगरी में आ पहुचा। उस नगरी के मनुष्यो के हृदय में सीधे सादे धार्मिक व्यक्तियो के लिए कोई स्थान नही था। अर्थ-प्राप्ति के प्रयत्नो में तथा सत्ता प्रदर्शित करने की योजना मे आनन्द की ओर उनको ध्यान देने की आवश्यकता न होना स्वाभाविक था, तदपि भरतखड से आनेवाले विचित्र साधुओ के प्रति सामान्य मनुष्यो को कौतूहल होता था।

उस नगरी में आनन्द ने एक विशाल महालय देखा। छलकती रिद्धि-सिद्धि के संग्रह-स्थान सदृश उस स्थान पर अनेक पालकिया आती-जाती दीख पडी, सैनिक, व्यापारी, कलाकार तथा श्रमिको का अविरत प्रवाह भी दृष्टिगोचर हुआ।

"किसका महालय है यह ?" प्रत्युत्तर देने का अवकाश एक राहगीर के मुख पर देख आनन्द ने पूछा।

"महाराज! क्या इतना भी नही जानते ?" राहगीर ने साश्चर्य उल्टा प्रश्न किया।

"नही भाई, मैं अपरिचित हू इस स्थान से।"

"यह स्थान सम्पूर्ण चम्पा नगरी के धन तथा नगरी की सत्ता का केन्द्र है। अब समझे, कौन होगा इसका स्वामी ?"

"चम्पा के राजा का तो भवन नही है यह। वह दूसरे स्थान पर रहते है। मै वही से आ रहा हू। राजा के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ?"

"भरतखड के एक महान श्रेष्ठी हैं। इनके पास सहस्रो वाहन हैं, इनके हजारो मनुष्य देश-विदेश में नियुक्त हैं, महान धर्मनिष्ठ तथा दानेश्वर भी हैं। यदि आपकी उनसे भेंट हो सके तो अनेक साम्राज्य उनके अधीन-से है।"

"नाम क्या है उनका ?"

"श्रेष्ठी जयन्त।"

"ओह! यह तो मेरे प्रदेश के ही श्रेष्ठी है। उनसे अवश्य भेंट करूगा।" सहज विचार कर आनन्द ने अपना निश्चय प्रकट किया।

"आज तो भाग्य से ही भेंट कर सकेंगे। परन्तु, प्रयत्न कर देखो। इनसे भेंट करने मे कई-कई मास व्यतीत हो जाते हैं।" कहकर, राहगीर आगे बढ गया।

आनन्द ने आगन में प्रवेश किया। एक रक्षक ने उसे रोक, पूछा—"किस से काम है, साधु ?"

"श्रेष्ठी जयन्त से।"

"वह आप से नही मिल सकेंगे।"

"कारण? क्या वह साधुओ से भेंट नही करते ?"

"उन्होने साधुओ के लिए सदाव्रत खोल रखे है। आपके देश के अनेक साधु वहा रहते हैं। बताऊ आपको ?"

"नही, मुझे उन्ही से भेंट करनी है।"

"अच्छा, तो पहले छोटे मुनीमजी के कक्ष में जा कर पूछ देखिए।" कहकर, रक्षक ने दूर से ही छोटे मुनीम का कक्ष बताया।

छोटा मुनीम भले ही छोटा मुनीम कहलाता था, परन्तु वह एक विश्वविख्यात श्रेष्ठी का छोटा मुनीम था। उसके आस-पास चार रक्षक रहते थे। छोटे मुनीम के निकट पहुचाने से पूर्व रक्षको ने आनन्द को सदाव्रत के अतिरिक्त दान-दक्षिणा की आशा बधाई, परन्तु उसे किसी वस्तु की इच्छा नही थी। वह मात्र श्रेष्ठी के दर्शन करना चाहता था। अन्त में महाप्रयासो से छोटे मुनीम के पास पहुच सका, तो उसने उसे बडे मुनीम के पास भेज दिया।

आनन्द बडे मुनीम के पास गया। बडे मुनीम के आस-पास आठ रक्षको की दीवार थी। वह दीवार भेदते रात हो गई। अन्त में जब रात्रि मे दिन भर के कार्य से निवृत्त हो बडा मुनीम मशालचियो के पीछे पीछे जाने लगा, तब आनन्द उससे मिल सका।

"महाराज! आप साधु हो, तो मन्दिर बनवा दू, बौद्ध साधु हो, तो गुफा खुदवा दू। परन्तु इस समय श्रेष्ठी से मिलने का लोभ त्याग दीजिए।"—बडे मुनीम ने आनन्द को सलाह दी।

"समस्त लोभ त्याग चुका हू, परन्तु श्रेष्ठी से मिलने का लोभ नही त्याग सकूगा।"—आनन्द ने कहा।

"आप पर प्रभु ही की कृपा हुई तो सम्भव है आप उनके दर्शन-लाभ कर सकें। वह बहुत ही व्यस्त हैं। इस समय तो मिलना असभव ही है।"

"मैं यही आगन में प्रतीक्षा करता रहूगा और आपकी भाति जब वह बाहर निकलेंगे, तब भेंट करूगा।"

"किन्तु ऐसा क्या काम है आपको? मुझ से कहिए। जो चाहें, देने को तैयार हू। धन की हमारे भडार में कमी नहीं है। उनसे ही मिल कर क्या करेंगे ?"

"मैं श्रेष्ठी से ही क्यो मिलना चाहता हू, उनके अतिरिक्त यह कोई नही समझ सकता।"

बडा मुनीम सोचने लगा कि कही यह साधु कोई विशेष गुप्त सामाचार तो नही लाया होगा ?

"चीन से आ रहे है ?"—मुनीम ने पूछा।

चम्पा और चीन में युद्ध होने की सम्भावना थी, और इस युद्ध में श्रेष्ठी जयन्त का महत्वपूर्ण भाग था।

"नही, भरतखड से आ रहा हू।"—आनन्द ने कहा।

गुप्तचर मुनीम तक को कुछ नही बताते थे। आनन्द के मुख की शांति और मुस्कान उसे सच्चा साधु अथवा सच्चा गुप्तचर बनाने के लिए पर्याप्त थे। मुनीम जानता था कि श्रेष्ठी ने देश-विदेश में साधु वेश मे अनेक गुप्तचर नियुक्त किए हुए हैं। उसे विश्वास हो गया कि, सुबह से यह व्यक्ति श्रेष्ठी से मिलने का हठ कर रहा है तो अवश्य ही कोई गुप्तचर होगा।

"महाराज! शायद आप नहीं जानते, परन्तु इस समय स्वय चम्पा-नरेश श्रेष्ठी के साथ गुप्त मत्रणा कर रहे हैं।"—मुनीम ने कहा।

"चर्चा समाप्त होने पर मेरे आगमन की सूचना देना।"—आनन्द ने ने कहा।

इस वार्तालाप के पश्चात मुनीम को पूर्ण विश्वास हो गया कि महत्व-पूर्ण सामाचार देने आए इस साधु को लौटा देना जोखम-भरा काम होगा। वह पुन बैठ गया। निकट ही आनन्द को बैठाया।

कुछ समयोपरान्त गुप्त रूप से समाचार आया कि महाराज चर्चा करके अपने प्रासाद में लौट गए है। सदेशवाहक के साथ ही मुनीम ने श्रेष्ठी के पास सामाचार भिजवाया कि साधु आनन्द उनसे मिलना चाहता है।

\+ \+ \+

"साधु आनन्द? कौन होगा यह? कुछ याद नहीं आता।" सुखासन पर आसीन श्रेष्ठी जयन्त ने सदेशवाहक से पूछा। स्वयं चम्पा-

नरेश उससे सलाह लेने आए थे, इस बात का गर्व इस समय भी उसके मुख पर उभरा हुआ था।

"भरतखण्ड से आया है तथा आपके दर्शन करने का हठ किए हुए है।"

"कारण ?"

"प्रभात से ही वह हठ कर रहा है "

"हा हा सभव है, यह वही आनन्द होगा—मेरा गुरु-भाई! बुलाओ, अभी बुलाओ!"

अनेक व्यवसाय में भूतकाल की साधारण बातें और साधारण मनुष्यों को भूल जाने वाले धनिकों की स्मृति में कभी कभी विद्युत कौंध जाती है और साधारण प्रसग पर प्रकाश फैल जाता है। जयन्त को विद्याभ्यास तथा आश्रमवास के दिन याद आए।

एक व्यापारी वाहन में कर्मकाण्डी युवक के रूप में विदेश आए जयन्त ने कितनी शीघ्रता से व्यापार के उत्तुग शिखर सर कर लिए थे, कितनी शीघ्रता से वह असख्य सम्पत्ति का स्वामी हो गया, उस सम्पत्ति के द्वारा कैसी-कैसी सत्ता प्राप्त की और कीर्ति के शिखर पर कितनी चतुराई से चढ गया आदि, बातों पर विचार करते-करते उत्पन्न हुआ स्मृति दोष क्षम्य था। वह ऐसे प्रकाश पुज के मध्य खडा था कि उसे अतीत अन्धकूप सदृश लगे, यह स्वाभाविक था। इतने पर भी अन्त में उसे आनन्द याद आया, यह उसकी सज्जनता का ही परिणाम था।

आनन्द ने कक्ष में प्रवेश किया। भगवा वस्त्र, सहज कृश देह तथा मृदु मुस्कान बिखेरता मुख आनन्द का परिचायक था।

परन्तु जयन्त? आवश्यकता से अधिक स्थूल देह, आवश्यकता से अधिक सुख की लालसा, हीरा-मोती और स्वर्ण के आभूषणों से सुसज्जित अग-उपाग और चारों ओर चमकते वैभव में विद्यार्थी जयन्त पहचाना नहीं जाता था।

"यह जयन्त ही होगा ?"—आनन्द के मन में प्रश्न उठा।

"आनन्द! तू कहा से ?"—जयन्त ने मुख पर सहज प्रसन्नता के भाव लाते हुए पूछा।

"तुझे ही खोजता हुआ आया हू। प्रतिज्ञानुसार हम दोनों अपनी प्रगति से अब तक एक-दूसरे को परिचित नहीं करा सके है।"—आनन्द ने कहा।

"ओहो! वह पुरानी प्रतिज्ञा अब भी याद है ?"

"पुरानी प्रतिज्ञा? अधिक समय नहीं हुआ है इस बात को। थोडे वर्षों में ही तू सम्पत्ति के शिखर पर पहुच गया है।"

"सम्पत्ति और सत्ता, दोनों के शिखर पर आनन्द! परन्तु छोड, कब आया तू? मुझे सूचना तक न दी? तेरे निवास की क्या व्यवस्था है? अब भोजन मेरे साथ ही करना।"

"मैं रात्रि में भोजन नहीं करता, एकभुक्त बन गया हू।"

"भोजन न सही, फलाहार ही करना। परन्तु मेरे साथ बैठ तो सही।" कहकर, जयन्त ने पकवान और फल के सुवर्ण पात्र सम्मुख रखे।

"कहो, सब कुशल तो है ?"—आनन्द ने पूछा।

"प्रभु की कृपा है।"

"धन कितना एकत्रित किया ?"

"इतना कि, फेंकने पर भी कम नहीं होगा।

"धर्म पर कितना व्यय किया ?"

"आनन्द! धर्म-कार्य में भला नहीं। पन्द्रह देव-स्थान, पचास सदाव्रत, सौ पाठशाला, हजार धर्मशाला "

"ओहो! इतने पुण्य से तो मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है।"

"अरे! एक नहीं, अनेक आचार्यों ने मेरा मुक्ति-मार्ग सरल कर दिया है। इन्द्र, शिव, विष्णु-लोक तक मेरे लिए खुले हैं।"

"वाह! आचार्यों ने तुझे मोक्ष की हुडिया तक लिख दी है ?"

जयन्त जैसे स्वर्ग, कैलाश और वैकुठ के प्रति कृपा कर रहा हो, इस प्रकार हँसा।

"और कुछ ?"—आनन्द ने पूछा।

"किसी से कहना नहीं चम्पा का राज्य भी मेरे यहा रहन है।" जयन्त ने कहा।

"मैं समझा नहीं।"

"चीन और चम्पा के बीच युद्ध लगभग आरम्भ हो चुका है।"

"यह बात तो और भी उलझनभरी है।"

"तुझे याद है, आश्रम से निकलते समय मैंने क्या कहा था ?"

"पुन कह।"

"धन ही सच्ची सत्ता है। सम्पूर्ण दिग्विजय की कुजी धन है।"

"हा, याद आया।"

"मेरे धन के बिना चम्पा का राजा चीन के विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकता। मैंने उन्हें धन देकर उनका राज्य और सत्ता रहन रखी है।"

"यह बात है। तब तो सभव है कि एक दिन तू स्वय चम्पा-नरेश बन जाएगा।"

"इसी मार्ग पर जा रहा हू मैं। तू पुन यहा आएगा, तब जयन्त को ही चम्पाधिपति के रूप में पाएगा।"

"तूने धन भी प्राप्त किया, धर्म भी साधा, और सत्ता भी हस्तगत कर ली। मुझे लगता है जयन्त कि, तू शर्त जीत जाएगा।" —आनन्द ने सस्मित कहा।

जयन्त के मुख पर प्रसन्नता के पुष्प खिल उठे। विजय का अट्टहास उसके कठ में आकर अटक गया। अत्यन्त हीनता के प्रदर्शन के भय से उसने हँसी रोक ली।

"परन्तु तू तो बता कि त्याग से क्या प्राप्त किया है?"—जयन्त ने अपनी प्रफुल्लता को इस प्रश्न के साथ बिखेरते हुए पूछा।

"जो था, वह भी गँवा बैठा मैं तो! पहले मैं वस्त्र और उपवस्त्र, दोनों धारण करता था, अब यह एक भगवा वस्त्र ही मेरे पास रह गया है।"

"मैं तुझे मठाधिपति के पद पर नियुक्त कर दूगा। जितने चाहिएँ, उतने मठ, पीठ, स्थानक "

"किसी के धन से स्थापित मठ सम्भवत मैं गवा बैठूगा, मैं तो त्याग और समृद्धि दोनों को साथ-साथ देखता हू न ?"

"अब तक? मुझे, मेरे वैभव और सत्ता को देखने के बाद भी ?"

"शर्त तो पूरी करनी ही है—जीवनपर्यन्त।"

"अभी भी तुझे आशा है कि इस अरण्य निवास, तप और त्याग से तू समृद्ध हो सकेगा ?"

"आशा है। अभी भी दिग्विजय की वाछा है।"

"दिग्विजय? अभी मैं काचन के शिखर पर बैठने के पश्चात भी दिग्विजय शब्द बोलते हिचकता हू, और तू, इस भगवे वस्त्र में

दिग्विजय शब्द का उच्चारण करता है ?" जयन्त ने किंचित तिरस्कार-पूर्वक कहा ।

"दिग्विजय के अति निकट पहुच गया है तू, क्यो ?"

"हा। यदि कल प्रात तू मुझ से मिला होता, तो तुझे अपनी दिग्विजय का इतिहास सुनाता। भरतखण्ड का एक विद्यार्थी विदेश जाए, विदेश में विश्वविख्यात श्रेष्ठी बने, चीन और चम्पा जैसे साम्राज्य को हिला दे और इन साम्राज्यो का स्वामी तक बन बैठे, इतिहास में इतनी बडी दिग्विजय मिलनी क्या सभव है !"

"तो अभी से दिग्विजय की वाणी का उच्चारण क्यो नही करता ?"

"उच्चारण कर अवश्य सकता हू' 'परन्तु किसी से कहना नही आज रात्रि में वह कार्य भी पूर्ण हो जाएगा। तत्पश्चात ' '"

"मैं किसी से नहीं कहूगा, जयन्त ! कौनसा कार्य अपूर्ण रहा है तेरा ?"

"चम्पा नरेश की कुँवरि के साथ मेरा विवाह निश्चित हुआ है। अभी चम्पा नरेश इसी विषय पर वार्ता करने आए थे। और, कह ' आवश्यकता हुई तो बलपूर्वक वह कुवरी का विवाह मेरे साथ कर देंगे ' मुझे छोडकर और कोई सेना के लिए उन्हें धन नही देगा।"

"यह बात ' ! तेरे धन की एक अशक्ति तो यही प्रकट हो गई।"—आनन्द ने कहा ।

"कैसी अशक्ति ?"

"धन से तू कुँवरि का प्रेम नहीं जीत सका।"

"देह के साथ प्रेम स्वयमेव चला आएगा।"

"यह मै नहीं मानता। और सम्भव है, कुँवरि की देह भी तेरे हाथ नहीं लगेगी !"

"क्या कह रहा है तू ?"—जयन्त ने चौक कर पूछा ।

आनन्द कुछ उत्तर देता, इससे पूर्व ही जयन्त का मुख्य मुनीम दौडता आया। हाँफते-हाफते बोला,—"स्वामी ! बाजी पलट गई !"

"क्या हुआ ?"

"राजकुमारी ने आज प्रात दीक्षा लेकर मठ प्रवेश किया है।"—मुनीम ने कहा ।

"और वह दीक्षा मैंने ही दी है। यही समाचार देने के लिए मै सुबह से घूम रहा था !"—आनन्द ने कहा ।

"आनन्द ! तू मेरे मार्ग में—? मेरी तलवार कहा है ?"—जयन्त के मुख पर निराशा से प्रकट हुआ क्रोध प्रज्ज्वलित हो उठा ।

"मुझे तलवार का भय नहीं है, जयन्त ! मै हथेली पर सिर लेकर ही आया हू !"—आनन्द ने कहा ।

"तुझे मृत्यु का भय नहीं ?"

"नहीं, मृत्यु का भय क्यो होगा ? जीवन के अन्तिम कार्य का अर्थ ही मृत्यु है। आज, नही तो कल, कल नही तो किसी और दिन, मृत्यु अनिवार्य है !"—आनन्द ने कहा ।

"एक और समाचार है, स्वामी ! महारानी ने अहिंसा धर्म स्वीकार कर लिया है तथा महाराज को भी यह धर्म स्वीकार करने के लिए समझा रही हैं। ' सम्भव है, अब चीन और चम्पा के बीच युद्ध नही होगा।"

"मेरी दृष्टि से दूर कर दो इस आनन्द को ! धक्के मार कर बाहर निकाल दो इसे !"—उत्तेजित हो जयन्त चीखने लगा ।

"तेरे धन से वो दिल नही जीते जा सकेंगे, जयन्त ! धन से सब जीता जा सकता है, परन्तु प्रेम और मृत्यु पर विजय पाना असम्भव है। तेरा धन जिस दिन इन दोनो वस्तुओ पर विजय प्राप्त कर सके, उस दिन मुझे सूचित करना।"—आनन्द ने कहा और वहा से लौट गया।

\+ \+ \+

साधु आनन्द की वाणी और प्रतिष्ठा की ख्याति महारानी के कानों में पहुचने पर वह तीन दिन से उसके व्याख्यानों का श्रवण कर रही थी। उन व्याख्यानो को सुन राजकुमारी के हृदय में वैराग्य की भावना इतनी तीव्र हुई कि आनन्द को अनिच्छा से उसे साध्वी की दीक्षा देनी पडी । आनन्द यह जान गया था कि धनमत्त जयन्त राजकुमारी की इच्छा के विरुद्ध उससे विवाह करना चाहता है तथा चीन पर विजय पाने की लालसा में चम्पा-नरेश को युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा है ।

जयन्त उसका मित्र था परन्तु सारा जगत भी उसका मित्र था। राजकुमारी को दीक्षा देकर उसने प्रेम विहीन विवाह रोका और अर्थ-विहीन चीन-चम्पा का सहार रोका।

श्रेष्ठी के महालय के दीपक गुबजो और शिखरो के सुवर्ण कलश को जगमगा रहे थे। सुवर्ण कलश के नेत्र खुले । उसने देखा एक गेरुए वस्त्रधारी को विजयवन्त चाल से महालय के द्वार से बाहर निकलते हुए ।

सुवर्ण फीका पड गया। कासन को गेरू से ईर्ष्या हुई।

अनुवादक राजगोपाल माथुर

भारत की आधुनिक कला—कुछ समस्याएं—(पृष्ठ ३६ का शेषांश)

कितने ही कलाकार यूरोप जाकर वहा की आधुनिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करके आए है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि हमारी कला का मूल्यांकन करने के लिए आलोचक द्वारा आधुनिक यूरोपीय कला का गहरा अध्ययन किया जाए । मेरे विचार में जहा सरकार और सरकारी संस्थाओ द्वारा हमारे कलाकारो को आर्थिक सहायता, बाहर जाने के लिए सुविधाएं मिलती हैं, वहा उन्हें कला-आलोचकों को भी सहायता देनी चाहिए । अमृता शेरगिल को अन्त तक यह शिकायत बनी रही कि उनकी कला की गहराई में जाकर कोई आलोचना नहीं करता जिसके बिना कला फलती-फूलती नहीं ।

यह कला-आन्दोलन अभी तक अपने शैशवकाल में ही है, उसके प्रशसको और दिलचस्पी लेने वालों की सख्या अभी अधिक नहीं है, उसके विकास में सहयोग देने वाली सरकारी संस्थाएं पिछले कुछ वर्षों पूर्व ही स्थापित हुई हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि दूसरे देशो के अनुभवों से लाभ उठा कर ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए, जिनमें गलती की सम्भावना कम हो, जो तेजी से आन्दोलन को आगे ले जाए और जो हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों तथा परम्पराओ के अनुरूप हो ।

राजधानी में रंगमंच

सुरेश अवस्थी

पिछले १० वर्षों में दिल्ली में धीरे-धीरे जिस प्रकार रंगमंचीय क्रियाकलाप का विस्तार और विकास हुआ है उससे सहज ही इस बात का बोध हो जाता है कि भारतीय रंगमंच पुनर्जागरण और नवनिर्माण के युग से गुजर रहा है। नाटक के सभी क्षेत्रों और पक्षों में नई शक्तियों का उन्मेष दिखाई दे रहा है, और उसके प्रतिफल से भारतीय नाटक सभी प्रकार से पुष्ट और सम्पन्न हो रहा है। इन दस वर्षों में गत वर्ष का कई दृष्टियों से महत्व है। शायद पिछले किसी एक वर्ष में रंगमंच का क्रियाकलाप मात्रा और गुण दोनों दृष्टियों से, इतना महत्वपूर्ण नहीं था। गत वर्ष नए और अधिक समर्थ नाट्य दलों का निर्माण हुआ, नाटकों के चुनाव और प्रदर्शन कला दोनों दृष्टियों से नए प्रयोग किए गए, हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी पहले से अधिक और अच्छे स्तर के नाटकों का प्रदर्शन हुआ, नाटक के दूसरे रूपों, प्रकारों, जैसे कठपुतली नाटक आदि में भी नए प्रयोग और नए प्रदर्शन किए गए, अंग्रेजी नाटकों के कुछ बहुत ही ऊँचे स्तर के प्रदर्शन हुए, दो तीन स्थानीय अव्यवसायी नाट्य-दलों ने अधिक संगठित होकर अर्द्ध व्यवसायी रूप अपनाया। एक नाट्य-प्रशिक्षण केन्द्र 'एशियाई थिएटर संस्थान' की स्थापना हुई और अब राष्ट्रीय नाट्य-विद्यापीठ का आरंभ होने जा रहा है, और इन सब के साथ ही थिएटर के लिए एक विशिष्ट दर्शक वर्ग तैयार हुआ और पहले से अधिक संगठित और रुचि-परिष्कृत हुआ। इस नाट्य क्रिया-कलाप का विस्तार इतना अधिक था कि एक ओर तो दर्शक 'हॉली डे आन आइस' (बर्फ पर मनोरंजन देख रहे थे, और दूसरी ओर हाथरस और मथुरा की नौटंकी और रास-मंडलियाँ पुरानी दिल्ली के चौराहों, बगीचों और यमुना के घाटों पर अपना प्रदर्शन प्रस्तुत कर रही थीं। इसके साथ-ही साथ, हमने चेकोस्लोवाकिया और रूस के कठपुतली नाटक पहली बार देखे।

दिल्ली नाट्य-संघ का नाटक समारोह

राजधानी में इतने अधिक और विस्तृत रंगमंचीय क्रिया कलाप का नियमन और संगठन बहुत अंशों तक दिल्ली नाट्य संघ द्वारा आयोजित वार्षिक नाटक समारोह द्वारा होता है। यह समारोह सितम्बर के पहले सप्ताह में आरम्भ होकर मार्च के पहले सप्ताह में समाप्त होता है। गत वर्ष इस नाटक समारोह के अंतर्गत कुल २५ नाट्य प्रदर्शन हुए, जिनमें १० नाटक हिन्दी के, ८ अंग्रेजी के, ४ बंगाली के, २ तेलुगु और १ पंजाबी का था। २४ स्थानीय नाट्य-दल इस समारोह में सम्मिलित हुए और नाटकों का प्रदर्शन किया। प्रत्येक वर्ष इस प्रकार की प्रतियोगिता और पुरस्कारों के आयोजन से राजधानी में रंगमंच को बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिल रहा है। नाट्य संघ पुरस्कारों के लिए रंगमंच के अनेक कला-पक्षों—जैसे निर्देशन, प्रस्तुतीकरण, रंग सज्जा, नाट्य-लेखन और अभिनय आदि पर पुरस्कार की व्यवस्था करता है। और इस तरह रंगमंच की अनुषंगी कलाओं के कलात्मक रूप धीरे-धीरे विकसित हो रहे हैं और उनके स्तर ऊँचे हो रहे हैं। हमारा भारतीय रंगमंच परम्परा से संबद्ध रहकर भी रंगमंच के अनेक आधुनिक वैज्ञानिक उपादानों और माध्यमों से अपने को वंचित नहीं रख सकता। अतः हमारी कलात्मक समस्या परम्परा से सम्बद्ध रहकर नई कला-सामग्री और सिद्धांतों को स्वीकार करने और उनको भली भाँति समन्वित करने की है। शायद, कुछ अंशों तक हमको प्रदर्शन के वैज्ञानिक साधनों और सामग्री का अपनी विशिष्ट परिस्थितियों और कला-संस्कारों के अनुरूप रूपान्तरण करना होगा और उनके नए मूल्य स्थिर करने होंगे। नाट्य-संघ जैसी संस्थाओं पर इस कार्य का बड़ा भारी दायित्व है।

इसमें संदेह नहीं है कि जब हमारे नाट्य क्रिया कलाप का इतनी तेजी से विस्तार हो रहा है तो ऐसे नाटक-समारोहों और प्रतियोगिताओं का संगठन कई तरह से उपयोगी है, किन्तु यदि हम इन आयोजनों को और अधिक अच्छी तरह संगठित कर सकें और साथ ही हमारे प्रयोजन

'मास्टर बिल्डर' (अंग्रेजी) का एक दृश्य



और लक्ष्य अधिक स्पष्ट हों तो हम इनको और अधिक उपयोगी बना
सकते हैं, और हमारे नाट्य-आन्दोलन में इनका बहुत बड़ा योगदान हो
सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे प्रमुख बात यह है कि यद्यपि बराबर
इस बात पर चिंता भाव से चर्चा होती रहती है कि हिन्दी में अच्छे
नाटकों का अभाव है, और हमारे रंगमंच का सबसे दुर्बल पक्ष यही है,
किन्तु अभी तक हमने अच्छे नाटकों के अभाव को दूर करने के लिए
कोई संगठित प्रयत्न नहीं किए। इस सम्बन्ध में सबसे मूल बात यह है
कि हमें नाटककार को पूरे रंगमंचीय क्रिया-कलाप में उसका प्रतिष्ठित
स्थान देना होगा, और तभी वह अपने मौलिक कार्य-क्षेत्र रंगमंच को
वापिस लौटेगा—नाटककार का यह पुनरागमन ही नाटक को नई शक्ति
और चेतना दे सकेगा।

दिल्ली नाट्य संघ के इस वर्ष के पुरस्कारों की सूची से ज्ञात होता
है कि किसी भी नाटककार को पुरस्कार नहीं दिया जा सका क्योंकि कोई
नाटक उच्च स्तर का नहीं था। प्रतियोगिता में सम्मिलित होनेवाले
हिन्दी नाटकों की सूची से भी ज्ञात होता है कि अधिकांश नाटक या
तो पुराने स्टेज-नाटक हैं जिनको पहले कुछ सफलता मिल चुकी है
या गुजराती, मराठी और अंग्रेजी से अनूदित और रूपांतरित नाटक
हैं। शायद एक भी ऐसा नया और मौलिक हिन्दी नाटक इस समारोह
में नहीं सम्मिलित हुआ और न इस समारोह के बाहर ही प्रदर्शित
किया गया जो एक साथ अपनी साहित्यिक और नाटकीय शक्ति का
परिचय देता। अच्छे नाटकों की कमी की स्थिति की गंभीरता का इस
से सहज ही बोध हो जाता है। जब हम अच्छे नाटकों के लिए संगठित
प्रयत्नों की बात करते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नाटककारों
को आदेश देकर अच्छे नाटक लिखवाए जा सकते हैं। अच्छे नाटक
शायद अपने सहज, स्वाभाविक रूप में ही लिखे जा सकेंगे, और जिस प्रगति
के साथ भारतीय रंगमंच का विस्तार हो रहा है उससे इस बात का
आश्वासन होता है कि हमारे नाटककार नाटक-रचना में अधिक प्रौढ़
होंगे और नए नाटककारों का भी जन्म होगा और इस प्रक्रिया से हमारा
नाटक साहित्य भी कुछ वर्षों बाद अधिक सम्पन्न हो सकेगा। किन्तु
यदि हमारा नाटक संघ और दूसरी सरकारी संस्थाएं एक तो नाटककार
को कुछ अधिक प्रतिष्ठा और मान्यता दें और उसकी रचनाओं के लिए
समुचित पारिश्रमिक का प्रबन्ध करें और दूसरे अन्य भारतीय भाषाओं
और अंग्रेजी से नाटकों का अनुवाद और रूपांतर का अधिक सुयोजित
और संगठित प्रयत्न किया जाय तो इसमें संदेह नहीं है कि कुछ ही वर्षों
में हम शायद कुछ अच्छे नाटक अपने नाट्य-दलों को दे सकेंगे। अच्छे
नाटकों की समस्या ही वास्तव में मूल समस्या है क्योंकि यदि हमारा
नाटक साहित्य ही दुर्बल होगा तो रंगमंच की सभी गौण कलाएँ—
अभिनय, प्रस्तुतीकरण और रंगसज्जा आदि के भी स्तर ऊंचे नहीं हो
सकेंगे; और एक बार यदि हमने इन कलाओं के नीचे स्तर स्वीकार
कर लिए तो फिर उनसे उबर पाना हमारे लिए कठिन हो जाएगा।

१९५८-५९ में जहाँ एक ओर 'ढीले पुर्जे' और 'कस्तूरी मृग'
गुजराती और मराठी से अनूदित किए गए वहाँ दूसरी ओर शेक्स-
पियर के अंग्रेजी नाटक मैकबेथ के पद्यानुवाद और संस्कृत नाटक 'मृच्छ-
कटिक' के हिन्दी रूपांतर—'मिट्टी की गाड़ी' का प्रदर्शन किया गया।
इन अनुवादों और रूपांतरों का यह महत्व है कि हमारे नाट्य-दल सभी
प्रकार से यह प्रयत्न कर रहे हैं कि वे हिन्दी रंगमंच के लिए नाटकों की



'स्वप्न वासवदत्तम्' (संस्कृत से अनुवादित)



'छेरा तार' (बंगला)





'हीर राझा' (पजाबी)

सख्या बढाएँ और उनके नए-नए रूप और विधाएँ प्रस्तुत करें। किन्तु अधिकाश अनुवादो, रूपातरो और नए प्रयोगो में कही कोई बहुत बडी त्रुटि रह जाती है, और शायद इसका कारण यही है कि यह कार्य पूरे कलात्मक दायित्व के साथ नहीं किया जा रहा। वास्तव में, ऐसे अनुवाद और रूपातर एक व्यक्ति द्वारा न किए जाकर लेखको और निर्देशको की छोटी-छोटी समितियो द्वारा किये जाने चाहिएँ—कम से कम इस प्रकार की समितियाँ पाडुलिपि का पुनरीक्षण अवश्य करें। गुजराती और मराठी के प्रसिद्ध और सफल नाटक—ढीले पुर्जे और कस्तूरी मृग हिन्दी में अनुवादित रूपातरित होकर सफल नही होते तो नि सदेह इसका कारण हमारे अनुवाद और रूपातर की कोई त्रुटि ही है। यदि इसके लिए स्थानीय नाट्य-दल सम्मिलित होकर एक सुयोजित कार्यक्रम बनाए और छोटी-छोटी समितियो के अधीन यह कार्य किया जाए तो अधिक अच्छे परिणाम निकल सकते है।

हिन्दी में मैकबेथ और 'मिट्टी की गाडी' दोनो ही कई दृष्टियो से नए और प्रयोगमूलक प्रदर्शन थे। इन दोनो प्रदर्शनों पर स्थानीय पत्रो और नाट्य-विचारको के बीच चर्चाएँ और विवाद हुए है। मैकबेथ के प्रदर्शन में यद्यपि कई तरह की कमजोरियाँ थीं और उनका कारण पद्य नाटको के प्रदर्शन की कुछ मूल समस्याएँ ही है, फिर भी उसका इस दृष्टि से बहुत बडा महत्व है कि शेक्सपियर के किसी नाटक का पहला

'भाऊ बन्दकी' (मराठी)



हिन्दी पद्यानुवाद एक सगठित रूप से प्रदर्शित किया गया। 'मिट्टी की गाडी' के प्रदर्शन ने अनेक परम्परागत व्यवहारो और मान्यताओ की अवहेलना करके कुछ सर्वथा नवीन और रीति-भ्रष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। इस प्रदर्शन ने दो मूल बातों पर विवाद उठाया—एक तो हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ में सस्कृत नाटको के प्रदर्शन और दूसरी, लोक-नाटको के पुनर्निर्माण और रूपातरण की समस्या। हमारे आधुनिक रगमचीय क्रियाकलाप में इन दोनो ही समस्याओ का बहुत बडा महत्व है। 'मिट्टी की गाडी' द्वारा जहाँ एक ओर सस्कृत नाटक आधुनिक शैली में प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया, वही उसे नई नौटकी की सज्ञा देकर इस बात का भी सकेत किया गया कि हमारे लोक नाटको के रूपातर और नवनिर्माण का स्वरूप क्या होगा। इस प्रदर्शन ने यद्यपि इन दोनों ही प्रश्नो पर उचित निर्देशन नही किया, किन्तु इन प्रश्नो पर इस प्रदर्शन से विचारो को जो नई उत्तेजना मिली और पत्रों और विचारको के बीच जो चर्चाएँ हुई उनसे निश्चित ही बहुत सी नई विचार-सामग्री सामने आई है और आशा है, कि इन दोनो ही प्रश्नो पर आगे अधिक गभीर और सही प्रयत्न होंगे।

अन्य भारतीय भाषाओ के नाटक

समीक्षाधीन वर्ष की एक विशेषता यह है कि इस वर्ष बगाली, तलुगु, पजाबी आदि भारतीय भाषाओ के नाटक अधिक सख्या में प्रस्तुत किए गए। राजधानी में रहनेवाले विभिन्न भाषा-भाषी धीरे-धीरे अपनी-अपनी भाषाओ के नाट्य-दलो का सगठन कर रहे है, और अपनी भाषाओ के नाटको के प्रदर्शन के पहले से अधिक गभीर प्रयत्न कर रहे है। गत वर्ष इस प्रकार के कई नए नाट्य-दल सगठित हुए और उनका भविष्य इस बात से आशापूर्ण लगता है कि उनके प्रदर्शनो के लिए दर्शक-समाज सहज सुलभ है और बडे उत्साह के साथ प्रदर्शनो में सम्मिलित होता है। पजाबी और बगाली नाटको का प्रदर्शन इस दृष्टि से बहुत अधिक सफल होता है। उनमें सम्मिलित होने वाला दर्शक-समाज रगशालाओं को उसी भाव से जाता है जिस भाव से वह कोई सामाजिक उत्सव मनाते है। अनेक भारतीय भाषाओ में इस प्रकार नाट्य-प्रदर्शनो का क्षेत्र विस्तृत होने से एक बड़ा भारी लाभ यह होगा कि हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओ में नाटक साहित्य के अनुवाद और रूपातर का कार्य अधिक सुगम और व्यवस्थित हो जाएगा। हम एक दूसरे के नाटको से परिचित होगे और यह परिचय इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण होगा कि वह पुस्तक के माध्यम से न होकर रगशालाओ में होगा। अत रगमच पर शक्तिवान नाटको के विनिमय से हमारा रगमच भी अधिक पुष्ट और समर्थ होगा। एक और रोचक बात इस सम्बन्ध में यह है कि विकसित और साहित्यिक भाषाओ के साथ गढवाली आदि बोलियों में भी नाटक-समारोहो का आयोजन किया गया। दिल्ली की नई बस्तियो में भी इस प्रकार की बोलियो और विकसित भाषाओ के नाट्य-प्रदर्शनो की धीरे-धीरे एक परम्परा बन रही है, और अपने सीमित साधनो के साथ उत्साही कार्यकर्ता अच्छा कार्य कर रहे है। सबसे बडी उत्साह-वर्द्धक बात यह है कि इन नाटको के लिए दर्शक समाज सहज ही प्राप्त है। अत हमारे नाटक सघ और दूसरी सरकारी और अर्द्ध-सरकारी सस्थाएँ यदि सादे खुले रगमचो की व्यवस्था इन बस्तियो में कर दें, और थोडी सी रगमच सम्बन्धी टेक्निकल सामग्री देकर स्थानीय दलो की

सहायता कर सकें तो राजधानी में रगमचीय क्रिया-कलाप का बहुत बडा विस्तार हो सकता है, और साथ ही अधिक सरलता के साथ और कम खर्चे पर लोगो का मनोरजन हो सकता है।

अग्रेजी नाटक

गत वर्ष दिल्ली में रगमचीय जीवन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना यह है कि 'थिएटर वर्कशाप' जैसे नाट्य-दलो का जन्म हुआ और अनेक उच्च स्तर के अग्रेजी नाटक, जैसे, आवर टाउन, वेटिंग फार गोडो, लुक बक इन ऐंगर, ए व्यू फ्राम द ब्रिज, हेस्टी हार्ट आदि का प्रदर्शन हुआ। इन नाटको के प्रदर्शन के ऊचे स्तर की स्थानीय प्रेस और जनता दोनो ने सराहना की और शायद स्थानीय दर्शको की रुचियो का परिष्कार और उनको अधिक सगठित करने मे इन नाट्य-प्रदर्शनो का जितना बडा योगदान हुआ है उतना और किसी दूसरी बात का नही हुआ। इन अग्रेजी नाटको के प्रदर्शन के कई उपयोगी पक्ष है। एक तो इनमे प्रदर्शन-कला के अनेक रूपो और पक्षो जैसे रग सज्जा, प्रकाश योजना और निर्देशन आदि मे बडे ही उच्च मानक स्थापित किए गए है और दूसरे, इनके द्वारा समसामयिक अग्रेजी नाट्य-लेखन की शैलियो का परिचय हुआ है। इनमें से अधिकाश नाटक प्रयोगमूलक हैं और वे नाट्य-लेखन की नई शैलियो का परिचय देते है। इस प्रकार इन नाट्य-प्रदर्शनो से हमारे निर्देशक, रंगसज्जाकार और लेखक, साथ ही साथ दर्शक सभी शैलियो के व्यवहार और अनुशासन सीख सकेंगे और अपने प्रदर्शनो में उनका प्रयोग कर सकेंगे। इसके पहले पिछले किसी वर्ष मे अग्रेजी नाटक का इतना अच्छा चुनाव और इतना ऊँचा कलात्मक स्तर नही रहा है। इस कार्य में हमको बहुत बडी सहायता कई दूतावासो के कर्मचारियो से मिली है—मिसेज रोजेन फील्ड, मि० रटैनब्रिज आदि ऐसे ही नाम हैं जिन्होने अभिनय और निर्देशन की कलाओ में बहुत ऊचे आदर्श हमारे सामने रखे हैं। अग्रेजी नाट्य-प्रदर्शन में जिमटाइटलर का भी कई दृष्टियो से बहुत बडा महत्व है, क्योकि उन्होने अच्छे अभिनय के साथ ही साथ थिएटर वर्कशाप का बडी ही वैज्ञानिक रीति से सगठन किया है। इस सम्बन्ध में श्री बाब वाला का नाम भी उल्लेखनीय है क्योकि वे रग सज्जा और दृश्यबधो के निर्माण के नए कला-मान प्रस्तुत कर रहे हैं और हमारे प्रदर्शनो को आधुनिक भगिमाएँ दे रहे हैं। प्रकाश योजना के क्षेत्र में मि० माइकेल ओबरमैन का कार्य सराहनीय है।

कुछ नए नृत्य नाटक

इसी वर्ष नृत्य नाटको के भी दो नए महत्वपूर्ण प्रदर्शन हुए, एक तो, बम्बई के लिटिल बेले ट्रुप का 'मेघदूत' और दूसरा बम्बई के ही दूसरे नाट्य-दल बैले यूनिट का 'साँझ-सबेरा'। लिटिल बैले-ट्रुप बैले शैली की नृत्य-रचना के जन्मदाता स्वर्गीय शातिबर्द्धन के निर्देशन में पहले ही 'पचतत्र' प्रस्तुत कर चुका है, जिसे बहुत ख्याति मिली है, और जिसने भारतीय नृत्य नाटक के भावी रूप का मूलाधार निश्चित कर दिया है। इस नृत्य-दल ने बहुत कुछ 'पचतत्र' की नृत्य-रचना के आधार पर ही मेघदूत का निर्माण किया है, यह सतोष की बात है कि इसके नृत्य निर्देशक श्री आपुनी ने शातिवर्द्धन का कार्य आगे बढाया है। यद्यपि व्यापक रूप से यह नृत्य नाटक बहुत अशो तक पचतत्र से ही कला-सामग्री और रूढ़ियाँ ग्रहण करता है, किन्तु फिर भी इसमें काफी नए तत्व है और इससे इस दल के विकास का आश्वासन मिलता है। भारतीय नृत्य नाटक के रूप-निर्माण का काम बहुत बडा है और उसके लिए हमको एक ओर



'हम हिन्दुस्तानी' (हिन्दी)

जहाँ शास्त्रीय नृत्य-शैलियो और लोक-नृत्य के अनेक रूपो से बहुत सी नृत्य-गतियाँ और अभिनयन के रूप लेने है, वहाँ साथ ही साथ बैले नृत्य-शैली को इन दोनो साधनो से नितात भिन्न नई आधुनिक नृत्य-गतियो, जो अधिक नाटकीय हो और जिनमे अभिनयन की अधिक क्षमता हो—की भी सर्जना करनी होगी। इसके साथ ही साथ हमारे नर्तक-अभिनेताओ को अपना नर्तन कथा की अनेक स्थितियो के साथ समेकित करना होगा, और एक नए कला-रूप के निर्माण में अपने नृत्य-खण्डो को नियोजित करना होगा।

नृत्य नाटको का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उनके पद्य सवाद, गीत और आर्केस्ट्रा सगीत है। इस दिशा मे भी इस दल ने सही निर्देश किया है, और सगीत को बडी सशक्त नाटकीयता प्रदान की है। हमारे नृत्य-नाटको का सबसे दुर्बल पक्ष उनका दृश्य लेखन, उनके पद्य-सवाद और गीत है। यह बात पचतत्र, मेघदूत और दूसरे नृत्य-नाटको में भी मिलती है। साँझ-सवेरा का दृश्य-लेखन और उसकी कथा तो बहुत ही कमजोर है, और इसलिए शचिनशकर, जो पहले रामलीला आदि नाटको में पर्याप्त सफलता पा चुके है, इस बैले की रचना मे सफल नही हो सके। इस कार्य के लिए नृत्य नाटक के निर्देशको और रचयिताओ को नाटककार और लेखक का सहयोग प्राप्त करना होगा, उसकी अवहेलना करके हम कभी भी नृत्य-नाटको के इस पक्ष को पुष्ट नही बना सकेंगे। नृत्य नाटको का कथा-विन्यास और दृश्य-लेखन और उनके सवाद और गीत इन सबका बडा महत्व है क्योकि इन्ही से नृत्य के अनेक अनुक्रम और खण्ड उपजते

'चांदी का रंग' (उर्दू)



है, शक्ति पाते हैं, और इनके दुर्बल होने पर नृत्य-कथाओं का सारा आयोजन और प्रदर्शन की दूसरी युक्तियाँ बड़ी ही निष्प्रयोजन लगने लगती हैं और वे फिर अपनी कलात्मक सार्थकता सिद्ध नहीं कर पातीं।

नृत्य नाटक के क्षेत्र में एक और प्रयोग कथक नृत्य शैली के आधार पर 'मालती-माधव' नाटक की रचना है, जिसे स्थानीय भारतीय कला केन्द्र ने रचा है। कथक नृत्यशैली में विशेषकर उसकी मुद्राओं में बड़ी नाटकीय संभावनाएँ हैं, और यदि इस दिशा में आगे प्रयत्न किए गए तो कथक के आधार पर भी हम नाट्यवत बले तैयार कर सकेंगे। किन्तु यहाँ भी दृश्यों के विन्यास, कथा के विभाजन और संगीत को अधिक नाटकीय रीति से नियोजित करने की समस्या है। फिर भी पिछले १० वर्षों में नृत्य नाटक के निर्माण के जो प्रयत्न हुए हैं वे आशाजनक हैं, और सही दिशा का संकेत करते हैं। इन प्रयोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें लोक नृत्य और नाटकों की बहुत-सी कला सामग्री और उनकी रूढ़ियों और प्रदर्शन की युक्तियों को बड़ी-ही सफलता के साथ अपनाया गया है और उनको बिलकुल नए मुद्रा-अर्थ दिए गए हैं।

कठपुतली नाटक

इस वर्ष की एक महत्वपूर्ण घटना यह है कि हमारे देश में पहली बार चेकोस्लोवाकिया और रूस के कठपुतली नाटकों का प्रदर्शन हुआ। चेकोस्लोवाकिया के कठपुतली नाटक की तो सैकड़ों वर्षों की परम्परा है और उसका वहाँ के कलात्मक और सांस्कृतिक जीवन में बहुत ऊँचा स्थान है। रूस के कठपुतली नाटक का इतिहास यद्यपि २५-३० वर्षों का ही है किन्तु वहाँ भी बहुत बड़ी उपलब्धियाँ इस क्षेत्र में हुई हैं। दिल्ली में इन प्रदर्शनों को प्रेस और जनता दोनों ने बहुत सराहा और रंगमंच के दर्शकों के लिए तो बहुत बड़ा अनुभव रहा। इन प्रदर्शनों का इस दृष्टि से और भी अधिक महत्व है कि हम भी अपने देश में पिछले ४-५ वर्षों से अपने कठपुतली रंगमंच के पुनर्निर्माण का काम कर रहे हैं, और इस दिशा में कुछ संतोषजनक प्रयोग भी हुए हैं। स्थानीय भारतीय कला केन्द्र और सूचना-मंत्रालय के गीत और नाटक विभाग ने महत्वपूर्ण कठपुतली नाटक प्रदर्शित किए जिनमें पुरानी परम्परागत नाटक सामग्री का पुनर्निर्माण किया गया—पुतलियाँ नए ढंग से गढ़ी गईं, उनकी सज्जा अधिक नाटकोचित और आधुनिक रीति से की गई, और साथ ही कठपुतली रंगमंच और उसके प्रदर्शन में भी सुधार किया गया, और कथा के आख्यान और गायन आदि को अधिक नाटकीय और सार्थक बनाया गया। ढोला-मारू, झाँसी की रानी और कुंवरसिंह की टेक ऐसे ही प्रयोग हैं। अभी हाल ही में एक नाट्य-संस्था 'पुतलीघर' का निर्माण हुआ है, जिसमें परम्परागत कठपुतली नाटक 'अमरसिंह राठौर' का पुनः संपादन किया गया और उसे नए रंगमंच और नई प्रदर्शन युक्तियों के साथ प्रस्तुत किया। ये सारे प्रयोग अभी अन्वेषण का ही काम कर रहे हैं, इस क्षेत्र में अधिक विचार करने और संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता है। आशा है कि कठपुतली नाटक के पुनर्निर्माण में लगे हुए कलाकारों और कार्यकर्ताओं को महत्वपूर्ण विदेशी कठपुतली नाटक देखने के बाद बहुत से नए विचार मिलेंगे और उनके कार्य की दिशाएँ स्पष्ट होंगी।

'मास्टर बिल्डर' (अंग्रेजी)

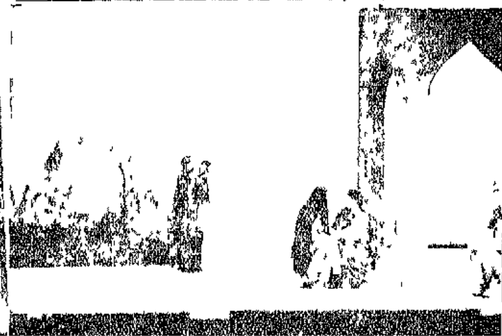


सबसे पहले तो हमको अपने कठपुतली नाटक में पुतलियों के संचालन की परंपरागत रीति के सम्बन्ध में कुछ करना होगा और इसका विस्तार करना होगा जिससे कि हमारी पुतलियाँ और अधिक नाटकीय मुद्राएँ व्यक्त कर सकें और उनमें संभाषण का गुण आ सके। इसके लिए हमें संचालन की कुछ दूसरी पद्धतियाँ भी स्वीकार करनी होंगी, जैसा कि हमने चेकोस्लोवाकिया के कठपुतली नाटक में देखा कि एक ही प्रदर्शन में पुतलियों के संचालन में एक साथ ही कई पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, और तभी कथा की अनेक स्थितियों को बहुत कुछ उसी रीति से चित्रित किया जा सकता है जैसे कि 'मानव' अभिनेता करते हैं। दूसरा कार्य है प्रकाश-योजना और आर्केस्ट्रा संगीत को और अधिक उपयोगी और नाटकीय बनाने का। इस क्षेत्र में तो विदेशी कठपुतली नाटकों का स्तर बहुत ही ऊँचा है और उनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमने कठपुतली के रंगमंच, दृश्यों की सज्जा और छोटे-छोटे दृश्य उपकरणों के निर्माण और उनके प्रयोग में निस्संदेह काफी अच्छा काम किया है, और शायद, हमारे कठपुतली नाटक में अभी से अधिक रंगसज्जा ग्रहण करने की क्षमता नहीं है, और कलात्मक दृष्टि से वह बहुत सार्थक भी नहीं होगा।

रूस और चेकोस्लोवाकिया के कठपुतली नाटकों के समान हम भी अपने कठपुतली रंगमंच के कई धरातल बना सकते हैं, और रंग-सज्जा को कुछ और संवार सकते हैं। सबसे बड़ा काम इस संदर्भ में है नए कठपुतली नाटकों की रचना, उनका दृश्य विभाजन, और संवाद लेखन और अभिनेताओं द्वारा निवेदन। इस क्षेत्र में हमारे प्रयोग में अभी



'अम्बपाली' (हिन्दी)



'हीर राझा' (पजाबी)

बहुत-सी कमजोरियाँ है। हम आवश्यकता से अधिक सवाद कठपुतली नाटको में भर देते है जिससे कठपुतलियो की पात्रता और उनकी विशिष्टता ही नष्ट और विघटित हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह सवाद हमारे नाटको मे प्राय अभिनेताओ द्वारा स्वाभाविक और स्पष्ट आवाजो मे बोले जाते है जिसकी कठपुतली के साथ सगति नही बैठती। इस सम्बन्ध मे भी हमको और विचार करने की जरूरत है, क्योकि हमने देखा कि विदेशी कठपुतली नाटको मे एक तो सवादो का प्रयोग ही बहुत कम होता है, और जितने नितान्त आवश्यक सवाद प्रयोग भी किये जाते है उनको अभिनेता बडी अर्द्ध मानवी और कुछ अशो तक विकृत आवाजो में प्रस्तुत करते है और इस प्रकार कठपुतली नाटको का स्वरूप और प्रकृति सुरक्षित रहती है।

अर्द्ध-व्यवसायी नाट्य-दल

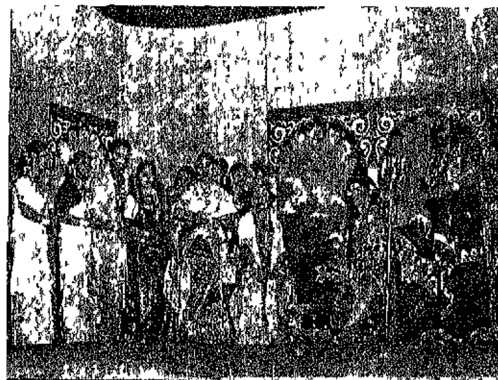
इस वर्ष एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि कुछ स्थानीय अमेच्योर नाट्य-सघो ने अर्द्ध-व्यवसायी रूप में अपने को सगठित किया। इन नाट्य-दलो ने अभिनेताओ को कुछ मासिक वेतन अथवा प्रत्येक प्रदर्शन के आधार पर कुछ पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की। इसके साथ ही इन दलो ने अधिक सगठित रूप से नाटको के प्रदर्शन भी किए। यह एक शुभ चिन्ह है कि हमारे अमेच्योर नाट्य-दल अपने को अर्द्ध-व्यवसायी रूप में विकसित और सगठित कर रहे हैं। इस समय जब हम पेशेवर रगमच के निर्माण की आवश्यकता पर विचार कर रहे है, तो यह प्रश्न भी और अधिक सामयिक और सार्थक हो जाता है। शायद कई कारणो से अभी हिन्दी क्षेत्र में व्यावसायिक रगमच का जन्म और निर्माण सम्भव नही है, अत कुछ वर्षों तक यह एक बीच की अवस्था अनिवार्य होगी और उसकी उपयोगिता भी है। इस सम्बन्ध में आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के नाट्य दल यदि और अधिक सहकारिता के साथ काम करे और अपने साधनो और सामग्री को सघटित करके उसका उपयोग करें तो हम अपने सीमित साधनो के साथ ही अधिक अच्छा काम कर सकेंगे। यदि सरकारी और अर्द्ध-सरकारी सस्थाओ से इन नाट्य-दलो को कुछ आर्थिक अनुदान और टेक्निकल सामान भी मिल जाए तो बहुत बडी सहायता होगी। इस समय हमारे देश के विशेषकर बडे-बडे नगरो में अमेच्योर नाट्य-दल ही अधिक कार्यशील है, और उनके अच्छे कलात्मक स्तर है, और यदि इन नाट्य-दलो को थोडी सी और सहायता मिल जाए, और अपने को अर्द्ध-व्यवसायी रूप में सगठित कर सकें, और अभिनेताओ को सुविधाएँ और पारिश्रमिक दे सके तो हमारा नाट्य आदोलन बहुत तीव्र गति से आगे बढ सकता है।

एशियाई थिएटर सस्थान

इस वर्ष सगीत नाटक अकादमी के अधीन एक रगमच प्रशिक्षण का सस्थान खोला गया जिसमे विभिन्न राज्यो के कलाकारो ने रगमच के विभिन्न पक्षो में प्रशिक्षण प्राप्त किया। अब यह सस्थान नियमित रूप से राष्ट्रीय नाट्य विद्यापीठ के रूप मे सगठित होकर जुलाई १९५९ से अपना काम आरम्भ करेगा। रगमच और नाटक की कलाओ में प्रशिक्षण देने का काम पिछले कुछ वर्षों म और दूसरे नगरो में भी राज्य-सरकारो और सस्थाओ द्वारा भी आरम्भ किया गया है। इसमें सदेह नही है कि इस प्रकार के प्रशिक्षण की बहुत अधिक आवश्यकता है, विशेषकर इस समय जब हमारा नाटक आदोलन इतनी तीव्र गति से आगे बढ रहा है और हमारे कार्यकलाप का विस्तार इतना अधिक हो गया है। किन्तु ऐसे समय में प्रशिक्षण कार्य का दायित्व बहुत अधिक बढ जाता है। इस दायित्व के दो पक्ष है जिन पर प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए अधिकारियो को विशेष रूप से ध्यान देना होगा, एक तो, सर्वेक्षणो और विशिष्ट अध्ययनो द्वारा भारतीय रगमच के इतिहास का पुनर्निर्माण और अपनी नाट्य-परम्पराओ का पुनर्मूल्याकन और दूसरे, विदेशी नाट्य प्रयोगो और रगमच की वैज्ञानिक सामग्रियो और साधनो का हमारे परम्परागत दाय और सामग्री के साथ ऐसा सामजस्य कि

(शेष पृष्ठ ५५ पर)

'शोणित कन्धी' (बगला)



'थैले में आ जाओ'

अनुवादक प० अ० बारानिकोव

एक बूढा अपनी बुढिया के साथ रहता था। उनका एक ही इकलौता लडका था, फिर भी गरीबी के कारण उसे वे पेट भर खाना नही खिला पाते थे। उन्होंने अपने लडके को एक अमीर किसान के पास चरवाहे की नौकरी के लिए भेज दिया। नौकरी के पारिश्रमिक के रूप में उसे दाल का एक गर्नेत्स*, नमक की एक मुट्ठी और तीन ग्रोश† मिल जाया करते थे।

लडके ने गरमी के सारे मौसम में चरवाहे की नौकरी की। जब सरदी आई, और जमीन पर बरफ पडी तब लडका अपने मालिक से बोला—"अब मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिए।"

मालिक ने उत्तर दिया—"यदि जाना चाहते हो तो चले जाओ।"

मालिक ने लडके को दाल का एक गर्नेत्स, नमक की एक मुट्ठी और तीन ग्रोश देकर उसे अवकाश दे दिया। लडका वहा से चल दिया। चलते-चलते राह में उसे एक भिखारी मिला। वह लडके से भीख मागने लगा। लडके के मन में दया उपजी और उसने कुछ सोच-विचार कर, उसे अपने तीन ग्रोश दे दिए।

लडका आगे बढा। फिर उसे एक और भिखारी मिला, जो पहले भिखारी से अधिक गरीब दिखाई देता था। भिखारी बोला —

"मुझ अभागे पर दया करे, कुछ न-कुछ मुझे देने की कृपा करें। भगवान भला करेगा।"

लडका बोला—"मै क्या दे सकता हू, मै तो स्वय गरीब हू। मेरे पास तीन ही ग्रोश थे, जो मैं एक भिखारी को भीख में दे चुका हू। अब मेरे पास देने को है ही क्या?"

बढा भिखारी अनुरोध करता रहा—"मुझे भी कुछ मिल जाए। तुम्हारा भी भला होगा।"

लडके ने कुछ सोच-विचार कर भिखारी को नमक दे दिया, और वह आगे को बढा।

चलते-चलते राह में उसे तीसरा भिखारी मिला। वह सबसे गिरा हुआ दिखाई पडा। बेचारा बहुत ही बूढा था, और साथ ही कुबडा भी था। हौले-हौले चलता था। लडके के पास आ, राम-राम कर भीख मागने लगा। लडके ने कहा—"मेरे पास देने को अब कुछ भी नही है। जो कुछ था, वह मै पहले दो भिखारियो को दे चुका हू। हा, मेरे पास दाल का एक गर्नेत्स है, पर हम भी तो गरीब लोग है। घर पर, मेरे मा-बाप आशा लगाए बेचैनी से मेरी बाट जोह रहे होगे।"

बूढा बोला—"आपका कहना ठीक है। पर तुम्हारे मा-बाप इतने गरीब नही है, जितना कि मै हू। देखो, मै कितना बूढा और कुबडा हू! मेरे पैर कितने लूले बन गए है कि मै ठीक प्रकार से चल-फिर भी नही सकता। मै मौत के पास हू, मेरी कुछ सहायता बन सके तो अवश्य कीजिए।"

लडके ने बूढे की ओर देखा और कुछ सोच कर अपनी दाल उसे दे दी। भिखारी ने अनुग्रह प्रकट करते हुए लडके को एक थैला, एक लाठी और एक वायलिन देते हुए कहा—"मै अपनी जीवन की सिद्धि आज तुम्हें सौप रहा हू। तुमने मुझे प्राणदान दिया है। तुम जिस मनुष्य को चाहोगे उसे इस थैले में रख सकोगे। बस तुमको केवल इतना ही कहना पडेगा कि 'थैले में आ जाओ!' और यदि तुम किसी को पीटना चाहोगे, तो केवल इतना कहना पर्याप्त होगा 'हे लाठी, इसको कुछ सिखा दो!' और लाठी उसे तुरन्त पाठ पढा देगी। जब तुम इस वायलिन को बजाओगे तब पतझड में भी वसत की बहार मुस्करा उठेगी।"

लडके ने तीनो उपहारो को स्वीकार करते हुए उस सिद्धजन का धन्यवाद दिया, और आगे को बढा। अपने घर की ओर जाने से लडके को कुछ भय लगा। क्योकि वह तो घर से नौकरी के लिए गया था। और घर को वापिस आते समय, घर वालो के लिए वह कुछ भी नही लाया था। लडके ने सोचा, पहले कही नौकरी करूँ, और अपने मा-बाप के लिए अब कुछ कमा लू, तब मुझे घर आना चाहिए।

चलते-चलते उसे सामने एक खेत दिखाई दिया। खेत पर किसान लोग गेहू काट रहे थे। ये सब किसान इतना थक गए थे कि कुछ भी बोल नही पा रहे थे। लडके को उन किसानो पर दया आई। उसने अपने वायलिन को निकाला और बजाने लगा। सभी किसान लोग मौज में आ, हाथ मिला नाचने लगे। वे किसान इतना नाचे कि कटे हुए गेहू को जमा करने वाले गढे में जा पडे। अकस्मात खेत का स्वामी घूमता-फिरता उधर आ पहुचा। उसने किसानो को काम न करते देख अपना कोडा निकाला, और क्रोध से भर कर दनादन किसानो को पीटने लगा।

जमींदार और आवेश में आ गया और चिल्लाने लगा—"वायलिन बजाने वाले, अरे शैतान लडके! खेत से चला जा! तू कौन है?"

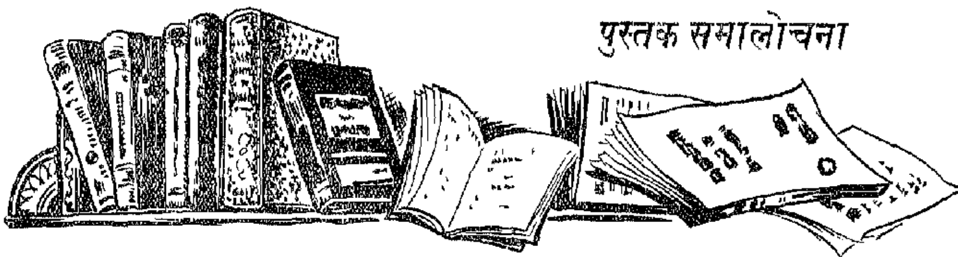
लडके ने सोचा, यही समय है, जब कि थैले की परख करनी चाहिए। थैले को निकाल कर लडके ने सिद्ध पुरुष के बताए मन्त्र को दोहराया—"थैले में आ जाओ!" देखते-देखते ही मोटा जमींदार, उस छोटे से थैले में जैसे-तैसे घुस गया। फिर लडका बोला—"हे लाठी! इसको कुछ सिखा दे।" और लाठी ने आव देखा न ताव, वह निकली और जमींदार के चारो ओर लिपटने लगी।

अपनी यह दुर्दशा देख कर जमींदार ने दया चाही। उसने कहा—"मुझे छोड दो! ये मजदूर तो मेरी नाप है, मेरे अपने भाई है। भविष्य में मैं अपने मजदूरों को कभी तग न करूगा। मेरा सर्वस्व इन श्रमिको का ही है।

(शेष पृष्ठ ५५ पर)

* एक पुराना तोल, जो लगभग तीन सेर के बराबर था

† एक पुराना सिक्का जो एक पाई के बराबर था।



हिन्द पॉकेट बुक्स के १० प्रकाशन

१ आभा—लेखक चतुरसेन शास्त्री, पृष्ठ संख्या १८०
२ सकट—लेखक हंसराज रहबर, पृष्ठ संख्या १४५
३ छोटी सी बात—लेखक रांगेय राघव, पृष्ठ संख्या १८०
४ एक स्वप्न एक सत्य—लेखक यज्ञदत्त शर्मा, पृष्ठ संख्या १००
५ इन्सान या शैतान—मूल लेखक राबर्ट लुई स्टीवनसन, अनुवादक देवेन्द्र कुमार, पृष्ठ संख्या ११२
६ संघर्ष—मूल लेखक एन्टन चेखव, अनुवादक शिवदानसिंह तथा विजय चौहान, पृष्ठ संख्या १५२
७ अमरवाणी—सम्पादक मानस हंस, पृष्ठ संख्या १३६
८ सफलता के ८ साधन—मूल लेखक जेम्स एलन, अनुवादक महावीर अधिकारी, पृष्ठ संख्या १२८
९ दीवान-ए-गालिब—सम्पादक हंसराज रहबर, पृष्ठ संख्या १५२
१० गीतांजली—लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक सत्यकाम विद्यालंकार, पृष्ठ संख्या १५२

मूल्य एक रुपया प्रत्येक पुस्तक, प्राप्ति स्थान हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट, लिमिटेड, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली।

हिन्दी में एक ही आकार और एक ही दाम की ग्रन्थमालाएं निकालने का प्रयास कितनी ही बार हुआ है। इस दिशा में दो महत्वपूर्ण प्रयास इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित सरस्वती सीरीज तथा हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित शरत ग्रन्थमाला के रूप में हिन्दी में यथेष्ठ लोकप्रिय हुए थे। पर इस तरह के छोटे आकार और इतने सुन्दर रूप में पॉकेट बुक्स निकालने का यह प्रथम प्रयास है। उक्त सभी पुस्तकें अत्यन्त नयनाभिराम रूप में निकाली गई हैं। यह कहने में भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिन्दी पॉकेट बुक्स के ये हिन्दी प्रकाशन अमेरिका या इगलैण्ड के इसी ढंग के पॉकेट बुक प्रकाशनों से, जहा तक आकार-प्रकार, सफाई और प्रकाशन सौन्दर्य का सम्बन्ध है, किसी भी तरह हीन नहीं हैं। इस दृष्टि से हिन्द पॉकेट बुक्स के प्रकाशन को हम हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। यदि उक्त संस्था अपना यही प्रकाशन स्तर कायम रख पाई और अपने इस अध्यवसाय में इसे यथेष्ठ सफलता प्राप्त हुई, तो इस ग्रन्थमाला द्वारा हिन्दी के लेखन और पठन—दोनों क्षेत्रों में प्रगति की रफ्तार बहुत बढ सकेगी।

उक्त ग्रन्थमाला के प्रथम ४ ग्रन्थ मौलिक उपन्यास हैं। चारों लेखकों से हिन्दी जगत परिचित है। यों भी ये चारों उपन्यास पहली बार प्रकाशित हुए हैं। पर इन चारों उपन्यासों का स्तर साधारण है। पाचवां और छठा ग्रन्थ दो श्रेष्ठ विदेशी लघु उपन्यासों के अनुवाद हैं। 'इन्सान या शैतान' का अनुवाद बहुत साधारण कोटि का है, परन्तु चेखव के उपन्यास का चौहान दम्पती कृत अनुवाद अच्छा हुआ है। यह विशेष सन्तोष का विषय है, क्योंकि इन दिनों विदेशी उपन्यासों के जो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, उनमें श्रेष्ठ अनुवादों की संख्या बहुत कम है। सातवें ग्रन्थ में विश्व साहित्य में से १४०० चुने हुए सन्दर्भ दिए गए हैं। इस संग्रह में संस्कृत साहित्य की सूक्तियों के अधिक अनुवाद नहीं दिए गए, जो दिए जाने चाहिए थे। नाम भी 'अमर वाणी' की जगह 'अमर सूक्तियां' अधिक अच्छा रहता। आठवां ग्रन्थ जेम्स एलन की 'एट पिलर्स आफ प्रासपैरिटी' का अनुवाद है। बहुत समय पूर्व इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था। श्री महावीर अधिकारी कृत यह अनुवाद संस्कृत प्रधान होते हुए भी अच्छा है। 'दीवान-ए-गालिब' और 'गीतांजलि' दोनों भारतीय साहित्य की अमर रचनाएं हैं। गीतांजलि का अनुवाद करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। अनुवादक ने इस रूपान्तर में जो ईमानदारीपूर्ण और गम्भीर प्रयास किया है, उसकी सराहना करते हुए भी मैं यह कहना चाहूंगा कि अभी उसमें परिष्कार की गुंजाइश है।

उक्त दसों ग्रन्थों के अभ्यन्तर के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से न लिख कर मैं इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूं कि वस्तु की दृष्टि से ये रचनाएं हीन नहीं हैं। पर मेरी राय में इतना ही काफी नहीं है। इस तरह की पॉकेट बुक सीरीज के लिए ये तीन बातें नितान्त आवश्यक हैं—(१) पुस्तकों का चुनाव एक सुविचारित योजना के आधार पर किया जाए, (२) संख्या और संस्करण की दृष्टि से पुस्तकें बहुत बड़ी मात्रा में छापी जाएं, तथा (३) उनकी बिक्री का बहुत व्यापक प्रबन्ध किया जाए।

मेरी राय में नए मौलिक ग्रन्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ कोटि के विश्व साहित्य की तथा भारतीय साहित्य की रचनाओं का उत्कृष्टतम हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी की लोकप्रिय तथा श्रेष्ठ रचनाओं का प्रकाशन इस ग्रन्थमाला में होना चाहिए। इस बात की सम्भावना अभी कम है कि सर्वश्रेष्ठ मौलिक रचनाओं का प्रकाशन इस कम दाम की सीरीज के लिए उपलब्ध किया जा सके। यों भी हिन्दी में अभी विश्व साहित्य तथा भारतीय साहित्य के प्रकाशन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। पर यह कार्य पूर्णत सुनियोजित ढंग से होना चाहिए। यह योजना बनाते हुए हिन्दी की आवश्यकता, प्राप्य अनुवाद-क्षमता और पाठकों की रुचि तथा मांग को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस तरह की सीरीज के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रकाशनों की संख्या बहुत अधिक हो। पुस्तकों की दृष्टि से तथा संस्करण की संख्या

की दृष्टि से भी। हमारी राय से इस तरह की १० पुस्तकों का सेट प्रति मास प्रकाशित होना चाहिए तथा प्रथम संस्करण कम से कम १५,००० कापियों का होना चाहिए। यदि ऐसा हो सके, तो इस तरह की सस्ते मूल्य की पॉकेट बुकों के प्रकाशन का कार्य पूरी तरह सफल हो सकता है। तभी लेखक, पाठक और प्रकाशक तीनों को इस योजना से लाभ पहुंच सकता है।

यह भी आवश्यक है कि १५,००० का उक्त संस्करण एक ही वर्ष में बिक जाए। हिन्दी में अभी तक पुस्तक विक्रेताओं की बहुत कमी है। अधिकांश पुस्तक विक्रेता छोटे-बड़े प्रकाशक भी हैं। इस तरह की सीरीज के लिए बिक्री के नए स्रोतों की तलाश आवश्यक होगी। जिस तरह अच्छे साबुन, सिगरेट और इसी तरह की अन्य वस्तुएं सभी जगह उपलब्ध हैं, लगभग उसी तरह ये प्रकाशन भी सभी जगह पाए जा सकें, तभी यह योजना पूर्ण रूप से सफल हो सकेगी।

हम इस योजना के लिए सफलता की कामना करते हैं।

जब बाहर आई—लेखक शिवकुमार ओझा, प्रकाशक विद्या-मन्दिर लिमिटेड, १२।६० कनाट सर्कस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ६००, मूल्य १० रु० सजिल्द।

यह विशालकाय उपन्यास श्री शिवकुमार ओझा का प्रथम उपन्यास है। उनका कथन है कि, "इस कहानी के सभी पात्र कल्पित हैं यह सवप्रासी-सर्वव्यापी प्यार की कहानी स्वान्त सुखाय लिखी गई है। इसमें न तो साहित्य का अक्षय भण्डार भरने की कामना है और न समाज-सेवा की कल्पना।"

प्यार की यह कल्पित कहानी कुमार की आत्मकथा के रूप में लिखी गई है। यह कुमार एक लाइसेंस प्राप्त युवक है, जिस पर कितनी ही लड़कियां मरती हैं। वह धनी है और जवान है। विभिन्न लड़कियों को तरसाते रहने के अतिरिक्त जैसे उसे कोई और काम ही नहीं है। यह कुमार हिन्दी-फिल्मों से प्रेरणा लेता है, फिल्मी गाने गुनगुनाता रहता है और एक लड़की के यहां पहुंच कर, उस से सभी तरह की 'छेड़खानियां' करते हुए उन लड़कियों की याद करता रहता है, जो उस वक्त उसके पास नहीं हैं। वह इतना अधिक बोडिंग करता है और बचपन से लेकर जवानी तक की गई छेड़खानियों को बार बार याद करता रहता है कि सारा उपन्यास न सिर्फ एक ही तरह की बातों से भरा पड़ा है, अपितु कितने ही फिल्मी गीतों तथा अन्य प्रेम गीतों के पद और कितनी ही छोटी-मोटी घटनाएं बार बार इस रचना में उद्धृत हुई हैं।

कुमार की उलझन यही है कि एक से अधिक लड़कियां उस पर मरती हैं, इस से वह उन सब को छोड़ कर आसाम के देहाती क्षेत्र में अपने एक चाय-बाग के मालिक अंग्रेज दोस्त के पास चला जाता है। पर वहां वह अपने मित्र की पत्नी से वही सब छेड़खानियां करने लगता है, जो अपनी प्रेमपात्रियों से किया करता था, इस आधार पर कि वे दोनों अपनी पुरानी प्रेम लीलाओं का अभिनय कर रहे हैं।

इस उपन्यास की सम्पूर्ण कल्पना, मेरी राय से पलायनवाद तथा अप्राप्त की कल्पनात्मक प्राप्ति का जबरदस्त उदाहरण है। एक उथली भावुकता इस रचना में आदि से अन्त तक छाई हुई है। लेखक महोदय यदि सस्ती भावुकता से बच कर वास्तविकतापूर्ण कथानक की सृष्टि करने का प्रयत्न करें, तो मेरा ख्याल है कि उस क्षेत्र में वह असफल नहीं होंगे, क्योंकि लिखने का अच्छा ढंग उन्हें जरूर आता है।

अन्तिम झांकी—लेखिका मनुबहन गांधी, अनुवादक गो० न० बजाजपुरकर, प्रकाशक अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, बनारस, पृष्ठ संख्या २६६, मूल्य ३ रु०।

मनुबहन वह सौभाग्यशालिनी महिला हैं, जिन्हें महात्मा गांधी ने न केवल अपनी बेटी बनाया था, अपितु उनके निर्माण में उस युगपुरुष ने पूरी दिलचस्पी ली थी। मनुबहन लिखित महात्मा गांधी सम्बन्धी ग्रन्थ अपने विषय की अत्यन्त प्राणवान तथा प्रामाणिक रचनाएं हैं। मनु गांधी महात्मा जी के साथ रहती थीं और प्रति दिन अपनी डायरी लिखा करती थीं। यह ग्रन्थ उक्त डायरी का अन्तिम भाग है, जिसमें गांधी जी के जीवन के अन्तिम समय का मार्मिक वर्णन है। डायरी प्रथम जनवरी १९४८ से शुरू होती है। उसके केवल ३० दिन बाद ही बापू शहीद हो गए थे।

यह रचना पढ़ते हुए कितनी ही बार पाठक की आंखें आप से आप आंसुओं से भर आएगी। अपने जीवन के अन्तिम क्षण में बापू कितने उद्विग्न रहे, यह इस डायरी से स्पष्ट होता है। इस डायरी में प्रार्थना-सभाओं में दिए गए भाषण भी विस्तार के साथ दे दिए गए हैं। अच्छा होता, यदि ये भाषण परिशिष्टों के रूप में तिथिक्रम से दे दिए जाते और केवल डायरी पुस्तक के प्रारम्भ में दी जाती।

२९ जनवरी, '४८ की रात का जिक्र करते हुए मनु गांधी लिखती हैं "मैं बापू के सिर में तेल मलती रही। दो मिनट मौन रह कर कर वे बोले 'आज मुझे चक्कर आ रहा है।' के लड़कों की घूसखोरी की बात चल पड़ी। कहने लगे 'आखिर हम लोग कहां के रह जाएंगे? आजादी की लड़ाई में पूरा योग देने वाले लोगों पर ही सारे राष्ट्र का आधार है। अगर वे ही इस तरह सत्ता का दुरुपयोग करें, तो हमें कहीं खड़े होने के लिए भी जगह न रह जाएगी। इस तरह हम कब तक अपनी इज्जत संभाल पाएंगे? यों तो मैं इसे आजादी ही नहीं मानता, फिर भी बाहरी दृष्टि से जो आजादी प्राप्त हुई, उसे भी हम ऐसी करतूतों से कलंकित ही कर रहे हैं। सोचता हूं कि आखिर मैं कहां हूं और क्या कर रहा हूं? इस अशान्ति से शान्ति कैसे मिले?'

'है बहारे बाग दुनिया चन्द रोज,
देख लो, जिसका तमाशा चन्द रोज।'

"इतना कहते हुए बापू को खांसी आने लगी। यह दुख-सुनकर मेरी आंखें डबडबा उठीं—हाय! बापू के हृदय की वेदना कितनी बढ़ती जा रही है। मानो इस समय उनके लिए सिवा ईश्वर के कोई भी नहीं है। खांसी आते समय मैंने धीरे से पूछा, 'आप पेंसिलिन की गोली लें लीजिए न, सुशीला बहन मुझे दे गई हैं। अन्यथा अगर इन्फ्लूएन्जा हो जाय तो?'

"मैंने कह तो दिया, पर बापू और भी दुखी हो गए और कहने लगे

'यदि मैं किसी रोग या छोटी-सी फुन्सी से भी मरूं, तो तू जोर-शोर से दुनिया से कहना कि यह दम्भी महात्मा रहा। तभी मेरी आत्मा को, भले ही वह कहीं हो, शान्ति मिलेगी। भले ही मेरे लिए लोग मुझे गालियां दें, फिर भी यदि मैं रोग से मरूं, तो मुझे दम्भी-पाखण्डी महात्मा ही ठहराना। और यदि गत सप्ताह की तरह धड़ाका हो, कोई मुझ गोली मार दे और मैं उसे खुली छाती पर झेलता हुआ भी मुंह से 'सी' तक न करता हुआ राम का नाम रटता रहूं, तभी कहना यह सच्चा महात्मा था।. . . . इससे भारतीय जनता का कल्याण ही होगा'।"

इस तरह के कितने ही मार्मिक स्थल इस पुस्तक में हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय और स्थायी महत्व की है।

प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियां—लेखक रांगेय राघव, प्रकाशक किताब महल, ५६ ए० जीरो रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ४८८, मूल्य ६ रु० सजिल्द।

इस ग्रन्थ में ५६ पौराणिक कहानियां संगृहीत हैं। रांगेय राघव एक लब्ध प्रतिष्ठ और मजे हुए लेखक हैं। ये पौराणिक कहानियां अच्छे ढंग से लिखी गई हैं और इनमें कथाओं की मूल आत्मा और शिक्षा को सुरक्षित रखा गया है। भारतीय पौराणिक कथाओं में काम-भावना को न केवल पूरा महत्व दिया गया है, अपितु उसे बहुत प्रधानता भी दी गई है। यह झलक इस संग्रह में भी है। इस तरह के प्रकाशन की आवश्यकता और उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता। कहानियां खूब मनोरंजक हैं, यद्यपि उनमें कितनी ही जगह कितने ही शास्त्रीय वादों का उल्लेख भी है, जो निस्सन्देह आवश्यक था।

१ **डारविन**—लेखक प्रभाकर घोष, अनुवादक युगजीत नवलपुरी, पृष्ठ संख्या ६२

२ **एडीसन**—लेखक शंकरलाल पारीक, पृष्ठ संख्या ६८

३ **मादाम क्यूरी**—लेखक गीता बन्द्योपाध्याय, अनुवादक त्रिभुवन नाथ,

४ **जगदीशचन्द्र वसु**—लेखक सुभाष मुखोपाध्याय, अनुवादक त्रिभुवन नाथ, पृष्ठ संख्या १०४

५ **वाल्तेयर**—लेखक दवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, अनुवादक त्रिभुवन नाथ, पृष्ठ संख्या ६२,

प्रकाशक पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, मूल्य प्रत्येक का डेढ़ रुपया सजिल्द।

विशेषत बालकों के लिए लिखी गई ये पांचों जीवनियां प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर लिखी गई हैं। पहले चारों महान वैज्ञानिक हैं, और पांचवां एक महान विचारक तथा लेखक। पांचों व्यक्तियों का जीवन प्रेरणा का स्रोत है। ये सभी पुस्तिकाएं बहुत अच्छी शैली में लिखी गई हैं। अनुवाद भी अच्छा हुआ है। जीवनी के साथ इन महापुरुषों की उपलब्धियों के बारे में भी इन रचनाओं में बहुत अच्छे ढंग से प्रकाश डाला गया है। हमारी राय से इन रचनाओं को खूब अच्छी तरह चित्रित किया जाना चाहिए था। यथेष्ठ संख्या में, विशेषत अच्छे लाइनब्लाक ऐसी रचनाओं में अवश्य रहने चाहिए।

माओ-त्से-तुंग ग्रन्थावली (दो भाग) प्रथम भाग के अनुवादक राम विलास शर्मा, दूसरे भाग के अनुवादक राम आसरे, प्रकाशक पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ३३६ तथा २६२, मूल्य ३ रु० प्रत्येक भाग सजिल्द।

चीन के राष्ट्रपति माओ वर्तमान संसार से सब से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तियों में है। वह एक अच्छे रण विशारद तथा संगठनकर्त्ता हैं। साथ ही साथ वह एक ऊंचे दर्जे के विचारक भी हैं। इस ग्रन्थावली में मुख्यत उनके वे विचार दिए गए हैं, जो वह वर्तमान युगीन चीन की राजनीतिक घटनाओं के सम्बन्ध में व्यक्त करते रहे हैं। इन वक्तव्यों को पढ़कर यह समझ में आता है कि राष्ट्रपति माओ अपने अनुयायियों को कितने विस्तार से प्रत्येक ढंग के आवश्यक निर्देश देते रहे हैं। युद्ध तथा संघर्ष काल में ये वक्तव्य चीनी जनता के लिए निस्संदेह बहुत उपयोगी सिद्ध हुए होंगे। इस रचना का अनुवाद निस्सदेह एक कठिन कार्य था। दोनों अनुवादक काफी अंश तक अपने प्रयास से सफल हुए हैं, यद्यपि इस अनुवाद को अभी और अधिक सरल बनाने की आवश्यकता है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

भारत में फलोत्पादन—लेखक जयराम सिंह, प्रकाशक किताब महल प्रकाशन, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद-३, पृष्ठ संख्या ४६८ डिमाई, मूल्य ८) रु०।

हम पहले ही इस पुस्तक के लेखन तथा प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई दे दें। ऐसी ही पुस्तकों के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य वास्तविक रूप से समृद्ध हो सकता है क्योंकि इस प्रकार यह काम-काजी लोगों में प्रवेश कर जाएगा। इस पुस्तक को फलोत्पादन के संबंध में एक विश्व-कोष कहा जा सकता है। लेखक ने पहले तो फलोत्पादन और उसके महत्व का वर्णन किया है। हमारे देश के लिए फलोत्पादन कितना महत्वपूर्ण हो सकता है, इसका लेखक कुछ इस प्रकार वर्णन करते हैं—"केवल मद्रास प्रदेश पर ही विचार करने पर विदित होता है कि उस प्रदेश में कृषि के पूर्ण क्षेत्रफल के केवल १ १ प्रतिशत क्षेत्र में ही फलों की खेती होती है। दूसरी ओर प्रदेश की सम्पूर्ण कृषि से कुल आय का अनुमान ३५० करोड़ रुपए लगाया गया है, जिसमें फलों से प्राप्त आय २,१७० लाख रुपए है जो फसलों द्वारा प्राप्त आय का ७'४ प्रतिशत है। इससे ज्ञात होता है कि फलों के उपज की आय अन्य फसलों से ६ या ७ गुनी अधिक होती है। दक्षिण भारत के कुछ उद्यानों से प्रति वर्ष प्रति एकड़ १०,००० रुपए प्राप्त करना असंभव नहीं है।"

फलोत्पादन के लाभों को बताने के बाद फलोत्पादन विज्ञान का इतिहास दिया गया है जिसमें ग्रीक दार्शनिकों से लेकर भारतीय शास्त्रकारों, मुस्लिम काल के कई फलोत्पादकों तथा बाद में जो उन्नति हुई, उसका वर्णन किया गया है। यह भी बताया गया है कि "स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने लगभग सभी राज्यों में उद्यान-विज्ञान की योजनाएं जारी कीं। इस परिषद ने केला के अनुसंधान-कार्य के लिए बम्बई, मद्रास और बंगाल (पश्चिमी बंगाल) में, नींबू जाति के फलों के लिए बम्बई, नागपुर, उड़ीसा, कुर्ग, आसाम, और ट्रावनकोर-कोचीन में, सब्जी सम्बन्धी खोज के लिए मद्रास, उत्तर प्रदेश, पहाड़ी क्षेत्रों में, और उत्पादित फलों के लिए उत्तर प्रदेश तथा काश्मीर की राज्य सरकारों ने खोजें प्रारम्भ करने के लिए योजनाएं लागू कीं। पंचवर्षीय योजनाओं में फलों और सब्जियों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है।"

अगले अध्यायों में लेखक ने बाग की योजना, पौधों का वानस्पतिक प्रजनन, वृक्षारोपण, उद्यान की भूमि का प्रबन्ध, उद्यान की सिंचाई और खाद-पौधों की छटाई, उद्यान की रक्षा, फलों की तोड़ाई और उनकी बिक्री आदि विषयों के बाद आम, नींबू जाति के विभिन्न फल, केला, अमरूद, पपीता, लीची, खजूर, अनार, अंगूर, अंजीर, शरीफा, अनानास, बेर, चीकू, लोकाट, सेब तथा कुछ अन्य फलों का विस्तार के साथ वर्णन दिया है। जो लोग शौकिया बागवानी करते हैं, उनके लिए या पेशेवर बागवानों के लिए भी यह पुस्तक मतलब की चीज है।

हिन्दी गुजराती शिक्षक—लेखक एन० जी० महेता, प्रकाशक प्रो० नैकात्मा प्रकाशन—संशोधन कार्यालय, तपोवन, पचवटी, नासिक (सी० रेलवे), पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य १) रु०।

इस छोटी पुस्तक में गुजरातियों को हिन्दी सिखाने और हिन्दी-भाषियों को गुजराती सिखाने के लिए कुछ सबक प्रस्तुत किए गए हैं जो मामूली ज्ञान के लिए काफी है। ज्यों-ज्यों हमारे देश के लोग भारत की अखण्डता और एकता का अनुभव करेंगे, त्यों-त्यों ऐसी पुस्तकों के लिए गुंजाइश निकल आएगी।

हिन्दी आन्दोलन—लेखक आनन्द शंकर माधवन, प्रकाशक असगवती प्रकाशन, ठाकवर मन्दार विद्यापीठ, जिला भागलपुर (बिहार), पृष्ठ संख्या १८३, मूल्य २) रु०।

यद्यपि पुस्तक का नाम हिन्दी आन्दोलन है, पर इसमें लेखक के हर तरह के विचार संगृहीत हैं। अवश्य लेखक घूम-फिर कर हिन्दी आन्दोलन पर लौटते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक के विचार काफी मौलिक हैं। वे हिन्दी पर प्रवचन देते-देते साहित्यकार और भाषा पर ये शब्द कहते हैं—"साहित्यकार भाषा को अपनी पैतृक सम्पत्ति न समझें। भाषा जनता की है। जनता को उस पर बोलने और निर्णय देने का अधिकार है। यह अलग बात है कि जनता मूक है, और इसलिए सब को मौका मिल जाता है। साहित्यकार जिस स्तर में एक खास जाति के रूप में बसते हैं, वहां जनता का प्रवेश नहीं। और जनता के बीच साहित्यकार बसना भी तो नहीं चाहते। न जाने ये किन के लिए साहित्य-सृजन कर रहे हैं, किस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इस कठोर श्रम को बिना किसी के आग्रह किए मोल ले रहे हैं। तुलसीदास के बाद किसी ने भी तो जनता के लिए नहीं लिखा। रामचरितमानस के बाद किसी भी हिन्दी ग्रन्थ को जनता ने नहीं अपनाया है। फिर भी देश के पुस्तकालयों को हिन्दी ग्रंथों से भरा जा रहा है। मुद्रणालयों में रात-दिन हिन्दी पुस्तकें छापी जा रही हैं। अतः हिन्दी आन्दोलन के भीतर देश की अनेकों समस्याएं छिपी हैं और उन सबों का सन्तोषजनक समाधान ही हिन्दी आन्दोलन का स्वस्थ समाधान है।"

वे आज के कवियों और लेखकों से अत्यन्त नाराजगी प्रकट करते हुए कहते हैं—"आज के कवियों और लेखकों की रचनाएं उनके क्षीण चारित्र्य का ही परिचय देती हैं, जिन्हें पढ़ कर छात्र-छात्राओं के मस्तिष्क बिगड़ने की संभावना बनी रहती है। अपनी पुस्तकों को आगे ठेलने के लिए दल खड़े किए जाते हैं तथा जातीयता को बढ़ावा दिया जाता है। सर्वत्र अपूज्य पूजन है। बड़ा तमाशा है। अत्यन्त कारुणिक परिहास का नग्न ताण्डव है। यहां जो चाहे—जब चाहे और जितना चाहे—लिख सकता है। पैरवीकार भिड़ाकर उसे पाठ्य-पुस्तक भी बना देंगे। ऐसी पुस्तकों से ही लड़के पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। विद्यार्थियों की सारी अनुशासनहीनता की, उनके चारित्र्य-दोष और बदमाशी के मूल में इस प्रकार की पुस्तकें हैं। व्यवसायी मनोवृत्ति के अध्यापक इनके लेखक हैं, जो पैसे पर अपनी जानकारी बेचते रहते हैं और वे अजीब रोगाक्रान्त राजनीतिक दल भी हैं, जिन्हें कभी अपनी कमजोरी नजर नहीं आती। दूसरों को गाली दे कर, उनकी नुक्ताचीनी कर अपमान करना ही उनका प्रिय धंधा बन गया है। यह देश क्या है, पूरा रेलवे स्टेशन बन गया है। यहां जो चाहे कुछ भी कर सकता है। यह तो प्रजातन्त्र का युग है! विचार-स्वातन्त्र्य का जमाना है! मैं कुछ भी करूं, तुम कौन पूछने वाले होते हो? बेटा बाप का अपमान करता है और चाचा को पीटता है! विद्यार्थी अध्यापक का अपमान करना बहादुरी और शान समझता है।"

लेखक हिन्दी वालों को कुछ खरी खोटी भी सुनाते हैं जिसमें गांधीजी और हिन्दी वाले प्रसंग पर कहते हैं कि गांधीजी ने हिन्दी की जो परिभाषा की, उसे कई रूढ़िवादी उत्तर प्रदेशी साहित्यिकों ने पसन्द नहीं किया। वे कहते हैं—"बिहार और उत्तर प्रदेश के साहित्यकार एक दिन सबेरे उठे तो देखते हैं, उनकी प्रिय भाषा दिल्ली के राज्य सिंहासन पर आसीन है। बस क्या था, बीड़े खुशियां मनाने, सिद्धांत देने, परिभाषाएं लेकर और संशोधन ढोकर रास्ते में ही एक दूसरे को समझाने में भिड़ गए। कोई कुछ कहते, तो कोई कुछ। पर किसी की भी कोई सुन नहीं रहा था, न सुनना ही चाह रहा था। जनता तब भी मुस्कराकर बगल में खड़ी हो रही। कोई कहने लगा—गांधी हम लोगों की भाषा को भ्रष्ट करने चले हैं। कोई कहने लगा—वे तो गुजराती हैं, साधु हैं, राजनीतिज्ञ हैं, उन्हें क्या दर्द है हिन्दी के लिए। उन्हें क्या पता साहित्य है क्या! बस क्या कहना है। भाव चढ़ता ही गया, जोश बढ़ता ही गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन गठित किया गया। भारी-भारी रकमें जमा होने लगीं। "हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान" का नारा बुलन्द किया गया। हिन्दी को बचाओ, धर्म और संस्कृति की रक्षा करो और इसके लिए मर-मिटने के लिए तैयार हो जाओ। यह आवाहन और जोर पकड़ने लगा।"

लेखक ने अपने मिलनेवाले साधारण मुसलमान के रूप में एक मुसलमान रंगसाज सादिक अली का मत उद्धृत किया है जो बहुत मजेदार है—उसने कहा—"बाबू असली बात मैं जानता हूं। इस देश के लोग चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, साले सब बिलकुल कुत्ते हैं। खून तो दोनों में एक ही है। स्वभाव भी दोनों के एक ही हैं। बस इतनी ही है।" मुझे लगा शायद यह ठीक कह रहा है। सादिक अली थोड़ी देर चुप रह कर फिर कहने लगा—"आप एक बात शायद जानते नहीं, क्योंकि आप तो मद्रासी हैं। मेरे गांव के हिन्दू हर साल ताजिया के सामने खेले-कूदे हैं, चन्दा दिए हैं और खुशियां उन्होंने मनाई हैं। मैं भी उमर भर फगुआ खेला हूं और पूजा में मैंने भी खुशियां मनाई हैं। मेरे घर की औरतें यह नहीं जानती थीं कि सिन्दूर हिन्दुओं की कोई खास चीज है। अभी भी वे उसे छोड़ना नहीं चाहतीं। पता नहीं, इन दिनों कौनसा नया इस्लाम आया कि साले सब आकर मुझे सुनाते हैं कि हिन्दू के गांव में मत जाओ, वह तुम्हें काट कर फेंक देंगे, हिन्दू बना लेंगे, ठोकर खानी पड़ेगी इत्यादि, इत्यादि। इन मियों को आजकल अल्ला का भी डर न रहा। जिन्दगी भर औरतों के पीछे मरते हैं, सूद खाते हैं, गरीब को ठगते हैं और बाद में हज करने जाते हैं। वापस आकर कहेंगे, मेरा सब पाप शुद्ध हो गया। और सिफत तो यह है कि फिर वही पाप शुरू करते हैं। साले सब खुदा को बिलकुल बेवकूफ ही समझते हैं। उन्हें कयामत का भी भय न रहा। बाबू, बुरा न मानना, आपकी जाति भी एक दम पतित हो गई है। ब्राह्मण जैसे कुकर्मी और पाखण्डी संसार में कोई है ही नहीं। ये लोग समझते हैं—भगवान इनकी जेब में है। ये जो कहेंगे वही धर्म है। न काम न धंधा। सब बैठे खाना चाहते हैं। जनेऊ दिखा-दिखा कर ग्वाले-चमारों से दण्डवत लेते हैं और चूड़ा-दही या पूड़ी-तरकारी खाते फिरते हैं। ये भात नहीं खाएंगे। इसमें इनकी जाति चली जाएगी। मगर चूड़ा-दही या पूड़ी-तरकारी ठीक है। उसमें जाति कैसे जाएगी। देखो ये कितने पाखंडी हैं। बाबू, नाराज नहीं होना। ये ब्राह्मण तो भागलपुर में जूतियां बनाने लगे हैं। मेरे गांव के एक ब्राह्मण ने वर्धा से कोल्हू लाकर तेल पिरोना शुरू किया है। इन मुर्दों को अब एक ही काम करना बाकी है वह है—हजामत का धंधा। एक दिन आप सुनेंगे—ब्राह्मणों ने हजामत की दूकानें भी आरम्भ कर दीं। भात तो ये बेचते ही हैं, भीख भी मांगते ही हैं फिर इनमें अब किस बात का बड़प्पन है? बाबू, ये तब तक बड़े रहेंगे जब तक दूसरी जाति मूर्ख है। सुना है रूस का राज आने वाला है और तब इन सबों को हल जोतना पड़ेगा। मन्दिरों में दूकानें खुलेंगी।"

वे हिन्दीवालों से विशेषकर नम्रता धारण करने की प्रार्थना करते हैं, पर उनको इस संबंध में कुछ कटु अनुभव हैं। वे कहते हैं—"हाल ही में प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकार से मैंने प्रश्न किया—हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद मिला, इसे आप अपनी विजय समझते होंगे? मैंने यह प्रश्न जमाने की हवा को अनुभव करते हुए पूछा था। उन्होंने फौरन उत्तर दिया—'निस्सन्देह।' यहां 'फौरन' शब्द महत्वपूर्ण है। मनुष्य जब सोच-समझ कर जवाब देता है तो उसे मस्तिष्क का प्रयास समझा जाना चाहिए। अतः उसे कृत्रिम और झूठ कहा जा सकता है। लेकिन आकस्मिक और फौरन जो उत्तर मिले वह उसके हृदय की सत्यावस्था का परिचायक है। मैंने उक्त सज्जन से नम्रतापूर्वक निवेदन किया—विजय लड़ाई में ही होती है। तो आप लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा-पद पर बिठाने के लिए किसी से जब तक लड़ रहे थे क्या? उन्होंने सकुचाते हुए, कुछ रुकते, कुछ हिचकिचाते हुए धीरे से कहा—'कुछ ऐसा ही समझा जाए।' मैंने फिर कहा—'जब कोई विजय का अनुभव करता है तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि दूसरा पराजय का अनुभव करे। आप लोगों के इस विजय बोध ने ही अहिन्दी भाषियों में पराजय का बोध उत्पन्न किया। पराजित व्यक्ति और जाति आहत शेर जैसे सदा खतरनाक होते हैं। सम्भव है वह बड़ा खौफनाक हमला कर बैठे।' मेरे साहित्यिक मित्र इस खौफनाक हमले का अर्थ समझ गए और वे चुप हो रहे।"

लेखक के विचार न तो सर्वत्र सुलझे हुए हैं और न वे सम्पूर्ण रूप से सुसम्बद्ध हैं। पर जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा, उसे एक मौलिक मन से परिचय प्राप्त होगा और इस नाते कुछ लाभ ही होगा।

शोषण मुक्ति और नव समाज—लेखक अप्पासाहब पटवर्धन, अनुवादक लक्ष्मण नारायण गर्दे प्रकाशक अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी, पृष्ठ संख्या १०४, मूल्य ६२ न० पै०।

लेखक ने इस पुस्तक में विनोबाजी के विचारों को सरल भाषा में रखने की चेष्टा की है।

यात्रा के पथ पर—लेखक चारुचन्द्र भण्डारी, अनुवादक मदनलाल जैन, प्रकाशक वही पृष्ठ संख्या ९६, मूल्य ५० न० पै०।

लेखक की अपनी पद-यात्रा और साथ ही विनोबाजी की कुछ पद-यात्राओं का इस पुस्तक में मनोरंजक विवरण दिया गया है।

परम्परा (त्रैमासिक शोध-पत्रिका) अंक ६-७—सम्पादक नारायणसिंह भाटी, प्रकाशक राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, पृष्ठ संख्या २९७, मूल्य ६ रु०, वार्षिक मूल्य १० रु०।

यद्यपि हिन्दी के प्राचीन साहित्य पर बहुत खोज हुई पर अभी काफी खोज होनी बाकी है। इधर 'परम्परा' के तत्वावधान में प्राचीन राजस्थानी साहित्य पर जो खोज हो रही है, वह बहुत ही मूल्यवान है। अफसोस तो यह है कि हिन्दी क्षेत्र में अक्सर सब धान बाईस पसेरी रहता है और जो लोग नीरव ठोस सेवा करते हैं, उनका यथा-योग्य सम्मान नहीं किया जाता। हमने 'परम्परा' के अब तक प्रकाशित अंक देखे हैं और हमें यह कहने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं है कि 'परम्परा' से सम्बद्ध सभी लोग ऊंचे दर्जे के साहित्य-साधक हैं। उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है।

वर्तमान अंक 'राजस्थानी बात संग्रह' नाम से निकला है। यह बताया गया है कि राजस्थानी में विपुल काव्य-निधि के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य की भी बहुत प्राचीन और समृद्ध परम्परा रही है। उसका प्रकाशन तथा समुचित अध्ययन अभी नहीं हो सका, जिसके फलस्वरूप यह गलत धारणा बन गई कि इस भाषा का गद्य-साहित्य नगण्य अथवा गौण है। इस भाषा का गद्य साहित्य भी उतना ही प्राचीन और विविधता-पूर्ण है जैसा कि अन्य कई आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होता है। विविधतापूर्ण गद्य साहित्य में बातों का स्थान महत्वपूर्ण है। कीट-पतंग और पशु-पक्षी तथा पेड़ पौधों से लेकर महान ऐतिहासिक घटनाओं, इतिहास प्रसिद्ध पात्रों, प्रेम गाथाओं तथा पौराणिक आख्यानों तक को इन बातों में स्थान मिला है। लिपिबद्ध बातों का यही स्वरूप प्रारम्भिक स्वरूप नहीं था। प्रारम्भ में इनका स्वरूप भी मौखिक ही रहा होगा, जैसा कि अन्य कितनी ही बातों का मिलता है। लिपिबद्ध होने के पहले तो उनमें कई परिवर्तन हुए ही, पर लिपिबद्ध होने के पश्चात भी समय समय पर उन में परिवर्तन होते रहे हैं।

इस संग्रह में ढोला-मारू बात भी संगृहीत है। सम्पादक ने यह दिखलाया है कि बात का प्रारम्भ एक विशेष ढंग से होता है और कथा कहने वाला एकाएक कथा प्रारम्भ न करके पहले-पहल उसकी भूमिका कुछ पद्यों के माध्यम से बांधता है। ये पद्य प्रायः उस देश की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं के बारे में होते हैं जिसके साथ नायक-नायिका का सम्बन्ध होता है, या फिर बात की प्रशंसा में ही कुछ पद्य कहे जाते हैं।

बात शायद यही उद्देश्य सिद्ध करती थी जो आधुनिक काल में उपन्यास-कहानी करती है। फिर भी दोनों में बड़ा फर्क है। श्री भाटी लिखते हैं—"आधुनिक कथा-साहित्य की शैली से इनकी शैली में बहुत भिन्नता है। आधुनिक कहानी के विकसित रूप में जो लेखक के व्यक्तित्व की निहृति, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, जीवन-यथार्थ का उद्घाटन करने वाला शिल्प-नैपुण्य और कथा तत्व की गतिशीलता आदि गुण दिखाई देते हैं—वे चाहे इन बातों में न हों पर वर्णनों की सजीवता, औत्सुक्य का निर्वाह, लयात्मक भाषा में काव्य का सा आनन्द और सामाजिक सत्य की सहज अभिव्यक्ति आदि कुछ ऐसे गुण हैं जिनके कारण सैकड़ों वर्षों से इन कथाओं का समाज में महत्व रहा है। इन बातों की कथा के विकास में स्थान स्थान पर ऐसी घट-नाओं का आगमन हुआ है जिससे नायक अथवा नायिका की उद्देश्य-प्राप्ति में निरन्तर विघ्न उपस्थित होते रहते हैं। एक विघ्न के हटने पर जब कुछ आशा बंधती है तो दूसरा विघ्न उपस्थित हो जाता है। विघ्न उपस्थित करने वाली इन घटनाओं का आगमन इस तरह करवाया जाता है कि औत्सुक्य का निर्वाह बराबर होता रहता है। इन घटनाओं व पात्रों की अवतारणा में भूत-प्रेत, शकुन, स्वप्न, देवी-देवता, आकाशवाणी, जादू-टोना आदि कितनी ही अलौकिक बातों का समावेश मिलता है। स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधे भी पात्रों के रूप में उपस्थित हुए हैं जिनके साथ वार्तालाप हुए हैं। पक्षियों के साथ तो पूर्ण विश्वास करके नायिकाओं ने अपनी प्रेम-विह्वल वाणी में प्रिय को सन्देश भेजे हैं। कोकिल, कीर, भ्रमर और बादल के अतिरिक्त कुरंजा ने भी विरहिणी की पीड़ा को पहचान कर उसका कार्य किया है। अपने पंखों पर पाती तक लिख डालने की स्वी-कृति दी है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन बातों में मानव-हृदय का शेष सृष्टि के साथ बहुत सहज रूप में तादात्म्य स्थापित हुआ है। प्रकृति के साथ मानव-भावनाओं का सीधा आदान-प्रदान एक बहुत

(शेष पृष्ठ ५६ पर)



सम्पादकीय

भारतीय भाषाएँ और उनकी एक आधाररूप आवश्यकता

पिछले दिनों भारतीय भाषाओं के प्रश्न से सम्बद्ध कितनी ही महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई हैं। इन में से ये दो विशेषतः उल्लेखनीय हैं (१) पालियामेंट ने राजभाषा के सम्बन्ध में जो पालियामेंण्टरी कमेटी नियुक्त की थी, उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। यह आशा तो किसी को भी नहीं थी कि उक्त रिपोर्ट सर्व-सम्मत होगी। पर यह एक विशेष सन्तोष का विषय है कि उक्त बड़ी कमेटी के सदस्यों का खासा अच्छा बहुमत एक ही राय का है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार १९६५ तक भारत में हिन्दी को राजभाषा का स्थान प्राप्त हो जाना चाहिए, पर उसके साथ ही साथ अंगरेज़ी का व्यवहार भी जारी रहेगा। (२) युनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन ने यह सिफारिश की है कि अनुकूल परिस्थितियों में भारतीय विश्वविद्यालय भारतीय भाषाओं में उच्चतम शिक्षा का प्रबन्ध करें। इस क्षेत्र में भी अभी अंग्रेज़ी का प्रचलन जारी रहेगा, पर आवश्यक तैयारी पूर्ण हो जाने पर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में उच्चतम शिक्षा दी जाया करेगी। पालियामेण्ट में शिक्षा मन्त्री ने दो बातों पर विशेष बल दिया है भारतीय भाषाओं में उच्चतम शिक्षा का प्रबन्ध तभी सम्भव होगा, जब कि भारत की सभी भाषाओं के लिए एक ही वैज्ञानिक और समाज शास्त्रीय सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली तैयार कर ली जाए, तथा भारतीय भाषाओं में उच्चतम शिक्षा देने के लिए आवश्यक पाठ्य पुस्तकें यथेष्ठ संख्या में उपलब्ध हो सकें।

यह सन्तोष का विषय है कि भाषा विषयक आधारभूत आवश्यकताओं की ओर अब ध्यान दिया जा रहा है। भारतीय भाषाओं की सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एक ही होनी चाहिए, यह बात भारत की आधारभूत आवश्यकताओं में है। इस पारिभाषिक शब्दावली को प्राथमिकता देना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह भी स्पष्ट है कि जिस ढंग से इस समय तक इस दिशा में कार्य हो रहा है, उससे काम नहीं चलेगा। भारत की १४ भाषाओं के लिए समान रूप से बनाई जाने वाली पारिभाषिक शब्दावली को भारतीय भाषाओं के विद्वानों का सहयोग प्राप्त रहना चाहिए। यह कार्य बहुत ऊँचे पैमाने पर अविलम्ब प्रारम्भ हो जाना चाहिए। हमारी राय है कि इस क्षेत्र में भारत सरकार, राज्यों की सरकारों, भारतीय साहित्यिक संस्थाओं तथा भारतीय विश्वविद्यालयों को एक साथ मिल कर काम करना चाहिए। इन सब के प्रतिनिधित्व से एक बड़ी समिति बनाई जाए, जो विभिन्न विषयों के लिए आवश्यक उपसमितियों का निर्माण करे। भारत के लगभग ३ दर्जन विश्वविद्यालय पारिभाषिक शब्द निर्माण के प्रारम्भिक कार्य का केन्द्र बन सकते हैं। इस दृष्टि से ये विश्वविद्यालय विभिन्न विषयों को आपस में बांट सकते हैं। पहले पालियामेण्ट तथा बाद में राज्यों की विधान-सभाएँ इस सम्बन्ध में निश्चय कर सकती हैं कि उक्त अखिल भारतीय पारिभाषिक शब्द निर्माण समिति द्वारा बनाए गए पारिभाषिक शब्द भारत की सभी भाषाओं में समान रूप से व्यवहृत होंगे। यह कार्य ठीक ढंग से प्रारम्भ हो जाने पर ही भारत की सभी भाषाओं में विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम सम्बन्धी साहित्य का निर्माण यथेष्ठ तीव्र गति से हो सकेगा।

तिब्बत का सवाल

८ मई को पालियामेण्ट में प्रधान मन्त्री ने तिब्बत के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण दिया। उनका कथन है कि तिब्बत का मामला पूर्ण रूप से शान्तिमय उपायों से हल किया जाना चाहिए। इस मामले को लेकर जो गरमी भारत के बाहर और कुछ अंश तक भारत के भीतर भी उत्पन्न हो गई, वह पूरी तरह अवाछनीय है। प्रधान मन्त्री ने यह भी कहा कि भारत की विदेश नीति में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। दलाई लामा को आश्रय देकर भारत ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। भारत चाहता है कि यह मामला शान्त उपायों से सुलझ जाए। आशा है तिब्बत के स्वायत्त शासन के सिद्धान्त को स्वीकार कर यह मामला सुलझा लिया जा सकेगा।

हिन्दी नाटक अभिनय प्रतियोगिता

हाल ही में दिल्ली में संगीत नाटक अकादमी की ओर से एक अखिल भारतीय हिन्दी नाटक अभिनय प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। देश की ४२ नाटक संस्थाएं इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहती थीं। उन में से नाटक की अभिनय सम्भावनाओं तथा नाटक संस्था की शक्ति को ध्यान में रख कर ये ९ नाटक चुने गए थे इण्डियन नेशनल थियेटर, द्वारा 'पत्थर का देवता' (कमलाकर दाते), थ्री आर्ट्स क्लब द्वारा 'अधूरा' (रमेश मेहता), आर्ट थियेटर, एलूरू तथा महाराष्ट्रीय कलोपासक द्वारा 'कोणार्क' (जगदीशचन्द्र माथुर), अलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसिएशन, अलाहाबाद द्वारा 'सरहद' (के० बी० चन्द्र), अलाहाबाद युनिवर्सिटी डैलीगेसी, अलाहाबाद द्वारा 'सांझ सवेरा' (डी० पी० सिन्हा) लिटिल थियेटर ग्रुप, नई दिल्ली द्वारा 'न्याय की रात, (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार), इण्डियन पीपल्स थियेटर, पटना द्वारा 'चोर अली' (लक्ष्मी नारायण) तथा अनामिका, कलकत्ता द्वारा 'नए हाथ' (विनोद रस्तोगी)।

इस प्रतियोगिता में कलकत्ता की 'अनामिका'' संस्था पुरस्कृत हुई और लिटिल थियटर ग्रुप, नई दिल्ली के सेटों की प्रशंसा की गई।

पिछले ११ बरसों में हिन्दी कविता, हिन्दी उपन्यास तथा हिन्दी कहानी में प्रशंसनीय प्रगति हुई है, पर हिन्दी नाटक अभी तक पिछड़ी हुई दशा में है। यों हिन्दी में लिखे जाने वाले और प्रकाशित नाटकों की संख्या कम नहीं है। पर हिन्दी में अभिनय योग्य अच्छे नाटकों की बहुत न्यूनता है। और तो और, हिन्दी में अभी तक नाटकों के अच्छे आलोचक भी बहुत कम हैं। सच तो यह है कि रंगमंच के अभाव में किसी भी भाषा का नाटक-साहित्य उन्नति नहीं कर सकता। संगीत नाटक अकादमी के इस प्रयास से इस क्षेत्र में जो हलचल हुई है, वह अभिनन्दनीय है। और हमें आशा है कि नाटक की दृष्टि से भी हिन्दी में बहुत शीघ्र यथेष्ट प्रगति देखने को मिलेगी।

राजधानी मे रगमच- (पृष्ठ ८७ का शेषांश)

हमारी नाट्य-प्रवृत्तियो और परम्पराम्रो की रक्षा हो सके और साथ ही हम आधुनिक वैज्ञानिक साधनो का उपयोग भी रगमचीय प्रदर्शनो मे कर सके ।

वर्ष का अत

समीक्षाधीन वर्ष का अत होते-होते अप्रल के दूसरे पखवारे मे और मई के प्रथम सप्ताह मे दो नाटक समारोह हुए एक तो, 'साग ओर ड्रामा डिवीजन' द्वारा आयोजित चौथा वार्षिक नाटक समारोह जिसमे हिन्दी, बगाली, तेलुगु, कन्नड, और सस्कृत आदि भाषाम्रो के नाटक प्रस्तुत किए गए और दूसरा, सगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित हिन्दी नाटको के प्रदर्शन की प्रतियोगिता का समारोह जिसके अतगत दिल्ली और इलाहाबाद, कलकत्ता, पटना, हैदराबाद आदि से आने वाले नाट्य-दलो ने हिन्दी नाटक प्रस्तुत किए । यह प्रदर्शन की प्रतियोगिता बहुत उपयोगी है, और प्रदर्शन के तत्वो और मान्यताम्रो का निर्धारण करने मे इससे बहुत बडी सहायता मिलने की आशा है ।

इस प्रकार हम देखते है कि समीक्षाधीन वर्ष दिल्ली मे बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है, और रगमच के कार्यकलाप और उसके विभिन्न पक्ष के नव-निर्माण के लिए बहुत से नए काम किए गए है, और अनेक क्षेत्रो मे प्रगति हुई है ।

'थैले मे आ जाम्रो'- (पृष्ठ ८८ का शेषांश)

मुझे क्षमा करो । इन किसानो पर अब मै कभी भूल कर भी अत्याचार नही करूगा ।"

लडके ने कहा—"हा, इन श्रमिको का कभी अपमान न करना । जाम्रो तुम्हे क्षमा किया । और देखो, अभी अपने इन प्यारे श्रमिको को बढिया भोजन दो और मेरी कृपा को न भूलो । मेरे इस थैले मे भी कुछ खाना भरवा लाम्रो ।"

आपद मे फसे जमीदार को मुक्ति मिली । उसने अपने दूसरे नौकरो को बुलाकर खाने-पीने का प्रबध करवाया । मेजें रखवाईं, उन पर चादर बिछवाईं, नाना प्रकार के व्यजनो से सजी थालिया मगाई । लडके ने किसानो से कहा—"धरती के बेटो ! जी भर कर खूब खाम्रो पीम्रो !"

उन किसानो ने खूब डट कर खाया और लडके ने भी भोजन किया । अपने थैले मे अलग-अलग खाने की चीजो को भर कर, उन सब से विदा ले, अपने घर की ओर खुशी-खुशी वह चल दिया ।

बूढे मा-बाप अपने सुपुत्र को देख कर फूले न समाए कि उनका लडका घर वापिस आया है, अपने साथ थैले मे उनके लिये सामान लाया है और अपने लिये वह वायलिन भी लाया है । जब वह उसे बजाएगा तो हृदय को कितना अपार आनन्द मिलेगा ।

पुस्तक समालोचना-- -(पृष्ठ ५३ का शेषांश)

बड़ी विशेषता है जिससे भावानुभूतियों को अधिक विस्तार मिल सकता है।

इस संग्रह में ढोला-मारू, जलाल-बूबना, डाढालो सूर, राठौड अमरसिंह, राजसिंहोत, महाराजा पदमसिंहजी, साई री पलक में खलक, पलक दरियाव, सूरे खींवे कान्धलोत, संगृहीत है। इसके अलावा अगरचन्द नाहटा का 'राजस्थानी लोक-कथाओं सम्बन्धी साहित्य के निर्माण और संरक्षण में जैनों का योग', कन्हैयालाल सहल का 'लोक-कथाओं की एक प्ररूढ़ि--जादू की चोरी' और कोमल कोठारी का 'कथा की बात' लेख भी है जो बहुत ही उच्चकोटि के है।

बात मूल रूप में ही इस संग्रह में उद्धृत है। भाषा खड़ी बोली से काफी भिन्न है, फिर भी चेष्टा करने पर साधारण पाठक के भी हाथ बहुत कुछ लग सकता है। विद्वान सम्पादक ने साधारण पाठकों के लाभार्थ कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टीका में दे दिए हैं।

हिमालय की गोद मे जयप्रकाश--लेखिका श्यामा भृग, प्रकाशक वही, पृष्ठ संख्या १२५, मूल्य ७५ न० पै०।

लेखिका ने इस पुस्तक में जयप्रकाश बाबू के साथ केदार-बद्री यात्रा का वर्णन किया है। यो हिमालय मे जहा भी कोई यात्रा करता है, उसे लाभ ही पहुचता है। पर यह समझ में नही आया कि इस भ्रमण वृत्तान्त का सर्वोदय से क्या सम्बन्ध है। लेखिका ने जगह-जगह तीर्थों का जो वर्णन किया है, वह धर्मसम्मत है। जैसे वे लिखती हैं--"यहा से समीप ही कनखल तीर्थ है। वहा अपने पति देवाधिदेव शिव के प्रति अपने पिता दक्ष प्रजापति द्वारा यज्ञ में निकले अपमानजनक शब्दों को सुनने के कारण स्व-शरीर को अपवित्र हुआ मान जगदम्बिका सती देवी ने योगाग्नि में प्रविष्ट होकर उस देह को ही नष्ट कर डाला था। दक्ष-यज्ञ ध्वंस की यह गाथा तथा सती के गिरिजा रूप मे पुनर्देह धारण एवं अखण्ड तपस्या द्वारा पुन श्री शिव की प्राप्ति की शिक्षाप्रद कथा पुराणों में बड़े ही रोचक ढंग से वर्णित है।"

इसी प्रकार वे जहा-तहा पौराणिक कथाओं को अपनी भाषा में लिखती है और गद्गद् होकर हिन्दुओं के धार्मिक स्थानों की प्रशंसा करती है। भ्रमण वृत्तांत के रूप में इस पुस्तक को महत्वपूर्ण नही मान सकते क्योंकि हिमालय का वर्णन करने के लिए भक्ति से कही अधिक शायद सूक्ष्म और कवित्व शक्ति की आवश्यकता है। जो कुछ भी हो, इस पुस्तक को पढ़ते समय एक बात मेरे दिमाग में बार-बार आती रही कि यदि एक मुसलमान या ईसाई इस पुस्तक को पढ़े तो उसके मन पर क्या प्रभाव उत्पन्न होगा। हम यह जानते हैं कि कई कारणों से भारत में जिस राष्ट्रीयता का उद्भव हुआ, वह शुरू से ही हिन्दूपन लिए हुए थी। उसके साथ कई ऐसे अनुष्ठानों आदि का योग रहा जिन्हें दूसरे शायद उसी दृष्टि से नहीं देख सकते। अवश्य दूसरे भी दूध के धुले हुए नही थे, पर यहा उन बातों को उठाने की जरूरत नहीं। हम केवल एक विद्यार्थी के नाते यह प्रश्न सर्वोदय के नेताओं के सामने रखना चाहते हैं--क्या ये सर्वोदय विचारधारा को सम्पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्ष यानी कम से कम साम्प्रदायिकता मुक्त रखना चाहते हैं या उसे भी उसी मार्ग से ले जाना चाहते हैं जिस मार्ग में दुर्भाग्य से भारतीय राष्ट्रीयता गई और जिसका ऐतिहासिक नतीजा हम सबको ज्ञात है।

--मन्मथनाथ गुप्त

नई औपन्यासिक प्रवृत्तिया—(पृष्ठ १७ का शेषाश)

शक्ति सचय कर समूचे कृतित्व पर ऊष्म ज्योति बनकर छा जाती है और जहा समाधानहीन अनन्त आश्चर्य, नवोन्मेषशालिनी उत्सुकता बाह्य गतियो पर नही आतरिक चेतना की परतो और सूक्ष्म सवेदना पर थिरकती है। उपन्यासकार को उसके अपने सृजन को सार्थकता देने का एक सभव उपाय यही प्रतीत होता है कि वह जिन्दगी की धडकन को महसूस करे केवल अपने खातिर या अपने तईं ही न जिये अपितु चतुर्दिक फैले जीवन में जो भी उसके सम्पर्क मे आए उसके अनुभवो को महत्तर चेतना से सश्लिष्ट करके आके। जैसा कि हमने ऊपर कहा उपन्यासकार हर परिस्थिति और दृश्यबन्ध की परिकल्पना करने वाला शिल्पी भी है, अतएव वैसा ही दृश्यागत प्रभाव और वातावरण अगीकृत करके उसे अतरग और बहिरग की अखण्डता मे पूर्ण सामजस्य खोजना चाहिए, साथ ही उसे उन मूल निष्कर्षो का सरक्षण भी करना पडता जो समूचे सामाजिक और सास्कृतिक जीवन की प्रवृत्तियो से एकरूप हो औपन्यासिक शक्ति के अक्षुण्ण स्रोत है।

विभिन्न प्रयोगो की एक लम्बी शृखला के पश्चात उपन्यास का पाट आज बहुत चौडा हो गया है, किन्तु यात्रिक सभ्यता की अति-बौद्धिकता के आग्रह ने निष्ठापूर्ण आस्था की विकासमान शक्तियो को डगमगा दिया है। उपन्यास के लिए जिस अन्त दृष्टि, सूक्ष्म कल्पनात्मकता, सहानुभूति और मूर्त चित्रात्मकता की अपेक्षा है—कौन है हिन्दी में जो ताल ठोक कर बाह्य और आन्तरिक पक्ष में विशेष प्रौढ़तर कलात्मक सयम पर सर्जनात्मक क्षमता में सबको एक साथ समेटने का दावा कर सके! किसकी सवेदनाओ की सान्द्रता और सच्चाई सागोपाग रूप में जीवन के वैविध्य पर उसके समस्त आयामो से एकतान हो सकी है!

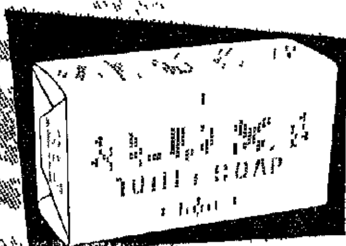
प्रेमचन्द को जाने दीजिए। गुजरी दास्ता है। मगर जैनेन्द्र, अज्ञेय व इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, कृष्णचन्द्र और अश्क, राहुल साकृत्यायन, वृन्दावनलाल वर्मा व चतुरसेन शास्त्री, भगतीचरण वर्मा व भगवतीप्रसाद वाजपेयी, धर्मवीर भारती व डॉ० देवराज, मन्मथनाथ गुप्त व डा० रागेय राघव, अमृतराय व अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ 'रेणु' व नागार्जुन, साथ ही नए नए प्रयोगो से चौकाने की चेष्टा-रत कितनी ही नवोदित प्रतिभाए कब अपने लघु 'अह' के वृत्त से उभर कर आगे आने पाई। लेखक के टूटे-बिखरे, विशृखल स्वप्नो की परिणति आज कुछ प्रतीको, खण्ड चित्रो और छिन्न अनुषगो तक ही सिमट कर क्यो रह गई? कहा है समष्टि को उसका सहज देय जो समय की दारुण चोट खा कर अदेय बन गया है और जिसकी अमिट खरौचे ही औपन्यासिक दावपेंच या प्रायोगिक नव्यता की नई व मौलिक उदभावना की कसौटी मात्र है।

वस्तुत आज के हिन्दी उपन्यासकार की दृष्टि तलस्पर्शी नही, आत्मप्रवचक है, उसके आयासहीन कोरे समाधान छूछे है, ऊपरी है, जो समस्याओ की जडो को नही छू पाते।



आप
के लिए –
चित्र तारिकाओं सा
खिला हुआ
रंग रूप !

अनिता गुहा को एक नजर देखते ही आप उन के खिले हुये रग रूप से चकित रह जायेंगे ! आप भी अपना रग रूप वैसा ही सुदर और आकर्षक बना सकती है ! अपनी सौंदर्य सामग्री मे, शुद्ध सफेद लक्स टॉयलेट साबुन को विशेष स्थान दीजिये। सुदरी अनिता गुहा का कहना है, "रग रूप की देख भाल के लिए सुगधित और शुद्ध लक्स टॉयलेट साबुन से बढिया कोई साधन नहीं।" याद रखिये लक्स से स्नान एक अनोखा आनद प्रदान करता है।



शुद्ध सफेद **लक्स**

टॉयलेट साबुन

चित्र तारिकाओं का सौंदर्य साबुन

हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड ने बनाया

LTS 602 Y52 HI

बालोपयोगी प्रकाशन

	मूल्य रु०	डाक खर्च रु०
भारत की लोक कथाएँ	१ ००	० २५
भारत के गौरव	१ २५	० ३०
जातक कथाएँ (भाग-१)	० ७५	० १५
जातक कथाएँ (भाग-२)	१ ००	० २५
पश्चिम भारत की लोक कथाएँ	० ७५	० २०
खीर की गुड़िया	० ५०	० २०
पंचतंत्र की कहानियाँ (भाग ३ व ४)	० ३५ प्रत्येक	० १५ प्रत्येक
आदर्श विद्यार्थी बापू	० ३५	० १५

(रजिस्ट्री व्यय अलग)

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्य या निम्न पते पर सीधा लिखें



पब्लिकेशन्स डिवीजन
पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरियट
दिल्ली-८

बौद्ध धर्म सम्बन्धी दो सुन्दर पुस्तकें

बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष

इस पुस्तक में गत ढाई हजार वर्षों में बौद्धमत की कहानी का संक्षिप्त लेखा है।
२५५ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का
मूल्य केवल ३ ०० रु०
डाक व्यय ० ६० नए पैसे

भारत के बौद्ध तीर्थ

भारत में बौद्ध तीर्थ व पवित्र स्थानों पर सचित्र पुस्तक। आकर्षक छपाई व सजधज।
१०८ पृष्ठों की इस सुन्दर पुस्तक का
मूल्य केवल २ ०० रु०
डाक व्यय ० ७५ नए पैसे

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

मूल्य अग्रिम आना आवश्यक है। रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है।



पब्लिकेशन्स डिवीज़न
पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८



चँद्रमा तक पहुंचने की राह

(एक पुरानी भारतीय कथा)

"बड़ों से जब भी कुछ पूछो वे हमें बच्चा समझ कर डांट देते हैं।" जंगल में बंदरों के बच्चे आपस में बातें कर रहे थे, "हम बच्चे नहीं हैं, बड़े हैं!" उन्हों ने फ़ैसला किया।

"हम उन्हें बता देंगे।" उन का नेता बोला, "हम अपना जत्था बनायेंगे, और मनमानी करेंगे!"

सभा समाप्त हुई। सब अपने अपने घर चले गये। लेकिन उस रात वे अपने अपने माँ बाप के साथ नहीं सोये, बल्कि टोलियाँ बना कर, एक झील के किनारे, वृक्षों की सब से ऊँची डालियों पर सो रहे।

आधी रात होगी जब एक बंदर की आंख खुली। वृक्ष के ऊपर से जो उस ने देखा तो झील में, पानी के अंदर, उसे चमकता हुआ चाँद नज़र आया।

"उठो, जागो, साथियो!" वह चिल्लाया, "चाँद झील में गिर गया है। चलो, चल के उसे निकालें। जल्दी करो, कोई और न पहुंच जाये!"

"हाँ, हाँ, चलो!" सभी चिल्लाये, "इस से हम दुनिया भर में मशहूर हो जायगे!"

"चाँद तक पहुंचने का यही तरीका है," नेता बोला, "कि हम एक दूसरे के पीछे जंजीर बना कर चलें!"

बंदरों की एक लम्बी जंजीर बनी—हर बंदर ने दूसरे की दुम मजबूती से पकड़ ली। उन के पानी में कूदने की आवाज जंगल में गूंज उठी—और वे चाँद को निकालते निकालते आप भी डूब मरे।

शिक्षा: ऐसे लोगों की बातों में न आइये जो अपने आप को हर बात में लाल बुझक्कड़ समझते हैं। केवल उन्हीं की सुनिये जो सचमुच जानते हैं। वनस्पति को लीजिये। आहार और स्वास्थ्य के जानकारों का कहना है कि वनस्पति स्वास्थ्यदायक आहार भी है और भारतीय खुराक में एक अमूल्य बढ़ोत्री भी! डालडा वनस्पति—लाखों गृहणियों का आज़माया हुआ छाप—शुद्ध वानस्पतिक तेलों से, सरकारी आदेशानुसार बनाया जाता है। हर प्रकार का खाना पकाने का यह साधन शक्तिदायक चिकनाइयों का भंडार है! इस के हर औंस में विटामिन ए के ७०० और विटामिन डी के ५६ अंतरराष्ट्रीय यूनिट्स मिलाये जाते हैं। याद रखिये 'डालडा' केवल एक पाक माध्यम ही नहीं—पौष्टिक भी है!


SISTA S SG 71 HIN
थोडा-सा *टिनोपाल सफेद कपडो को
सबसे अधिक सफेद - बनाता है
TINOPAL BVN
*'टिनोपाल' जे आर गायगी, एस ए, बाल, स्विटजरलेंड का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है
इवेट लिमिटेड वडी वाडी
लिमिटेड, पो आ

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad

Jn D—510

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

जुलाई १९५९



मूल्य
पचास नए पैसे



लोहा खाने वाले चूहे

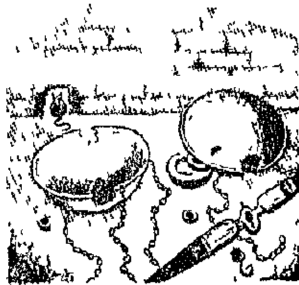
(पञ्चतन्त्र की एक कथा)

एक था व्यापारी जिस का नाम था नट्टुका। दुर्भाग्यवश अपनी सारी पूंजी गवा कर उसे देश से दूर दिसावर में पैसा कमाने के लिए जाना पड़ा। जाने से पहले वह अपने मित्र लक्ष्मन से मिला और अपना तराजू उस के हवाले करते हुये बोला, "भाई, यह तराज़ू मेरे लौटने तक अपने यहां रख लो। इस का मेरा बरसो साथ रहा है, इस लिए मैं इसे बेचना नहीं चाहता।"

कुछ ही समय में नट्टुका फिर से अमीर हो कर वापस अपने शहर में आया। लक्ष्मन के पास जा कर जब उस ने अपना तराजू मांगा तो लक्ष्मन बोला,

"अरे भाई क्या कहूँ, तुम्हारा तराज़ू तो चूहे खा गये।"

"इतना बड़ा तराज़ू भला चूहे कैसे खा गये? २५० सेर लोहा था!" "मेरे घर में चूहे भी तो कम नहीं! २५० सेर लोहा तो वे बातों बातों में खा जायें।"



नट्टुका सोच में पड़ गया। "अच्छा" वह मुसकराते हुये बोला, "इस मे तुम्हारा क्या दोष! मेरी ही किस्मत खराब थी! अब मैं नदी मे जा कर नहाऊंगा। जरा अपने बेटे से कहो मेरी चीज़ें तो उठा ले चले।" लक्ष्मन को यह साधारन प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। नदी से लौटते समय नट्टुका ने लड़के को एक गुफा में धकेलकर, गुफा का मुंह एक शिला से बंद कर दिया।

लक्ष्मन के घर जब वह अकेला पहुँचा तो लक्ष्मन ने पूछा, "मेरा बेटा कहां है?"

नट्टुका ने उत्तर दिया, "नदी किनारे वह बैठा था कि एक बाज झपट कर उसे उठा ले गया।"

"झूठे, मक्कार! पन्द्रह बरस के लड़के को बाज कैसे उठा सकता है?"

"जैसे २५० सेर लोहा चूहे खा सकते हैं! सुनो लक्ष्मन अगर तुम्हें अपना बेटा चाहिये तो मेरा तराज़ू निकालो!"

नट्टुका को अपना तराज़ू मिल गया।

शिक्षा: जो सच्चा है वह झूठे का पोल खोल सकता है।



वर्ष १५ अंक ३ पूर्णांक १८१

जुलाई १९५९

(१० आषाढ़ से ९ श्रावण १८८१)

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली ८

वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, दस सेंट या नौ पेंस





फोटो
जी० सिंह



वर्ष १५ | जुलाई १९५९ | अंक ३

पता नही कौन है !

परमानन्द श्रीवास्तव

पता नही कौन है !
हर रोज रात्रि के श्लथ सन्नाटे म आता है
साकल छूता है, बजाता है—
दरवाजे पीटता है,
खिड़कियो के पार्श्व से इंगित करता है,
मन के अन्तराल में
दूरागत बशीरव-सा द्रवीभूत होता है,
मन की दीवारो पर
रंग अल्पना-सा रचता है,
कभी-कभी कमरे के बीच सिमट आता है,
बत्तिया जरा धीमी
और धीमी
और धीमी कर जाता है,
कभी-कभी सिरहाने आ खड़ा होता है,
मेज पर झुक कर निरर्थ कुछ लिखता है,
आगे बढ़ता है,
सारे घर में घायल अजानी आवाजें लगाता है
पता नही कौन है !
किसका सहयात्रिक है !
शायद वह मेरे मन का नामहीन भय है,
सुन्दर भी है, विरूप भी है,
शायद मेरे मन के भय का कोई सहयात्रिक है,
शायद आकारहीन संशय है,
शब्दातीत विकल्प है,
सुन्दर भी है, विरूप भी है,
है भी, नही भी है !

बंगला कविता

घोड़े की चाल

सुभाष मुखोपाध्याय

मारना उतना सहज नहीं,
एक जिन्दा है
दूसरे के बल पर ।
घोड़े बाघ की तरह चल रहे है ।
अरे संभालो तुम अपने बादशाहो को,
नहीं तो
इसी किश्त में मात है !
घोड़े बाघ की तरह चल रहे हैं
मरुस्थल की कड़ाही में
टग्‌बग् टग्‌बग् करता है

खौलता हुआ तेल,
भागो !
रबड़ के वन में झूलते हैं
रस्सी के फंदे,
भागो !
लोभ के कांटों से जड़े जूते
पैरों में अटक-अटक कर
फट रहे हैं ।

चाल बदलती नहीं,
सारी पृथ्वी को दाव पर रख कर
हम खेल रहे हैं ।
कहो उनसे चाहे जैसे वे सजाएं बाजी,
हम अढाई घर की सीमा में
उन्हें पा लेंगे ।
घोड़े बाघ की तरह चल रहे हैं !

अनुवादक गोपालचन्द्र दास

तेलगु कविता

मैं

श्री श्री

भूत हूं,
यज्ञोपवीत हूं,
विप्लव-गीत हूं मैं ।
स्मरण करूं तो पद्य हूं
चिल्लाऊं तो वाद्य हूं,
अनल वेदिका के समक्ष अस्त्र नैवेद्य हूं
मैं लोक,
भवभूति के श्लोक हैं,
परमेष्ठी का त्रास ही मेरा महोद्रेक है ।

मेरी उद्भावना चमेलीमाला है ।
रस राज्य का हिंडोला है ।
गिरि,
सागर, सरिता, मंजरियां,
निर्झर मेरे भ्राता हैं !
मैं इक युग हूं !
मेरा अपना स्वर्ग है ।
अपूर्व, सुनिश्चित साध्य मेरा मार्ग है !

रूपान्तरकार बालशौरि रेड्डी

पंजाबी कविता

काश्मीर

प्यारा सिंह सहराई

सुन्दरता से भरी, इक परी,
गज गज लम्बे बाल ।
अन्तर के संगीत को—
अंग-अंग देता ताल ।

नव-वधू उठाती
घूंघट, जैसे इक मुटियार
लज्जा से भर जाती सूरत-
मिलता सुख अतुल अपार ।

सोहनी यह महिवाल की
रांझे की यह हीर ।
कल्पना से भी दूर है—
यह उसकी तसवीर ।

धूप सवारे बदन को
शबनम धोये अंग
होती नजरें बावरी—
पाकर इनका संग ।

अध-सोये, अध-जागते—
सुन्दर नयना रहते ।
खोल रहे इक भेद यह—
और एक कहानी कहते ।

'जीवन इक मुस्कान है—
आंसू नहीं है यार !
फिर नयनों में नीर क्यों—
ओ हुस्नों के सरदार !'

अनुवादक : अमरजीत सिंह

भारतीय कला की नई प्रवृत्तियां

पी० एस० नारायणन

इतिहास के विभिन्न कालो में भारतीय चित्रकला और वास्तु-कला ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन के प्रवाह का बड़े शक्तिशाली रूप में दिग्दर्शन किया है। नि सन्देह अवनति एव ह्रास के काल भी रहे है, किन्तु हर बार नई धूम-धाम के साथ पुनर्जागरण एव परिवर्तन होता रहा है। वर्तमान शताब्दी के मोड पर हमारी कलात्मक विरासत की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धिया धुन्धली पड गई थी, मुगल और राजपूत परम्पराए समाप्तप्राय हो गई थीं, अग्रेजी शिक्षा ने भारतीयो में कला के बारे में विक्टोरियन विचारो के प्रति आदर की एक पवित्र भावना पैदा की। पश्चिम की हर चीज को बिना सोचे-समझे सराहने की मन स्थिति के कारण भारतीय कलाकारो में देशीय परम्पराओ और आदर्शों के प्रति घृणा पैदा हो गई तथा उन्होने जो चित्र बनाए वे सस्ती यूरोपीयन कला के कुशल अनुकरण मात्र थे।

इतिहास की यह एक विचित्र घटना है कि एक अग्रेज ने युग के इस अन्धे प्रवाह को बदला। यदि ऐसा न होता तो राष्ट्रीय कला के जीवन एव विकास के लिए इसका बडा भयकर परिणाम होता। ई० बी० हैवेल उस समय कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिंसिपल थे। अपने लेखो तथा शिक्षाओ

"शृगार", के० एस० कलकर्णी





श्रीमती लीला दयाल का चित्र (तैल) कवल कृष्ण

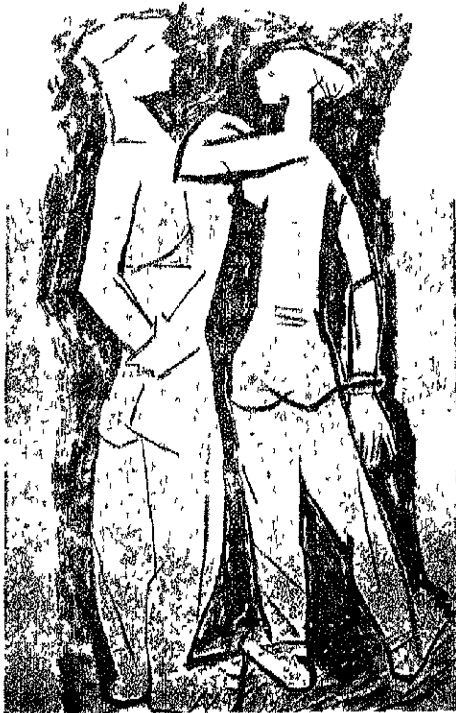
द्वारा उन्होने शिक्षित भारतीयो को अपनी कलात्मक विरासत को और अच्छी तरह से समझने में सहायता की। उनके लगातार प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में, जिन्होंने तथाकथित 'बंगाल स्कूल' प्रचलित किया, भारतीय शास्त्रीय चित्रकला में पुनर्जागरण हुआ। उस महत्वपूर्ण युग में जिन व्यक्तियो ने इस नए आन्दोलन का पथ-प्रदर्शन किया उनमें नन्दलाल बोस तथा हाल्दार के नाम बडे प्रमुख हैं।

किन्तु राष्ट्रीयता की भावना के कारण यह नया आन्दोलन शीघ्र ही धूमिल पड गया और जिन आदर्शों के साथ यह आरम्भ हुआ था वे कमजोर पड़ गए। वर्तमान शती के तीसरे दशक से पुनर्जागरण स्कूल के अनुयायी पुरातन के अनुकरण में इतने अधिक व्यस्त हो गए कि परम्पराओ को आत्मसात करने की भावना निर्जीव होने लगी। सौभाग्य से उसी समय कुछ थोडे से प्रतिभावान कलाकारो ने पुरातन प्रकनो की फिर से व्याख्या करने तथा अपने विचारो और कल्पनाओ को विभिन्न प्रकार की नई प्रणालियो एव सम्भावनाओं में प्रतिफलित करने का कार्य सम्भाला। इस



"अकार' पी० एन० मागो

"साथी" (टैम्पेरा में) के० एस० कुलकर्णी



प्रकार कलात्मक अभिव्यक्ति के नए रास्ते निकालने और नए सिद्धान्तों की खोज करने की दृष्टि से गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस और जैमिनी राय ने भारतीय चित्रकला म आधुनिकवाद का श्रीगणेश किया। इससे सर्वथा भिन्न रूप में, अजन्ता की भावना से गहन रूप से अनुप्राणित तथा सैजाने और गोगा से प्रभावित अमृता शेरगिल ने एक नई शैली का विकास किया जिसमें पश्चिमी प्रणाली के साथ पूर्वीय आदर्शों के समन्वय की झलक थी।

आजकल के हमारे बहुत से कलाकार भी नए विषयों और उन्हें अभिव्यक्त करने के नए तरीकों की खोज कर रहे हैं। आधुनिक प्रवृत्ति की सबसे मुख्य बात स्वतन्त्रता है। कला गवेषणा का विषय बन गई है और आधुनिक कलाकार नई सम्भावनाओं तथा मूल्यों के बारे में सचेत हो गया है और वह आकार एवं वर्ण का विभिन्न नए रूपों में संगठन करना चाहता है। परिणामत कभी-कभी विषयों का निरूपण अत्यन्त सरल ढंग से किया जाता है। वर्तमान शती की सौंदर्यानुभूति को पर्याप्त रूप से प्रभावित करने वाले दार्शनिक कान्ट ने इसी बात को इस प्रकार कहा है "दैनिक जीवन, उपयोगिता, नैतिकता, और धर्म के प्रयोजक तत्वों से पूर्ण विराग की वृत्ति"। समसामयिक माध्यम का प्रयोग करने वाला कोई भी कलाकार यह नहीं मानता कि कलात्मक सौष्ठव से भरपूर कोई रचना तैयार करने के लिए उसे उस कृति में गहन दार्शनिक विचारों, नैतिक सिद्धान्तों या तथ्यात्मक सामग्री का चित्रण करना चाहिए। शक्ति, अभिव्यंजकता, भावोद्रेक सामर्थ्य या वे सब अन्य आधारभूत विशेषताएं, जिनसे दृश्य कलाओं में महानता की उपलब्धि होती है, दृश्य साधनों द्वारा प्राप्त की जानी चाहिए—अर्थात् रेखांकन तथा अंकनों के सम्बन्ध, गति, समरसता, वर्ण आदि के द्वारा उपलब्ध की जानी चाहिए।

समसामयिक भारतीय कला पर पश्चिम का प्रभाव सदा ही अच्छा पड़ा हो, ऐसी बात नहीं है। बहुत से तथाकथित आधुनिकतावादी लोगों में यह रिवाज हो गया है कि वे तरह-तरह के वादों के जंजाल में पड़ जाते हैं और ऐसे चित्र बनाते हैं जिनमें औपचारिक प्रतीतियों का सत्य भी लक्षित नहीं होता। वे अपनी कृति में मौलिकता लाने का सिर-तोड़ प्रयत्न करते हैं किन्तु ऐसा लगता है कि इस प्रयत्न में उन्होंने आधारभूत सौंदर्य सम्बन्धी सिद्धान्तों को भी तिलांजलि दे दी है। विचारों किंवा धारणाओं को मूर्त रूप देने के सब प्रकार के नए-नए तरीकों को इतना अधिक तूल दिया गया है कि वे केवल शुष्क और पण्डिताऊ सूत्र बन कर रह गए हैं और उन्हें क्यूबिज्म, फ्यूचरिज्म, सुर्रियलिज्म और एक्सप्रेशनिज्म आदि रोबीले नाम दे दिए गए हैं जिसका यह परिणाम हुआ है कि समसमायिक कला के क्षेत्र में बड़ा झमेला मचा हुआ है।

आज देश में कला की वर्तमान स्थिति के कारण कलाकार और जनता दोनों ही के सामने बहुत-सी समस्याएं उपस्थित हैं। "आधुनिक कला क्या है?" से लेकर "भारतीय कला किस ओर?" तक अनेक विवादास्पद प्रश्नों पर पढ़े-लिखे लोगों में भी वाद-विवाद हो रहा है और कला के विकास में दिलचस्पी रखने वाले बहुत से लोगों के दिल में सचमुच यह सन्देह है कि आजकल जिसे कला की संज्ञा दी जा रही है उसमें 'कला' नाम की कोई चीज है भी या नहीं? आधुनिक भारतीय कला में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर ख्याति प्राप्त करने वाले कलाकारों के साथ किया गया खुला विचार-विमर्श आजकल की प्रवृत्तियों एवं धाराओं के सही-सही मूल्यांकन में सहायक हो सकता है।

यहां जिन कलाकारों—कँवल कृष्ण, के० एस० कुलकर्णी और प्राणनाथ मागो—के साथ हुई बातचीत का विवरण दिया गया है उनमें से कोई भी किसी विशेष विचारधारा या प्रादर्शवादी वर्गीकरण का प्रतिनिधित्व नहीं करता। बल्कि यह सब कलाकार विभिन्न प्रदेशों के है, विभिन्न परिस्थितियों में पले है और उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा-दीक्षा रही है। उनकी शैलियों एव प्रणालियों में कोई समानता नहीं है और वे पक्के व्यक्तिवादी है।

श्री कुलकर्णी स्वच्छन्द रहकर कला की साधना करने वाले अत्यन्त सफल कलाकारों में से एक है। वह पूना के समीप बेलगाव के रहने वाले है और जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स, बम्बई में उन्होने शिक्षा प्राप्त की है। उन्होने यूरोप, अमेरिका, मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्वी एशिया का काफी भ्रमण किया है। श्री कँवल कृष्ण पजाब मे पैदा हुए और उन्होने अपनी कला-सम्बन्धी शिक्षा कलकत्ता आर्ट्स स्कूल में प्राप्त की। वे अपने हिमालय सम्बन्धी दृश्यों के चित्रण के लिए प्रसिद्ध है और अभी हाल में वे ग्रेफिक कलाओं की ओर प्रवृत्त हुए है। स्केंडिनेविया के देशो और यूरोप की यात्रा से वापस आने के बाद से वह माडर्न स्कूल के कला विभाग के अध्यक्ष रहे है। इस स्कूल ने कला की शिक्षा देने के सम्बन्ध में नए मानदण्ड स्थापित किए है। प्राणनाथ मागो भी पजाब के रहने वाले है। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले लाहौर में और बाद को ज० जे० स्कूल आफ आर्ट्स, बम्बई में हुई। वे दिल्ली पोलिटेकनिक के कला विभाग में अध्यापन कार्य करते रहे है। इस समय वे अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड के अधीन दिल्ली डिजाइन केंद्र के निदेशक है।

प्रश्न—देश में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से कला के विकास एव प्रगति के सम्बन्ध में आपके क्या विचार है?

उत्तर—(कवल कृष्ण)

मेरे विचार में १० साल पहले जो स्थिति थी उसकी तुलना में आज की स्थिति बहुत अधिक प्रसन्नताजनक है। कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से बहुत सारे सघ और सगठन स्थापित हो गए है और सामान्यत कला-आन्दोलन में एक नई शक्ति एव चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है।

प्रश्न—क्या आप यह मानते है कि इन सघो एव सगठनों की स्थापना से हमारी कलात्मक विरासत को समृद्ध बनाने में कोई महत्वपूर्ण योगदान मिला है, या इन सगठनों के द्वारा कलाकारों को कोई भौतिक लाभ प्राप्त हुआ है?

उत्तर—(कवल कृष्ण)

संघो या सगठनो के द्वारा किसी महत्वपूर्ण कलाकृति की रचना नहीं हो सकती, किन्तु इससे कलाकारों को एक दूसरे को अच्छी तरह से समझने में सहायता मिल सकती है और ये सगठन कलाकारों तथा जनता के बीच एक सयोजक कड़ी बन सकते है। अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि जब हमारे चित्रकार और मूर्तिकार पूर्णरूप से अलग-थलग होकर रहते थे और उनकी पूर्ण तरह से उपेक्षा की जाती थी। परन्तु आज जनता कला में होने वाली प्रगति अथवा विकास के प्रति उतनी तटस्थ और निरपेक्ष नहीं है जितनी कि वह दस साल पहले थी।

प्रश्न—कला के बारे में जनता की दिन प्रति दिन बढ़ने वाली दिलचस्पी के होते हुए भी यह आलोचना की जाती है कि कला जीवन और समाज से निरन्तर दूर से दूरतर और असम्बद्ध होती चली जा रही है?

उत्तर—(कुलकर्णी)



"देवताओं का घर" कवल कृष्ण

"श्रीनगर की मार नहर" पी० एन० मागो





"शिकारे" पी० एन० मागो



"गुफा स्थित मठ" कवल कृष्ण

"नहर का पुल" (श्रीनगर) पी० एन० मागो



कला के सम्बन्ध में जनता की अभिरुचि सदा ही अनुदार रहेगी। यदि कलाकार जन-अभिरुचि और जनता की मांगों के अनुसार कार्य करें तो फिर कला व्यावसायिक हो जाएगी और उसमें शक्ति एवं सजीवता नहीं रहेगी। यह कहना कि आधुनिक कला जीवन और समाज दोनों से दूर हो गई है और उनसे असम्बद्ध है, यह तो केवल आजकल के कलाकारों की रचनाओं को नापसन्द करना मात्र है। इस प्रकार की आलोचना तो हमेशा ही की जाती रही है, लगभग तभी से जब कि कलाकारों ने तथाकथित समाज के आदेशों को मानने से इन्कार किया है। वास्तविक कला, वह चाहे किसी भी शैली और रूप में हो, तो अनिवार्य रूप से जीवन से सम्बद्ध होगी ही। किन्तु यह हो सकता है कि जीवन और कला का यह सम्बन्ध ऐसी आंखों को पता न चल सके, जो रेखा, आकार और वर्ण की बारीकियों को न समझ सकें। आप जैसा चाहें, उसी के अनुसार यदि चित्रकला को ढाला जाए तो इससे केवल कुछ सीमित हितों का ही लाभ होगा और इस प्रकार ऐसी कला में कोई भी प्रेरक शक्ति अथवा स्थायित्व नहीं होगा जिससे कि वह समय के व्यवधान को पार कर अक्षुण्ण रह सके।

प्रश्न—ऐसा माना जाता है कि भारतीय कला की आधुनिक प्रवृत्तियां पश्चिम से उधार ली गई हैं या उसकी नकल की गई है। लोगों की इस आम राय के बारे में आपको क्या कहना है?

उत्तर—(कुलकर्णी)

आधुनिक भारतीय कलाकारों तथा पश्चिमी समसामयिक कलाकारों की कला-कृतियों में ऊपर से देखने पर जो समानता दिखाई देती है, वही इस आम राय का कारण है। दरअसल यह बात मान लेनी चाहिए कि इस प्रकार की आलोचना में भी कुछ सत्य अवश्य है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय कलाकारों में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो नकल करते हैं और अनुकरण करते हैं। फिर भी यह परिणाम निकालना अनुचित और असंगत है कि सभी भारतीय कलाकार चोरी या नकल करते हैं। अन्य व्यक्तियों की तरह कलाकार भी बाह्य संसार से पूर्ण रूप से तटस्थ या असम्बद्ध नहीं हैं और इसलिए यह स्वाभाविक है कि संसार में जो कुछ भी हो रहा है उसका उन पर प्रभाव पड़ता है और वे उससे प्रभावित होते हैं। हम यह आशा नहीं कर सकते कि आधुनिक कलाकार एक बर्बर या ऋषि के समान आचरण करे। कला सभी कृत्रिम बन्धनों को लांघ रही है और कलाकार का दृष्टिकोण तथा कल्पना उसकी अपनी तात्कालिक परिस्थितियों का अतिक्रमण कर जाती है।

प्रश्न—आधुनिक कलाकार पश्चिम से ही क्यों प्रेरणा प्राप्त करें? क्या आप यह समझते हैं कि पूर्वी परम्परा और आदर्श प्रेरणा प्रदान नहीं कर सकते?

उत्तर—(कवल कृष्ण)

ऐसा समझना गलत है कि कलाकार केवल पश्चिम से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। क्या इस बात से इन्कार किया जा सकता है कि पश्चिम के अधिकांश महान चित्रकारों पर पूर्वीय एवं पुरातन परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है। मातीस या क्ली या पिकासो किसी विशेष देश या प्रदेश के ही कलाकार नहीं हैं। उनका सारी दुनिया से सम्बन्ध है और उनकी कला में कोई राष्ट्रीय या प्रादेशिक सीमा नहीं है।

प्रश्न—आप यह बात स्वीकार करेंगे कि हमारे देश में हमारे कलाकारों की कलाकृतियों की यूरोप के महान कलाकारों की कृतियों से तुलना करने और किसी प्रसिद्ध यूरोपीय विचारधारा के अनुसार इन कलाकारों

का किन्ही विशेष वर्गों एव शैलियो मे वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति है ?

उत्तर——(सागो)

इससे तो केवल हमारे कला-समीक्षको का दिमागी दिवालियापन प्रकट होता है। भारतीय कला-समीक्षको की यह आदत हो गई है कि वे भारतीय कलाकारो की कलाकृतियो का मूल्याकन उन्ही फार्मूलो, सिद्धातो, और मानदण्डो से करते ह जिनसे यूरोप के कला-समीक्षक अपने कलाकारो का मूल्याकन करते हैं। भारतीय समाचार-पत्रो मे कलाकृतियो की प्रदर्शनियो के सम्बन्ध में जो आलोचनाए प्रकाशित होती है उनके पढने से यह प्रतीत होता है कि हमारे कला-समीक्षक भारतीय चित्रकारो मे से ही मातीस, ब्रोक्स और पिकासो को खोज निकालने का प्रयत्न करते हैं। यह तुलनाए प्राय कृत्रिम और थोथी होती है और उनका कोई ठोस आधार नही होता।

प्रश्न——भारतीय परम्परागत कला की कुछ अपनी खास विशेषताए हैं जिनसे कि अन्य देशो की कला से इसका अन्तर जाना जाता है, किन्तु आधुनिक भारतीय कलाकार की कृति को यूरोप या अन्य देशो के कलाकारो की कृति से पृथक करके पहचानना कठिन है। क्या इससे यह बात प्रकट नही होती कि देश की वर्तमान कला का न तो परम्परा से और न ही राष्ट्रीय चरित्र से कोई सम्बन्ध है ?

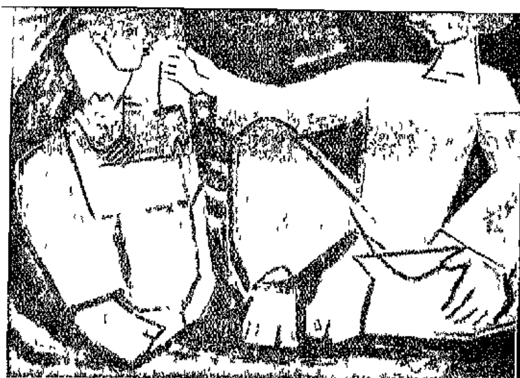
उत्तर——(कुलकर्णी)

आधुनिक कला प्रयोगवादी और व्यक्तिपरक है। यह कहना सही नही है कि इसका परम्परा से कोई सम्बन्ध नही है और यह कि इसका कोई राष्ट्रीय चरित्र नही है। कलाकार का व्यक्तित्व उसकी कला मे प्रकट होता है और व्यक्तित्व का परम्परा, परस्थितियो, अनुभवो और आदर्शो से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि किसी भी व्यक्ति के लिए इन सब चीजो से अपने आप को पूर्ण रूप से अलग कर सकना कठिन है। पूर्वीय दृष्टि से व्यक्तिवाद पश्चिमी व्यक्तिवाद से भिन्न है। भारतीय मान्यता के अनुसार व्यक्तिवाद तटस्थता या अलगाव नही है, बल्कि यह जीवन और समाज के अनुभव की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है अर्थात उच्चतम सास्कृतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियो की मूर्त अभिव्यक्ति है। प्राचीन भारत में कलाकार अपनी वैयक्तिक स्थिति या कीर्ति की परवाह नही करते थे, किन्तु वे अपनी रचनात्मक भावनाओ और आकाक्षाओ को स्वतन्त्र रूप मे अभिव्यक्त करते थे तथा उनका उद्देश्य केवल स्वान्त सुखाय कला की आराधना करना था। आधुनिक भारतीय कलाकार भी ऐसा ही करने का प्रयत्न कर रहे है, किन्तु उन्हें अनेक सीमाओ के अधीन काय करना पडता है। सब प्रकार की महान कला स्वत प्रस्फुटित हुई है और उसकी प्रेरणा अन्दर से प्राप्त होती है। केवल ऐसी ही कला अक्षुण्ण रहेगी जिसमे कुछ स्थायित्व होगा।

प्रश्न——बार-बार यह कहा जाता है कि आजकल के कलाकार शैलियो और प्रणालियो के चक्कर में अधिक पडे हुए है और प्रतिपाद्य विषयो या उद्देश्यो की ओर उनका ध्यान कम है। क्या आप मानते हैं कि यह प्रवृत्ति वाछनीय है ?

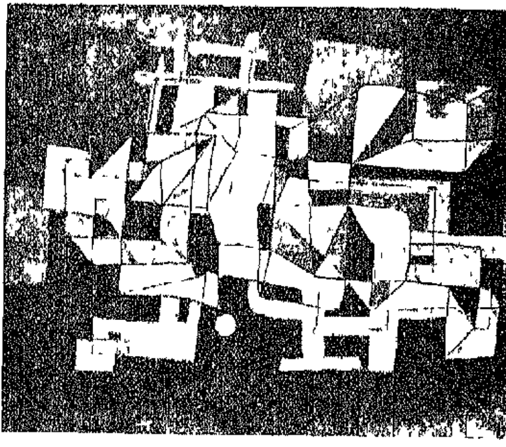
उत्तर——(कवल कृष्ण)

दूसरे शब्दो में इसका अर्थ केवल यह है कि कलाकार अभिव्यक्ति के नये तरीके खोजने का प्रयत्न कर रहा है। जिस प्रकार कोई लेखक अपनी शब्दावली को उन्नत कर लाभान्वित होता है, ठीक उसी प्रकार एक कलाकार भी नई प्रणालियो और शैलियो की खोज करके अपनी अभिव्यक्ति की शक्ति को उन्नत करता है। इसमें हानि ही क्या है !

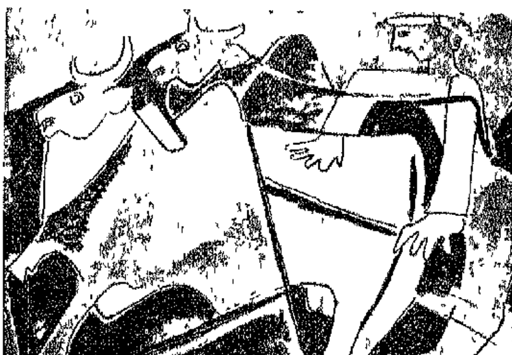


"इन्कार" के० एस० कुलकर्णी

"रचना" कवल कृष्ण



"हल चलाते हुए" के० एस० कुलक





"कथावाचक" (तैल) के० एस० कुलकर्णी

प्रश्न—चूंकि अब कलात्मक मानदण्डों के सम्बन्ध में पुराने सिद्धान्तों और नियमों को छोड़ा जा रहा है, तो फिर अब वह कौन सा आधार है जिस पर कलात्मक कौशल का मूल्यांकन किया जा सकता है ?

उत्तर—(कंवल कृष्ण)

किसी कलाकृति को आकर्षक बनाने के लिए उसमें अनेक गुण होते हैं। आकल्पन, रूपविधान और रचना, इनसे कोई भी चित्र अत्यन्त मौलिक और आनन्ददायक बन सकता है। आवाहन शक्ति, अभिव्यंजना-शक्ति तथा मानवीयता और आध्यात्मिक अपील, ये गुण किसी भी कला-कृति को आकर्षण और स्थायित्व प्रदान करते हैं। कलात्मक मानदण्डों को निर्धारित करने के लिए कोई कड़े नियम नहीं होने चाहिए। आधुनिक चित्र-कला को ऐन्द्रिक माध्यम द्वारा ग्रहण किए बिना हम लोग विशुद्ध कला के रूप में उसकी सराहना करते हैं।

प्रश्न—भारतीय कला की वर्तमान प्रवृत्तियों के प्रति देश में जो सामान्य उदासीनता है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—(कुलकर्णी)

यह कोई नई बात नहीं है, कला में होने वाले परिवर्तनों को जनता फौरन ही नहीं समझ पाती। महान से महान कला सदा ही सभी लोगों को आकर्षित करती रही हो, ऐसी बात नहीं है। हमारे देश में भी हाल में ही कला सम्बन्धी नए आन्दोलनों के प्रति जनता की उदासीनता के उदाहरण मौजूद हैं। अभी हाल तक अमृता शेरगिल को कलाकार के रूप में स्वीकार नहीं किया गया था। मुझे वे दिन याद हैं कि जब उनके चित्र, जो आज सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं, वे प्रदर्शन के लिए स्वीकार भी नहीं किए जाते थे।

प्रश्न—अमृता शेरगिल के बाद देश की कला के इतिहास में कोई भी कलाकार इतना महत्वपूर्ण नहीं माना गया है। क्या वर्तमान प्रवृत्तियों से यह प्रकट होता है कि भारतीय कला फिर से अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर सकेगी ?

उत्तर—(कुलकर्णी)

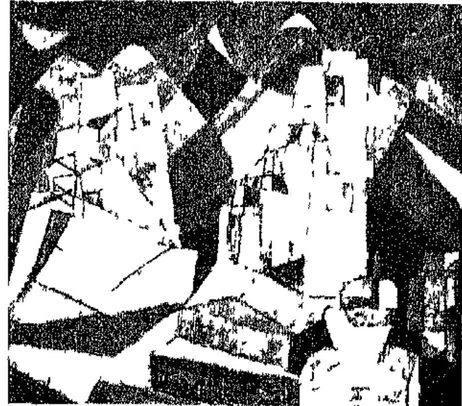
कलाकारों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे अपनी कलाकृतियों के बारे में कोई निर्णय दे सकें और भविष्य के इतिहास में उनका क्या स्थान होगा, यह बता सकें। आने वाली सन्ततियां जो कुछ चाहेंगी उसे पसन्द करेंगी और जिसे वह सुरक्षित न रखना चाहेंगी उसे रद्द कर देंगी। कलाकारों को मान्यता-प्राप्ति अथवा प्रसिद्धि के लिए कार्य नहीं करना चाहिए, किन्तु उन्हें तो रचनात्मक कार्य से विशुद्ध आनन्दानुभूति की प्राप्ति के लिए ही मुख्य तौर पर कार्य करना चाहिए। कलाकार का क्षेत्र इतना विशाल और असीम है कि वह कभी भी हाथ पर हाथ रख कर या आराम से नहीं बैठ सकता।

प्रश्न—कला के प्रोत्साहन और जनता में कला के प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिए और क्या कुछ कार्यवाही की जानी चाहिए ?

उत्तर—(भागों)

शिक्षा के सभी स्तरों पर कला को एक महत्वपूर्ण स्थान देकर सम्भवतः आने वाली सन्ततियां कला के प्रति अधिक अभिरुचि रख सकेंगी और इस प्रकार ऐसी स्थिति पैदा कर सकेंगी जो रचनात्मक कार्यकलाप के लिए और अधिक अनुकूल सिद्ध होगी। कलाकारों को यह चाहिए कि वे जनता के जीवन से और अधिक निकट सम्पर्क स्थापित करें, खासतौर पर गांव के लोगों के जीवन से, और वे भारत की भूमि से प्रेरणा प्राप्त करें। साथ ही संसार में जो नये-नये परिवर्तन हो रहे हैं उनके प्रति भी उन्हें जागरूक रहना चाहिए।

"एक तिब्बती मठ" कंवल कृष्ण



साहित्यिक-सकुटुम्बिता और नए मनुष्य की कल्पना

राजनाथ पाण्डेय

'नयी कविता' (चार), १९५९, में डाक्टर जगदीश गुप्त के लेख, 'नयी कविता नये मनुष्य की प्रतिष्ठा' के निम्न वाक्य को पढ़कर कौन ऐसा सचेतन व्यक्ति होगा जिसका हृदय आन्दोलित न हो उठे ?

"समस्या का समाधान इसी में है कि नए भाव-स्तर पर मनुष्य की मनुष्य के प्रति सहज आस्था जागरित हो। इतनी विशाल, इतनी प्रगाढ़ आस्था जिसे अन्तरिक्ष में स्थित ग्रहो-उपग्रहो की विजय का दर्प, या इस पृथ्वी के विधाता की भौतिक यान्त्रिक सामर्थ्य भी तोड़ न सके। आस्था के इस नव-जागरण में प्रत्येक देश के नए चिन्तक साहित्यकार या कलाकार का अपना योग होगा यह असंदिग्ध है, क्योकि वह बहुत अशो में मानव मनोजगत का सूक्ष्म पर्यवेक्षक, सग्राहक, घटक या निर्माता रहा है।"

पर नए मनुष्य के विकास के लिए जगदीश जी को सुझाई हुई यह मनुष्य के प्रति मनुष्य की आस्था जागरित कैसे हो ? यह प्रश्न उठता है। डाक्टर जगदीश आगे बढ़कर कहते है कि "नए मनुष्य की कल्पना को मूर्त्त करना किसी एक व्यक्ति के बस की बात नही है। उसके लिए पूरा युग का युग निरन्तर सलग्न रहे तो वह प्रत्यक्ष की जा सकती है। हो सकता है कि उसको अवतरित करने में एक युग न लग कर अनेक युग लग जाए।" हमारी समझ में उनका यह ख़याल एक तरह से गलत है और एक तरह से सही भी। अगर कोई यह सोचे कि सब के सब लोग युग भर किसी काम में बराबर सलग्न रह सकेंगे, और इस प्रकार वह काम हो चुकेगा तो यह निश्चित मानिए कि वह भला आदमी देख सके तो देखता ही रहेगा कि एक या अनेक ही नही सैकडो युग निकल जाएगे और होकर कुछ भी नही रहेगा। पर यदि मै स्वय सलग्न हो जाऊ, और औरो को सलग्न कराने का प्रयास करने के बदले आप भी अपनी जगह सलग्न हो जाए तो एक युग (२० वर्षों का समय) क्या, आधे ही युग में बहुत कुछ हो सकता है। हमने आधा युग समझ-बूझ कर कहा है, कारण, इब्सन नार्वेजनीन जैसे सुधीजन के मतानुसार किसी भी जीवन्त समाज में प्रत्येक दस वर्ष बाद नए सत्यो का उद्घाटन होता है, क्योकि इतने ही दिनो में पुराने सत्य जरा-शिथिल हो खोखले अथच असत्य के बहुत निकटवर्ती बन जाते है। पिछले तीन-चार वर्षों में ही नई कविता और नई कहानी नवजीवन और नव-यौवन का जितना निखार लेकर उभर आई है वह इस बात की निश्चित सूचना दे रही है कि आगे आने वाले दस वर्ष विगत अर्धशताब्दी (१९०१ से १९५० तक) का सारा ख़मियाज़ा पूरा कर देंगे।

आप पूछेंगे और आपका पूछना सर्वथा उचित होगा कि आखिर यह सलग्नता किसके साथ या किसमें की जाए ? हमारा विश्वास है कि यदि हमारे साहित्यिक बन्धुओ की एक दूसरे के साथ व्यापक और प्रगाढ़ साहित्यिक सकुटुम्बिता प्रतिष्ठित हो सके, यानी हम सब एक दूसरे के सम्पर्क में अधिक से अधिक आना और रहना सीख सकें तो भाई जगदीश गुप्त के शब्दो में "प्रत्येक सचेतन व्यक्ति के भीतर जो नया मनुष्य अपना रूप ग्रहण करने लगा है" वह शीघ्र उभर आए।

आज की तरुणाई को अपने नए प्राण और नई चेतना का, प्रत्येक नए युग की तरुणाई के ही समान, अभिमान है। कौन नही मानेगा कि उसका यह अभिमान सर्वथा उचित है ? इस अभिमान के कारण ही उसके हृदय की चिनगारी को दबा रखने वाली असत्य, अमृत, कृत्रिम, और निर्जीव राख के अबार के साथ उसे बेहद घृणा और कुढन है। इस राख के अबार को खोद फेंकने के प्रयास में जिन क्षणो में उसे कुछ कुछ सफलता मिलती दिखाई देती है उन क्षणो के उसके नव-यौवन के दिव्य सगीत दिशाओ को उल्लसित कर देते है। किन्तु जब कभी असफलता के क्षणो में उसके अभिनिवेश को जरा ठेस लगती है, वह जब पिनपिना उठता है, और कभी-कभी तो सुई की नोक लग गए फुक्के की तरह सू-सू करता हुआ एकदम सपाटे के साथ सकुचा भी जाता है। अभी हाल ही में हमने एक बन्धु को उनकी एक रचना के सिलसिले में पत्र लिखा। ज़रा सी लगने वाली एक वाजिब बात हमने कह दी थी। वे पिनपिना उठे और हमें जवाब में एक ऐसी गाली दे गए जिसे शायद वे अब अपनी ज़िन्दगी भर याद रखेंगे। क्योकि हमने उसे प्यार में पी लिया और उन्हें लिखा कि भई ! इतना नाराज कैसे हो गए हो ? बात तो कुछ नही है, फिर भी यदि सचमुच रुष्ट हो तो माफ कर देना ! इसका कोई जवाब नही आया। जान पड़ता है वे शरमा गए है। हो सकता है अभी उनका गुस्सा उतरा ही न हो। तब तो उनसे हमारा यही कहना होगा कि —

> गुस्सा आना तो नेचुरल है 'अकबर',
> लेकिन है शदीद ऐब कीना रखना।

नए मनुष्य या स्वस्थ जवान की उठान में यह पिनपिनाहट और शरमाहट दोनो ही रुकावट डालनेवाली है। इसे मिटाने का एक मात्र उपाय है—पत्र-मार्ग पर हमारा आपका अधिक से अधिक हार्दिक मिलन। साथ ही पिनपिनाने वालो के साथ अधिकाधिक नोक-झोंक और चुहलबाजी।

नए मनुष्य की उठान के लिए अनिवार्य जिस साहित्यिक-सकुटुम्बिता की हम बार-बार चर्चा करते रहते है उसके उद्घाटन के लिए यह जरूरी है कि हम बराबर अपनी ही कहते रहना कुछ कम करके, कुछ दूसरो की भी सुनने की सहनशीलता अपने में पैदा करें। दूसरे शब्दो में, दिन-रात लिखने और छापने ही में व्यस्त न रहकर हम अपने साहित्यिक बन्धुओ की अधिक से अधिक रचनाए पढें, और जिन-जिन की कृतिया हमें नए प्राण और नई प्रेरणाए देने वाली प्रतीत हो उनकी

मुक्त कंठ से प्रशंसा करे, और अपनी कृतज्ञता के स्वर, लेखक और पाठक के बीच संपादकों की खड़ी की हुई दीवाल को तोड़कर, जहां तक संभव हो उन लेखकों तक पहुंचाए। साथ ही जहां हमारा उनसे मतभेद हो हम उसकी भी चर्चा उनसे निष्कपट भाव से जरूर करें। नए मनुष्य के निर्माण में यदि साहित्य का योग आवश्यक है, सच तो यह है कि साहित्य के योग बिना यह संभव ही नहीं है, तो यह सब होना चाहिए। निश्चय है कि इस प्रकार यदि हम परस्पर अधिक से अधिक संपर्क में आ सकें तो थोड़े ही दिनों में समाज में नए मानव और नए जीवन की प्रतिष्ठा करने वाली साहित्यिक-सकुटुम्बिता स्थापित हो सकती है। पर दुख की बात है कि इस स्नेहमयी सकुटुम्बिता के मार्ग में कई अड़चनें उपस्थित हैं। नए मानव यानी हमारी आने वाली नई पीढ़ी को इन अड़चनों से मुक्त होकर आगे बढ़ना है, अतः क्रमिक विस्तार में इसकी चर्चा जरूरी है।

किसी और की सुनने की शिष्टता और सहनशीलता को आज एक दम खोकर, और हमारी कोई सुनता भी है या नहीं, इसको ध्यान में रखने का स्वाभिमान तजकर, हर जगह और हर समय स्वयं वक्ता बने रहने का रोग हम में से प्रत्येक को लग गया है। और सच तो यह है कि यह रोग दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। कमरा (या हाल) चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, यदि उसमें बैठे हुए लोगों में से अधिकांश (या बहुसंख्यक) एक साथ ही बोलने लगें तो सुनने की इच्छा से वहां पहुंचे हुए शेष लोग उठकर बाहर चले जाएंगे, या उनमें से कुछ तो अवश्य ही चले जाएंगे, और कुछ, खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है वाली कहावत चरितार्थ करेंगे और स्वयं भी बोलने लगेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि तब उस बड़े हाल में कोई श्रोता नहीं रहेगा। सभी वक्ता और सभी अपने अकेले के श्रोता। आप अपनी कहो और आप ही अपनी सुनो। सच मानिए, आज हमारा हिन्दी साहित्य कुछ कुछ इसी ढंग का एक 'हाल कमरा' बन गया है।

आप पूछेंगे, कि, महाशय! और सब किसी की नाड़ी को तो आप पकड़ रहे हैं, पर आप की खुद की नब्ज क्या कहती है। तो जवाब है कि श्रीमान्! (नम्बर) १. सागर-तट पर पूरे बारह वर्ष तक सोते रहने के अभिशाप में अभिशप्त आपका यह अभिनव 'रिप वान विन्कल' उस अभिशाप से कि, शाप मुक्त हो जाग्रत हो जाने पर भी यह मूतक ही बना रहे, उस विगत सुषुप्तावस्था में इसकी बेबसी का नाजायज फायदा उठाकर इसे जिन ओछी अपमानजनक परिस्थितियों की जंजीरों में बांध दिया था अभी यह उनमें बंधा हुआ निर्ग्रन्थ हो जाने के लिए छटपटा रहा है, कि हजार-हजार बदतमीजियों, हकतलफियों और खाना-खराबियों की चोटों को अपने मन और कलम की नोक पर झेलते हुए आज यह एकदम 'बेपनाह' है, और यह कि फिर भी पांच वर्ष पूर्व इसने ग्वालियर में एक साहित्यिक बन्धु के सामने आजीवन कुछ भी न लिख कर सदा श्रोता बना रहने का जो वचन दिया था उस पर आज भी अटल है।

पांच वर्ष से कुछ अधिक हुए, हम जब ग्वालियर में एक साहित्यिक बन्धु के यहां बैठे थे, यह पूछे जाने पर कि उन दिनों हम क्या लिख रहे थे, हमने जुबेर का अत्यन्त प्रसिद्ध जुमला, "सेजेज ओनली से, इट इज मिडियोकर्स हू कम्पोज" —अर्थात् "सन्त लोग तो केवल भाखते हैं, लिखते हैं घामड़ लोग!" दुहरा दिया था। बात इसी प्रसंग में छिड़ गई थी और हम दोनों ही सहमत थे कि आज हिन्दी-साहित्य में वक्ताओं की बाढ़ और श्रोताओं का एकदम अभाव है। हमने उस समय अपने मित्र से प्रस्ताव किया था कि यदि किसी ऐसे साहित्यिक नव-समाज की स्थापना की जाए, जिसकी सदस्यता के लिए एक ही अनिवार्य नियम सदस्य का आजीवन मूक श्रोता बना रहना हो, तो ऐसे समाज की सदस्यता की सूची में हमारा नाम सबसे ऊपर अंकित किया जाए।

वाचालता के इस राज-रोग से नए मानव को एकदम बचा रखने के लिए इस सम्बन्ध में कुछ विस्तृत विवेचन आवश्यक समझकर ही यहां इसकी इतनी चर्चा की गई है। इस समय हमारे साहित्य के प्रांगण में स्नेह और सुरुचि की हर सरसब्जी को हर तरह से झुलसा डालने की दुर्दमनीय प्रवृत्ति रखने वाला 'पापड़ वालों' का जो एक बड़ा भारी नष्ट-कुनबा तीव्र गति से पनप रहा है, उससे परिचित हो उसके प्रतिकार के लिए हर तरह से तैयार होना भी प्रत्येक सचेतन प्राणी का परम कर्तव्य है। किसी भले आदमी के घर दावत में बढ़िया से बढ़िया सामग्री पाकर भी अगर सिर्फ पापड़ नहीं था, तो उसी बात को याद रख "पापड़ क्यों नहीं दिया था" यह कह-कह कर दावत को खफीफ कर डालनेवालों को हमने "पापड़ वाला" सरनेम दे डालना ठीक समझा है। पापड़वालों की इस भव्य बिरादरी के मूल पुरुष की कहानी• इतनी मनोरंजक है कि उसे पूरी की पूरी यहां सुना देने का मोह हम से संवरण नहीं हो रहा है।

कहते हैं कि एक बार उत्तर प्रदेश के एक बड़े नगर के किसी रईस को कारावास का दंड मिला। जेल अधिकारियों ने उन्हें यह सहूलियत दी कि दिन-रात में एक बार उनके लिए घर से खाना आ जाया करे। उसी वार्ड में सेठजी के मुहल्ले का एक और आदमी भी कैदी था, जिसने उन्हें पहले ही दिन पहचान लिया था, और बड़े अदब से उन्हें जैरामजी कहा था। सेठजी के घर से काफी भोजन आता था। एकाहारी होने पर भी वे सबका सब नहीं खा सकते थे, अतः पूरी, हलवा और अन्य बहुत सी चीजें वे रोज उस कैदी को दे डालते थे। वह भी उनके कई छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। सेठजी को पापड़ बहुत रुचते थे, इसी से घरवाले थाली में रोज दो पापड़ रख देते थे, जिनमें से एक तो सेठजी पाते और दूसरा उस कैदी को वे देते थे। कई महीने तक यही सिलसिला चला। फिर थोड़ा व्यवधान पड़ा। एक बार सेठजी के घर किन्हीं कारणों से पापड़ नहीं बनाए जा सके थे, इससे दो-तीन दिनों तक पापड़ों का नागा रहा। फिर पापड़ों का आगमन आरम्भ होने पर पहले दिन जो दो पापड़ आए तो उस दिन सेठजी ने ही दोनों खा डाले, और उस कैदी के हिस्से के एक पापड़ के बदले अपने हिस्से वाले दो समेत चार के चारों मालपुवे उसे ही दे डाले। समय पूरा होने पर पहले वह कैदी रिहा हुआ। उसके एक महीना बाद सेठजी मुक्त हुए। सेठजी जेल से रवाना होते समय सोच रहे थे कि उस कैदी को, जो पहले छूटकर गया था, उनके आने की तारीख का पता होगा और इनके घर पहुंचते ही वह मिलने आएगा। पर हफ्तों बीत गए और वह भेंट करने न आया। एक दिन सेठजी जोड़ी पर सवार हवाखोरी के लिए जा रहे थे तो चौक-बाजार में वह उन्हें दिखाई दे गया। सेठजी ने गाड़ी रुकवा दी और उसका नाम लेकर पुकारा। एक क्षण ठहरकर उसने सेठजी को वहीं से खड़ा हो देखा, फिर मुंह फेरकर यह कहता हुआ चला गया—"बेईमान कहीं का! आज बुला रहा है। उस दिन पापड़ क्यों नहीं दिया था?"

मानव जीवन और मानव समाज में यह 'पापड वाले' जितना कलुष उत्पन्न कर सकते हैं उससे कही अधिक साहित्य में। आज हमारे यहा यह 'पापडी वृत्ति' आधुनिक आलोचना क्षेत्र में अधिक दृष्टव्य है। ऐसे तो अभावो के दर्शन और कभी-कभी विध्य-दशन की असाधारण दृष्टि-प्रखरता आलोचक का नैसर्गिक गुण होता है, फिर भी जिन आलोचको की दृष्टि प्रत्यक्ष के गुणो और अप्रत्यक्ष के अभावो का सम्यक प्रतिभा से निदर्शन करती है वे ही उत्तम आलोचक माने जाते हैं। जिनकी दृष्टि गुणो की परख में कम और अभावो की पहिचान में अधिक तीव्र होती है वे मध्यम कोटि के आलोचक होते है। और केवल अभावो का बेनजीर लेखा-जोखा तैयार कर सकने की विलक्षण क्षमता रखने वाले ये ही 'पापड वाले' अधम आलोचक होते है।

'पापडी वृत्ति' वालो से काफी मिलते-जुलते एक और कोटि के आलोचक होते हैं जिन्हें हम 'धामडी' नाम दे सकते हैं। उर्दू के एक कवि का कहना है कि —

लाग हो या लगाव हो, कुछ भी नही तो कुछ नही।
जनके फरिश्ता आदमी, बज्मे-जहा में आए क्यो ?

यानी जो बात या आदमी सही और नेक नही है, उससे हमें लाग-डाट होनी ही चाहिए, और जो सही और नेक है उनसे लगाव लाजमी है। दूसरे महाकवि के शब्दो में आपको या तो 'हीयो' में होना चाहिए या 'शीयो' में।[1] अगर आप इन दोनो में से कुछ भी नही है तो कुछ है नही। आप फरिश्ता (देव-दूत) हैं ? तब हजरत ! स्वर्गस्थ हूजिए। यहा आ कैसे गए ?

अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका 'सनातन सत्य-सिद्धान्त' के अन्तर्गत महर्षि दयानन्द कहते हैं कि "मनुष्य उसी को कहना जो अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओ की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यो न हो, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात जहा तक हो सके अन्यायकारियो के बल की हानि और न्यायकारियो के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें किन्तु इस मनुष्य-पन रूप धर्म से पृथक कभी न होवे।"

अपने ढग से देहातियो ने भी यही बात बडे मजे से कही है। हमारे गाव की ठेठ बोली मे कहावत है कि —

खियावै तो भर पेट, औ' मारै तो भर पेट !

अर्थात यदि आप किसी पर प्रसन्न हैं तो अपनी प्रसन्नता की अभि-व्यक्ति के लिए उसे सम्पूर्ण तुष्टि प्रदान करें, और अगर अप्रसन्न है तो उसकी पूरी भर्त्सना करें। फ्रासीसी वाधेलार्ग का कहना था कि "दबी जबान से सराहना करना परले सिरे का घामडपना है।" नए मनुष्य को इस 'पापडी' और 'घामडी' वृत्ति वाले तथाकथित श्रेष्ठ आलोचको से समाज और साहित्य को मुक्त करना ही होगा, इसलिए साहित्यिक-सकुटुम्बिता की स्थापना के लिए हमारे साहित्य में आज वाधेला-जियन-सम्प्रदाय की स्थापना की बडी भारी आवश्यकता है। इसकी नि शुल्क सदस्यता के लिए केवल एक ही अनिवार्य नियम यह है कि "जो चीज अच्छी लगे उसको मुक्त कठ से सराहना, और जो बुरी हो उसे शिष्टाचार की रक्षा करते हुए निस्सकोच बुरी कह देना।"

सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी है। सदस्यता के इच्छुक बन्धुगण परस्पर पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दें।

---

[1] "मुजक्कर 'ही' को कहते है, मुअन्नस 'शी' को कहते है।
मगर साहब मुखन्नस है, न 'हीयो' मे न 'शीयो' मे"।
—अकबर

क्षण भर का जीवन

आग्नेय

हमको
निर्वासनो का शाप देने वालो !
हम, कब तक
निर्वासित तपस्याओ का अभिशाप झेलें ?

हमको
निर्जनताओ का दुख देने वालो !
हम, कब तक
पतझरी निर्जनताओ का दारिद्र्य ढाके ?
हमको
अधियारे किलो में बन्द रखने वालो !
हम, कब तक
आसती अमावस्याओ की उदासिया
स्वप्निल हसी से चुगाए।

हमारे सौरभ-वनो में आग लगाने वालो !
हम, कब तक
मुरझाए जगलो से भागती चिडियो के,
जलते पखो को
कीच भरी आखो से देखें ?
हम, कब तक
खाली घोसलो की एकाकी कलौस को,
नोच-नोच बिखराए ?

हम, कब तक
यह स्तूपी-जीवन बितायें।
हमारे समर्पण के काठिन्य-देवता
अब तुम,
मोम हो जाओ !

हमारी जलहीन छातियो में,
झीलो की आखवाली तरलतायें भर दो
हमारी रेत भरी देहो में
फूलो की वल्लरिया उगाओ।
हमारे काठीले रध्र-रध्र में
सुवासित मलयानिल बहाओ।
हम दु ख की दुपहरिया।
ढोते-ढोते ढल गए है।
अब हमको
कदम्बों की छाव में
बिताने, क्षणभर का जीवन दो !

राजा का जन्म-दिन

रमेशचन्द्र सेन

सर्वप्रथम बारह राजबन्दी थे। उनमें से प्रत्येक ही सम्भ्रान्तवंशीय युवक था। प्रतिवर्ष राजा के जन्म-दिन के अवसर पर एक-एक राजबन्दी को मुक्ति मिलती गई--बाकी रह गए थे केवल तीन राजबन्दी। रक्षकों के साथ बातें करने का हुक्म नहीं था। प्रकाण्ड दुर्ग में उन तीन बन्दियों के साथी थे--वृक्ष के पक्षी, आकाश के तारे, चन्द्र-सूर्य का प्रकाश।

पहले राजबन्दी पृथक-पृथक कोठरियों में रखे जाते थे। किन्तु अब केवल तीन ही बचे थे इसलिए, तथा कारागार आदि के नियम को यथारीति पालन करने के फलस्वरूप उन तीनों राजबन्दियों को एक ही कोठरी में बन्द रहने का आदेश अधिकारी ने दे रखा था।

गप-शप, ताश, शतरंज, खेल कूद में ये तीनों किसी प्रकार दिन काट रहे थे। कभी कहानी सुनाते या सुनते, कभी साहित्य या राजनीति की आलोचना करते। उनमें से राजशेखर कभी-कभी गाना गाता, कभी कभी संस्कृत स्तोत्र पाठ और कभी-कभी मित्रों को वह सुनाता चम्पू काव्य।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक दिन शाम के समय कारागाध्यक्ष ने खबर सुनाई--अगले दिन प्रातःकाल राजशेखर मुक्त होगा।

जयन्त और जीमूतवाहन समस्वर से बोले--"राजशेखर की जय!"

उनके आनन्द की सीमा न रही जय ध्वनि कर। उच्च कण्ठ से गाना गाकर उन तीनों ने कमरे को सरगर्म कर रखा था। जयन्त ने कहा--"मुक्ति तो पाओगे! किन्तु याद रखना, चम्पा की खबर सुनानी होगी!"

चम्पा उनके प्रदेश का नाम है। वह सुनना चाहता था, वहां का राजनैतिक समाचार।

राजशेखर ने जवाब दिया था--"अवश्य!"

मुक्ति प्राप्त और दो चार मित्र भी इस प्रकार के अनुरोध के उत्तर में वचन दे गए थे कि चम्पा का समाचार भेजेंगे किन्तु किसी ने अभी तक कोई समाचार भेजा नहीं!

राजशेखर ने जीमूतवाहन से पूछा--"कुछ संवाद देना है?"

जीमूतवाहन ने कहा--"नहीं!"

प्रभात होने के साथ ही साथ रक्षक के दरवाजा खोलते ही तीनों मित्र आंगन में पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। प्रथम जयन्त, मध्य में शेखर और अन्त में जीमूतवाहन। राजशेखर के गले में एक फूल की माला डाली गई।

वह गाने लगा--"नमस्ते सते ते जगत कारणाय!"

दुर्ग के फाटक पर पहुंचने पर राजशेखर को बाकी दोनों मित्रों ने उसका आलिंगन किया। तीनों निर्वाक थे। तीनों की आंखों में अश्रु थे।

बाष्पाकुल कण्ठ में राजशेखर ने कहा--"विदा भाइयो!"

विदाई के क्षण का अभिनय सम्भवतः और दीर्घ होता किन्तु, प्रहरी बोल पड़े--"समय थोड़ा है!"

राजशेखर और उनके मित्रों के बीच प्रहरियों द्वारा लोह कपाट की यवनिका खींच देने पर जीमूतवाहन और जयन्त ने एक दूसरे की ओर देखा। उनकी दृष्टि में गंभीर हताशा और एक दूसरे के प्रति एकान्त निर्भरता थी। उस दिन उन दोनों में कोई बात हो न पाई थी! आज तक वे तीन थे--अब उन दोनों का जीवन और भी संकीर्ण हो गया है।

दोनों व्यक्ति एक दूसरे की छाया की भांति रहते। उनमें कुछ भी गोपनीय नहीं था। सभी कार्यों में खुला भाव था। प्रातः नींद टूटते यह दोनों मैदान में दौड़ते, दोपहर को तालाब में तैरते, भोजन के पश्चात ताश खेलते, नहीं तो सो जाते। इन्हें इन सब बातों की स्वाधीनता दे दी गई थी।

कुछ दिनों में जीमूतवाहन बीमार पड़ गए! ज्वर, कै, सिर में दर्द! उपसर्ग बढ़ते ही गए। राजधानी से विचक्षण वैद्य का आगमन हुआ, नाड़ी-परीक्षा कर औषधि की व्यवस्था भी हुई। किन्तु उन्हें स्वयं विश्वास था कि व्याधि गुरुतर है। जीवन की आशा बहुत कम है।

जयन्त जननी की भांति सेवा में लगे रहे। विश्राम नहीं, क्लान्ति नहीं। निज हाथों से वह मल-मूत्र साफ करता। रोगी के बिस्तरे के पास से वह उठता ही न था। वह रात को सो भी नहीं पाता था। कभी-कभी खाना भी भूल जाता। उसकी यह निरालस सेवा देख कर कारा-रक्षक भी मुग्ध हो गए। आपस में कहते--यह अपूर्व दृश्य है।

वैद्यजी ने उससे कहा--"इस प्रकार चलने से तुम भी बीमार पड़ोगे।"

किन्तु जयन्त न सुनता। सेवा का नशा उस पर सवार था। उसे केवल चिन्ता थी कि कैसे जीमूतवाहन को थोड़ा आराम पहुंचे।

मित्र की सेवा से दो महीने बाद जीमूतवाहन नीरोग हो उठे। बोले--"पूर्व-जन्म में तुम मेरे भाई रहे होगे!"

जयन्त ने हंसकर कहा--"इस जन्म में भी क्या कमी है!" इस सौहार्द्र और आनन्द में उनके दिन कटते रहे। जीमूतवाहन कहता--यह बन्धुता हमारे कारा क्लेश का श्रेष्ठ पुरस्कार है।

कभी-कभी मुक्ति की बातें होतीं। प्रसंग उठते ही वह एक दूसरे की मुक्ति की कामना करते।

समय काटने के उपादानों में उन दोनों ने चुनी थी--अपनी-अपनी भाग्य-परीक्षा यानी यह अनुमान लगाने का प्रयत्न कि राजा के सालगिरह के दिन किसे मुक्ति मिलेगी!

वे परीक्षा करते ताम्र या रौप्य मुद्रा को घुमाकर गोटी फेंक कर--और किसी अन्य वस्तु की सहायता से। भाग्य-लक्ष्मी कभी प्रसन्न होती जीमूतवाहन के प्रति और कभी जयन्त के प्रति। जो जीतता, वही दूसरे से कहता--"नहीं भाई, इस बार तुम मुक्त हो जाओ!"

मुक्ति का दिन पास आ गया। केवल दो महीने बाकी रह गए थे। एक दिन जयन्त शौचागार से आ रहा था कि उसने सुना--एक प्रहरी दूसरे से कह रहा है--"इस बार भी एक ही बन्दी छूटेगा तो दूसरा रहेगा कैसे?"

"क्यों?"

"अकेला रहना बहुत कष्टदायक होता है। यहां १५ साल पहले अकेले कारावास में एक कैदी ने आत्म-हत्या की थी। उस कोठरी में।"

जयन्त चला आया। किन्तु यह बातें उसके हृदय पर पत्थर के दाग सी अंकित हो गई। उसने बहुत चेष्टा की, उस दुश्चिन्ता को भूलने की।

किन्तु जब वह अकेला होता, उसे उसी प्रहरी की बातें याद आती। इस ढंग से उसने पहले कभी सोचा ही नहीं था।

जयन्त को याद आई, उसके गांव के एक भूस्वामी की बात। निर्जन कारावास से उसका दिमाग इस प्रकार बिगड़ गया था कि वह अपनी संतान को भी पहचान नहीं पाया था।

जयन्त को भय होने लगा—उसकी भी तो यही दशा हो सकती है। कभी-कभी अकले में बैठा न जाने क्या सोचता रहता। जीमूतवाहन उसे चिन्तित देखता तो पूछता—"क्या हो गया है तुम्हें ?"

जयन्त सब खुल कर कह देता।

जीमूतवाहन ने कहा—"अच्छा दोनों में से किसी को भी यदि मुक्ति न मिली तो ?"

जयन्त ने परम उत्साह के साथ उत्तर दिया—"तब तो बहुत अच्छी बात होगी। एक साथ रहने को मिल जाएगा।"

किन्तु भीति उसकी जाती नहीं। वह सोचता—यह क्या सम्भव हो सकता है ? दोनों की एक साथ मुक्ति और या दोनों का एक साथ कारावास असम्भव है। उसका यह हताश भाव धीरे-धीरे जीमूतवाहन में भी संक्रमित हो गया। वह भी सोचने लगा— सही बात है। यह पहलू एकदम उपेक्षा योग्य नहीं है।

एक दिन प्रातःकाल आकाश-मार्ग से एक बाज उड़ता जा रहा था। जयन्त ने कहा—"वह यदि दक्षिण की ओर गया तो मैं मुक्ति पाऊंगा और उत्तर की ओर तो तुम।"

वह बाज दक्षिण दिशा की ओर जाते-जाते बाईं ओर घूम गया। साथ ही साथ जयन्त का मुख म्लान हो उठा। वह बाज जो अनन्त नीलाकाश में एक शिशिर कण की भांति है — वह भी मुक्त है, वह भी विचरण करता है स्वाधीन रूप से।

उस पक्षी की तुलना में उसका जीवन ? किन्तु यहां तो उसका अन्त नहीं। गंभीरतर दुःख को लेकर उसका भविष्य उसे ग्रसित करने को प्रस्तुत है।

जीमूतवाहन भी सोचता रहा मुक्ति की बात। भगवान को स्मरण कर मन की ग्लानि को बादलों की भांति उड़ा देने के लिए वह श्लोक पढ़ने लगा—

किन्तु किसी के मन से वह काले बादल का टुकड़ा दूर नहीं हुआ। क्रमशः दोनों के बीच एक व्यवधान की सृष्टि हो गई।

उस दिन से दोनों ने भाग्य-परीक्षा करना छोड़ दिया। मुक्ति की बात तक उच्चारण न करते। वह अकपट मित्रता, वह जी खोल कर एक का दूसरे से मिलना तक क्रमशः बन्द हो गया।

रहा गया था केवल भद्रता का बहिरावरणमात्र।

एक दिन दोपहर के समय वे शतरंज खेल रहे थे। खेल जम गया था। एक ही बाजी दो घंटे तक चलती रही। जयन्त के एक चाल फिर से मांगने पर जीमूतवाहन ने कहा—"केवल इस विषय में ही नहीं, सब ही विषयों में तुम्हारी प्रकृति का सत्य परिचय मुझे मिलता है!"

"किस प्रकार ?"

"तुम सोचते हो, मैं तुम्हारी मुक्ति में रुकावट हूं!"

जयन्त ने सूखी हंसी हंस कर कहा—"जाने दो! अपना परिचय तुमने अच्छा ही दिया।"

खेल बन्द हो गया। इस घटना के पश्चात् उनका बात-चीत भी बन्द हो गई।

वार्तालाप बन्द होने के साथ साथ अन्य विषयों में भी व्यतिक्रम होने लगा। अलग-अलग स्नान करने लगे, और अलग अलग भोजन करने लगे। यहां तक कि यथासम्भव एक दूसरे से बच कर चलते। रात को एक कमरे में रहना अनिवार्य था। उसमें दोनों एक कमरे में सोते, उनमें कोई बातचीत न होती।

विस्मय की बात यह थी कि कोई भी यह न सोचता कि उसे भी मुक्ति मिल सकती है। दोनों यही सोचते कि मुक्ति मिलेगी— दूसरे को।

कल राजा का जन्म-दिन है।

आज शाम के बाद मुक्ति-समाचार आएगा। दोनों ही दुर्दान्त की प्रतीक्षा में थे। मुक्ति एक ही को मिलेगी, पर वह किसे मिलेगी—इस संशय में रहना दोनों के लिए असह्य हो उठा था।

सन्ध्या होने के बाद काराध्यक्ष घोषित कर गए—अशेष गुणालंकृत श्री मन्महाराज के पवित्र जन्म-दिन के उपलक्ष्य में जीमूतवाहन की मुक्ति होगी। प्रभात होते ही कारागृह से बाहर जाने के लिए वह प्रस्तुत रहे।

राजा का आदेश सुना कर काराध्यक्ष चले गए।

जीमूतवाहन विह्वल हो उठे। वह समझ नहीं पाए—यह संवाद सुख का है या दुःख का।

और जयन्त ? मानो पहले तो वह घोषणा का अर्थ ही न समझ सका। पर धीरे-धीरे उस घोषणा को दोहरा कर वह हंस पड़ा—अपने अन्तहीन दुःख के प्रति एक तीव्र व्यंग्य की हंसी।

बाहर शीतकालीन चांदनी पर कुहरे का आच्छादन पड़ा था। प्रकृति का रूप शोकातुर श्वेतवसना विधवा सा लग रहा था। जयन्त और जीमूतवाहन के मन के ऊपर भी कुहरे का-सा आवरण छाया था। दोनों दो खिड़कियों के पास खड़े थे। एक पूर्व की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर। जयन्त की आंखों में सब कुछ अर्थ हीन लगता था।

प्रभात होने पर मद्यप जिस प्रकार जड़ता का अनुभव करता है, उसी प्रकार उसके मन और शरीर की अवस्था थी।

जीमूतवाहन दूसरे दिन प्रभात में ही मुक्त हो जाएगा, यह बात सोचकर भी उसे शांति नहीं मिलती थी। मानो वह जयन्त के सामने बहुत बड़ा अपराधी है। मन चाहता, एक बार जयन्त के हाथों को पकड़ कर क्षमा मांग ले किन्तु मुख को भाषा नहीं मिल रही थी।

दोनों ही निर्वाक थे। एक हताशा से और दूसरा सौभाग्य के संकोच से। जयन्त की आंखों के सामने तैरने लगा था—एकान्तवास का चित्र। उसे याद आया वह हतभाग्य बन्दी, जिसने इसी कमरे में गले में फांसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली थी।

सोचते-सोचते उसकी आंखें लाल हो उठीं। उसे देखकर जीमूतवाहन को शंका हुई—क्या वह पागल तो नहीं हो गया है।

घंटों बीत गए। कितने घंटे, इसका किसी को हिसाब नहीं था। एक पक्षी के स्वर से दोनों चौंके! यह चिड़िया शायद प्रहर गिनती है!

जीमूतवाहन एक बक्स पर बैठा हुआ सोचता रहा कि बाहर जाकर वह जयन्त की मुक्ति के लिए क्या-क्या प्रयत्न करेगा! किससे अनुरोध करेगा,

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

मलयाली उपन्यास

के० एम० जार्ज

मलयालम का सर्वप्रथम उपन्यास अप्पुने डुनावडी कृत 'कुंदलता' १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखक पर शेक्सपीयर और स्काट का प्रभाव था। हालांकि उसे किसी दृष्टि से श्रेष्ठ कृति नहीं कहा जा सकता, फिर भी मलयालम साहित्य में नई विधा लाने के हेतु उसका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है।

मलयालम में उपन्यास की वास्तविक प्रगति का श्री गणेश १८८९ ई० में श्री ओ० चन्दू मेनन कृत 'इन्दुलेखा' के प्रकाशन से होता है। इस कारण उपन्यासकार साहित्य में अमर रहेगा। व्यवसाय से न्यायाधीश होने पर भी मेनन कला और साहित्य के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास पढे थे। अंग्रेजी का लाभ उठाने में असमर्थ मलयाली भाषियो को साहित्य के इस पक्ष से परिचित कराने के लिए आपने उपन्यास लिखे। तदर्थ आंग्ल भाषा से अनुवाद करने की अपेक्षा आपने स्थानीय विषय को लेकर उपन्यास लिखना पसन्द किया।

'इन्दुलेखा' सामाजिक उपन्यास है। श्री चन्दू मेनन ने केरल के सामाजिक ढाचे में—विशेषतया नय्यर और नम्बूद्रियो के प्रधान समुदायो में—गहरा ह्रास देखा। उच्चवर्ण के नम्बूद्री लोग प्रतिष्ठित नायर कुल की नारियो को केवल खेल की वस्तु मात्र समझते थे और कट्टर नायर माता-पिता इसे एक महत्वपूर्ण परम्परा मानते थे। आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप चन्दू मेनन व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पक्षपाती थे। उन्होंने अपने चारो ओर के समाज की कमजोरियो का पर्यवेक्षण किया था। उसके सम्मुख वे एक चुनौती रखना चाहते थे और उन्होंने इस काम को उपन्यास के द्वारा उत्कृष्ट ढग से किया। प्राचीन और अर्वाचीन पीढियो के चरित्र-निर्माण द्वारा आपने परस्पर विरोध को साहस पूर्वक प्रकट किया। यद्यपि उपन्यास का कथानक सरल है तथापि पचू मेनन, सूरी नम्बूरी, करुथ्थेडम और इन्दू लेखा जैसे पात्र इतने सजीव और मनोरजक है कि पाठक उनको विस्मृत नही कर सकते। चन्दू मेनन का हास्य और व्यग इतना मनोरजक है कि हमें उनके उद्देश्य का आभास तक नही होता। उनकी कला का मुख्य उद्देश्य मनोरजन और गौण मकसद पाठको को स्थिति पर सोच-विचार करने के लिए बाध्य करना है।

श्री चन्दू मेनन का दूसरा उपन्यास 'शारदा' है। दुर्भाग्यवश इसको समाप्त करने के पूर्व आपका देहान्त हो गया। 'शारदा' का प्रथम भाग, १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखक का व्यक्तित्व इस उपन्यास में अधिक निखरा है। कथानक दो परिवारो के पारस्पारिक कलह पर आधारित है। न्यायाधीश होने के कारण इस क्षेत्र का उनका अनुभव अतुलनीय था। परिवार का तेज मिजाज मुखिया, परिवार के सदस्यों को बहकाने वाले मैनेजर, लालची वकील, साथी और दलालो ने व्याधि को बढाया और स्थिति से लाभ उठाया। इन सबका 'शारदा' में सुन्दर चित्रण हुआ है। तब से तीन या चार लेखको ने इस अधूरे उपन्यास को पूरा करने का प्रयास किया परन्तु किसी को भी अच्छी सफलता उपलब्ध न हो सकी। हालांकि श्री चन्दू मेनन को इन उपन्यासो को लिखे हुए ७० वर्ष हो चुके है, फिर भी मलयाली सामाजिक उपन्यासो के क्षेत्र में वे अब भी सर्वोच्च है।

मलयाली उपन्यास साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास मे ऐसे कई उपन्यास-कार मिल जाएगे जिन्होने मनोरजक उपन्यासो की देन दी है, परन्तु उनमें भी केवल दो असाधारण है। प्रथम चदू मेनन और द्वितीय उनके समकालीन सी० वी० रमन पिल्ले। पिल्ले के उपन्यासो के कथानको का आधार ऐतिहासिक होता था। 'मारतडा वर्मा', 'धर्मराजा' और 'राम-राजा बहादुर' उनके तीन ऐतिहासिक उपन्यास है। केवल कथानक के चुनाव में वह चन्दू मेनन से भिन्न ही नही है, बल्कि शैली, गति और दृष्टिकोण में भी पूर्णतया अलग है। जबकि चदू मेनन ने समकलीन समाज की दुर्बलता की आलोचना की और खिल्ली उडाई, सी० वी० रमन पिल्ले ने अतीत की प्रशसा और गौरव का गान किया, उसके उज्ज्वल पक्ष पर जोर देकर इतिहास की पुनरचना की। जहा चदू मेनन का कथानक सीधा-सादा और कला सरल होती थी, वहा पिल्ले का कथानक जटिल और शैली प्रभावकारी है। यहा तक कि पिल्ले का हास्य इतना गभीर होता था कि पाठक के चेहरे पर मुस्कान आने में कुछ समय लग जाता है।

पिल्ले के उपन्यासो में जिस काल का चित्रण हुआ है वह मारतडा वर्मा के समय में हुई क्रांति से लेकर धर्मराजा के राज्य काल पर्यन्त है। लेखक बहादुरी, राजभक्ति, और अन्य प्रामाणिक गुणो से इतना अधिक प्रभावित है कि उसका प्रत्येक पात्र सशक्त और हरेक स्थिति सजीव हो उठी है। और जब हम उनके इन तीन उपन्यासो में अनेक प्रकार की घटनाओ को और बहुत से पात्रो का चरित्र-चित्रण देखते है तो केवल सामाजिक स्थिति की झाकी ही नही मिलती है बल्कि उत्थान और पतन का समस्त इतिहास शोक के साथ आखो के सामने झूल उठता है। चित्र अत्यन्त विस्तृत और समृद्ध है। हरिपचानन, चान्नवकारन, पेरिच-क्कोडन, मामा वेंकट्टन, सुभद्रा, सावित्री, पाचालिककोच्चि, कोडतयासन, कुचयकुट्टी, पिरला और दर्जनो दूसरे पात्र एक दूसरे से बहुत भिन्न है। इनमें से अधिकाश के ऐतिहासिक न होते हुए भी उनमें उपन्यासकार की कला ने ऐतिहासिकता का ऐसा मन्त्र फूक दिया है कि वे इतने सजीव जान पडते है मानो यथार्थ में ऐतिहासिक चरित्र हो। उनमें कुछ पात्र अलौकिक और असामान्य भी है।

'मारतडा वर्मा' सन् १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ था और उसमें यत्र-तत्र स्काट के 'आइवनहो' का प्रभाव लक्षित है। यह असाधारण बात है कि इसके लगभग बीस वर्ष बाद तक पिल्ले ने और कोई उपन्यास नही लिखा। तत्पश्चात उनका दूसरा उपन्यास 'धर्मराजा' प्रकाशित हुआ जो पहले की अपेक्षा भाव और कला की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। कथानक और चरित्र-चित्रण दोनो दृष्टियो से उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासो में उनके

तीसरे उपन्यास 'रामराजा बहादुर' की गणना की जाती है। उन्होंने 'प्रेम भरित' नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा लेकिन वह उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि तक नहीं पहुंचता है।

जब कभी भी हम किसी भाषा के उपन्यासों के इतिहास का विवेचन करते हैं तो लघु-कथा भी स्वाभाविक रूप से जुड़वे पदार्थ की तरह आ जाती है। लघु-कथा और उपन्यास, दोनों कथा-वर्णन की आधुनिक कला के शिल्प में आ जाते हैं, जिसको अंग्रेजी में लोकप्रिय ढंग से 'फिक्शन' कहा जाता है। मलयालम में इसका इतिहास सत्तर वर्ष प्राचीन है। इन दो आचार्यों के पश्चात वर्तमान सदी के तीसरे दशक तक प्रगति मंथर गति से होती रही। यहां आकर हमें नई जीवन-शक्ति और नया प्रभाव लक्षित होता है। इस शताब्दी के प्रथम दशक में कई लेखकों ने अपने-अपने ढंग से सफल रूप में चन्दू मेनन और पिल्ले की नकल करने का प्रयास किया। कुछ ऐसे भी लेखक आए जिन्होंने नए मार्ग का अन्वेषण किया। लेकिन चन्दू मेनन और सी० वी० रमन पिल्ले की ऊंचाई तक पहुंचने में असमर्थ रहे। इनमें से प्रमुख उपन्यासकारों का उल्लेख आगे किया जाएगा।

सन् १८९४ में केरल वर्मा ने एक अच्छे उपन्यास का अंग्रेजी से 'अकबर' नाम से अनुवाद किया। हालांकि यह मौलिक कृति नहीं थी फिर भी समकालीन लेखकों और पाठकों पर इसके संस्कृत निष्ठ शब्द-विन्यास का प्रभाव पड़ा। इस शैली के ठीक विपरीत प्रसिद्ध गद्य लेखक अप्पन थम्पुरान का 'भूतरराथर' उपन्यास था। उसने अपनी कहानी के वातावरण का सृजन करने के लिए मलयाली शब्दों का चयन किया। इसमें उसे अभूतपूर्व सफलता मिली, लेकिन इसका मुख्य दोष जटिल कथानक है, जिससे ऊब कर पाठक उसे बीच में छोड़ देता है। 'भास्कर मेनन' में थम्पुरान ने जासूसी उपन्यास लिखने का प्रयास किया है और इस दृष्टि से उसे नए मार्ग का प्रवर्तक कह सकते हैं।

युवावस्था में ट्रावनकोर सरकार द्वारा निष्कासित अनुभवी पत्रकार श्री के० रामकृष्ण पिल्ले ने अपने पत्र में दो उपन्यास धारावाहिक रूप से प्रकाशित किए—'उदयभानु' और 'पारप्पुरथ'। दोनों ही उसके साथी और मित्र श्री के० नारायण कुरुक्कल ने लिखे। इनसे समाज में सनसनी पैदा हो गई। राजनैतिक उपन्यास होने के अलावा, कला की दृष्टि से उनको दूसरी कोटि का ही कहा जाएगा फिर भी वे उल्लेखनीय हैं। श्री अम्बा नारायण पोदुवाल कृत 'केरल पुत्तरन', श्री टी० रामन नम्बिसन कृत 'केरलेश्वरन', श्री कप्पन कृष्ण मेनन कृत 'चेरमान पेरुमल' ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मलयाली ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन करते समय सरदार के० एम० पणिक्कर की सेवाओं को नहीं भुलाया जा सकता। उनका 'कल्याणमल' अकबर के राज्य काल पर आधारित है लेकिन 'पुनर्गातु स्वरूप', 'परंकिपडयाली', 'धूमकेतुविले उदयम,' और 'केरलसिंह' केरल इतिहास पर आधारित हैं। इनके उपन्यासों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अधिक विश्वसनीय होती है। उनका 'केरलसिंह' पजशीराजा की बहादुरी के कृत्यों पर आधारित है और उनके उपन्यासों में सम्भवतया सर्वश्रेष्ठ भी। इसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है। दूसरी श्रेणी के लोकप्रिय उपन्यासों में श्री कन्नन मेनन कृत 'स्नेहलता', श्री काराट अच्युत मेनन कृत 'चतुर शंकु' और श्री भवत्रातन नम्बूरिपद रचित 'पिता की पुत्री' की गणना होती है। नम्बूरिपद का उपन्यास एक बहुत अच्छा सामाजिक उपन्यास है। वे उपन्यासकार जिनकी गणना लोकप्रिय उपन्यास-कारों में होती रही है, सर्वश्री के० सुकुमारन, एम० आर० वेलुपिल्लाशास्त्री, एम० आर० नारायण पिल्ले और कुञ्चु जनार्दन मेनन हैं। इस काल में कई बंगला उपन्यासों की नकल भी हुई।

तीसरे दशक में नई शक्ति का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इस समय उपन्यास श्री सी० वी० रमन पिल्ले और उसके समकालीन लेखकों की रोमांचक पद्धति से किनारा कर रहा था। अब लेखकों ने यूरोप की मुख्य भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ साहित्य को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। मोपासां, फ्लाबर्ट, इब्सन आदि से वे परिचित थे। शनैः शनैः जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित प्रगतिशील साहित्य, नए लेखकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। लघु कथा इसका सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम थी। प्रतिभावान लेखकों ने केवल लघु कथाएं लिखीं। यहां तक कि सन् १९३० से १९४५ के बीच की अवधि में बहुत थोड़े उपन्यास लिखे गए।

गत १२ या १५ वर्षों में केरल के उच्च कोटि के कथा-लेखकों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। जीवन का अधिक विस्तृत चित्रण करने के लिए अधिक सपाट भूमि की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति उपन्यास करता है। एक अच्छा उपन्यास लिखने के लिए एक अच्छी लघु-कथा की आवश्यक सामग्री के साथ साथ, सर्वोपरि धैर्य और उद्यम की आवश्यकता होती है। इसके अलावा जीवन के एकीकृत तथा अखंड पक्ष से ली गई अधिक ठोस विषय-वस्तु की, जिसमें मूल्यों की गहन भावना हो, अपेक्षा है। हमारे कुछ लोकप्रिय-कथा लेखकों ने इस सत्य का अनुभव किया और उसे कार्यान्वित करके बतलाया कि वे अच्छे उपन्यास भी लिख सकते हैं।

तकवी, केशवदेव, बशीर, पोट्टक्कड, और पी० सी० कुट्टी कृष्णन इस दिशा में अधिक उल्लेखनीय हैं। उनके अधिकांश उपन्यास समाजवादी यथार्थवाद के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने सीधे और सरल गद्य में लिखा जो सामान्य पाठक द्वारा समझा जा सके। निम्नवर्ग का जीवन और संघर्ष उनके प्रिय विषय हैं। समकालीन लेखकों और उनकी रचनाओं में से किसी एक को चुनकर श्रेष्ठ बतलाना दुष्कर ही नहीं अपितु खतरनाक भी है। लेकिन मलयाली उपन्यासों से अपरिचित पाठकों की जानकारी के लिए उनमें से कुछ का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

सन् १९५७ में 'चेम्मीन' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार-विजेता तकवी शिवशंकर पिल्ले केरल के बाहर सारे भारत में सुप्रसिद्ध उपन्यास-कार के नाते जाने जाते हैं। लेकिन केरली जनता उन्हें अब भी कहानी-कार समझती है। उन्होंने अभी तक आधा दर्जन उपन्यास लिखे हैं, हालांकि उनमें वास्तव में तीन ही उच्च कोटि के हैं। एक 'चुनौती' और दूसरा 'दो सेर धान' है। 'चुनौती' 'थोत्तियुत्ते मकन' का हिन्दी अनुवाद है। 'रन्दित' का हिन्दी, बंगला, पंजाबी संस्करण साहित्य अकादमी 'दो सेर धान' के नाम से प्रकाशित कर चुकी है। इस उपन्यास की मलयालम में हाल ही में फिल्म भी बनाई गई है तथा वह पुरस्कृत भी हुई है। इसमें अल्लेप्पी के निकट दलदल भूमि के भूमिहीन खेतिहर श्रमिकों की समस्याओं का रसमय विश्लेषण है। चरित्र-चित्रण की शक्ति और सामाजिक दशा के यथार्थवादी अध्ययन ने उसे निमग्न कर देने वाली रचना बना दिया। तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास 'चेम्मीन' है, जिसमें केरल के तटवर्ती प्रदेश के मछियारों के जीवन का चित्रण मिलता है। यह एक सरल रोमांस की कहानी है, जिसका ताना-बाना उस अंध-विश्वास के इर्द-गिर्द बुना गया है, जो मछियारों के रहन और कार्य-कलापों पर हावी है। इस सबका अत्यन्त यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया

गया है। इस उपन्यास की प्रशंसा और आलोचना में मलयाली पत्र पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित हुए। कुछ ने कहा कि चंदू मेनन कृत 'शारदा' के पश्चात 'चेम्मीन' सर्वोत्तम सामाजिक उपन्यास है। दूसरों की दृष्टि में उपन्यास की केन्द्रीय धुरी अंधविश्वास युक्त-पौराणिक या कल्पित कथा है। तीसरे दल का कथन है चूंकि कहानी मूलतः रोमांटिक है और उसमें वर्ग संघर्ष नहीं है, जैसा 'चुनौती' या 'दो सेर धान' में दिखलाई पड़ता है, तकषी प्रगतिशील लेखक की दृष्टि से उतार पर है; परन्तु सचाई यह है कि तकषी मूलतः सृजनशील कलाकार है और हालांकि विचारधारा में वामपक्षीय दिखाई देते हैं, फिर भी कोई वाद या पंथ उनकी कलात्मक प्रतिभा को एक निश्चित उद्देश्य की ओर नहीं मोड़ सकता।

केरल के अत्यधिक और सजीव समकालीन लेखकों में से एक श्री पी० केशवदेव हैं। आपने शतशः लघु कथाएं और कई उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यासों में पददलित समाज के कठोर जीवन का चित्रण हुआ है, जिसने अपरोक्ष रूप से सामाजिक और राजनैतिक क्रांति को प्रोत्साहन दिया है। इनके पात्र शतप्रतिशत मानव हैं। संभवतया 'नाली से' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जा सकता है। पधु रिक्शावाला अनजाने में एक छोटी लड़की से टकरा जाता है और वह नाली में गिर जाती है। दया भाव से वह उसे निकाल लेता है और अपनी पुत्री की तरह उसका पालन-पोषण करता है। अन्त में ठीक ढंग से शिक्षा देने के उपरान्त, वह एक मालदार नवयुवक से विवाह कर लेती है और गठिया से ग्रस्त वृद्ध को हीन दृष्टि से देखने लगती है। मर्मस्पर्शी कहानी को मर्मस्पर्शी ढंग से कहा गया है। भ्रान्तालयम, उलक्का, और नटी उनके अन्य उपन्यास हैं। केशवदेव कल्पनाप्रिय लेखक नहीं हैं। उन्होंने जीवन के निकृष्ट पक्ष का अनुभव किया है और इसलिए उनकी कहानियों में स्वेद और रक्त की गंध है।

मोहम्मद बशीर कलम की कोमलता में सर्वोच्च है। श्री एम० पी० पाल ने अपने 'उपन्यास साहित्य' में बशीर की तुलना आत्मचरित सम्बन्धी ढांचे देने में डी० एच० लारेंस से की है। 'उपन्यास साहित्य' मलयाली भाषा का उपन्यास के तत्वों पर केवल एक ही प्रबन्ध है। बशीर ने तीन लघु उपन्यास भी लिखे हैं, उनके उपन्यासों में 'पागलखाना', 'मूसल-ओखली', 'बाल्यकाल सखि' (१९४४) और 'मेरे पितामह का हाथी' (१९५१) अधिक लोकप्रिय हैं। 'बाल्यकाल-सखि' में केरली मुसलमानों की परम्परा की वेदी पर दो आत्माओं के त्याग की मर्मस्पर्शी कथा है। दूसरी कथा भी केरल के दो मुसलमान परिवारों की पृष्ठभूमि में लिखी गई है, लेकिन कथा का सारतत्व सार्वभौमिक है। बशीर के भाव प्रवर्तक वर्णन और सूक्ष्म एवं संक्षिप्त वार्तालाप में काव्याभास दृष्टिगोचर होता है। उनमें शुद्ध हास्य का पुट भी अवस्थित है।

पोत्तेक्कड न केवल अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के लिए लोकप्रिय हैं, बल्कि भ्रमण-वृत्तान्त में भी उसकी बहुमूल्य देन है। वह निपुण शब्द-चितेरा है। वर्णन शैली में उसका कोई सानी नहीं है। 'विषकन्यका', 'नाटन प्रेम' 'प्रेमशिक्षा' आदि उनके उपन्यास हैं। इन सब में 'विषकन्यका' सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसमें यथार्थ और रोमांस का मिश्रण है तथा दोनों शैलियों का प्रशंसनीय योग है।

श्री पी० सी० कुट्टी कृष्णनन ने हाल ही में दो प्रथम कोटि के उपन्यास— 'उम्माचु' और 'सुन्दरिकलुम–सुन्दरन्मारुम'— लिखे हैं। जीवन के विविध पक्षों के तीक्ष्ण पर्यवेक्षण और काव्यमय अभिव्यक्ति ने कुट्टी कृष्णनन को उपन्यासकारों की प्रथम श्रेणी में बैठा दिया है। आगामी वर्षों में मलयाली उपन्यास के धरातल को उठाने में कुट्टी कृष्णनन और तकषी से बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

ऐसे संक्षिप्त सर्वेक्षण में जिन दूसरे उपन्यासकारों का उल्लेख होना चाहिए उनमें प्रो० मुन्डासेरी, रफी, आर० एस० कुरुप, मुट्टत वर्की, वेयूर, जी० विवेकानन्दन और पारप्पुरथु हैं। प्रो० मुंडासेरी ने दो उपन्यास 'प्रोफेसर' और 'कोडेल निन्न कुरिसिलेक्क' द्वारा यथार्थवादी भावना और सामयिक घटनाओं के सशक्त चित्रण के क्षेत्र में अपना प्रभाव छोड़ा है। वर्की के 'इणप्राबुगल' और 'पाडथ पैंगकिली' उपन्यास के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हैं। मलयाली में इनकी फिल्म बन चुकी है।

पारप्पुरथु के हाल ही में प्रकाशित दो उपन्यासों ने 'रक्तरंजित पद-चाप' और 'खोजा पर न पाया'—उपन्यासकार को उल्का सदृश उत्थान की सीढ़ी पर पहुंचा दिया। वास्तव में दोनों जुड़वां उपन्यास हैं—विचार, शैली और निष्कर्ष में एक समान। पहला उपन्यास सेना में भर्ती होने वाले एक नौजवान की कहानी है और दूसरा नर्स बनने वाली नवयुवती की। दोनों ट्रावनकोर के निम्न मध्यवर्ग परिवार के प्राणी हैं, जिनकी अपनी धार्मिक परम्परा और नैतिक संहिता है। दोनों उपन्यासों के प्रमुख पात्रों ने अपने परिवार को गरीबी से बचाने के लिए सशक्त प्रलोभनों के बीच जीवन में साहसपूर्ण कदम उठाया। इस प्रकार दस वर्ष का जीवन व्यतीत करने के बाद नवयुवक को नौकरी की तलाश में और युवती को पति की खोज में निकलना पड़ा। लेकिन पटाक्षेप उदासीपूर्ण और दुखान्त है—जीवन मृत्यु में भी अधिक दुखांत है। इन उपन्यासों में सेना और नर्स के व्यवसायों के जीवन का हू-ब-हू चित्रण है और ऐसा लगता है मानो लेखक की आत्म-चरित सम्बन्धी बातें और स्वगत भाषण हों।

दूसरी भाषाओं से मलयाली में अनुवादित उपन्यासों का लेखा-जोखा कर लेना भी समीचीन होगा। भारतीय लेखकों में से बंकिमचन्द्र के बारह, टैगोर के सात, शरत के बीस और प्रेमचन्द्र के सात उपन्यास अनुदित हुए हैं। रमेशचन्द्र दत्त, खांडेकर, यशपाल, किशनचन्दर, मुल्कराज आनन्द, हुमायूं कबीर और एक दर्जन अन्य लेखकों से भी मलयाली भाषी परिचित हैं। इस क्षेत्र में सबसे पहले किए गए अनुवादों में श्री सी० एम० सुब्रह्मण्य पौत्ति द्वारा बंकिम के 'दुर्गेशनंदिनी' का नाम लिया जा सकता है।

विदेशी लेखकों में टालसटाय, दास्तोवस्की, गोर्की, चेखव, पुश्किन, विक्टर ह्यूगो, जोला, बाल जाक, मोपासां, अनातोल फ्रांस, सिक्सपियर, थोमसन, हेमिग्वे, थामस हार्डी, स्काट और कुछ दूसरों के नाम उल्लेखनीय हैं। अनुवाद के क्षेत्र में दिलचस्पी बढ़ती जा रही है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इनमें बहुत से ऐसे अनुवाद हैं जो न तो मूल लेखक की और न अनुवादक की मान-प्रतिष्ठा में वृद्धि करते हैं।

गत १५ वर्षों में मलयाली उपन्यास में नया मोड़ आया है। वह अधिक यथार्थ और जीवन के प्रति ईमानदार हो गया है। उसमें खण्डों, दलों या व्यक्ति के जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र का चित्रण मिलता है। कलागत रूप में वह सीधा और सरल है। आमतौर पर उसका स्वर सामाजिक पुनर्निर्माण का है। इन अच्छाइयों के विपरीत लोकप्रिय लेखकों की प्रवृत्ति पांडित्य के विरुद्ध होती जा रही है। प्रमुख विचारधाराओं पर

(शेष पृष्ठ २८ पर)

मिलान के संस्मरण

घनश्याम सेठी

मिलान इटली का औद्योगिक केन्द्र है और अन्य औद्योगिक शहरो के समान, इस विशाल नगर के लोग भी अत्यधिक व्यस्त है। इटली मे उस व्यक्ति को, जिसके भाग्य मे विश्वास न हो 'मिलानीज' कहते है।

भव्य और विशाल रेलवे स्टेशन से बाहर निकल कर मै टैक्सी में बैठ कर होटल की ओर चला तो पीछे मुडकर ड्राइवर ने बडी उत्सुकता से पूछा—"इण्डियन ?"

"हा," मने बाहर फैले हुए धुन्धलके में देखने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"स्वागत।" उसने प्रसन्न होकर उत्तर दिया और 'एक्सिलरेटर' दबा दिया। बूदा-बादी आरम्भ हो गई थी और 'नियोन' की बत्तिया भीग-भीग कर चमक रही थी। धुन्ध और वर्षा मे भीगी हुई लन्दन की पिकाडिली का-सा समा था। यूरोप और इग्लैण्ड में धुन्ध और वर्षा ने नाक में दम कर रखा था, अब यहा भी वही दृश्य दिखलाई दिया तो मन हुआ कि अभी लौट कर फ्लोरेंस का टिकट ले लू। परन्तु मुझे 'ला-स्काला' का सग्रहालय देखना था और फिर उसका वह ओपेरा जहा टोसाकोनी अपनी कला का चमत्कार दिखलाने वाले थे।

एक पुरातन 'प्लाजो' में मूरिश कगूरो को सिर पर उठाए 'वेताई' खडा था। इसी 'पेनसियोन' में मेरा ठिकाना तय किया गया था। कोने वाला टावर बरबस साल्टावर्ग के खेतो में खडे धान के खलिहानो की याद दिला रहा था। बिल्कुल वैसा ही ढाचा था।

घटी बजाने के थोडी देर बाद एक गठी हुई प्रौढा ने द्वार का एक पट खोला। मैंने अपना नाम बतलाया। भीतर किसी को पुकार हुई और द्वार पूरा खुल गया। एक दुबली, पतली और नाजुक-सी लडकी, साधारण से वस्त्र पहने द्वार की ओर आई। नि सन्देह वह असाधारण सुन्दरी और अत्यन्त लावण्यमयी थी। उसकी बडी-बडी कटोरीनुमा आखो में काली-काली पुतलिया जैसे बडी बेचैनी से इधर-उधर भटक रही थी। माथे पर से तरसे हुए लम्बे-लम्बे काले कुन्तल कन्धो से नीचे तक लटक आए थे। परन्तु उसने मेरी ओर नही देखा, केवल झुक कर मेरा सामान उठा लिया। मैंने उसके हाथो की ओर देखा, शारीरिक गठन के विपरीत वह बडे भद्दे और चपटे से थे। पीछे, द्वार के बन्द होते ही, लोहे की एक कडी पुन अपनी जगह पर आगई। 'वेताई' का अन्तर भी अपने बाह्य के समान ही मध्य-कालीन वातावरण और सज्जा में लीन था। यो लगा कोई 'मूरिश वेटीक' देख रहा हू। *दीवारो की और खम्भो पर लकडी की खुदाई का बडा सुन्दर* काम था और छतो से पुराने फानूस लटक रहे थे। लिफ्ट नही थी।

प्रौढा मुझे लाऊज में पहुचा कर सिनयोरा वेताई को सूचित करने के लिए चली गई। एक शानदार पियानो पर एक छोटा-सा सफरी रेडियो पडा था और इटली के मन की बात, अपनी मूक जबान से कह रहा था। प्रणय-प्रधान युग में रचित पुलहमरा और वीनस के कुछ चित्र दीवारो पर लगे थे। कुछ पुरानी पुस्तके और दाते की मूल-पाडुलिपिया शीशे के एक बक्स में रखी थी। कुछ ही क्षणो मे सिनयोरा वेताई और उनके पीछे-पीछे उनके अलसेशियन ने प्रवेश किया। खूब हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ और अच्छे कद की महिला थी। स्वर में एक विचित्र माधुय और प्यारा लोच था। लगा प्रभुत्व और अधिकार सदा उनके अनुचर रहे होगे।

"एक लेखक के लिए स्थान सुरक्षित किया गया है ?" उन्होने अग्रेजी में पूछा, लेकिन इस ढग से जैसे कोई गलती कर बैठी हो।

"हा", मैंने उत्तर दिया।

"किस चीज का लेखक ?"

और मेरे उत्तर देने से पहले ही उन्होने कहा—"तब तो तुम्हे मेरे दाते के सग्रह मे काफी दिलचस्पी होनी चाहिए।"

मैंने कहा कि वह दौलत तो सौभाग्य है।

यूनेस्को की ओर से भिजवाए गए अमेरिकन चित्रकार परिचेट भी यही, मेरे साथ वाले कमरे में ठहरे हुए है, यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई। नि सन्देह उनके साथ चित्र सग्रह देखने में मुझे बडी सुविधा रहेगी। कमरा मुझे दो हजार लीरे प्रतिदिन के हिसाब से मिला था, पर बाहर खाए हुए लच या डिनर के लिए कोई डिस्काउट नही था।

उसी सुन्दरी को जिम्मे मुझे मेरे कमरे तक पहुचाने का काम सुपुर्द हुआ। न जाने क्या सोचते हुए मैं सकरी-सी, चक्करदार सीढिया चढने लगा। दूसरी मजिल पे उमस से भरा एक कमरा था, जिसके फर्श ने कई दिनो से झाडू का स्पर्श नही पाया था। कमरा अन्धेरा और ठण्डा था। जिधर से रोशनी आ रही थी, वहा वेलवेट का एक भारी पर्दा लटक रहा था, जिसका रग जगह-जगह से बेरग हो गया था, परन्तु उस अन्धकार में भी सगमरमर पर निर्मित मूर्तिया चमक रही थी, गोकि वर्षो से उन पर पालिश नही हुआ था। मैंने बालकनी पर जाने वाले द्वार का पर्दा हटा दिया। पुराने और घटिया सिक में केवल ठण्डा पानी चल रहा था। मै खिन्न चित्त-सा पलग पर गिर पडा। गद्दो और लिहाफ से भी उमस उठ रही थी। न जाने क्यो—मगर पलग पर पडे-पडे मैंने अनुभव किया कि मै एक कैदी हू।

द्वार पर खट-खट सुन कर मेरी नीद खुल गई। "हे !" एक बीस-बाइस वर्ष के नवयुवक ने भीतर प्रवेश कर के मुझ से कहा, "सिनयोरा ने मुझे कल बतला दिया था कि तुम आने वाले हो। पर कार्यालय से इस सम्बन्ध में मुझे कोई सूचना नहीं मिली।"

यह वही अमेरिकन चित्रकार था।

"परिचेट जिम" उसने अपना परिचय कराते हुए बडे निस्सकोच भाव से कहा—"लेकिन तुम सिर्फ जिम भी कह सकते हो।" वेताई के घुटे-घुटे वातावरण में वह मुझे किसी आत्मीय के समान लगा।

यूनेस्को के पैसो पर उसका गुजारा नहीं होता, इसलिए ओपेरा, थियेटर, सिनेमा और लडकियो पर उठे खर्च के लिए उसे हर मास उसका कसाई

बाप न्यू ओरलियन्स से डेढ़-सौ डालर भेजता है। वह फर्राटे दार इटेलियन बोलता था। उसने कहा—खाने और रहने की सुविधा को भूल सको तो यह देश घर के समान है। यद्यपि यह अभ्यास की बात है और मुझे यह भी मालूम नहीं कि भारतीय किस ढंग के जीवन के अभ्यस्त हैं। परन्तु फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं। बस इतना ध्यान में रहे कि साथ वाला कमरा मेरा है। और एक आंख बन्द करके वह मुस्करा दिया।

नीचे वाली मंजिल से प्रसिद्ध फ्रेंच गीत की आवाज आ रही थी —

"पेरिस मुझे शीत में ठिठुरा हुआ अत्यन्त प्रिय लगता है,
जब जमी हुई हिम खनखनाती है
मुझे पेरिस से प्यार है
और हर क्षण वह मुझे प्यारा लगता है,
क्यों ?
क्यों मुझे पेरिस प्यारा लगता है ?
क्योंकि मेरा प्रियतम यहां है।"

मौलिक फ्रेंच संगीत की पृष्ठ-भूमि में इस गीत के रेकार्ड प्रत्येक यूरोपीयन भाषा में मिलते हैं। इससे प्यारा गीत मैंने आज तक और कहीं नहीं सुना।

"यह हैरीस है", जिम ने कहा, "हम उसे 'फ्रेंची' कहते हैं! सारा दिन द्वार खुला छोड़कर रेकार्ड चलाता रहता है।" और कुछ देर ठहर कर वह फिर बोला—"एक असाधारण फ्रेंच।"

मैंने जिम से कहा—"कई लोगों की आदत होती है कि वे कोई बात भी खामोशी से करना या देखना नहीं जानते और न चाहते ही हैं।" "ठीक है, लेकिन सुनो!" बात काटकर जिम ने कहा, "तुम्हारे दायीं ओर 'फ्राईटाख' का कमरा है। वह जर्मन है, इटेलियन सीख रहा है। लेकिन सब से पहले तुम्हें स्विस बैरोनेस के विषय में जानना चाहिए।"

जीवन में पहली बार किसी स्विस बैरोनेस का नाम सुन कर मैं चौंक गया। मुझे उलझन में देख कर जिम ने कहा "वह अपने आप को स्विस कहती है और लगती बिल्कुल एक बैरोनेस की तरह। इसलिए सिनयोरा वेलाई ने उसे यह नाम दे रखा है। कमरा उसका अंतिम कोने वाला है, पर रहती वह बाथ-रूम में ही है। शायद अब भी वहीं है।"

यह कह कर उसने जल्दी से उठ कर मेरे कमरे के दोनों किवाड़ बाहर की ओर धकेल दिए। स्नानगृह का द्वार बिल्कुल मेरे कमरे के सामने था।

"तकदीर वाले हो, कमरा खूब मिला है।"

मैं अपनी अरुचि प्रकट करना ही चाहता था कि उसने मेरे शब्द बीच में कह कहा—"नजरें बाहर! पहली झलक में ही पूरे दर्शन हो जाएंगे।"

इससे पूर्व कि मैं कुछ कहूं माता बाथ रूम का द्वार खुला और उसमें से वाष्प और सुगन्ध के बवंडर में लिपटी एक लचकीली-सी नवयुवती बाहर आती हुई दृष्टिगोचर हुई। इतनी ठण्ड में भी वह रेशम के एक गाऊन में लिपटी हुई थी, जो जगह-जगह पर उसके शरीर की उभरी-बैठी रेखाओं पर चिपक कर रह गया था।

"हैलो!" उसने कहा। उसकी मरदानी आवाज ने मुझे चौंका दिया। जिम ने प्रत्युत्तर में हाथ हिला दिया।

"मैं तुम्हारे मित्र से इस समय नहीं मिल सकती। मैं अभी उस हालत में नहीं हूं।" स्वर थका थका-सा था। प्रत्येक शब्द के उच्चारण में जैसे बड़े प्रयत्न से काम लिया गया था। वह स्लीपर घसीटती हुई तेजी से कमरे के सामने से निकल गई। पीछे महक का एक बवंडर-सा छा गया। जिम ने ललाट पर से काल्पनिक पसीना पोंछते हुए कहा—"देखा! मैंने कहा था न?" और फिर आंख मीच कर वह बड़े अर्थपूर्ण ढंग से मुस्करा दिया।

'वेलाई' की भोजनशाला तहखाने में थी। अन्य कमरों के समान यह कमरा भी उमस और अन्धकार में बसा था। कई छोटी-छोटी मेज एक-दूसरे के साथ भिड़ी हुई थीं। भद्दे हाथों वाली अपार सुन्दरी मौली, सब को खाना खिला रही थी। मेरी जगह जिम की मेज पर ही निश्चित की गई थी। हमारे सामने, दीवार के साथ पेनसियोन स्वामिनी, कुत्ते और कन्या सहित बैठी थी। अधिकांश मेजों पर अकेले बैठने की ही व्यवस्था थी। कमरे में इटालियन, फ्रेंच, स्पेनिश और अंग्रेजी जानने वाले सभी तरह के व्यक्ति थे, यह वार्तालाप से स्पष्ट हो गया।

"जौली हेल! अरे यह धुन्धलका और धुन्ध!" चिड़िया के से डील-डौल वाला एक अंग्रेज कह रहा था "लन्दन की धुन्ध तो इस मनहूसनी धुन्ध के सामने कोई चीज ही नहीं। कल रात जो भटका, तो दो-ढाई घंटे तक दर-ब-दर भटकने के बाद इस मनहूस मकान का पता चला। चाय के एक प्याले के लिए घंटों हाथ-पांव मारे। आप विश्वास न करेंगे यदि बतला दूं कि चाय के नाम पर इस देश में कौनसी वस्तु निकली है!"

"यह जेम्स है— मिलान में स्काटिश ट्वीड का धन्धा करता है।" मोटा-सा एक नवयुवक अभिवादन करता हुआ आगे निकल गया।

"यह बरनी है" जिम ने कहा, "इटेलियन, आजकल यहां उस टूल फैक्टरी में काम सीख रहा है, जो कभी इसके बाप की मिलकियत थी।"

भद्दे-भद्दे हाथों ने सूप की प्लेटों को मेज पर लगा दिया और मुस्कराती हुई कटोरीनुमा, नशीली आंखों ने खाने का निमन्त्रण देते हुए अधरों को भी मुस्कराने पर विवश कर दिया। चम्मच को सूप में घुमाते हुए मैंने जिम से मौली के विषय में पूछा।

"इमीलिया की बात करते हो? आंखों वाले हो दोस्त! हम तो हिन्दुस्तानियों को साधु-महात्मा ही समझते हैं, आध्यात्मिक और रहस्यवादी! अच्छा बतलाओ, है न यह लड़की बुलबुल?" वह ठठा कर हँसने लगा। मैं घबरा-सा गया।

मुस्कराकर उसने स्वर धीमा करते हुए कहा—"इस पेनसियोन में केवल चार नौकर हैं? सिनयोरा वेलाई इन चारों से कस कर काम लेती है और शेष तीन मौली से। यह बेचारी सुबह सात बजे से रात को नौ बजे तक जुटी रहती है। रविवार की दोपहर को शायद उसे तीन-चार घंटे की छुट्टी मिलती है। मैंने उसे कई बार रोते हुए भी देखा है। शायद उसे मारते भी हैं। यह तो बेचारी मूक पशु के समान है। इस रविवार को मैं इसे बाहर ले जा रहा हूं।"

सूप की प्लेटें हटा दी गई।

दूसरी खाली प्लेट मेज पर लगाने से पहले मैंने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा—उसका सौन्दर्य चौंका देने वाला था। मुझे वह किसी रूपसी सिंड्रेला के समान लगी, परन्तु उसकी आंखों में उदासीनता का एक सागर समाया हुआ था। उन्हीं हाथों ने मछली का एक टुकड़ा प्लेट में रखा और मैंने उन फूली हुई उंगलियों को देखा, जिनसे शायद बरतन रगड़ने का काम भी लिया जाता था। मेरी नजरों को भांप कर उसने हाथ खींच लिए, मैंने उसकी ओर देखा, एक विचित्र-सी व्याकुलता और पीड़ा से उसकी शोख आंखें पथरा-सी गई।

भोजन के बाद फ्रेंची उठ कर हमारी मेज के पास आ कर खड़ा हो गया और जिम की ओर देख कर बोला, "अब उठो, चलो 'रिबिजता' देखेंगे आज।"



वर्षा-गीत

खेतों की ओर

धरती की आज हुई नभ से सगाई रे !

कुमारी मधु

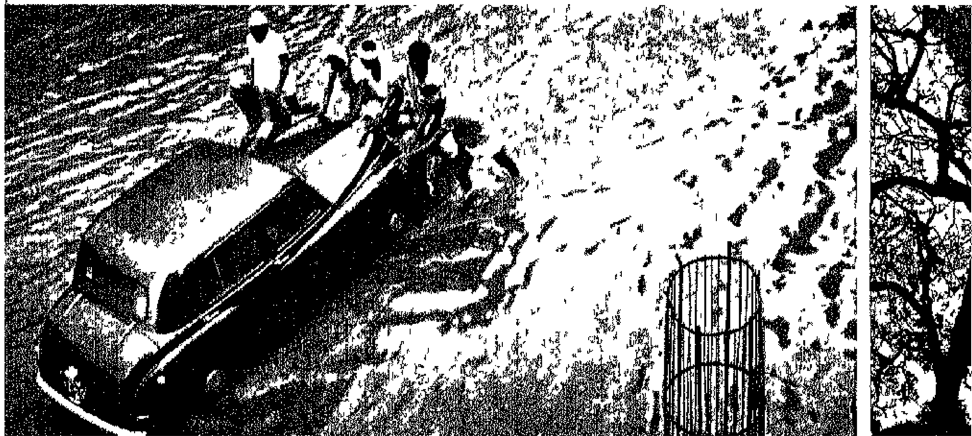
धरती की आज हुई, नभ से सगाई रे !

बिजुरी की चोली कस, नदियों का हार रे,
लहगा हरी मखमल का, सोलह सिंगार रे।
प्रीत भरी अखियों से भू मुस्कराई रे।
धरती की आज हुई नभ से सगाई रे!

बादल का ढोल बजा, रिमझिम मजीर रे,
लहरों ने गीत गाया नाचा मयूर रे।
गूंज रही कोयल की, दूर शहनाई रे।
धरती की आज हुई नभ से सगाई रे!

पपिहा को प्राण मिला, कलियों को गन्ध रे,
अमवा को बौर मिला, अलियों को छन्द रे।
पुरवैया छेड़ रही, दुल्हन लजाई रे।
धरती की आज हुई नभ से सगाई रे!

मस्ती से झूम रहे, तरुवर के पात रे,
अलसाई किरण-सजनि, लाई सौगात रे।
चिड़ियों ने चहक-चहक, दी है बधाई रे।
धरती की आज हुई नभ से सगाई रे!





घुमडती घटा

नीचे (बाए) बरसात मे कलकत्ता का एक दृश्य

नीचे (बीच मे) पानी भरे बादल (श्रीमती हलीम)



शिमला का एक बरसाती दिन (सैयद)





फ्राईबाख ने फ्रची, जिम और मुझे 'रिविजता' देखने का आमन्त्रण दिया था। उसने 'रिविजता' की किसी इटेलियन अभिनेत्री स मित्रता गाठ ली थी। सिनेमा और ओपेरा के बाद 'रिविजता' इटली के सबसे लोकप्रिय मच है। इगलिश और अमेरिकन रगमच के मुकाबिले में यह बडा और साधारण स्टेज होता है। परन्तु रिविजता का यह खेल बडी ताजगी लिए हुए और बडी ज्वलन्त उद्दीपक और उत्तेजनात्मक समस्याओं की ओर सकेत करता है। यदि किसी वतमान इटेलियन समस्या पर इटेलियनो के विचार जानने हो, तो शायद 'रिविजता' से बढ कर और कोई अच्छा साधन नही होगा।

हम चारो धुन्ध में एक साथ चलते गए। एकाएक फ्रेंची ने जिम से पूछा—"क्या तुम विवाहित हो ?"

जिम ने कहा—"नही !" और प्रश्नसूचक दृष्टि से फ्रेंची की ओर देखा।

"तब तुम तलाकशुदा होगे ?" फ्रेंची ने बडे आत्मविश्वास के साथ कहा।

मने पूछा, बिना बतलाए ही कैसे वह इस निणय पर पहुच गया।

फ्रेंची की आखें धुन्ध में चमकने लगी, "तुम नही जानते।—अमेरिकन तो हमेशा ही शादी और तलाक के चक्कर में रहते हैं। अमेरिकन विवाह और प्रेम का मतलब तक नही जानते। हम नो भाई-बहन है और मेरे माता-पिता आज भी उतने ही प्रसन्न है, जितने खुश वह आज से तीस वष पूर्व विवाह के दिन थे।"

जिम ने बडी सहृदयता से उसे बधाई दी और भविष्य में इस सम्बन्ध के और भी सुदृढ होने की कामना की।

"ऐसा ही होगा।" फ्रेंची ने बडी रुखाई से हाथ नचा कर कहा—"मेरी मगेतर मुझे रोज पत्र लिखती है। वह मेरे अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति से प्यार नही करेगी। मैं भी किसी अन्य लडकी की ओर नही देखता। परन्तु अमेरिका में यह सब कोई महत्व नही रखता। प्रत्येक विवाहित अमेरिकन एक बार का तलाकशुदा अवश्य होता है।"

जिम ने फ्रेंची को समझाने का प्रयत्न किया कि केवल 'हालीवुड' ही अमेरिका नही है।

"जो भी हो, "फ्रेंची ने कहा, "जब एक अमेरिकन विवाह करता है तो उसे इस बात का भी विश्वास होता है कि यह स्थायी चीज नही है। और मैं जानता हू कि तलाक के लिए 'सिटी-हाल' में कुछ कागजो पर हस्ताक्षर करना ही पर्याप्त होता है।"

रिविजता में 'सी वूल एसर लीसो स्या' (वतमान को सुखद बनाओ) शीर्षक खेल था। महगे टिकटो वाली पहली पक्तियो में इटेलियन व्यापारियो का थका मादा वर्ग बैठा था। दो सौ लीरा का टिकट लेकर खडे दर्शको की सख्या भी कम नहीं थी। सारे हाल में मोटा कालीन बिछा हुआ था। परदा उठते ही एक दर्जन लडकियो के अध-नग्न नृत्य ने दर्शको को पागल बना दिया। नृत्य का स्तर वियाना, मेड्रिड और म्यूनिक से कही निम्न था। परन्तु किसी को यह खयाल नहीं था कि मच पर न ढग का नृत्य है न सलीके का सगीत—शायद उसका प्रमुदित और उत्तेजक अग-प्रदशन ही दशको के लिए पर्याप्त था।

दर्शको ने सब से ज्यादा दाद उन 'स्किट्स' को दी, जिनमे अमेरिकन सभ्यता पर व्यग्य किया गया था। एक 'स्किट' में एक इटेलियन चकले को 'नाटो' की देख-रेख और निरीक्षण में चलते हुए दिखलाया गया था। यह एक दुबले-पतले अमेरिकन सनिक की कथा थी जो महीनो से चकले म जाने के लिए आवश्यक प्रवेश-पत्र जुटाने मे व्यस्त है। और आखिर सारी व्यवस्था करके मजिल-ए-मकसूद पर पहुचता है तो द्वार पर रोक लिया जाता है, क्योकि उसके पास अपनी पत्नी की लिखित अनुमति नही थी, जिस पर 'नाटो' की मुहर का होना आवश्यक था।

अन्त में फिर बाहर की बारह लडकिया एक श्वेत घोडे पर चढ कर मच पर आई। अध-रात्रि की उस घडी तक सारे दशक और लडकिया मित्रता की एक डोर मे बध चुकी थे। समूचा हाल उनके साथ गाया और चिल्लाया।

आधी रात के बाद हम ट्राम में सवार हुए। हमारे पीछे ही तीन-चार अन्य अमेरिकन भी ट्राम में चढे। ट्राम खचाखच भरी थी। धक्के पर धक्का लग रहा था और कुछ ही देर बाद हम ट्राम के अगले द्वार के पास खडे थे। बाहर धुन्ध गहरी होती चली जा रही थी। तभी एक कडक्टर ने हम से टिकटो के लिए पूछा। मने टिकट दिखा दिए। गुलाबी टिकटो पर नीले रग की पेंसिल से उसने एक निशान बना दिया और आगे बढ गया। हमारे पीछे-पीछे आ रहे अमेरिकन अभी रिविजता के प्रदशनो पर अपनी रायें दे रहे थे कि कडक्टर ने उनसे भी टिकटो के लिए पूछा। गुलाबी चिटें उसके हाथ में दे दी गई।

"राग कलर !" टूटी-फूटी अग्रेजी मे उसने कहा, "गुलाबी टिकट दिन के लिए और नीली टिकटें रात के लिए होती है।"

"रग की बात हम नही जानते। पर हमने अभी-अभी पिछले द्वार पर खडे कडक्टर से टिकटें ली है।" उनमें से एक ने कहा।

"यह टिकट पुराने है !" वह चिल्लाया।

और हर कोई उनकी ओर देखन लगा। किसी ने सधी हुई अग्रेजी मे कहा—"धनी अमेरिकन, और ट्राम में बिना पैसो के चढना चाहते है।"

"तुम पिछले द्वार पर खडे कडक्टर से पूछ सकते हो।" एक अमेरिकन ने कहा। उनकी दशा दयनीय थी।

कडक्टर ने घृणा से कधे हिला कर उन्हें नीचे उतर जाने के लिए कहा। "यदि ट्राम मे रहना चाहते है, तो टिकट लीजिए।" उसने कहा।

मैं बुत बन कर खडा, यह सब तमाशा देखता रहा। क्योकि मेरी जेब मे भी गुलाबी टिकट थे।

धुन्ध इतनी गहरी थी कि सडको के नामो के सकेत तक अदृश्य हो चुके थे। रात का एक बजा था जिस समय मैंने और फ्रेंची ने वेताई में प्रवेश किया। भीतर कोई प्रकाश नही था, हम ने माचिस जला-जला कर सीढिया तय की।

दूसरे दिन जिम अनमने भाव से मुझे चित्र-सग्रह दिखलाने ले गया। एक ठिठुरता हुआ दिन था, जो हम ने 'कैंडेलो-स्फारजेस्को' के झरोखेदार कमरो में व्यतीत किया। पन्द्रहवी शताब्दी का यह दुग स्फार्जा परिवार की निशानी है, जिसे लियोनार्दो-द-विसी ने सजाया है। हम 'पिना कोतका विम्रेरा' का आश्चर्यजनक सग्रह देखने गए।

'पिनाकतोरा एम्ब्रोजियाना' के दुग में असाधारण चित्रो का सग्रह है। यहा जिम ने लियोनार्दो-द-विसी के चित्रो का एक फोलियो मुझे दिखलाया। यह एक अविश्वसनीय खजाना था, ललचाई हुई कजूस नजरो से मैंने उस निधि को देखा। जी चाहा देखता ही रहू। सग्रह में सभी प्रकार का वह सभी कुछ था, जो एक कलाकार को अमरत्व प्रदान करता है। मैंने फ्रांस और म्यूनिक में 'न्यूड' चित्र देखे है, लेकिन चित्रकला के इस पक्ष के बारे में लियोनार्दो की धारणा ही अलग है। लियोनार्दो द्वारा रचित

'न्यूड' शारीरिक सौन्दर्य से चमक रहे थे। 'ग्रोटेस्क' चित्रों में मानव मन की हिंसा और बर्बरता और मानव आत्मा की श्रेष्ठता और कमीनापन, पशुओं के भयंकर द्वन्द्व और बच्चों के चेहरों पर स्वर्गिक मासूमियत की छटा, इन सब भावनाओं को कागज और रंगों में उतारना शायद लियोनार्दो का ही कमाल था। लियोनार्दो के इस संग्रह को देख कर मैंने उस की विश्वप्रसिद्ध और अमर कलाकृति 'लास्ट-सपर' देखने का निश्चय किया। पिछले चार दिनों से मैं नित्य 'सांता मेरिया डेला ग्रेजी' के कानवेंट में जाने की बात जिम से कह रहा था, परन्तु उसका कहना था कि 'लास्ट सपर' को समझने और उसका पूरा आनन्द लेने के लिए, उससे पूर्व लियोनार्दो की अन्य कृतियों को देखना आवश्यक है। उपर्युक्त कानवेंट 'बेताई' से तीन फरलांग की दूरी पर स्थित था।

गिरजे में घुसते ही गीले चूने से उठ रही दुर्गन्ध ने नाक को निशाना बनाया। एक गाइड ने सन् १९४५ की बमबारी के पश्चात् का दृश्य दिखलाया, एक बड़ा फोटो था, जिसमें सारा गिरजा मलबे के एक ढेर में परिणत हो गया था परन्तु इसे प्रकृति का चमत्कार ही कहा जाएगा कि केवल वही दीवार बची रह गई, जिस पर लियोनार्दो की यह अमर कलाकृति अंकित है। फोटो में मैंने देखा सुनसान में खड़ी वह दीवार किस प्रकार अपने चारों ओर फैले काल की भयानकता को कम कर रही थी।

'लास्ट सपर' की एक हल्की-सी रेखा अभी शेष थी। बमों के भय से बहुत पहले ही, समय के निर्दयी हाथों ने इसे मिटा दिया था। सन् १४९८ से अब तक समय और युग ने एक लम्बी मंजिल तय कर ली है। मिलान की धुन्ध विशेष रूप से इस अमूल्य कलाकृति के संहार के लिए उत्तरदायी है और फिर शताब्दी के बाद शताब्दी इसके रंगों को निगलती गई। यह बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों की बात है कि कैवेलियर केवानामी नामक एक इटेलियन चित्रकार ने इस कृति को जिलाने का प्रयत्न किया। युद्ध के पश्चात् मोरो पेलिक्योल ने, लियोनार्दो की तूलिका से, उसके रंगों में, उसी को जीवित करने का प्रयत्न किया — वह अभी तक प्रयत्नशील है, और निःसन्देह उसे काफी सफलता भी मिली है।

धीमे धीमे और मन्द-मन्द प्रकाश में मैंने लियोनार्दो के कठिन श्रम और वर्षों की अटूट लगन के निर्माण को निहारा। ईसा के बारह शिष्यों को, भोजन के समय चार-चार की तीन उत्तेजित और हिंसक मंडलियों में बंटे हुए देखा।

कुछ ही क्षण पूर्व ईसा ने कहा था—"तुम में से एक मेरे साथ द्रोह करेगा।"

प्रत्येक व्यक्ति का चेहरा उसकी आत्मा का बिम्ब है। उन सबके बीच भगवान ईसा है, उदास और पीड़ित—बाइबल की इस गाथा को लियोनार्दो ने मानो जीवित कर दिया है। मैं उसी युग और वातावरण में डूबा हुआ गिरजे से बाहर निकला।

मिलान निवास की उस अंतिम रात को सिनयोरा गेमा की अनुमति लेकर मैंने मौली को 'ला-स्काला' का ओपेरा दिखलाया। बात बात पर वह मेरा आभार मानती और रो देती।

जिम भी मेरे साथ कुछ दिनों के लिए फ्लोरेंस चलने के लिए तैयार हो गया।

कोहरे भरी प्रातः में हम बेताई के उदास लाऊंज में बैठे टैक्सी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सिनयोरा ने मेरे बिल में दो हजार लीरें अधिक जोड़ लिए थे। यह मौली की फीस थी! मौली भोर से ही बड़ी उदास थी। फ्रेंचो मेरे पास बैठा था और उसका ग्रामोफोन गूंगा हो गया था।

मौली ने टैक्सी तक मेरे बैग उठाए। मैंने सहारा देना चाहा तो वह रो पड़ी। मैंने उसे दो हजार लीरें का एक नोट दिया, उसने बड़ी दीनता से मेरी जेब में पुनः ठूंस दिया। वह रोए जा रही थी।

टैक्सी में बैठा तो उसने मेरा हाथ चूमा और रुंधे हुए गले से बोली—"रिटोर्ना ?"

"हां।" मैंने सिर हिलाया। मैं अवश्य लौटूंगा। वह अश्रुओं के सैलाब में बह चली और दौड़ कर भीतर चली गई।

"अ वियामो!" जिम ने ड्राइवर से कहा। वह स्वयं बड़ा उदास हो गया था। रास्ते भर न वह बोला न मैं। मैं उस रूप सि सिंड्रेला की बात सोच रहा था, जिसे भाग्य की निष्ठुर रेखाओं ने गेमा के दुर्ग में बन्दी बना रखा था। और जो किसी प्रिंस चार्मिंग की प्रतीक्षा कर रही थी, किसी अमेरिकन प्रिंस-चार्मिंग की!

ट्रेन बसों द्वारा विश्वसित नगरों और गांवों के बीच होकर गुजरी। मिलान की धुन्ध पीछे छूट गई थी और अब आकाश की नीलिमा वीनस की याद ताजा कर रही थी। श्वेत बादल, नीले आकाश में, वीनस की नदियों में तैरते हुए हंसों के समान लग रहे थे। पर्वतीय पठारों पर स्थित चरागाहों में भेड़ों और चरवाहों की आकृतियां यत्र-तत्र दिखलाई दे जाती। खेतों में हवा के झकोरों से ललनाओं के स्कर्ट फहरा रहे थे। कभी वह स्कर्ट थामती, कभी घास का गट्ठा और कभी अपने आप को।

मलयाली उपन्यास— (पृष्ठ २० का शेषांश)

चलने का परोक्ष उपदेश देने की प्रलोभन वृत्ति बढ़ रही है। जनता से प्रशंसा प्राप्त करने के उद्देश्य से सस्ते तरीकों को अपनाया जा रहा है। प्रतिभा को राजनैतिक दलों की आज्ञा का अभीष्ट-साधक बनाया जा रहा है।

एक समय था जबकि प्रगतिशील साहित्य का मार्ग-दर्शन बाहरी शक्तियां करती थीं। और लेखक नवीनतम फैशन पर चलना चाहते थे। लेकिन गत चार या पांच वर्षों में परिवर्तन हुआ है। कुछ लेखक संकीर्ण कुंजों में से अधिकांश स्वयं आरोपित आदर्शों को त्याग कर बाहर आ गए हैं। तकषी के 'चेम्मीन,' कुट्टी कृष्णन के 'उम्माचु' और पारप्पुरथु के 'खोजा और न पाया' में यह स्वतन्त्रता लक्षित है। ये उपन्यास किसी सांचे में नहीं बैठते। उपन्यासकार असली कलाकार के रूप में निखरे हैं। गत पन्द्रह वर्षों में प्रकाशित उपन्यासों में से अधिकांश लघु उपन्यास हैं। उनमें वास्तविक उपन्यासों की चौड़ाई और गहराई नहीं है। केवल हाल ही में इन उपन्यासकारों ने जीवन के गहन यथार्थ में गोता लगाना प्रारम्भ किया है, क्योंकि वे जान गए हैं कि पूरा चित्र खींचने के लिए बड़ी पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि अगले दस वर्षों में केरल के उपन्यासकार अन्तर्राष्ट्रीय गरिमा का कोई उपन्यास साहित्य को दे सकें, जिसके फूलों की महक संसार में भर जाए।

अनुवादक जगदीश नारायण वोरा

कवि नर्मद

रमणलाल माणेकलाल भट्ट

२३ नवम्बर, १८५८। गुजरात की एक पाठशाला के शिक्षक ने आज इस प्रकार सकल्प किया--"साझ को पाठशाला से घर आकर, अश्रुभरे नयनो से लेखनी की ओर निहार कर प्रार्थना की, अब मैं तेरी गोद में हू।" ये हृदय-स्पर्शी उद्गार अर्वाचीन गुजराती गद्य-पद्य साहित्य के आद्यविधायक कवि नर्मदाशकर लालशकर दवे (सन १८३३-१८८६) के हैं। गुजराती साहित्य के इतिहास की यह एक अपूर्व घटना है। अपने जीवन की प्रथम पचीसी व्यतीत करके इस उत्साही युवक ने साहित्य-सेवा की दीक्षा ली। केवल विद्या-विषयक प्रीति और साहित्य के प्रति अनुराग के कारण ही उसने यह असिधाराव्रत स्वीकार किया। केवल स्वीकार ही नही किया, अपितु विषम परिस्थितियो में उसका परिपालन भी किया। इस तरुण की यह कठोर तपस्या फलवती भी हुई, क्योकि इसने गुजराती साहित्य में अनेक नये मार्ग बनाने का यश प्राप्त किया। इस कर्मवीर को अनेक मान-पूर्ण अभिधान और विशेषण प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यथा--समयमूर्ति नर्मद, सुधारणा का शास्त्रकार, यौवन-मूर्ति नर्मद, अर्वाचीनो में आद्य, अर्वाचीन साहित्य-मन्वन्तर का मनु, सेनानी नर्मद, वीर नर्मद, युगधर नर्मद, साक्षरवीर नर्मद। गुजरात ने अपने इस वीर पूर्वज की जन्म शताब्दी अपूर्व आदर, ममत्व और उमग से मनाई थी। सन् १९५८ की २४ अगस्त को गुजरात ने अपने इस महान सुपुत्र की १२५वी जयन्ती मनाई थी। उसकी सर्वस्पर्शी सेवाओ को स्मरण करके उसके प्रभावशाली और अद्भुत व्यक्तित्व को शत-शत श्रद्धाजलिया अर्पित करके कृतार्थता अनुभव की।

समाज-सुधारक

नर्मद अपने युग का अग्रणी समाज-सुधारक था। जब सारे भारतवर्ष में समाज-सुधारणा का वातावरण जम रहा था, उस समय इसने गुजरात में समाज-सुधारणा की घोषणा की थी। सन् १८५६ में इसकी सुधारक प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ। सन् १८५९ में यह 'बुद्धिवर्धक सभा' का मत्री और 'बुद्धिवर्धक ग्रथ' का सम्पादक बना। बुद्धिवर्धक सभा में यह सुधारणा के विषय में भाषण दिया करता था। अपने निबन्धो और कविताओ द्वारा भी इसने सुधारणा का प्रचार किया। इसने धर्म, समाज और जाति-पाति के बन्धन तोडे। दुष्ट रूढियो का खडन किया। अज्ञान, अन्धविश्वास, वहम और गतानुगतिकता के विरोध में उग्र प्रहार किए। अनाचार और अनीति के विरोध में क्रांति का झडा बुलन्द किया। जनता में नवीन चेतना का सचार किया। गुजरात में नवजागरण का प्रसार किया। सुधारणा-सैन्य के सेनानी इस वीर ने अपनी सेना को उद्बोधन देने के लिए कहा--

"सहु चलो जीतवा जग ब्यूगलो वागे।
याहोम करीने पडो फतेह छे आगे।।"

अर्थात--सब जग जीतने के लिए आगे बढो, बिगुल बज उठा है। आत्मार्पण की घोषणा करके जग में जूझ पडो। विजय सामने खडी है।



नर्मद (रविशकर रावल के सौजन्य से)

यह केवल सुधारणा का उपदेश देने को ही नही बैठा रहा। आचरण द्वारा भी इसने सुधारणा की पहल की। सन् १८६० के दिसम्बर मास में इसने एक ब्राह्मण विधवा का ब्राह्मण के साथ पुनर्विवाह कराया। गुजरात में यह पहला पुनर्विवाह था। सन् १८६६ में नर्मद ने अपने घर में एक निराधार विधवा को आश्रय दिया और १८६९-७० में दूसरी विधवा के साथ विवाह किया। सन् १८६४ में उसने 'दाडियो' नामक पाक्षिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। अपने इस पत्र द्वारा इसने दुष्ट रूढियो का प्रबल और सफल खडन किया। यह तो सुधारणा का महारथी था। इसने गुजरात के व्यक्तित्व को फिर से समृद्ध किया। इसी कारण एक आलोचक ने इसको 'प्रबोधकाल का मगल नेता' इस विशेषण से स्मरण किया है।

सुधारणा के इस उद्बोधक ने वीरतापूवक समाज-सुधार का कार्य किया परन्तु विशाल अनुभव, व्यापक अध्ययन और गहन चिन्तन द्वारा इसके विचारो में परिवर्तन आया । इसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सुधारणा भारत के विलक्षण व्यक्तित्व के लिए अनिष्टकारक है । अत सुधारणा की त्रुटिया बताने में भी यह निभय रहा । अपनी भूलें प्रकट करने मे भी इसने सकोच नही किया । जिस वीरता के साथ इसने सुधारणा का प्रचार किया था, जिस हिम्मत से इसने सुधारणा का जग खेला था, उसी हिम्मत से उसने सुधारणा का विरोध भी किया और आर्य धम तथा सस्कृति का समथन किया । इसका विचार परिवर्तन भीरुता का परिणाम नही था । अपनी अन्तरात्मा को जिस समय जो प्रतीत हुआ उसे इसने इमानदारी से प्रकट किया । इसका विचार-परिवर्तन इसकी सत्यनिष्ठा, निर्भयता, विक्रमशीलता और वीरता का द्योतक है । इसकी सुधारणा-प्रवृत्ति का प्रेरक बल देश-हित था, प्रबल देश-प्रेम था, देशोत्कर्ष की भावना थी । इसी देश-हित से प्रेरित होकर इसने अपने परिवर्तित विचारो को स्पष्टता से प्रकट किया ।

अर्वाचीन कविता का आद्य द्रष्टा

नर्मद अर्वाचीन गुजराती कविता का आद्य द्रष्टा है । इसने कविता में अनेक नवीन विषयो का समावेश किया । मध्यकालीन गुजराती कवियो के विषय प्रधानत . पौराणिक कथाए, भक्तजन, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, भगवान, सासारिक माया आदि थे । इसने कविता के इस सकुचित विषय क्षेत्र को विस्तृत किया । अग्रेजी साहित्य के अध्ययन द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके इसने स्वतन्त्रता, प्रकृति, स्वदेश-प्रेम, वैयक्तिक प्रेम आदि विषय गुजराती कविता में प्रविष्ट किए । नई पगदडिया बनाई । इसने अग्रेजी ढग की आत्मलक्षी कविताए लिखी । गुजराती कविता मे व्यक्तित्व का सचार करने का यश नर्मद को है ।

यह स्वान्त सुखाय कविता लिखता था । परन्तु अग्रणी सुधारक होने के नाते सुधारणा के प्रचार के लिए भी यह कविता लिखता था । अत १८५६ के अरसे मे इसकी कविता 'सुधारणा की बाइबल' समझी गई । इस कारण से इसकी कविता में कुछ त्रुटिया भी आईं ।

कवि के रूप में इसकी अनेक मर्यादाए है । नर्मद का कार्य क्षेत्र काव्य-रचना तक ही सीमित नही था । कविता के विषय मे इसका विचार भी शुद्ध नही था, और इस बात का भी इसकी कविता पर बुरा प्रभाव पडा । तथापि इसमें शका नही कि इसकी कितनी ही कविताए अपनी सच्ची भावोद्रेकता और रसिकता के कारण चिरजीवी रहेंगी । यथा---जय जय गरवी गुजरात, सहु चलो जीतवा जग, आ ते शा तुज हाल, अवसान-सदेश, सध्या-शोभा, कबीरवड आदि । अन्य क्षेत्रो की तरह, कवि के रूप में नर्मद की सिद्धि नवीन प्रदेशों के पथान्वेषी के रूप में है, कविता में नवीन धाराओ के प्रवाहक के रूप में है, ऊचे काव्य-शिखरो के विजेता के रूप में नही ।

गुजराती भाषा में महाकाव्य लिखने की इसकी आकाक्षा थी । 'वीरसिंह' और 'रुक्म-रसिक' इसके अपूर्ण नमूने हैं । महाकाव्य के लिए समुचित छद खोजने का इसने प्रयत्न किया । इसे जो छद अनुकूल पड़ा उसका निर्माण करके कविता में उसका व्यवहार किया ।

गुजराती गद्य का पिता

नर्मद गुजराती का प्रथम शिष्ट गद्यकार है । इसकी कविता की अपेक्षा इसका गद्य अधिक सत्त्वशाली है । निबन्ध, विवेचन, चरित्र-लेखन, आत्म-कथा, नाटक, इतिहास आदि इसने साहित्य के विविध प्रकारो का व्यवहार किया है । इसने सरल, रूक्ष, मर्मयुक्त और प्रौढ साहित्यिक गद्य की विशाल आधारशिला स्थापित की है । निबन्ध, विवेचन और आत्म-कथा लिखन में तो इसने नवीन पथ का प्रवर्तन किया ही है, साथ ही इसमें अच्छी सफलता भी प्राप्त की है । विपुलता और गुण-गरिमा दोनो की दृष्टि से गद्य साहित्य के क्षेत्र मे नर्मद की देन बहुत उच्च श्रेणी की है । इसी कारण एक समथ गद्यस्वामी के रूप में उसकी गणना होती है ।

प्रथम निबन्धकार

नर्मद गुजराती निबन्ध का जनक है । 'मडली मडवाथी थता लाभ' शीर्षक लेख गुजराती भाषा का प्रथम निबन्ध है (१८५१) । इसकी सबसे अधिक समृद्ध और गुण गौरवशाली देन तो इसके निबन्ध ही हैं । निबन्ध ही इसके विचारो का मुख्य माध्यम थे । समाज-सुधारणा के लिए इसने निबन्धो का ही उपयोग किया । स्वतन्त्रता, समाज सुधारणा, इतिहास, शिक्षा, विद्या-प्रसार, धर्म, उद्योग, गुजरातियो की स्थिति, मध्यकालीन गुजराती कवि, कविता, स्वदेशाभिमान, देश-जनता, कुल की उच्चता, सुख आदि इसके निबन्धों के विषयो में पर्याप्त विविधता है । निबन्धो म नर्मद के व्यक्तित्व के सभी लक्षण प्रकट होते हैं । इन निबन्धो की भाषा में सरलता है, सादगी है, स्फूर्ति है, मार्मिकता है । एक गुजराती विवेचक ने नर्मद की गद्यशैली की विशेषता सुन्दर रूप में बताई है —

"नर्मदाशकर का गद्य एक गुजराती का गद्य है---ऊचे नीचे बहता हुआ, सरल, स्पष्ट, क्रीडामय, मार्मिक, व्यगपूर्ण, उत्साही और भाववाही । यह नर्मद के स्वभाव के अनुकूल थोडा आडम्बर-पूर्ण, उपदेशमय और कहावतो से भरा हुआ है । परन्तु वह गम्भीर, लावण्य-मय और कल्पना-युक्त नही ।"

आद्य विवेचक

सामान्यतया नवलराम लक्ष्मीराम पड्या (१८३६-१८८८) को ही गुजराती साहित्य का प्रथम विवेचक माना जाता है । परन्तु प्रो० विष्णुप्रसाद त्रिवेदी ने अपने 'विवेचना' ग्रथ में 'नर्मद का काव्यविवेचन' शीर्षक लेख में ठीक ही लिखा है कि नर्मद हमारा प्रथम विवेचक है । विवेचक के रूप में इसने साहित्य-चर्चा की है । प्रेमानन्द, शामल, दयाराम आदि गुजराती कवियो का मूल्याकन किया है । गद्य-साहित्य विषयक लेख लिखे है, और ग्रथो की आलोचनाए की हैं । 'कवि और कविता' इसका सुविदित विवेचन निबन्ध है । कविता कैसी होनी चाहिए, कवि किसे कहा जाय, काव्य की आत्मा, रस, काव्य के छद, अलकार आदि विषयो की इसने चर्चा की है । नर्मद की साहित्य-चर्चा में अग्रेजी विवेचक हेजलिट के काव्य-विवेचन की तथा सस्कृत-अलकार-शास्त्र की प्रतिध्वनि है । काव्यविषयक हेजलिट के विचार नर्मद ने गुजराती में लिखे हैं । नर्मद कहता है---रस, तर्क, स्फूर्ति और चित्र उपस्थित करने की शक्ति में उत्तम कविता उपजाई जाती है । 'दयाराम' विषयक अपने निबन्ध में इसने कहा है---"कवि कितना ही विद्वान क्यो न हो, सरल और प्रसादपूर्ण शैली से भले ही अपनी कविता को सजाने वाला हो, परन्तु यदि उसमें रस नही, ओज नही और चित्र उपस्थित करने की शक्ति नही तो वह कवियो की पक्ति में अन्त में ही बैठेगा । उसे ही उत्तम कवि मानना चाहिए जो सभी विषयो पर सभी रसो में ऐसी अद्भुत छटा से लिख सके कि हृदय प्रभावित हो जाए ।"

काव्य कला और सगीत कला का अभेद बताते हुए विवेचक नर्मद ने कहा है---"लोग राग द्वारा ही कविता की परीक्षा करते हैं, यह ठीक नही । राग का कविता से कोई सम्बन्ध नहीं है ।" नर्मद ने छद-रचना की अनिवार्यता को स्वीकार किया है और कविता में अनुप्रास को महत्व नही दिया है । आज भी नर्मद के ये विचार कितने सच्चे हैं । विवेचन में इसकी दिशा ठीक

थी। निर्भय, सत्य-वक्ता, सहृदय, संवेदनशील, उत्साही और रसिक यह विवेचक अवश्य ही पुरोगामी विवेचक के रूप मे हमारे सम्मान का अधिकारी है।

प्रथम आत्म-कथा लेखक

"अपनी बात स्वय लिखने की प्रणाली हमारे यहा नही है। इस नवीन पद्धति को अपने यहा प्रारम्भ करना उचित है।" इस हेतु से प्रेरित होकर नर्मद ने पश्चिमी देशो जैसी आत्म कथा लिखने का प्रयत्न किया है। उसका सुन्दर परिणाम है—'मारी हकीकत'।

नर्मद से पूर्व, गुजरात के प्रथम समाज-सुधारक दुर्गाराम मेहताजी लिखित दिनचर्या मे आत्म कथा के कुछ एक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यह दिनचर्या (डायरी) मानव-धर्म सभा के वृत्तान्त के रूप में लिखी जाती थी। परन्तु वे फुटकर टिप्पणिया है। उन्हें आत्म-कथा न कहकर आत्म-कथा की सामग्री रूप मानना चाहिये। साहित्यकार के रूप में 'मारी हकीकत' गुजराती भाषा की सुसम्बद्ध प्रथम आत्म-कथा है। नर्मद ने सन् १८६६ में तेंतीस वर्ष की उम्र में यह लिखी थी। आत्म-कथा लिखते हुए नर्मद ने यह उन्नत आग्रह रखा है —

"मै जो कुछ लिखूगा, अपनी समझ के अनुसार सत्य ही लिखूगा। चाहे वह मेरी अच्छी बात हो या खराब। लोगो को वह पसद आवे या न आवे।" यही भावना महात्मा गाधीजी की थी—"मुझ जैसे अनेको का लय हो जाय, पर सत्य की विजय हो। अल्पात्मा को मापने के लिए सत्य का मापदण्ड कभी छोटा न हो।"

आत्म-कथा लिखने में सत्य का महत्व कितना अधिक है, उसे नर्मद जानता है। 'मारी हकीकत' मे सत्यभाषी नर्मद सच्चे हृदय से अपना अन्त करण खोलता है। अपने मनोमथन, मनोदशा, मनोरथ, भावना, आवेग, आवेश, विकलता, सताप, अपने जीवन के छोटे बडे प्रसग, अपनी निबलता, त्रुटिया और दोष आदि—इन सबको मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है। अपने माता-पिता की स्मृतिया लिखते हुए वह स्वय आर्द्र हो जाता है और वाचको को भी भावार्द्र कर देता है। 'मारी हकीकत' मे नर्मद का सत्यशील, प्रभावक और विक्रमशील व्यक्तित्व उपस्थित होता है।

प्रथम कोशकार

नर्मद गुजराती भाषा का प्रथम कोशकार है। इससे पूर्व कोश-निर्माण के प्रयत्न तो हुए थे। एक मुसलमान सज्जन ने तथा करसनदास मूलजी ने कोश तैयार किये थे, किन्तु वे बहुत छोटे थे। नर्मद का शब्दकोश इन सबसे बहुत बडा है। गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'सार्थ गुजराती जोडणीकोश' को निहारें तो नर्मद के महान कार्य की झाकी मिल सकती है। अनेक विद्वानो के सहयोग से कोश रचना का भगीरथ कार्य अपेक्षया अधिक सरलता से सिद्ध हो सकता है। परन्तु नर्मद ने तो अकेले हाथो अदम्य उत्साह से, बारह वर्ष के अविरत उद्यम के पश्चात उसे तैयार किया था। इसका यह काम विख्यात अग्रेज कोशकार डा० जोनसन का स्मरण कराता है। इस कोश के प्रकाशन के लिये उसे अपने मित्र और प्रशसक करसनदास मूलजी की आर्थिक सहायता प्राप्त होने की आशा थी। कवि ने यह भी सोच रखा था कि कोश करसनदास मूलजी को ही अर्पण करूगा। परन्तु इसी अरसे में करसनदास की आर्थिक स्थिति बिगड गई और कोश के मुद्रण का भार नर्मद पर आ पडा। कोश प्रकाशन का कार्य दुष्कर हो गया। गरीबी में अपने दिन व्यतीत करने वाले नर्मद पर बडी विपत्ति आ पडी। परन्तु उसने हिम्मत नही हारी। और हिम्मत हार जाए तो फिर वह नर्मद कैसा? ऋण लेकर इसने कोश का मुद्रण-कार्य पूरा किया। गुजरात और गुजराती भाषा के प्रति ममता और अभिमान रखने वाले दृढ निश्चयी नर्मद ने कोश गुजरात और गुजराती भाषा को अर्पित किया। अन्य किसी व्यक्ति को अर्पण करके कोश का व्यय प्राप्त करने की इच्छा नही रखी। यह 'नर्मकोश' नर्मद की महान सिद्धि है।

जीवन और साहित्य के अनेक क्षेत्रो में पहल करने वाले 'अर्वाचीन गुजराती-सस्कृति के विधाता' का समादर पाने वाले इस महापुरुष को, उसकी विविध और मूल्यवान सेवाओ के लिए, हम स्मृति पुष्पाजलि अर्पित करते हैं।

अनुवादक—शकरदेव विद्यालकार

पुस्तक समालोचना—(पृष्ठ ४४ का शेषाश)

पर हरिभाऊ जी जिस क्राति को चाहते है उसमें बहुत सी बाधाए दिखलाई पडती हैं। स्वतन्त्रता के बाद से जो कुछ हुआ है उस पर हरिभाऊ जी काफी दुखी है। वह काग्रेस से भी दुखी हैं। वह लिखते है—"काग्रेस में दलबन्दी व पदलोलुपता जोरो पर है और बाहर दूसरी पार्टिया परेशानी पैदा कर रही है।"

उनकी राय में भारत की जो पुरानी फूट की बीमारी है, वही सारी बातो के लिए जिम्मेवार है और वह सार्वजनिक क्षेत्रो में दलबन्दी, मतभेद, मार-काट आदि के रूप में प्रकट होती है। यदि मतभेद मामूली होता तो कोई बात नहीं, पर उनके अनुसार "मतभेद की अवस्था में हम सस्था के हित और उद्देश्यो को भूल ही जाते है और अपने क्षुद्र स्वार्थ, महत्वाकाक्षा, अभिमान आदि के वशीभूत होकर वैमनस्य मोल ले लेते है। हमारे अन्दर क्षुद्रताओ, मलिनताओ से ऊपर उठने की शक्ति होनी चाहिए। हमारी दृष्टि व्यापक और उदार होनी चाहिए।"

उन्हें वर्तमान समाज व्यवस्था से काफी मतभेद है और वह कहते है—"सारा मनुष्य-समाज दो प्रकार के लोगो में बट-सा गया है—एक अमीर, दूसरा गरीब, एक पीडक, दूसरा पीडित, एक शासक, दूसरा शासित। अब यह विभाजन बहुत कृत्रिम हो गया है व इसने महान अन्याय तथा अत्याचार का रूप धारण कर लिया है, जिसके फलस्वरूप ससार की तमाम छोटी, पिछडी, अशिक्षित, दबी, गुलाम गरीब जनता का कोई वाली-वारस नही दिखाई पडता। जितनी सुख-सुविधा, स्वतन्त्रता है उसके मुस्तहक, ठेकेदार, कुछ विशिष्ट लोग या वर्ग—जैसे हो गए है, और अधिकाश जनता अपने पालन-पोषण व रक्षा के लिए उन्हीं की ओर मुह उठाए रहती है।"

इस प्रकार हम यह देखते है कि हरिभाऊजी आज की सारी समस्याओ से अच्छी तरह परिचित है और वह शोषणमूलक समाज से परेशान है। फिर भी किसी कारण से इस समय वह उत्पादन के सारे साधनो का राष्ट्रीयकरण नहीं चाहते। अवश्य जैसा कि इस पुस्तक से पूरी तरह स्पष्ट है, अन्तिम रूप से उनकी कल्पना के समाज में सारे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। पुस्तक विचारोत्तेजक है, पर साथ ही इसमें ननुनच काफी है।

मन्मथनाथ गुप्त

चन्द्र-चकोरी

(शेषांश)

मामा वरेरकर

दूसरा दृश्य

(चकोरी मन-ही-मन एक गीत गुन-गुनाती है। इसी समय उसे दूर से पुकारते हुए उसके पिता दाजी साहब शिरके प्रवेश करते हैं)

दाजी—चकोरी-चकोरी—तू यहाँ है क्या ? कहाँ गई थी ?

चकोरी—जाऊँगी कहाँ ? यही तो बैठी हूँ तब से। दूसरा काम ही क्या है मुझे ? सिर्फ बैठे रहना ! न, स्कूल-न कालेज ! मेरे साथ की लड़कियाँ बी० ए० हो गई हैं। जब मुझ से मिलती है, तो मैं शर्म से गड़ जाती हूँ। फिर क्या जरूरत है कहीं जाने की ?

दाजी—मैंने सिर्फ तुझे पुकारा था, तो तूने मुझे इतनी लम्बी-चौड़ी बातें सुना दीं। स्कूल और कालेज में नहीं गई तब तो इतना मुह चलाती है। जाने पर न जाने क्या करती ? फिर भी गनीमत है कि पुराने जमाने का परदा अब नहीं है—

चकोरी—अब और अलग परदे की क्या जरूरत ? हमेशा घर के भीतर ही तो बन्द रहती हूँ। मैं तो बिल्कुल ऊब उठी हूँ इस जिंदगी से !

दाजी—अच्छा, अच्छा ! अब नहीं ऊबेगी। मैं कुछ ऐसा इंतजाम कर रहा हूँ कि अब तुझे ऊबने का मौका ही न आएगा। एक काम कर। भीतर जा। मुह-हाथ अच्छी तरह धोकर पोंछ ले। ठीक-से कंघी-चोटी कर ले। अपनी वह चौड़ी किनारीवाली 'इरकली' साड़ी पहिन ले और घुटनों तक घूंघट काढ़कर अपने सारे गहनें पहिन लें। जा, और इस तरह जल्दी तैयार हो जा। और, जब मैं पुकारूँ तब आ जाना।

चकोरी—किस लिए ?

दाजी—देख, लड़कियों का काम है जो उनसे कहा जाए उसे वे चुपचाप सुनें।

चकोरी—वह इरकली साड़ी मुझ से नहीं सम्हलती और न वे चार सेर वजन के गहने। क्या मैंने उन्हें पहिले कभी पहना था ?

दाजी—पहिले कभी पहने नहीं थे इसीलिए कहता हूँ कि एक बार पहन कर देख ले। बड़े शीशे में अपने आपको इस तरह सिर से पैर तक सजी हुई देखकर मुझे बता कि कैसी लगती है।

चकोरी—बताऊँ क्या ? उस स्वांग की कल्पना मात्र से ही मुझे हँसी आ जाती है। क्या आपको ऐसी सजी हुई लड़कियाँ दिखती हैं कहीं आजकल ? क्यों सजा रहे हैं मुझे ?

दाजी—आज तुझे देखने आ रहे हैं।

चकोरी—कौन ?

दाजी—वे एक राजा हैं।

चकोरी—राजा तो समाप्त हो गए हैं अब। रियासतें गईं और राजा भी गए।

दाजी—तू ठीक कहती है। पर उनका रुतबा तो अब तक कायम है।

चकोरी—कहाँ के राजा हैं ये ?

दाजी—भिकनपुर के।

चकोरी—वही तो नहीं जो पिछले साल आपसे एक लाख रुपये का कर्ज ले गए थे ? क्या वही मुझे देखने आ रहे हैं ?

दाजी—देखो बेटी, विपत्ति किस पर नहीं आती ? भगवान ने हमें दिया है। इसीलिए माँगनेवाले हमारे द्वार पर चले आते हैं—

चकोरी—ठीक है। आपने उन्हें कर्ज दिया इससे मुझे कोई शिकायत नहीं। पर अब आप उसे अपनी बेटी भी दे रहे हैं क्या ?

दाजी—तू भी खूब है री ? अब तुझसे क्या कहा जाए ? अरी, राजा के लिए आदर-सूचक 'उन्हें' कहना चाहिए और तू 'उन्हें' न कहकर 'उसे' कहती है।

चकोरी—वह हमारा कर्जदार है न ?

दाजी—पर वे एक राजा हैं।

चकोरी—वह राजा था किसी वक्त, अब रंक हो गया। इसीलिए तो आया था न हमारे द्वार पर ? आप क्या ऐसे बेकार बुद्धू को मेरे गले बाँध रहे हैं ? उसके घर जाने पर भी मेरा सारा खर्च आप ही को उठाना होगा। इससे तो जहाँ हूँ वहीं क्या बुरी हूँ ?

दाजी—तेरा विवाह तो करना ही होगा। तेरी मा होती तो इससे पहिले ही तेरे हाथ पीले हो जाते।

चकोरी—उस समय क्या होता, यह सोचना अब व्यर्थ है। मा होती तो मैं कालेज ही जाती। वह मुझे घर में यूं बेकार कभी न बिठला रखती। और अगर विवाह ही करती, तो मेरे लिए कोई डिप्टी कलक्टर या जज ही खोजती। ऐसा बेकार बिगड़ा रईस उसे पसंद न आता।

दाजी—पर वे राजा तो अब आएंगे।

चकोरी—तो उन्हें चाय पिला दीजिए और यह भी पूछ लीजिए कि जो कर्ज लिया है उसे वे किस तरह अदा करेंगे ?

दाजी—अब उनसे कर्ज क्या अदा होगा ?

चकोरी—तो भी आप मुझे उसके घर भेज रहे हैं ? मैं साफ कहे देती हूँ—

दाजी—(चिढ़कर) चुप रह। अब बहुत हो गया। लड़कियों को सयानों की बात माननी चाहिए।

चकोरी—पर अब मैं बच्ची नहीं हूँ। मैं अपना भला-बुरा अच्छी तरह समझ सकती हूँ।

दाजी—पर मैं तो उनसे कह चुका हूँ न ?

चकोरी—तो मैं कह दूंगी उनसे।

दाजी—क्या कहेगी ?

चकोरी—जो कहूंगी वह आप सुन ही लेंगे।

दाजी—क्या इतने बड़े आदमी के सामने मेरी बेइज्जती करेगी ?

चकोरी--वह कहा का बडा है । अगर उसके यहाँ कुर्की ले जाएँ तो मिट्टी के ठीकरे भी न निकलेंगे घर में ।

दाजी--अब तू बडी मुहफट हो चली है, समझी ? यह ठीक नही । बिना मा की थी इसलिए मैंने तेरे खूब लाड सहे । उसका क्या इस तरह बदला दे रही है ? मै कुछ नही सुनना चाहता --जा और शृगार करके जल्दी तैयार हो ।

चकोरी--मै नही जाऊँगी । उस राजा के घर में भी मै आखिर इसी रूप में ही तो रहूँगी । उससे कह दीजिए कि वह मुझे इसी रूप में देख ले । और मेरे मुह से चार तीखी बातें भी सुन ले ।

दाजी--अब इस लडकी से क्या कहा जाए ?

चकोरी--कुछ भी न कहिए । मेरे लिए यदि वर ढूढना चाहते है तो ऐसा ढूढिए जो मेरे समान हो--मेरे बराबर ही पढा-लिखा हो--मेरे सामने अपनी शिक्षा की शेखी बघारने का मौका उसे न मिले । हमारे बराबर ही धनी हो वह । बाप के घर ऐश्वर्य भोगकर पति के घर मायके की शान दिखाना मुझे पसद नही । दिखने में भी वह मेरे जैसा सुन्दर होना चाहिए और उसका घर इसी शहर में होना चाहिए जिससे मै जब चाहूँ अपने घर आ-जा सकू ।

दाजी--लगता है अपने लिए तूने ऐसा कोई खोज लिया है शायद ?

चकोरी--हाँ ।

दाजी--कौन है वह ?

चकोरी--है एक । मेरी सारी शर्तें पूरी करता है वह ।

दाजी--ऐसा कौन है वह कन्हैया ?

चकोरी--वह देखिए--वह देखिए । वह आ रहा है ।

दाजी--कहाँ ?

चकोरी--देखिए, वह द्वार पर खडा है । आजाओ न भीतर ?

दाजी--वह ? (जोर से चिल्ला कर) वह ? वह भोसले का बेटा ?

चकोरी--पर है न ठीक वैसा ही जैसा मै चाहती हूँ ।

दाजी--पर भोसले का बेटा ?

चकोरी--कर्जदार नहीं है । आपके घर कर्ज लेने नही आएगा कभी ।

दाजी--(दात-ओठ चबाकर)पर भोसले का बेटा --

चकोरी--असली मराठा खानदान का ।

दाजी--फिर भी है तो भोसले का बेटा--

चकोरी--कुलदीपक है । छत्रपति शिवाजी महाराज के वश का कुलदीपक ! चालीस लाख का मालिक । आपसे भी अधिक धनी । और उसके चेहरे की ओर तो तनिक देखिए । अगर सिनेमा में जाए तो पचास हजार रुपया माहवार कमाए । ऐसा सर्वांग सुन्दर जमाई पाने के लिए सात जन्मो के पुण्यो का फल चाहिए ।

दाजी--(मन-ही-मन पुटपुटाते हुए और दाँत-ओठ चबाकर) भोसले का बेटा ? मेरे घर में आया ? मेरे घर में ? इस शिरके के घर में ?

चकोरी--शिरके के घर में एक गुणवती लडकी जन्मी । इसलिए भोसले की चरण-रज से शिर्के का घर पावन हो गया !

दाजी--चकोरी, मुह सम्हाल कर बोल । यह शिरके का घर है । सभाजी ने जिस शिरके का सत्यानाश कर दिया था उस शिरके का घर है यह । असल शिरके खानदान का हूँ मै ।

चकोरी--(चन्द्र से) वही क्यो रुक गये । भीतर आओ न ?

दाजी--भीतर ? इस घर में ? शिरके के घर में ? जिस घर की सीढी पर कभी कदम न रखने की प्रत्येक भोसला शेखी मारता है उसी शिरके के घर में ? कैसे आया तू इस घर में ?

चन्द्र--जैसे सब आते हैं ।

दाजी--भोसले को छोड कर जिस तरह और सब आते है--क्या उस तरह ?

चन्द्र--हाँ । उसी तरह ।

दाजी--शर्म नही आई ?

चन्द्र--शर्म किस बात की ? मैने आपका कोई अपराध नही किया ।

दाजी--पर तेरे बाप-दादाओ ने तो किया ?

चन्द्र--मैं थोडे ही बाप-दादा हूँ । किसी जमाने में मेरे बाप-दादाओ का राज्य था । वह राज्य भी अब चला गया । दुश्मनी इसलिए थी कि उनके पास राज्य था । जब वह राज्य ही जाता रहा तो दुश्मनी क्यो रहे ? हम भी कहाँ थे राजा ? यह बात जरूर है कि अपने पुरुषार्थ से आज हम राजा से भी बडे बने बैठे है । आज प्रजातत्र है । सब एक स्तर पर है । मै भी इस देश का राष्ट्रपति हो सकता हूँ । सारी प्रजा को आज समान अधिकार प्राप्त है ।

दाजी--बडा वाचाल दीखता है !

चन्द्र--केवल दिखता ही नही । हूँ भी वैसा । कुछ दिन पहिले नगर-पालिका की चुनाव-सभाओ में मैने जो भाषण दिए थे, वे शायद आपने सुने नही ? तालियो का ताँता लग जाता था । आसमान गूज उठता था । सभी सभाओ में मैने पूरी धाक जमा दी थी । लोग मुझे सिर पर उठाकर ले जाते थे । कल इस राज्य का मत्री भी हो सकता हू--

दाजी--अजी वाह ! जरा सूरत तो देख लो मत्री होने वाले की ।

चन्द्र--देख लीजिए । खूब ध्यान से देख लीजिए । उस दिन इटली का एक चित्रकार आया था । भगवान श्रीकृष्ण का पोज देने के लिए मुझे बुला रहा था--

दाजी--चडूखाने की ठोक रहा है बेटा!

चकोरी--यह चडूखाने की नही । बिलकुल सत्य है । मेरे सामने उसने इनसे पूछा था ।

दाजी--तेरे सामने ? तू कब गई थी इसके घर ?

चकोरी--जब भी बाहर जाती हूँ, इन्ही के साथ तो जाती हू ।

दाजी--मेरे अनजाने ?

चकोरी--यहाँ जाने और अनजाने का कोई सवाल ही नही । दिल में आया कि जाऊँ और बस, इनके साथ चल देती हूँ ।

दाजी--मेरे सामने यह सब साफ-साफ कह रही है !

चकोरी--तो क्या झूठ बोलू ?

दाजी--(चन्द्र से) और क्यो रे क्या यह सब तेरा बाप जानता है ?

चन्द्र--इसका आप भी कहाँ जानता है कि यह हमेशा मेरे साथ रहती है ?

दाजी--यानी तुम दोनो अपने-अपने बाप को धोखा दे रहे हो ?

चन्द्र--इसमें धोखे की क्या बात है ? वे मना करते और हम उसे न मानते, तो वह धोखा होता । यहाँ वैसी कोई बात है ही नहीं ।

दाजी--तो अब मैं कहता हूँ--

चकोरी--क्या कहते है ? क्या यह कि मै इनके साथ न जाऊँ ?

दाजी—हाँ हाँ । यही !

चकोरी—पर अब तो मैं इनके साथ हमेशा के लिए जा रही हूँ ।

दाजी—मतलब ?

चकोरी—मैं इनके साथ विवाह करूँगी ।

दाजी—शिरके की लड़की को वह भोसला स्वीकार करेगा ?

चकोरी—वह अब देख ही लें आप ।

दाजी—क्या देख लूंगा ? प्राण चले जाएँ पर वह तुझे कभी स्वीकार नहीं करेगा ।

चकोरी—देख लेना ।

दाजी—और, चाहे जान चली जाए, पर मैं भी अपनी बेटी का विवाह भोसले के बेटे से नहीं करूँगा ।

चकोरी—आपको किसी का विवाह करने की क्या जरूरत ? विवाह तो मैं ही करूँगी इनसे !

चन्द्र—हाँ । हमी लोग अपना विवाह कर लेने वाले हैं । रजिस्ट्रार साहब हम दोनों का विवाह कर देने के लिए तैयार हैं ।

दाजी—बिना किसी धूमधाम के ही क्या विवाह हो जाएगा ?

चकोरी—धूमधाम से होनेवाला भी विवाह होता है और रजिस्ट्रार के सामने होने-वाला विवाह भी विवाह ही है । विवाह होना चाहिए, बस ! फिर वह किसी भी पद्धति से हो ।

दाजी—और अगर इसका बाप तुझे अपने घर में न घुसने दे तो ?

चकोरी—तो फिर चले जाएँगे कहीं भी ।

दाजी—'कहीं भी' याने कहाँ ? और कहीं भी जाकर खाओगे क्या ?

चकोरी—हम भूखों नहीं मरेंगे ।

दाजी—कौन नौकरी देगा इसे ? यह मैट्रिक भी तो नहीं है ।

चकोरी—चाहे मैट्रिक हो, चाहे बी०ए० । नौकरी मिलेगी सौ-डेढ़ सौ रुपये की । पर इन्हें नौकरी मिल रही है एक लाख रुपये साल की ।

दाजी—एक लाख रुपये साल की ?

चकोरी—हाँ । और मुझे भी अलग मिल रही है ।

दाजी—तुझे भी एक लाख रुपये की ?

चकोरी—लाख की नहीं । मुझे दो लाख की !

दाजी—वह कौन कुबेर का बेटा है जो तुम्हें यह नौकरी देने वाला है ? कहाँ मिल रही है यह नौकरी ?

चकोरी—सिनेमा में समझे ? सिनेमा में

दाजी—(चिल्लाकर) सिनेमा में ?

चकोरी—हाँ हाँ ! सिनेमा में । देखिए न हम लोगों की तरफ—यह तो प्रारम्भ का वेतन है । आगे चलकर तो इतना रुपया मिलेगा कि भोसले और शिरके दोनों की सारी जायदाद खरीद लेंगे हम ।

दाजी—सिनेमा में जाएगी ? शर्म नहीं आती । क्या स्याही पोतेगी हमारे नाम पर ?

चकोरी—स्याही कैसी ? बिजली की रोशनी में जगमगाएँगे शिरके और भोसले के नाम ।

दाजी—वाह ! क्या कहने ? खूब दीये जलाओगी ? सिनेमा में जाएगी ? अरे, कुल की लाज का भी कुछ ध्यान है तुम्हें ?

चकोरी—कुल की लाज आप देखें । हम सिर्फ अपने आप तक ही देखते हैं । यदि कुल का इतना अभिमान है आपको, तो चुपचाप हम दोनों का विवाह कर दीजिए ।

दाजी—क्या तू मुझे इस तरह दबाना चाहती है ? जा सिनेमा में—मेरी बला से, मैं समझूंगा मेरी लड़की मर गई । खुशी से जा—चाहे जो कर ।

चकोरी—(चन्द्र से) चलिए चन्द्रजी, हमें इनकी इजाजत मिल गई । चलिए अब । (उठकर चलने लगती है) ।

दाजी—कहाँ चली ?

चकोरी—इनके साथ ।

दाजी—इस भोसले के साथ ?

चकोरी—हाँ ।

दाजी—कहाँ जाएगी ?

चन्द्र—यहाँ से हम जाएँगे आबा साहब के यहाँ । वे भी आपकी तरह नाराज होंगे और हमसे कह देंगे कि जाओ । फिर हम घर से निकल पड़ेंगे । विवाह करेंगे और सीधे सिनेमा में चल देंगे ।

दाजी—सिनेमा ! सिनेमा !! सिनेमा !!! हरामजादा, मेरी बेटी को सिनेमा में ले जाएगा ? —मेरी बेटी को ? इस दाजी साहब शिरके की बेटी को ? सिनेमा में ? क्या समझा है तू ने ? क्या हिम्मत है तेरी इसे ले जाने की ?

चन्द्र—मैं कहाँ ले जाता हूँ इसे ? यही जा रही है मेरे साथ ।

दाजी—देखता हूँ वह कैसे जाती तेरे साथ ?

चकोरी—चलो जी हम चलें । ये देखना चाहते हैं कि हम कैसे जाते हैं ! अच्छा दाजी साहब ! हम जा रहे हैं ।

दाजी—तू कहाँ जाती है ?

चकोरी—अभी बताया न ।

दाजी—खबरदार ! एक कदम आगे बढ़ाया तो । ओ भोसले के बच्चे, तू भी चला जा यहाँ से । एक ओर तो ऐसी शेखी बघारना कि शिरके की घर की सीढ़ी नहीं चढ़ेंगे और—

चन्द्र—मैंने ऐसा कभी नहीं कहा ।

दाजी—तूने न कहा हो । पर तेरा बाप जो कहता है न ? तेरा बाप—तेरे बाप का बाप—तेरे बाप के बाप का बाप— और उन सब के बाप यही कहते आए हैं—

चन्द्र—पर मैं कहता हूँ ऐसा ? नई नींव और नया खेल शुरू हुआ है अब । नया राज्य आया है । वे पुराने राजा गए और उन्हीं के साथ वे पुरानी प्रतिज्ञाएं भी गईं ।

दाजी—तू भी जा उन्हीं के साथ । नहीं गया अभी तक ? कहता हूँ कि जा-जा-जा !

चन्द्र—मैं नहीं जाऊँगा !

दाजी—नहीं जाएगा ?

चन्द्र—चकोरी ने मुझे बुलाया—मैं आया—जब तक वह जाने को नहीं कहेगी, तब तक मैं नहीं जाऊँगा ?

दाजी—वह कौन है ? इस घर का मालिक मैं हूँ । मैं कहता हूँ तुमसे सीधी तरह से जाता है या नहीं ? वर्ना—

चन्द्र—वर्ना क्या करेंगे आप ?

दाजी—यूं कन्धा पकड़कर तुझे—अरे-अरे-अरे !

(चन्द्रकान्त नीचे गिर पड़ता है) ।

चकोरी—हे भगवान, यह क्या हुआ ? क्या हुआ ? पिताजी देखिए तो इन्हें क्या हो गया ?

दाजी—(घबराकर) क्या हुआ ? मैंने तो सिर्फ हाथ ही लगाया था ! धकेला भी नहीं—और एकाएक यह क्या हो गया इसे ?

चकोरी—(आजजी से) आसार कुछ ठीक नहीं दिख रहे हैं । फौरन डाक्टर को बुलाइए । फोन कीजिए उन्हें । ये शायद बेहोश हो गये हैं । हाय राम ! यह क्या हो गया ? एकाएक यह क्या हुआ ? (नब्ज पर हाथ रखती है) नब्ज का भी पता नहीं ।—आंखें

फाड़कर क्या देख रहे हो ? जल्दी जाकर डाक्टर को फोन कीजिए न ? जाइए-जाइए ।

दाजी—(जाते-जाते) डाक्टर घर में हो तब तो ठीक है वर्ना—हे भगवान यह कहाँ की आफत आ गई ? (जाता है ।)

चन्द्र—(धीरे-से) क्या वे चले गए ? नाटक बिल्कुल ठीक हुआ न ?

चकोरी—जब वे आए तो साँस बिल्कुल रोके रहना । जरा भी हलचल न करना । बिल्कुल अकड़ जाना । (जोर से) और दाजी साहब, इनके आबा साहब को भी फोन कर दीजिए ।

दाजी—(भीतर से) क्या भोसले को ? प्राण चले जाएँ फिर भी नहीं ।

चकोरी—तो कम से कम उनकी लड़की को ही फोन कर दीजिए । अब इनकी कोई आशा नहीं दीखती । व्यर्थ ही एक कलंक लग जाएगा हम लोगों पर । किशोरी को फोन कर दीजिए । (धीरे से) अब बिल्कुल अचल पड़े रहिए—बिल्कुल चुप—(जोर से) उसे फोन कर दिया ?

दाजी—हाँ-हाँ । करता हूँ । डाक्टर आ रहे हैं ।

चकोरी—हाय भगवान ! अब करूँ भी क्या ? मेरा कलेजा धड़क रहा है । (चिल्लाकर) दाजी, पहिले इधर आइए—देखिए तो ये कैसा कर रहे हैं—ओ आ ! अब क्या करूँ ? मैं तो पागल हो जाऊँगी । (चिल्लाकर) पहिले जल्दी यहाँ आइए न, दाजी ।

दाजी—(भीतर आते हुए) वह भी आ रही है ।

चकोरी—आ रही है न ? उसके आने तक तो कम-से-कम ये अच्छे रहें । वह सब अपने पिता से कहेगी ही ।

दाजी—तूने इसे यहाँ क्यों बुलाया था ? यदि कुछ भला-बुरा हो जाए, तो हम पर व्यर्थ ही एक झूठा कलंक लग जाएगा !

चकोरी—हाय ! हाय ! अब क्या करूँ ? कम-से-कम उधर से थोड़ा कोल्ड-वाटर ही ले आइए—झूठा कलंक कैसा ? आपने इन का गला पकड़ लिया था—एक तो पहिले से ही ये सुकुमार हैं—

दाजी—मैं सिर्फ उसका कन्धा पकड़ रहा था और तू कहती है कि मैंने उसका गला पकड़ा । हाँ, ले, यह रहा कोल्ड-वाटर ।

चकोरी—हाथ-पैर तो देखिए—कैसे मुर्दे की तरह हो गए हैं—और नब्ज का भी कहीं पता नहीं लग रहा है । (चीखकर) आपने प्राण ले लिए इनके ! सात पीढ़ियों की दुश्मनी निकाली आपने !

दाजी—तू ऐसा कहती है ! कितना घबड़ा गया हूँ मैं ? क्या नब्ज का कहीं पता नहीं लगता ।

चकोरी—आप भी जरा नब्ज देख लीजिए न ?

दाजी—ना-ना ! मेरी हिम्मत नहीं होती । कहाँ की यह एक बला आ गई है भगवान ! डाक्टर क्यों नहीं आ रहे हैं अभी तक ? चार कदम पर तो घर है, और आने में इतनी देरी लगा दी ? क्या हो गया है इस डाक्टर को ?

डाक्टर—(भीतर प्रवेश करते हुए) कुछ नहीं हुआ है डाक्टर को । क्या हुआ ? अरे, यह तो आबा साहब भोसले का चन्द्रकान्त है । आपके घर कैसे !

दाजी—कैसे आया, यह बाद में बताऊँगा । पहिले उसे देखिए—उसका मुआइना कीजिए ।

डाक्टर—पहिले मुझे यह बताइए कि हुआ क्या ? तब तक मैं उसकी जाँच करता हूँ । आप बताइए । मैं सुनता जाता हूँ ।

दाजी—क्या बताऊँ, अपना सिर । यह यहाँ आया—किसी भी भोसले ने शिरके के घर में आज तक कदम नहीं रखा था—पर यह आया—

चकोरी—यूँ ही नहीं आए थे ये । मैंने इन्हें बुलाया था ।

दाजी—अच्छा, अच्छा । तूने बुलाया था इसीलिए आया । मुझ से हुज्जत करने लगा—

चकोरी—इन्होंने कोई हुज्जत नहीं की । दाजी ही इन पर एकदम टूट पड़े और इनका गला पकड़कर—

दाजी—सच कहता हूँ डाक्टर, मैंने इसके गले को हाथ तक नहीं लगाया । मैंने अपना हाथ सिर्फ आगे बढ़ाया था ।

चकोरी—नहीं । आपने इनका गला दबाया ।

दाजी—सच कहता हूँ डाक्टर, मैंने सिर्फ हाथ बढ़ाया था उसका कन्धा पकड़ने के लिए । (डाक्टर उनके प्रत्येक वाक्य पर हुंकारी देते हैं । वह हुंकारी वाक्य के अनुरोध से अलग-अलग प्रकार की होती है ।)

डाक्टर—(गहरी साँस लेकर) हूँ ! मुश्किल है ! आप जानते हैं कि दाजी साहब, इसके नाना हार्ट फेल से मरे थे । इसके पिता का भी हार्ट बहुत कमजोर है । —और अब यह—थोड़ा पानी लाइए—

दाजी—अरे बिनू ! ए बिनू, कहाँ मर गया है यह । चकोरी, तुम्हीं जाओ बेटी और थोड़ा पानी ले आओ । जाओ, उठो ।

डाक्टर—नहीं-नहीं ! इसे यहीं रहने दो । रोगी को इन्जेक्शन देना है । हाथ दबाने के लिए इसकी जरूरत होगी । आपसे वह न हो सकेगा । जाइए—जल्दी पानी ले आइए । (अरे बिनू, अरे बिनू, पुकारते हुए दाजी साहब भीतर जाते हैं ।)

डाक्टर—(चन्द्र से) डरना मत चन्दू । मैं सिर्फ सुई चुभाऊँगा । उसमें दवा-ववा कुछ नहीं रहेगी । बिल्कुल अचेत से पड़े रहना । जरा भी हलचल न करना । जब मैं हाथ दबाऊँ तो चट-से आँखें खोल देना—(जोर-से) अजी, पानी लाइए जल्दी ।

दाजी—(भीतर से आते हुए) यह रहा पानी । होश में आया क्या यह ?

डाक्टर—होश में ? हूँ ! बच जाय तो भाग्य समझिए । वैसे मरने में अब कसर ही क्या रही है ? मरा जैसा ही है । पर कोशिश करना हमारा काम है । (डाक्टर एक इंजेक्शन लगाते हैं ।)

दाजी—(सिर पीटकर) भगवान जाने क्या लिखा है मेरी किस्मत में ? अब यह भोसला आकर मेरे प्राण ले लेगा । दिया इंजेक्शन !

डाक्टर—हाँ । इस कोच पर दो तकिए तो रखो चकोरी, और दाजी साहब, आप जरा इधर आइए । थोड़ा हाथ तो लगाइए इसे ।

दाजी—इसे ? और मैं हाथ लगाऊँ ? इस भोसले को ?—

डाक्टर—आग लगाइए उस दुश्मनी को । पहिले इधर आइए ।

किशोरी—(द्वार से आते हुए) कहाँ है मेरा दादा ? हाय भगवान ! क्या हो गया है इसे, डाक्टर ? (फूट-फूटकर रोती है—दादा ! दादा ! मेरा दादा !)

डाक्टर—चुप रहो किशोरी । एक शब्द भी कोई न बोले यहाँ । आइए दाजी साहब । जरा हाथ लगाइए ।

दाजी—प्राण चले जाएँ, पर मैं इसे हाथ नहीं लगाऊँगा ।

डाक्टर—प्राण जाने का ही समय आ गया है। पर आप पर नहीं, इस बेचारे लड़के पर—

आबा—(द्वार में से आते-आते) कहाँ है मेरा बेटा। हाय भगवान! यह क्या देख रहा हूँ? वह जिंदा तो है न डाक्टर? बोलिए-बताइए डाक्टर! वह है न?

डाक्टर—इंजेक्शन दे दिया है। नब्ज भी हाथ को लगने लगी है कुछ-कुछ!

आबा—क्या हुआ? यह कैसे आया यहाँ?

चकोरी—मैं ले आई थी इन्हें यहाँ।

आबा—तू-तू? शिरनामे है न तू! शिरके की लड़की है तू। मुझे धोखा दे रही थी—

दाजी—तू कहा गई थी इन्हें धोखा देने?

आबा—मेरे घर आई थी यह।

दाजी—आपके घर कैसे आ गई थी?

डाक्टर—अब आप लोग चुप भी रहिए न? यहाँ बिल्कुल बात न कीजिए। यह देखिए। यह देखिए अब वह आँखें खोलने लगा है। दूर हो जाओ सब। उसके पास भीड़ न लगाओ।

आबा—(भर्राए हुए कंठ से) बच जाएगा न मेरा बेटा। चाहे जो कीजिए, पर उसे बचा लीजिए। उस पर मैं अपने प्राण निछावर कर दूंगा। इकलौता बेटा है यह—इसके बाद तो वंश ही समाप्त हो जाएगा।

डाक्टर—मैं आप लोगों से कह रहा हूँ—जरा चुप रहिए न! यह देखिए, उसने आँख खोल दी। हँ-हूँ-हिलो-डुलो नहीं। चुपचाप पड़ रहो।

चन्द्र—(खिंची हुई आवाज में) आबा साहब—किशोरी—आ गए आप लोग? मैं चला! आपसे मुलाकात हो गई—इतना ही संतोष है। अब—

आबा—ऐसी अशुभ बात न कहो, बेटा! तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे।

चन्द्र—अब मैं क्या अच्छा होऊँगा! हो गया! मेरा खेल खत्म हो गया। गुलामी में पैदा हुआ था और स्वराज्य में प्राण छोड़ रहा हूँ—यही सौभाग्य है। अंत में एक ही प्रार्थना है—उस गुलामी के साथ सात पीढ़ियों से चली आ रही हम दो खानदानों की दुश्मनी भी अब चली जानी चाहिए। शिरके और भोसले की मित्रता देख लूं तो फिर सुख से—

डाक्टर—हूँ-हूँ। बोलो मत—बोलो मत—बोलने में तुम्हें कष्ट होगा चंदू।

आबा—यह इस तरह क्या कर रहा है डाक्टर?

चन्द्र—दाजी साहब, यह मेरी अंतिम इच्छा है। मैं अपराधी हूँ आपका— सिर्फ यही एक इच्छा है इस देह को छोड़ने से पहले—

डाक्टर—दाजी साहब, 'हाँ' कह दीजिए। आबा साहब 'हाँ' कह दीजिए। आप लोगों के 'हां' कह देने से उसे जरा अच्छा लगेगा और हो सकता है कि उसके प्राण भी बच जाएं उसके कारण।

किशोरी—'हाँ' कह दीजिए आबा साहब।

चकोरी—'हाँ' कह दीजिए दाजी साहब।

आबा—क्या करूं? क्या करूँ?

किशोरी—डाक्टर-डाक्टर! देखिए-देखिए, दादा कैसा-कैसा कर रहा है!

आबा—क्या करूँ—क्या करूँ? क्या 'हाँ' कह दूं?

किशोरी—यह हत्या आपके माथे पड़ेगी दाजी साहब!

दाजी—मैं 'हाँ' कहता हूं।

चन्द्र—(खिंची हुई आवाज में) मेरे सामने आप दोनों हाथ मिलाइए—

आबा—यह देख, यह देख, हम दोनों ने हाथ मिलाए—

आबा-दाजी—आज से शिरके और भोसले की दुश्मनी मिट गई।

चन्द्र—अब मैं सुख से मरूँगा।

आबा-दाजी—ऐसा न कहो बेटा। तू अच्छा हो जा। हम दोनों अब एक हो गए।

डाक्टर—अच्छा, अब आप सब लोग जरा हट तो जाइए यहाँ से—

किशोरी—डाक्टर, दादा ने आँखें फिर क्यों बन्द कर लीं?

डाक्टर—मुझे। जरा जाँच करने दो दूर हटो। अब डरने की कोई बात नहीं। (उसकी जाँच करते हुए) आध घंटे के बाद एक और इंजेक्शन देना होगा। आपका लड़का बच गया, आबा साहब!

दाजी—और मेरा जमाई—

चकोरी—सच दाजी साहब? क्या आप सच कह रहे हैं?

आबा—हाँ। यह सच है, मेरी बहूरानी।

किशोरी—क्या यह सच है भाभी?

चकोरी—ओह! मैं कितनी खुश हूँ आज, मेरी प्यारी ननद!

डाक्टर—अरे वाह, तुम लोगों ने तो रिश्ते भी जोड़ लिए। पहले तो सीढ़ी पर भी कदम नहीं रखते थे—

दाजी—किसी विशेष कारण वश ही क्यों न हो, पर आबा साहब ने आज दाजी साहब शिरके के घर की सीढ़ी पर कदम रखा।

आबा—नहीं—बिल्कुल नहीं।

दाजी—फिर घर में कैसे आए?

आबा—सड़क से छलांग मारकर सीढ़ियों और देहलीज पर पाँव न रख, सीधा इस कमरे में आकर गिरा हूँ। तुम्हारी सीढ़ी पर कदम नहीं रखा (हँसते हैं। सब लोग भी हँसते हैं।) जरा देखना तो था तुम्हें? जब यह याद आती है तो मुझे अपने आप पर ही हँसी आ जाती है।

डाक्टर—अब आप सब लोग यहाँ से जरा चले तो जाइए। इसे बिल्कुल चुपचाप पड़ा रहने दीजिए। इसे कम-से-कम एक सप्ताह तक इसी तरह बिल्कुल स्वस्थ लेटे रहना होगा। चलिए-छोड़िए यह कमरा।

किशोरी—चलिए आबा साहब—

आबा—चलिए दाजी साहब—(तीनों जाते हैं।)

चन्द्र—(धीरे-से) क्या मैं अब उठकर बैठ जाऊँ, डाक्टर? आपने बड़े अहसान किए हम पर। यह सारा श्रेय आपको है।

डाक्टर—अब तुम बिल्कुल बोलो नहीं। चुपचाप पड़े रहो एक हफ्ते तक और यह नर्स तुम्हारी सेवा करेगी। अब आध घंटे के बाद तुम सभी को इंजेक्शन देता हूँ। (बोलते-बोलते, हँसते हुए जाते हैं।)

चन्द्र—हो गया?

चकोरी—हो गया।

चन्द्र—तुम क्या सोचती हो?

चकोरी—रोमियो मूर्ख था।

चन्द्र—मेरा ख्याल है कि जूलियट सौगुनी मूर्ख थी।

चकोरी—और उसकी वह नर्स सहस्र गुनी मूर्ख थी।

चन्द्र—और मेरी यह चकोरी—

चकोरी—और मेरा चन्द्र—

—अनुवादक : रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

शून्य की यात्रा

परिपूर्णानन्द वर्मा

मार्च, १९५९ की बात है। संयुक्त राज्य अमेरिका के वायु-विज्ञान तथा आकाश प्रशासन विभाग ने घोषणा की कि उसे पृथ्वी के उस पार अनजाने लोकों की यात्रा के लिए स्वयंसेवक चाहिए। यात्रा सफल होगी, इसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं ली जा सकती। साथ, विज्ञान तथा देश के लिए जो प्राणों की आहुति दे सकें, ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता है। और इस प्रकार जीवन उत्सर्ग करने के लिए तत्पर ३२ नवयुवक सामने आए। इनकी कठिन से कठिन शारीरिक तथा मानसिक परीक्षाएं ली गईं। अप्रैल, १९५९ के प्रथम सप्ताह में घोषणा कर दी गई कि सात यात्री चुने गए। जो लोग चुने गए हैं उनकी औसतन उम्र २५ से ३५ वर्ष की है। अधिकांश विवाहित हैं। दो-चार बच्चों के पिता हैं। उनकी पत्नियों ने बड़े अभिमान तथा हर्ष से अपने पतियों को इस महान कार्य के लिए अनुमति दे दी है। इनकी औसतन लम्बाई ५ फीट साढ़े ९ इंच है। वज़न ८०, ८२ सेर तक है। इन सातों में से कौन पहला यात्री होगा, इसमें अभी काफी छानबीन करनी है। पर, इन नवयुवकों ने यह सिद्ध कर दिया कि इस संसार में वीरों की, साहसियों की कमी नहीं है।

यह यात्रा सन् १९६१ में होगी। डेढ़ वर्ष जाते कितनी देर लगती है। किन्तु, इस यात्रा के पहले काफी तयारी करनी है। काफी प्रबन्ध करना होगा, ऐसे यात्री की सुविधा के लिए २,००० वर्ग मील वाले चन्द्रमा के ऊपर एक रेडियो स्टेशन तथा एक शक्तिशाली दूरबीन रखनी होगी। पृथ्वी से बहुत दूर बुध ग्रह प्रतीत होते हैं। इस यात्री का नाम भी बुध-यात्री होगा। इसे जिस जहाज में भेजा जाएगा वह एक गोलाकार पिंड होगा। उस पिंड को एक विशाल एटलास नामक 'मिसिल' यानी पृथ्वी से छोड़े जाने वाले तीर के मुख पर लगा कर बड़ी ताकत से रवाना किया जाएगा। इतनी शक्ति से तथा वेग से इस पिंड को भेजना होगा कि कम से कम दो लाख मील पृथ्वी से आगे निकल जाए ताकि भूमि की गुरुत्वाकर्षण शक्ति उसे खींचकर फिर ज़मीन पर पटक न दे। इधर कई रूसी तथा अमेरिकन 'मिसिल' छोड़े जा चुके हैं। ये ७०, ७२ हज़ार मील तक जाकर अपने वेग की गति से ही जलकर भस्म हो जाते हैं, कुछ तो आगे पहुंच गए, बढ़ गए और प्रबन्ध के अनुसार वापस भी आ गए। पर, मानव-यात्री के जहाज या पिंड की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा प्रबन्ध रहे कि जब मिसिल नष्ट या भस्म होने वाला हो, वह पिंड आप उसके मुख से हटकर अपनी यात्रा में बढ़ता रहे। इस पिंड को भूमध्य रेखा से कम से कम ३५ डिग्री के कोण पर रखने से ही इसका बचाव हो सकेगा।

शक्ति की आवश्यकता

किन्तु, सबसे बड़ी पहेली है पृथ्वी पर ऐसे इंजिन की रचना जो इतनी ताकत से राकेट इंजिन को धक्का देकर सैकड़ों मील आगे पहुंचा सके। बहुत से मिसिल सैकड़ों मील आगे जाकर अपनी तथा वायुमण्डल की गर्मी की रगड़ से ही भस्म हो जाते हैं। इसलिए मिसिल यानी तीर की नाक ही यदि जल या कटकर गिर गई तो उसके सहारे पर चलने वाला पिंड तथा उसके भीतर बैठा मनुष्य कैसे बचेगा। इसलिए तीर की नाक की बनावट में भी बड़ा सुधार करना पड़ेगा। अप्रैल, १९५९ में ही, ५,००० मील की यात्रा के बाद, एक ऐसी नई खोज हो गई है कि नाक बची रहेगी, नष्ट न होगी।

पर सवाल है धक्के का। ज़मीन से फेंकने वाली ताकत का। ३,६०,००० पौंड—एक पौंड लगभग आध सेर का हुआ—धक्के का प्रबन्ध हो गया था, अब तो १०,००,००० पौंड के धक्के के योग्य महान शक्तिशाली इंजिन बनकर तैयार हो गया है। धक्के की ऐसी शक्ति उत्पन्न करके ही स्पुटनिक भेजे या छोड़े जा रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस दोनों ही इस दिशा में काफी प्रयत्नशील तथा प्रगतिशील हैं। जहां तक अधिक वजनदार स्पुटनिक भेजने का सवाल है, सोवियत रूस ने कमाल कर दिया है। उसका तीसरा स्पुटनिक, जो इस समय सूर्य का उपग्रह बनकर परिक्रमा कर रहा है, लगभग ३९–४० मन वजन का है। अमेरिकन उपग्रह पौन मन के ही हैं। पर मिसिल यानी तीर के मामले में अमेरिकनों ने भी कमाल की शक्ति तथा प्रगति की है। उन्होंने आकाश में कई उपग्रह तथा तीर छोड़े हैं। इनकी संख्या में वे संसार में सबसे आगे हैं। अमेरिकन उपग्रह के भीतर यंत्र भी अधिक हैं और रूसी अमेरिकन उपग्रहों के द्वारा प्राप्त सूचनाओं (रेडियो सन्देश) से इस महान सृष्टि के अज्ञात तथा अकथनीय पन्ने खुलने लगे हैं। ऐसी आश्चर्यजनक तथा रोचक बातें मालूम हो रही हैं, जिनकी हम कल्पना भी न कर सकते थे। ऐसे ग्रहों, उपग्रहों तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य का अनुमान लग रहा है जिनकी जानकारी से विज्ञान का इतिहास ही उलट गया है। दो वर्ष पहले कौन जानता था कि पृथ्वी से २०,००० मील दूरी पर विद्युत प्रवाह की दो भिन्न धाराएं बह रही हैं। इसलिए दो भिन्न धाराओं में यात्रा करने के लिए पिंड रूपी जहाज को बड़ी तैयारी करनी पड़ेगी।

यात्री वापस आएंगे

यदि इस यात्रा में रवाना होने के बाद वापस आने का प्रश्न ही न हो तो फिर एक मानव के बलिदान को लोग सम्भवतः स्वीकार न करें। अतएव इस सम्बन्ध में भी वैज्ञानिक काफी सचेष्ट हैं। इस जहाज में पृथ्वी पर वापस आने का भी प्रबन्ध है। इसमें ऐसे राकेट लगे रहेंगे जो ९० मिनट में पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के बाद तीन बार यात्रा करके फिर इस जहाज को अपने यात्री सहित भूमि पर उतार लाएंगे। तीसरी यात्रा के बाद यह अमेरिकन जहाज 'हवाई' नामक प्रदेश के उत्तर की ओर पहुंचेगा। वहां से यह संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊपर आ जाएगा। फिर दक्षिण पूर्व की तरफ भागेगा।

बस उसी समय ऐसा वैज्ञानिक प्रबन्ध होगा कि इसके उतारने वाले राकेटों में धड़ाका होगा। उनकी छतरी खुल जाएगी। इससे पिंड जहाज की गति मन्द पड़ने लगेगी। छतरी उसे खींचकर नीचे की ओर ले आने लगेगी। कई छतरियां बराबर खुलती जाएगी। अन्तत यह जहाज दक्षिण अतलान्तिक महासागर में धीरे से उतर पड़ेगा। उसके उतरते ही एक ट्यूब खुलने लगेगी जिसमें आपसे आप हवा भर जाएगी। जहाज इसी ट्यूब पर बैठा हुआ पानी में तैरने लगेगा और तब तक तरता रहेगा जब तक इसकी प्रतीक्षा करने वाले पानी के जहाज इसे उठाकर अपने पास न ले आए। तब, जहाज का मुह खोलकर सृष्टि का प्रथम हाड़-मास का देवता सप्तलोक की यात्रा कर अपना अनुभव हम बतला देगा।

यह है सन् १९६१ का कार्यक्रम। पर सृष्टि मडल की यात्रा का आगामी दस वष का कार्यक्रम तैयार हो गया है। कुछ ही दिनों में राकेट के द्वारा आकाश में ऐसा तेज प्रकाश फैलाया जाएगा कि आकाश का नया मानचित्र पुन तैयार हो जाए। ग्रहो, उपग्रहो तथा तारो की तस्वीरें खींच ली जाए। स्वय इस पृथ्वी के बारे मे पृथ्वी के रहने वालो की जानकारी बहुत थोड़ी है। वह जानकारी भी हमको हासिल करनी है। सबसे बड़ा काम तो यह है कि चन्द्रमा पर एक रेडियो स्टेशन बन जाए और एक बड़ी दूरबीन लग जाए। अगर यह अभी न हो सका तो पिंड जहाज की यात्रा इसके बिना ही होगी। और सबसे मार्के की बात है कि आज से दस वष बाद हमारे कुछ भाई बहन चन्द्रलोक में घर बनाकर रहने लगेंगे।

अथाह सृष्टि

पर, क्या इन सब बातो से हमको सृष्टि की जानकारी हो जाएगी। क्या हम जान जाएगें कि यह सृष्टि, यह ब्रह्माण्ड क्या है, कितना है तथा इसकी मर्यादा क्या है? अभी तक विज्ञान उस जानकारी का एक बटा सौवा हिस्सा भी नही हासिल कर सका है जो हमारे ऋषियो ने अपने दिव्य चक्षुओ से देखकर वेद और शास्त्रो द्वारा हमें बतलाया था।

सुदूर के सन्देश

१९वी शताब्दि के अन्त में, जब एक इतालियन वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया कि मगल ग्रह के ऊपर बड़ी-बड़ी नहरें बनी दिखाई दे रही है तथा वहा भी हमारे जैसे मनुष्यो की बस्ती है, तो दुनिया में तहलका मच गया। फ्रेन्च वैज्ञानिक फिलोमारिया ने इसकी पुष्टि की, फिर इसके बाद यह धारा बही कि मगल ग्रह से पृथ्वी के निवासियो के पास बराबर रेडियो द्वारा सदेश भेजे जा रहे है। उन सदेशो का अर्थ हम समझ नही पा रहे है। अब जाकर यह सिद्ध हो गया है कि ऐसे सदेश आ जरूर रहे हैं। पर वे किसी के द्वारा भेजे नही जा रहे है बल्कि ग्रह की उष्णता के कारण उत्पन्न ध्वनिमात्र है। ऐसी ध्वनि सूर्य के द्वारा भी प्राप्त हो रही है। पर यह प्राय तभी प्राप्त होती है जब उस महान ग्रह पर बनने वाली गैसो से हजारो गुना अधिक गर्मी पैदा हो जाती है। शुक्र के द्वारा प्रति १३वें दिन, जब वहा भयकर तूफान आता है, ऐसे ही सन्देश प्राप्त होते है। ४ जून, १९५६ को सबसे पहले ये सदेश सुने गए थे। चन्द्रमा पृथ्वी से सबसे निकट है। उसके वायुमडल का घनत्व पृथ्वी के वायुमडल से हजारो अरब गुना कम है, यानी वहा पर वायुमडल है ही नही। वहा से भी सदेश आते रहते है। यदि हमारे पास रेडियो होता तो आज से ९०० वष पूर्व, चीनी प्राचीन ग्रन्थो के अनुसार ४ जुलाई, १०५४ को ससार में एक भयकर विस्फोट की आवाज आती। एक महान तारा टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। उसक इतने अनगिनत टुकड़े हुए कि आकाश में अरबो मील में सफेद धूल की तरह से फैल गए। हम इसको कर्क राशि भी कहते है। पर ऐसे सन्देशो से कोई वास्तविक जानकारी हासिल हो, ऐसी बात नही है। इस सृष्टि के आदि और अन्त का पता लगाना विज्ञान की शक्ति के परे की बात है। मानव यानी कुछ हजार या लाख मील की यात्रा भले ही करले पर सृष्टि का एक बटा एक अरब हिस्सा भी वह जान सकेगा, इसमें सदेह है। यह हमारी कही हुई बात नही है। स्वय विज्ञान इसका साक्षी है।

यह सृष्टि या पृथ्वी ही कितनी पुरानी है, वह भी नही कहा जा सकता। एक करोड़ वष पुराने पेड़ पत्ते तो मिल चुके। पर सृष्टि का रूप ही करोड़ो वर्षो मे बदल गया है। विज्ञान का कहना है कि आज से १०,००,००,००,००० वष पहले इतनी घनीभूत सृष्टि थी कि सघर्ष तथा विनाश के क्रम से आज उसकी सामग्री, उसके तत्व का ही रूप बदल गया है। उस समय उसका ताप यन्त्र कई करोड़ डिग्री का रहा होगा। एक पु ज अग्नि का जब टूटा, उसके टुकड़े-टुकड़े हुए तो समूचा ब्रह्माण्ड एक विचित्र खेल हो गया होगा, उस खेल को सिवा परमात्मा के और किसी ने न देखा।

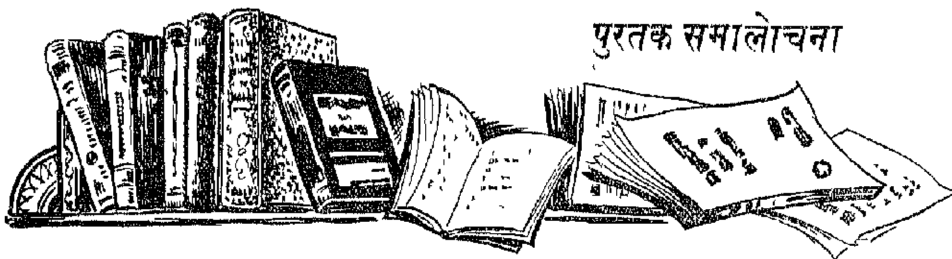
उस क्रीड़ा की कल्पना करना भी कठिन है। उसका एक-एक अश विस्मयकारक है। हमारे सामने स्वच्छ आकाश मे आकाश गगा बह रही है। हममें से अनेको का विश्वास है कि इसी मार्ग से, इसी वैतरणी नदी को पार कर आत्मा स्वर्ग या नरक लोक को जाती है। पर अब तो प्रबल दूरबीनो ने देखकर बता दिया है कि इस आकाश गगा में एक खरब तारो का गुट है और इस सृष्टि में ऐसी लगभग एक अरब आकाश गगाए होगी। इनको आसानी से देखा भी नही जा सकता क्योकि एक पुज दूसरे पुज से बड़ी तीव्र गति से दूर हटता जा रहा है। अभी तक का हिसाब है कि एक दूसरे से दूर हटने की गति एक सेकेण्ड मे लगभग ४०,००० मील है। इतनी तीव्र गति का अनुमान भी हम नही कर पाते।

पृथ्वी से सबसे निकट तारकपुज भी इतनी दूरी पर है कि एक सेकेण्ड में एक लाख मील से अधिक यात्रा करने वाला प्रकाश भी वहा से हमारे पास पहुचने में दस लाख वर्ष ले लेता है। आज वहा का जो प्रकाश हमें दिखायी दे रहा है वह दस लाख साल पहले चला है। ये तारकपुज बहुत ही विशाल है। सूर्य से लगभग २,००,००० गुना अधिक है। इसी से इनका महत्व समझ लेना चाहिए। अनगिनत सूर्य है। हमारे सामने की आकाश गगा में ही लगभग १२ सूर्या का पता चल चुका है। हमारा सूर्य तो अब धीरे-धीरे ठण्डा हो रहा है। पर ये सूर्य अपनी जवानी पर है और हमारे निकट आते जा रहे है, कही दो-चार सूर्य एकसाथ पृथ्वी के निकट आ गए तो हमारी क्या गति होगी, भगवान जाने।

निरन्तर परिवर्तन

सृष्टि में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि भूतत्व या आकाशतत्व भी बराबर बदलता जा रहा है। अब यह भी हिसाब लग चुका है कि इस सृष्टि में, इस पृथ्वी मे ही प्रति-क्षण, प्रति सेकेण्ड १,५०,००० उद्रजन कण (हाइड्रोजन एटम्स) उत्पन्न हो रहे है तथा तत्व में लगातार परिवर्तन होता जा रहा है।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)



आत्म-निरीक्षण (तीन भागो मे एक आत्मकथा) लेखक—सेठ गोविन्ददास, प्रकाशक—भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, पृष्ठ सख्या—क्रमश —३०८, ८६८ और ८७८, मूल्य क्रमश —६) रु०, ८) रु० और ८) रु० सजिल्द ।

सेठ गोविन्ददास हिन्दी के उन ख्यातनाम साहित्यकारो में है, जिन्होने बहुत अधिक लिखा है और बहुत विविध लिखा है । उनके द्वारा लिखित साहित्य २० खण्डो मे प्रकाशित हो रहा है, जिसकी पृष्ठ सख्या ८,००० से १०,००० के बीच होगी । इनमें १०८ के लगभग तो नाटक है, जिनमें ३५ पूरे नाटक है । इन्दुमती नाम का एक विशालकाय उपन्यास भी उन्होंने लिखा है । १ महाकाव्य , २ खण्ड काव्य, स्फुट कविताए और ३ विशाल यात्रा-वर्णनो के अतिरिक्त इन रचनाओ में निबन्ध, भाषण और कहानिया भी है । और अभी तो सेठ साहब लिख रहे है । आशा करनी चाहिए कि उनकी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को अभी बहुत कुछ और अधिक श्रेष्ठ तत्व प्राप्त होगा ।

यह आत्मकथा तीन भागो में विभक्त है, जिनके नाम क्रमश 'प्रयत्न', 'प्राप्त्याशा' और 'नियताप्ति' रखे गए ह । इस आत्मकथा में सवा पाच लाख से ऊपर शब्द है और निस्सन्देह हिन्दी में अभी तक लिखी गई आत्मकथाओ में यह सब से बडी आत्मकथा हे ।

पहले भाग में २५ अध्यायो में जन्म (१८९६) से लेकर नागपुर काग्रेस (१९२०) तक का वर्णन है, दूसरे में ७४ अध्यायो में १९४७ तक का और तीसरे भाग में ४० अध्यायो में वर्तमान से कुछ पहले तक का । इस भाग में वर्तमान युग के सम्बन्ध में गहराई से विचार करने का प्रयत्न भी किया गया है और अन्त के ९२ पृष्ठो मे ५ परिशिष्ठो के रूप में सेठ जी का महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार तथा अन्य महत्वपूर्ण ब्योरे भी दिए गए है ।

मेरी राय से अच्छी आत्मकथा लिख सकना साहित्यिक माध्यमो में सब से कठिन माध्यम है । अच्छी आत्मकथा में—(१) न सिर्फ लेखक के व्यक्तित्व पर अपितु उसके युग पर और उसके सम्पर्क में आए व्यक्तियो पर अत्यन्त स्पष्ट और स्वच्छ प्रकाश पडना चाहिए, (२) जीवन और युग के सम्बन्ध में लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाना चाहिए, (३) कोई बात, वर्णन या घटना न सिर्फ असत्य नहीं होनी चाहिए, वह अतिरंजित या विकृत भी नही होनी चाहिए, (४) कुछ भी छिपाने का प्रयास नही करना चाहिए, (५) एक ओर आत्म-प्रशसा से बचना चाहिए तो दूसरी ओर सम्पर्क में आए व्यक्तियो से बदला चुकाने या बदला निकालने की भावना नही होनी चाहिए, और यह सब होने के साथ ही साथ, (६) आत्म-कथा एक अच्छे और सुलिखित उपन्यास के समान रोचक होनी चाहिए ।

हिन्दी में बहुत कम आत्मकथाए उपलब्ध है । इससे पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद की आत्मकथाए हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं । उन दोनो की गणना निस्सन्देह श्रेष्ठ आत्मकथाओ में की जा सकती हे । आज के कितने ही हिन्दी लेखको ने आत्म चरित्र पर आधारित रचनाओ को आत्मकथा का रूप न देकर उपन्यास का रूप दे दिया है । इस मनोवृत्ति का कारण स्पष्ट है, पर उसकी विवेचना मुझे यहा नही करनी है ।

सेठ गोविन्ददास लिखित यह हिन्दी की सब से बडी आत्मकथा सर्वश्रेष्ठ कोटि की आत्मकथा नही कही जा सकती । फिर भी इसमें अच्छी आत्मकथाओ के कितने ही गुण विद्यमान है । सेठ साहब ने इस आत्मकथा में कुछ भी छिपाने का प्रयत्न नही किया । हृदय की सच्चाई और ईमानदारी इस बडी रचाना में प्रारम्भ से अन्त तक ओत-प्रोत है । अपने युग पर अपनी दृष्टि से सेठ साहब ने तटस्थ होकर प्रकाश डालने का गम्भीर प्रयत्न अवश्य किया है । आत्मकथा के कुछ स्थल अत्यन्त मार्मिक और रोचक भी अवश्य है । पर साथ ही साथ इस आत्मकथा में कुछ दोष भी आ गए है । अपने युग की घटनाओ और साथ ही साथ अपने जीवन की घटनाओ को कही-कही बहुत अधिक तूल दे दिया गया है । मेरी राय से बहुत स्थलो पर यदि सक्षेप से काम लिया जा सकता, तो वह कही अधिक अच्छा रहता । इसी तरह कितनी ही अत्यन्त साधारण बातो को अनुपात से बहुत अधिक विस्तार के साथ लिखा गया है । इस आत्मकथा में सेठ जी ने विश्व साहित्य से बहुत बडी सख्या में उद्धरण भी दिए है, जो इस मात्रा में न दिए जाते, तो अच्छा था ।

इस आत्मकथा की शैली के उदाहरणस्वरूप यहा हम कुछ अश दे रहे है —

१ अपने पितामह का जिक्र करते हुए वे कहते है

"जिन मेरे पितामह को आत्मसम्मान का इतना ध्यान था और दूसरे भी जिनका इतना सम्मान करते थे, उनका उस समय के सरकारी अफसरो से और सरकारी अफसरो का उनसे जैसा व्यवहार था वह अन्य सारे व्यावहारो से एकदम भिन्न था । इसका पता तब लगता जब वे इन अफसरो से मिलने उनके बगलो पर जाते । इन मुलाकातो मे मै प्राय उनके साथ रहता । उस समय मोटरे नही आई थी, अत मेरे पितामह की सवारी होती दो घोडो की बग्घी । जब वे अफसरो से मिलने जाते तब बगले के पोर्टिको तक कभी अपनी बग्घी न ले जाते । साहब बहादुर के काम और मेम साहिबा के आराम मे कोई खलल न पहुचे, इसलिए यह बग्घी पोर्टिको से बहुत दूर खडी की जाती । वही बग्घी से उतर कर वे धीरे-धीरे

साहब को अपने आगमन की सूचना भेजते। जब तक उन्हें भीतर आने की आज्ञा न मिलती, वे बाहर खड़े रहते और जब भीतर आने की आज्ञा मिल जाती, तो जूते बरामदे में उतार कर साहब बहादुर के दफ्तर में प्रवेश करते, मानो किसी मन्दिर में जा रहे हों। वहां पहुंच जमीन तक झुककर साहब को सलाम करते और कुर्सी पर तभी बैठते, जब साहब बहादुर उनसे बैठने को कहते। इनमें अधिकांश अफसर तो खड़े होकर उनका स्वागत करते और हाथ मिलाकर उन्हें कुर्सी पर बिठाते भी, पर मैंने ऐसे अफसर भी देखे हैं, जो उनकी इस झुककर की हुई सलाम का उत्तर थोड़ा-सा सिर हिला कर अथवा दाहने हाथ की एक तर्जनी उंगली भर भर उठा कर देते, न कुर्सी से उठते और उन्हें कुर्सी पर बैठने को कहते। बातचीत का आरम्भ प्रायः इस प्रकार होता ––

"हुजूर का मिजाज शरीफ ?"

"अच्छा अच्छा।"

"मेम साहब और बाबा लोग ?"

"अच्छा अच्छा।"

मुझे भी जूते उतार दफ्तर में प्रवेश कर इसी प्रकार सलाम करने और मिजाजपुरसी की तहजीब सिखाई गई थी। मैं भी इस सम्बन्ध में अपने पितामह का अनुसरण करता।" (पृष्ठ संख्या ५८)

२ अपने दादा जी और पिता जी की तुलना उन्होंने इस प्रकार की है ––

"मेरे पितामह और पिता जी में कुछ बातों में साम्य था और कुछ में भिन्नता। दोनों के निर्माण में पूर्वजन्म के कर्मों का हाथ तो होगा ही, आनुवंशिकता और वातावरण का भी स्पष्ट प्रभाव था। पिताजी मेरे पितामह के सदृश ही, वरन् उनसे भी कुछ ऊंचे थे। शरीर में वे मेरे पितामह के समान स्थूल तो नहीं थे, पर वैसे ही मजबूत थे। रंग में वे मेरे पितामह से भी अधिक सांवले थे, क्योंकि मेरी दादी भी सांवली थीं और आंख-नाक आदि सारे अवयव उनके मेरे पितामह के सदृश ही थे। पिताजी की धार्मिक भावनाएं हमारे कुल के अनुरूप ही थीं। वे भी वल्लभ कुल सम्प्रदाय में दीक्षित थे और नित्य मन्दिर जाते थे। अपने और अपने कुल के आत्म-सम्मान का भी उन्हें वैसा ही ख्याल रहता, जैसा मेरे पितामह को। राजभक्त भी वे वैसे ही थे जैसे मेरे पितामह, और अंग्रेज अफसरों से उनके मिलने-जुलने का भी वही तरीका था जो मेरे पितामह का था। ये थीं कुछ साम्यताएं मेरे पितामह की और पिताजी की। अब कुछ भिन्नताएं सुनिए। मेरे पितामह का जीवन जितना सादा था, उतना ही पिताजी का शान-शौकत वाला। मेरे पितामह जितने सौम्य थे, मेरे पिता उतने ही उग्र स्वभाव के। जरा-सी बात पर वे बिगड़ पड़ते। एक चाबुक उनके पास रहता जिसे 'वे सुलतान दूल्हा' कहते और कई बार इससे नौकरों की खबर ली जाती। हां, उनका क्रोध शान्त बहुत शीघ्र हो जाता और उस क्रोध में यदि किसी पर सुलतान दूल्हा चल जाता तो उसे एक मोटा इनाम देकर उसका परिमार्जन भी तत्काल होता। (पृष्ठ संख्या ९९)

३ तीसरे भाग में वर्तमान युग की आलोचना करते हुए वे कहते हैं –

"जैसे-जैसे अंग्रेजी शिक्षा भारत में फैली, वैसे-वैसे भारत में इन बादामी अंग्रेजों की संख्या बढ़नी आरम्भ हो गई और जब भारत से सफेद अंग्रेजों के जाने का समय आया उस समय इन बादामी अंग्रेजों की संख्या भारत में लाखों हो चुकी थी। ये भारत के छोटे-छोटे नगरों में भी बसे हुए थे। इन लोगों का यह निहित स्वार्थ था, और अंग्रेजों के चले जाने के पश्चात् भी है, कि भारत में वह शासन-प्रणाली बनी रहे जिसके ये स्तम्भ बने हैं, सब ऊंचे पदों पर बैठे हुए भी ये भारत के साधारण जनता का आर्थिक तथा राजनैतिक दोहन करते रहे हैं। इतना ही नहीं, भारत छोड़ने से पूर्व अंग्रेजों ने इस बात का भी प्रबन्ध कर दिया कि उनके जाने के पश्चात् उनके ये छोटे-छोटे भागीदार और राजकर्मचारी अपदस्थ न किए जा सकें। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के जाने के पश्चात् शासन-यन्त्र उन्हीं लोगों के हाथ में पड़ गया। उसमें पूर्व इस तन्त्र के महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेज शासक आरूढ़ थे और ये लोग उनके अनुयायी। किन्तु जब अंग्रेज शासक चले गए तो इन महत्वपूर्ण स्थानों पर बादामी अंग्रेज छा गए। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि उन अनेक नलियों में से, जिनके द्वारा अंग्रेज भारत का रक्त चूसते थे, एक बड़ी नली यह शासन-तन्त्र था। इसके जरिए करोड़ों रुपया अंग्रेजों की जेब में जाता था, उन्हें मालामाल करता था। अंग्रेजों के जाने के पश्चात् इस रक्तशोषक नली के मालिक ये बादामी अंग्रेज बन बैठे और भारत की जनता का करोड़ों रुपया इन लोगों की जेबों में जाने लगा। इन लोगों का महत्व इसीलिए था कि उस शासन-प्रणाली के रहस्यों से परिचित थे जिसे अंग्रेजों ने भारत में कायम किया था। न तो भारत के राजनैतिक नेता और न अन्य इन रहस्यों को जानते थे, अतः इन बादामी अंग्रेजों का यह निहित स्वार्थ हो गया है कि ये इस शासन-पद्धति को यथाशक्ति उसी रूप में रखें जो अंग्रेजों के सामने थी, जिससे इनकी अपनी प्रभुता तथा समृद्धि पर कोई हानिकर प्रभाव न पड़े। यह ठीक है कि राजनैतिक आन्दोलन और राजनैतिक नेताओं के दबाव से इसमें कुछ परिवर्तन हुआ है, किन्तु तब भी इसका मूल रूप नहीं बदला है। यह आज भी भारत में दोहन का वैसा ही प्रभावशाली साधन है, जैसा कि यह अंग्रेजों के सामने था। साथ ही इन बादामी अंग्रेजों की मनोवृत्ति एवं प्रेरणाएं भी वही हैं जो इनकी तब थीं जब ये अंग्रेजी साम्राज्यवाद के बादामी रंग वाले भागीदार थे। भारत में किसी प्रकार के शासन-परिवर्तन से इन लोगों के अपने हितों पर हानिकर प्रभाव पड़ सकता है, अतः आज के भारत में ये ऐसी शक्ति हैं, जो किसी प्रकार के आमूल परिवर्तन के पूर्ण विरोधी हैं और वर्तमान अवस्था को ही चिरस्थायी बनाना चाहते हैं। (पृष्ठ संख्या २८९)

४ इसी तरह––

"इस देश का आज का राजनैतिक क्षेत्र सम्मान की अपेक्षा पग-पग पर असम्मानित होने का ही क्षेत्र हो गया है। सर्वत्र पद-लोलुपता है और ये पद नाना प्रकार के स्वार्थों के साधन दिखाई पड़ते हैं। व्यक्तिगत दलगत कलह-संघर्ष, राग-द्वेष, पराकाष्ठा को पहुंच गया है। इसके कारण जो तू-तू, मैं-मैं गाली-गलौज हो रही है, उसकी सीमा नहीं रह गई है। इसका अवलम्ब असत्य और कुत्सित से कुत्सित साधन है। न साध्य सही है और न साधन। इस परिस्थिति के कई कारण हैं। देश शताब्दियों से पराधीन था। वह पराधीनता गरीबी लाई और 'बुभुक्षितः किं न करोति पापं'' की उक्ति के अनुसार हमारी नैतिकता और चरित्र दोनों समाप्त हो गए। एकाएक एक महापुरुष के कारण हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, जिसके लिए यथार्थ में हम योग्य नहीं थे। जिस प्रकार नींद से जगाया हुआ व्यक्ति गाली-गलौज पर उतारू हो जाता है और हाथ-पैर पछाड़ने लगता है, वही हमारी दशा हुई है। इसके सिवा ये राजनैतिक पद, अर्थ और सम्मान दोनों के साधन सिद्ध हुए। जिन्होंने भी स्वतन्त्रता के

सग्राम में थोड़ा-सा भी भाग लिया था, वे अपने को बड़े से बड़े पद के योग्य समझते हैं और चूंकि वे पद सबको नहीं मिल पाते इसलिए आपसी कलह तथा संघर्ष की उत्पत्ति होती है।" (पृष्ठ संख्या ३२३)

इस तरह सब मिला कर यह आत्मकथा इस वर्ष का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और चिर-स्मरणीय प्रकाशन है, जिससे लेखक के व्यक्तित्व, उसके समकालीन युग और उस युग के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझने में मूल्यवान सहायता मिलती है। हमें विश्वास है कि यह आत्मकथा यथेष्ठ लोकप्रिय सिद्ध होगी।

भारतीय वाङ्मय सम्पादक—नगेन्द्र, प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाव (झासी), पृष्ठ संख्या—(रायल अठपजी) ६१६, मूल्य—१५) रु० सजिल्द।

इस ग्रन्थ में भारत की १२ भाषाओं के सम्बन्ध में १२ निबन्ध दिए गए हैं। निबन्ध लेखक इस प्रकार हैं तमिल—डा० एम० वरद राजन, तेलुगु—डा० जी० वी० सीतापति, कन्नड—श्री साम्ब रंगाचार्य, मलयालम—डा० के० एम० जार्ज, मराठी—सुश्री कुसुमावती देशपाण्डे, गुजराती—श्री विष्णु प्रसाद त्रिवेदी, बंगला—डा० श्री कुमार मुकर्जी, असमिया—डा० विरची कुमार बरुआ तथा डा० प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, उड़िया—डा० मायाधर मानसिंह, पंजाबी—डा० मोहन सिंह, उर्दू—डा० ख्वाजा अहमद फारुकी, हिन्दी—डा० सावित्री सिन्हा।

इनमें से अधिकांश लेखकों से 'आजकल' के पाठक सुपरिचित हैं। इन बारह लेखों द्वारा उक्त १२ भारतीय भाषाओं की प्रामाणिक पृष्ठभूमि से पाठक परिचित हो जाता है और इस बात का महत्व बहुत अधिक है। भारतीय साहित्य वास्तव में एक है। न सिर्फ उसकी प्रेरणा के स्रोत एक हैं, अपितु मुख्यतः उसका विकास भी कम-अधिक समान रूप और समान ढंग से हुआ है।

आज जब भारत में भावनात्मक एकता के प्रसार की आवश्यकता है, इस तरह के ग्रन्थ का महत्व और भी अधिक है। अभी तक स्थिति यह थी कि भारतीय जनता तो एक तरफ रही, भारतीय लेखक भी अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की अपेक्षा अंग्रेजी साहित्य से ही अधिक परिचित थे। अब यह नितान्त आवश्यक है कि हम लोग इस विशाल देश की आत्मा को पहचानें और इस बात से परिचित हो जाएं कि सम्पूर्ण देश की सृजनात्मक प्रतिभा किन रूपों और किन वाणियों में मूर्त्त हुई है। इस उद्देश्य से यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी और मूल्यवान सिद्ध होगा।

हमें ज्ञात है कि इस ग्रन्थ में भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो जानकारी दी गई है, वह पूर्ण नहीं है। भारतीय भाषाओं के कितने ही लेखकों और कितनी ही प्रवृत्तियों का जिक्र इस संग्रह में आपको नहीं मिलेगा। यह सम्भव ही नहीं था और न यह इस ग्रन्थ के विद्वान लेखकों का ध्येय ही था। सच बात तो यह है कि यह ग्रन्थ इस अत्यन्त उपयोगी कार्य का प्रारम्भ मात्र है। अभी हमें इस तरह के कितने ही ग्रन्थों की आवश्यकता है।

इस ग्रन्थ में काश्मीरी भाषा के सम्बन्ध में एक लेख अवश्य होना चाहिए था।

भारत के प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की एक प्रति अवश्य विद्यमान रहनी चाहिए।

चैखव के तीन नाटक अनुवादक—राजेन्द्र यादव, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गा कुंड रोड, वाराणसी, पृष्ठ संख्या—३१६, मूल्य ८) रु० सजिल्द।

संसार के सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक एण्टन चैखव एक अत्यन्त श्रेष्ठ नाटककार भी थे। उनके तीन सुप्रसिद्ध नाटकों 'सीगुल', 'चैरी आरचर्ड' तथा 'थ्री सिस्टर्स' (अंग्रेजी नाम) का अनुवाद इस संग्रह में है। अनुवाद अंग्रेजी से किया गया है, रूसी से नहीं। बहुत समय से और बहुत से देशों में ये तीनों नाटक रंगमंच पर अत्यन्त सफलतापूर्वक खेले जा रहे हैं। 'तीन बहनें' दिल्ली में खेला भी जा चुका है। इस अनुवाद में इन नाटकों के ये नाम रखे गए हैं—हंसिनी, चेरी का बगीचा और तीन बहनें। मेरी जबरदस्त सिफारिश है कि हिन्दी रंगमंच पर इन तीनों का अधिक से अधिक अभिनय होना चाहिए। जहां तक अनुवाद का सम्बन्ध है, मुझे शिकायत है कि अनुवादक ने इन नाटकों के वार्तालाप को पूरी तरह बोलचाल की भाषा बनाने का प्रयत्न नहीं किया, जो अत्यन्त आवश्यक था।

नागिन और बुलबुले लेखक—किशोर साहू, प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए० जीरो रोड, इलाहाबाद—३, पृष्ठ संख्या—२१८, मूल्य—८) रु० सजिल्द।

यह किशोर साहू की १२ कहानियों का दूसरा संग्रह है। इसके पूर्व 'टेसू के फूल' नाम से उनका कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है। किशोर साहू लिखित एक ऐतिहासिक उपन्यास और ४ एकांकियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। इस पर भी वह हिन्दी कहानी या हिन्दी साहित्य की वर्तमान गतिविधि से कितना अपरिचित या अल्प परिचित है, यह 'नागिनें और बुलबुले' के लम्बे प्राक्कथन से पता चलता है। उनका कथन है —

हमारे लेखक, बहुधा, गांव या शहर की उस तंग गली से जहां वह रहते हैं, बाहर नहीं निकले और उन चार मित्रों की मण्डली के सिवा जिनके साथ उनका नित्य का उठना-बैठना है, अन्य जनों से परिचित न हो पाए।

तो, ऐसे साहित्यकारों का—जो अपने पाठकों से कांटा-छुरी उलटी तरह पकड़वाते हैं और जो नवीन और निराला ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और अल्ट्रा माडर्न होने का स्वांग रचते हुए अपनी नायिकाओं का, बिना कारण, घर के अन्दर, घर के बाहर और रेलवे प्लैटफार्म पर, चीरहरण किया करते हैं—मुझे उनकी कृतियां अस्वीकार करके दुःखपूर्वक उन्हें निराश ही करना पड़ा। उनकी कृतियां फिल्म के उपयुक्त न थीं। मैं उन्हें पुस्तक-रूप में प्रकाशित होने के योग्य भी नहीं समझता। पर लेखक का दिल भी तो तोड़ा नहीं जा सकता। उसकी रचना है। उसने उसे पुस्तक का रूप दे दिया। और दे भी क्यों न? साहित्यकारों की मित्र-मंडली का एक गुट उसने पहले ही से साधकर तैयार किया हुआ था, जिसका मुख्य मंत्र होता है "मैं तुझे महान् कहूं तो तू मुझे महानतम कह, तू मुझे पीर कहे तो मैं तुझे खुदा कहूं।" बस, फिर यह 'साहित्यकार' अपने गुड्डे मियां मिट्ठू बनकर परस्पर एक-दूसरे को आदरणीय, श्रद्धेय, देवतुल्य, उपन्यास सम्राट, कहानी सम्राट, जगप्रसिद्ध आदि बताकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा-चढ़ाकर साहित्यिक अखाड़े में कूद खम ठोका करते हैं। यह कुश्ती नहीं हुई, झूठी और भद्दी भिड़न्त हुई, लोगों के साथ छल और कपट हुआ। बेचारे दर्शक (पाठक) नहीं जान पाते कि जोड़ियां आपस में मिली हुई हैं।

हिन्दी अभी बन रही है। हिन्दी का नया साहित्य नया खून मांग रहा है। इस नए साहित्य का निर्माण आज के वह स्वतन्त्र-नवयुवक लेखक ही करेंगे, जो समस्त विश्व में सर उठाकर बेधड़क, बेझिझक विचरना जानते हों, और जो प्रान्तीय सकीर्णता और सांस्कृतिक रूढ़िवादिता तथा दलबन्दी के बन्धनों से मुक्त होकर हर प्रान्त, हर देश, और हर संस्कृति में सत्य और सौन्दर्य देखने की क्षमता रखते हों— ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं जानता हूं यह प्राक्कथन पढ़ने के बाद मेरे कुछ साहित्यकार भाई और उनके कुछ समालोचक मित्र इन कहानियों की नोच-खरोचकर धज्जियां उड़ाने के लिए ऐसे टूट पड़ेंगे जैसे गिद्ध टूट पड़ते हैं। परन्तु मैं यह भी जताता हूं कि गिद्ध सड़ी, गली और निर्जीव लाश पर ही टूटते हैं, सजीव, स्वस्थ और सबल प्राणियों को नोचने-खरोचने का दुःसाहस वह नहीं करते। (पृष्ठ ८, १०, ११)

यह प्राक्कथन इसी शैली में लिखा गया है। कुछ लेखक (जिन्हें श्री किशोर साहू ने इसी प्राक्कथन में स्वयं 'अध पढ़े लिखे' कहा है) अवश्य ही उनके पास अपना उपन्यास लेकर गए होंगे और श्री किशोर साहू ने उन्हीं को हिन्दी के 'बहुतेरे साहित्यकार' समझ लिया। परिणाम यह हुआ है कि लेखक ऐसी धारणा के साथ हिन्दी साहित्य में आया है, जैसे वह हिन्दी को कोई-नई दिशा दे रहा हो।

जहां तक इन कहानियों का सम्बन्ध है, उनमें किसी तरह की 'नई दिशा' या 'नया खून' तलाश करना तो व्यर्थ होगा। पर कहानियां बुरी नहीं हैं। यदि लेखक के दम्भपूर्ण-आत्मविश्वास और अहंभाव की मात्रा कम की जा सकती, तो इन १२ कहानियों में से कुछ निस्सन्देह श्रेष्ठ रचनाएं बन सकती थीं। उदाहरण के लिए 'चाय' शीर्षक कहानी को लिया जा सकता है, जो इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। यह कहानी आत्म चरितात्मक शैली में लिखी गई है और इस कहानी का मुख्य पात्र जगदीश अपने को बहुत बड़ा आदमी समझ रहा है। यदि इस चरित्र में से अहंभाव की न्यूनता की जा सकती, तो सम्पूर्ण चित्रण अधिक स्वाभाविक और श्रेष्ठ बन जाता। फिर भी कहानी निस्सन्देह अच्छी है। दो अन्य खामियां भी इस कहानी में हैं। एक तो यह कि परछाईं द्वारा जगदीश को यह दिखाई दे जाना कि चाय के लिए मूंगा अपने स्तन से गिलास में दूध निकाल रही है, बहुत अच्छी कल्पना नहीं है, क्योंकि उस दशा में राव जी और गोविंद को भी वह परछाईं दिखाई पड़ सकती है, क्योंकि वे जगदीश के साथ ही बैठे बातें कर रहे हैं। यह आवश्यक बात किसी और अधिक अच्छे और निर्दोष तरीके से बताई जा सकती थी। दूसरा यह कि आखीर में मूंगा जगदीश से कहती है—"तुम हमारे गांव कभी न आना, गांव अगर आओ भी तो मेरे घर मत आना।" इस तरह इस कहानी को अनावश्यक रूप से गम्भीरता का जामा पहना दिया है। फिर भी जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, यह एक अच्छी कहानी है। इस संग्रह की कहानियों में कथानक का अभाव नहीं है, वे खासी दिलचस्प भी हैं। पर केवल घटनात्मक चित्रण ही कहानी नहीं है। अच्छी कहानी में कुछ और भी चीजें अवश्य होनी चाहिए, यदि श्री किशोर साहू उन चीजों की तरफ भी ध्यान दें, तो निस्सन्देह वह अच्छी कहानी लिख सकेंगे।

प्राचीन ब्राह्मण कहानियां : लेखक—रांगेय राघव, प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए० जीरो रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या—३६६, मूल्य—६) सजिल्द।

पिछले दिनों श्री रांगेय राघव ने प्राचीन साहित्य में से जो ६ बृहद् कथा संग्रह तैयार किए हैं, उनमें यह एक संग्रह है, जिसमें भारतीय ब्राह्मण परम्परा में से ७१ कहानियां दी गई हैं। अधिकांश कहानियां विभिन्न पौराणिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में हैं। पौराणिक सन्दर्भ प्राप्त करने के लिए यह संग्रह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इस तरह के संग्रह की आवश्यकता थी। उक्त परम्परा के आधार पर अभी इस तरह के कितने ही और संग्रह भी बनाए जा सकते हैं। ये कहानियां अर्थपूर्ण तथा प्रतीकात्मक तो हैं ही, इनमें यथेष्ठ मनोरंजन सामग्री भी है। श्री रांगेय राघव का यह प्रयास निस्सन्देह स्तुत्य है, यद्यपि शीघ्रता की छाया इस संग्रह में विद्यमान है।

भारत में फलोत्पादन लेखक—जयराम सिंह, प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए० जीरो रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या—(रायल साइज) ४६८, मूल्य—८) रु० सजिल्द।

भारत की वर्तमान वित्तीय व्यवस्था में फलोत्पादन का महत्व निर्विवाद है। परिमाण और किस्म दोनों दृष्टियों से फलोत्पादन बढ़ाकर जहां देश की अन्न समस्या को हल करने में मदद ली जा सकती है, वहां फलों द्वारा प्राप्त विटामिनों के आधार पर देश का स्वास्थ्य उन्नत करने में भी उपयोगी काम किया जा सकता है। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं में फलोत्पादन सम्बन्धी अधिक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए।

यह पुस्तक अपने विषय की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें ३० अध्यायों में फलोत्पादन की सामान्य बातों के अतिरिक्त विभिन्न फलों को बोने, कलम लगाने, उनके वृक्षों की देखभाल करने तथा उन्हें बीमारियों से बचाने के तरीकों पर संक्षेप में और अच्छे ढंग से प्रकाश डाला गया है। भाषा सरल है। यदि विभिन्न फलों के सम्बन्ध में आवश्यक गणनाएं तथा उनके इतिहास के बारे में भी कुछ जानकारी इस पुस्तक में दी जा सकती, तो अधिक अच्छा रहता। पुस्तक में चित्रों की बहुत कमी है, जो इस तरह के प्रकाशन में एक बड़ा दोष है।

स्ट्राबेरी को सेब के अध्याय में किस तरह दे दिया गया है, यह हमें समझ नहीं आया। फलों के श्रेणीकरण के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से लिखने की आवश्यकता थी। पुस्तक संग्रहणीय और प्रशंसनीय है।

विश्व परिचय माला के तीन प्रकाशन

१. ईरान लेखक—सत्यपाल विद्यालंकार, पृष्ठ संख्या—६६।

२. बर्मा : लेखक—वही, पृष्ठ संख्या—१००।

३. इण्डोनेशिया लेखिका—उमा राव, पृष्ठ संख्या—७६ प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य प्रत्येक का—२) रु०।

सम्भवतः नव साक्षर अथवा छोटी आयु के विद्यार्थियों को विश्व के विभिन्न देशों का परिचय देने के लिए यह माला प्रकाशित की जा रही है। इन सभी पुस्तकों में सम्बद्ध देशों की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के साथ उनकी भौगोलिक रचना, सामाजिक जीवन, उपज, नगर आदि के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी दी गई है। तीनों पुस्तिकाएं अच्छी शैली में लिखी गई हैं और मानचित्रों के अतिरिक्त उनमें अन्य उपयोगी चित्र भी हैं। ये सब प्रकाशन निस्सन्देह उपयोगी हैं।

लोकोदय विज्ञान माला की तीन पुस्तकें

१. पानी लेखक—विमलचन्द्र, पृष्ठ संख्या—७८।

२ उन्नत कृषि की ओर लेखक—पन्नालाल जायसवाल, पृष्ठ संख्या—११२।

३ चिकित्सा की प्रगति लेखक—भवानीशंकर मेहता, पृष्ठ संख्या—१०४, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य (प्रत्येक का)—२) रु०।

पूर्वोक्त विश्व परिचय माला के ढंग और प्रमान (स्टेंडर्ड) की ही यह माला भी है। तीनों पुस्तिकाएं उपयोगी हैं और अच्छे ढंग से लिखी गई हैं। इनके चित्र पूर्वोक्त माला के चित्रों से भी अधिक अच्छे हैं। 'चिकित्सा की प्रगति' की शैली विशेषतः प्रशंसनीय है। हमें आशा है, ये दोनों मालाएं यथेष्ठ लोकप्रिय सिद्ध होंगी।

सहकारिता लेखक—नारायण विष्णु परचुरे, प्रकाशक—मध्य भारत केन्द्रीय सहकारी संस्था इन्दौर, पृष्ठ संख्या—३७०, मूल्य—२)।

सहकारिता के सम्बन्ध में लिखी गई यह पुस्तक ४ भागों में विभक्त है। कुल मिलाकर ३४ अध्याय हैं। पहले भाग के ५ अध्यायों में सहकारिता के सिद्धान्त और विकास पर प्रकाश डाला गया है। दूसरा भाग (१३ अध्याय) मुख्यतः साख संस्थाओं और बैंकों के सम्बन्ध में है। तीसरे भाग (८ अध्याय) में विभिन्न प्रकार की सहकारी संस्थाओं का वर्णन है और चौथा भाग (७ अध्याय) सहकारी कार्यों के नियन्त्रण तथा उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में है।

इस तरह की पुस्तक जिस सरल शैली में लिखी जानी चाहिए, वह सरल तथा सोदाहरण शैली इस रचना में नहीं है। यद्यपि लेखक का प्रयत्न अवश्य सराहनीय है। पुस्तक की छपाई-सफाई बहुत नीचे दर्जे की है, पर शायद दाम कम रखने के लिए ही ऐसा किया गया है।

'लोककथाएं' तथा **'कथक'** लेखक—द्रोणवीर कोहली, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—(बड़े आकार के) ३२ तथा ३२, मूल्य—१ रु० २५ नया पैसा तथा १ रु० ४० नया पैसा, सजिल्द।

उक्त दोनों लोककथा संग्रहों में से प्रथम में मुख्यतः पशु-पक्षियों आदि के सम्बन्ध में पंजाब के एक भाग में प्रचलित ६ लोककथाएं हैं और दूसरे में अधिकांशतः ऐतिहासिक ढंग की ६ लोककथाएं। लिखने का ढंग अच्छा-खासा मनोरंजक है। प्रथम संग्रह अधिक छोटी उम्र के बच्चों के लिए है, उसमें पंजाबी लोक-पद भी काफी संख्या में हैं। चित्र, छपाई-सफाई आदि सुन्दर है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

○

अन्तर्दर्शन . तीन चित्र (काव्य) लेखक—उदयशंकर भट्ट, प्रकाशक—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, पृष्ठ संख्या—८२, मूल्य—दो रुपए।

अतीत की परिचित कथाओं और पात्रों को अपना कर अपनी विदग्ध कल्पना और प्रतिभा के सहारे, उन्हें नए रूपों में संजोना और नई उद्भावनाओं से विभूषित करना अभीष्ट तो है, पर सरल कार्य नहीं। जो ऐसा कर सके हैं, उनका कवि-कर्म धन्य है। श्री उदयशंकर भट्ट के कवि को इसी प्रकार के प्रयास में यथेष्ठ सफलता मिली है। आलोच्य ग्रन्थ में भट्ट जी ने रावण, सीता और राम के अन्तर्मन में प्रविष्ट हो, आत्मसंघर्ष की तीन झांकियां प्रस्तुत की हैं। तत्सम प्रधान, संस्कृत-निष्ठ शैली और सहज सरल छन्दों को अपनाया गया है। रावण वाला अंश तुकान्त छन्द में है, शेष दो अतुकान्त में। पृष्ठ २४, ३२ और ३६ पर छन्दोभंग दोषयुक्त इन पंक्तियों—

—'अट्टहास कर उठा तभी दशमुख से दशमुख साभिमान'

—'खींचती विनाश की ओर उसे वह बिना मूल आकाश-पौध'

—'हट, मुझको अपने में आने दे, मुझ को रावण बन जाने दे'

को छोड़कर शेष सभी स्थलों पर छन्द और भाषा का निर्वाह निर्बाध है। यह तो हुई इस ग्रन्थ की कलात्मक सफलता।

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से सर्वात्तम भाग सीता के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है। यह शायद स्वाभाविक भी था, क्योंकि कवि-कर्म के लिए जिस भाव-प्रवणता की अपेक्षा होती है उसकी अनुभूति कवि को दुखिनी सीता के चिन्तन-चित्रण में ही अधिक हो सकती थी। सीता के माध्यम से 'निश्चय तन के दुःख से मनका दुःख अधिक' जैसी पंक्तियां लिखते हुए निश्चय ही भट्ट जी का कवि, राम और रावण के अन्तर्मन्थन की दार्शनिक ऊंचाई की तुलना में, बहुत-बहुत गहरे डूब सका होगा। जैसे रावण क्षण-दो-क्षण राम से टक्कर लेने के अपने निश्चय की व्यर्थता का अनुभव करता हुआ, दार्शनिक उड़ानें लेता है, वैसे ही सीता भी, क्षण-दो-क्षण को, नारीत्व के दर्प और अह के उफान से प्रभावित होती है। पर जैसे रावण फिर अपने प्रकृतरूप पर लौट आता है, वैसे ही सीता भी कह उठती है—

' मेरे गौरी पूजन के समय
के भोले, रुचिराकृति पावन राम हो
फूलों की सी लाज भरी आभा लिये
नयनों का स्मय विस्मित अधरों की सुखद
मुस्काती सी झलक राम की चाहिए।

और यही स्नेह-चिन्तन और स्नेहाराधन, जो सीता का प्रकृत रूप है, उसे सच्ची सान्त्वना देता है—

छन्दों के पखों पर उड़ती सान्त्वना
शब्दों की ध्वनि से फूटी मधुगन्ध सी।

परिणाम यह होता है कि सीता के स्नेहाविष्ट व्यक्तित्व की शीतल छाया चराचर पर पड़ती है—

स्तब्ध क्षितिज के नयन नयन की लालिमा
लोक-लोक की सीमाएं सब तोड़ कर
नक्षत्रों में भरती लहरें प्रणय की।

इन कुछ उदाहरणों से एक बात सुस्पष्ट है। यदि भट्ट जी अन्तर्दर्शन के अन्तर्गत केवल सीता वाला खण्ड ही प्रस्तुत करते, तो भी उनके श्रद्धालु पाठकों को यह अनुभव न होता कि कुछ है, जो उन्होंने नहीं पाया है। वस्तुतः 'कामायनी' की बोझिल शैली में प्रस्तुत रावण वाला खण्ड, और सीता-त्याग तथा शम्बूक एवं बालिवध की अनमिल परिस्थितियों को एक जूट कर, आदर्श की दुहाई तक पहुंचाने वाले राम सम्बन्धी खण्ड, ये दोनों ही सीता वाले खण्ड की तुलना में काफी कमजोर हैं। विशेषतः राम वाले खण्ड में, कालपुरुष और राम का संवाद अस्वाभाविक, प्रायः निरी मस्तिष्क की उपज लगता है। हृदय-स्पर्शी गुण का, उसमें अभाव है। यही कारण है कि इस प्रकार के लंगड़े तर्क कालपुरुष प्रस्तुत करता है—

जैसे कभी-कभी मर जाती चीटी पैरो के नीचे आ—
प्रायश्चित्त करे क्या मानव, उसके लिये प्राण भी दे दे ?

और यही कारण है कि इस खण्ड में निम्नलिखित पंक्तियो के समान गद्यात्मक पद्य की भरमार है —

क्या अच्छा है और बुरा क्या, समय, परिस्थिति निर्णय करते
वह केवल समाज के हित औ आवश्यकता पर निर्भर है
जीवन को आगे करने को मानव के कर्मो का क्रम है।
चिन्तन द्वारा जीर्ण कर्म की केंचुल तज वह आगे बढता।

लेकिन, कुल मिलाकर भट्ट जी के इस काव्य ग्रन्थ में काव्यरसिक को आकर्षित करने वाले यथेष्ट तत्व है और मुझे विश्वास है कि काव्य प्रेमी इसे अवश्य अपनाएगे।

वेद का राष्ट्रगान (अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का हिन्दी पद्यानुवाद) अनुवादकर्त्ता—राजनाथ पाडेय, प्रकाशक—श्री लक्ष्मी प्रकाशन मन्दिर, सुलतानपुर, पृष्ठ सख्या—४८, मूल्य—डेढ रुपया।

अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त सुप्रसिद्ध है। उसके मूल, अन्वयार्थ और पद्यानुवाद को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। पद्यानुवाद काफी साफ-सुथरा है। भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है, छन्द निर्दोष है। यदि कोई कसर है तो यही कि छपाई-सफाई अधिक अच्छी नही है। मुझे आशा है कि वैदिक साहित्य के प्रेमियो को पुस्तक रुचिकर प्रतीत होगी और अगला सस्करण सज-धज के साथ निकल सकेगा।

सैनिक ' लेखक—वल्लभ डोभाल, प्रकाशक—गढवाल साहित्य मडल, नई दिल्ली, पृष्ठ सख्या—६०, मूल्य—सवा रुपया।

'सैनिक' एक नवोदित कवि की आरम्भिक रचना है। युद्ध की विभीषिका दिखाकर शान्ति के सहज-सरल आदर्श की ओर उन्मुख करना कवि का अभीष्ट है। कला की परिपक्वता की बजाय लोकरजन कवि को अधिक अभीष्ट है। अत हमारे सुपरिचित हिन्दी-उर्दू छन्दो को ही उसने अपनाया है। सर्वसाधारण को काव्य यथेष्ठ आनन्ददायी प्रतीत होगा।

नये हस्ताक्षर (ग्वालियर के ६३ कवियो की रचनाओ का सग्रह) सम्पादक—जगदीश तोमर, राजेन्द्र कुमार, प्रकाशक—नूतन समाज प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म० प्र०, पृष्ठ सख्या—८८, मूल्य—डेढ रुपए।

ग्वालियर के नवोदित कवियो के इस सग्रह के गीतो में नवयुवकोचित भावुकता की उफान के साथ-साथ भविष्य के प्रति आशा बधाने वाले यथेष्ठ तत्व मिलते है। इन गीतो को किसी भी कठोर कसौटी में कसना न तो उचित ही है, न अभीष्ट ही। मै आशा करता हू कि जिस एक नगर ने (कम से कम गिनाने के लिए) इतने सारे कवि हमें दिए है, वह दो-चार 'वीरेन्द्र मिश्र' भी अवश्य ही देगा।

रणधीर सिनहा की रचनाएं (१९५६ और १९५७) प्रकाशक—श्रेष्ठ साहित्यागार, पटना, पृष्ठ सख्या—१२४, मूल्य—अढाई रुपया।

अब से पहले होता यह था कि जब कोई साहित्यकार अनुभव करने लगता था कि वह अपनी सर्वोत्तम कृतिया दे चुका, तो उन कृतियो का पूर्ण सग्रह करवाने की चिन्ता करता था। अब चूकि जमाना नया है, अत बातें भी नई और क्रम उलटा होना चाहिए। 'रणधीर सिनहा की रचनाए' इसी नए क्रम की सकेतवाहिका है। यह सग्रह कवि की दो वर्षो की उपलब्धि का 'डिपार्टमेंटल स्टोर' कहा जा सकता है। इसकी भूमिका में भी आपको एक नया ही स्वर मिलेगा—'अगर आप कहते है कि मै अच्छा लिखता हू तब तो मेरे लिए दुखी होने की कोई बात ही नही, जसा मै खुद समझता हू। अगर आप कहते है कि मै बुरा लिखता हू तब भी मेरे लिए दुख की कोई बात नही, क्योकि अच्छा लिखने को अभी सारी जिन्दगी बाकी पडी है।' अब ऐसे नितान्त वीतराग (या नितान्त आत्मतुष्ट) लेखक की अच्छाई या बुराई क्या बखानिए। लेखक रणधीर सिनहा में सूझ की कौंध जहा-तहा निश्चय ही मिलती है। 'दुपहरिया' कविता की ये पक्तिया देखें —

दुपहरिया लगती है
जैसे काली उराव बाला ने
अपनी हथेली हल्दी से रग ली हो।
मन्दिर के सावले आकर
कनइल के पीले फूलो में डूब गए हो।
रसोई घर की अ्रत चूने के बजाय
रामरस से पुत गई हो
और प्रेस से छपकर निकला हुआ
'विविधा' के पहले अक का 'कवर'
अभी गीला-गीला हो।

अतिम बिम्ब को छोड, दुपहर की मनहूसियत के ये सशक्त बिम्ब है जो कवि रणधीर सिनहा के भविष्य के प्रति हमें आश्वस्त बनाते है। परन्तु इनका लेखक इतनी दिशाओ म एक साथ बिखरने-भटकने की कोशिश कर रहा है कि वह किसी भी दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति करता नजर नही आता। मै यही आशा और कामना करता हू कि रणधीर सिनहा प्रतिभा और प्रयोगशीलता के मार्ग पर आगे बढते हुए अपने कृतित्व की वास्तविक दिशा को पहचानेंगे और उसी दिशा की ओर निरन्तर, और सजग भाव से बढते रहेंगे।

—प्रयागनारायण त्रिपाठी

[illegible] धर्म लेखक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय, प्रकाशक—सस्ता साहित्य
प्रकाश सस्ता साहित्य मडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली, पृष्ठ सख्या—
१५०, ल्य—१ ७५ नए पैसे।
इ पुस्तक के लेखक श्री हरिभाऊ उपाध्याय हिन्दी के एक जाने-
माने ल लेखक है और उन्होने काफी विचार के बाद यह पुस्तक लिखी
है। ते है कि लोग रामराज्य और सर्वोदय के लिए केवल दिमागी
तरव काम न ले, बल्कि उसके लिए पागल हो जाए। वह कहते हैं :
'भा निहाल, रामराज्य के लिए, 'सर्वोदय' के लिए दिमागी तरकीबें
से ने का ख्याल छोड़ दो। यह धोखा है, माया है। दिल से लडो।
दिल ागे बढ़ाओ। दिल पागल है, मतवाला है। देखो, एक 'पागल'
दिल ने ब्रिटिश साम्राज्य को हिला डाला था। क्या तुम पागल नही
बन ? क्या दिमाग पर तुम्हारा दिल विजय नही पा सकता ? क्या सोचते
ही करोगे नही ? कोसते ही रहोगे, आगे नही बढोगे ? रास्ता कठिन
है, ता है, इसलिए उस हरी घास पर चलना चाहते हो, जिसे कौसो
पी दिया है ? आज तुम क्राति के मार्ग पर हो। तुम्हारे विचारो
में क्राति हो गई है, अपूर्ण जीवन आ गया है। तुम रामराज्य को
आ टं-पथ में ले आए हो। अपने चरित्र में क्राति करो। काम में लग
दि निष्फलता आती दीखे तो भी आदर्श व सिद्धात पर अटल रहकर
[illegible] मार्ग पर बढो। भारत ही नही, विश्व विकट सकट में है।'

(शेष पृष्ठ ३१ पर)



सम्पादकीय

तीसरी योजना और साक्षरता

सम्पूर्ण भारत को साक्षर करने की आवश्यकता हमारी आधारभूत आवश्यकताओं में है। सन् १९५८ में भारत के विभिन्न राज्यों में साक्षरता की संख्या ४८ प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक थी, जो अंग्रेजी काल से बहुत अधिक होते हुए भी सन्तोषप्रद नहीं है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि तीसरी योजना के कार्यकाल में यह स्थिति ले आई जाए कि देश भर में एक निश्चित आयु के सभी बालकों को (उदाहरण के लिए ८ वर्ष से १२ वर्ष) साक्षर बना सकने की व्यवस्था कर ली जाए।

इस दृष्टि से दूसरी योजना के अन्त तक (१९६१ में) जो स्थिति होगी, वह विशेषत विचारणीय है। तब प्राथमिक शिक्षा लेने योग्य बालकों (७ से १२ वर्ष) की दृष्टि से विभिन्न राज्यों में शिक्षा का प्रबन्ध निम्नलिखित प्रकार होगा —

केरल	१०० प्रतिशत
दिल्ली	१०० ,,
पश्चिमी बंगाल	८२ ,,
बम्बई	८० ,,
पंजाब	७८ ,,
मद्रास	७६ ,,
आसाम	७४ ,,
मैसूर	७३ ,,
आन्ध्र	६५ ,,
मध्य प्रदेश	६२ ,,
उड़ीसा	४९ ,,
बिहार	४८ ,,
काश्मीर	४७ ,,
उत्तर प्रदेश	४२ ,,
राजस्थान	४० ,,
नेफा	१० ,,
(अन्य प्रदेश)	८७ प्रतिशत से ५७ प्रतिशत

साक्षरता की दृष्टि से यह असमता हमारी राय में चिन्ता का विषय है। तीसरी योजना में इस बात का प्रबन्ध आवश्यक है कि देश भर में विद्यमान उक्त आयु के सभी बालक-बालिकाओं को साक्षर और शिक्षित बनाने की व्यवस्था की जा सके। साक्षरता मनुष्य को नई आंख देती है। इस बात का प्रबन्ध शीघ्र हो जाना चाहिए कि कम-से-कम भारत के प्रत्येक भावी नागरिकों को यह आंख प्राप्त हो जाए। केन्द्रीय सरकार की देख-रेख तथा सहायता से तथा राज्यों की सरकारों के प्रयत्न से, आशा है, यह काम अवश्य सम्पन्न हो जाएगा।

अनुवाद कार्य का महत्व

संसार भर के सभी समुन्नत देशों में अनुवाद कार्य को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। अन्य भाषाओं का श्रेष्ठ साहित्य अपने देश की भाषा में उपलब्ध हो जाए—इस ओर सभी प्रगतिगामी देशों का ध्यान रहता है। हमारे देश में १४ राष्ट्रीय भाषाएं हैं, जिन्हें एक-दूसरे के साथ साहित्यिक आदान-प्रदान करना है। इसके साथ संसार के श्रेष्ठ साहित्य का इन सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होना भी आवश्यक है। इन दोनों दृष्टियों से भारत में अनुवाद कार्य का महत्व और भी अधिक है।

पर स्थिति यह है कि भारत की भाषाओं में अच्छे अनुवादों की बहुत कमी है। आज हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवादित साहित्य की मांग काफी बढ गई है, पर जो अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं उनमें से अधिकांश को श्रेष्ठ अनुवाद नहीं कहा जा सकता।

इस परिस्थिति के कारण स्पष्ट हैं। ये कारण मुख्यत चार हैं। उदाहरण के लिए यहां हम हिन्दी को ले रहे हैं। प्राय सभी भारतीय भाषाओं में कम-अधिक यही स्थिति है।

(१) हिन्दी का अभी तक प्रमानीकरण नहीं हुआ। सैकड़ों बल्कि हजारों शब्द दो तरह से लिखे जाते हैं। कितने ही शब्द तो दो से भी अधिक प्रकार लिखे जाते हैं। यहां तक कि वाक्य रचना और व्याकरण के सम्बन्ध में भी पूरी तरह का प्रमानीकरण अभी तक हिन्दी में नहीं हो पाया।

(२) पारिभाषिक शब्दों की कमी। एक ओर तो हिन्दी में अभी हजारों बल्कि लाखों वैज्ञानिक नए शब्दों की आवश्यकता है, दूसरी ओर एक ही पारिभाषिक शब्द के लिए आधे दर्जन तक शब्द आप को हिन्दी में मिल जाएंगे। और एक ही शब्द के लिए ये आधे दर्जन शब्द सब के सब हाल ही में बनाए गए हैं। ये शब्द स्वभावत एक-दूसरे को काटने का काम करते हैं। अनुवाद में इन शब्दों के बिना काम नहीं चलता और व्यवहार किए जाने पर पाठक के लिए इनका निश्चितार्थ समझना दुरूह हो जाता है।

(३) अनुवाद कार्य की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध अभी तक नहीं है। यह आवश्यक है कि सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में अनुवाद के लिए डिप्लोमा कोर्स अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया जाए। भारत की साहित्यिक संस्थाओं को भी इस काम में सक्रिय दिलचस्पी लेनी होगी।

(४) अभी तक अनुवाद कार्य की दरें बहुत कम हैं। हिन्दी में बहुत समय तक चवन्नी या अठन्नी प्रति पृष्ठ अनुवाद का पुरस्कार दिया जाता रहा है। अब यह दरें बढ कर ५ रु० से १० रु० प्रति हजार शब्द तक पहुंची है। साहित्य अकादमी ने इस सम्बन्ध में २५ रु०

प्रति हजार शब्द की दर नियत कर प्रशंसनीय कार्य किया है। पर इस तरह की दर देने वाली संस्थाएं बहुत कम हैं। हिन्दी के प्रकाशक अभी तक अनुवाद कार्य के लिए बहुत कम पारिश्रमिक दे रहे हैं।

हमारी राय से अनुवाद की न्यूनतम दरें जब तक ऊंची नहीं की जाएंगी, योग्य व्यक्ति अनुवाद का कार्य हाथ में नहीं लेंगे।

इसी तरह कुछ और भी कारण हैं। पर हमें यह मानना चाहिए कि भारत में अनुवाद कार्य का महत्व बहुत अधिक है और इस सम्बन्ध में एक बड़ी योजना बना कर चलने की आवश्यकता है। ऐसी योजना, जिसमें भारत की सभी भाषाएं एक साथ अधिकतम आदान-प्रदान करने के योग्य हो जाएं।

राजा का जन्म-दिन– (पृष्ठ १७ का शेषांश)

किस प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा राजा तक पहुंचेगा। रात का तीसरा प्रहर उस चिड़िया के स्वर द्वारा सुन लेने के पश्चात वह नींद की गोद में सो गया।

परन्तु जयन्त कमरे में चुपचाप चहलकदमी करता रहा। कभी वह गंभीर हो जाता, कभी उसका मन भारी बोझ से दब जाता और कभी वह अपने मन को स्वयं ही समझाता। तब उसकी मुट्ठी बन्द हो जाती और उसके बाद उसके होठों पर हँसी फूट उठती। बीच-बीच में वह जीमूतवाहन की ओर देख लेता—फिर न जाने क्या सोचकर वह दीवाल पर घूंसे मारता

राजा का जन्म दिन

जयन्त फाटक के पास एक चारपाई पर बैठा था। वह जीमूतवाहन की पोशाक पहने था, सिर पर उसी की टोपी थी।

फाटक खुलते ही वह निकल भागेगा कोई यदि बाधा देने को आगे बढ़ा, तो वह रक्त की नदी बहा देगा।

किन्तु यह क्या ?

हर बार तो प्रात होते ही प्रहरी फाटक खोल देता था। इस बार इतना विलम्ब क्यों ? कमरा तो प्रकाश से भर उठा है। यह उजाला तो असह्य है। वह एकटक देखता रहा फाटक की ओर। दूर से पद-ध्वनि सुनाई पड़ी—बहुत से व्यक्तियों के आने की आवाज। यह आवाज धीरे-धीरे स्पष्टतर हुई एकदम दरवाजे से बाहर।

लौह-कपाट झन-झन शब्द के साथ खुले। सर्वप्रथम उत्सव के अनुकूल पोशाक से भूषित काराध्यक्ष थे, उनके पीछे प्रहरियों के दल।

चौखट पर पैर रखते ही काराध्यक्ष ने घोषणा की—श्री मन्महाराज ने आदेश परिवर्तन किया है। आज दोनों बन्दियों को मुक्त कर दिया गया है।

जयन्त ने उद्‌भ्रान्त दृष्टि से काराध्यक्ष की ओर देख कर पूछा—"दोनों ही ?"

काराध्यक्ष उसके भाव से विस्मित हुए! कमरे में प्रवेश कर उन्होंने देखा—ज़मीन पर जीमूतवाहन की लाश पड़ी है। उसके मुख, छाती और आखों के कोनों में रक्त जम गया है। मुख से रक्त-धारा निकल कर नीली झाग बन चुकी है।

जयन्त धीरे-धीरे बोला—"हम दोनों ही मुक्त हैं

अनुवादक : गोविन्द लाल चैटर्जी

शून्य की यात्रा– (पृष्ठ ३८ का शेषांश)

दो-चार लाख उद्‌जन कणों को मिलाकर यदि एक उद्‌जन बम इस पृथ्वी को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है, तो अनगिनत समय से ये उद्‌जन कण कितना विनाश तथा नव-निर्माण कार्य कर रहे हैं, इसका क्या हिसाब दिया जाए।

कैलिफोर्निया में विल्सन चोटी पर १०० इंच मोटा दूरबीन लगाकर बहुत-सी बातें देखी गई थीं। पर उसी प्रदेश की पालोमर चोटी पर एक २०० इंच मोटी दूरबीन लगाकर जो कुछ देखा गया है, उसने सृष्टि की गहराई, रहस्य, दृढ़ता तथा हमारे अज्ञान को और भी गहरा कर दिया है। अब विज्ञान इस नतीजे पर पहुंचा है कि लगातार सृष्टि बढ़ती जा रही है। उसमें विस्तार होता जा रहा है। उसका फैलाव हो रहा है। ग्रह तथा तारापुंज तथा उपग्रह एक-दूसरे से इतने दूर होते जा रहे हैं तथा टूट-टूट कर इतने फैलते जा रहे हैं कि उनकी थाह पाना असम्भव है। ऋषियों ने युगों पूर्व, बिना किसी दूरबीन के जिन ग्रहों तथा उपग्रहों की सत्ता सिद्ध की थी, वह तो सही निकला। पर, विस्तार की यह कथा तो बड़ी विचित्र है, और अब घबड़ा कर विज्ञान यह कहने लगा है कि ब्रह्माण्ड अनन्त है। सृष्टि अनन्त है। इसका कोई ओर-छोर नहीं है।

तब, हमारा मानव यात्री कहां जाएगा, कितनी दूर जाएगा ? लाख, पचास हजार मील की यात्रा करने पर भी मानव समाज के ज्ञानकोष में विशेष वृद्धि न होगी। इसीलिए हमने अपने लेख का शीर्षक रखा है—शून्य की यात्रा। जो न ज्ञात हो, वह शून्य है। यह ब्रह्माण्ड हमारे लिए शून्य के समान है। इसके रहस्य को भेदने के लिए असीम साहस तथा तत्परता से जितना भी काम हो, परम सराहनीय है।

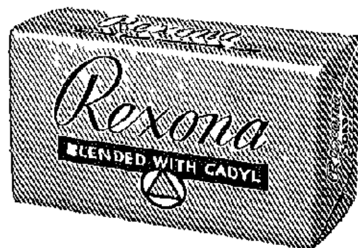
दिन ब दिन ब दिन...

रेक्सोना साबुन

आप की जिल्द को निखारे चला जाता है

रेक्सोना से हाथ मुह धोने से हर बार आप की जिल्द पहले से ज्यादा चिकनी और ज्यादा नर्म दिखाई देती है। इस लिए कि रेक्सोना में तेलों का एक विशेष मिश्रण, **कॅडिल**, मिलाया जाता है जो जिल्द के स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिए बहुत गुणकारी है। रेक्सोना के मलाई जैसे मुलायम झाग को अच्छी तरह अपनी जिल्द पर मलिये और देखिये कि दिन ब दिन यह कैसे निखरती चली जाती है।

आप के सौंदर्य के लिए . रेक्सोना



स्थायी महत्व की पुस्तकें

	मत्य	डाक खर्च गस
रूसी-हिन्दी शब्दकोश (लेखक—वीर राजेन्द्र ऋषि)	३५ ००	——
भारत के पक्षी (लेखक—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह)	१२ ५०	——
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड १)—१८८४-१८९६		
कपडे की जिल्द	५ ५०	० ८५
कागज की जिल्द	३ ००	० ५०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२–१९५६)	३ ५०	० ८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४९–५३)	५ ००	१ ३५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण)	५ ००	१ ३०
भारतीय कविता १९५३	५ ००	१ ७५
भारत १९५८	३ ५०	० ६५
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष	३ ००	० ४५
भारत के बौद्ध तीर्थ	२ ००	० ३०
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष	२ ००	० २५
दसवाँ वर्ष	१ ५०	० २५
अशोक के धर्मलेख	१ ००	० २५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

२५ रुपए या इससे अधिक की पुस्तकें मंगाने पर डाक खर्च नहीं लिया जाता है।
सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं या निम्न पते से प्राप्य



पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

Edited and published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad

Regd No D—510


आजकल
विश्व दर्शन सहित
अगस्त
मूल्य पचास पैसे



वर्ष १५ अंक ४ पूर्णांक १८२

अगस्त १९५९

(१० श्रावण से ९ भाद्र १८८१)

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली ८

वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, बारह सेंट या नौ पैंस





अपनी कुटिया के सामने एक टोडा परिवार



वर्ष १५ अगस्त १९५९ अंक ४

बंगला कविता

दियासलाई की सीक

सुकान्त भट्टाचार्य

मैं दियासलाई की एक छोटी-सी सीक हू,
इतनी नगण्य कि किसी की आख में भी नही पडती,
फिर भी यह मत भूल जाना कि
मेरे मुह में बारूद की जलन है—
हृदय में है जल उठने की अधीरता लिए भीषण उच्छ्वास,
मैं दियासलाई की एक सीक हू ।

याद है उस दिन की बात ?
घर के कोने में जल उठी थी आग
मुझे अवज्ञा से न बुझा कर फेंकने पर ।
कितने घरो को मैंने जला डाला,
कितने प्रासादो को मैंने धूल मे मिला दिया,
मैंने अकेले ही—छोटी-सी दियासलाई की एक सीक ने ।
ऐसे ही अनेक नगरो, अनेक राज्यो को राख कर सकती हू ।
तो भी हमारी अवज्ञा करोगे ?
याद नही ? अभी उस दिन—
हम सब जल उठी थी एक ही बक्स मे,
चौंक उठे थे—
हमने सुना था तुम्हारे फीके मुख का आर्त्तनाद ।
हमारी कितनी असीम शक्ति है
यह तो तुमने बार-बार अनुभव किया है,
तब भी नही समझते
हम तुम्हारी जेब मे बन्द नही रहेंगी,
हम निकल पडेंगी, फैल जाएगी—
शहर में, नगर में, गाव में—दिगन्त से दिगन्त तक ।
हम बार-बार जलती है नितान्त निरादर से—
यह तो सभी जानते हैं ।
किन्तु यह नहीं जानते
एक दिन हम जल उठेंगी
सब एक साथ, आखिरी बार !

अनुवादक श्री गोपाल माहेश्वरी 'प्रताप'

वंगीय

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

भारतवर्षीय भाषाओं में बगाली रगभूमि का स्तर नि सन्देह बहुत ऊचा है। अग्रेजी राज्य की स्थापना सबसे पहले बगाल और मद्रास में हुई और इन दोनो प्रातो के निवासियो ने अग्रेजी भाषा में विशेष निपुणता प्राप्त की और अग्रेजो के विशेष सम्पर्क में रहने से उनकी सस्कृति, विचारधारा, अभिरुचि और रहन सहन की इन दोनो पर अच्छी छाप पडी। बगला साहित्य पर अग्रेजी का अत्यधिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पडता है। जहा आधुनिक बगला साहित्य के भण्डार की खूब श्रीवृद्धि हुई, वहा रगशाला और नाट्य कला का भी अच्छा विकास हुआ।

नाटक रचना में भरत के नियमो का पालन न कर भारतीय भाषाओं में सब से पहले बगाली में पाश्चात्य शैली अपनाई गई। भरत के नान्दी, मगलाचरण, प्रवेशक, विष्कभक, सूत्रधार, नटी, पारिपार्श्वक, स्थायी विदूषक (माढव्य) आदि का झझट सबसे पहले बगाली नाटकों से उठाया गया था। तथापि दो बातें बगाली नाट्य साहित्य में अग्रेजी से नही, किन्तु भारतीय परम्परा से ली गई है। क्योकि ये दोनो बातें पाश्चात्य जाति को अभी भारत से ही सीखनी है। वे है औपनिषदिक तत्व ज्ञान की विचार धारा और सगीत। अधिकाश बगाली नाटककार अध्यात्मवादी हैं और उच्च शास्त्रीय सगीत के मर्मज्ञ है। भारतीय सगीत के नाना राग, नाना रसो के स्वर-विन्यास से अपने अभिनयों में वे सहायता लेते हैं। गद्य में भी बगाली अभिनेता कोमलतर भावो के प्रकट करने में सिद्धहस्त हो गए है। मराठी नाटको का प्राण जिस प्रकार सगीत है, उसी प्रकार अति कोमल मनोभावो को प्रकट करना बंगाली नाट्य का प्राण समझा जा सकता है। सौभाग्य से ऐसे भाव प्रकट करने के लिए बगाली भाषा का भरपूर सहयोग प्राप्त हो गया है।

अन्य राज्यो में मनोरजन के लिए जिस प्रकार रामलीला, रासलीला, ललित आदि का प्रचार था, उसी प्रकार बगाल में कवियो की प्रतियोगिता, खेंडड, यात्रा, पाचाली, भाड आदि के द्वारा मनोरजन कर लिया जाता था। सुप्रसिद्ध राजा कृष्णचन्द्र की सभा में इन्ही लोगों का जमघट रहता था। इन्ही में से नवरत्न चुन लिए गए थे, जो राजा साहब का मनोविनोद किया करते थे। नाट्य कला के उत्कर्ष की ओर किसी रसिक रईस का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ और न इस कला को कभी राजाश्रय ही मिला। यात्रा (नौटंकी का ही एक रूप) में किसी पौराणिक सूत्र को लेकर अभिनय किया जाता है। पात्रों की वाक्पटुता और सगीत के अनुसार ही उसका मूल्य आका जाता था। कोई पुस्तक नाटक रूप में नही लिखी जाती थी। अग्रेजी स्कूल, कालेजो के खुलने पर अग्रेजी के प्रभाव से नवशिक्षित युवको को यह बात अखरी और उन्होने 'सखेर दल' (शौकीनो का समुदाय) गठित कर यात्रा का सस्कार करने का निश्चय किया, जो सफल हुआ और जो यात्रा अपरिष्कृत अभिरुचि की द्योतक मानी जाती थी, उसे सभ्रात लोग भी देखने लगे। खेंडडो, यात्राओं, कवियों, भाडो आदि का पूर्व रूप कैसा विकृत था, इस सम्बन्ध में सुविख्यात देशभक्त श्री राजेन्द्र मित्र अपने 'विविधार्थ सग्रह' में लिखते हैं—"उस समय क इन लोगो का मनोविनोद इतना फूहड और जघन्य था कि सभ्यता की रक्षा करते हुए उसका वर्णन करना बडा दुष्कर कार्य है। इस मनोविनोद से जो प्रमुदित होते थे, उनके चित्त की अवस्था को सोचने पर सहृदय सज्जनो के मन को गहरी ठेस लगती है। ऐसा अश्लील विनोद सभ्य समाज में अधिक दिन टिक नही सकता। उक्त अश्लील मनोरजन की रीतिया जागृत नवयुवको के प्रयत्न से रुक गईं और यात्राओं ने नाटक का अभिनव रूप धारण कर लिया।" प्रारम्भिक नाट्य कलाकार श्री अमृतलाल वसु का मत इससे भिन्न है। उनका कथन है—"वगीय नाट्य कला का वर्तमान रूप पूर्ववर्ती यात्राओं का ही परिमार्जित रूप नही है। इसमें सन्देह नहीं कि नाट्य कला को शोभनीय परिष्कृत रूप देने में यात्राओं का रूप नष्ट कर उन्हें प्रतिष्ठित रूप देने वाले युवको का बहुत कुछ हाथ रहा है, परन्तु वर्तमान वगीय नाट्य कला अग्रेजो के अनुकरण पर ही स्वतन्त्र रूप से पनपी है। यही नही, प्रथम वगीय नाट्य मच की स्थापना भी किसी बगाली ने नहीं, किन्तु एक रूसी नाट्य कलाकार ने ही की थी।"

ईसा की १८वी शताब्दी के अन्तिम भाग में हेरासिम लेबेडेफ नामक एक रूसी साहित्य प्रेमी नाना देशो में भ्रमण करता हुआ भारत आया और कलकत्ता में रहकर भारतीय साहित्य और भाषा का अध्ययन करने लगा। उसने 'हिन्दुस्थानी व्याकरण' की एक पुस्तक स्वदेश लौट जाने पर प्रकाशित की थी। उसी ने सन् १७९५ में कलकत्ता में प्रथम वगीय नाट्य मच की स्थापना की थी। श्री लेबेडेफ ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है।—"मै भारतीय साहित्य और भाषा का अध्ययन करता हुआ यह भी देखता जाता था कि बगालियो की अभिरुचि का स्तर कहा तक ऊचा उठा है। मै इसी निष्कर्ष पर पहुचा कि वे गम्भीर ज्ञान-विज्ञान या नीति की बातो को, चाहे वे कितनी ही परिमार्जित और विशुद्ध भावपूर्ण क्यों न हो, उतना पसन्द नहीं करते, जितना कि नकल उतारना या हँसी-मजाक पसन्द करते है। बगालियो की अभिरुचि की नाडी देख कर मैंने उनकी पसन्द के अनुसार दो अग्रेजी नाटको का बगला में अनुवाद किया। इन नाटको को मैंने इस कारण चुना कि इनमें चौकीदार, चोर, वकील, गुमाश्ता आदि के चरित्र बगालियो की रुचि के अनुसार ही चित्रित किए गए है। अनुवाद पूर्ण होने पर बगभाषा के विद्वानो को निमन्त्रित कर उन्हें वह पढने को दिया। उन्होंने उसे दो बार पढा। मै यह भी सूक्ष्म दृष्टि से देखता गया कि कौनसा प्रसग उन्हें बहुत अच्छा लगा और कहा-कहा वे मुग्ध या विचलित हुए। अपनी इस रचना में लखक ने हास्य रसात्मक, तथा गम्भीर दृश्य भी साथ ही साथ इस विचार से जोड दिए थे कि सहृदय दर्शको का चाव हँसी-मजाक तक ही सीमित न होकर गम्भीर चिन्ता के प्रागण में भी स्वच्छन्दता से विहार करने लगे। लोगो के रुचि परिवर्तन

क कार्य में इससे सहायता मिली। सौभाग्य से श्री गोलोकनाथ दास जैसे भाषा शिक्षक मुझे मिल गए, इसी से इस काय में मुझे सफलता मिली, नहीं तो एक यूरोपियन के लिए यह कार्य असम्भव हो रहता।

"श्री दास बाबू ने मेरे सामने प्रस्ताव रक्खा—'यदि आप इन नाटकों को रगमच पर खेलना चाहे, तो बगाली अभिनेता-अभिनेत्रियों को मैं जुटा दूगा'। मैं झट से सहमत हो गया। मैंने तत्कालीन गवनर-जनरल सर जान शोर के पास यूरोपीयनो के मनोविनोदाथ एक रगमच स्थापित करने की अनुमति देने के लिए यथारीति आवेदन किया और उन्होंने भी बिना दुविधा के अनुमति दे दी। दास बाबू ने स्त्री-पुरुष जुटा दिए। मैंने स्वय नक्शा बना कर डूमतला में एक रगशाला बनवाई। ३ मास रिहर्सल करने के उपरान्त अंग्रेजी रगमच पर पहला बगला नाटक 'छद्मवेष' २७ नवम्बर सन् १७९५ को बड़े समारोह से और सफलता के साथ खेला गया। फिर १७९६ में भी वही नाटक पुन खेला गया। दोनों अवसरों पर देशी-विदेशी दर्शकों से रगशाला खचाखच भर गई थी।"

इसके कुछ ही दिनों बाद मि० लेबेडेफ विलायत चले गए। तब ४० वर्षों तक वगीय नाट्य क्षेत्र में सन्नाटा छाया रहा। इस बीच में सन् १८२२ के आस-पास पहले जिन शौकिया दलों ने यात्रा का सस्कार करने का निश्चय किया था, उन्होंने फिर से सर उठाया। कहा जाता है कि इसका बिगुल सवप्रथम शिशुराम ने फूका और फिर श्री दाम सुबल, परमानन्द आदि उद्योगियो ने इस कार्य को आगे बढाया। अब तक यात्रा नाटक से मिलती-जुलती बन चुकी थी। स्त्रियों का अभिनय लडकिया ही करने लगी थीं, कविता से अश्लीलता लुप्त हो चली थी, सगीत परिमार्जित हो गया था, यात्रा की पुस्तकें तैयार हो गई थीं और सभ्यता की मर्यादा बनाए रखने की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही थी। हास्य रस का स्तर ऊचा उठा था, अत दर्शकों में सम्भ्रात सज्जन दिख पडने लगे थे। और यात्रा के प्रति सभ्य समाज में जो घृणा फैली थी, उसके स्थान पर यात्रा का आदर बढने लगा था। काशीराज की यात्रा, नल दमयन्ती, नन्द बिदाई आदि के प्रयोग बहुत लोकप्रिय हुए थे। सुधार का ढग अंग्रेजी अनुकरण पर ही अपनाया गया था।

सन् १८१७ में हिन्दू कालेज की स्थापना होने पर उसमें अध्ययन करने वाले नवयुवक अंग्रेजी काव्य-नाटको से परिचित हो जाने से देशी रगमच के अभाव को अनुभव करने लगे थे। अंग्रेजी थियेटरों में अंग्रेजी नाटक देख कर रगमच का अभाव उन्हें विशेषत अखरने लगा। हिन्दू कालेज के शिक्षित नवयुवक कालेज में ही शेक्सपियर के अंग्रेजी नाटक और सस्कृत नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद खेला करते थे। शिक्षित बगालियों का उत्साह बढ रहा था। उसमें श्री प्रसन्नकुमार ठाकुर ने अच्छा हाथ बटाया। विलायती ढग पर कलकत्ता में एक थियेटर बनवाने का सकल्प कर उन्होंने इस कार्य के सम्पादनार्थ श्री कृष्ण सिंह, श्री कृष्णचन्द्र दत्त, श्री गगानारायण सेन, श्री माधवचन्द्र मलिक और श्री हरचन्द्र घोष की एक कमेटी बनाई और उसने उन्हीं के नारिकेल डागा के भवन में शीघ्र ही एक थियेटर बनवा लिया, जिसका उद्घाटन २८ दिसम्बर १८३१ को हुआ। पहले पहल उसमें शेक्सपीयर का 'जूलियस सीजर' तथा प्रो० विलसन द्वारा अनुदित 'उत्तर रामचरित' नाटक अंग्रेजी में खेले गए। देशी लोगों का अपना रगमच तो बना पर उसमें अभी तक नाटक अंग्रेजी ही खेले जाते थे और उनको देखने के लिए अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ही उपस्थित होते थे। सस्कृत नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद से काम लिया जाता था।

कुछ चिन्ताशील पढ़े-लिखे धनी लोगों को यह बात खटक रही थी। लोगों की माग बढती हुई देखकर शाम बाजार के श्री नवीनचन्द्र वसु ने अपने विशाल भवन में अपने व्यय से एक भव्य नाटकशाला बगला नाटक खेलने के लिए बनवाई। उसमें ६ अक्तूबर १८३५ को श्रीभारत चन्द्र द्वारा रचित सुप्रसिद्ध 'विद्या सुन्दर' नाटक खेला गया। देशी लोगों के व्यय से, देशी लोगों के मनोविनोदाथ, देशी लोगों द्वारा प्रतिष्ठित देशी भाषा में नाटक खेलने वाला यही पहला रगमच था और इसके प्रतिष्ठाता थे—श्री नवीनचन्द्र वसु। 'विद्या सुन्दर' में स्त्रियों की भूमिकाए स्त्रियों ने ही की थी। बगला रगमच प्रस्तुत हो जाने पर बगाली नाटकों की लोकप्रियता बढ चली और क्रमश लोकाश्रय के अभाव से नारिकेल डागा और श्री प्रसन्नकुमार ठाकुर द्वारा निर्मित अंग्रेजी ढग का थियेटर आप ही काल के गर्भ में समा गया और बगाली रगमच पनपने लगा। इसमें प्रतिवर्ष ४–५ बगला नाटक खेले जाने लगे। इन नाटकों की देशी समाचारपत्रों में तो प्रचुर प्रशसा होती थी, किन्तु अंग्रेजों के अंग्रेजी पत्र इनकी भरपूर निन्दा छापते थे। क्योंकि अब उनके नाटकों को कोई नहीं पूछता था। अंग्रेजी पढे-लिखे बगालियों को बगला नाटकों ने अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। यही नहीं, अंग्रेज लोगों को भी बगला नाटकों को देखने का चस्का लग गया था।

अंग्रेजों के स्वार्थ में बाधा पडने से ही बगाली नाटकों की वे निन्दा करते थे, परन्तु अंग्रेजियत के फेर में पड जाने पर भी बगाली युवकों ने अंग्रेजी में जो नपुण्य दिखाया, उसकी उन्हें प्रशसा ही करनी पडती थी। अभिनय कला और भाषा पटुता में वे अपने गुरुओं (अंग्रेजों) से भी टक्कर लेने लगे थे। कितने ही बगाली युवकों के लिए अंग्रेजी मातृ-भाषा जैसी हो गई थी और उन्होंने अंग्रेजी नाटकों की जिन-जिन भूमिकाओं के अभिनय कर दिखाए, वे अंग्रेज अभिनेताओं के अभिनय से किसी प्रकार निकृष्ट नहीं सिद्ध हुए और उन्हें देख कर नाट्य प्रेमी अंग्रेजों को भी दातों तले अगुली दबानी पडती थी। वही निपुणता अब बगाली नाटकों में दिखाने का उन्हें अवसर मिलने लगा। एक के बाद एक रगमच बनने लगे। शौकिया दल के और कालेजों के नवयुवक एकत्र होकर उन पर खेलने लगे। नए-नए अभिनेता तैयार होने लगे और नए-नए नाटक भी लिखे जाने लगे। बगला नाट्य रगमच का यहीं से उत्कर्ष आरम्भ होता है।

ठनठनिया के कृष्ण सरकार के मकान में सन् १८३७ में 'ओरिएण्टल' और बीडन स्ट्रीट के सातू बाबू के मकान में 'बगाल' थियेटर की स्थापना हुई। स्टार, मिनर्वा आदि थियेटर पीछे बने हैं। सन् १८५१ से बगला नाटकों का कायाकल्प होना आरम्भ हो गया था। पाइकपाडा के नाट्य कला प्रेमी राजा प्रतापचन्द्र सिंह और उनके भ्राता ईश्वर चन्द्र सिंह के विशेष उद्योग से सहस्रों रुपए के व्यय से बेलगछिया उद्यान में एक सर्वांग सुन्दर नाट्य शाला बनी, जिसमें शकुन्तला, विक्रमोर्वशीय, महाश्वेता, वेणीसहार, रत्नावली आदि सस्कृत तथा कतिपय अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा के नाटक बगला भाषा में खले जाने लगे। ओरिएण्टल और बगाल थियेटर में भी ये खेले जाते थे। अधिकाश सस्कृत नाटक पं० रामनारायण तर्करत्न द्वारा अनुदित थे। उन्हीं के लिखे 'कुलीन कुलसर्वस्व' नाटक का ३ जुलाई १८५८ को रामजय बसाक के मकान में और चूचुडा में बा० श्री नाथपाल के भवन में अभिनय हुआ। यही पहला बगला सामाजिक नाटक था। तदुपरान्त तो थियेटरों और नाटकों की झडी लग गई। कलकत्ता और आस-पास के उपनगरों में अहमहमिका के साथ नाटक खेले जाने लगे। विशेष सुधार यह हुआ कि अब नाट्य कला की बागडोर निम्न स्तर की रुचिवाले लोगों के हाथ से निकल कर सुरुचि सम्पन्न उच्च शिक्षित लोगों के हाथ में आ

गई, जिससे बगला रगमच की प्रतिष्ठा मे बहुत वृद्धि हुई । बडे-बडे विद्वान और प्रतिष्ठित लोग अभिनय म अवैतनिक रूप से भाग लेने लगे और उत्तम कलाकार के रूप म देश भर में उनकी ख्याति होने लगी । नट, नाटककार, नाट्य शिक्षक, रगमच विशेषज्ञ, नाट्य कला की आर्थिक दृष्टि से सहायता करने वाले, नाट्यशास्त्र समीक्षक आदि के रूप म जो लोग सुप्रसिद्ध हुए उनमे श्री मनोमोहन वसु, माइकेल मधुसूदन दत्त, रामनारायण तर्करत्न, ज्योतिरिन्द्र ठाकुर, यतीन्द्र मोहन ठाकुर, शरच्चन्द्र घोष, प्रतापचन्द्र सिंह, आशुतोष देव (सातू बाबू), अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफी, नगेन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय, महेन्द्र लाल वसु, केशवचन्द्र गगोपाध्याय, दीनबन्धु मित्र, अमृतलाल वसु, कालीप्रसन्न सिंह, गिरीशचन्द्र घोष, धर्मदास सूर, क्षीरोदप्रसाद, विद्याविनोद और द्विजेन्द्र लाल राय आदि उनमें प्रमुख थे । स्त्री कलाकारो में सुकुमारी, विनोदिनी, यादुमणि आदि विशेष रूप से चमक उठी । इन लोगो ने वगीय रगमच म क्रान्ति कर डाली, रगमच का काया पलट कर दिया और अभिनय नैपुण्य का एक नया स्तर तथा नया आदर्श स्थापित किया । विस्तार भय से यहा इनका विशेष परिचय न देकर केवल नामोल्लेख ही किया गया है ।

प० रामनारायण तर्करत्न ने संस्कृत नाटको का बगाली रूपान्तर किया, मनोमोहन वसु ने पौराणिक नाटक लिखे और मधुसूदन दत्त ने सामाजिक नाटक लिखने में ख्याति प्राप्त की । नाट्य सम्राट गिरीश घोष तो वगीय रगमच के इतिहास में अमर हो गए हैं । वे जैसे अद्वितीय नाटककार थे, वैसे ही असामान्य अभिनेता भी थे । उनके नाटक नाना रसों के भावों से परिपुष्ट है और मुर्दे में जान डाल देते हैं । तदुपरान्त ऐतिहासिक नाटक लिखने में श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने कमाल कर दिया और अपनी लेखनचातुरी से सिद्ध कर दिया कि उत्तम नाटक लिखना केवल विदेशी ही नहीं, बगाली भी जानते हैं । श्री घोष और राय के नाटको ने देश प्रेम के बढाने और लोक जागृति में असाधारण सहायता की है ।

वगीय नाट्यशाला का इतिहास दो भागो में विभक्त किया जा सकता है । पहला भाग सन् १८७२ में समाप्त हो जाता है । दूसरे भाग में तब से अब तक की घटनाओ का समावेश होता है । शौकीनो के दल और स्कूल-कालेजो की ड्रैमेटिक क्लबो के पुरुषार्थ पहले भाग म आते है । इन्होंने समाज की अभिरुचि का स्तर ऊचा किया, रगशालाओ की स्थापना की और नाटको को उच्च कोटि के मनोरजन का रूप दिया । दूसरे भाग मे जो महापुरुष नाट्य क्षेत्र में उतरे, उन्होने वगीय नाट्य कला का चरम उत्कर्ष कर दिखाया ।

वगीय नाट्य मच के सस्थापक साधारण पढे लिखे मध्यवित्त लोग ही थे, परन्तु प्रबल अध्ययन और परिश्रम से वे बडे हो गए और इतिहास में उज्ज्वल तारो की तरह चमक रहे हैं । थियेटरो की स्थापना में श्री भुवन मोहन नियोगी ने अपना नाम अमर कर दिया है । नाट्य सम्राट गिरीश घोष को आजीवन मुशीगिरी (क्लर्की) नही करनी पडी । स्कूल मास्टर अर्द्धेन्दु बाबू और धर्मदास सूर जैसे कला मर्मज्ञो ने अपनी प्रतिभा से वगीय रगमच को गौरवान्वित किया और नगेन्द्र, महेन्द्र, किरण, मति, बेल बाबू आदि अभिनेता अब तक श्रेष्ठ अभिनय कला के मार्ग-दर्शक हो रहे हैं ।

ऐसा कोई काम या सस्था नही, जिसमे मतभेद न हो । 'बगाल थियेटर' 'नैशनल थियेटर' बना, फिर वह 'हिन्दू नैशनल' कहा जाने लगा, फिर वही 'ग्रेट नैशनल' के नाम से विख्यात हुआ । मतभेद से दलबन्दी होकर इस प्रकार नाम परिवर्तन होता गया । एक दल से कई दल बने, कार्यकर्ता और अभिनेता बट गए । नामी लोग जिस दल में होते, वही प्रबल हो जाता । तब वे कभी बिछुडते, तो कभी फिर मिल जाते, क्योंकि छिटपुट हो जाने पर कोई कही सफल नही होता था । सकडो कलाकार उस समय नाट्य क्षेत्र में चमकने लगे थे । अब तक नाटक रसिको की सहायता से निःशुल्क रूप से ही हुआ करते थे, परन्तु अब सोचा जाने लगा कि टिकट लगा कर नाटक खेले जाए, जिससे नाटक मडलिया आत्म-निर्भर और स्थायी हो सके । पूर्वोक्त कितने दल, थियटर और नाट्य मण्डल बनते, बिगडते रहे, कोई स्थायी नही हो सका ।

श्री भुवन मोहन नियोगी, अमृतलाल वसु, अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी, धर्मदास सूर और गिरीश घोष ये ही पाच उस समय के वगीय रगमच के आधार स्तम्भ थे । एक भी उनमें से खसक जाता, तो सब मजा किरकिरा हो जाता था । दुर्भाग्यवश मतभेद के कारण प्रधान स्तम्भ गिरीश बाबू ही इस पचक से पृथक् हो गए और यह चौकड सेनापति हीन रह गई । मतभेद के कारण दो थे —(१) बाकी लोग टिकट लगा कर नाटक खेलना चाहते थे, (२) लडको की खुशामद करना छोड स्त्रियो की भूमिकाओ के लिए वैतनिक स्त्रिया रखना चाहते थे । गिरीश बाबू सरकारी नौकरी मे होने से यह कहते थे कि यदि टिकट लगा कर नाटक खेला जाए तो, सरकार आक्षेप कर सकती है कि नौकरी के नियमो के विरुद्ध यह अन्य रीति से पैसा कमाता है । पतिता वेश्याओ के साथ अभिनय करने को भी वह राजी नही थे । समझौता इस प्रकार किया गया कि विज्ञापन में स्पष्ट लिख दिया जाएगा कि गिरीश बाबू अवैतनिक रूप से अभिनय करेंगे । छोकरो की असुविधा उन्हे प्रत्यक्ष दिखा दी गई कि मूछें निकल आने पर स्त्री रूप में मद बडे भद्दे दीख पडते हैं और उनका कण्ठ स्वर भी मोटा हो जाता है, उसमें नारी सुलभ कोमलता नही रह जाती । सब से बढ कर दोष तो यह है कि उनका दिमाग सातवें आसमान पर चढ जाता है । जिस दिन नाटक होने को हो, उस दिन सन्ध्या से ही घर से गायब । बस अड्डे खोजाई करने पर भी लापता । बडी कोशिश से दर्शन हुए तो क्या देखते हैं कि गाव के बाहर किसी पोखर के किनारे वृक्ष तले समाधि लगाए बैठे हैं । समझा-बुझा कर मुह मागी माग पूरी करके ले आइए, खुशामद कीजिए, तब पर्दा उठे । इस नित्य की झझट से बचने के लिए स्त्रियो को नियुक्त किया गया । उस समय के हिसाब से उनको अधिक वेतन भी नही देना पडता था । सौभाग्य से पाच स्त्रिया ऐसी मिल गई, जो सुन्दरी थी, नाचने गाने में और अभिनय के सीखने-समझने में कुशल थीं और नेक भी थी । निर्देशक की आज्ञा का ठीक परिपालन करती हुई बडे चाव से चिन्तापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी । गिरीश बाबू से उन्होंने स्पष्ट ही कहा कि हम लोगो की जीविका का आप लोगो ने यह प्रशस्त नया रास्ता ऐसा निकाला है, जिससे हम वर्तमान घृणित पेशे को छोड कर सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकेंगी । अनायास हमारा शुद्धीकरण हो जाएगा । तब हम पतिता नही रहेंगी । परिस्थिति को ठीक समझ कर गिरीश बाबू भी मान गए और फिर अपनी मण्डली में आकर सम्मिलित हो गए । वगीय रगमच सघटित होकर एक बार पुन जाग गया और जनता म देशप्रेम को जगाने लगा । समय की राजनीतिक अवस्था भी इसके अनुकूल थी । अर्द्धेन्दु बाबू और गिरीश बाबू नाट्य गगन में चन्द्र सूर्य की तरह प्रकाशित होने लगे ।

गिरीश बाबू ने अर्द्धेन्दु बाबू को 'नटचूडामणि' की यथार्थ उपाधि

दी थी और उसका अनुमोदन स्वय श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने किया था। 'नीलदर्पण' में निलहे साहब का पार्ट अर्द्धेन्दु कर रहे थे। जब साहब बहादुर ने अत्याचार की पराकाष्ठा कर दी, तो आवेश मे आकर दर्शकों में बैठे हुए विद्यासागर जी ने अपनी चिट्ठी उसे फेंक कर मारी, जो अर्द्धेन्दु के सिर में लगी। उसे उठा कर उन्होंने सिर चढाया और विनय से कहा,––"आज मेरा जीवन, मेरा अभिनय सफल हुआ, जो विद्यासागर जैसे गुरुजन का आशीर्वाद पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो रहा है।" विद्यासागर जी बड़े प्रसन्न हुए और पुलकित होकर बोले––"वास्तव में अर्द्धेन्दु नट-चूडामणि है। म इसकी सफलता चाहता हू।"

उस समय की राजनीति 'घूसे के बदले मे घूसा' लगाने की थी। अंग्रेजी थियेटर वाले अंग्रेजी प्रहसनो के द्वारा बगाली बाबुओं की हँसी उडाया करते थे। उक्त मण्डली भी गुण्डागिरी में कम नही थी। एक बार जब कसन साहब ने विज्ञापन दिया––'देव कसन साहब का पक्का तमाशा' और बगालियो को अपने अंग्रेजी थियेटर में हँसी उडाई, तो उस के जवाब में श्री अर्द्धेन्दु बाबू ने भी यह छापा कर कि मुस्तफी साहब का पक्का तमाशा अपने देशी थियेटर में होगा, स्वय साहब बनकर (अर्द्धेन्दु बाबू को लोग 'साहब' कहते थे) बेहाला बजा-बजाकर और मस्ती में झूमझूम कर अपना रचित एक खूब मजाकिया गीत गाया तो श्रोता गण हँस-हँस कर लोटपोट हो गए। रगशाला में अंग्रेज दर्शक उपस्थित थे। उनके कलेजे कबाब हो गए।

बहुत शीघ्र बगाली रगमच को ऐसी सफलता मिली कि सजे सजाए वैभव सम्पन्न अंग्रेजी थियेटर खाली पडे रहते और सादे सीन सीनरी के आडम्बर रहित बगाली थियटर दर्शको से खचाखच भरे रहते थे। वहा बडी कठिनाई से टिकट मिलते थे। बगाली अभिनेताओ ने अपने तेज से प्रतियोगिता में अंग्रेजी अभिनेताओ को तेजहीन बना डाला था। इसका फल भी उन्हें भोगना पडा। तत्कालीन गवर्नर जनरल नार्थ ब्रुक ने देशी थियेटरो को संयत करने के बहाने से एक आर्डिनेन्स जारी किया और उस शस्त्र से बगाली अभिनेताओ और उनकी संस्थाओ को नाना प्रकार से तग किया।

पूर्वोक्त अभिनेतृचक्र का पुरुषार्थ कलकत्ता और उसके आस-पास के क्षेत्र तक ही सीमित नही रहा। वे अपनी मण्डली को लेकर बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और लाहौर तक जाकर वगीय नाटक कला का झण्डा फहरा आए। लखनऊ, दिल्ली में तो प्रभाव अच्छा रहा ही, किन्तु लाहौर में इनका नाटक देखने काश्मीर नरेश भी पधारे थे। उन्होंने मण्डली को नकद रुपया, शाल, अगूठियां और अनेक बहुमूल्य वस्तुए भेंट की थी। कलकत्ता में नियमित रूप से नाट्य प्रयोग होते ही रहते थे। उनमें गिरीश बाबू के पाण्डव कौरव, सीता-बनवास, बिल्व मगल, सिराजुद्दौला, मीर कासिम आदि और द्विजेन्द्र बाबू के दुर्गादास, सीता, मेवाडपतन, शाहजहां, चन्द्रगुप्त आदि नाटक इतने लोकप्रिय हुए कि कितने ही बगाली नवयुवको को उनके सम्वाद कण्ठस्थ हो गए थे। लोगो पर उन नाटको का नशा-सा छाया हुआ था। अब उन कलाकारो में कोई जीवित नही है। किन्तु उनके बोए हुए नाट्य कला कल्पद्रुम के बीज का इतना विस्तार हुआ है कि अन्य प्रांतो के नाट्य प्रेमी उससे अच्छा लाभ उठा रहे हैं और वगीय रगमच के द्वारा उपकृत हुए हैं। सैकडो बगला नाटको के हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद हो गए है और वे खेले भी जाते हैं।

कोमलतर मनोभावो का विषदीकरण ही वगीय नाट्यमच की प्रधान विशेषता है। वगीय नाट्य प्रेमी कला की दृष्टि से अभिनय की ओर जितना ध्यान देते है, उतना अन्य बातो की ओर नही। पोशाकें, भारी सीन सीनरी वगीय नाट्य मच पर नही दिखाई देती। चोटी के वगीय अभिनेता नाट्य सम्राट गिरीश बाबू, नट चूडामणि अर्द्धेन्दुबाबू या नाट्याचार्य अमृतलाल बसु जैसे कलाकार बारात के घोडो की तरह सजे हुए कभी नही देखे गए। बाह्याडम्बर को वे पसन्द नही करते थे। रस परिपाक ही उनका लक्ष्य था और तदनुसार अपनी भूमिका के साथ वे समरस हो जाते और अपने कला नैपुण्य से दर्शको को भी रसाभिभूत कर देते थे। फिर भी बगाली नाट्य प्रेमियो ने स्टेज ग्रीन रूम, आदि की नितात उपेक्षा या अवहेलना नहीं की है। उन्होने नाट्य शास्त्र के सब अगो का अध्ययन किया है, तब सफलता प्राप्त की है। अपने अंग्रेज गुरुओ से बडे मनोयोग के साथ उन्होनें नाट्य कला सीखी है।

रस विमर्श की अभिलाषा से ही मैं गिरीश बाबू से पहले-पहल मिला था। उनको मैं गुरुतुल्य मानता था और वे भी मुझे प्यार करते थे। वह मुझे समय-समय पर उपयुक्त सुझाव और उपदेश देते थे तथा मेरा अभिनय देखने के लिए प्रेम से कलकत्ता से काशी पधारते थे। अत उनका एक सस्मरण यहा देकर वगीय रगमच का यह दिग्दर्शन, अल्प परिचय, समाप्त करूगा।

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध बगला दैनिक पत्र 'हितवादी' के महाराष्ट्रीय सम्पादक और बगला भाषा के गण्य मान्य लेखक स्व० सखाराम गणेश देउस्कर तथा स्व० श्याम सुन्दर चक्रवर्ती जी के साथ जब मै गिरीश बाबू की सेवा में पहुचा, तब वे खुले बदन एक चटाई पर बैठ कर चाकू से बडे बडे आलू के छिलके उतार रहे थे। कुशल प्रश्न के उपरान्त उनके पूछने पर मैंने अपने आने का कारण बताया––"बहुत दिनो से मै इस उलझन में पडा हू कि अभिनेता जब किसी एक रस की धारा का उत्कर्ष कर रहा हो और अकस्मात उसे उस रस के विरोधी किसी दूसरे रस में परिवर्तित हो जाने का अनिवार्य अवसर उपस्थित हो जाए तो इस परिवर्तन के समय शृखला की कडी टूट सी जाती है और पूर्व रस की हानि होती है। चित्त में भी एक खटकन-सी आ जाती है, जिससे दूसरे रस का भी ठीक ठीक उत्कर्ष नहीं हो पाता। यह मेरा अनुभव है। अत मेरी जिज्ञासा यह है कि उक्त रस परिवर्तन के समय कडी न टूटे और एक-दूसरे के विरोधी होने पर भी, चाहे गगा, यमुना की तरह परस्पर मिल कर भले ही आगे की ओर प्रवाहित न हो, कम-से कम उन रसो की दोनो धाराए समानान्तर तो चलती रहें और दोनो का प्रभाव तथा सौदर्य वृद्धिगत होता रहे, इसके लिए क्या करना चाहिए? मुझे समझा दें, तो बडी कृपा होगी। जिनसे मैने नाट्य शिक्षा पाई है, वे स्व० गोपाल राव मराठे, वासुदेव राव पटवर्धन और जर्मनी की स्टेज पर नाम कमाए हुए हिन्दू कालेज के वृद्ध प्रोफेसर जे० एन० अनवाला साहब अब इस लोक में नही हैं। इसी से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हू।"

मेरा प्रश्न सुनकर तुन्दिल तनु गिरीश एक बार हँस पडे, फिर बोले––"हा, अच्छे अभिनेता कभी-कभी ऐसे सकट में पड जाते हैं। परन्तु रसो की कडी मिलाने की युक्ति को आप समझ सकेंगे या नहीं, यह जानने के लिए आप की परीक्षा देनी होगी।"

मैने कहा, "कैसी परीक्षा?"

मेरे हाथ में एक बडा आलू देते हुए उन्होने कहा––"देखिए, यह एक आलू है। इसे तीन रूपो में देखना है। गोल आलू, लाल आलू और

सादा (सफेद) आलू। एक रूप में वीर रस, दूसरे में करुण रस और तीसरे में हास्य रस साधना है, तो आप क्या युक्ति करेंगे ? करके दिखाइए।"

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार तीनों रस बता दिए। सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए। बोले--"युक्ति के साधन आप के पास विद्यमान हैं। ध्यान लगाकर उनका यथासमय आपने प्रयोग नहीं किया, इसी से रस हानि का भय आपको खटकने लगा। आप जानते ही हैं कि मनुष्य के अन्तःकरण का आइना मुख होता है। और मुख का आइना आँखें हैं। ये ऐसी चुगलखोर होती हैं कि अन्तःकरण की कोई बात इनके पेट में नहीं पचती, सब भेद प्रकट कर देती हैं। इनको काबू में कर लें तो आप का काम सिद्ध है। आपने प्रत्येक रस प्रकट करते समय जैसा-जैसा मुंह बनाया, आंखों ने संकोचन और विस्फारण के रूप में उसमें साथ दिया और झटके से या शिथिलता से आपने शब्दोच्चारण कर दिया। उच्चारण की ओर आपको मनोयोग नहीं करना पड़ा, अन्तःकरण के कोमल या कठोर भावों की बागडोर आंखों के हाथ में आ जाने पर रसों की शृंखला बनी रहती है और परस्पर विरोधी रसों के एक साथ प्रकटीकरण में कोई असुविधा नहीं होती।"

इस प्रकार युक्ति बताकर उन्होंने स्वयं रसों के मिश्रित स्वरूपों के प्रयोग कर दिखाए। इसका गुर यह बताया कि किसी सफेद रंग के गुलाब को गहरे लाल रंग में परिणत करना हो, तो चित्रकार एक-एक कला को तूलिका से बढ़ाता जाता है। पहले सफेद पर हल्का गुलाबी, फिर गहरा गुलाबी, फिर सिंदूरिया, फिर हल्का लाल और फिर गहरा लाल रंग देता है। उस लाल फूल के साथ पीला चम्पक रख दिया जाए, तो दोनों के सौष्ठव में कोई कमी नहीं आती। दोनों एक साथ सौंदर्य वृद्धि करते रहते हैं। एकान्त में अभ्यास करना चाहिए। परिश्रम से जी नहीं चुराना चाहिए और एक ही रात में बड़ा आदमी बनने की आशा नहीं करनी चाहिए।

कुछ दिन के अनन्तर मेरा 'प्रतापसिंह' का अभिनय देखने बाबू जी काशी आए तो दर्शकों में बैठ कर उस प्रसंग को उन्होंने ताड़ लिया, जहां मैं विचलित होता था। प्रवेश समाप्त होने पर वे रंगशाला में पधारे और प्रेम से मेरी पीठ पर थपकी देकर आशीर्वाद देते हुए बोले--"मेरी युक्ति आप से सध गई, यह देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आप यशस्वी अभिनेता होंगे और आप के द्वारा भारतीय नाट्य कला की समृद्धि होगी। ऐसी महत्वपूर्ण सूक्ष्म बातों पर बहुत थोड़े अभिनेता ध्यान देते हैं।" बाबू जी का आशीर्वाद तो मिला, परन्तु खेद है कि मुझसे नाट्य कला की कुछ भी सेवा नहीं बन पड़ी। हिन्दी रंगमंच को ऐसी सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए, जिनसे वह सर्वांग सुन्दर और निर्दोष बन सके।

गुजराती कविता

गीत

उमाशंकर जोशी

क्यों न ?
आई थी बांधने, क्यों बांधा न मुझको ?
प्रीत टूटी, क्यों जोड़ा न उसको ?
मैं तो आई थी हुलास से बंधने,
क्रोधित हो मुंह फेर लिया तुमने।
जब रुके क्रोध की आंधी---
तब रोना आए किसको ?
प्रीत टूटी, क्यों जोड़ा न उसको ?
अभिलाषा विजयी करने आई थी दौड़,
थी खड़ी लगाकर मन की होड़।
मैं समझी हंस देंगे देर-सबेर---
अरे वेदना देने वाले हमको,
प्रीत टूटी, क्यों जोड़ा न उसको ?

अनुवादक अरविन्द जोशी

मोरक्को और ट्यूनीशिया

सत्यदेव विद्यालंकार

वर्तमान प्रजातंत्री अरब राष्ट्रवाद के प्रादुर्भाव की कहानी प्राय मिस्र की प्रजातंत्री राज्य क्रांति से शुरू की जाती है, जिसके फलस्वरूप इंग्लैंड को मिस्र के बाद सूडान तथा स्वेज क्षेत्र से भी अपनी सेनाएं हटानी पड़ गईं और मिस्र में सामन्तवाद का अन्त होकर पूर्ण प्रजातन्त्र का अभ्युदय हुआ। इस लम्बी कहानी के दो महत्वपूर्ण खण्डों को प्राय भुला दिया जाता है। उनको प्रजातंत्री अरब राष्ट्रवाद के बलशाली एवं महत्वशाली अभियान के दो महत्वपूर्ण 'माइल स्टोन' भी कहा जा सकता है। पश्चिम एशिया में सन् १९४८ में स्वतन्त्र यहूदी राष्ट्र इजराइल की स्थापना के बाद वहां के अरब राष्ट्रों में घटनाचक्र कुछ इस तेजी से घूमना शुरू हुआ कि मोरक्को और ट्यूनीशिया में हुई राज्य क्रांति उनके सामने कुछ ओझल हो गई। वहां के घटनाचक्र पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जा सका। वहां प्रादुर्भूत प्रजातन्त्री राष्ट्रवाद के महत्व को पूरी तरह नहीं आंका जा सका। ट्यूनीशिया में फ्रांस और मोरक्को में स्पेन तथा फ्रांस की संयुक्त शक्ति को प्रजातंत्रीय अरब राष्ट्रवाद के सम्मुख जिस प्रकार घुटने टेकने पड़े उसकी गाथा अरब राष्ट्रों की दृष्टि से अत्यन्त गौरवशाली है। यह कहा जा सकता है कि वर्तमान बीसवीं सदी के मध्य में अरब राष्ट्रों में जिस प्रजातन्त्री राष्ट्रवाद का पूरे वेग के साथ प्रादुर्भाव हुआ उसका प्रारम्भ मोरक्को और ट्यूनीशिया से ही हुआ है। मोरक्को के सुल्तान सीदी मोहम्मद बेन ने स्पेन और फ्रांस से अपने राष्ट्र को मुक्त करने के बाद स्वत ही अपनी स्थिति को इंग्लैंड के बादशाह की तरह वैधानिक बनाकर बालिग मताधिकार के आधार पर प्रजातन्त्र का सूत्रपात करके जो महान कार्य किया है उसकी जितनी सराहना की जाए कम है। उनके मार्ग में १३ सौ वर्ष पुरानी गद्दी का मोह और पैगम्बर मोहम्मद के वंशज होने का अभिमान कोई बाधा नहीं बन सका। इसी प्रकार ट्यूनीशिया के सुल्तान ने भी समय की गति को पहचाना।

मोरक्को के सुल्तान की दूरदर्शिता

स्वदेशवासियों की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं के साथ पूरी सहानुभूति रखते हुए भी उनकी स्थिति पुराने सामन्तवाद की प्रतीक थी। उस सामन्तवाद का अन्त करके देश में वैधानिक प्रजातन्त्र कायम करके राष्ट्र की प्रभुत्वशक्ति को निर्वाचित विधान सभा और निर्वाचित राष्ट्रपति के हाथों में सौंपने का समय उपस्थित होने पर उसका स्वागत करने में सुल्तान ने जरा सा भी ननुनच नहीं किया। इस प्रकार किसी सामन्त द्वारा स्वत की प्रेरणा से और स्वेच्छा से प्रजातन्त्र को स्वीकार करने के उदाहरण इस्लामी इतिहास में अत्यन्त दुर्लभ हैं। दोनों ही देशों में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए कितना भी रुधिर क्यों न बहाया गया हो, किन्तु प्रजातन्त्र के पक्ष में जो राज्य क्रान्तियां हुईं, उनके लिए खून की एक भी बूंद बहानी नहीं पड़ी और किसी प्रकार का कोई बल प्रयोग भी करना नहीं पड़ा।

पश्चिमी एशिया और अरब राष्ट्र

'मध्यपूर्व' अथवा 'पश्चिमी एशिया' शब्द अरब राष्ट्रों की भौगोलिक स्थिति के पूर्णत परिचायक नहीं हैं। मिस्र, सूडान और लीबिया अरब संघ में सम्मिलित होते हुए भी भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी एशिया में नहीं हैं। वे अफ्रीका के उत्तरी प्रदेश में स्थित हैं। 'मध्यपूर्व' में उनको कहा जा सकता है परन्तु अरब राष्ट्र अफ्रीका के मगरिब अर्थात् पश्चिम तक फैले हुए हैं। इसलिए अल्जीरिया, ट्यूनीशिया और मोरक्को को अरब राष्ट्रों की दृष्टि से मगरिब अथवा पश्चिम के देश कहा जाता है और उनके लिए समान रूप से 'मगरिब' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए उनमें पैदा हुई राष्ट्रवादी आकांक्षा, उनके स्वतन्त्रता संग्राम, उनकी सफलता और उनमें प्रजातन्त्र की स्थापना आदि जो महत्वपूर्ण घटनाएं पिछले ही वर्षों में घटी हैं, उनको अन्य अरब राष्ट्रों में सिनेमा के चित्रों की तेजी से भी अधिक तेजी से घटने वाले घटनाचक्र से अलग नहीं किया जा सकता। दोनों प्रदेशों में घटने वाली घटनाएं एक ही घटना-चक्र की लम्बी शृंखला की अटूट कड़ियां हैं। उनका अध्ययन इतिहास के एक ही महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में किया जाना चाहिए। यहां हम दोनों देशों में कायम हुए प्रजातन्त्र की वीरतापूर्ण और साहस पूर्ण लम्बी कहानी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दे रहे हैं। इससे पाठकों को उसका एक आभास मात्र मिल सकेगा और यह मालूम हो सकेगा कि किस प्रकार अरब राष्ट्रों में महान जागरण का नया अभियान पूरे वेग के साथ प्रारम्भ हो चुका है।

मोरक्को

किसी भी देश को विभाजित करके उसमें उभरते हुए राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आकांक्षाओं का सहज में दमन किया जा सकता है। इस राजनीतिक गुर से पश्चिम के साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने संसार के प्राय सभी पराधीन देशों में काम लिया है। कदाचित् ही कोई देश उनकी इस दुर्नीति से बचा होगा। तुर्की के आटोमन साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करके लगभग एक दर्जन छोटे बड़े अपने कठपुतली देशों में बांट दिया गया। अफ्रीका और एशिया में भी विभाजन की इस दुर्नीति से काम लिया गया। भारत से श्रीलंका तथा बर्मा को अलग करने के बाद उसमें से पाकिस्तान के एक नए मुस्लिम राष्ट्र को वैसे ही पैदा कर दिया गया जैसे कि पश्चिमी एशिया में इजराइल नाम के स्वतन्त्र यहूदी राष्ट्र को जन्म दिया गया। मोरक्को को भी इस दुर्नीति का शिकार बनाया गया और उसको साम्राज्यवादी राष्ट्रों की आसुरी लालसा की पूर्ति के लिए तीन हिस्सों में बांट दिया गया।

भौगोलिक दृष्टि से ब्रह्मा के चार मुखों की तरह मोरक्को के दो मुख बताए जाते हैं। एक अटलांटिक की ओर है और दूसरा है भूमध्य सागर की ओर। यूरोप और अफ्रीका दोनों के किनारे यहां एक-दूसरे को स्पर्श करते दीख पड़ते हैं। मोरक्को, ट्यूनीशिया और अल्जीरिया आदि

को मध्यपूर्व के अरब राष्ट्रो की दृष्टि से 'पश्चिम' अथवा 'मगरिब' कहा जाता है। मगरिब अथवा पश्चिम मे सब से पहले स्वतन्त्रता की पताका फहराने वाला मोरक्को है। इस स्वतन्त्रता सग्राम की सब से अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसम मोरक्को के वे तीनो हिस्से समान रूप से शामिल हुए, जिनमें पश्चिमी साम्राज्यवादी राष्ट्रो ने उसको बाट लिया था। पहले दो हिस्सो को फ्रेंच मोरक्को तथा स्पेनिश मोरक्को और तीसरे को इन्टरनेशनल नाम दे दिया गया था। उसके स्वतन्त्रता सग्राम का लक्ष्य 'सयुक्त मोरक्को' को फिर से सगठित करना था। राष्ट्रवादी मोरक्कोवासियो का नारा यह था कि मोरक्को एक अखण्ड राष्ट्र है और उसके वर्तमान तीन टुकडे सर्वथा अस्वाभाविक या कृत्रिम है। वह साम्राज्यवादियो की स्वार्थपूर्ण रचना है। हम अरब लोग किसी एक हिस्से की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष न करके सम्पूर्ण मोरक्को की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष कर रहे हैं।

मोरक्को कोई नया राष्ट्र नही है और न उसका नए सिरे से निर्माण किया गया है। १२ सौ से भी अधिक वर्षों तक उसकी सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता रही है। फ्रासीसी और स्पेनिश पराधीनता की कहानी प्राय एक ही सी है। दोनो ने अपने अधीन प्रदेशो को एक सधि से प्राप्त किया है, जिस में दोनो की पृथक सत्ता का स्वतन्त्र देशो के रूप में उल्लेख किया गया है और दोनो की प्रभुसत्ता दोनो पश्चिमी राष्ट्रो के हाथो में दी गई। दोनो ने धीरे-धीरे उनके आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करते हुए अपनी सत्ता को सुदृढ बना लिया। इस पर जनता में रोष, असन्तोष तथा विरोध की भावनाए पनपनी शुरू हुई। स्पेनिश मोरक्को के एक प्रदेश में सब से पहले विद्रोह का झडा फहराया गया। यह उत्तरी अफ्रीका में समुद्र तट पर एक छोटा सा लम्बा पट्टीनुमा प्रदेश है, जिसकी लम्बाई ३३८ किलोमीटर और चौडाई १०० किलोमीटर है। अटलाटिक से शुरू होकर यह प्रदेश सहारा की मरुभूमि और स्पेनिश सीमा तक चला गया है। पूर्व की ओर पर्वतमालाए है। स्पेनिश सीमा पर काटेदार तारो का बाडा लगा कर युद्ध क्षेत्र का सा दृश्य उपस्थित कर दिया गया था। समुद्रतटवर्तीय प्रदेश फूलो फलो से लदे हुए बगीचे की तरह हरा-भरा है और समीपवर्ती मरुभूमि की तुलना में बडा उपजाऊ है। अपने शाह अब्दुल करीम के नेतृत्व में वहा के दृढनिश्चयी लोगो ने अपने प्रदेश रिफ की स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द किया। अब्दुल करीम नाम देश के घर-घर में एक कहानी बन गया और सम्पूर्ण अरब जगत में वह उभरते हुए अरब राष्ट्रवाद के साथ जुड गया। रिफ के लोग गरीब और साधनहीन होते हुए भी साहस, निश्चय और धैर्य के धनी हैं। ससार ने बडे विस्मय के साथ उनको अपनी जीवन मृत्यु की लडाई लडते हुए देखा और उससे भी अधिक विस्मय के साथ यह देखा कि उन्होंने शस्त्रास्त्र से सुसज्जित स्पेन की सेना को बुरी तरह पीछे खदेड दिया व पराजित कर दिया। स्थिति इतनी नाजुक हो गई थी कि स्पेनिश सेनाए अपनी जान बचा कर मोरक्को को खाली करने को बाध्य हो गई थी कि फ्रासीसी सेनाए उनकी मदद के लिए युद्ध में कूद पडी। दोनो यद्यपि एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे परन्तु निजी स्वार्थों से प्रेरित फ्रास ने स्पेन की सहायता करना आवश्यक समझा। उसने यह समझ लिया कि आज यदि स्पेन की बारी है, तो कल उसकी भी बारी आ सकती है और उसको भी इसी प्रकार पराजित होना पड सकता है। रिफ निवासी दोनो की सयुक्त शक्ति का सामना नही कर सके और अब्दुल करीम को पराजय की कीमत चुकानी पडी। उसको यूनियन द्वीप में निर्वासित करके नजरबन्द कर दिया गया।

स्वतन्त्रता का सग्राम इस पराजय से भी कुचला न जा सका। उसके गर्भ में से 'इस्लाह-अलवेटन' नाम के राजनीतिक दल का प्रादुर्भाव हो गया।

मोरक्को के सुल्तान और फ्रासीसियो में हुई सधि को 'फैज की सधि' कहा जाता है। उसके अनुसार मोरक्को फ्रास का सरक्षित देश बन गया। सुल्तान के हाथो से शासन के सम्पूर्ण अधिकार छीन लिए गए। फ्रासीसियो के विरुद्ध जो विद्रोह पैदा हुआ, वह दिन पर दिन उग्र रूप धारण करता गया। उसी के गर्भ में से 'इस्तक्लाल' अर्थात 'आजादी' या 'स्वतन्त्रता' नाम के राजनीतिक दल का जन्म हुआ। 'इस्तक्लाल' और 'इस्लाह अलवेटन' दोनो दल मिलकर काम करने लगे। उन्होने स्पेन तथा फ्रास की हुकूमतो के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा कायम करके स्वतन्त्रता का सग्राम जारी रखा। तजीयार में सन् १९५१ मे इस सयुक्त मोर्चे का केन्द्रीय कार्यालय कायम करके एक जबरदस्त राष्ट्रीय मोर्चा गठित किया गया। इस मोर्चे में अन्य सब दल भी शामिल हो गए। मोरक्को के सुल्तान सीदी मोहम्मद ने भी अब्दुल करीम की तरह इस राष्ट्रीय मोर्चे का नेतृत्व किया और फ्रासीसियो ने उसको गद्दी से हटा कर अपने कठपुतली को उसकी जगह गद्दी पर बैठा दिया। मोरक्कोवासियो ने फ्रास की कठपुतली को अपना सुल्तान मानने से इन्कार कर दिया और वे अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन सीदी मोहम्मद बे के ही प्रति करते रहे।

सयुक्त राष्ट्र सघ में अरब एशिया ग्रुप ने मोरक्को की स्वतन्त्रता का प्रश्न सयुक्त रूप में पेश किया। उससे मोरक्को के राष्ट्रवादियो को बडी सहायता, समर्थन और शक्ति प्राप्त हुई। मैंडिस-फ्रास जब फ्रास के प्रधान-मन्त्री नियुक्त हुए तब उन्होंने उत्तरी अफ्रीका की अन्य जटिल समस्याओ की तरह मोरक्को की समस्या को भी हल करने का निश्चय कर लिया। सुल्तान को वापिस बुलाया गया। उसके बाद भी मोरक्कोवासियो को अत्यन्त विषम परिस्थितियो से से गुजरना पडा। स्पेन को पहले समझौता करने के लिए बाध्य होना पडा। उसने यह अनुभव कर लिया था कि सैनिक दमन से विद्रोही जनता को दबा कर नही रखा जा सकता। समुद्रवर्ती एक छोटा प्रदेश अपने हाथ में रखकर स्पेन ने शेष मोरक्को को स्वतन्त्र कर दिया। यह प्रदेश खाद्य पदार्थो की उपज और खनिज पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से बडा ही उपजाऊ तथा सम्पन्न है। मोरक्को के इस्तक्लाल दल ने उसको भी स्पेन से मुक्त करने के लिए जबरदस्त आन्दोलन जारी रखा हुआ है।

सुल्तान के प्रति जनता की अपार श्रद्धा के दो कारण हैं। एक तो यह कि वे पैगम्बर मोहम्मद साहब के वश के है और दूसरा यह कि वे १३ सौ वर्ष पुरानी गद्दी के उत्तराधिकारी है। परन्तु उनके प्रति जनता की श्रद्धा का इनसे भी बडा एक कारण यह है कि उन्होंने अपने को जनता के राष्ट्रीय सग्राम के साथ सब प्रकार से तन्मय किया हुआ है। अब भी वे अपने राष्ट्र के शासन को आधुनिकतम रूप देने में सलग्न हैं। जनता के लिए जीवन, स्वास्थ्य तथा शिक्षा आदि की समस्त सुविधाए उपलब्ध की जा रही हैं। इस्तक्लाल पार्टी के अन्यतम नेता उसके मन्त्री अलहज अहमद बलफ्रेज अत्यन्त प्रगतिशील और शिक्षाशास्त्री है। सुल्तान ने अपने को वैधानिक शासक बनाने में ही अपना और अपने देश

का निश्चित कल्याण मान लिया है। वे इग्लैंड के ढग पर अपनी स्थिति को वैधानिक बनाकर शासन व्यवस्था को भी उसी के ढग पर गठित करने के लिए यत्नशील है। उन्होंने जनता को बालिग मताधिकार देना स्वीकार कर लिया है। मोरक्को की पूर्ण स्वाधीनता का सरक्षण एव सवधन करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया है। उनके सुयोग्य नेतृत्व में मोरक्को बडी तेजी से प्रजातन्त्र की ओर अग्रसर हो रहा है।

ट्यूनीशिया

भूमध्यसागर के दो महत्वपूर्ण स्थानो जिब्राल्टर और स्वेज के बीच मे अफ्रीका के उत्तर मे ट्यूनीशिया बसा हुआ है, जो कि यूरोप को अफ्रीका से मिलाने के लिए एक पुल का काम करता है। मोरक्को और अल्जीरिया दोनो से वह छोटा है। उसकी आबादी ३० लाख है। वहा के लोग बडे सुन्दर डील डौल के मिलनसार और सभ्य है। प्रकृति की उसपर अपार कृपा है। इसीलिए लोग बडे सुखी और सम्पन्न है। वहा का राष्ट्रवाद मगरिब के अन्य देशो की अपेक्षा धार्मिक भावावेश से प्राय रहित और उदार है। सन् १८५७ में उसमें वतमान जागृति के चिन्ह प्रगट होने शुरू हो गए थे। तब यहा के शासक ने अनेक शासन सुधार स्वय ही कर दिए थे और सविधान द्वारा प्रजातन्त्री शासन प्रणाली का सूत्रपात कर दिया था। सब नागरिको क लिए समान कानून, न्याय, धन्धे करने की पूण स्वतन्त्रता और सब धर्मानुयायियो को धार्मिक पूजा-पाठ की आजादी की घोषणा की गई थी। दिवानी अदालत की भी स्थापना की गई थी। फ्रास तथा अन्य यूरोपियन राष्ट्रो ने उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान की थी। अल्जीरिया के अपने साम्राज्य को ट्यूनीशिया से भय बताकर फ्रास ने वहा के शासक को अपने साथ एक सधि करने को मजबूर किया। उसकी प्रभुसत्ता हथियाली गई। यह विश्वास दिलाया गया कि सकटापन्न स्थिति के दूर होने पर उसकी स्वतन्त्र स्थिति को फिर मान्यता दे दी जाएगी।

उगली पकडते पकडते पहुँचा पकडने की नीति को अपनाकर फ्रास ने धीरे-धीरे सारे ही देश को हडप लिया। फ्रास से लोगो को वहा ले जाकर उनके वहा उपनिवेश बसाए गए, उनको भूमि पर खेती करने व खानो को खोदने के विशेष अधिकार दिए गए। वहा बसने के लिए सरकारी खजाने से बडी-बडी रकमें दी गई। 'निओ दस्तूर' के नाम से सगठित एक दल के नेतृत्व में देश की आजादी का आन्दोलन शुरू हुआ और वह निरन्तर जोर पकडता गया। आन्दोलन को जिन लोगो का नेतृत्व प्राप्त हुआ वे प्रजातन्त्री राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत थे। उनकी माग थी कि बालिग मताधिकार लागू किया जाए, निर्वाचित शासन सस्थाए कायम की जाए, पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाए और शासन के वर्तमान सिद्धान्त के अनुसार न्याय विभाग को शासन विभाग से सर्वथा पृथक किया जाय। ट्यूनीशिया के आन्दोलन का मूलभूत तत्व यही माग थी।

किसानो व मजदूरो की यूनियनो के आधार पर जनता को अद्भुत ढग से सगठित किया गया और सारे देश में उनका जाल फैला दिया गया। सहसा ही उन यूनियनो के सदस्यो की सख्या लाखो में पहुच गई। इस सगठन से राष्ट्रीय मुक्ति के आन्दोलन को बडा बल मिला। हबीब बरगीबा बडे ही दूरदर्शी नेता थे। उन्होंने फ्रासीसियो के प्रति असियोगी सहयोग की नीति को अपनाया। फ्रासीसियो ने दमन, उत्पीडन, निर्वासन आदि सभी साधनो से काम लिया परन्तु वे आन्दोलन को कुचल नही सके। अन्त में देशव्यापी गुप्त हिंसा काडो और हत्याओ का सिलसिला शुरू हो गया। उसका सामना फ्रासीसी नही कर सके। प्रधान मन्त्री मेंडिस फ्रास को ही ट्यूनीशिया की समस्या के हल करने का श्रेय प्राप्त है। हबीब बरगीबा पहल स्वतन्त्र प्रधान मन्त्री चुने गए। उन्होंने पहला काम यह किया कि देश को निहित सामन्तवादी स्वार्थों से सवथा मुक्त कर दिया। शाह को भी उन्होंने एक चुनौती दे दी और कह दिया कि देश की सर्वोच्च सत्ता उसकी निर्वाचित विधान सभा और निर्वाचित राष्ट्रपति मे निहित होनी चाहिए। शाह ने उसको स्वीकार कर लिया और हबीब बरगीबा स्वतन्त्र राष्ट्र के पहले राष्ट्रपति चुने गए। उन्होंने अपने राष्ट्र की पूण स्वतन्त्रता को इस सीमा पर पहुचा दिया है कि वे सब के साथ दोस्ती का नाता रखते हुए भी फ्रास द्वारा अपने देश की सीमा का अतिक्रमण सहन नही कर रहे। उन्होंने प्रारम्भ में फ्रास को अपने यहा सैनिक अड्डे कायम रखने की सुविधा प्रदान की थी, फिर भी अल्जीरिया की आजादी की लडाई के विरुद्ध उन्होंने फ्रास को अपनी सीमा का उपयोग नही करने दिया। परन्तु फ्रासीसियो ने ट्यूनीशिया और उसकी फौजो पर अल्जीरिया को सहायता देने का दोषारोपण करके ज्यादतिया की और उसके गावो पर गोलाबारी भी की। इस पर बरगीबा ने फ्रास को अपनी सारी सेनाए और सैनिक अड्डे अपने यहा से हटा लेने की चुनौती और चेतावनी दी। अब उन्होंने यह घोषणा कर दी है कि सारे ही पश्चिम (मगरिब) से साम्राज्य-वादियो की सेनाए जब तक हट नहीं जाती, तब तक ट्यूनीशिया की स्वतन्त्रता का कोई अर्थ या महत्व नहीं है और उसके लोग स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना राजनीतिक एव आर्थिक विकास नही कर सकते। इसलिए उन्होंने अन्य अफ्रीकी देशो के साथ सयुक्त मोर्चा बनाकर अल्जीरिया की स्वतन्त्रता का भी पूरा समर्थन करना शुरू कर दिया है।

अल्जीरिया और लीबिया

मोरक्को और ट्यूनीशिया का वर्णन करते हुए अल्जीरिया और लीबिया को नही भुलाया जा सकता। अल्जीरिया का स्वतन्त्रता सघर्ष अभी जारी है और वह अपने पूरे यौवन पर है। फरहात अब्बास के प्रधान मन्त्रित्व में वहा की स्वतन्त्र सरकार बनाई जा चुकी है, जिससे वहा के स्वतन्त्रता सघर्ष को नई शक्ति प्राप्त हुई है। अनेक अरब राष्ट्रो ने इस सरकार को मान्यता प्रदान की है। परन्तु वहा फ्रास के निहित स्वार्थ बहुत गहरे है। उनके कारण वह अल्जीरिया को अपने देश का ही एक हिस्सा मानता है और उसको स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए तैयार नहीं है। मोरक्को, ट्यूनीशिया और लीबिया के स्वतन्त्र होने के बाद उसको पराधीन रखना कठिन है। अधिक समय तक वहा की जनता की स्वतन्त्रता सम्बन्धी आकांक्षाओ को दबाया नही जा सकता। लीबिया स्वतन्त्र अवश्य हो गया है, परन्तु वहा अभी प्रजातन्त्री शासन कायम नही हुआ है। मोरक्को तथा ट्यूनीशिया और अन्य अरब राष्ट्रो में प्रजातन्त्र की जो लहर पूरे वेग से उठी है उसके प्रभाव से लीबिया भी बचा नहीं रह सकता। प्रजातन्त्रीय अरब राष्ट्रवाद के रग में लीबिया भी एक दिन रग कर रहेगा।

एक मौलिक प्रश्न पर मौलाना का संस्मरण

मन्मथनाथ गुप्त

महात्मा गाधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने के पहले सग्रामात्मक ढग का एक ही आन्दोलन भारत में था, वह था क्रातिकारी आन्दोलन। दूसरा आन्दोलन उन लोगो का था जिन्हें उदारदलीय कहा जाता था। इन उदारदलीय लोगो के विषय में खास बात यह थी कि ये लोग अपने देश के प्रति उतने उदार नही थे जितने उन्हें गुलाम बना कर रखने वाले अग्रेजो के प्रति थे। जो कुछ भी हो, भारतीय राजनीति में गाधी जी के पदार्पण करने के बाद सग्रामात्मक आन्दोलन में भी दो हिस्से हो गए। एक ओर तो क्रातिकारी आन्दोलन चलता रहा और दूसरी ओर गाधी जी का जन आन्दोलन चलता रहा।

इस लेख में हमें इन ब्योरों में नही जाना है। गाधी जी के आने के बाद हिसा अहिसा का प्रश्न भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण बन गया, और उसके आधार पर एक पूरा दर्शनशास्त्र खडा किये जाने का प्रयत्न हुआ। वह अहिसा कहा तक और किस हद तक स्वय काग्रेस के अन्दर विचारधारा के रूप में मान्य रही और उसकी सम्भावनाए क्या थी ?

दूसरे महायुद्ध के छिडने तक हिसा-अहिसा का प्रश्न बहुत कुछ सैद्धातिक सतह पर चलता रहा। क्रातिकारियो तथा अन्य लोगो के साथ तर्कों में उसका पता चलता था। पर दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ के बाद ही कई महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आए और व्यावहारिक अहिसा के परीक्षण का समय आ गया।

जब दूसरा महायुद्ध छिडा तो काग्रेस के सब नेताओ ने अपने-अपने ढग से युद्ध पर मत कायम किया। मौलाना आजाद इस पर लिखते हैं—"काग्रेस के इतिहास में यह बहुत ही कठिन का समय था। हम पर ससार को हिला देने वाली भारी घटनाओ का असर पड रहा था, पर इससे भी अधिक खतरनाक यह बात थी कि हम लोगों में इस सम्बन्ध में मतभेद था। मैं काग्रेस का प्रधान था और मैं चाहता था कि भारत को लोकतन्त्र के शिविर में ले जाऊ बशर्ते कि वह स्वतन्त्र कर दिया जाता। लोकतन्त्र का एक ऐसा लक्ष्य था जिस पर भारतीय बहुत तगडी भावनाए रखते थे। पर लोकतन्त्र के शिविर के साथ हो जाने के मार्ग में एक ही रोडा था और वह था भारत की गुलामी। पर गाधी जी के लिए यह बात ऐसी नहीं थी। गाधी जी के लिए तो प्रश्न शान्तिवाद का था न कि भारत की स्वतन्त्रता का। मैंने इस पर यह स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस एक शान्तिवादी सगठन नही है, बल्कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सस्था है। इसलिए मेरे अनुसार गाधी जी ने जो प्रश्न उठाया था वह अप्रासगिक था, पर गाधी जी ने अपनी राय नही बदली। उनका दृढ विश्वास यह था कि किसी भी हालत में भारत को लडाई में भाग नही लेना चाहिए।"

पर गाधी जी की यह बात सब को मान्य नही थी। इस पर काग्रेस कार्य समिति में मतभेद हो गया। मौलाना आजाद लिखते हैं—"प्रारम्भिक सोपानों में जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, खान अब्दुल गफ्फार खा मेरे साथ थे। डा० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी और शकरराव देव पूर्ण रूप से गाधी जी के साथ थे। गाधी जी के साथ-साथ उनका यह कहना था कि यदि यह मान लिया गया कि स्वतन्त्र भारत युद्ध में भाग ले सकता है तो स्वराज्य के लिए भारत में शान्तिपूर्ण सग्राम का आधार खत्म हो जाएगा। दूसरी तरफ मैं यह महसूस करता था कि स्वतन्त्रता के लिए आन्तरिक सग्राम तथा आक्रमण के विरुद्ध बाहरी सग्राम में फरक था। स्वतन्त्रता के लिए सग्राम करना एक बात थी और देश स्वतन्त्र हो जाने पर युद्ध करना दूसरी बात थी। मेरा यह कहना था कि इन दो तर्कों को गडबडाना नही चाहिए।"

स्मरण रहे कि मौलाना के निकट अहिसा केवल सग्राम का एक तरीका मात्र था। वह उससे हर हालत में बधे रहने पर विश्वास नही करते थे और जैसा कि उन्होने अपने सस्मरण के प्रथम अध्याय में दिखाया है कि वह पहले एक क्रातिकारी थे और क्रातिकारियो के साथ ही उनके राजनीतिक जीवन का सूत्रपात हुआ। दुख है कि अपने जीवन के क्रातिकारी अध्याय के सम्बन्ध में वे पूरी बात नही लिख पाए और महाकाल में समा गए।

मौलाना आजाद के सस्मरण से पता चलता है कि किस प्रकार युद्ध के प्रभाव के कारण कार्य समिति के नेता अपने विचार बदलते चले गए। वह लिखते हैं—"युद्ध के प्रति अपने रुख के सम्बन्ध में कार्य समिति के सदस्य लडखडाते रहे हैं। उनमें से कोई भी इस बात को भूल नही सकता था कि गाधी जी सैद्धातिक रूप से युद्ध में किसी भी तरह भाग लेने के विरोधी थे और न वे यह भूल सकते थे कि भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम उन्ही के नेतृत्व में वर्तमान आकार प्राप्त कर सका था। पहली बार वे एक मौलिक प्रश्न पर उनसे मतभेद रख रहे थे और उन्हें अकेला छोड रहे थे। साधन के रूप में अहिसा में दृढ विश्वास से उनके निर्णय पर असर आने लगा। पूना की सभा के एक महीने के अन्दर सरदार पटेल ने अपनी राय बदल दी और उन्होने गाधी जी वाला रुख ग्रहण कर लिया। दूसरे सदस्य भी लडखडाते रहे। जुलाई, १९४० में डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा कार्य समिति के कुछ सदस्यो ने मुझे लिखा कि वे युद्ध के सम्बन्ध में गाधी जी के विचारों में दृढता के साथ विश्वास रखते हैं और वे चाहते हैं कि काग्रेस उन पर बनी रहे। उन्होने यह भी कहा था कि मेरे विचार भिन्न हैं और पूना में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने मेरा ही समर्थन किया था। इसलिए उनके मन में यह सन्देह उठ खडा हुआ था कि उन्हें कार्य समिति में इसलिए लिया गया था कि राष्ट्रपति की (उन दिनों काग्रेस के अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहते थे) सहायता करें, पर चूकि एक मौलिक प्रश्न पर ही उनका मतभेद था, उनके लिए इस्तीफा देने के अलावा कोई चारा नही रह गया था। उन्होने इस विषय पर गहराई के साथ विचार किया था और हमें किसी तरह मुसीबत में न डालने के लिए वे तब तक कार्य समिति के सदस्य बने

रहने को तैयार थे जब तक कि उनके मतभेद का कोई तात्कालिक व्यावहारिक असर नही होता। पर यदि ब्रिटिश सरकार ने मेरी शर्तो को स्वीकार कर लिया और युद्ध मे भाग लेना एक सजीव प्रश्न हो गया तो उनके सामने इसके सिवाय कोई चारा नही रहेगा कि वे पद त्याग करे। उन्होने और भी लिखा कि यदि मै इस स्थिति से सहमत हू तो वे कार्य समिति के सदस्य बने रहने को तैयार है, नही तो इस पत्र को पद-त्याग के रूप मे लिया जाए। इस पत्र को पढ कर मुझे बहुत धक्का-सा लगा क्योकि इस पर जवाहरलाल नेहरू, राजगोपालाचारी, आसफअली और सैयद महमूद के अतिरिक्त सभी सदस्यो के हस्ताक्षर थे। यहा तक कि अब्दुल गफ्फार खा ने जो पहले मेरे बहुत बडे समर्थक थे, अब अपनी राय बदल दी थी। मैने अपने साथियो से इस प्रकार के किसी पत्र की आशा नही की थी। मैने फौरन लिख दिया कि मै पूर्ण रूप से उनके दृष्टिकोण को समझता हू और उनकी स्थिति को मानता हू।"

गाधी जी अपनी राय पर बने रहे, यहा तक कि जब वे लार्ड लिनलिथगो से मिले तो उन्होने यह कहा कि ब्रिटेन के लोगो को अस्त्र-सन्यास करना चाहिए और उन्हें आध्यात्मिक शक्ति से हिटलर का विरोध करना चाहिए। इस पर लार्ड लिनलिथगो बहुत आश्चर्य में पड गए। यहा तक कि जब गाधी जी चलने लगे तो जैसा कि वे हमेशा घण्टी बजा कर अपने ए० डी० सी० को उनके साथ में कर देते थे जो उन्हें मोटर पर बिठा आता था, वैसा इस अवसर पर उन्होने नही किया। जब गाधी जी बाद को मौलाना से मिले तो उन्होने भद्रता के अभाव का जिक्र किया तो मौलाना ने यह बताया कि आपका सुझाव बहुत ही अद्भुत था और वाइसराय इससे हक्के-बक्के रह गए थे। इस पर गाधी जी खूब हसे।

जब मौलाना १९४१ में जेल काट कर छूटे तो उन्होनें फौरन ही बारदोली में, जहा गाधी जी ठहरे हुए थे, कार्य समिति की एक बैठक बुलाई। वहा उन्होने यह अनुभव किया कि गाधी जी और उनमें मतभेद और बढ चुका है। वह लिखते है—"मै फौरन ही गाधी जी से मिलने गया और ऐसा मालूम हुआ कि हम लोगो में मतभेद बहुत बढ गया है। पहले केवल सिद्धात सम्बन्धी मतभेद था, पर अब वे स्थिति को जिस तरह देखते थे और मै जिस तरह देखता था, उसमें आधारभूत भिन्नता थी। गाधीजी अब दृढता के साथ यह समझते थे कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र मानने के लिए तैयार और इच्छुक थी बशर्ते कि भारत युद्ध प्रयास में पूरी सहायता दे। उनका यह खयाल था कि यद्यपि ब्रिटिश सरकार प्रमुख रूप से अपरिवर्तनवादी थी और मिस्टर चर्चिल उसके प्रधान मन्त्री थे, फिर भी युद्ध अब इस मजिल में पहुच चुका था कि ब्रिटिश सरकार को भारत की स्वतन्त्रता सहयोग के दाम के रूप में मान ही लेनी पडेगी। पर इस सम्बन्ध में मेरे विचार बिल्कुल ही भिन्न थे। मेरा विचार यह था कि ब्रिटिश सरकार ईमानदारी के साथ हमारा सहयोग चाहती थी, पर वे भारत की स्वतन्त्रता अभी स्वीकार करने के लिए तैयार नही थी।"

इस सस्मरण में मौलाना आजाद ने जहा गाधी जी के साथ अपने मतभेद स्पष्ट रूप से दिखलाए है, वहा यह भी दिखलाया है कि गाधी जी में इस बात की अद्भुत प्रतिभा थी कि दो विरोधी मतो को एक प्रस्ताव में दरसा कर दोनो को खुश कर सकते थे। यही बात बाद को कार्य समिति में जो प्रस्ताव रखा गया, उसमें देखी गई।

मौलाना आजाद ने यह भी दिखलाया है कि सुभाषचन्द्र बोस २६ जनवरी, १९४१ के पहले ही भारत से भाग चुके थे और तभी से गाधी जी पर बडा प्रभाव पडा था। मौलाना आजाद लिखते है—"गाधी जी स्पष्ट शब्दो में युद्ध के परिणाम के सम्बन्ध में कुछ कहते नही थे, पर उनके साथ बातचीत करते हुए हमें ऐसा मालूम हुआ कि वे धीरे धीरे मित्र पक्ष की विजय के सम्बन्ध में सदिग्ध हो चले थे। मैने यह भी देखा कि सुभाष बोस के जर्मनी भाग जाने पर उन पर बडा भारी प्रभाव पडा था। पहले वह सुभाष बाबू के बहुत से कार्यो को पसद नही करते थे, पर अब मैने देखा कि उनकी राय बदल चुकी है। उनके कुछ मन्तव्यो से मेरा यह मत बना होगा कि सुभाष बोस ने भारत से भागने मे जो साहस तथा साधन-सम्पन्नता दिखलाई थी, उसकी वे प्रशसा करते थे। सुभाषबोस के प्रति प्रशसा की भावना के कारण उनके अनजान में युद्ध-स्थिति के सम्बन्ध में उनके विचार पर रग चढने लगा था।"

मौलाना आजाद ने तो यहा तक लिखा है कि यह प्रशसा की भावना भी एक कारण था कि जब भारत में क्रिप्स मिशन आया तो उस पर एक धुध पडी रही।

लोगो मे साधारणत यह धारणा है कि गाधी जी अपने अहिसा सम्बन्धी विचारो पर बराबर अचल अटल रहे, पर ऐसी बात नही। पहले हम देख चुके है कि किस प्रकार युद्ध स्थिति के सम्बन्ध में उनके विचार बदले। पर आगे चलकर उनके विचार और किस तरीके से बदले, इस पर मौलाना आजाद लिखते है—"जून, १९४२ में मै वर्धा में गाधी जी से मिलने गया और उनके साथ लगभग पाच दिन तक रहा। उनके साथ जो बातचीत होती थी, उसमें मै यह समझ गया कि युद्ध के प्रारम्भ में उन्होने जो रुख लिया था, उससे वे बहुत दूर चले गए थे। बात यह है कि इन दिनो जापानी सेना जीत पर जीत प्राप्त कर रही थी और भारत सरकार भी यह समझती थी कि जापानी डायमण्ड हार्बर की तरफ से कलकत्ता पर हमला करेंगे और उस हालत में भारत सरकार ने यह भी तय किया था कि किस प्रकार से पीछे हटा जाएगा। एक गुप्त गश्ती चिट्ठी प्रधान अधिकारियो को भेजी गई थी कि किस प्रकार वे कलकत्ता, हावडा और चौबीस परगना धीरे धीरे छोड दें और वे कौन सा रास्ता पकड कर चलें। रास्ते में कई जगह प्रतिरोध होने वाला था। पहला प्रतिरोध पद्मा नदी पर, दूसरा प्रतिरोध आसनसोल और तीसरा इलाहाबाद पर होने वाला था। यह भी तय हो चुका था कि जापानी हमले की हालत में घर फूक नीति अपनाई जाने वाली थी। यह भी तय था कि जमशेदपुर के इस्पात के कारखाने को नष्ट कर दिया जाए।"

इस स्थिति में गाधी जी का क्या मत रहा, इस पर मौलाना लिखते है—"मुझे यह आश्चर्य हुआ कि गाधी जी मुझ से मतभेद रखते थे। उन्होने बिलकुल स्पष्ट रूप से कहा कि यदि जापानी सेना भारत में आए तो वह हमारे शत्रु के रूप में नही, बल्कि ब्रिटेन के शत्रु के रूप में आएगी। उनका कहना था कि यदि अग्रेज फौरन भारत छोड जाए तो उनका विश्वास है कि जापान भारत पर आक्रमण नहीं करेगा। मैने उनके इस मत को नही माना था और लम्बी बहसो के बावजूद हम किसी राय पर नही पहुच सके। मैने देखा कि सरदार पटेल के भी विचार वही है जो गाधी जी के है और शायद उन्होने ही गाधी जी पर यह प्रभाव डाला था।"

मौलाना ने बहुत-सी बातें ऐसी लिखी है जिनसे गाधी जी के नेतृत्व पर काफी नई रोशनी पडती है। पर १९४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में गाधी जी पर जो रोशनी पडी है, वह बहुत ही नयापन लिए हुए है। गाधी जी यह सोच रहे थे कि इस मौके पर कोई न कोई आन्दोलन चलाना चाहिए, "पर मैने जब यह कहा कि प्रतिरोध का कार्यक्रम क्या हो तो

उनके पास कोई स्पष्ट विचार नहीं था। एकमात्र बात जो उन्होंने कही, वह यह थी कि अब की बार लोग स्वेच्छा से जेल नहीं जाएंगे। उन्हें चाहिए कि वे गिरफ्तारी का प्रतिरोध करें और तभी सरकार की अधीनता स्वीकार करें जब शारीरिक रूप से इसके लिए बाध्य हो जाए।"

कार्य समिति के जो अन्य सदस्य थे, उनमें से अधिकांश के मन में भी इस आन्दोलन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट विचार नहीं था। मौलाना ने लिखा है—"वे बहुत कम मौकों पर अपने से किसी बात पर विचार करते व और किसी भी हालत में वे गांधी जी के निर्णय के सामने अपने निर्णय को प्रधानता नहीं देते थे। इस रूप में उनके साथ तर्क करना लगभग व्यर्थ था। हमारी सारी बातचीत के बाद जो कुछ वह कह सके, वह यही था कि हमें गांधी जी में पूरा विश्वास रखना चाहिए। उनका कहना यह था कि यदि हम उन पर विश्वास रखें तो वे कोई न कोई रास्ता निकाल लेंगे। उन्होंने इस सम्बन्ध में १९३० के नमक सत्याग्रह आन्दोलन का उदाहरण दिया। जब वह शुरू हुआ था तो कोई भी नहीं जानता था कि क्या होगा? सरकार स्वयं उस आन्दोलन को तुच्छ समझती थी और खुले तौर पर इस बार हिंसा उठ चुकी थी। अन्त तक नमक सत्याग्रह आन्दोलन को बहुत बड़ी सफलता हुई और सरकार को अंत मानने पर राजी होना पड़ा। सरदार पटेल और उनके साथियों का यह कहना था कि इस बार भी गांधी जी को उसी प्रकार सफलता होगी। मैं मानता हूं कि इस प्रकार की तर्क-प्रणाली से मुझे सन्तोष नहीं होता था।"

इस मौके पर मौलाना और गांधीजी में बहुत जबरदस्त मतभेद हो गया। जिसका संस्मरण में इस प्रकार उल्लेख किया गया है—"५ जुलाई को हमारी बातचीत शुरू हुई और कई दिनों तक चलती रही। इससे पहले गांधी जी से कई अवसरों पर कई विषयों के सम्बन्ध में मुझ से मतभेद हो चुका था। पर इससे पहले कभी हमारा मतभेद इतना पूर्ण नहीं था। वह उस समय सीमा तक पहुंच गया जब उन्होंने मुझे इस आशय का एक पत्र भेजा कि मेरा मत उनसे इतना भिन्न है कि हम एक साथ काम नहीं कर सकते और यदि कांग्रेस चाहती है कि गांधी जी आन्दोलन का नेतृत्व करें तो मुझे कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देना चाहिए और कार्य समिति से भी अलग हो जाना चाहिए। उन्होंने यह कहा कि यही बात जवाहरलाल भी करें। मैंने फौरन ही जवाहरलाल को बुलाया और उन्हें गांधी जी का पत्र दिखलाया। सरदार पटेल भी आ गए और जब उन्होंने पत्र पढ़ा तो उन्हें भी बड़ा धक्का-सा लगा। वह फौरन गांधी जी के पास गए और उन्होंने उनके इस कार्य का बड़ा जबर्दस्त विरोध किया। पटेल ने यह बताया कि यदि हम अध्यक्ष पद से अलग हो जाते हैं और जवाहरलाल और मैं कार्य समिति से इस्तीफा दे देते हैं तो देश पर उसका प्रभाव बहुत ही बुरा पड़ेगा। उस हालत में न केवल जनता का बुद्धिभ्रंश होगा बल्कि कांग्रेस की भी जड़ें हिल जाएंगी। गांधीजी ने यह पत्र मुझे ६ जुलाई को भेजा था, पर दोपहर के समय उन्होंने मुझे बुलाया। उन्होंने एक लम्बा भाषण दिया जिसका सार यह था कि उन्होंने सबेरे जल्दबाजी में यह पत्र लिखा था। अब उन्होंने उस विषय पर और भी सोचा था और वे इस पत्र को लौटाना चाहते थे। मुझे उनकी यह बात माननी ही पड़ी। जब ३ बजे कार्य समिति की बैठक हुई तो पहली बात जो गांधी जी ने कही, वह यह थी कि एक अनुलब्ध पापी मौलाना के पास लौट आया है।"

इसके बाद किस तरह आन्दोलन चला और सब नेता गिरफ्तार हुए, गांधी जी अलग रखे गए, पर बाकी नेता अहमदनगर गढ़ में रखे गए, इन बातों को यहां बताने की जरूरत नहीं है। इन्हीं दिनों मौलाना की पत्नी और बहन का देहान्त हुआ जिसका बड़ा मार्मिक वर्णन संस्मरण में बहुत थोड़े में किया गया है। इसके बाद गांधी जी एकाएक छोड़ दिए गए क्योंकि अनशन से वे बहुत कमजोर हो चुके थे। मौलाना ने यह लिखा है कि गांधी जी ने यह समझा कि छूटने का कारण यह था कि ब्रिटिश नीति में कुछ तब्दीली हुई है पर बाद की घटनाओं ने यह दिखला दिया कि वे बिलकुल गलती पर थे। इसके बाद मौलाना यह लिखते हैं कि गांधी जी ने इस अवसर पर जो सरकार से बातचीत करने की चेष्टा की, वह भी गलत थी। उनके शब्दों में ही पढ़िए—"यह स्मरण होगा कि जब लड़ाई छिड़ी थी तो मैंने कांग्रेस को यह समझाने की कोशिश की थी कि युद्ध के सम्बन्ध में एक वस्तुवादी और धनात्मक रुख लिया जाए। गांधी जी ने उस समय यह रुख लिया था कि भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता अवश्य ही महत्वपूर्ण है, पर अहिंसा का पालन उससे भी महत्वपूर्ण है। उनकी घोषित नीति यह थी कि यदि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एकमात्र तरीका युद्ध में भाग लेना हो तो जहां तक उनका सम्बन्ध है, वे इस तरीके को नहीं अपनाएंगे। बाद को वह कहने लगे कि यदि भारत स्वतन्त्र मान लिया जाए तो कांग्रेस ब्रिटिश के साथ सहयोग करेगी। इस प्रकार उनका यह मत पहले मतों के बिलकुल विरुद्ध था और भारत तथा विदेशों में भी काफी भ्रांत धारणाएं पैदा हुईं।"

इसके बाद वह लिखते हैं—"जब मैं १९५७ में यह लिख रहा हूं और पहली घटनाओं पर दृष्टिपात कर रहा हूं तो मैं एक बात यहां बिना कहे नहीं रह सकता कि उनके घनिष्ठ अनुयायियों में हिंसा बनाम अहिंसा के मामले में बहुत आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए थे। सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद आचार्य कृपलानी, डा० प्रफुल्ल घोष कार्य समिति में उस समय इस्तीफा देना चाहते थे जब कि कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया था कि वह उस हालत में युद्ध में योगदान करेगी यदि ब्रिटेन भारत को स्वतन्त्र कर दे। उस समय उन्होंने मुझे यह लिखा था कि उनके लिए अहिंसा एक धर्म था और भारतीय स्वतन्त्रता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। पर जब भारत १९४७ में स्वतन्त्र हो गया तो उनमें से एक ने भी यह नहीं कहा कि भारतीय सेना तितर-बितर कर देनी चाहिए। इसके विपरीत उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय सेना भी बांट दी जाए और भारत सरकार के नियन्त्रण में रख दी जाए। स्मरण रहे कि उन दिनों के कमाण्डर-इन-चीफ ने जो यह प्रस्ताव किया था, उसके वह बिलकुल खिलाफ था। कमाण्डर-इन-चीफ ने यह सुझाव दिया था कि तीन साल तक एक संयुक्त सेना या एक संयुक्त कमान हो, पर वे इस पर राजी नहीं हुए थे। यदि अहिंसा सचमुच उनका धर्म था तो वे उस सरकारमें जिम्मेवारी का पद कैसे ग्रहण कर सकते थे जो सेना पर १०० करोड़ रु० से ऊपर खर्च करती है। सच तो यह है कि इनमें से कुछ सेना पर खर्च बढ़ाना न कि घटाना चाहते थे और इस समय यह खर्च लगभग २०० करोड़ रु० है।"

'मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि ये साथी तथा मित्र अधिकांश राजनीति मसलों पर अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते थे। वे गांधी जी के पक्के शिष्य थे। जब कोई प्रश्न उठ खड़ा होता था तब वह यह देखते थे कि गांधी जी क्या कहते हैं। मैं, गांधी जी की प्रशंसा का जहां तक प्रश्न है, उनमें से किसी से पीछे नहीं था और न हूं, पर मैं किसी भी हालत में एक भी क्षण के लिए इस स्थिति को ग्रहण नहीं कर सकता था कि हमें उनके पीछे अन्धे ढंग से चलना चाहिए। यह अजीब बात है कि १९४० में यह मित्र

जिस बात पर कार्य समिति से इस्तीफा देना चाहते थे वह उनके दिमाग से इस समय निकल गई जबकि भारत स्वतन्त्र हो गया। वे कभी भी भारत सरकार को बिना सेना और एक बड़े प्रतिरक्षा संगठन के चलाने की बात नहीं सोच सकते। और न उन्होंने यह मान लिया है कि नीति के रूप में युद्ध साधन नहीं हो सकता। कार्य समिति में जवाहरलाल ही एक मात्र व्यक्ति थे जिनका मुझ से पूर्ण रूप से मत मिलता था। मैं समझता हूँ कि घटनाओं ने उनको और मेरी स्थिति को ही बल पहुँचाया।"

मौलाना आज़ाद कांग्रेस के बहुत बड़े नेता थे। मैंने इस आशा से उनके मतों को इस छोटे से लेख में संकलित किया है कि मौलाना ने जो बातें कही हैं तथा उनसे जो तात्विक प्रश्न उठते हैं उन पर लोग गहराई से विचार करें। यह केवल आराम कुर्सी पर बैठ कर सोचने लायक एक दार्शनिक गुत्थी नहीं है, बल्कि मौलाना के संस्मरण के इन अंशों से स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास पर नई स्वस्थ रोशनी पड़ती है।

अरुणोदय

आरसी प्रसाद सिंह

अन्धकार है घोर, ध्वंस के
मेघ चले हैं मंडलाते।
कौंध रही है बिजली, झंझा के
झोंके रह रह आते।
वन-वन में दावानल, ज्वालामुखी
प्रचण्ड धधकती है।
आज मानवों के सिर पर
नंगी तलवार लटकती है।
उदर-उदर में क्षुधा, अधर पर
तृषा, हृदय में शान्ति नहीं।
यह जड़त्व, मन में कोई
विद्रोह नहीं है, क्रान्ति नहीं।
मौन अभागे व्याघ्र-गुफा में
घुसे आप ही जाते हैं।
अपने ही भक्षक तक्षक की
विजय-वन्दना गाते हैं।
अन्धकार है, किन्तु कभी क्या
रुके ज्योति-पथ बढ़ने वाले?
हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
तरुणों के दल चढ़ने वाले?
महानाश का उदर फाड़ कर
सृजन अंकुरित होता है।
कौन विधाता? क्षीरोदधि में
योग-मग्न जो सोता है?
वह देखो, उदयाचल नूतन
आभा से आरक्त हुआ।
रश्मि-प्रहर के प्रहरी का स्वर
धीर गंभीर सशक्त हुआ।
अन्धकार के जीवजन्तु
तिमिरान्ध निशा में जीते हैं।
मायावी वेला में पलते,
मनुज रक्त जो पीते हैं।
मिटें, मिटेंगे वे निश्चय,
शोकाकुल निशि जाने दो।
किरणों की ले स्वर्ण-पताका
नव अरुणोदय आने दो।
कपट, निराशा-कुहा फाड़
दिनमान क्षितिज पर चमकेगा।
अम्बर से लेकर भूतल तक
जगमग द्युति से कर देगा।
आशाजीवी, मत हताश हो,
चाँद-सितारे बदलेंगे।
नव मानव उठ अपनी जय का
शंखघोष जब कर देंगे।
उस दिन स्वर्ग न होगा कल्पित,
भू का होगा रूपान्तर।
प्रतिगुंजित होगा कण-कण से
अमर शान्ति का सस्मित स्वर
उषा काल के पूर्व, तिमिर का
गहन पटल जो है छाया।
ज्योति-वर्ण नव युगारम्भ
सन्देश इसी में है लाया।
द्रवीभूत प्रस्तर-स्तर होगा,
पर्वत हिम का पिघलेगा।
नयी चेतना जब उतरेगी,
जन्म नया मानव लेगा।
जागो, सुप्त भ्रमर ओ, निशि के
नीलकमल दल में बन्दी।
आया नव आलोकरथी रवि,
नव स्रष्टा का प्रतिद्वन्द्वी।

राख की राख

महावीर अधिकारी

सावन की घोर अंधियारी रात ।

अभी-अभी शोभा आई है। बादल की भयानक गर्जना और बिजली की कड़क से उसका दिल सहम गया है। किसी तरह वर्षा के पानी को निचोड़ती हुई, वह कह पा रही है—"कपिला दीदी गजब हो गया। चन्द्रवदन जी, हमारे घर के सामने बेहोश पड़े थे। उन्हें अस्पताल ले गए हैं। मुझ से रहा नहीं गया बहन। तुम चाहो तो मैं तुम्हारे साथ अस्पताल तक चल सकती हूं।"

कपिला के पति हैं चन्द्रवदन। सावन की अंधियारी रात मूसलाधार वर्षा और कड़कती हुई बिजली की रोशनी में कपिला की मित्र शोभा के मकान के सामने बेहोश पाए गए, और अस्पताल ले जाए गए हैं।

यह खबर सुन कर अगर कोई पत्नी जीवन का अन्तिम सांस भी लेती होती तो सहसा तड़प कर उठ बैठती। परन्तु कपिला के कंठ से पीड़ा का हल्का स्वर भी मुखरित नहीं हुआ। उसके चेहरे पर अत्यन्त क्षीण, अज्ञेय और निर्जीव जिज्ञासा मात्र एक झलक देकर, लुप्त हो गई। उसने शोभा को धन्यवाद भी नहीं दिया।

घर की प्रत्येक दीवार पर पानी सांप की तरह रेंग रहा था। शोभा बार बार स्थान बदल कर उससे बचने का प्रयत्न कर रही थी। लेकिन कपिला ऐसी निश्चल थी मानो स्वयं उस बरसात का ही एक अंश हो। आधी रात तक जागते रहने के बाद तीनों बच्चे एक-दूसरे से लिपटकर सो गए थे और शोभा के आने से पहले कपिला उनके उदास, मलिन, निस्तेज चेहरों को देखती हुई, तेलहीन बाती की तरह सुबक रही थी।

इस भयानक समाचार को सुनकर भी जब कपिला की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया तो शोभा ने आवेश और वेदना से कांपते हुए कपिला को झकझोरा था—"कपिला दीदी, अगर चन्द्रवदन के लिए न सही, तो इन अभागे प्राणियों के लिए अपने आप पर रहम खाओ। आखिर ये तुम्हारे रक्त की बूंदें हैं। क्या तुम चाहती हो कि लावारिस होकर ये सड़कों पर भटकते फिरें? कठोरता की भी कोई सीमा होती है—बहन।"

यह कहकर शोभा की आंखों से टपटप आंसू चूने लगे थे। इन आंसुओं में कपिला के जीवन के ग्यारह वर्षों की वेदना और लाचारी बरस रही थी। इतनी सख्त भर्त्सना से भी कपिला का मौन भंग न हुआ तो वह उसकी गोद में लुढ़क गई थी।

शोभा सिसकियों से रो रही थी और कपिला के अतीत की तहें खुलती जा रही थीं।

शोभा उसके जीवन का वसन्त थी। जब-जब उसने उसे स्पर्श किया है, उसके जीवन में आत्मविश्वास और साहस पैदा हुआ है। शोभा कह रही है जीवित रह कर इतना संताप सहने से यही बेहतर था कि मैं तभी एक चुटकी जहर तुम्हें लाकर दे देती। लेकिन अब किससे लड़ना है दीदी। जिससे लड़ रही थी वह तो टूट ही गया।

कुछ मुद्राएं उसकी मुट्ठी में पकड़ा कर शोभा वापस जा रही है। और आज उन बीते ग्यारह वर्षों की बातें उसकी आंखों के सामने नाच रही हैं।

जिस तरह एक बिरवे की दो पाखें हों, ऐसी ही दो सखियां थी कपिला और शोभा। जब वे अबोध बालिकाएं थीं, तब से लेकर यौवन की दहलीज में कदम रखने तक दोनों साथ-साथ रहीं, साथ-साथ उन्होंने शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की और उनका विचार, जो सम्भवतः अव्यक्त रूप से उनके दिलों में पनप रहा था—यही था कि वे दोनों मां-बाप के घर से भी साथ साथ ही विदा लेंगी।

कपिला के पिता उपदेशक थे और शोभा के पिता आयुर्वेदाचार्य। कपिला के पिता ने अपनी पुत्री की शिक्षा-दीक्षा में शास्त्रोक्त नियमों का पूरी तरह पालन किया था। कपिला की आयु अभी अट्ठारह वर्ष की ही हुई थी, परन्तु लगभग दो वर्ष से वह इस चिन्ता में थे कि लड़की के हाथ पीले कर दिए जाएं। इन दो वर्षों में भी विवाह की बात शोभा का उदाहरण देकर ही टलती आ रही थी, किन्तु लाला दीनदयालु जी शास्त्र-विपरीत आचरण आखिर कब तक करते?

एक दिन रात गए शोभा हांफती हुई कपिला के पास आई। हर्ष और उल्लास से उसके गुलाबी कपोल लाल कोंपल के समान दमक रहे थे। कपिला बिस्तर पर लेटी हुई समाचार पत्र पढ़ रही थी। वह हकबका कर उठ बैठी। लेकिन शोभा ने उसे बोलने का अवसर नहीं दिया। उसने एक भारी सा लिफाफा कपिला की गोद में फेंकते हुए कहा—"लो बीबी रानी, कर लो स्वयंवर।"

शोभा के चेहरे की अरुणिमा को देखकर पहले तो कपिला ने यही समझा कि शोभा के अपने ही बारे में कुछ है, उसने कहा—"कैसा स्वयंवर, क्या बक रही है? क्या तेरा निश्चय हो गया?"

"ओ हो जी, कैसी बन रही है, जैसे चाचा जी ने इन्हें कुछ बताया ही नहीं होगा। लो भाई, जिसके पिता वेदों के महापंडित, सारी दुनिया को ज्ञान का प्रकाश देने वाले, संस्कृति का मंथन करके जिन्होंने अपनी बेटी को जीवन का नवनीत अट्ठारह वर्ष तक खिलाया, भला उनकी बेटी स्वयंवर नहीं करेगी, तो और कौन करेगी?"

कपिला उसके चेहरे के चपल किन्तु मार्मिक हाव-भावों को जब समझी तो सहसा घबरा ही गई। कपिला ने उसका गला इस तरह दबा लिया कि जैसे घोट कर उसका दम ही निकाल देगी "जब तुझे सब कुछ मालूम है तो फिर यह क्या कह रही है।"

"मैं क्या कहती", शोभा ने रुआंसी होते हुए कहा—"मैं फोटू पिता जी की फाइल से निकाल लाई हूं। मैंने तो सोचा था, पसन्द करने में तुम्हारी मदद करूंगी।"

"हां, हां करेगी मदद। ला इधर, इन्हें जमीन में दफना देती हूं। यह क्या कोई मजाक है। जिसको देखा, उसी के हाथ में थमा दिया लड़की

का हाथ। तुझे मालूम है, मैं इन्द्रनाथ के सिवा किसी दूसरे का नाम भी इस सम्बन्ध में सुनना नहीं चाहती। मैंने निर्णय न किया होता तो दूसरी बात थी।"

शोभा ने लिफाफा खोला भी नहीं। वह गुमसुम उलटे पैर लौट गई, परन्तु कपिला की पुतलियों में घूमने वाली नींद जैसे शोभा के साथ ही चली गई थी। रात भर कपिला बेचैनी के साथ अनेक संकल्प विकल्पों में डूबती-उतरती रही। इन्द्रनाथ की छाया उसके मन पर जब से पड़ी थी, तब से वह उत्तरोत्तर सघन और शीतल ही होती गई थी। किसी दूसरे का विचार मन में आते ही उसका कौमार्य विद्रोह कर उठता। इन्द्रनाथ की चर्चा उसने अपनी पसन्द के रूप में मां से कई बार की थी, और उसे विश्वास था कि उसके पिता ने जब आज तक उसका कहना माना है, तो इस अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण निर्णय में वह उसके मन की बात अवश्य पूरी करेंगे।

पिता से उसने तर्क करना सीखा था। जीवन की प्रत्येक समस्या पर वह ढेरों तक कर सकती थी, परन्तु एक व्यक्ति को मन से वरण करने के बाद किसी दूसरे को तर्क द्वारा किस प्रकार उस स्थान पर अधीष्ठित किया जा सकता है, यह बात उसकी समझ में आती ही न थी।

अगले दिन हवन, पूजन और मन्त्रों से अपने मन्तव्य को पवित्र करके दीनदयालु जी बेटी के समक्ष वर का चुनाव कर लेने का प्रस्ताव रखने की तैयारी कर ही रहे थे कि इतने में अपनी मां से झगड़ती हुई कपिला स्वयं उनके कमरे में आ गई। वह मां से बार-बार कह रही थी कि उसे एम० ए० में प्रविष्ट करा दिया जाए। वह इसके अतिरिक्त न कुछ करना चाहती है और न सुनना चाहती है। इस अवसर का सदुपयोग करके दीनदयालु जी ने बेटी से कहा—"कपिल बेटे, अब तुमने बी० ए० तक पढ़ लिया है। तुम्हारी जिद को पूरा करने के लिए हमने तुम्हें नृत्य और गायन की शिक्षा दिलाई है। अब तुम हर तरह से समझदार हो गई हो। अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो, हम भी अब सन्यास लेना चाहते हैं।"

"आप बार-बार अपने को यों ही परेशान करते हैं, पिताजी। मैं अभी दो वर्ष तक कुछ भी सोचना नहीं चाहती। आपको भारी पड़ गई हूं तो।"

"यह तुम क्या कहती हो कपिल," पिता ने कहा—"हमारे लिए इस जीवन में और क्या है। कैसी पागलों जैसी बातें करती हो। लेकिन योग्य वर बड़ी मुश्किल से मिलता है बेटे। देखो ये कुछ चित्र हैं, इनके बारे में सब कुछ तुम्हारी माता बताएगी। जो तुम्हें पसन्द हो, हमें बताओ। तुम चाहो तो हम सभी को अलग-अलग बुलाकर तुमसे साक्षात्कार करा दें। हम जानते हैं यह जीवन का प्रश्न है। एक गाड़ी के दो पहिए, यदि एक खरीद पर, एक गोलाई में न ढाले गए हों तो भूमि के थोड़ा भी असम होने पर दुर्घटना होने की आशंका होती है। जाओ अपनी माता से परामर्श करो और हमें शीघ्र ही उत्तर दो।"

कपिला अपने पिता की प्रकृति से परिचित थी। उस मुसकराते हुए चेहरे के पीछे फौलादी दिल को भी उसने जाना है। वह चुपचाप उठकर अन्दर चली गई। पीछे-पीछे मां भी आ गई थी। कपिला की आंखों में आंसू थे। मां ने अपने अंचल से वे आंसू पोंछते हुए कहा था—"ठीक ही तो कह रहे हैं। कितने बाप बच्चों का इस तरह मन रखते हैं। किसी एक के पल्ले आंख मींचकर बांध देते हैं, और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखते।"

"इससे तो बेहतर यही है कि मुझे किसी एक के पल्ले बांध दो और फिर जीवन भर मेरी तरफ न देखो, मां! दस आदमियों को मन से वरण करूं और फिर उनमें से एक चुनूं, यह तो मुझ से नहीं होता, हो नहीं सकता।"

"अरी पगली। आदमी बाजार से चीज खरीदने जाता है, तो दस जगह देख कर लेता है। यह क्या बात हुई तेरी?"

"यह सौदा नहीं है मां। जीवन में सुख और ऐश्वर्य मिले—इसलिए यह सौदा मैं नहीं करूंगी। सच मानो मां, मैं इन्द्रनाथ के सिवा किसी की कल्पना भी नहीं कर सकती।"

"इन्द्रनाथ, फिर वही प्रलाप। उसने शराब पीना छोड़ दिया? जुआ खेलना छोड़ दिया?"

"हां, छोड़ दिया है। जितना नहीं छोड़ा है, उसमें उसका दोष मैं नहीं देखती। अच्छा अम्मा, अब तो सेना में उसका चुनाव हो गया है। अब वह सब कुछ छोड़ ही देगा। तुम ही बताओ, जब किसी के सिर से बचपन में ही मां का साया उठ गया हो तो वह अभागा कौनसा अपराध न करेगा। उसकी जिम्मेदारी तुम मुझ पर छोड़ दो, मां। पिताजी को समझा दो। यों थोड़ा बहुत खोट मुझ में नहीं है क्या। थोड़ा खोट तो दुनिया के हर इंसान में होता है।"

मां ने बेटी के मुंह से निकलने वाले हार्दिक उद्गारों के मर्म को समझ लिया था। बेटी के सुख की कल्पना मात्र से ही उनके नेत्रों में एक अपार संतोष उभर आया था। और मां के इन स्वीकारात्मक भावों को जानकर ही किस तरह कपिला की समस्त देह स्पंदित हो उठी थी।

"अच्छा-अच्छा मैं उनसे कहूंगी।" मां ने कहा था।

मां जब धीमे-धीमे कदम उठा कर चलने लगी तो कपिला उनके गले में लिपट गई थी और जब शाम को शोभा आई तो जैसे पागल होकर कपिला ने उसे आलिंगन में आबद्ध कर लिया था। उसके कदम जैसे किसी मोहक तान पर थिरक रहे थे और उसके कंठ से जैसी कोई उन्मादकारी रागिनी फूट रही थी। उसने शोभा को एक क्षण का विश्राम भी कहां लेने दिया था, बोली थी—"चल उठ, बड़ी स्वयंवर कराने आई थी। अब इन्द्रनाथ से बातें करनी हैं। अगर कपिला को पाना है तो उसे आवारा-पन छोड़ना पड़ेगा।"

"अरी पगली यह कहने से क्या लाभ। तेरी आंखों में वह शराब है कि मुई, वह दुर्गन्धपूर्ण शराब खुद ब खुद छूट जाएगी?" शोभा ने कहा था।

"बातें न बना, उससे कहना है कि अब वह जिम्मेवार अफसर बनने वाला है, सड़कों पर आवारा लोगों की तरह घूमना भी छोड़ना होगा।"

इस तरह दोनों सहेलियां आनन्द और उछाह के झोकों में उड़ती हुई उस पवित्र अभिसार की डगर पर निकल गई। इन्द्रनाथ उन्हें घर पर ही मिल गया। वह कितना शिष्ट, कितना शालीन और कितना लज्जालु था। ऐसे आदमी के हाथ में शराब का प्याला देखकर भी उसे अमृत का चषक समझने को मन चाहता है। दोनों सखियों के होंठों पर जैसे ताला पड़ गया।

इन्द्रनाथ ने जलपान के समय स्वयं ही कहा था—"आप लोगों को यह जानकर खुशी होगी कि सेना में मेरा चुनाव हो गया है। कपिला को शायद यह पसन्द न आए, लेकिन मैं क्या करूं। मेरी बाहें सेना के शिविर के सिवा किसी दूसरी जगह समा ही नहीं सकतीं।"

"कपिल को जानकर बहुत खुशी हुई है?" शोभा ने दबी जबान से कहा।

"हां, हां खुशी होगी, तो इस तरह उदास नजरों से कमरे की दीवारों को क्यों देखती। जब से आई हूं मेरे चेहरे की तरफ एक बार भी नहीं देखा—क्यों ठीक है न कपिल।"

"आज माता जी पिता जी से बातचीत करेंगी।" कपिला नजर फिर भी न उठा सकी।

"देखो, अब न जाने कब मैं चला जाऊं। अच्छा हुआ, तुम आ गईं। मेरी तरफ से वचन है कि जिस दिन तुम्हारा संकेत होगा मैं गुलाम की तरह बंधा हुआ तुम्हारे द्वार तक चला जाऊंगा। इन्द्रनाथ अपने वचन को भंग नहीं कर सकता। यह सिपाही का वचन है? इससे अधिक और क्या कह सकता हूं?"

आनन्दातिरेक से कपिला की आंखों से आंसू झरने लगे थे।

शोभा ने लौटते हुए कहा था—"तू मुझे साथ क्यों लाई। मैं अब तेरे साथ कहीं नहीं जाऊंगी। बेचारा कुछ कह भी न सका।"

"कह तो दिया। इससे ज्यादा कोई क्या कह सकता है। शोभा बता तो इन्द्रनाथ अच्छा आदमी है न? मेरे आने के बाद वह सब कुछ छोड़ देगा न?"

"छोड़ क्यों नहीं देगा। जरूर छोड़ देगा। चलो, जल्दी से कदम उठाओ। मां के कहने पर तुम्हारे पिता जी ने कुछ तो उत्तर दिया होगा?"

लेकिन कपिला उस सुख की कल्पना को तोड़ना नहीं चाहती थी, उसने उसे रोकते हुए कहा—"शोभा, पिता जी इस बात को समझते क्यों नहीं। मुझे क्या उन्होंने लायक नहीं बना दिया है कि अगर इन्द्रनाथ मुझे छोड़ भी दे तो अपने पैरों पर खड़ी न हो सकूं?"

"कैसी बातें कर रही है, अभी से ऐसी बातें क्यों करती है। न मानेंगे तो न मानें। कोई अपनी जिन्दगी बर्बाद थोड़े ही करनी है।"

"न, न, ऐसी बात मत कह शोभा, मानेंगे क्यों नहीं। मेरे पिता ऐसे नहीं हैं।" लेकिन कपिला उसकी बातें सुनकर सिहर गई थी। एक क्षण में ही न जाने क्या कुछ सोच गई थी और उस क्षण भावी आशंकाओं और मानसिक उथल-पुथल ने उसे इतना श्लथ कर दिया था कि बाकी रास्ते में वह शोभा के कन्धे का सहारा लेकर ही घर पहुंची थी।

मां के चर्चा करने पर पिता जी ने विरोध नहीं किया। उन्होंने कहा था—"हम अपनी लड़की का हाथ ऐसे वर के हाथ में, जिसके चरित्र को हम अच्छी तरह जानते हैं, अपने हाथों से नहीं सौंप सकते। दुनिया हमारे मुंह पर थूकेगी। लोग कहेंगे, दीनदयालु ढोंगी है। लड़की विवाह कर ले, पर हम उसमें शरीक नहीं होंगे। कन्यादान शोभा के पिता कर देंगे। ठीक है, लड़की को अपने खून से सींचा, उसकी हर जा-बेजा जिद रखी, तो फिर उसका परिणाम तो यह होना ही था।"

मां ने जब यह सब कपिला को सुनाया तो उसकी आंखों से टपाटप आंसू बह रहे थे। कपिला मूक हो गई। कपिला रो भी नहीं सकी थी।

शोभा ने कहा था—"तब क्या होगा कपिल, देखती हो पिता जी अब अपने कमरे से निकलते भी नहीं हैं। दिल का दौरा फिर उठ खड़ा हुआ है। दवाई तो कभी खाई ही नहीं। यह सब क्या हो गया बहन? क्या सोचा था।"

"कुछ नहीं शोभा, मैं अपने मां और बाप की खुशी के लिए अपनी हसरतों का खून करूंगी। पर तू यह जान ले, मेरा विवाह हो चुका है। मैं जीवन पर्यन्त ऐसी ही रहूंगी—वे मुझे चाहें जिसके पल्ले बांध दें।"

कपिला ने दिल पर पत्थर रख लिया था और पिता किससे रिश्ता तै कर रहे हैं—यह बात जैसे वह मन में कभी लाना भी नहीं चाहती थी। उसकी आंखें सुख और मन विक्षिप्तों जैसा हो गया था। इस निश्चय की सूचना इन्द्रनाथ के पास भी पहुंच गई थी। जिस दिन वह अपने काम पर गया, उससे पहले दिन आया था। उसके चेहरे पर मैल नहीं था। उसने कहा था—"कभी जीवन में मेरी सेवाओं की जरूरत पड़े तो मुझे याद करना। तुम बदल गईं, मैं नहीं बदल सकता। विवाह के बाद जिस प्रकार पार्थिव सुख की कल्पना लोग करते हैं, उस सुख के लिए मैं अपने व्यक्तित्व को बलिदान नहीं कर सकता। इसीलिए शायद मैं आवारा समझा जाता हूं और शायद लोग ठीक भी कहते हैं। जिसके जीवन में कोई अपना न हो जिसकी आत्मा की सुरभि के सहारे वह जीवन की समस्त दुर्गन्धों के ऊपर उठ सके, ऐसा हर आदमी आवारा ही होता है। मुझे तुम्हारे अन्दर उस अलौकिक गन्ध का आभास हुआ था। कोई बात नहीं, तुमने मेरा सामाजिक अधिकार छीन लिया, लेकिन मेरे आवारापन के हक को तुम मुझसे नहीं छीन सकोगी।"

इन्द्रनाथ के चले जाने के बाद विवाह के लिए कपिला ने फिर कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया। पिता और माता, नातेदार सभी खुश थे। केवल शोभा ही उसके मन की स्थिति को समझती थी।

विदा के समय उसने कहा था—"अब जो हुआ सो हुआ। अपने को सम्भालने की कोशिश करना। सबका सौभाग्य ऐसा नहीं होता कि मनचीता हो जाए, पर आदमी अपने धैर्य से सब कुछ कर सकता है। मुझे विश्वास है मेरी दीदी एक नए आदर्श को कायम करेगी।"

कपिला ने इन्द्रनाथ के अन्तिम शब्दों को शोभा से दोहराते हुए कहा था—"मुझे मालूम है बहन, जीवन में मुझे कभी सुख चैन न मिल सकेगा। मैंने इन्द्रनाथ के साथ धोखा किया है। मैंने प्रेम की पवित्र वेदी पर ठोकर मारी है।"

पति के घर आते-आते कपिला को शोभा से कहे गए अपने शब्दों का यथार्थ प्रकट होने लगा था। शादी के घर में नाते-रिश्तेदारों का जमघट था, पर कपिला जैसे इस समुदाय के मध्य एकाकी और निराश्रित थी। हास्य-विनोद के रिश्तेवाली महिलाओं की विनोदोक्तियां जैसे उसके मन में जहर घोल देतीं। चन्द्रवदन उसके पति का नाम भले ही था, पर उसे वह चन्द्रमा के मस्तक पर लगे कलंक से भी ज्यादा काला दिखाई पड़ता था। उसके मोटे होंठों पर ललकती हुई वासना को वह भली-भांति देख सकती थी। जब वह उसकी तरफ आनन्दविभोर होकर देखता तो उसकी छोटी-छोटी आंखें और भी मुंदी हुई दिखाई देने लगतीं और कपिला कतरा कर अपनी आंखें नीची कर लेती। वह सोचने लगती—इसी महामानव के साथ उसे सुहागरात मनानी है!

बहन-भावजें सुगन्धित गजरे गूंथ रही हैं। शैया सजा रही हैं!

बाहर से एक भाभी आई हुई हैं। उनकी नन्ही-सी बिटिया है। कपिला को उसके सौम्य भोले मुखमण्डल ने चुम्बक की तरह खींच लिया है। उसे वह अपने से दूर नहीं होने देती। भाभी कई बार कह चुकी है—तुम्हारे पति ऊपर हैं, उनके पास जाना चाहिए।

घर छोटा है। एक कमरा और बड़ा-सा सहन नीचे है, एक कमरा ऊपर है। बारात के लौटकर आने के बाद वह कमरा खाली कर दिया गया है।

चन्द्रवदन स्कूल में अध्यापक है। शेष समय उसने आसन-प्राणायाम में ही गुजारा है। तेल से भीगी चटाइयां कोनों में खड़ी हैं। कपिला कहती है—"तुम मेरे पास ही रहना कुसुम। हम तुम्हारे लिए रेडियोसेट मंगवाएंगे।"

सुनकर चन्द्रवदन का मुंह सिकुड़ जाता है।

इसी तरह जिन्दगी की उस हर जरूरत का कपिला जिक्र करती है जो उसे अपने माता-पिता के घर में उपलब्ध थी और जिन्हें चन्द्रवदन अपनी आर्थिक स्थिति के कारण उपलब्ध नहीं कर सकता। बात कड़वी होती जाती है।

शाम को भाभी ने ठेलकर उसे ऊपर पहुंचा दिया है। चन्द्रवदन की प्रतीक्षा में विह्वलता नहीं है। आक्रोश है। वह पहले उस चन्द्रमुखी से दो बातें करेगा, जिसे अपने मां-बाप की सम्पत्ति पर, सुख सुविधाओं पर और शायद अपने रूप पर भी बहुत अधिक गर्व है।

कपिला सुगन्धियुक्त पुष्पों से सज्जित शैया पर सिकुड़ कर बैठी है। चन्द्रवदन उसकी चिबुक को ऊपर उठा रहा है। कपिला की आंखों में आंसू हैं।

"ये कैसे आंसू हैं? हर्ष के या विषाद के। मुझे दुःख है कि आपको यह घर पसन्द नहीं आया"। चन्द्रवदन कह रहा है।

कपिला चुप है बोलने को भी जी नहीं चाहता।

"आप को यहां आना अच्छा न लगा हो तो आप नीचे वापस जा सकती हैं। पर कुछ मुंह से बोलिए तो सही।"

कपिला बहुत भावुक हो उठी है। "क्षमा कीजिए। आप का अनादर करना मेरा उद्देश्य नहीं था। पर मैं सोचती हूं आज रात हम एक दूसरे को समझें—समझ कर जीवन यात्रा का आरम्भ करें।"

चन्द्रवदन लगातार उसके निकट खिसकता आ रहा है। और पति के रूप में पुरुष को जो अधिकार प्राप्त होते हैं उनका उपयोग करने में जैसे उस कड़वाहट को भी पी गया है जो आज दिन भर में उसके मन में पैदा हो गई थी। लेकिन कपिला ने जैसे 'नहीं' के अतिरिक्त कोई शब्द सीखा ही न हो। चन्द्रवदन सोच रहा है—यदि उसके लिए ब्रह्मचर्य आश्रम को अभी समाप्त नहीं होना था, तो खामखा ही यह तवालत उसने मोल क्यों ली है।

चन्द्रवदन का मन खीज उठा था। वह कह रहा था—"मैंने सुना तो था कि आप शादी के खिलाफ थीं। शायद इस शादी के यानी मेरे साथ होने के खिलाफ थीं। तो फिर यह यथा रस्म अदा करके आपने मेरे साथ मजाक किया है?"

"मैंने कहा तो है कि लम्बा जीवन पड़ा है। एक-दूसरे को समझ-बूझना चाहिए। कुछ और बातें कीजिए। पिताजी कहते थे कि आपके सम्बन्ध बहुत ऊंचे हैं। अध्यापकी में क्या रखा है। आप कोई और काम शुरू करें। पिता जी आपकी मदद करेंगे। मैं भी काम कर सकती हूं। हमें अपनी जिन्दगी बदलनी चाहिए। जीवन का भार कन्धे पर लादने से पहले कमर को मजबूत करना चाहिए।" कपिला का घुटा हुआ मन खुलता जा रहा था

"हूं," चन्द्रवदन बोला "समझ-बूझना चाहिए और अगर न समझ सकें तो?"

इतना कहकर चन्द्रवदन अपने ही हीनभाव को मूर्त देखकर अट्टहास कर उठा है, "अगर न समझ सकें तो दोनों के रास्ते अलग-अलग, यही न? पर ये बात आपको अपने पिता से विवाह के पूर्व कहनी चाहिए थी? उन्हें आपके लिए कोई कलाकार ढूंढना चाहिए था। खामखा मुझ फकीर को इज्जत बख्शी।"

कपिला के मन में जैसे पीड़ा ने डंक मारा हो। "यह आप क्या कह रहे हैं? मेरी बातों से आप को क्रोध चढ़ता है? मैं तो सोचती थी खुशी होगी। पिता जी को उलाहना आप क्यों देते हैं? उन्होंने वही किया जो हर बाप करता है। उन्होंने आपकी मर्जी के खिलाफ रिश्ता तै किया था? ऐसा था तो आप मना कर सकते थे, आप राजी न होते।"

"तो फिर क्या हुआ, मैंने सुना तो था कि आप विवाह नहीं करना चाहती थीं। और किसी से करना चाहती होंगी। लेकिन उन्होंने मुझे इस सौन्दर्य की आग में झुलसाने के लिए आपसे यह प्रपंच रच कर अच्छा नहीं किया।"

"यह आग नहीं है" कपिला ने कहा, "अगर आप चाहें तो यह आग भी अमृत बन सकती है? पर आदमी ने आज तक औरत को गुड़िया समझा है। आप इसके अपवाद कैसे हो सकते हैं?" इतना कह कर कपिला चुप हो गई। क्योंकि अगर वह बोलती जाती तो उस नए जीवन के श्री गणेश होने से पूर्व ही उसका अन्त हो सकता था।

प्रथम मिलन की उन विलक्षण घड़ियों के ऐसे अन्त की कल्पना तो कपिला ने कभी न की थी, मन से इस स्थिति को वह स्वीकार भले ही न कर सकी हो, पर अन्दर से उसे मालूम था कि वह जहर पीना ही पड़ेगा। इसीलिए वह उस जहर पर मिठाई मढ़ना चाहती थी। वह भी नहीं होगा? उसे साफ-साफ अपने मन के विपरीत वही करना होगा—जिसे वह नहीं करना चाहती नहीं कर सकती। उसका मन होता था कि खिड़की से कूद कर अपने प्राण दे दे। लेकिन वह प्राण भी नहीं दे सकती थी। उसके भद्र पिता, उसकी मां और उनकी आशा अभिलाषाएं। असमर्थता और बेबस कपिला फफक उठी।

चन्द्रवदन के लिए यह रुदन जैसे अन्तिम चुनौती थी। क्रोध में उसने पलंग पर बंधे पुष्पहारों को नोच डाला और सन्नाटे में कमरे से बाहर निकल गया।

रो-रोकर कपिला सो गई थी। शायद उसके उस रुदन में एक सन्तोष था। चन्द्रवदन बाहर चला गया था। शोभा और इन्द्रनाथ को याद करती हुई वह जैसे एक असीम सन्तोष की सांस लेकर सोई थी।

पर उसका यह सुख अधिक देर न ठहरा सका। उसकी नींद चन्द्रवदन ने भंग कर दी थी। उसकी आंखों में लाल डोरे थे और उसके स्पर्श में कहीं भी मानवीय कोमलता नहीं थी। वह जैसे एक प्रतिहिंसा के भाव से प्रेरित था।

इस बलात्कार के प्रतिरोध में कपिला ने उसके शरीर को खरोंचकर लहूलुहान कर दिया था। पर दुनिया का कोई कानून उसकी रक्षा न कर सका। उसकी मूक पुकार सुनकर किसी अन्तर्यामी कृष्ण के कलेजे में दरद पैदा न हुआ था। नारीत्व के सर्वोच्च अभिमान का मर्दन हो गया कानूनी अधिकारों के नाम पर!

कपिला उस घर में चार दिन भी अच्छी तरह नहीं ठहर सकी। इन चारों दिनों में भी वह निराहार रही थी। चौथे दिन जब कपिला ससुराल से अपने घर वापिस पहुंची थी तो उसका सूखा हुआ मुंह देखकर शोभा और मां बिलख-बिलख कर रोए थे। वैद्यराज चाचा जो लिवाकर ले गए थे, जैसे घायल सर्प की तरह फुफकार रहे थे और जब उसके पिता ने पुत्री

का मुह देखा था तो उनका कलेजा धडक गया था। और कविता वार्धक्य की ओर बढते पिता की देह से इस तरह चिपक गई थी कि जैसे उसम समा ही जाएगी। "म आपकी गोद छोडकर कही नही जाऊगी पिता जी, अब मुझे कही न भेजिए।"

पिता कुछ नही बोले थे। उनकी आख डबडबा आई थी।

अगले दिन दीनदयालु जी ने शोभा को बुला कर कहा था, "शुभे, बेटा। तुम्हे चाचा का एक काम करना होगा। अपनी बहन से कहना कि हमसे भूल हुई। मगर वह चाहे तो यह सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है।"

शोभा के मुह से पिता की इच्छा को जानकर कपिला कसी तडप उठी थी—"अब क्या हो सकता है बहन।" कपिला ने शोभा से कहा, "उस पापी ने मेरी कोख को कलकित कर दिया। अब म क्या लेकर किसी की तरफ देखूगी। मुझे उसने इस लायक भी नही छोडा। मे सम्बन्ध विच्छेद नही करूगी। पर मै उसे बिना चिगारी के जलाकर खाक कर दूगी।"

रिसते हुए नासूर की तरह उसकी जिन्दगी के दिन गुजरने लगे। लगभग महीने भर बाद मा ने आखो में आसू लेकर कहा था, "तू अपने पिता को अच्छी तरह जानती है, बेटी। तेरी हालत देखकर उनका दिल टूट गया है।"

"इससे अधिक और आप मुझसे क्या चाहती ह ? आप लोगो की खुशी के लिए मेने सब कुछ किया है। आप चाहती हैं तो मैं उफ भी नही करूगी।" कपिला ने कहा।

"नही, नही, ऐसा मे कैसे कह सकती हू। उन्होने कह तो दिया है। इस घर को छोडकर जाने की जरूरत नही ह। जब तक मन ठीक न हो। उम्र भर के लिए तुम्हारे खाने के लिए तो काफी है।"

"जिनके खाने के लिए कुछ न हो वह भी ऐसा नही करती, जैसा मैने अपने मा-बाप की खुशी के लिए किया। फिर खाने के लिए न भी हो तो म अपने हाथो-पैरो से काम कर सकती हू। मुझे उस घर में कही नही जाना है।"

"तू बात को बिगाड कर क्यो समझती है कपिला। मन की बात है, वरना आदमी आदमी में क्या फर्क होता है। शक्ल-सूरत, सुन्दरता कितने दिन ठहरती है ? अन्त में तो स्त्री का धर्म निबाहना ही शेष रह जाता है। अगर आदमी चाहे तो हर स्थिति में खुश रह सकता है।"

"आप कहना क्या चाहती ह ? अगर इतने दिनो में ही उकता गई हैं तो चिट्ठी लिख दीजिए। कोई लिवाने आ जाएगा।"

"नही, नहीं, ऐसे मन से म कभी न जाने दू गी। पर यह तो मे जरूर कहूगी कि इसमे उस गरीब लडके का क्या दोष है ? उसकी भी तो मान-मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा है। ऐसा ही करना था तो पहले ही राजी न होती। यह सब बाप की हालत पर रहम खाना नही है, यह तो उसे चिता में ढकेलना है।"

मा जब-तब अवसर देखती तो हँसी-हँसी में इसी तरह की बातें करती रहती। इसीलिए कि शायद दुनिया की सबसे कडवी और तीखी बातें हँसी-हँसी में ही कही जाती हैं। तग आकर कपिला ने शोभा से कहा था, "शोभा बहिन, मै नही चाहती थी कि उस दोजख में लौटकर जाऊ। पर मे अब जाना चाहती हू। अब अपनी फूटी किस्मत से जूझना मेरे लिए बाकी रह गया है। यह मै जान गई हू कि मा-बाप को खून से भी ज्यादा अपनी इज्जत प्यारी होती है, झूठी सामाजिक मर्यादा। वे मुझे बलि कर चुके है। तो फिर तू मेरा उपकार कर दे। एक चुटकी जहर दुकान से मेरे लिए चुराकर ला दे। तेरा बहुत बडा उपकार होगा शोभा।"

"अब नही कपिला। अब तो एक जान और तेरे सिर पर है, मरने का हक अब तेरा नही रहा।"

"तो अब जीवन पर्यन्त मेरी मिट्टी यू ही खराब होगी ?" कपिला फफक उठी थी।

कपिला और शोभा घटो एक साथ रोई थी। कपिला ने उस भार से मुक्त होने की कितनी चेष्टाए की थी, पर कुछ भी नही हुआ। कपिला ने कहा था, "अगर इस बार मै गई तो फिर कभी लौटकर नही आऊगी।"

आखिर एक दिन ऐसा आया कि कपिला को जाने का निश्चय करना पडा।

कपिला सुसराल तो चली गई। लेकिन दीनदयालु जी के मन की शान्ति कैसे लुप्त हो गई थी। कपिला की मा से वे प्राय नित्य एक ही बात दोहराते—"हमने सदैव यही सोचा कि मा-बाप के सस्कार सन्तान को ज्यो के त्यो मिल जाते है। इन्द्रनाथ के साथ कपिला सुख से रह सकेगी, पर ऐसा नही हो सका। अब कपिला का क्या होगा ?"

और उनकी बातें सुनते-सुनते मा की आखें डबडबा आती तो वे चुपचाप उठ जाती। दीनदयालु जी फिर भी कहते रहते, "अगर तुम्हारा भी ख्याल ऐसा ही था, तो हमें रोका क्यो नही ?"

"तुम कभी किसी के रोके रुके हो। जनता को ज्ञान देते देते तुम पति या बाप रह कहा गए हो। तुम तो हिसाबी बन गए हो। कैसी गऊ-सी लडकी थी, कोई नई रोशनी की लडकी होती तो किरकिरी कर देती।"

मा उन्हें झिडकती, कई-कई दिन निराहार रह जाती। फिर पति पर दया आती तो सारी बातें कपिला को लिख भेजती और कहती, "अब उनके जीवन में खुशी का सचार करना तुम्हारे ही हाथो में है।"

कपिला के आत्मसमर्पण का एक नया दौर शुरू हो जाता।

हृदय में उठती हुई कचोट को दबाकर वह चन्द्रवदन को पति के रूप मे देखना चाहती। उसके कामधन्धे के बारे में बातें करती। चन्द्रवदन स्कूल में अध्यापक था। कपिला ने कहा, "तुम्हारे सम्बन्ध अच्छे है, इन्श्योरैंस का काम करो ?"

चन्द्रवदन ने इश्योरैंस का काम शुरू किया, कामयाबी भी मिली। लेकिन मन का तार कभी नही मिला। कपिला जैसे किसी आत्मा की छायामात्र थी जो चन्द्रवदन के चारो ओर मण्डराकर रह जाती, उसके मन की प्यास पत्नी के सम्पूर्ण समर्पित प्रेम के लिए तडप कर रह जाती।

कपिला ने उसे सब अधिकार दिए। मन के विपरीत सन्तान का बोझ भी ढोया। लेकिन चन्द्रवदन कभी सभल ही नही सका। उसने शराब पीना शुरू किया। दिनो-दिन, रातोरात घर से बाहर गुजारने लगा।

सब तरह से दिल पर पत्थर रख कर कपिला सहती। लगभग छ वर्ष में कपिला केवल एक बार शोभा के विवाह के अवसर पर घर गई थी। उस समय तक तीन बच्चे उसकी गोद में आ गए थे। लेकिन तीनो की शक्ल चन्द्रवदन से मिलती-जुलती, जैसे एक आख में तीन त्रिशूल।

शोभा दुलहिन की तरह सजी बैठी थी। उसने इन तीनो बच्चो को छाती से लगाया था तो कपिल का मातृत्व जैसे पिघल उठा था। उसने कभी भी उन अभागो को छाती से नही लगाया था। उन्हें कलक कह कर धिक्कारती ही रही।

शादी के तीन वर्ष बाद शोभा भी इसी शहर में आ गई। अक्सर वह अपने पति के साथ कपिला के घर आती। तभी शायद कपिला के पैर घर से बाहर निकलते और वह बाहर की दुनिया देखती। खुश भी होती, लेकिन उसके अन्तर का जख्म और भी गहरा हो जाता। घरेलू जीवन में और भी कडवाहट बढ जाती, विषमता का एक नया दौर शुरू हो जाता। लेकिन फिर भी वह शोभा और उसके सुखी दाम्पत्य को देखना चाहती। उसके सहारे वह अपने कौमार्य काल की अभिलाषाओं को फिर से जीवित करती, स्वप्नों में खो जाती और फिर उदासीनता के घोर गह्वर में गिर जाती। उसके चेहरे पर बुढापा बोलने लगा था। आखें कोहरों में धस गई थी और हाथ-पैर सूख गए थे।

लेकिन चन्द्रवदन का प्रतिशोध जैसे अभी तक पूरा नही हुआ था। वह पिछले आठ-दस वर्षों मे न जाने कितने काम बदल चुका था। सभी के प्रति उसने लापरवाही बरती थी। हर एक नए काम के बीच में बेकारी का खासा लम्बा अरसा गुजरता था। घर की स्थिति दिनोदिन बिगडती जाती थी। और इस अभाव ने घरेलू विषमता में हमेशा ही जहर भरा था और ग्यारहवें वर्ष मे पहुचते-पहुचते चन्द्रवदन का स्वास्थ्य टूटने लगा था।

जब उसे पहली बार स्नायविक शिथिलता का आक्रमण हुआ था तो शोभा और उसका पति कपिला के पास ही थे। उस दिन पहली बार कपिला ने सोचा था। "क्या हुआ जो ऐसा हो गया। चन्द्रवदन का लोहे का शरीर जर्जर कैसे हो गया। उसकी दुधर्ष आखो में बेबसी और हीनता क्यो झलकती है।"

चन्द्रवदन की आखें जैसे आसुओं की तरह रहती है। उसकी दृष्टि पाषाण-प्रतिमा की तरह स्थिर हो गई थी, उसका आत्मविश्वास खो चुका था। वह केवल रोता था। शोभा को देखकर, शोभा के पति को देखकर, अपने बच्चो को देखकर, लेकिन कपिला को देखकर नही, कपिला को देखकर उसकी देह कापने लगती थी।

कपिला ने उसे बचाने की कोशिश की थी। लेकिन अब बचाने के लिए क्या बचा था। न रुपया-पैसा, न स्वास्थ्य। और उसी दिन उसने पहली बार सोचा था कि काश! वह अपनी शिक्षा-दीक्षा का उचित उपयोग करती। अगर उसने रिश्ता बनाया था, तो मर्यादा के लिए, केवल उस पुनीत सम्बन्ध के लिए जिसकी उसने अनेक कोमल कल्पनाए की थी, वह अपनी जीवन-नौका को भाग्य के सहारे न छोड देती।

आज उसे मा के वे शब्द याद आ रहे थे जो उन्होने चन्द्रवदन के लिए कहे थे। जो कसूर उसने किया था, उसके लिए इतनी बडी सजा। उसने चन्द्रवदन से सम्बन्ध-विच्छेद ही क्यो न कर लिया। उसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना चाहिए था।

बाहर जोरो से वर्षा हो रही है। और कपिला सोच रही है। मा बाप, प्रेमी, पति और मित्र। क्या वह किसी रिश्ते के प्रति भी वफादार रह पाई। उसका जीवन क्या हुआ। वह अपने बच्चो को देख रही है। आह! निरीह प्राणी। जैसे कीचड से केंचुआ उत्पन्न होता है, उसी तरह इस ससार में आए—और अब वे अनाथ भी होने जा रहे है? अब क्या होगा!

ग्यारह वर्ष तक निरन्तर घृणा, आक्रोश, चिन्ता और परिताप से व्याकुल रहने के उपरान्त आज पहली बार शोभा के मुह से उसने यह यथार्थ सुना था कि उसका जीवित रहना बेकार हुआ। सचमुच बेकार हुआ। हा-हा शोभा ठीक ही तो कहती थी मुझे मरना था तो पहले ही दिन क्यो न मर गई!

पश्चाताप की एक हल्की सी स्फुरणा से कपिला के दिल में टीस पैदा हो गई थी और वह जगल से लौटी हुई गाय के समान अपने बच्चो को सीने से लगा रही थी। स्वय जीने की इच्छा और दूसरो को जीवन-दान देने की उत्कट अभिलाषा उसके अन्तर को मथे डाल रही थी।

आह्लाद

उमाशकर वर्मा

आज तुमने दे दिया क्या धन मुझे जो
हर्ष से फूला हुआ मन
हो रहा उन्मत्त, बेसुध,
एक कोमल रागिनी है
सिक्त करती जा रही गद्‌गद हृदय को,
स्वर्ग का सम्राट मानो हो गया मै!

माग लो, जो कुछ तुम्हारी कामना हो,
विश्व का सम्पूर्ण वैभव
आज मेरी मुट्ठियो में
आ गया है,
आज मैं विभ्राट कितना हो गया हू,
एक मधु-उन्मादना में खो गया हू!

आज की तेलुगु कहानी

डी० मंजलता

आधुनिक हिन्दी और तेलुगु कहानी का जन्म करीब करीब एक ही समय हुआ। हिन्दी की सब प्रथम कहानी सन् १९०७ मई में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। यह थी 'बंग महिला' की 'दुलाई-वाली' कहानी। तेलुगु में सब प्रथम कहानी स्व० गुरजाड अप्पाराव ने सन् १९१० में लिखी थी। उस कहानी का नाम था—'सस्कर्त हृदयम्'। क्योंकि यह कहानी सर्व प्रथम तेलुगु में प्रकाशित होने के पहले अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी, इसलिए कतिपय विद्वानों को इसे तेलुगु की प्रथम कहानी मानने में आपत्ति है। अतः कुछ समालोचकों का कहना है कि स्व० गुरजाड अप्पाराव की दो अन्य कहानियां—'मी पेरेमिटि' और 'दिद्दु बाटु' तेलुगु की सब से पहली कहानियां थी, जिनमें आधुनिक कहानी के सभी तत्व मौजूद हैं। ये दोनों कहानियां व्यावहारिक भाषा में लिखी गई थीं और इनकी कथावस्तु भी सामाजिक थी।

गु० अप्पाराव के पूर्व तेलुगु में 'शुकसप्तति कथाएं', 'काशी-मजिली कथलु' प्रचलित थीं, फिर 'बृहत्कथा', 'हितोपदेश,' 'पंचतंत्र कथाएं', 'कथा सरित्सागर' आदि तेलुगु में अनूदित हुईं। उन कहानियों का उद्देश्य कथा द्वारा सन्देश देने का था। मनोरंजन भी उनका लक्ष्य था। इस पुरातन धारा को नया मार्ग दिखलाया अप्पाराव ने। इन्होंने स्वयं कई कहानियां लिखीं और दूसरों से लिखवाईं भी।

ऐसे लेखकों में श्री चिन्ता दीक्षितुलु का नाम सब प्रथम आता है। अप्पाराव के दिखाए मार्ग पर चलते हुए आपने कई कहानियां लिखी थीं जो 'साहिति', 'सखि' आदि पत्रों में छपी थीं। इनका प्रथम कहानी संग्रह 'एकादशी' सन १९२५ में प्रकाशित हुआ। आप की कहानियां १०० के करीब हैं। आपकी पहली कहानी का नाम है—'मा अब्बायि'। आपने बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए कहानियां लिखी हैं। इन्हें 'कथक चक्रवर्ती' की उपाधि प्राप्त हुई। आज की नवीन सभ्यता के ये कट्टर विरोधी हैं। यही कारण है कि आपकी रचनाओं में जगह जगह पर ऐसी बातें पढ़ने को मिलती हैं। इनकी भाषा के सम्बन्ध में भी कुछ मतभेद है। व्यावहारिक भाषा के साथ-साथ आपने ग्रान्थिक भाषा का भी प्रयोग अपनी कहानियों में किया है। इतना होते हुए भी अपनी कहानियों में जितनी विभिन्न शैलियां आपने अपनाईं, उससे तेलुगु कहानी साहित्य की वृद्धि में बड़ी सहायता मिली है।

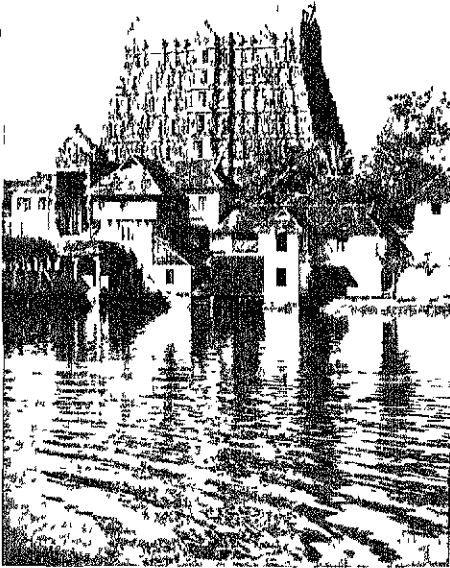
गुरजाड अप्पाराव की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले कहानी लेखकों में श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आप की प्रथम कहानी सन् १९१२ में प्रकाशित हुई थी। उसका नाम था—'कृति'। इसमें लेखक ने सृष्टि के आरम्भ से लेकर समाज का विकास क्रम दिखाया है। आप को अंग्रेजी, फ्रेंच, बंगला, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। आपकी कहानियां मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा कथोपकथन की दृष्टि से उच्च बन पड़ी हैं। आपकी कहानियों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो ऐसी कहानियां हैं, जो पुरानी कथा-कहानी के आधार पर लिखी गईं दूसरी वे हैं जो प्रचारात्मक हैं और तीसरी श्रेणी में वे भाव प्रधान कहानियां आती हैं, जिनमें मानव-मन की गहराइयों का विश्लेषण हुआ है। आपने १०० के करीब कहानियां लिखी हैं, जो 'कथा षट्कम्', 'कथा सप्तकम' आदि संग्रहों में संकलित की गई हैं। आपने कई बंगला ग्रंथों का भी अनुवाद तेलुगु में किया है।

यदि तेलुगु कहानी साहित्य में अपनी कथावस्तु, शैली और भाषा के माध्यम से किसी ने तूफान मचाया है तो वह हैं श्री गुडिपाटि वेंकट चलम। इनकी रचनाओं के कारण आन्ध्र में ऐसा गरमागरम वातावरण उत्पन्न हुआ कि कुछ व्यक्तियों ने इनकी रचनाओं का बहिष्कार करने का प्रचार किया, कुछों ने बहुत ऊंचा स्थान प्रदान किया। चलम् में उच्चकोटि की प्रतिभा है, परख है, अनुभूति एवं सरस अभि-व्यंजना शक्ति है और हर कोई इसे स्वीकार करता है, पर इनका एक मात्र लक्ष्य है स्त्रियों का उद्धार। और यही कारण है, इनकी सभी कहानियों का प्रमुख विषय स्त्री है। आपने सामाजिक कुरीतियों का खण्डन बड़ी तीखी भाषा में बड़े साहस के साथ किया है, भले ही अपने को शिष्ट कहलाने वाले कुछ व्यक्तियों ने इस पर नाक-भौंहें सिकोड़ी। इन्हें तेलुगु के 'उग्र' कहा जा सकता है।

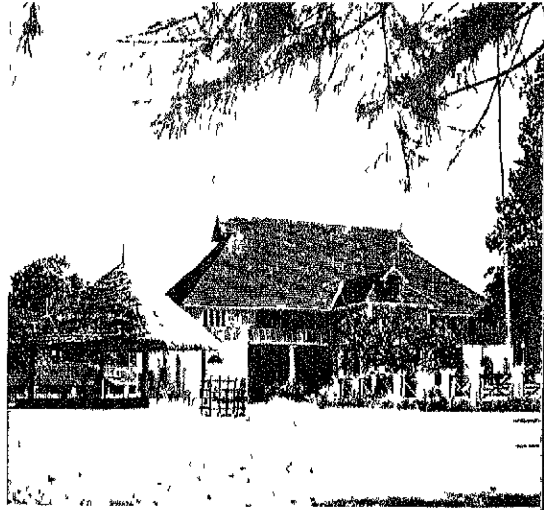
चलम कहानी लेखक ही नहीं, अच्छे कवि हैं, तत्ववेत्ता हैं और हैं रोमाटिक अनार्किस्ट। खेद है कि आजकल आप साहित्य सृजन से मुंह मोड़कर सन् १९५० से रमण महर्षि के आश्रम में रह रहे हैं। पता नहीं कब इनकी तपस्या पूरी होगी, अगर पूरी होगी तो अपनी लेखनी, सम्हालेंगे, इसमें सन्देह है। पर हाल ही में आपने 'गीतांजलि' का अनुवाद गद्य में किया है, जो विजयवाड़ा से सकल साहिति की तरफ से प्रकाशित हुआ है।

श्री मुनिमाणिक्यम् नरसिंहाराव ने तेलुगु में हास्य साहित्य लिखकर एक विशेष अभाव की पूर्ति की है। इनकी कहानियों में दो ही पात्र रहते हैं, पति और पत्नी। पति तो स्वयं लेखक ही हैं और पत्नी का नाम है कान्तम्। तेलुगु कहानी साहित्य में आप का पात्र, कान्तम् चिरस्मरणीय रहेगा। गृहस्थ जीवन में घटित होने वाली अनेक छोटी-छोटी घटनाएं इनकी कहानियों के लिए कथावस्तु बन जाती हैं। आपके कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

अपनी कथावस्तु में, अपने पात्रों में, वातावरण में शुद्ध तेलुगुपन का सहारा लेने वाले अन्य लेखक हैं श्रीपाद सुब्रह्मण्यम् शास्त्री। इनकी प्रथम कहानी सन् १९१५ में प्रकाशित हुई, जिसका नाम था—'इरवुरमोबकचोटिके पोवमु'। इनकी सभी कहानियों की कथावस्तु सामाजिक है। ७५ के करीब इनकी कहानियां हैं। श्री शास्त्री जी का महत्व इस बात में है



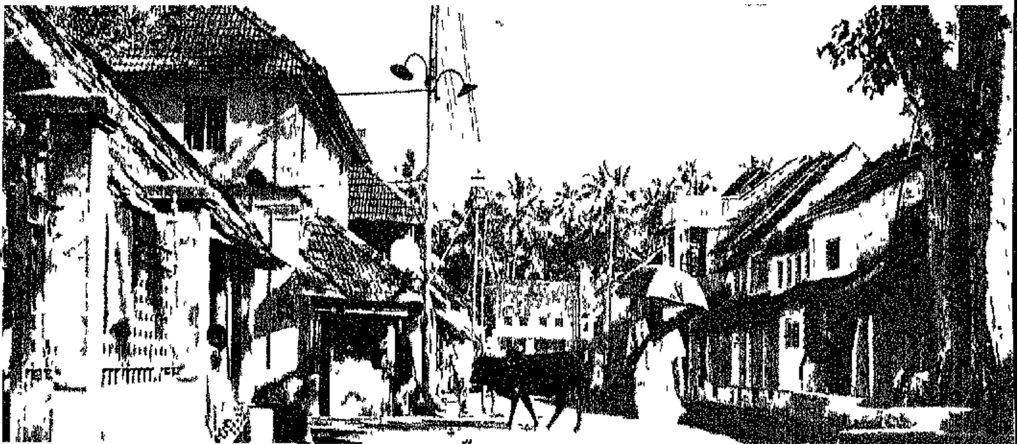
पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर, त्रिवेन्द्रम



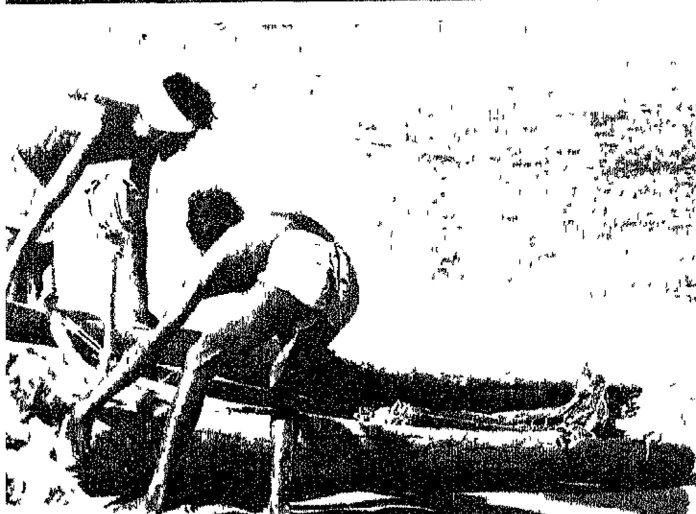
त्रिवेन्द्रम का संग्रहालय

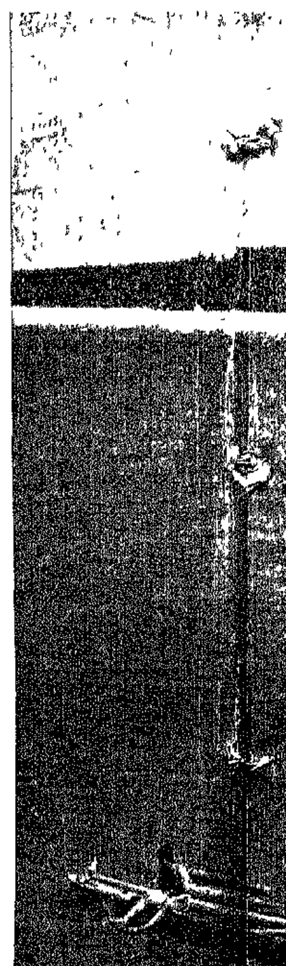
केरल की झांकी

त्रिवेन्द्रम की एक गली का दृश्य





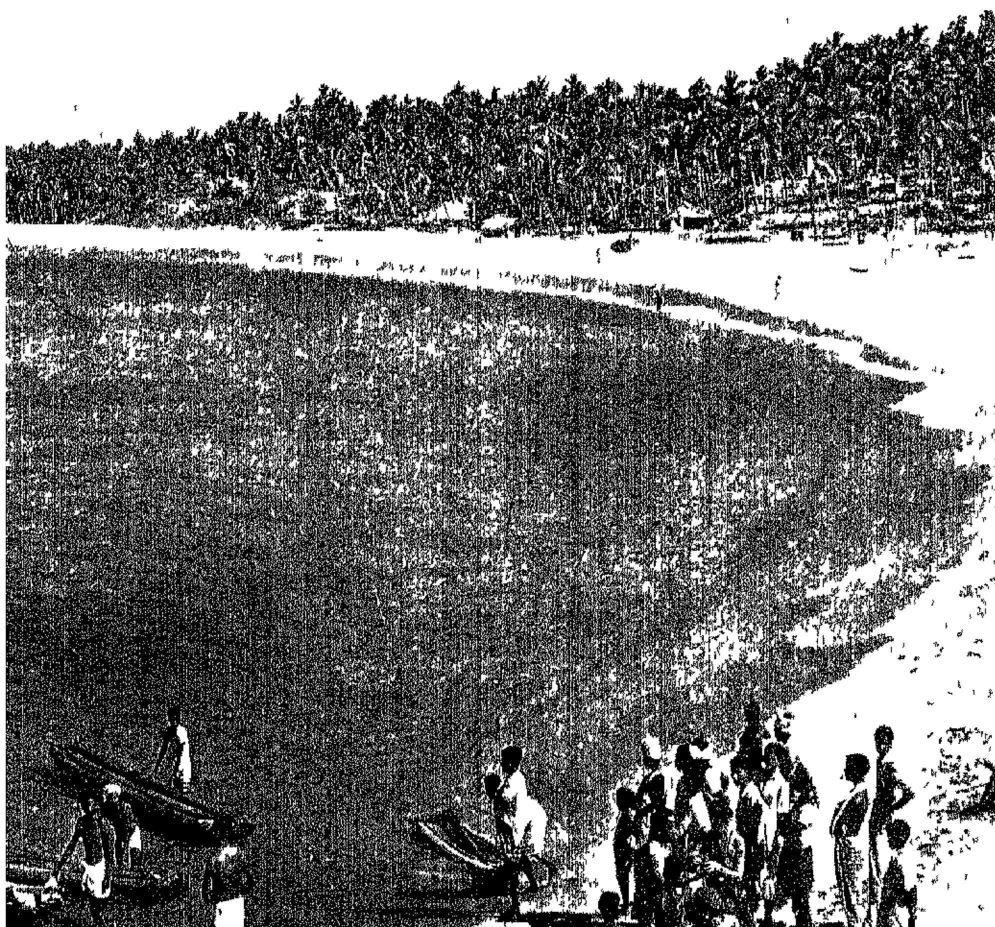




बाईं ओर ऊपर सुहाना समुद्र तट

बाईं ओर नीचे कोवलम के मछियार

कोवलम के प्रसिद्ध समुद्र-तट का मनोहारी दृश्य



केरल का एक कृषक





मछियारे की लड़की



मछियारे का लड़का

कि इन्हें तेलुगु भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी कहानियो पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव नहीं है। आपकी कहानियो में श्रोत्रिय ब्राह्मण परिवारो के जीवन के वास्तविक चित्रण देखने को मिलते हैं। 'गुलाबी अत्तर' आपकी अच्छी कहानियों में से एक है। वार्तालाप की शैली में आपने कुछ सुन्दर कहानिया लिखी हैं।

स्व० अडिवि बापिराजु कवि, कलाकार होने के साथ-साथ एक अच्छे कहानीकार भी थे। इनकी कहानियो की सब से बड़ी विशेषता यह है कि प्रकृति उनकी पार्श्वभूमि है और मानव हृदय के द्वन्द्व को चित्रित करने में इनकी कहानिया अद्वितीय है। इनके सभी पात्र शिल्पी होते हैं। आपकी कहानियो को दो भागो में बाटा जा सकता है, सामाजिक और ऐतिहासिक। इनकी कहानियो के पात्र भी दो प्रकार के हैं साधारण तथा असाधारण। आपकी कहानिया पढते समय पाठको को इस बात का पता बड़ी आसानी से लग जाता है क्योंकि उनमें चित्रकला के विविध रग हम देख सकते हैं, और सगीत का सा माधुर्य हमें प्राप्त हो जाता है। 'भागीरलोय', 'शैलबाला', 'हम्पी शिथिलालु' बापिराजु की कुछ अच्छी कहानिया हैं।

तेलुगु के कहानीकारो में श्री 'करुण कुमार' का खास स्थान है। आपकी कहानिया हमें गावो की तरफ ले जाती हैं और वहा के सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष और नवजागरण के चित्रण से परिचय कराती है। इन्होंने अधिक कहानिया तो नहीं लिखी, पर जितनी लिखी, उनमें 'बिल्लल मोलयाडु' मशहूर है और इसमें उपर्युक्त सभी गुण हमें देखने को मिलते हैं।

श्री कोडवटिगटि कुटुम्बराव तेलुगु के पुराने खेवे के कहानीकार हैं, पर वे नई पीढ़ी के लेखको की होड में पीछे नहीं रहे। अब भी वे बराबर लिखते जा रहे हैं और उनकी सभी कृतियो का स्तर बहुत ऊचा रहा है। तेलुगु में इतनी अधिक कहानिया श्री कुटम्बराव को छोड कर किसी दूसरे लेखक ने नहीं लिखी है। आपकी रचनाओ में मध्यमवर्गीय परिवारो का सजीव चित्रण रहता है। इनकी कहानियो की दूसरी विशेषता है, यथार्थवादी दृष्टिकोण। तेलुगु कहानी साहित्य में 'गल्पिका' का श्रीगणेश आप ही के द्वारा हुआ है। आपकी कहानियो में 'काजी कोन्द्र', 'नई जिन्दगी', 'बेकारी' आदि श्रेष्ठ रचनाए हैं।

तेलुगु के लब्ध प्रतिष्ठ कहानी लेखको में श्री गोपीचन्द का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। एक कविता को छोड आपने साहित्य के सभी अगो पर लेखनी चलाई है। आपके साथ ही तेलुगु कहानी में एक नया मार्ग खुला। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मानव मन के सूक्ष्म सत्यो की खोज हमें आपकी कहानियो में मिलती है। श्री गोपीचन्द की तुलना हिन्दी के कहानी लेखक श्रीयुत जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, अज्ञेय आदि के साथ की जा सकती है।

आपकी अपनी एक पृथक शैली है। आपकी कहानियो को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है --१ सामाजिक, २ प्रेम कहानिया, ३ राजनीतिक कहानिया। आपकी २०० से अधिक कहानिया प्रकाशित हो चुकी हैं और चार भागो में वे सकलित की गई हैं। आपकी कहानियो में 'सरे कानिव्वडि' श्रेष्ठ समझी जाती है।

विश्व प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त तेलुगु के कहानी लेखक श्री पालगुम्मि पद्मराजु ने बहुत अच्छी कहानिया लिखी हैं। मछियारो के जीवन को चित्रित करने में इन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। 'पद्मराजु कथलु', 'कूलि-जनम्' में आपकी कहानिया सकलित हैं। आजकल आप फिल्मी दुनिया में हैं, पता नहीं, फिल्मी सवाद लिखते-लिखते वे कब प्रोड्यूसर बन जाएगे। इधर आपने कुछ नहीं लिखा।

श्री बुच्चिबाबू की कहानियो से तेलुगु कहानी साहित्य का स्तर बहुत ही ऊचा उठा है। आपके पास अनुभूति की प्रबलता है, दृष्टि की अचूकता है और पाठक के मन पर प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता आदि सभी तत्व विद्यमान हैं। सब से प्रमुख बात तो यह है कि वे अपनी कला के प्रति बहुत ही सजग रहते है। 'ऐदु कथलु', 'आशाप्रिय', 'ग्राम नीड' 'देशम् नाकिच्चिन सन्देशम्', 'निरन्तरत्रयम', 'चैतन्य स्रवन्ती' आदि आपकी कहानी की पुस्तकें हैं। आजकल आप हैदराबाद के आकाशवाणी केन्द्र में कार्य कर रहे हैं।

मा० गोखले अच्छे चित्रकार भी हैं और कहानीकार भी। आप तलिका के जितने धनी हैं, लेखनी के उससे भी बहुत अधिक हैं। आपकी कहानियो में पद्दलित जातियो की विविध समस्याओ का चित्रण उन्हीं की भाषा में हुआ है। 'मृग जीवालु' और 'बल्लकट्टु पापय्या' में आपकी कहानिया सगृहीत हैं। 'मूक मानव' आपकी श्रेष्ठ कहानी है।

नई पीढ़ी के कहानी लेखको में श्री रावकोड विश्वनाथ शास्त्री, मु० वेंकट रमण, कोम्मूरि वेणु गोपालराव, बोम्मिरेड्डिपल्लि सूर्या राव, पुराण सुब्रह्मण्यम् शर्मा, बलिवाड कान्ताराव, पोलुकूचि साम्बशिवराव, हितश्री, वनश्री, दडमूडि महीधर, मजुश्री, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कहानी लेखिकाओ में मालती चन्दूर, सीतादेवी, श्रीदेवी, रमा देवी, एम० जानकीरानी आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

रा० विश्वनाथ शास्त्री की शैली बड़ी व्यग्यात्मक होती है। इनकी अभिव्यक्ति में भी नवीनता है। नई कहानी के सभी गुण हम इनकी कहानियो में पाते हैं। कथानक, चरित्र, वातावरण आदि के सृजन में आपको बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। भाषा तो इनकी चुभती हुई चलती है। 'जरीदार सफेद साड़ी' आपकी एक अच्छी कहानी है।

मु० वेंकट रमण ने मध्यमवर्गीय नव विवाहित दम्पतियो के आपसी सम्बन्धो को कथानक बनाकर बहुत ही सुन्दर कहानिया लिखी हैं। शिष्ट हास्य की मात्रा भी हम इनकी रचनाओ में देखते हैं। 'लहर', 'भूख और आनन्दराव' आपकी हिन्दी में अनूदित कहानिया है।

हितश्री की बहुत सुन्दर कहानिया तेलुगु में निकली हैं। इनकी कुछ कहानिया 'हितश्री कथलु' में सगृहीत की गई हैं। उनके अध्ययन से यह बात साफ लक्षित होती है कि आप में अच्छी कहानी लिखने के सभी गुण मौजूद हैं।

वनश्री ने कुछ अच्छी कहानिया लिखकर एकदम मौन व्रत धारण कर लिया है। आपकी कुछ कहानियो के अनुवाद 'धर्मयुग', 'कहानी', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि पत्रो में छप चुके हैं।

दडमूडि महीधर की जितनी कहानिया तेलुगु में निकली, उनमें निम्न मध्यवर्गीय परिवारो की करुण कथा का अकन ही हम देखते हैं। आपकी कहानियो में इतनी पकड होती है कि अन्त तक पढ़े बगैर नहीं रह सकते। 'महीधर कथलु' में आपकी कुछ कहानिया सकलित की गई हैं। 'मानवुड्डु मरणिस्तुन्नाडु' आपकी एक अच्छी कहानी है। आप

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

उर्दू व्यंग्यकार कन्हैयालाल कपूर

जयभगवान गोयल

कन्हैयालाल कपूर उर्दू के एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न व्यंग्यकार हैं जो राष्ट्र, समाज तथा मानव जाति के प्रति अपने कर्तव्य को पहचानते हुए जीवन को विविध एवं विभिन्न रूपों में चित्रित करते हैं। वर्तमान जीवन अनेक दूषित प्रवृत्तियों से भरा हुआ है, इसलिए वह उसके पट में से झांक कर उसकी मलिनता को सामने लाते हैं।

श्री कपूर ने भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं सामान्य व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं पर पर्याप्त संख्या में व्यंग्य-लेख लिखे हैं। आधुनिक भारतीय साहित्य की कुण्ठावादी तथा निराशावादी प्रवृत्तियों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक ही रहा है। वह समझते हैं कि साहित्यकार को मंगलकारी एवं आशावादी होना चाहिए जो मानवता को सुन्दर एवं शिव की ओर प्रेरित तथा प्रवृत्त कर सके।

अधिकतर उन्होंने व्यंग्य ही लिखे हैं, और उनके व्यंग्यों में इतना तीखापन है कि एक बार तो सुनने वाला तिलमिला उठता है। दैनिक जीवन में किसी को डींग हांकते देख कर वे बिच्छू की भांति डंक मारने में कभी नहीं चूकते। यह उनका स्वभाव बन चुका है, यद्यपि जीवन में उन्हें यह बड़ा महंगा पड़ा है। इन व्यंग्यों के साथ साथ उनके लेखों में विनोद तथा हास्य का पुट भी पर्याप्त रहता है।

श्री कपूर की अब तक 'नोको नश्तर', 'संगो खिश्त', 'शीशा व तेशा', 'बालो पर', 'संगो-खिश्त' और 'नरम गरम', ये ६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिन्हें भारत और पाकिस्तान में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इन पुस्तकों में मिथ्या कवि, प्रगतिवादी लेखक, प्रयोगवादी भावुक उनके विशेष शिकार बने हैं। साथ ही दम्भी समाज सुधारकों, स्वार्थी राजनैतिक नेताओं, ढोंगी धार्मिक स्तम्भों एवं स्वसम्मानित आलोचकों का भी उन्होंने खूब मजाक उड़ाया है। जहां उनके 'हिमाकत', 'मुझे मेरे बुजुर्गों से बचाओ', 'मिस चमेली' आदि लेखों में शुद्ध-शिष्ट हास्य के दर्शन होते हैं, वहां 'गालिब तरक्की पसन्द शोरा की मजलिस में', 'मिस्टर डालर', 'मैं रेडियो के लिए किस तरह लिखता हूं', 'अदबी मुशीर' आदि तीखे व्यंग्यों से पूर्ण हैं। 'हिन्दुस्तान देखिए' इनका सर्वश्रेष्ठ निबन्ध कहा जा सकता है, जिसमें अनमेल विवाह की सामाजिक बुराई से आरम्भ करके भारत की आर्थिक दिशा में उन्नति का दावा करने वालों पर करारी चोट की गई है। 'नरम गरम' में दो व्यंग्य रूपक भी हैं। 'चन्दार्थे' में चन्दा मांगने वालों का तथा 'कला विनाश उर्फ सत्यानाश' में भारतीय सिनेमा के अभिनेता, नायक नायिकाओं की प्रतिभा और योग्यता एवं नाटकों की कथा और गीतों के स्तर आदि का अच्छा भण्डाफोड़ किया है। उन्होंने कुछ व्यंग्य कविताएं भी लिखी हैं।

उर्दू साहित्य में श्री कपूर का एक शैलीकार के रूप में भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी अपनी निजी शैली है, ठीक उनके व्यक्तित्व के अनुरूप। वह शुद्ध प्रांजल, अलंकृत, सुगठित पर सरल एवं अकृत्रिम भाषा में लिखते हैं। उर्दू भाषा को समृद्ध बनाने में उनकी देन किसी से भी कम नहीं है। निःसन्देह वह भारत के एक प्रतिभाशाली विख्यात लेखक हैं। यहां कुछ उदाहरण देखिए —

(१) विवाह जब कालिज में पढ़ते थे तथा मित्रों और सम्बन्धियों के दाम्पत्य जीवन को निकट से देखते थे तो सोचा करते थे कि जीवन में बड़ी से बड़ी मूर्खता करेंगे पर विवाह नहीं करेंगे।

एक बुजुर्ग हाथ धोकर हमारे पीछे पड़ गए और उन्होंने हमें यह सुनाना आरम्भ किया कि विवाह न करके हम एक महापाप कर रहे हैं। जब कभी मिलते किसी दार्शनिक या सिर फिरे का हवाला देकर कहते, हकीम चनचान चीन ने लिखा है कि जो व्यक्ति विवाह नहीं करता वह देवता है या पागल। अमेरिका के एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि वह व्यक्ति जीवन भर कभी बाप नहीं कहला सकता जिसने विवाह नहीं किया है।

विवाह हो गया और घर का नक्शा बदला जाने लगा। आरम्भ में श्रीमती जी इस विनम्रता एवं शालीनता का व्यवहार करतीं कि आदर्श हिन्दू देवियों की याद ताजा हो गई। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मालूम हुआ कि श्रीमती जी वह नहीं हैं जो नजर आती हैं, तीन चार मास बाद अनुभव हुआ, कि

जमाने के अन्दाज बदल गये
नया दौर है साज बदल गए।

किसी रात जरा देर से घर लौटे, उन्होंने बच्चों की उपस्थिति में ही हमारा 'कोर्ट मार्शल' आरम्भ कर दिया। हमने सफाई देते हुए कहा, "देखिए आप ज्यादती कर रही हैं, मुझे एक जलसे की प्रधानता करनी थी।"

"जी हां, आपके बिना भला उन्हें और कोई प्रधान कहां मिलेगा। आप योग्यतम व्यक्ति जो ठहरे।"

"योग्य हूं या अयोग्य, जब कोई निमन्त्रित करे, जाना ही पड़ता है।"

"तो कौन कहता है न जाइए, आपको डर किसका है?"

"डर न होता तो वापिस क्यों आते।"

"बड़ा उपकार किया है, फिर चले जाइए। किसी और जलसे की प्रधानता की कुर्सी प्रतीक्षा कर रही होगी।"

"आप तो व्यर्थ नाराज होती हैं।"

"जी हां, यह मेरा पुराना स्वभाव है।"

"मैंने कब कहा, मेरा मतलब है आपकी तबीयत"

"जी हां, मेरी तबीयत बहुत बुरी है, भाग्य उससे भी बुरा है।"

"आप फिर भाग्य का रोना ले बैठीं। आखिर हो क्या गया?"

"कुछ भी नहीं हुआ, यूं ही मैं तो पागल हूं।"

"मैंने आपको पागल तो नहीं कहा।"

"नही कहा, तो अब कह लीजिए "

यह दृश्य देखकर जी में आता है कि घर छोड कर भाग जाए और एक बार फिर कूचा बिल्लीमारान के नुक्कड वाले मकान में जा बसें--जहा अपने सिया कोई न हो

(२) कि पहचानी हुई सूरत थी

एक समय था कि मित्रगण हमारे बारे मे कहा करते थे, गजब की स्मरण-शक्ति पाई है आपने। दूसरे तो दूसरे स्वय हमें अपनी स्मरण शक्ति से ईर्ष्या हुआ करती थी। और अब जब कि आयु पचपन से ऊपर हो चुकी है, यह हाल है कि कई बार दोपहर को सोचना पडता है कि सुबह का नाश्ता कर लिया है या अभी करना है। सिगरेट जो सुलगाने के लिए निकाला था मुह में रख लिया है या फिर सिगरेट केस में ही रख दिया है--आए दिन कोई परिचित-सी आकृति प्रश्न सूचक चिन्ह बन कर सामने खडी हो जाती है और पूछती है, 'मुझ पहचाना?' इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया जाए--

पूछते है वो कि गालिब कौन है
कोई बतला दो कि हम बतलाए क्या ?

एक बार फिर उनके मुह की ओर ध्यान से देख कर हम कहते है, "यदि हम गलती नही कर रहे है तो आप हमारे अध्यापक मौलवी रमजान अली है।"

"हा हा हा ! रमजान अली, खूब पहचाना आपने, अजी साहब मै तो आपका शिष्य कुरबान अली हू !"

"आह हा ! कुरबान अली, हा भई तुम वाकई कुरबान अली हो, परन्तु उस समय तुम्हारी दाढी नही हुआ करती थी, ठीक है न।"

"जनाब उस समय मेरी आयु ही क्या थी--उस समय तो मै बच्चा था।"

"तभी तो मै भी सोच रहा था कि है तो कुरबान अली, परन्तु इस कम्बख्त ने यह हुलिया क्या बना रखा है।"

वह चले जाते है और हम अपना-सा मुह लेकर रह जाते है और सोचते है वह समय निकट आ रहा है, जब प्रत्येक व्यक्ति पर हमें किसी अन्य व्यक्ति का धोखा हुआ करेगा। कितनी हास्यास्पद दशा होगी जब उदाहरणार्थ हम किसी अपरिचित स्त्री से कहेंगे, नमस्ते भाभी, कहिए कुशल तो है ? और वह क्रोधित नेत्रो से हमें घूरती हुई उत्तर देगी "शरम नही आती आपको, राह चलती स्त्रियो से मजाक करते है !" और यदि कही किसी चचल चपल किशोरी से पाला पड गया तो बचाव का केवल यही उपाय है कि भविष्य मे किसी को पहचानने का प्रयत्न ही न करे। प्रत्येक अतिथि से हाथ मिलाने के पश्चात कह दिया करें,--"हम से यह आशा मत कीजिए कि हम आपको पहचान लेंगे !"

(३) मिस चमेली ' साहित्यिक पत्रो में लेख लिखते रहे, परन्तु किसी को कानोकान पता न चला कि हम भी साहित्यकार है। किसी व्यक्ति ने अत्यधिक सहानुभूति दिखा कर हमारा परिचय किसी से कराया तो हमारा स्वागत इस प्रकार के शब्दो से किया गया--

"मिरजा अजबक ? कौन अजबक--कही वही तो नही जिनके पान बहुत प्रसिद्ध है। कभी चूना मण्डी से निकलने का अवसर मिला तो उनके पान भी खाएगे।"

एक दिन सौभाग्य से पता चला कि बम्बई का प्रसिद्ध फिल्मी रसाला 'फिल्मबाज' अपना 'एक्ट्रेस नम्बर' निकाल रहा है। हमने शीघ्र एक लेख लिखा, शीर्षक था मिस चमेली से एक भेट ! इस लेख का छपना था कि सारे नगर में तहलका मच गया। जिस देखो 'फिल्मबाज' का 'एक्ट्रेस नम्बर' हाथ मे लिए बधाई देने चला आ रहा है, "वाह ! अजबक वाह! खूब लेख लिखा, वल्लाह ! मजा आ गया ! "

लिखा ही क्या था हमने उसमे ? यही कि बूटा सा कद, छरेरा बदन, सुन्दर नक्श, मिस चमेली है, इन्हे काली बिल्लिया और भूरे रग के खरगोशो से विशेष प्रेम है। इनके दात मोतियो की भाति सफेद है, क्योकि वह एक 'तेज चाकू' से उन्हें हर समय खुरचती रहती है। मिस चमेली प्राय सुबह का खाना साय को और साय का खाना सुबह को खाती है। आलू टमाटर, गोभी, बैंगन के अतिरिक्त उन्हें कोई सब्जी पसन्द नही। उन्हें हवाई जहाज चलाना बिलकुल नही आता। उन्होने मुझे बताया कि वह उस व्यक्ति से विवाह करेंगी, जो बहुत अच्छा 'हवाबाज' हो। खोटे सिक्के, खाली बोतलें और मिट्टी के लोटे इकट्ठे करने का उन्हें बहुत शोक है इत्यादि इत्यादि।

उनका धन्यवाद करके घर पहुचा तो कुछ लडकिया आ उपस्थित हुई। वे बेचारी बहुत परेशान थी। उनमें से एक यह पूछने आई थी कि यदि मै एक काली बिल्ली मिस चमेली को भिजवा दू तो क्या वह उसे स्वीकार कर लेंगी ? दूसरी के पास खोटे सिक्को का ढेर था, वह उसे मिस चमेली को भेंट करना चाहती थी। तीसरी यह जानना चाहती थी कि मिस चमेली कौन से साबुन का प्रयोग करती है ? सबको उपयुक्त सलाह दी गई और वे सब प्रसन्न चित्त लौट गई।

अत मैने निर्णय किया है कि मै केवल फिल्मी लेख लिखा करूगा। पचास रुपये पारिश्रमिक, उसके अलावा, खाने को पान, और पीने को शरबत बनफशा मुफ्त मिल जाता है। उस पर पडौसी समझते है कि हम वाकई बडे साहित्यकार है !

(४) काठ का उल्लू सेठ साहब को रात के दो बजे 'इलहाम' हुआ कि उन्हें लोकसभा के लिए खडा होना चाहिए, और अगले दिन वह चुनाव के लिए खडे हो गए। अपना निशान उन्होने रखा 'काठ का उल्लू'।

उनके विज्ञापनो से नगर में भी तहलका मच गया। तहलका मचने का एक कारण यह था कि विज्ञापन की एक ओर सेठ साहब का चित्र था, दूसरी ओर काठ के उल्लू का और बुद्धिमान व्यक्ति भी यह निर्णय नही कर सकते कि सेठसाहब और काठ के उल्लू में क्या अन्तर है।

(५) हिन्दुस्तान देखिए मै अभी एक गाडी से उतरा हू और तीसरी श्रेणी के प्रतीक्षालय में एक बेंच पर बैठ कर दूसरी गाडी की प्रतीक्षा कर रहा हू। मै एक सम्बन्धी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए गया था, और मुझे दुख हो रहा है, इसलिए नही कि विवाह उसका था और कष्ट मुझे उठाना पडा, बल्कि इसलिए कि एक सत्रह वर्ष की सुन्दर किशोरी एक कुरूप बूढी आयु के आदमी के पल्ले बाधी गई है। मेरा सम्बन्धी बरेली में वकील है। भारत विभाजन के बाद एक परिवार ने इसके करीब में शरण ली। वह इस परिवार पर डोरे डालने लगा। अपने प्रभाव से उन्हें एक टूटा-फूटा मकान अलाट करा दिया। बडे लडके को स्थानीय बैंक में चपरासी लगवा दिया। पिछले वर्ष उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया और इसी वर्ष इस देवता-स्वरूप वकील ने इस शरणार्थी की किशोरी से, जो एफ० ए० पास है, दूसरा विवाह रचा लिया। मैने उस लडकी की एक झलक देखी थी, और अब बेंच पर बैठा सोच रहा हू कि उस लडकी की किस-किस हसरत का खून हुआ होगा। मेरे सामने प्रतीक्षालय की टीन की

दीवार पर बड़े बड़े विज्ञापन लगे हुए है। किसी पर कश्मीर का दृश्य है, किसी पर बम्बई का। इन विज्ञापनों के नीचे मोटे अक्षरों मे लिखा है--"सी इण्डिया (हिन्दुस्तान देखिए)"।

म यह पढ कर मन म कहता हू--"खूब, 'हिन्दुस्तान देखिए'!" तो सम्भवत अभी तक हम इंगलिस्तान या फ्रास देखने रहते ह 'हिन्दुस्तान देखिए'। लेकिन क्या न इससे पहले हिन्दुस्तान का रेल विभाग देखिए। वाह! क्या क्या नई गाडियो का आविष्कार किया है इस विभाग ने। 'जनता एक्सप्रेस'! यदि इसका नाम 'जहन्नुम एक्सप्रेस' रख देते तो क्या हानि थी?

मेरी बेंच के निकट एक अध नग्न नवयुवक फर्श पर लेटा हुआ है। *प्रत्येक पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह दहाड़ें मार कर रोता है और जफर की* प्रसिद्ध गजल का यह पद करुण स्वर म दुहराता है--

कोई मुझ प शमा जलाए क्यो
कोई मुझ प आसू बहाए क्यो
कोई मुझ प फूल चढाए क्यो
कि मे बेकसी का मजार हू!

या इलाही, इस व्यक्ति को क्या हुआ है--मै बेंच पर ऊघते साथी से पूछता हू।

मेरी दृष्टि फिर सामने वाले विज्ञापन पर जा पडी--"कश्मीर देखिए" आह आह! कश्मीर का नाम पढते ही मेरी यह दशा क्यो हो जाती है कि फिराक की यह पक्ति जिह्वा पर आ जाती है--

एक तेज छुरी है कि उतरी चली जाए!

"जहलम मे खड़ हुए हाउस बोट देखिए।" अवश्य देखिए, लेकिन डोंगी म बैठी हुई निधन काश्मीरी स्त्रियो को भी देखिए न। उफ चाद सी स्त्रिया और अत्यन्त मैला दुगन्धपूर्ण चोला पहने हुए, ऐसे मैले कि शायद जिन्हें शताब्दियो म एक बार धोया जाता है। कारण, साबुन खरीदने के लिए पैसे नही। इनमे से अधिकतर डोंगी के अन्धकार पूर्ण लकडी के कमरो में उत्पन्न होती है, वही यौवन को प्राप्त करती है और मेहनत-मजदूरी करते करते डोंगी मे ही मर जाती है। सुना है, इनमे मे कुछ एसी भी होती है, जिनका विवाह नहीं हो सकता क्योकि माता पिता वृद्ध है, यदि विवाह हो गया तो उन्हें मजदूरी करके *कौन खिलाएगा।*

विवाह! और मुझे उस वृद्ध आयु के सम्बन्धी पर रह-रहकर क्रोध आ रहा है, जिसने पचास वष की आयु में एक सत्रह वष की लडकी से दूसरा विवाह किया है और गव के साथ अपने मित्रो और सम्बन्धियो से कहता फिरता है, 'विधवा नही, साहिब किशोरी है, एकदम किशोरी!'

सोच रहा हू, यह कैसा देश है, जहा सत्रह वष की सुन्दर किशोरी की आकाक्षाओ को इस बेदर्दी से मसला जाता है। जहा किसी बाबा को परमात्मा के नाम पर पैसा न देने से आदमी पागल हो जाता है, जहा बख्शीश, बख्शीश की आवाजें सुन कर कान पक जाते है, और जहा प्रत्येक व्यक्ति विवशता का मजार है।

'हिन्दुस्तान देखिए'--बहुत देख लिया साहब, अब और क्या देखेंगे?

❶

उड़िया कविता

अमृतमय

गगाधर मेहेर

नव कुसुम की मधु गध
नव सरस कविता छद
वन विहग की मधु तान
नव सरल शिशु का गान
नव फुल्ल कानन कमल का मधु से तरल
मुसकान युत सुकुमार शिशु आनन सरल
आज अमृत-धार में
बहा देते मुझे स्वर्गिक ज्वार में।
यह धीर-शीतल वात
चिर ललित शशि का गात
क्षीर-धवल ज्योत्स्ना-जाल
चिर नम्र नीरद-माल
यह नव उषा की मृदु-मधुर मुसकान जो
नव पल्लवो पर तुहिन कण के गान जो
मुझे अमृत-धार में
मग्न कर देते मधुर ससार में।

ये जगमगाते तारको के दीप
सर-सर झरे जो बादलो के गीत
तम धो रहा जो आज नूतन सृष्टि
तम-बन्धनो से मुक्त अवनी-दृष्टि
गिरि-गर्भ से झर-झर-झरी जो निर्झरी
फिर कूद कर वन-गोदिका में जा गिरी
मुझे अमृत-धार मे
बहा लेती आज अमृत-ज्वार में।
मै *अमृत-सागर-बिन्दु*
नभ में उठा तज सिन्धु
गिर कर मिला मै पुन अमृत-धार में
मै सचरित हू, अमृत-पारावार में
यदि सूख जाऊ पथ में मै ताप से
फिर शिशिर बन उस पर झरूगा आप से
फिर अमृत की धार में
मै मिलूगा अमृत-पारावार में।

अनुवादक प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक

ये मर्द भी कैसे हैं ?

पी० वी० राजमन्नार

समय वर्तमान, स्थान सोम सुन्दरम जी का घर।

(भोजन करके सोम सुन्दरम जी पान खा रहे हैं। अवस्था पचास के लगभग। पुराने ढर के व्यक्ति हैं। बड़ी नाक और मोटी कायावाले। लम्बाई के कारण, चौड़ाई असुन्दर नहीं लगती। सुन्दरम्मा सोम सुन्दरम की दूसरी पत्नी है। पहली, एक लड़की को छोड़ चल बसी थी। सुन्दरम्मा की अवस्था चौबीस से अधिक नहीं है। दुबली बने रहना तो छोड़ दिया पर अभी मोटी नहीं हुई। सुन्दरी ही है। सजावट भी नए ढग की है। सुन्दरम्मा ग्रामोफोन के पास खड़ी है। उसके बाजू में कृष्णमूर्ति, रिकार्ड सम्भालता हुआ खड़ा है। सोम सुन्दरम का भाई है, दुबला-सा शरीर, अवस्था २५ वर्ष की है। खद्दर की धोती कुरता, सिर के बाल सवारे हुए और आखो पर चश्मा। सुन्दरम्मा अवसर पाकर कृष्णमूर्ति को ही देखती जाती है पर वह दीवार पर टगे चित्रो या छत की ओर ही ताक रहा है। निर्मला सोम सुन्दरम की प्रथम पत्नी की सन्तान है। दरवाजे के पास खड़ी होकर वह गीत सुन रही है।)

सुन्दरम्मा (निर्मला से) जाओ, जाकर पढ़ो। छोटे बच्चे गाने नहीं सुनते।

निर्मला सब पाठ पढ लिए है चाची।

सु झूठी कहीं की।

नि नहीं, सचमुच पढ लिए है।

सु (पति से) देखो जी !

सोम सुन्दरम चाची की बातो का इस तरह जवाब नहीं देना चाहिए। वह गाना सुन कर चली जाओ।

सु तुम्हारी बड़ी लाडली है न।

(निर्मला गाना खत्म होने से पहले ही चली जाती है।)

सो (गाना खत्म होने पर) उफ ! जब देखो, ये हिन्दी सिनेमा के गाने। कान पके जा रहे है।

सु अरे, चण्डीदास के गाने है, सहगल के गाए हुए।

सो मेरा सिर। न राग न ताल। शोर-गुल के सिवाय और इन में क्या है ? त्यागराज की एक कृति में जो सगीत है, वह इन सब को मिलाने पर भी कहा मिलेगा ?

सु वे दूसरे ढग के है। सिनेमा मे त्यागराज की कृतियो को कौन पसन्द करेगा ? इसीलिए तेलुगु सिनेमाओ में भी, बगाली और मराठी राग-ताल ही है। याद है न 'चन्द्रहास' का वह गीत, कनकागी का गाया हुआ। परसो जो हम देखने गए थे।

सो बस, बस आज के लिए इतना ही काफी है।

कृष्णमूर्ति इसी कनकागी से तो हमारे वेणु का विवाह हुआ है।

सो कोई भी हो, है तो वह वेश्या ही। कनकागी हो, चाहे रत्नागी, या चित्रागी हमें क्या ?

सु अब वेणु तो हमारे साथ नही रहेगा न ? कभी अपने हिस्से के बारे मे पूछा है उसने ?

सो नहीं तो। पर पूछे बिना क्यो कर रहेगा ? हाथ में पैसे कम हुए तो पार्टिशन केस शुरू होगा।

कृ वह भी तो वकील है।

सो तो क्या मैं डरता हू ?

सु देखो जी ! क्या वह शादी हमारे शास्त्रो के अनुसार निभ सकेगी ?

सो हमारा धर्म और शास्त्र तो मिट्टी में मिल गए हैं, आज तो जो चाहें वही हमारे लिए धर्म-शास्त्र बना रहे है। सभी तरह के लोग विधान सभाओ में भी पहुच गए हैं।

कृ ऐक्ट के अनुसार यह शादी निभ जाती है भाभी।

सो कितने भी ऐक्ट हो, अग्नि को साक्षी बना कर, कर्मकाड के अनुसार जो विवाह हो, उसे छोड़ अन्य किसी को मै विवाह मानने को तैयार नहीं हू। वेश्या के गले मे मगलसूत्र बाध देने मात्र से क्या वह सती बन जाएगी ? कुत्ते के गले में भी मगलसूत्र बाधते हैं सुगीवाले।

सु खूब रही उपमा ! वेणु आए तो कह दीजिए। (दरवाजे पर खटखटाहट) कृष्ण, देखो तो। कौन है ?

कृ (हसते हुए) वेणु ! (जाता है।) (फिर लौट आता है, हाथ मे एक कागज लिए) सुनिए। सुनिए।

सो क्या है ?

कृ तार है, वेणु के पास से। आज ऐक्सप्रेस से आ रहा है, सपत्नीक।

सो ऐं, सच !

सु सच ?

कृ जी हा, अब तक आ जाना चाहिए था। तार देरी से पहुचा है।

सु अब आप क्या करेगे ?

सो क्या करूगा ? इस घर मे तो ठहरने नहीं दूगा। उसका हिस्सा, उसके मुह पर पटक देने के लिए तैयार हू।

सु तो दरवाजे पर आए लोगो को निकाल देंगे आप ?

सो तुम्हें क्या ? सारा भार मुझ पर छोड़ दो। (दस्तक सुनाई देती है)

सु वे ही है। (आचल और सिर के बालो को ठीक कर लेती है।)

(कृष्णमूर्ति का प्रस्थान)

(नेपथ्य से 'हैलो कृष्ण ! यह मेरी वाइफ है।', 'नमस्ते', 'कुली ! सामान इस कमरे में रख दो।', 'सब का क्या हाल है ?' आदि सुनाई देता है। कृष्णमूर्ति के साथ वेणुगोपाल का पत्नी कनकागी के साथ प्रवेश। वेणु सोम सुन्दरम के बड़े भाई का पुत्र है। उम्र तीस वर्ष की। वेशभूषा,

आनबान, मन नग फैशन की। वकील है। गजब का उत्साह है। कनकांगी का जन्म वेश्याकुल में हुआ था। संगीत, सौन्दर्य और समझदारी के कारण वह प्रसिद्ध हो गई और सिनेमा कम्पनी वालों को आकर्षित कर सकी। अभिनेत्री बन गई। उम्र तीस की होने पर पच्चीस जैसी दिखाई पड़ती है।)

वेणु नमस्ते, बाबू जी। पहचान गई चाची? बहू से परिचय कराने लाया हूं।

कनक नमस्ते।

सु बैठिए।

कृ खूब भाभी। अच्छा आदर-सत्कार है।

वेणु क्यों बाबू जी, पिछले वर्ष की अपेक्षा आप काफी बूढ़े दीख रहे हैं। तबीयत तो ठीक है न?

सो मुझे क्या हुआ है? जुकाम तक तो कभी हुआ नहीं। तुम्हीं कुछ थके-मांदे दीख रहे हो?

वेणु वह तो सफर के कारण है। चाची! बहू को अन्दर ले जाकर स्नान-पान कराओ न।

सु इधर आओ बेटी! (भीतर की तरफ जाती है।)

कनक आई! (एक उछाल भरकर सुन्दरम्मा के साथ भीतर जाती है। कृष्ण-मूर्ति उस फुर्ती और चैतन्य का झलक देखता हुआ अत्यन्त प्रसन्न है।)

सो इस तरह अचानक कैसे आ गए?

वेणु (मुस्कराता हुआ) आश्चर्य हो रहा है। हां, ठीक तो है। कल तक इस बारे में हमें भी कोई खयाल न था। शाम को एकाएक खयाल आया कि रविवार की तो छुट्टी है। एक बार सब लोगों को देखने की इच्छा हुई। कनकांगी ने भी हामी भरी। (धीमे स्वर में) कनकांगी को आप के प्रति बहुत स्नेह और भक्ति है। उसके मन में अभिमान की गंध तक नहीं है।

सो तब फिर?

वेणु वापस जाने की बात? आज ही रात को, या तो कल सुबह।

सो अच्छा, कृष्णमूर्ति से बातें करते रहो। मैं जरा बाजार की तरफ हो आऊंगा।

(प्रस्थान)

वेणु कृष्ण! अपना हालचाल सुनाओ।

कृष्ण अरे वाह! मैं कुएं का मेंढक और तुम्हें हालचाल सुनाऊं?

वेणु मैं इस बात को मानने को तैयार नहीं। शहर की बातें अलग होती हैं और गांव की अलग। खैर, शादी कब करोगे?

कृष्ण गणपति के विवाह के दूसरे दिन।

वेणु मैं भी पैसे ही कहा करता था।

कृष्ण सब को मुफ्त में सुवर्ण थोड़े ही मिलता है।

वेणु मतलब? (सुन्दरम्मा और कनकांगी का प्रवेश)

कनक (कृष्ण की बातें सुनकर) मुझे ताना दे रहे हैं। मुझ में सुवर्ण भले ही न हो, पर नाम में तो सुवर्ण है न?

वेणु (हंसते हुए) अच्छा। कनकांगी हो इसलिए?

कृष्ण (कनक से) बेकार मेरी निन्दा कर रही हैं। आप का नाम तो सचमुच सार्थक है।

सु वेणु! काफी लाऊं?

वेणु जी अवश्य, काफी की बात सुनकर याद आ गई। मेरा पुराना दोस्त रामाराव है न, उसके साथ रमणम्मा के काफी-होटल में जाना है। लाजमी है जाना। कनक! जाऊं?

कनक जैसे सब कुछ मेरी आज्ञा पर ही चलता है। अपने लोगों पर यह प्रभाव डालने के लिए ही मुझ से पूछ रहे हैं न?

वेणु आल राइट। माफ कीजिए। नमस्कार। (जाता है।) (थोड़ी देर तक कोई कुछ भी नहीं बोलता। कृष्णमूर्ति कनक की आंखों में खोया जा रहा है। सुन्दरम्मा उसकी तरफ नाराजगी से देखती है।)

कनक अच्छा, ग्रामोफोन भी है। यहां संगीत से सब को रुचि है शायद।

कृष्ण अवश्य। आपके गीत तो और भी पसन्द हैं।

कनक मेरे गीत? सिनेमा के? वे सब हिन्दी के अनुकरण पर हैं, सेकेंड हैंड।

कृष्ण आप का कण्ठ? वह तो फर्स्ट हैंड है न?

कनक आप ही मिले मेरे कण्ठ की प्रशंसा करने वाले।

कृष्ण मैं अकेला क्या? कितने ही आपके प्रशंसक हैं—सैकड़ों, हजारों—

सु आप किस गांव की हैं?

कनक मैं किसी एक गांव की नहीं। जन्म हुआ एलूरु में, बड़ी हुई काकिनाड़ा में, नाटक और सिनेमा के पीछे रही बम्बई, कलकत्ता में।

कृष्ण हमारा तो जन्म, जीवन और मरण सब एक ही गांव में होता है।

कनक शान्तिमय प्राणी आप हैं।

कृष्ण नहीं, जीवन्मृत हैं।

सु सब जगह अकेली ही जाती थीं आप?

कनक यानी?

सु वेणु से विवाह के पूर्व?

कृष्ण यह भी कोई सवाल है भाभी?

कनक मैं जवाब दे रही हूं। सब लोगों में अकेली ही जाती थी।

सु हमारे लिए तो यह एक पहेली है।

कनक पर सोलह आने सच है।

कृष्ण वाह! क्या अनोखी बात है।

सु (रुष्ट होकर) मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है। आप लोग बात-चीत कर लीजिए। मैं घर के काम-काज देख लूंगी। (तेजी से चली जाती है।) (कृष्णमूर्ति कनक की तरफ देखता है, वह खिलखिला पड़ती है, कृष्ण भी हंसता है।)

कनक आप की भाभी नाराज हो गईं।

कृष्ण क्यों?

कनक आप ही जानें।

कृष्ण जाने भी दीजिए। एक गीत सुनाइए न?

कनक हाय-हाय! यहां गाऊं?

कृष्ण क्यों नहीं? यह कोई जंगल तो नहीं है?

कनक जंगल में तो खूब गा सकती हूं। सुना है कि हिंसक जन्तु गाने वाले पर आक्रमण नहीं करते।

कृष्ण तब तो आप का ख्याल है कि यह घर जंगल से भी गया बीता है और मैं शेर-चीते से भी अधिक क्रूर हूं।

कनक ऐसी दूर की कल्पना करेंगे तो मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगी। खैर, धीमी आवाज में गाऊंगी।

(हिन्दी गाना गाती है। कृष्ण तन्मय होकर सुन रहा है। वह मधुर और भीनी आवाज उसे मस्त बनाए दे रही है। थोड़ी ऊंची उठी गरदन, खिली आंखें, सुडौल नाक उसे मोह-सागर में डुबो रहे हैं। बीच-बीच में कहता है 'आ हा आ हा। कैसा भव्य है, स्वर्गीय है।' अचानक जाने या अनजाने, कनक का हाथ पकड लेता है।)

कनक (गाना बन्द करके) ठहरिए, यह क्या? अपने आप को भूल रहे हैं आप।

(हाथ खींच लेना चाहती है।)

कृष्ण (उन्मत्त सा) नहीं छोडूंगा। सुवर्ण मिल गया तो छोड दूं।

(वेणु का प्रवेश)

वेणु हैलो।

कृष्ण (कनक का हाथ छोड कर, वेणु की तरफ देखे बिना ही) बहुत धन्यवाद। बहुत सुन्दर था।

(प्रस्थान)

कनक (कृष्ण के जाते ही खिलखिला पडती है।) आइए, बहुत सी बातें सुनानी है। (वेणु न हंसता है, न उत्साह ही दिखलाता है।)

कनक आप के घर की बातें सुनाऊंगी आइए, बैठिए तो।

वेणु (बैठ कर) इतने में ही क्या खास बातें हो गई है?

कनक बहुत सी। पर बिना सवाल जवाब किए सुन लीजिए। पहली बात तो यह है आप की चाची, अपने देवर पर आसक्त है।

(वेणु चोंक पडता है।)

कनक सन्देह की गजाइश ही नहीं। वह उन्हें आंखों से देख नहीं रही हैं, खाए जा रही है। बेचारे की समझ में नहीं आता या समझकर भी निगलने या उगलने की सन्दिग्धावस्था में पड़े हुए हैं। दूसरी बात, मेरे यहा आने से लेकर, आपके कृष्ण की आंखें मेरी ही तरफ लगी रही है। युवक है तिसपर अविवाहित। संगीत और साहित्य से रुचि है। इस बात को आप की चाची भाप गई।—ये बातें हम स्त्रिया जल्दी समझ सकती है।

वेणु : फिर?

कनक तीनो बैठकर थोडी देर तक बाते करते रहे, इतने में आप की चाची रुष्ट हो, उठ कर चली गई। हम दोनों ही रह गए। वह गाना सुनाने का हठ करने लगे। गा रही थी कि अचानक हाथ पकड लिया, पगल की तरह। मै कभी यह सोच भी नहीं सकती थी। इतने में आप आ गए। द्रौपदी के मान सरक्षण के लिए वेणु गोपालमूर्ति के समान।

वेणु सिर चकरा रहा है। आज रात को ही यहा से चल देना चाहिए। (भीतर जाता है। कनक अकेली बैठी रहती है, गुनगुनाती हुई। निर्मला का धीरे-धीरे प्रवेश।)

कनक आओ बिटिया आओ। किनकी लडकी हो?

नि बाबू जी की।

कनक माता जी क्या कर रही है?

(निर्मला चुप रहती है।)

कनक मुझसे बोलने से मना किया है क्या?

नि (रोती हुई) मेरी मा नहीं है, वह मर गई है।

कनक (पिघल कर) मेरी प्यारी बेटी। मत रोओ, आओ। (नजदीक बैठा लेती है।)

नि चाची देखेंगी तो नाराज होगी।

कनक मै हू न, डरने की क्या बात है? पढ रही हो न?

नि हा, हा। मेरे स्कूल में गाना भी सिखाते हैं। मुझे गाना बहुत पसन्द है।

कनक मैं गाऊं?

नि (खुशी से सिर हिलाती है। कनक त्यागराज की कृति गाती रहती है। पीछे से सोम सुन्दरम जी का प्रवेश, गीत का मजा लूटते हुए खड़े ही रह जाते है।)

सोम . (गीत के खत्म होते ही) बहुत अच्छा। कैसा गीत है, आ हा हा। (निर्मला धीरे से खिसक जाती है।)

कनक (सादर उठ कर) बैठिए। ससुर जी को बैठो हिन्दुस्तानी संगीत की अपेक्षा प्राचीन संगीत ही ज्यादा पसन्द आता होगा।

सोम ठीक कहा तुमने। बेढंगा हिन्दुस्तानी संगीत।

कनक ' मुझे अपना प्राचीन संगीत ही पसन्द है। बचपन में सीखी थी, कृतिया, पद, जावलिया।

सोम जावली भी गा सकती हो?

कनक थोडा बहुत। गाऊं?

सोम धीमी आवाज में गाओ। धीमे गाने में ही उसका आनन्द है।

कनक ओहो, आप रसिक भी हैं। (गाती है।)

सोम आ हा हा। बचपन में पढे 'मनु चरित्र' की याद आ रही है। तुम्हारा रागयुक्त स्वर सुन पिघल पडे पाहन भी।

कनक (तालियाँ बजाते हुए) वाह, संगीत और साहित्य दोनों में आपकी समान पहुच है।

सोम (कुर्सी नजदीक खींचकर) हा, एक और हो जाए।

कनक (गाती रहती है, सोम सुन्दरम हाथ से ताल देते रहते हैं। जाने या अनजाने वह कनक की जाँघ पर ताल देने लगते है।)

कनक (एकदम गाना बन्द करके) आप हद से बढ़ जा रहे हैं।

सोम (घबरा कर उठते है, इतने में बाहर से पुकार सुनकर कहते हैं) आया। (जल्दी से चले जाते हैं। शीघ्र ही शंकर शास्त्री के साथ प्रवेश। शंकर शास्त्री सोम सुन्दरम के मित्रवर्ग के हैं। एक ही उम्र के। शास्त्री रसिक जीव है।)

शंकर कौन? कनक! कनक!

कनक शास्त्री जी!

सोम (वहाँ रहना अनुचित समझ कर) बैठो शास्त्री, अभी आता हू। (जाते है।)

शंकर ये मेरी ही आखें है। मैं जाग रहा हू या? कितने दिनों के बाद!

कनक (व्यग्य से) उतना प्रेम अब भी है दिल में?

शंकर (बैठकर) कह क्या? आकाश का फल बन गई हो। अच्छा, यहा कैसे आई? मुझे आश्चर्य हो रहा है।

कनक अभी आश्चर्य! मुझे क्या समझ रहे है आप? मैं सोम सुन्दरम जी की पुत्र-वधू हू।

शंकर (हसते हुए) फिर?

कनक आप को विश्वास नहीं हो रहा? भगवान की कसम मैं ,

शंकर . याने वेणु ने तुम से विवाह किया है!

कनक . हा।

शंकर कैसे? शास्त्र मानता है क्या?

कनक हां, कोई ऐबट है न ।

शंकर अरी, कैसा काम किया ? सोम सुन्दरम जी का परिवार प्राचीन रूढ़ियों के लिए प्रसिद्ध है। दिग्विजय कर ली तुम ने । बूढ़ा कैसे मान गया ?

कनक शादी के बाद मुझे मालूम हुआ। आज ही दर्शन पहली बार हुए हैं।

शंकर आग-बबूला हो गया होगा ।

कनक नहीं जब आए थे, तब धीरे से खिसक गए। लौटने पर, आकर मेरे पास बैठ गए, गाने के लिए कहा, संगीत की प्रशंसा की ।

शंकर हां, हां ।

कनक (हंसती हुई) संगीत में मस्त होकर शायद गलती से मेरी जांघ पर ताल देने लगे ।

शंकर (खिलखिलाकर हंसते हुए) रे बूढ़े सियार ।

कनक (हंसते हुए) बेचारे ! पर मेरे जरा सा डांटते ही घबरा गए ।

शंकर कैसी दुर्गति है। (दोनों मिलकर हंसते रहते हैं। वेणु का प्रवेश)

वेणु (कठोर स्वर से) कनक ! क्या है यह ? शास्त्री जी, नमस्कार !

शंकर बहुत दिन हो गए तुम्हें देखे वेणु ! सब सुन लिया है। कनक ने बता दिया है। भाग्यवान हो, कनक अच्छी लड़की है ।

(वेणु को मानो यह सब पसन्द नहीं आ रहा है।)

कनक शास्त्री जी मुझे बचपन से जानते हैं ।

वेणु अच्छा ।

सोम (प्रवेश करके) शंकर। चलो जरा बाजार तक हो आएं ।

शंकर कनक, विदा। अब कुछ दिन !

वेणु हम तो रात को ही जा रहे हैं।

शंकर अच्छा, तो चलता हूं। (दोनों का प्रस्थान)

कनक क्यों जी ? आप नाराज क्यों हैं ?

वेणु वाह रे तिरिया चरित। एक दिन भी नहीं हुआ। कृष्ण से सरस विलास ! शास्त्री से हँसी-मजाक ! चाची से झगड़ा !

कनक हां, हां, सब मेरी ही गलती है। पगले ब्रह्मचारी का, एक सुन्दर लड़की देख कर ऐसी मूर्खता दिखाना भी मेरा ही दोष है। देवर को मुझ पर आसक्त होते देख आप की चाची नाराज हुई तो वह भी मेरा ही दोष है ! ५० वर्ष के बूढ़े, धर्मशास्त्रों के पण्डित का, मेरे पास आकर, बहू-बेटी का ज्ञान छोड़, मेरी जांघ पर हाथ मारना भी मेरा ही दोष है ! कभी अपने पड़ोस के शास्त्री से यह बात कह कर हँसूं तो यह भी मेरी ही गलती है !

वेणु क्या कहा ? बाबूजी। स्वयं ! तुम्हारे प्रोत्साहन के बिना ! तुम्हीं उन्हें डुबोना चाहती होगी ।

कनक छि छि ।

वेणु बस, बस, पुरानी वासना कहां जाएगी ?

कनक (दीनता से) ऐसा मत कहिए, मुझे जान से मार डाल रहे हैं आप ।

वेणु दस मिनट तुम्हें अकेली छोड़ जाने में डर लगा रहा। तुम कुछ भी कर सकती हो। ठीक है। तुम जैसी स्त्री के साथ विवाह करना भी गलती है ।

कनक ऊंह !

वेणु अभी दोनों को बिगाड़ दिया ।

कनक मैंने बिगाड़ दिया ! वे पागल कुत्ता के समान मेरे पीछे पड़े और

वेणु छि खामोश ।

कनक (दुःख में) ऐसा क्यों कहते हैं आप ?

वेणु आज ही रात को हम लोग चले जाएंगे ।

कनक अच्छी बात है ।

(वेणु अन्दर जाता है। आँसू पोंछकर, तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करके कनक मंगलसूत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है।)

कनक छि ये मर्द भी कैसे हैं ?

(बाहर निकल जाती है।)

(पर्दा)

साहित्यकार

साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है—उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है ।

साहित्य

हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो—जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादह सोना मृत्यु का लक्षण है। साहित्य में हमारी आत्माओं को जगाने की, हमारी मानवता को सचेत करने की, हमारी रसिकता को तृप्त करने की शक्ति होनी चाहिए ।

—मुन्शी प्रेमचन्द

प्रतीक्षा

वेक्कम मुहम्मद बशीर

दूर किसी शहर में रहने वाले अपने संकटग्रस्त पुत्र को मा लिखती है--"मेरे बेटे, हमारी तुम्हें देखने की इच्छा है।"
उस पत्र में केवल इतने शब्द नही थे। बहुत कुछ लिखा था। न व्याकरण का खयाल था, न अक्षरो की सफाई थी। फिर भी उसमें मा के हृदय की पूरी वेदना स्पष्टरूप से अकित थी।

बेटा खूब जानता था कि मा रोज उसकी प्रतीक्षा करती होगी। मगर वह कर ही क्या सकता था? घर तक पहुचने के लिए उसके पास पैसा नही था। दिन बडी मुश्किल से कटते थे। रोज वह अपने मन को आश्वासन देता--"जैसे भी बनेगा कल मे जरूर ही घर के लिए रवाना हो जाऊगा। वहा पहुचकर मा के दर्शन करूगा।" पर इस आशा में दिन, हफ्ते, महीने और साल भी बीत जाएगे और वह जा न पाएगा।

मा रोज अपने बेटे की प्रतीक्षा करती।

अभी तक मे अपनी माता के विषय में कह रहा था, और आगे भी वही कहने जा रहा हू। न जाने, ऐसी कितनी ही बातें भारत की हर एक सन्तान को अपनी माता के विषय में कहने के लिए रहती होगी। मैं स्वातन्त्र्य-सग्राम की बात कहने जा रहा हू। उसके साथ मेरी माता का कोई सम्बन्ध नही है। कही कुछ सम्बन्ध था भी तो केवल इतना कि वह मेरी मा है। मुझ जैसे पुत्रो को जन्म देनी वाली माताए भारत मे सब कही मिलती है। जब उनकी सतानें भारत की आजादी के लिए लड कर जेल-खाने में बन्द हो गई थी, तब वे क्या करती थी? और जब भारत के अनगिनत युवक-युवतिया कारागारो में विदेशी सरकार के यम-किकरों के द्वारा बुरी तरह पीटे जाते थे, ठुकराए जाते थे, और उनकी हड्डी-पसलिया एक की जाती थी, तब उनकी माताए अपने घरो में बैठ कर क्या करती थी? भले ही इन सब बातो का पता मुझे न हुआ हो, परन्तु मै यह अच्छी तरह जानता हू कि मेरी माता ने तब क्या किया था।

माता जी का पत्र पढा तो अचानक वह पुरानी बात--नमक का सत्याग्रह करने के लिए वेक्कम से कोषिकोट्टु जाने की वह पुरानी कथा याद आ गई।

मैं याद कर रहा हू।

मा ने मुझे जन्म दिया। स्तन्य और अन्न देकर मुझे पाला-पोसा। जैसे तैसे मुझे बडा आदमी बनाया। मा कहती थी, रोजा-नमाज करके तुम्हें अपने गर्भ में पाया था। इस तरह का कोई न कोई दावा अपनी सन्तान के प्रति प्रत्येक माता करती होगी। मै अपने हृदय में उमडने वाले वेगो तथा आवेगो की बाढ को उडेल कर यहा नही रख सकता। जैसे मेरे हाथों में प्रतिबन्ध की हथकडिया है, वैसे ही आखों के आगे सिपाही, जेल, जेलर, और फासी है।

"भारत मन और शरीर को जलाने वाला ऊची दीवारो का एक कारागार है।" यह गाधी जी ने कहा था। कब कहा था, मालूम नही। गाधी जी के कारण मैने मार खाई थी, यह मुझे खूब याद है। मारने वाला एक ब्राह्मण था, नाम था वेंकिटेश्वर अय्यर। वह वैक्कम अग्रेजी हाई स्कूल का हैडमास्टर था। तडातड छ-सात बेंतें, बडे जोर से मारी थी। वक्कम सत्याग्रह का वह जमाना था।

गाधी जी के आने का कोलाहल!

घाट और झील पर लोगो की बडी भीड थी। दूसरे विद्यार्थियो के साथ मै भी भीड को चीर कर, आगे जा खडा हुआ। दूर से ही मैने नौका में गाधी जी को देखा। घाट पर नौका आ पहुची। हजारो, लाखो, करोडो कण्ठो से समुद्र-गर्जन-सी ध्वनी जैसे विदेशी शासन को ललकार कर ऊपर उठी--"महात्मा गाधी की ी ी ी जय!"

वह अर्ध-नग्न फकीर महात्मा अपने मुह का दो दातो का रिक्त-स्थान दिखा कर हसता हुआ, दोनो हाथ जोडे किनारे पर उतरा। भारी कोलाहल होने लगा। खुली हुई एक मोटर गाडी में गाधी जी धीरे से बैठ गए। उस बडी भारी भीड के बीच से गाडी आहिस्ता-आहिस्ता सत्याग्रह आश्रम की ओर चलने लगी। कई विद्यार्थी गाडी के पार्श्व में लटक कर खडे रहे। उनमे म भी था। उस कोलाहल में मैने चाहा--जरा उन विश्व समाराध्य महापुरुष का स्पर्श कर लू। मुझे कुछ ऐसा लगा कि यदि मैने उनका स्पर्श न किया तो मेरे प्राण ही चले जाएगे। पर कैसी भारी भीड थी। कही कोई देख लेता तो! मुझे भय और घबराहट हुई। पर मै अपने को भूल गया और गाधी जी का दाहिना कन्धा मैने धीरे से छू लिया।

किसी को इसका पता न लगा।

उस दिन सन्ध्या को घर जा कर माता जी से बडे गर्व के साथ मैने कहा--"मा जी, मैने आज गाधी जी को छू लिया।"

मैं याद कर रहा हू।

हेडमास्टर सत्याग्रह के विरोधी थे। उन्होने मना किया था कि कोई भी विद्यार्थी खद्दर न पहने और न आश्रम मे जाए।

मै उस समय खद्दर पहनता था, आश्रम में भी जाता था। एक दफा, जब मै क्लास में जा रहा था, हेडमास्टर ने मुझे बुलाया और क्रोध-भरी हसी के साथ कहा--"यह कैसा पाजी वेष बना रखा है!"

मै चुप रहा। फिर बोले--"रे, कभी तेरा बाप भी यह पहनता था?"

मैं बोला--"नही।"

फिर एक दफा, क्लास में मै दो-चार मिनट देर से पहुचा। हैडमास्टर अपने हाथ में बेंत लेकर बरामदे में खडे थे। मुझे बुला कर पूछा तो मैने कहा कि आश्रम में गया था।

"अरे, वहा तेरा कौन बैठा है?"

सडासड, उन्होने सीधे होकर मेरी हथेली पर छ-सात बेंतें जमा दीं।

"अब मत जाना, समझा, रे?" मेरी पीठ पर एक और बेंत जमी।

"अब तू गया तो डिसमिस कर दूंगा।"

परन्तु मै फिर आश्रम मे गया।

मैं याद कर रहा हूं।

उन दिनों मेरे पास खादी की एक धोती और एक कुर्ता था। खद्दर की सिर्फ एक धोती और एक कुर्ता उस जमाने मे विरोध का, क्रान्ति का चिन्ह था। विदेशी कपडो को न पहनने की मैने प्रतिज्ञा सी कर रखी थी।

उस समय कहीं मैं मर जाता तो कहता कि खादी के इसी कफन में मेरा मृत शरीर गाड दिया जाए।

मां पूछती—"अरे, कहां मिला तुझे यह टाट जैसा मोटा कपडा?"

मां का विश्वास था कि खद्दर के स्पर्श से शरीर में खुजली आ जाएगी।

मैं कहता—"खादी का यह कपडा हमारे देश मे नया है।"

यों तो गांधी जी, अली भाई, स्वराज, ब्रिटिश शासन इन सब विषयो की चर्चा सब कहीं हुआ करती थी। हमारे गांव के बूढों को इंग्लैंड या चीन के विषय में कोई शंका होती तो उसके समाधान के लिए उनका ध्यान केवल दो युवकों की तरफ जाता। उनमें से एक थे श्री के० आर० नारायण, जो बडे अध्यवसायी युवक थे और उस समय की प्राय सभी पत्र-पत्रिकाओं के रिपोर्टर थे। कोई मुझ से कुछ पूछ लेता तो मैं कभी अपनी अज्ञता प्रकट नहीं करता था। पर एक बार मैं निरुत्तर सा हो गया।

मां ने पूछा—"अरे, यह गांधी हमारी भूख मिटाएगा?"

बडा कठिन सवाल था। यह सारे भारत से सम्बन्ध रखता था। उसका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। फिर भी मैं बोला—"यदि भारत आजाद हुआ तो हमारी भूख मिटेगी।"

उन्नीस सौ इकतीस की बात है। जहां तक मुझे याद है, उन्हीं दिनों गांधी जी ने साबरमती आश्रम से उस समय के वाइसराय लार्ड इरविन को ग्यारह बातों वाला मशहूर खत भेजा था, और उसे रेनाल्ड नामक कोई एक अंग्रेज युवक ले गया था। परन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। खत में जैसा कहा था, उन्होंने सत्याग्रह का प्रारम्भ किया। नमक का नियम तोडने के लिए सत्तर अनुयायियों के साथ वे डाण्डी-यात्रा पर चल दिए। भारत के लाखों करोडों गरीब जिस नमक का उपयोग करते थे, उस पर भी ब्रिटिश सरकार ने कर लगाया हुआ था। जिस डाण्डी यात्रा ने भारत को कंपा दिया था, उससे पहले गांधी जी ने कहा था—"या तो मैं अपनी मांगों को पूर्ण कर आश्रम में लौट आऊंगा या मेरी मृत देह अरब समुद्र में बहती हुई मिलेगी।"

गांधी जी की मृत्यु होगी क्या? हिमाचल से लेकर कन्याकुमारी तक सारा भारत प्रक्षुब्ध हो उठा था। सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा कर निरस्त्र जनता का सामना किया। सेना, पुलिस, कारागार—इसी सब कुछ का तो नाम था शासन। गांधी जी और उनके साथियों को कैद किया गया।

दूसरे प्रदेशों की भांति केरल की स्थिति भी शान्त नहीं थी। कोषिकोटु के समुद्र तट पर सत्याग्रह करने वालों को पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा से बुरी तरह पीटा गया और बूटों से कुचला गया।

केलप्पन, मुहम्मद अब्दुर्रहमान आदि को गिरफ्तार किया गया। फिर क्या था। अवज्ञा-भंग, गिरफ्तारियां और पुलिस की लाठियां बराबर चलने लगीं। कोषिकोटु के समुद्र तट पर विद्यार्थियों के साथ पुलिस ने जो पाशविक व्यवहार किया, वही सब से बडी मर्मभेदक बात थी। नन्हें से बालक! केरल के भावी नागरिक! उन्हें केरल की पुलिस ने लाठी से मार-मार कर धराशायी कर दिया! सैकडों विद्यार्थी कोषिकोटु के समुद्र-तट पर क्षत-विक्षत पडे थे। किसी का सिर फूटा, किसी का हाथ टूटा। सब के सब खून में लथपथ थे। किसी नेता ने 'मातृभूमि' नामक पत्रिका में लिखा—

"बडे अफसोस की बात है कि कोषिकोटु के समुद्र-तट पर मातृ-भूमि के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए एकत्र हुए निरपराध, निरस्त्र, बाल विद्यार्थियों पर निष्ठुरता और निर्ममता के साथ लाठियां चला कर कुछ सिपाहियों ने उनके सिर फोडे और हाथ-पैर तोडे, और वे सिपाही थे केरल की ही सन्तान! जब इस नगर के धनी-मानी प्रतिष्ठित सज्जन कहलाने वाले व्यक्तियों को चुप्पी साध कर हाथ पर हाथ धरे बैठे देखता हूं तब मुझे ऐसा लगता है, केवल अपने स्वामियों का हुक्म सिर-आंखों पर लेने वाले इन अबोध सिपाहियों को क्यों दोषी ठहराने लगूं?"

उच्छृंखलता का वह जमाना था, पर, आम जनता विद्रोह करने के लिए तैयार हो चुकी थी।

केरल के स्वातन्त्र्य संग्राम-गीत की पहली पंक्ति का भाव है—साथियो आ, जाओ, स्वातन्त्र्य-संग्राम का समय आ गया है।

बस मैं भी चला! किसी से पूछा भी नहीं। पढाई छोड कर अपने बाल-सखा साथियों के साथ कोषिकोटु की ओर चला। साथियों ने अपने घर से कुछ गहने चुरा लिए थे। बैंकम में ही उन्हें बेच भी डाला था। उस दिन शाम को मेरी माता रसोईघर में खाना पका रही थी। माता को इसका कुछ भी पता नहीं था। मैंने उसके हाथ से एक गिलास पानी लेकर पिया और फिर उसको एक बार देख कर वहां से चला गया।

हमें भय था कि कोई हमारा पीछा करेगा। एरनाकुलम में हम उतरे और पैदल चल कर एडप्पल्ली स्टेशन पहुंचे। शाम का समय टल चुका था। गाडी बडी देर से आई थी। कुछ पुलिसवाले लालटेन लेकर वहां आए। भय के मारे हमारा शरीर कांप उठा। एक-एक आदमी को बुला कर उन्होंने पूछ-ताछ करनी शुरू की। हम ऐसे पडे रहे, जैसे गाढी निद्रा में सो रहे हों। एक सिपाही ने मेरे सीने पर अपनी लाठी टेककर मुझे बुलाया और लालटेन मेरे मुंह के बिलकुल पास लगा कर पूछा—"सूअर के बच्चे कहां जा रहा है?"

सोचा, क्या उत्तर दूं? कांग्रेस में शामिल होने के लिए कोषिकोटु जाने की बात कहते मुझे डर लगता था।

मैंने झूठ बोला—"शोरणूर जा रहा हूं।"

"क्यों?"

फिर और एक झूठ—"वहां मेरे मामा चाय की दुकान चलाते हैं।"

खुशकिस्मती से उसने फिर कुछ नहीं पूछा। वे किसी चोर की तलाश में निकले थे। हम शोरणूर का टिकट खरीद कर गाडी में बैठे और शोरणूर स्टेशन पर उतर कर पट्टाम्बी तक पैदल चले। वहां पर हम अलअमीन लाज में ठहरे। सबसे पहले मैंने अपने गांव के सैद मुहम्मद को, जो उस समय बेल्लारी जेल में कैदी थे, बिलकुल गुप्त रूप से एक खत भेजा। उसमें लिखा था—"मैं अपना सब कुछ मातृ-भूमि के चरणों पर अर्पित करने की दृढ प्रतिज्ञा करके आया हूं। गुलामी की श्रृंखला को तोड कर चूर-चूर कर डालने के लिए अपने प्राण भी देने का वादा करता हूं। जल्दी ही मैं गिरफ्तार हो जाऊंगा।"

उनका जवाब मिला और उसमें लिखा था—"अब मेरी जेल की अवधि पूरी होने में थोडे ही दिन बाकी हैं। जल्दी ही छूट जाऊंगा।

मुझ से मिल जाने के बाद ही कांग्रेस मे भर्ती होना।" वे ग्रल-ग्रमीन पत्रिका के उप-सम्पादक ग्रौर उस समय के एक नेता भी थे। ग्रोट्टप्पालम् में मैंसुमौलवी के साथ ग्रसि० सुपरिण्टेण्डेण्ट के द्वारा जो लोग बुरी तरह से पीटे गए थे, उनमे सैद मुहम्मद भी थे। उनकी प्रतीक्षा करने का सब्र मुझ में नही था। भारत कल ही ग्राजाद होगा। मै चाहता था कि ग्राजादी की उस लडाई में मेरा भी भाग हो। मेरे गाव से बहुत कम लोग इस लडाई में शामिल हुए थे। इस कमी को मै पूर्ण करना चाहता था। पर मेरे मित्र की कांग्रेस में भर्ती होने की इच्छा नही थी। उसने कई तरह से मुझे रोकने की चेष्टा की। इतने में उसका बाप उधर ग्राया। उसके बेटे को साथ लेकर घर से भाग निकलने का ग्रपराध मेरे माथे पर मढा गया ग्रौर ऐसा करने के लिए मुझे खरी-खोटी भी सुनाईं। मैने ग्रनुमान से ग्रनुभव किया कि मेरे गाव में यह खबर दावाग्नि की भाति फैल चुकी है। मुझे बडा दुख हुग्रा। वास्तव में बात उलटी ही हुई थी। पर मेरी इस बेकसूरी पर किसी को विश्वास नही ग्राया। उम्र मे मै ही बडा था। बडे सकट मे पडा। ठीक इसी समय मेरे पिता जी भी वहा ग्राए। उनसे भी मैने झूठ कहा—"मै कांग्रेस में शामिल नही हुग्रा। किसी नौकरी की खोज में हू। जल्दी ही मिल जाने की ग्राशा है।"

बस, छुटकारा मिल गया। पिता जी वापस चले गए। फिर मै सीधे कांग्रेस के दफ्तर की तरफ गया। वहा पहुचने पर मुझे निराश होना पडा। उन्होंने मुझे सी० ग्राई० डी० का समझ लिया। उनकी इस शका को मेरी 'डायरी' ने बल दिया था। मैंने उसमें ग्रग्रेजी, मलयालम, तमिल, हिन्दी, ग्ररबी—इन सभी भाषाग्रो में लिखा था। उसे बेंच पर रख कर मै पेशाब करने गया ग्रौर वापस ग्राने पर देखा कि कांग्रेस के मन्त्री महाशय मेरी वह 'डायरी' ले कर पढ रहे है। पर उनकी समझ मे ज्यादा कुछ नही ग्राया होगा। फिर भी उनको मुझ पर सन्देह उत्पन्न हो गया, "यह लडका डायरी क्यो लिखता है।" मैने सैद मुहम्मद का खत उनको दिखाया। फिर भी उनकी शका दूर न हुई। वह मेरे हाव-भाव ग्रौर रग-ढग का निरीक्षण कर रहे थे। दफ्तर में राजनैतिक नेताग्रो के चित्र टगे हुए थे। ग्रपने सिर पर फेल्ट हैट जरा टेढा कर रखे, बडे-बडे कालरो वाला सफेद कुर्ता पहने, ग्रधरो पर सघन मूछें ग्रौर चेहरे पर शोक-गम्भीर भाव ले कर रहने वाले एक व्यक्ति का चित्र देख कर मैने पूछा—"यह किसकी तस्वीर है?" ग्रग्रेजी वेष में रहने वाला नेता मुझे पसन्द न ग्राया। इसी वजह से मैने यह प्रश्न किया था। मन्त्री महाशय ने कहा—

"भगतसिह !"

यह नाम सुनते ही जैसे मेरे दिल में तहलका-सा मच गया। धीर-वीर-निर्भीकमना भगतसिह। उन दिनो वे ग्रभी सूली पर नही चढे थे। भगतसिह, राजगुरु, सुखदेव—पजाब के षडयन्त्र में भाग लेने वाली उस विप्लवकारी त्रिमूर्त्ति के बारे में पत्रो में खूब पढ चुका था। एसेम्बली हाल मे उनके बम गिराने का ग्रौर वाइसराय की गाडी को तोड डालने की चेष्टा करने का समाचार भी मुझे मालूम था। उस फोटो को मै ग्रपलक नेत्रो से देखता रह गया। मन्त्री महाशय ने कहा—"भगतसिह का चेहरा तुम्हारे चेहरे से मिलता जुलता है। तुम्हारी मूछें ग्रौर कुर्त के कालर भी ठीक वैसे ही लगते है। एक फेल्ट हैट पहन लो तो फिर समझो, तुम भगतसिह बन गए।"

मै कुछ नही बोला। भगतसिह से ग्रपने ग्राकार-प्रकार के मिलने जुलने की बात पर सोच रहा था। मन्त्री महाशय फिर बोले—"क्या वास्तव मे तुम मुसलमान हो?"

मैने कहा—"इसमे ग्रापको क्या सन्देह है?" फिर मैने उस समय तक की ग्रपनी जीवनी उनको बयान कर दी। ग्रन्त में उन्होने पूछा—"कल सबेरे समुद्र तट पर जाकर नमक बनाने को क्या तुम तैयार हो?"

"खुशी से तैयार हू।"

हम दूसरे दिन सबेरे उठे ग्रौर बर्तन, बिस्तर, झण्डा वगैरह लेकर जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि सीढियो पर धमाधम का स्वर सुनाई दिया। हम घबराकर देखने लगे। छः सात सिपाहियो के साथ एक इन्स्पेक्टर भीतर घुस ग्राया ग्रौर हम ग्यारह ग्रादमियो को कैद करके ले गया।

एक रविवार के सबेरे की यह घटना थी। हम में से किसी ने कुछ खाया भी नही था। रात भर जागने की थकावट भी मुझे काफी सता रही थी। हमारे पीछे लोगो की एक भीड भी ग्राई थी। थाने में पहुचते ही मेरी हिम्मत हवा हो गई। थाने की ग्रोर यह मेरी पहली यात्रा थी। बन्दूकें, बायनट ग्रौर हथकडिया ग्रपनी भयकरता दिखाते हुए दीवारो पर चमक रही थी। उन ग्रस्त्र-शस्त्रो की चमक ग्रौर सिपाहियो के मुख की क्रूरता देख कर मेरा कलेजा काप उठा। मुझे वहा नरक की सी प्रतीति हुई।

हमे बरामदे मे लाइन में खडा कर दिया गया। बिल्ली की ग्राखो वाला एक हृष्ट-पुष्ट इन्स्पेक्टर भीतर चला ग्राया। हमारे सामने एक दीर्घकाय पुलिस का स्टेबल इधर से उधर ग्रौर उधर से इधर टहल रहा था। ग्रपनी लाल ग्राखो से घूर घूर कर हम मे से एक-एक को वह देखता था। उसका नम्बर २७० था। लाइन में पहले नम्बर वाले कैप्टन की गर्दन पकड कर उसको भीतर धकेल दिया गया। भीतर से लातो, घूसो तथा दीन रोदन की ग्रावाजें ग्रा कर कान में पडी। मेरी छाती धक-धक होने लगी। लाइन में मेरा तीसरा नम्बर था। दस मिनिट के बाद दूसरे को भी ले जाया गया। उसका हृदयभेदी दीन रोदन सुन कर मै काप उठा। सोचा, माफी माग लू। पर जल्दी मेरा विचार बदल गया। क्यो माफी माग लू? मैने कोई कसूर थोडे ही किया है। ग्राजादी! उसके लिए कितने ही युवक-युवतिया ग्रपने प्राण चढा चुके है। मैने भगतसिह ग्रौर उनके साथियो का स्मरण किया। हा, मर जाऊगा, यही मेरा कर्त्तव्य है।

हमारे ग्रागे-ग्रागे चलने वाले २७० नम्बर के कान्स्टेबल ने हर एक से उसके गाव का पता पूछा। एक ने कहा, कण्णूर, दूसरे ने तलश्शेरी ग्रौर तीसरे ने पोन्नानी।

उसने मुझ से पूछा—"तुम्हारा?"

मैने कहा—"वैक्कम।"

"वैक्कम!" उसने चकित होकर मेरी ग्रोर देखा।

"तुम्हारा नाम?"

मैने ग्रपना नाम बता दिया। गर्व के साथ उसने मुझ से पूछा—"क्या तिरुवाकुर में स्वराज मिल गया?"

मैने कहा—"नही, गाधी जी ने कहा है, रियासतो में सग्राम की जरूरत नहीं है।"

"हू ।" उसका स्वर भयंकर था, और वह बड़े रौद्र भाव से मेरी ओर बढ़ा। पटापट दो हाथ मेरे दोनो गालो पर आकर जमे। फिर मेरी गर्दन पकड़ कर उसने नीचे झुका दी और लगा मेरी पीठ पर घूसे चलाने। तांबे के बर्तन पर आघात पड़ने का सा स्वर निकला था। सत्रह या सत्ताइस, पता नही, कितने घूसे लगे। पहले गिना, फिर गिनना छोड़ दिया। क्यो गिनू ?

उसके बाद दो सिपाही मुझे शिथिल दशा में अन्दर ले गए। मेरी हालत देख कर इन्स्पेक्टर ने पूछा--

"ऊ म ?"

सिपाही ने कहा--नम्बियार की ड्यूटी थी।"

"ऊ म ।" इन्स्पेक्टर के इस स्वर में लापरवाही का भाव था।

दूसरे सिपाही ने मेरा कुर्ता उतार कर मेरी ऊंचाई और मोटाई नाप कर बता दी।

आखिर हम ग्यारह आदमियो को कारागार में बन्द कर दिया गया।

वह एक छोटा सा कमरा था, जिसमें सिमेंट का फर्श था। उस के एक कोने में पेशाब का एक भरा हुआ घड़ा अपनी बदबू से हमारी नाक के पर्दे फाड़ रहा था। उस दिन हमें खाना भी नहीं मिला। रात में भयंकर ठण्ड थी। सोने को चटाई तक नही थी। दूसरे दिन सवेरे उठे तो सबके मुह सूजे हुए थे। हमारे लिए चलना-फिरना बिलकुल दूभर हो गया था। हथकड़िया पहनाकर, बाजार के रास्ते से बन्दूको तथा तलवारो से सुसज्जित सिपाही हम को अदालत में ले गए।

चौदह दिन की हवालात के लिए हम कोषिकोटु सब-जेल में भेजे गए। वहा हमारे साथियो ने कहा--२७० नम्बर के कांस्टेबल ने पहले मुक्को से मारा, फिर कुहनी से। किसी स्वयं-सेवक ने उनकी पीठ पर तेल डालकर मला तो देखा, जगह-जगह पर एक-एक रुपये के गोलाकार दाग-से पड़े हुए हैं।

मुझे तो नौ महीने जेल की कड़ी सजा मिली थी और मुझ को कण्णूर जेलखाने में लेजाया गया। वहा करीब छ सौ राजनैतिक कैदी थे, जिनमें श्री प्रकाश और बाटलीवाला वगैरह भी थे।

जेल का खाना बिलकुल खराब था। कजी (मांड) में घुन भरे पड़े थे, मानो कसे हुए गोले के टुकड़े तैर रहे हो। उन्हें निकाल हम कंजी पीते थे। बाहर की खबरें नए आने वाले कैदियो से ही हमें मिलती थी। उन्ही दिनो भगतसिह आदि को सूली पर चढ़ाने की खबर पाकर हमने तीन दिन अनशनव्रत किया।

वहा भारत के भिन्न-भिन्न कोने से कैदी लाकर रखे गए थे। अराजकतावादी, समाजवादी, साम्यवादी--सभी प्रकार के 'वादी' वहा पर जमा थे। सबका ध्येय एक था--भारत की आजादी। कुछ महीनो बाद जब गाधी इरविन समझौते के फलस्वरूप हम सब रिहा हो गए, तब मैं निरुपाय सा हो गया कि कहा जाऊ। मेरे समान सकट में पड़े हुए स्वय-सेवक कई और भी थे। उनमें अधिकाश लोगो को रेल का टिकट भी नही मिला था।

मेरी दो इच्छाए थी। उनमें दूसरी इच्छा एक खादी का दुपट्टा खरीदने की थी। श्री अच्युतन की उदारता से मेरी वह कामना पूरी हुई। मेरी पहली कामना २७० नम्बर के कांस्टेबल को मार डालने की थी। परन्तु मेरे पास कोई हथियार नही था। चाहा, कोई पिस्तोल हाथ में आ जाए। मैंने उसको पालयनु ट्रैफिक ड्यूटी में खड़ा होते देखा। छ फीट लम्बे कद का एक राक्षस। मेरे घूसे उसका कुछ नही कर सकते थे। मैं सोचता था उसकी छाती में छुरी भोंक देनी चाहिए। अलअमीनलाज से एक छुरी मैंने चुरा ली। उसे लेकर मैं जा रहा था कि रास्ते में श्री अच्युतन से भेंट हुई। वह चकित होकर बोले--"क्या तुम नहीं गए ?"

मैंने कहा--"नही।"

उन्होने पूछा--"क्या तुम्हे अपने मा-बाप से नही मिलना है ?"

मैंने कहा--"उससे पहले मुझे एक काम पूरा करना है।" फिर मैंने सारी बातें उनको बता दी। मानांचिरा तालाब के किनारे पर ले जाकर उन्होंने बड़े शान्त भाव से पूछा--"क्या तुम सत्याग्रही हो ?" फिर उन्होने मुझे गांधी जी के उखड़े हुए दो दातो की कथा कह सुनाई।

"अगर हम हिंसा करने पर तुल जाए, तो फिर एक उसी २७० नम्बर के कांस्टेबल की बात क्यो लें ? तब तो सभी पुलिस के आदमी उसी प्रकार हत्या के पात्र हैं। मगर पुलिस शासन का एक अनिवार्य अंग है। ये बेचारे पुलिसवाले सरकार के हाथ की निरी कठपुतलियां मात्र हैं। फिर उनकी निन्दा क्यो करते हो ? सब्र करो। पहले जाकर अपने मा-बाप से मिलो।"

श्री अच्युतन ने मुझे गाड़ी में बैठा कर घर भेज दिया। एरनाकुलम में आकर एक महीना मुसलमान होस्टल में ठहरा। घर जाते लजाता था। निराशा, उदासी और सकोच भी था। अन्त में एक रात्रि को मैं वैक्कम पहुचा। वहा से तलयोलपरम्पु की ओर चला। रात के तीन बजे थे। घर के आगन में मैं ज्यो ही पहुचा, मेरी मा ने पूछा--"अरे कौन है ?"

मैं बरामदे में जाकर खड़ा हुआ। मा ने दीपक जलाया और मुझ से पूछा, जैसे कुछ भी नही हुआ था--"कुछ खाया, बेटे ?"

मैं कुछ नही बोला। मेरी छाती जैसे फटने लगी थी। सारी दुनिया मोटी नींद में सो रही थी। अकेली मेरी माता की आखें खुली थी। पानी लाकर मा ने मुझ से हाथ-पैर धोने को कहा। फिर खाना परोसकर दिया, और कुछ नही पूछा।

मा को कैसे पता लगा कि मैं आज आ जाऊंगा ?

मा बोली--"मैं तो हर रात्रि को खाना बनाकर तुम्हारी प्रतीक्षा करती हू।"

जैसे यह एक साधारण-सी बात हो! इस लम्बी अवधि के इन दिनो में मेरी प्रतीक्षा करके हर एक रात मेरी मा अपनी आखो में काट देती थी! ओह, कैसी कड़ी तपस्या थी!

फिर कई वर्ष गुजरे, और जीवन में कई घटनाए भी घटी।

मा आज भी अपने बेटे की प्रतीक्षा करती है--"मेरे बेटे, हमारी तुम्हें देखने की इच्छा है!"

अनुवादक--के० जे० जौन

भारत की तुलनात्मक आर्थिक स्थिति

कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

भारतवर्ष की दूसरी योजना के दो वर्ष शेष रहे हैं और तीसरी योजना पर चर्चा चल रही है। इस सम्बन्ध में योजना आयोग का सामान्यत प्रारंभिक विचार यह पाया जाता है कि १०० अरब रुपए उसका लक्ष्य नियत किया जाए। कुछ अर्थशास्त्री इस लक्ष्य को अत्यन्त महत्वाकांक्षापूर्ण और अव्यावहारिक बता रहे हैं, परन्तु निम्नलिखित विवेचन से मालूम होगा कि अभी हम कितने पिछड़े हुए हैं और हमारी आवश्यकताएं कितनी अधिक हैं। मध्यपूर्व के (जो भारत की दृष्टि से मध्य पश्चिम है) देश भी अनेक क्षेत्रों में भारत से बहुत आगे हैं। भारत की अवगति दीर्घकालीन ब्रिटिश शासन का ही अभिशाप है। हमें अभी कितनी उन्नति करनी है, ताकि मध्यपूर्व के अर्ध-विकसित राष्ट्रों की तुलना में खड़े हो सकें, यह जानने के लिए निम्नलिखित तुलनात्मक अंक बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय—१९४९

	राष्ट्रीय आय	करोड़ डालर में	जनसंख्या (हजार में)	प्रति व्यक्ति डालरों में
भारत (लाख रुपये)	९,३२,०००	९,२५७ २	३,४६,०००	५७
मिस्र (लाख पौं०)	६५,०००	१,९७ ९	२४,०४५	१००
ईरान (करोड़ रियाल)	४२	१,४५०	१७,०७३	८५
इजराइल (लाख इज० पौं०)	२८	३९ ५	१,०१६	३८९

इन चारों देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय भारत में सब से कम है, इजराइल से तो करीब सातवां हिस्सा। हमें कितना आगे बढ़ना है। सन् १९५७ में सेनफ्रांसिसको में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी के समय जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसमें स्थिति में कुछ सुधार की सूचना मिलती है। पर अन्य देशों ने भी ज्यादा प्रगति की है और भारत के साथ उनका अन्तर बढ़ गया है। देखिए —

	प्रति व्यक्ति आय
भारत	७२ डालर
ईरान	१०० ,,
ईराक	१९५ ,,
इजराइल	५४० ,,

लेबनान व तुर्की ने तो इस अवधि में अपनी प्रति व्यक्ति आय १२५-१२५ डालर से २६९ व २७६ डालर क्रमश अर्थात् दुगनी से भी अधिक करली है। मध्यपूर्व के तेल प्रदेशों की आय तेल के कारण बहुत बढ़ी है, इसमें सन्देह नहीं, इसलिए राष्ट्रीय आय का प्रतिशत विनियोजन भी बहुत बढ़ गया है। देखिए —

	१९५३	१९५६
तुर्की	१२ ५	१८ ३
मिस्र	१३ २	१० २
इजराइल	२४ ७	३१ १
भारत (१९५५-५६)	६	९ (१९५८-५९)

जनसंख्या की वृद्धि भारत में अपेक्षाकृत कम हो रही है, इससे शायद भारत के अर्थशास्त्रियों को संतोष होगा। भारत में १ २ प्रतिशत वृद्धि हुई है, जब कि इजराइल व मिस्र में क्रमश २ ४० और २ ० प्रतिशत वृद्धि हुई है।

पौष्टिक भोजन

प्रतिव्यक्ति भोजन की दृष्टि से देखें तो भी हमें विशेष सन्तोष नहीं होता। भोजन में भेद है, क्योंकि भारत की अपेक्षा मिस्र में मांस ज्यादा खाया जाता है। नीचे की संख्याओं से कुछ तुलना हो जाएगी —

	कैलोरी प्रति व्यक्ति	प्रोटीन प्रति व्यक्ति	जान्तविक प्रोटीन
भारत	१८८०	५१	६
मिस्र	२५८०	७५	१३
इजराइल	२९८०	८९	३०

भारत व इजराइल के अंक १९५४-५५ के हैं और मिस्र के १९५५-५६ के। कितना भारी अन्तर है इन अंकों में। मिस्र में दूध भी प्रति व्यक्ति अधिक मिलता है, गोपाल कृष्ण की भूमि भारत में कम।

शक्ति व आयात

भारत व मध्यपूर्व के देशों की तुलना के लिए निम्नलिखित अंक भी बहुत मनोरंजक व उपयोगी होंगे। अधिकांश अंक हमने ईस्टर्न इकानामिक्स के एक विशेषांक से लिए हैं।

	भारत	मिस्र	इजराइल
शक्ति की खपत प्रति व्यक्ति (क०)	० १	० २	१ १
प्रति व्यक्ति आयात डालर	८	२३	२०२

सिंचाई की शोचनीय स्थिति

हमारी शस्य श्यामला भारत भूमि म सिंचाई की कितनी शोचनीय अवस्था है, यह भी देखना चाहिए ——

	कुल कृषि भूमि (हेक्टर)	सिंचित प्रदेश (हेक्टर)	प्रतिशत सिंचित प्रदेश
भारत	१,५८,३४१	२२,७३८	१४ ८
मिस्र	२,६१८	२,६१८	१००
इजराइल	३७८	७३	१७ ५
कुल मध्यपूर्व	६३,४४७	१२,२३६	१९ ३

मिस्र में १०० प्रतिशत कृषि भूमि पर सिंचाई होती है। फिर भी वह 'आस्वान बांध' बांध कर परती भूमि को भी सिंचित करके खेती करने के लिए उत्सुक है।

भारतवर्ष की सिंचाई योजनाओ का कितना अधिक महत्व है, यह स्पष्ट है। अंग्रेजो के विदेशी शासन में सिंचाई की ओर वस्तुत बहुत कम ध्यान दिया गया था। यह ठीक है कि भारत में नई सिंचाई की सभावनाए बहुत है और मिस्र मे बहुत कम, क्योकि वहा नई भूमि बहुत कम उपलब्ध होगी।

चाहे सिंचाई की वजह से हो या अन्य कारणो से, मिस्र म प्रति हैक्टर उपज भी भारत से आश्चर्यजनक रूप से अधिक होती है। कुछ नीचे चोंकाने वाले अक देखिए ——

(प्रति हेक्टर उपज किलोग्राम में)	भारत	मिस्र	तुर्की	ईराक	ईरान
चावल	१,३६०	५,४३०	३,६४०	१,५८०	२,१००
गेहू	७१०	२,३४०	८७०	५६०	९३०
जौ	८२०	२,३५०	१,११०	९१०	१,०३०
रूई	१००	४३०	२६०	१३०	२९०
मकाई (मिलेट)	३८०	६२०	९७०	८००	—
आलू	६,०००	१६,९००	१०,०००	—	—
मटर (चिक)	५५०	१,४८०	१,०२०	—	—

अन्य फसलो का भी थोडे बहुत परिवर्तन से यही हाल है। इससे मालूम होगा कि भारत मे अन्न सकट क्यो है और अन्न उत्पादन के लिए नई योजनाओं——अच्छे बीज, सिंचाई, खाद व अन्य साधनो का कितना अधिक महत्व है।

पशुधन

मध्यपूर्व के देश पिछडे हुए माने जाते है, किन्तु प्रकृति सब पर उदार रही है। ईराक, ईरान, आदि देशो में तेल की खानें कामधेनु बनी हुई है तो मिस्र को स्वेज मार्ग के रूप में कल्पतरु मिला हुआ है। इन पक्तियो में इनके महत्व की चर्चा करने की आवश्यकता नही। भारत के पास ये दोनो नही है, तो अन्य अनेक सम्पदाए है, किन्तु यदि हमें यह पता लगे कि पशुधन और उद्योग की दृष्टि से भी प्रति व्यक्ति भारत पीछे है, तो सचमुच आश्चर्य होगा। भारत व मिस्र में दूध का उत्पादन कितना घटा या बढा हुआ है यह नीचे की तालिका से देखिए ——

	दूध हजार मीट्रिक टन		मुर्गी के अण्डे हजार मीट्रिक टन	
	१९४८–५२	१९५६	१९४८–४९	१९५६
भारत	१९,४०८	१७,८५६	५५	६०
मिस्र	१,०८९	९६६	२४	३५
इजराइल	१२६	२१४	—	—
तुर्की	३,०४७	३,६५८	४५	५६

उद्योग की तुलना

भारत उद्योग के विकास के लिए प्रयत्नशील है और इसमें सन्देह नही कि उसने पचवर्षीय योजनाओ के अधीन बहुत प्रशसनीय उन्नति की है, परन्तु दूसरे देश भी उन्नति कर रहे है, यह प्रति व्यक्ति उत्पादन को तालिका से मालूम होगा।

प्रति व्यक्ति उत्पादन (किलोग्राम में)	सीमेंन्ट	सूत	चीनी	किलोवाट बिजली
भारत	१३	२	५	२५
मिस्र	५७	४	१३	६७
इजराइल	२३६	—	——	७३५
तुर्की	३९	१	११	७२

हम अपनी शिक्षा पर गर्व करते है, किन्तु निम्न तालिका से मालूम होगा कि मध्यपूर्व के अविकसित देश भी हमसे आगे बढने के लिए कही ज्यादा प्रयत्नशील है ——

(शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय डालरो में)	
भारत	० ५
मिस्र	३ ७
ईरान	१ ४
ईराक	३ ४
इजराइल	६ ५

साक्षरता का प्रतिशत अधिक होने से मध्यपूर्व के नागरिक हम भारतीयो से अखबार भी ज्यादा पढते है ——

१९५६ में अखबारी कागज की प्रति व्यक्ति खपत	किलोग्राम
भारत	० २
मिस्र	१ १
इजराइल	२.७
तुर्की	० ७

इस सक्षिप्त तुलनात्मक विवेचन के बाद हमें मालूम होगा कि मध्यस्थिति के देशो के स्तर तक भी पहुचने के लिए अभी हमें बहुत अधिक प्रयत्न करना है। राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल करने के लिए जनता के तमाम अगो को परस्पर सहकारिता व पूर्ण आस्था के साथ काम करना होगा।



बर्मी राष्ट्रकवि कोडो म्हाइंग

लक्ष्मीशकर व्यास

बर्मा के सबसे वयोवृद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त महाकवि तखिन कोडो म्हाइग के दर्शनार्थ जब मै राजधानी रगून मे उनके निवास-स्थान पर पहुचा तो महाकवि चारखाने की लुगी और पूरी बाह का कत्थई रग का स्वेटर पहने अपने अध्ययन कक्ष में बैठे थे । श्याम-वर्ण का उनका प्रभावशाली मुखमण्डल और अनेक युगसन्धियो की द्रष्टा एव स्रष्टा रेखाओ से युक्त प्रशस्त ललाट । सिर पर श्वेत कृष्ण वर्ण की मिश्रित केश राशि, बडी मूछ और त्याग-तपस्या तथा साधना की अनुभूतियो से अकित था उनका प्रसन्न वदन । हमारे सविनय अभि-वादन का उत्तर इक्यासी वर्षीय महाकवि ने प्रसन्न मुद्रा मे दोनो हाथ उठा कर नमस्कार की भारतीय शैली से दिया और साथ ही किया सम्मुख रखी कुर्सियो पर बैठने का स्नेहपूर्ण सकेत । मेरे साथ बर्मा साहित्यकार श्री तिन-सो, श्री पारगू, श्री नतन्वे तथा बर्मा से प्रकाशित होने वाले हिन्दी साप्ताहिक 'प्रवासी' के सम्पादक श्री श्यामाचरण मिश्र भी थे । बर्मी स्वातन्त्र्य सग्राम के अग्रदूत तथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने वाले इस महान साहित्य महारथी से मेरी वार्ता में भाषा-माध्यम बन कर उनके दर्शन कराने का श्रेय वस्तुत इन्ही महा-नुभावो को है ।

श्रद्धापूर्वक जब मैने महाकवि से उन परिस्थितियो तथा प्रवृत्तियो के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की, जिनसे प्रभावित और आकृष्ट होकर वे साहित्य साधना में सलग्न हुए, तो उन्होने बताया कि सन् १८८५ की बात है । मै विद्यार्थी था और उस समय मेरी अवस्था लगभग ग्यारह वर्ष की थी । उसी समय अग्रेजो ने बर्मा के अन्तिम राजा तीबो को गिरफ्तार किया था । जिन परिस्थितियो में राजा तीबो पकडे गए, वह प्रसग अत्यन्त मार्मिक था और अत्यन्त प्रभावकारी । उस समय राजा तीबो क्याडो विहार में थे और उसे दान करने का सकल्प करने ही वाले थे । विहार को दान करते समय जल छोडने की विधि पूरी करने के पूर्व ही अगरेजो ने उन्हें पकड लिया । गिरफ्तार हो जाने पर भी राजा तीबो अपने कर्तव्य से विचलित न हुए और उन्होने जमीन पर बैठ कर सकल्प छोडा । यह करुण ऐतिहासिक प्रसग कि गिरफ्तार होने पर भी राजा जमीन पर बैठ कर अपनी रीति और परम्परा का पालन कर रहा था, मैने अपनी आखो से देखा तथा इसका मेरे मन पर मार्मिक प्रभाव पडा । उसी समय मैंने मन में दृढ सकल्प किया---हम अगरेजो की गुलामी में नहीं रहेंगे । हमने अपने नाम के साथ 'तखिन' शब्द का प्रयोग आरम्भ किया । इसका आशय यह है कि जब अगरेज आए तो हम दास नही थे अपितु स्वय अपने मालिक हे । क्योडो विहार अभी तक विद्यमान है और सत्तर वर्ष पूर्व की उक्त ऐतिहासिक घटना अब तक भूली नही है ।

महाकवि कोडो म्हाइग ने इसी क्रम में बताया---मैंने सोलह वर्ष की अवस्था से लिखना प्रारम्भ किया । मेरा प्रारम्भिक नाम ऊ लुन रहा है । मेरे नाम परिवर्तन की एक छोटी सी कथा है । जब मैने 'छि माग बेतें' नामक उपन्यास पढा तो उसमें यह देख कर कि चिर उपेक्षित और अनावृत वर्ग के प्रतीक के हेय जीवन पर व्यग एव परिहास किया गया है, मुझ पर गहरी प्रतिक्रिया हुई । फलस्वरूप मैंने स्वय अपना उपनाम उक्त उपन्यास के नायक म्हाइग के नामकरण के आधार पर रखा । यही नही, उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति एव उनकी भावनाओ को सराहना के निमित्त मैने 'मिस्टर म्हाम्हाइग मारोवो' नामक उपन्यास भी लिखा ।

मैंने महाकवि से निवेदन किया कि वे अपनी साहित्यिक कृतियो के सम्बन्ध में स्वय कुछ बताने की कृपा करें । इस पर तखिन कोडो म्हाइग ने बर्मी भाषा में बताना शुरू किया और मेरी बोधगम्यता के लिए उसका अनुवाद श्री पारगू जी करते गए---हम अगरेजो तथा उनके बर्मी समर्थको को बन्दर कह कर पुकारते थे । 'व्हे गाडी', 'क्या', और 'व्हे टीका' नामक मेरी पुस्तको में यही भावना चित्रित हुई है । इससे बर्मी जनता में राष्ट्रीयता का अच्छा प्रचार-प्रसार हुआ । 'तखिनती' भी मेरी प्रमुख रचनाओ मे है जिसमें राष्ट्रीय नव जागरण एव स्वाधीनता के लिए उत्थान की प्रेरणाए हैं । इसमें दासत्व की स्थिति की घोर निन्दा की गई है । साथ ही, इसमें देश के नेताओ को स्वाधीनता सग्राम के सचालनार्थ दिशा-निर्देश भी है और विदेशी आधिपत्य की कटुतम आलोच-ना । 'मिस्टर म्हाम्हाइग मारोवो' नामक उपन्यास की पहले ही चर्चा कर चुका हू । मेरी अन्य लोकप्रिय कृतिया है---'डावतीका', 'क्या-वतीका', 'तखिनतीका' आदि ।

महाकवि के निवास स्थान के लिए जब हम रवाना हुए थे तो मार्ग में ही बर्मी साहित्यकार श्री पारगू तथा तिन सो आदि ने मुझे बताया था कि महाकवि कोडो म्हाइग, बर्मा के गोर्की है और बर्मी राजनीतिक और साहित्यिक जागृति के अग्रदूत । बर्मी साहित्य को उच्च स्तर तथा नैतिक आवरण प्रदान करने का श्रेय उन्हें ही है । उपेक्षितो, दलितो और पीडितो के प्रति सहानुभूति के प्रसारक आप ही हैं और हैं साहित्य में राष्ट्रीयता की नवीन भावधारा के प्रवर्तक । आपने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत सैकडो कहानिया लिखी है । गद्य-पद्य दोनो के ही आप महान

रचनाकार हैं और हैं सर्वतोमुखी प्रतिभा के साहित्य महारथी। बर्मी साहित्य साधकों के आप प्रेरणा केन्द्र हैं और आपने किया है देश में राष्ट्रीयता एवं लोक कल्याण की विचारधारा का युग प्रवर्तन। इसी कारण आप सच्चे अर्थ में और सभी दृष्टियों से बर्मा के महान राष्ट्र कवि हैं। लोक मंगल तथा जनकल्याणकारी साहित्य के प्रणयन के पुरस्कार स्वरूप ही सन् १९५४ में महाकवि को स्टालिन शान्ति पुरस्कार प्रदान कर उनका अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान किया गया है।

महाकवि म्हाइंग बर्मा कविता 'ले जो' के सम्राट कहे जाते हैं। उनकी क्रान्तिकारी और नव युग उपस्थित करने वाली महान प्रतिभा सर्व प्रसिद्ध है। फिर भी उनकी जबानी उनकी कविताओं के सम्बन्ध में कुछ सुनने का लोभ मैं संवरण न कर सका। इस सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा देखकर उन्होंने बताया—मेरी 'ले जो' कविताओं का नवीनतम संग्रह हाल में ही प्रकाशित हुआ है। पिछले दो वर्षों में इसके पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मैंने लगभग चार सौ कविताएं लिखी हैं। इनका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है—बर्मी जनता की राजनीतिक तथा सामाजिक जागृति। मैंने इनके प्रकाशन का सर्वाधिकार संघ को दे दिया है और कोई रायल्टी नहीं ली है।

अपनी विविध कृतियों के रचना रहस्य तथा उनके उल्लेख प्रसंगों के संस्मरण सुनाते हुए महाकवि म्हाइंग ने कहा—बर्मी साहित्य के विविध अंगों—कविता, कहानी, उपन्यास, राजनीति, इतिहास, नाटक, निबन्ध आदि की साठ से अधिक रचनाएं मैंने की हैं। नाटक तो मैंने अपनी छोटी ही अवस्था में लिखे। मेरा नाटक 'ठिला पो ऊ' बहुत लोकप्रिय हुआ। रंगमंच पर इसका अभिनय बर्मा के श्रेष्ठ कलाकारों ने किया था। उनमें प्रख्यात कलाकार ऊ फोसे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। खेद है कि वे अब इस संसार में नहीं रहे।

मैंने पूछा—आपकी सर्वप्रिय कृति कौन सी पुस्तक है?

'धारासेठि' मेरी सबसे प्रिय पुस्तक है। यह इतिहास सम्बन्धी रचना है। इसमें पेगू के राजवंश का इतिहास है। 'बर्मा का इतिहास' मैंने तब लिखा जब नेशनल कालेज खुला और उसमें मुझे अध्यापन करना पड़ा। उस समय बर्मा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखा कोई इतिहास था ही नहीं।

साहित्य रचना में कौन से प्राचीन साहित्य से आपको सर्वाधिक प्रेरणा मिली है। क्या इस सम्बन्ध में कुछ बताने की आप कृपा करेंगे?—मैंने निवेदन किया।

महाकवि म्हाइंग ने कुछ क्षणों तक भावों में निमग्न होकर अपने हृदयोद्गार इन शब्दों में प्रकट किए—मैं सन् १९५४ में स्टालिन शान्ति पुरस्कार लेने रूस गया। इसके पूर्व सन् १९५१ में एशियन पैसेफिक रीजियन पीस कान्फरेन्स में भाग लेने चीन भी गया था। पर मुझे इस बात का हार्दिक खेद रहा कि मैं भगवान बुद्ध की जन्मभूमि के देश भारत नहीं जा सका, जिनके बौद्ध साहित्य से मुझे अपने लेखन एवं चिन्तन में सबसे अधिक प्रेरणा मिली है। एक बार श्री सी० पी० सिन्हा ने मुझे भारत ले जाने का प्रयत्न किया था। यात्रा की तैयारी प्रायः हो भी चुकी थी किन्तु महात्मा गांधी की हत्या के कारण मैंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी।

बर्मी साहित्य की वर्तमान गतिविधि के विषय में आपके क्या विचार हैं? यह पूछने पर महाकवि ने बताया—मुझे बर्मी साहित्य की वर्तमान प्रगति से सन्तोष नहीं। मेरी धारणा है कि जब से अंगरेज आए तब से बर्मा की साहित्यिक परम्पराओं का ह्रास हुआ है।

विश्व साहित्य के लिए आपका क्या सन्देश है?—मैंने निवेदन किया।

इस सम्बन्ध में मेरा स्पष्ट मत है कि आधुनिक काल में शान्ति भावना का समर्थन करने वाले साहित्य की रचना की जानी चाहिए। साहित्य के क्षेत्र की यह अनिवार्य आवश्यकता है। इस प्रकार के साहित्य की प्रेरणा बौद्ध साहित्य में प्रभूत परिमाण में है। बौद्ध साहित्य का अध्ययन-मनन करने से शान्ति की भावना का समर्थन करने वाला साहित्य सहज ही मिल सकता है—महाकवि ने उत्तर दिया।

बर्मी साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी मेरी अभिरुचि देख कर महाकवि ने पूछा—क्या मैं बर्मा की प्राचीन सांस्कृतिक राजधानी माण्डले जाऊंगा?

उत्तर में मैंने उनसे निवेदन किया—सांस्कृतिक राजधानी माण्डले के दर्शन की तो हार्दिक इच्छा है किन्तु इस बार की यात्रा में यह सम्भव नहीं प्रतीत होता। कारण भारतीय नौ सेना की जिस सद्भावना यात्रा के प्रसंग में आपके ऐतिहासिक नगर में आया हूं, दो दिन में ही वह नौसैनिक बेड़ा मलाया की दिशा में प्रस्थान करेगा। यदि पुनः कभी इधर आने का सौभाग्य मिला तो बर्मा की सांस्कृतिक प्राचीन राजधानी माण्डले का दर्शन अवश्य करूंगा।

इस पर महाकवि ने पुनः प्रश्न किया—आपने बर्मा का प्राचीनतम तथा सर्वप्रसिद्ध स्वे डगोन पगोडा स्थित महाघण्टा बजाया है या नहीं? मेरा स्वीकारात्मक उत्तर सुन कर वे झट बोल उठे—तब तो आप पुनः बर्मा आएंगे ही। मैं चकित था। तभी मुझे विदित हुआ कि बर्मा में प्राचीनकाल से यह विश्वास चला आता है कि जो व्यक्ति ऐतिहासिक स्वे डगोन पगोडा के एक हजार मन से भी अधिक वजन के ८॥ फुट ऊंचे, ७ फुट ८ इंच चौड़े और १ फुट मोटे महाघण्टे को लकड़ी के मोटे कुन्दे के प्रहार से ध्वनित करता है उसे बर्मा की स्वर्ण भूमि पर पुनः आने का अवसर प्राप्त होता ही है।

महाकवि म्हाइंग से साक्षात्कार तथा वार्ता प्रसंग से यह भी विदित हुआ कि वे बर्मा के महान राष्ट्रकवि ही नहीं, बर्मी स्वतन्त्रता के मन्त्रदाता और आदि उद्घोषक भी हैं। आप ही बर्मा की अर्द्ध राजनीतिक संस्था—डोबा मा असियों के जन्मदाता हैं। यही नहीं, आप बर्मा के राष्ट्रपिता स्वर्गीय आंग सान, भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ नू, साम्यवादी नेता थखिन तान टुन तथा प्रायः सभी प्रमुख राजनेताओं के आचार्य और उपदेष्टा भी हैं। सन् १९४८ में राजनीतिक मतभेद के कारण प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता तानटुन ने अपना गुप्त संघटन बनाया। पर आपको ऊ नू तथा तान टुन दोनों ही समान रूप से प्रिय हैं। महाकवि म्हाइंग तब से अब तक इनके मतभेद को दूर करने के प्रयत्न में लगे हैं। आपका दृढ़ विश्वास है कि संघर्ष का अन्त होना चाहिए और शान्ति एवं पारस्परिक सहयोग से ही बर्मा प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा। इस निमित्त आपने उभय पक्ष में मध्यस्थता की है और सरकार तथा कम्युनिस्टों के मतभेद को कम करने में सफल भी हुए हैं। आपने सन् १९१८ में बर्मा स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था और अब भी अस्सी से अधिक वर्ष के हो जाने पर भी शान्ति के आन्दोलन का नेतृत्व करते हैं। आपने सार्वजनिक सभाओं में गृहयुद्ध के क्षतिकारक

परिणामों को जनता के समक्ष रखा है और आग्रह किया है अत्यन्त मार्मिक शब्दों में सहयोग एवं शान्ति के मार्ग पर अग्रसर होने का।

लगभग एक घण्टा हो चुका था। मैं महाकवि म्हाइंग से अब विदा लेना ही चाहता था कि इतने में चाय आ गई। एक क्षण के लिए कुछ संकोच में पड़ गया किन्तु दूसरे ही क्षण मन ही मन पुलकित हो उठा। बर्मा के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार तथा एशिया के एक युग निर्माता महापुरुष के सान्निध्य में चाय पान का अवसर वस्तुतः दुर्लभ सौभाग्य था।

चाय का प्याला उठाया तो महाकवि म्हाइंग के अध्ययन कक्ष की ओर दृष्टि सहज ही आकृष्ट हो गई। पास ही दीवार पर टंगा वह चित्र। निरभ्र नीलाकाश और भूतल पर चतुर्दिक हरीतिमा। सुन्दर पुष्पों और सुकोमल पल्लवों वाले वृक्ष की डाल पर बैठा मोर। यहां से दृष्टि हटी तो दूसरे चित्र पर जा अटकी। महाकवि म्हाइंग चीन के राष्ट्रपति माओ-त्से-तुंग से हाथ मिला रहे हैं। एशिया के दो महापुरुषों के मिलन का यह चित्र जैसे महाकवि की चीन यात्रा का सजीव दृश्य उपस्थित कर रहा था। सामने की तस्वीर पर दृष्टि पड़ी तो उसमें महाकवि प्रधान मन्त्री ऊ नू का स्वागत कर रहे थे। चित्र पर अंकित परिचय से सबभ का संकेत मिला। चीन से लौटने पर बर्मा प्रधान मन्त्री के स्वागत का यह ऐतिहासिक दृश्य था। इतने में ही सामने के छोटे टेबुल पर रखे महाकवि के पानदान ने ध्यान आकृष्ट कर लिया। काले रंग का लाख का कड़ा सा डिब्बा। डिब्बे पर बर्मा लोककला का बहुरंगा चित्रांकन। भीतर चांदी की छोटी-छोटी डिबियों में पान दान का सारा सामान। भारतीय विशेषतः वाराणसी निवासी के लिए यह कितना आह्लादकारक रहा होगा, इसका सहज अनुमान किया जा सकता है। लीजिए, अब महा-कवि चाय का प्याला रख, सरौता लेकर स्वयं सुपारी कतर रहे थे। हमने जैसे ही प्याले सामने की मेज पर रखे, हमें महाकवि के बनाए पान खाने को मिले। इसे भी हमने अपना सौभाग्य माना।

जब हाथ जोड़ कर विदा मांगने के लिए खड़ा हुआ तो महाकवि म्हाइंग ने पास के कक्ष में रखी हुई अनेक कलाकृतियां दिखाईं जो उन्हें रूस तथा चीन की यात्राओं में भेंट स्वरूप मिली थीं। कलाकृतियों का अवलोकन तो अत्यन्त आह्लादकारी था ही, विदा होते समय महाकवि ने अपने चित्र पर हस्ताक्षर कर दिए तो मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, ऐसा लगा जैसे मुझे अमूल्य निधि मिल गई हो।

आज की तेलुगु कहानी—(पृष्ठ २७ का शेषांश)

स्वयं अपनी कहानियों का अनुवाद हिन्दी में कर लेते हैं। उनमें 'अन्धेरे की परछाइयां' 'एक मुन्ने का जन्म होने वाला है' उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

मालती चन्दूर की कुछ कहानियां 'कथा सागरम'–३ में संकलित की गई हैं। आपकी हर कहानी में एक मधुर अनुभूति, एक अव्यक्त वेदना छिपी रहती है। आपने स्त्री की विविध समस्याओं को विविध पहलुओं से परख कर अच्छी कहानियां लिखी हैं। 'डाबा इरलु', 'पंजरम्' आपकी अच्छी कहानियों में से है।

सीतादेवी की कहानियां पढ़ते समय हमें श्रीमती रजनी पनिक्कर की, मालती परूलकर की कहानियों की याद हो आती है। आपकी कुछ कहानियां 'कथा सागरम्'–११ में प्रकाशित हुई हैं। इधर आपने एक भी कहानी नहीं लिखी, एक दम चुप है।

श्रीदेवी को कहानी के अलावा कविता और उपन्यास लेखन में भी आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। रमा देवी बहुत छोटी-छोटी कहानियां लिखने में सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियों में मन को छूनेवाली एक छोटी-सी घटना का उल्लेख रहता है। 'आखों के सामने' नामक कहानी इसका उदाहरण है। एम० जानकीरानी की कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में बराबर छप रही हैं। आपकी कहानियों में 'लाल गुलाब' अच्छी कृति है। पी० सरलादेवी और उमा देवी के भी नाम उल्लेखनीय हैं।

'मंजुश्री' का पूरा नाम रमापतिराव है और आपने अपनी अल्पायु में ही अच्छी कहानियां लिखी हैं। आप बिल्कुल नए कहानीकारों में से एक हैं। और दिन प्रति दिन बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ते जा रहे हैं। आपकी कहानियों में सांकेतिकता भरी रहती है। विचार की अभिव्यंजना में भी नवीनता है। शैली मन को मोहित करती है।

वैसे तो आज तेलुगु में बहुत बड़ी संख्या में कहानियां लिखी जाने लगी हैं। और जितनी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में छप रही हैं, वे सब ही अच्छी हैं, यह नहीं कहा जा सकता। हां, इतना अवश्य है कि तेलुगु साहित्य ने एक नया मोड़ लिया है, नई नई प्रतिभाओं का उदय हो रहा है, नई-नई मान्यताएं स्थापित की जा रही हैं, पर शैली और टेकनीक की दृष्टि से पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाली कुछ कहानियां बहुत कमजोर सी लगने लगी हैं, विचारों में प्रौढ़ता का भी अभाव दिखाई दे रहा है। कुछ कहानियों में रोमानी जीवन के चित्रण के अलावा कुछ नहीं मिलता। भाषा के सम्बन्ध में भी यही कमजोरी लक्षित हो रही है।

लेकिन इन अभावों के बावजूद तेलुगु कहानी ने बहुत प्रगति कर ली है, जीवन की विविध समस्याओं को लेकर कहानियां लिखी जाने लगी हैं। मध्यवर्ग की परिधि में से निकलकर तेलुगु कहानी अभी अभी खुले मैदान में आ गई है, आदर्शवादी और यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाती हुई युग सत्य का सही चित्रण अंकित करती हुई वह अग्रसर होती जा रही है। इसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में कोई शंका नहीं है।

हाल ही में 'आन्ध्रेर गल्प गुच्छ' के नाम से तेलुगु कहानियों का एक संकलन बंगला में प्रकाशित हुआ है। एकाध को छोड़ बाकी सब इन पंक्तियों की लेखिका द्वारा अनूदित हिन्दी रचनाओं के रूपान्तर हैं। इस बंगला संकलन के अनुवादक हैं श्री बोम्मन विश्वनाथम। मोरवी के श्री शांति आकडियाकर भी कुछ तेलुगु कहानियों का अनुवाद गुजराती में कर रहे हैं। हिन्दी के कई प्रतिष्ठित पत्र, जिनमें 'आजकल' भी एक है, तेलुगु कहानियों के अनुवाद समय समय पर प्रकाशित कर उसकी प्रगति का परिचय हिन्दी भाषा-भाषियों को प्रदान कर रहे हैं।



पुस्तक समालोचना

खाली कुर्सी की आत्मा लेखक—लक्ष्मीकान्त वर्मा, प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए० जीरो रोड इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या (रायल अठपेजी)—२१८, मूल्य—साढ़े आठ रुपए सजिल्द।

प्रकाशकीय वक्तव्य के अनुसार "एकदम नयी शैली में लिखा गया हिन्दी का यह पहला प्रतीकात्मक उपन्यास है।" प्रकाशक का यह भी कथन है कि श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा के इस वृहत उपन्यास ने "प्रकाशन के पूर्व ही हिन्दी जगत में अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।"

यह उपन्यास प्रतीकात्मक हो या न हो, पर प्रकाशक का यह वक्तव्य कि इस उपन्यास ने प्रकाशन से पूर्व ही हिन्दी जगत में अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त करली थी, प्रतीकात्मक अवश्य है। अगर प्रकाशन से पूर्व ही यह उपन्यास अभूतपूर्व रूप से लोकप्रिय था, तो प्रकाशन के बाद तो यह संसार में एक नया रिकार्ड बनाने वाला ही सिद्ध हो सकता है।

हिन्दी में ऐसे उपन्यास काफी बड़ी संख्या में प्रकाशित हुए हैं, जिन्हें पढ़ना अबिण प्राणायाम से भी अधिक कष्टसाध्य है और जिन्हें जिस-किसी तरह पढ़ कर यह पा सकना और भी कठिन है कि लेखक कहना क्या चाहता है। मेरी राय से 'खाली कुर्सी की आत्मा' भी कुछ अंश तक उसी श्रेणी में आता है। 'कुछ अंश तक' इसलिये कि लेखक कहना क्या चाहता है, यह तो इस रचना से पता चल जाता है, पर इसे पढ़ना पहाड़ खोदने के समान कष्टसाध्य प्रतीत होता है। उस कष्ट की तुलना में प्राप्ति कुछ भी नहीं है। मेरा ख्याल था कि 'नयी कविता' के ढंग पर 'नया उपन्यास' नहीं चल सकेगा, पर इस उपन्यास के लेखक ने सिद्ध कर दिया है कि उसी ढंग पर 'नया उपन्यास' भी लिखा जा सकता है। इस उपन्यास की शैली को 'एकदम नई शैली' कहना तो ठीक नहीं है, क्योंकि अन्य देशों में इस तरह की शैली पर कितनी ही कच्ची-पक्की रचनाएं हुई हैं। हमारे यहां भी कालेजों के विद्यार्थी इस शैली पर काफी बड़ी संख्या में निबन्ध लिखते हैं, और उन का प्रेरणा स्रोत कुछ प्रसिद्ध माने जाने वाले विदेशी निबन्ध होते हैं। अन्तर यही है कि इस रचना में एक कल्पना को—यह कल्पना कि कुर्सी पर सभी तरह के लोग बैठते हैं, अगर उसमें जान आ जाए तो वह उन सबकी कहानी कह सकती है—बेहद लम्बा खींच दिया गया है। परिणाम यह हुआ है कि लेखक ने समाज के विभिन्न तबकों के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रियायें इसी एक माध्यम द्वारा दी हैं और यह माध्यम अत्यन्त नीरस बल्कि खिजाने वाला-सा बन गया है। मेरी राय से तो यह भी एक विवादास्पद बात है कि 'खाली कुर्सी की आत्मा' को एक उपन्यास गिना जाए या नहीं। जहां तक मेरी रुचि का प्रश्न है, इस उपन्यास की जगह मैं सांख्य और वेदान्त दर्शन तथा काण्ट, हेगल और शोपनहार को पढ़ना कहीं अधिक पसन्द करूंगा, हालांकि सभी तरह के अच्छे उपन्यासों को मैं बहुत शौक से पढ़ता हूं।

श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा हिन्दी की प्रतिभाओं में हैं। उनके अध्ययन, विवेक, सूझ और सामर्थ्य का मैं कायल हूँ। मुझे आशा है कि 'खाली कुर्सी की आत्मा' के सम्बन्ध में मेरी पूर्वोक्त धारणा के सम्बन्ध में वह गम्भीरता से विचार करेंगे।

कार्यालय निर्देशिका लेखक—बाबूराम पालीवाल, प्रकाशक—सुनीति प्रकाशन, २१७२, तिलक बाजार, दिल्ली-६, पृष्ठ संख्या (रायल अठपेजी)—२३६, मूल्य—६) रु० सजिल्द।

हिन्दी में कार्यालयों के काम काज, टिप्पणी, आलेखन आदि के सम्बन्ध में यह पुस्तक लिखी गई है। दफ्तरी कार्यवाही हिन्दी में किस तरह की जाए, यह सब इस पुस्तक के ४ खण्डों में (१३२ पृष्ठ) उदाहरण सहित वर्णित है। उसके बाद लगभग १०० पृष्ठों में अंग्रेजी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेजी शब्द सूचियां दे दी गई हैं। स्पष्टतः लेखक ने इस सब में यथेष्ठ परिश्रम किया है। उन्हें हिन्दी में दफ्तरी कार्यवाही करने का अच्छा अनुभव है, इससे उन के इस प्रयास का महत्व भी बढ़ गया है। पर प्रश्न यह है कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का यह कार्य सरकारी स्तर से और विभिन्न प्रामाणिक संस्थाओं के सहयोग से नहीं होगा, इस आवश्यक प्रामाणिकता किस तरह प्राप्त होगी। दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि आखिर लोग कब तक इन्तजार करें। हिन्दी भारत की राजभाषा बन रही है। बहुत शीघ्र दफ्तरी काम हिन्दी में होने लगेंगे, इस लिए इस तरह के प्रकाशनों का महत्व निर्विवाद है। हमें आशा है कि सम्बद्ध मन्त्रालय इस पुस्तक के आधार पर दफ्तरी कार्यवाही के हिन्दी स्वरूप के सम्बन्ध में यथाशीघ्र कोई निर्णय करने का तथा उसे प्रामाणिकता देने का प्रयत्न करेंगे।

महासमर लेखक—इलिया एहरेन्बुर्ग, अनुवादक—श्रीकान्त व्यास, प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए० जीरो रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या—३६६, मूल्य—५) रु०।

सुप्रसिद्ध लेखक और उपन्यासकार इलिया एहरेन्बुर्ग के एक विख्यात उपन्यास का यह हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी में उक्त रचना का नाम 'फाल आफ पेरिस' है। हिन्दी नाम 'पेरिस की पराजय' न रखकर 'महासमर' क्यों रखा गया है, यह हमें समझ में नहीं आया। यों अनुवाद बुरा नहीं है। पर इतनी श्रेष्ठ रचना का जैसा श्रेष्ठ अनुवाद होना चाहिए, उस स्तर का अनुवाद यह नहीं है।

इस हिन्दी अनुवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिए श्री इलिया एहरेन्बुर्ग ने एक नई भूमिका लिखी है, जो इस प्रकार है :—

'जब आप किसी गगनचुम्बी अट्टालिका की छत से न्यूयार्क नगर को देखते हैं तो जो दृश्य आपको दिखाई देता है वह उतना ही नीरस और मन-

हस होता है, जितना किसी प्रबन्ध-ग्रन्थ का संख्याओं और आंकडों से भरा पृष्ठ, अथवा कोई नक्शा या चार्ट। सभी सडकें और रास्ते सीधी रेखाओं की तरह बिछे हैं, निश्चित फासले पर एक दूसरे को काटते हुए, और ऐसा प्रतीत होता है जैसे वहा आदमी की जिन्दगी भी सीधी और सपाट रेखाओं पर चलती है। लेकिन नोत्र-दाम के तट से पेरिस नगर ऐसा नहीं लगता। उलझे हुए जाल जैसी सडकों और किसी अज्ञात शक्ति से आपस में सम्बद्ध-सी, विभिन्न युगों का प्रतिनिधित्व करती हुई इमारतें, विस्मय-विमुग्ध कर देने वाली वृक्षावलियों और खुले मैदानों तथा मानवीय भावनाओं और उद्वेगों की विस्मयकारी गुत्थियों से भरा पेरिस जैसे रंग-बिरंगे पत्थरों और चट्टानों के जंगल की याद दिलाता है, जैसे वह सदियों का वन-प्रांतर हो।

"मुझे ऐसा लगता है कि उपन्यास को न्यूयार्क के बजाय पेरिस की तरह होना चाहिए उपन्यास लिखने के लिए एक सुस्पष्ट योजना, अथवा ढाचा तैयार करने के लिए साधन-सामग्री मात्र ही पर्याप्त नहीं होती, उसके लिए सूक्ष्म निरीक्षण एवं गम्भीर विचार ही पर्याप्त नहीं। उपन्यास लिखना आरम्भ करने से पहले लेखक को स्वयं अपने उपन्यास को जीना चाहिए, उसमें घुलमिल जाना चाहिए, उसे अपने समकालीनों के दुख और सुख को, वेदना और आनन्द को स्वयं अनुभव करना चाहिए, उसे अपने बीच उन गुत्थियों को, यहा तक कि उन अन्तर्विरोधों को भी ढूढना चाहिए, जिनके बिना वास्तविक जीवन असम्भव है।

"मैं स्वयं यह निर्णय नहीं दे सकता कि 'महासमर' ('फाल आफ पेरिस') एक अच्छा उपन्यास है या नहीं। सम्भवत यह एक साधारण उपन्यास है। लेकिन मैं अपने पाठकों को यह विश्वास दिला सकता हू कि अगर इसका लेखक फ्रास की उस दुखद घटना का स्वयं शिकार न बना होता, अगर उसने फ्रास की 'ट्रेजेडी' को स्वयं न सहा होता, तो यह उपन्यास कभी न लिखा जाता। मैं युद्ध के पहले पेरिस में रहा हू, मैंने फासिस्ट आक्रामकों को नगर में अभियान करते हुए अपनी आखों देखा है। इस उपन्यास के पात्र वे लोग हैं जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हू और जो मुझे बहुत प्रिय रहे हैं।

"मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि मेरी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। अपनी भारत-यात्रा के बाद मैं यह जान सका हू कि उस महान देश में कितनी बडी आध्यात्मिक सम्पत्ति छिपी पडी है। हम सब प्राचीन भारत के—उसके साहित्य, उसकी उत्कृष्ट कला और उसके ज्ञान-भण्डार के बहुत ऋणी हैं। आधुनिक भारत आज पीछे नहीं, आगे की तरफ देख रहा है, वह भविष्य का निर्माण कर रहा है—अपनी रचनात्मक उद्-भावनाओं में वह उन्हीं अप्रतिम विशेषताओं को प्रदर्शित कर रहा है जिनकी झलक हमें अशोक के शिलालेखों और कालिदास के नाटकों में, एलोरा की शिल्पकला और अजन्ता के चित्रों में देखने को मिलती है। यह एक सच्ची मानवता है, ऐसी मानवता जो किसी सस्ती सजावटी चीज के लिए नहीं बल्कि ऐसी वस्तु की प्राप्ति के लिए सघर्षरत है, जो मनुष्य के जीवन को गौरव प्रदान कर सकती है।"

मुझे विश्वास है कि पाठकों के लिए यह उपन्यास न सिर्फ मनोविनोद का कारण बनेगा अपितु वे गहराई से सोचने पर भी लाचार होंगे।

'ब्रज और ब्रज-यात्रा' तथा 'रास-लीला', सम्पादक—सेठ गोविन्द दास तथा राम नारायण अग्रवाल, प्रकाशक—भारतीय विश्व प्रकाशन, फव्वारा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (बडे आकार के) १८० तथा ८०, मूल्य—साढे पाच रुपए तथा अढाई रुपए।

पहली पुस्तक 'ब्रजभूमि और ब्रजभक्ति' तथा 'ब्रज यात्रा' शीर्षक दो खण्डों में विभक्त है और इन दोनों में १३ प्रामाणिक लेखकों के लेख हैं। दूसरी पुस्तक में रास-लीला सम्बन्धी १० लेख हैं। पुस्तकें सुन्दर रूप में छापी गई हैं और उनमें यथेष्ट चित्र भी हैं। श्रीकृष्ण के भक्तों, ब्रज प्रेमियों और कृष्ण साहित्य में रुचि लेने वाले व्यक्तियों के लिए ये दोनों पुस्तकें निस्सन्देह मूल्यवान सिद्ध होंगी।

मनोविज्ञान मीमासा लेखक—विश्वेश्वर, प्रकाशक—आत्मा राम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (रायल अठपेजी)—३१६, मूल्य—८) रु० सजिल्द।

आचार्य विश्वेश्वर द्वारा लिखित यह संस्कृत ग्रन्थ निस्सन्देह एक अकल्पनीय कृति है। यह ग्रन्थ देखते ही मुझे आशा हुई थी कि भारतीय दर्शन उपनिषद तथा शास्त्रों के आधार पर शायद मनोविज्ञान का स्वरूपांकन इस रचना में किया गया हो। वह आशा तो पूरी नहीं हुई, पर मुख्यत पाश्चात्य मनोविज्ञान को एक वर्तमान संस्कृत लेखक की शैली में पढने में सचमुच बहुत आनन्द आया। मन का स्वरूप, नाडी तन्त्र, मानसिक प्रतिक्रियाए, मूल प्रवृत्तिया, क्रीडा, शिक्षण, अवधान, प्रकृति, इच्छित क्रिया, चरित्र, सवेदन, प्रत्यक्ष, स्मृति, कल्पना, विचार सवेग, व्यक्तित्व, मनोविश्लेषण, वाद, स्वप्न आदि पर कुल २५ सुलिखित अध्याय इस पुस्तक में हैं। संस्कृत का अभ्यास करने वाले पाठकों के लिए यह पुस्तक विशेषत उपयोगी सिद्ध होगी। इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य विश्वेश्वर साधुवाद के पात्र हैं।

थानेदार लेखक—अमरनाथ मल्होत्रा, प्रकाशक—आत्मा राम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (रायल अठपेजी)—२१२, मूल्य—साढे पाच रुपए सजिल्द।

अमरनाथ मल्होत्रा के इस अत्यन्त उपयोगी, मनोरंजक और सुलिखित ग्रन्थ की चर्चा मैं इन्हीं कालमों में आज से लगभग ५ वर्ष पूर्व कर चुका हू। श्री मल्होत्रा जम्मू-काश्मीर रियासत के पुलिस विभाग में थे। उनकी कर्तव्यपरायणता, जागरूकता, सज्जनता तथा समझदारी की धाक सम्पूर्ण रियासत में थी। इस संस्मरणात्मक रचना में उन्होंने विभिन्न ढंग की तफतीशों का ब्योरा दिया है। हम जैसा कि पहले भी लिख चुके हैं, यह पुस्तक एक अच्छे उपन्यास के समान मनोरंजक है। पुलिस विभाग के कर्मचारियों में इस पुस्तक का विशेष आदर होना चाहिए। हमें हर्ष है कि इस उपयोगी पुस्तक का अब यह बहुत अच्छा संस्करण प्रकाशित हुआ है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

काव्य में उदात्त तत्व मूल लेखक—लोंगिनुस (लोंजाइनस), अनुवादक—डा० नगेन्द्र और नेमिचंद्र जैन, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—१२८, मूल्य—३।।) रु०।

प्रस्तुत पुस्तक यूनानी काव्यशास्त्र की परम्परा में सवाद के ढंग से लोंगिनुस ने लिखी है, उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक के प्रारम्भ में डा० नगेन्द्र की विस्तृत भूमिका है जिसमें उन्होंने तत्कालीन परि-स्थिति और काव्य के प्रति यूनानी लेखकों का दृष्टिकोण एवं वास्त-विकता के साथ लोंगिनुस के साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का विशद विवेचन किया है। भूमिका द्वारा लोंगिनुस के काव्य सम्बन्धी सिद्धान्तों की विवेचना में उदात्त तत्वों की सार्थकता एवं व्यापकता के प्रति सहज भाव से उठने वाली आपत्ति और विप्रतिपत्तियों का ज्ञान अच्छी

तरह हो जाता है, और पाठक सरलता से जान सकता है कि लोंगिनुस के सिद्धान्त कहां तक काव्य की विस्तृत परिभाषा मे समाहित हो सकते है।

यूनानी काव्यशास्त्र में अरस्तू के ग्रन्थ 'पेरियो प्रतिकेस' के बाद दूसरा स्थान इसी पुस्तक का है। यूनानी में इसका नाम है—'पेरिहृप्सुस' जिसका शब्दार्थ है 'औदात्य के विषय मे।' इस मूल लेखक का पूरा नाम है—दिओ न्यूसिअस लोंगिनुस। लोंगिनुस का यह ग्रन्थ काफी दिनो बाद प्रकाश में आया। जहां तक काव्यशास्त्र सम्बन्धी मौलिकता का प्रश्न है लोंगिनस का विवेचन अपने मे मौलिक है। उसने कहीं भी अपने ग्रन्थ में उदात्त की परिभाषा नहीं की। फिर भी लगता है, जैसा कि उसने एक जगह लिखा है, 'उदात्त भाषा का प्रभाव श्रोता के मन पर प्रत्यय के रूप में नही, वरन भावोद्रेक के रूप मे पड़ता है। गरिमामयी वाणी अपनी क्षमता के कारण अनुनय (परसुएशन) तथा परितोषकारी वाणी की अपेक्षा सदैव और सभी प्रकार से अधिक समर्थ होती है (पृष्ठ ४४)। लेखक 'उदात्त' को एक स्वभाव सिद्ध जीवन एवं वाणी की ऊंचाई स्वीकार करके चला है।

उस समय के साहित्यकार अम्फीक्रतेस, थसेनोफोन, हेगेसिअस आदि लेखकों के काव्य की विवेचना करते हुए एक जगह वह लिखता है।

"साधारणतः औदात्य के इन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सकें, क्योंकि जब विभिन्न रुचियों, वृत्तियों, महत्वाकांक्षाओं, अवस्थाओं और भाषाओं के व्यक्तियों का किसी एक ही विषय पर एक सा मत हो तो वह निर्णय, जो एक प्रकार से अनेक परस्पर विपरीत तत्वों से प्राप्त होता है, आलोच्य वस्तु के प्रति हमारी आस्था को अत्यन्त पुष्ट और अटल बना देता है।" पृष्ठ संख्या ४३।

लोंगिनुस ने उदात्त तत्वों के लिए पांच प्रमुख उद्गम माने हैं। इन पांच विभिन्न गुणों के नीचे एक प्रकार से सामान्य आधार को वह 'वाक् प्रतिभा' कह कर पुकारता है। इसमें पहला है महान धारणाओं की क्षमता, दूसरा उद्दाम और प्रेरणा प्रसूत आवेग, तीसरा अलंकारों की समुचित योजना, चौथा उत्कृष्ट भाषा जिसके अन्तर्गत 'शब्द चयन' आ जाता है और पांचवा गरिमामय एवं ऊर्जित रचना विधान।

ये पांच तत्व हैं जिनको स्वीकार करके लोंगिनुस ने अपने समय के साहित्यकारों की रचनाओं का मूल्यांकन किया है। उसने इस प्रसंग में सर्वप्रथम महान धारणाओं की क्षमता में मन की ऊर्जा को श्रेष्ठ स्थान दिया है। वह मानता है, महान धारणा की क्षमता अर्जित नहीं जन्मजात होती है, क्योंकि औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है। इसके लिए उसने एक जगह कहा है—"सच्चे वाग्मी को निश्चय ही क्षुद्र और हीनतर भावों से मुक्त होना चाहिए। यह सम्भव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों और विचारों में ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना कर सके। महान शब्द उन्हीं के मुख से निकलते हैं, जिनके विचार गम्भीर और गहन होते हैं।"

दूसरे तत्व के सम्बन्ध में वह मानता है कि काव्य में किसी हलके क्षुद्र अथवा हीन प्रसंग का समावेश नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह दोष सम्पूर्ण रचना के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। जैसे परस्पर समानुपाती प्राचीरों से मंडित भव्य सुनिर्मित प्रासादों के बीच कोई दरारें डाल दें।

अलंकारों की समुचित योजना, उत्कृष्ट भाषा, गरिमामय ऊर्जित रचना विधान इन अन्तिम तीन लक्षणों को वह बहिरंग तत्व मानता है।

लोंगिनुस ने अपने इस ग्रन्थ में एक बात पर विशेष जोर दिया है—वह यह कि "प्राचीन युग के महापुरुषों की आत्माओं एवं उनके ग्रंथों का अनुकरण करने वालों के हृदय में ऐसी धारणाएं प्रवाहित होती रहती हैं, जिनसे वे लोग भी जो बाहर से प्रेरणा ग्रहण करने में असमर्थ से लगते हैं, अनुप्राणित हो उठते हैं, और दूसरों की महानता के जादू से अभिभूत हो जाते हैं।" एक तरह से उसका उपदेश है कि पूर्ववर्ती महाकवियों और लेखकों का अनुकरण करना चाहिए। मैं समझता हूं और जैसा कि भूमिका में लेखक ने लिखा है, लोंगिनुस का बहुत सा विवेचन उदात्त होते हुए भी एकांगी है।

सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ने से लगता है कि लोंगिनुस के मन में चिन्तन द्वारा जो विचार आते रहे हैं, उन्हीं के आधार पर उसने अपने सिद्धान्त स्थिर किए हैं। निश्चय ही उसकी यह मौलिकता स्पृहणीय है, किन्तु वे काव्य के सम्पूर्ण रूप को अन्तस्थ नहीं कर पाते। पूर्व पुरुषों से प्रेरणा ग्रहण करने की बात भी एक आपेक्षिक अंग है। इसी तरह अन्य कवियों की तुलना में जो निष्कर्ष उसने निकाले हैं वे भी सर्वसम्मत नहीं माने जा सकते। फिर भी कुछ तथ्य तो निश्चय ही सर्वकालीन माने जाएंगे।

प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही काव्यशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए उपादेय है। भाषा और विषय प्रतिपादन की शैली बड़ी सुगठित और प्रभावपूर्ण है।

अनुवाद में मौलिकता का पूरा आनन्द आता है। अन्त में नाम परिचय शीर्षक से विस्तृत टिप्पणी भी है।

नई पुस्तकें (कविता)

१ नंददास, लेखक—आरसी प्रसाद सिंह
२ कान्ति-दूत, लेखक—कु० हरिश्चन्द्र देव 'चातक'
३ सूनी घाटी का गीत, लेखक—प्रभात रंजन
४ नये हस्ताक्षर, सम्पादक—जगदीश तोमर, राजेन्द्र कुमार
५ नया कवि, लेखक—सतीश प्रेमी
६ बापू के बोल, लेखक—भीष्मसिंह चौहान
७ देश का संदेश, लेखक— " "
८ भोकाश, लेखक—पं० रामकुमार त्रिपाठी

नंददास कथा काव्य है। इसमें नंददास का जीवन है। प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका के बाद श्री अरविंद का स्तवन है। अरविंद के प्रति श्रद्धांजलि दान के द्वारा कवि ने यह काव्य उनको समर्पण किया है। निश्चय ही अरविंद के प्रति स्तवन गान में कवि की प्रेरणा बहुत मुखर और अतलस्पर्शी हो उठी है। आत्मलीनता के साथ लिखी इस रचना में कवि का स्वर बहुत ऊंचा हो गया है। श्री अरविंद इस युग के सर्वाधिक अध्यात्मयोगी एवं जीवन के अन्तरद्रष्टा हैं। नंददास में काव्यत्व काफी प्रौढ़ है। प्रेम, सौन्दर्य, जीवनानुभूति के तत्व इस छोटे से काव्य में बहुत ही सुन्दर शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। पढ़ते-पढ़ते पाठक लीन हो जाता है और कवि के अन्तर्नादी स्वरों के साथ ऊपर-ऊपर उठता चला जाता है। कथा छोटी होती हुई भी वास्तविक लगती है। नंददास के भक्त जीवन की पूर्व भूमिका के रूप में यह काव्य उनकी भक्ति में ओत-प्रोत विधायिनी प्रतिभा का प्रारम्भिक दर्पण है। मुझे

इसे पढ़कर परम सन्तोष हुआ। विश्वास है पाठक को इसमें अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होगी। कवि आरसी प्रसाद का यह काव्य सौन्दय, प्रेम के चरम आश्वस्त क्षणों का प्रणयन है।

क्रान्ति-दूत लेखक हैं कुंवर हरिश्चन्द्र देव वातक। यह भी छोटा-सा सौ पेजी खण्ड काव्य है। इसमें कवि ने प्रकृति सौन्दय में मग्न एक व्यक्ति की कल्पना की है जो प्रकृति के सौन्दर्य दर्शन में मग्न है। वह हिमालय का रमणीय चित्रण करता नीचे उतरता है। एक तरफ मनुष्य समाज के दुखों से वह पीडित है दूसरी ओर प्रकृति के अनन्त अक्षय सौन्दय में राशि-राशि आनन्द बिखरा देखता है। वह हिमालय, नदी, तट, वन उपवनों में घूमता रहता है कि इसी समय एक तपस्वी उसे अपनी कन्या भेंट करते हैं। दोनों मिलकर मानव समाज का दुख दूर करने की प्रतिज्ञा लेकर चलते हैं और वे दोनों ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का वणन करते मनुष्य के प्रभावी दुख में लीन हो जाते हैं।

काव्य अंश कुछ अन्त स्थलों को छोड़कर ठीक है। वर्णन में नवीनता है किन्तु कथा प्रवाहहीन एव बहुत कृश है। लगता है जैसे क्रान्ति-दूत प्रकृति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सारे काव्य को पढ जाने के बाद यह जानना शेष रह जाता है कि वह व्यक्ति क्रान्ति-दूत किस रूप में था। वह एक विचारक हो सकता है, क्रान्ति-दूत उसे कहना गलत है। रचना में कथन गठन बहुत शिथिल एव साधारण है। मैं इसको अच्छा कविता सग्रह कहना चाहूंगा, खण्ड काव्य नहीं।

सूनी घाटी का गीत काव्य सग्रह है। लेखक नवयुवक है और यह उनकी पहली रचना है। नई कविता में अपने पूर्ण विश्वास के साथ कवि ने अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं। वह मानता है आज के लिए कविता का यही रूप ग्राह्य है। कुछ रचनाए निश्चय ही कवि के उज्ज्वल भविष्य की ओर सकेत करती हैं। शेष साधारण है।

नये हस्ताक्षर इसमें ग्वालियर के ६३ कवियों की रचनायें सगृहीत हैं। इनमें श्री वीरेन्द्र मिश्र को छोड़कर प्राय सभी नए कवि हैं। कुछ कविताए काफी सुन्दर हैं। पढ़कर लगता है जैसे कवि का हृदय कुछ कहने को छटपटा रहा हो। इस प्रकार के सग्रहों का जो प्रयोजन होना चाहिए वह इसके द्वारा पूर्ण हुआ है। हम इस सग्रह की उदीयमान कलिकाओं का स्वागत करते हैं।

नया कवि, नयी कविता लेखक--प्रिंस सतीश प्रेमी, हरि प्रकाशन, पठानकोट, पृष्ठ सख्या—६, मूल्य—१) रु०

प्रस्तुत पुस्तिका 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत को चरितार्थ करती है। छोटे-छोटे भावों के समन्वय से सतीश प्रेमी ने कविता करने की चेष्टा की है। परिश्रम और लगन की आवश्यकता है, विश्वास है, कवि को इससे लाभ होगा।

भोकाश लेखक—प० रामकुमार त्रिपाठी प्रकाशक—वही, पृष्ठ सख्या—७४, मूल्य—१५ आने।

भोकाश एक हास्य-व्यग्य प्रधान भोजपुरी काव्य पुस्तिका है। प्रस्तुत काव्य रचना सात मण्डलों में विभक्त है। इस काव्य रचना में कहीं-कहीं सुन्दर हास्य और व्यग्य दिखाई पड़ता है। जैसे--चौथे मण्डल की 'पढइब' का कुछ अंश देखिए--

ल लइकी कालेज पढइब
सूना मुह पोतइब
अपने ओकरा कुछ ना आवे
कहला पर अगुठा चमकावे
और भये मुह सु सु वाही
चूल्हा चाह चढइब--
ल लइकी

एमे जीए सब कुछ कइली
लाज चाटि के लेडी भइली
ई कोठरी ना अपने शरिह
भाड़ू रोज चलइब--
ल लइकी

पुराने ढग के हास्य और व्यग्य की कमी को पूरा करने की कुछ सम्भावना लेखक से की जा सकती है। पुस्तक की छपाई सुन्दर है, और विश्वास है लेखक उत्तरोत्तर उन्नति करेगा।

बापू के बोल लेखक—भीमसिंह चौहान, नारायण प्रकाशन, लश्कर, (म० प्र०), पृष्ठ सख्या—३६, मूल्य आठ आना।

इस पुस्तिका का दूसरा सस्करण है, यह बालकों और नवशिक्षितों के लिए रची गई है। बापू पर लिख कर लेखक बनने वालों में प्रस्तुत पुस्तिका के लेखक भी हैं। देश के नवनिर्माण, देश भक्ति आदि विषयों के साथ-साथ ईश्वर भक्ति, धर्म, नियम और आचरण को लेकर काव्य में बाधने का चौहान ने प्रयत्न किया है। पुस्तक बालकोपयोगी अवश्य है।

देश का सन्देश लेखक—भीमसिंह चौहान, नारायण प्रकाशन, लश्कर, पृष्ठ सख्या—५६ मूल्य—१) रु०

प्रस्तुत पुस्तक जनविकास एव राष्ट्रीय गीतों का सकलन है। अधिकांश गीत प्रकाशित एव प्रचारित है। देश के नेताओं, विकास योजनाओं, एव गरीबी निवारण आदि पर लेखक ने इसे प्रस्तुत किया है। इसको कविता मानना कठिन है।

—उदयशंकर भट्ट



सम्पादकीय

नहरों का सवाल

यह खुशी की बात है कि ११ वर्षों के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच का एक झगड़ा सुलझने जा रहा है। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, नहरों के बारे में उसका रुख बहुत स्पष्ट और युक्तियुक्त था। संयुक्त पंजाब में ६ नदियां थीं—सिन्ध, जेहलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलुज। इनमें से ५ का उद्गम तो भारत में है (केवल सिन्ध को छोड़ कर, जिसका उद्गम तिब्बत में है) पर अन्त में सभी नदियां पाकिस्तान में चली जाती हैं। जहां तक इन नदियों से लाभ उठाने का प्रश्न है, सिन्ध और चिनाब भारत के किसी क्षेत्र के विशेष काम नहीं आतीं, जेहलम काश्मीर घाटी के काम आती है, रावी का कुछ भाग भारत के समतल में भी है। रावी में से एक बड़ी नहर बहुत समय पूर्व निकाली गई थी, जो भारत की भूमि का सिंचन करती है। शेष व्यास और सतलुज काफी अंश तक भारत के काम आती हैं।

स्थिति यह थी कि विभाजन से पूर्व पंजाब में नहरी सिंचाई को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। तब का पंजाब भारत का सर्वोत्तम गेहूं-उत्पादक था और इस उत्पादन में लायलपुर और मौंटगोमरी के दो जिलों का बहुत महत्वपूर्ण भाग था। ये दोनों जिले पिछले १०० वर्षों में ही विकसित किए गए थे। इन दोनों जिलों में तथा पश्चिमी पंजाब के अन्य जिलों में भी नहरों और उनसे निकलने वाली जल-प्रणालियों का जाल-सा बिछा दिया गया था। इन सब पर सम्पूर्ण पंजाब का करोड़ों रुपया व्यय आया था और मुख्यत इन्हीं नहरों की बदौलत पंजाब भारत का अत्यन्त श्रेष्ठ कृषि उत्पादक सूबा बन गया था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पश्चिमी पंजाब में नहरों का निर्माण पूर्वी पंजाब की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप से किया गया था। पश्चिमी पंजाब का सिंचन करने वाली कई बड़ी-बड़ी नहरें पूर्वी पंजाब की नदियों से निकाली गई थीं।

विभाजन के बाद जब एक पंजाब के दो पंजाब बन गए तो पूर्वी पंजाब, जो भारत में था, के कृषि विकास की ओर भारत सरकार ने ध्यान दिया। पूर्वी नदियां—सतलुज, व्यास और रावी—से भी उसे सिंचित किया जा सकता था। बल्कि राजस्थान के काफी बड़े भाग की सिंचाई भी केवल इन्हीं भारतीय नदियों द्वारा की जा सकती थी। स्वभावत भारत ने यह कार्य प्रारम्भ किया। इस पर पाकिस्तान सरकार ने जो एतराज किया और उस पर जो इतना बड़ा तूफान उठ खड़ा हुआ, उस सब के सम्बन्ध में इन कालमों में कितनी ही बार लिखा जा चुका है।

इस सम्बन्ध में भारत ने जो उदारतापूर्ण व्यवहार किया, वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आदर्श गिना जा सकता है। अपने पड़ोसी राज्य से भारत के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहें, इसी उद्देश्य से भारत इस बात के लिए भी तैयार हो गया कि पाकिस्तान की जिन नहरों में भारतीय नदियों से पानी जाता है, उनमें पाकिस्तानी नदियों से पानी पहुंचाने का व्यय वह दे देगा। उक्त उद्देश्य से ही भारत ने इस मामले को भारत-पाकिस्तान के अन्य मामलों में नहीं मिला दिया, अर्थात भारत को जो बड़ी-बड़ी रकमें पाकिस्तान से लेनी हैं, उनका सवाल भारत ने इस सिलसिले में नहीं उठाया। शान्ति और मित्रता के इसी उद्देश्य से भारत ने यह स्थिति भी नहीं ली कि जब पश्चिमी पंजाब की नहरों का निर्माण सम्मिलित पंजाब के व्यय से हुआ था, तो पूर्वी पंजाब में भी नहरों के विकास को पश्चिमी पंजाब के स्तर पर लाने में जो व्यय आएगा, वह पाकिस्तान को देना चाहिए।

परन्तु भारत के शान्तिपूर्ण रुख से पाकिस्तान ने यह लाभ उठाने का प्रयत्न किया कि अपनी मांग बहुत अधिक बढ़ा दी और नहरों के इस मामले के हल को टालना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि आज १२ वर्षों से यह मामला त्रिशंकु के समान लटका हुआ है। लाचार होकर भारत ने यह घोषणा कर दी थी कि १९६२ से भारत उक्त तीनों भारतीय नदियों के पानी का यथेष्ट व्यवहार करेगा।

हाल ही में वर्ल्ड बैंक के अध्यक्ष श्री युजीन ब्लैक के प्रयत्न से यह विकट समस्या सुलझने की पूरी आशा हो गई है। यह सिद्धान्त पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया है, कि सतलुज, व्यास और रावी के पानी पर भारत का अधिकार है और चिनाब, जेहलम और सिन्ध के पानी पर (पहली सीमा के बाद) पाकिस्तान का। जब तक पाकिस्तान की नदियों से उसकी नहरों में पानी पहुंचने की व्यवस्था नहीं हो जाती, भारत की नदियों से उसे पानी दिया जाता रहेगा। १० वर्षों में यह व्यवस्था कर ली जाएगी कि दोनों देश अपनी ही नदियों द्वारा लाभान्वित हों। भारत को अपने विकास के लिए जल की व्यवस्था करने में वर्ल्ड बैंक ने यथेष्ट सहायता करने का वचन दिया है। इस सम्पूर्ण कार्य में, जो इस सम्बन्ध में पाकिस्तान और भारत में होगा, ५०० करोड़ रुपया व्यय आएगा। यह कार्य कितना बड़ा है, उसका अन्दाज इसी बात से हो सकता है कि यह राशि भारत की तीसरी योजना के कुल अनुमानित व्यय का ५० प्रतिशत है। इस कार्य के लिए वर्ल्ड बैंक एक विशेष फण्ड (इण्डस बैसी फण्ड) का प्रारम्भ भी कर रहा है। यह सन्तोष का विषय है कि दोनों पड़ोसी राज्यों का एक पुराना झगड़ा निबट जाने के पूरे आसार दिखाई दे रहे हैं

पाकिस्तान की नई राजधानी

जनरल अयूब खान की सरकार ने यह निश्चय किया है कि पाकिस्तान की राजधानी कराची से हटा कर रावलपिंडी के निकट पोठोहार नामक स्थान पर ले जाई जाए। रावलपिण्डी से केवल ४ मील दूरी पर यह सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद तराई प्रारम्भ होती है और मरी के पहाड़ों तक जा लगती है। इसकी ऊंचाई १,५०० फुट के लगभग है। हम पड़ोसी राज्य की इस नई राजधानी के लिए मंगल कामना करते हैं। यह स्थान काश्मीर की सीमा से सड़क द्वारा १०० मील के लगभग है, सीधा आकाशीय अन्तर ५० मील से अधिक नहीं होगा। आशा है, इस राजधानी परिवर्तन से उक्त मामले में किसी तरह की दलील आदि का लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया जाएगा।

स्थायी महत्व की पुस्तकें

	मूल्य	डाक व्यय
	रु० नए पैसे	रु० नए पैसे
अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश ([illegible])	३५.००	
भारत के लोग ([illegible])	१२.५०	
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड १) [illegible]		
कपड़े की जिल्द	५.५०	०.८५
कागज की जिल्द	३.००	०.७०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२-१९५६)	४.५०	०.८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४९-५३)	५.००	१.३५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण)	५.००	१.२०
भारतीय कविता १९५३	५.००	१.७५
भारत १९५८	३.५०	०.६५
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष	३.००	०.८५
भारत के बौद्ध तीर्थ	४.००	०.३०
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष	२.००	०.२५
दसवाँ वर्ष	१.५०	०.२५
अशोक के धर्मलेख	१.००	०.२५

(रजिस्ट्रेशन व्यय सहित)



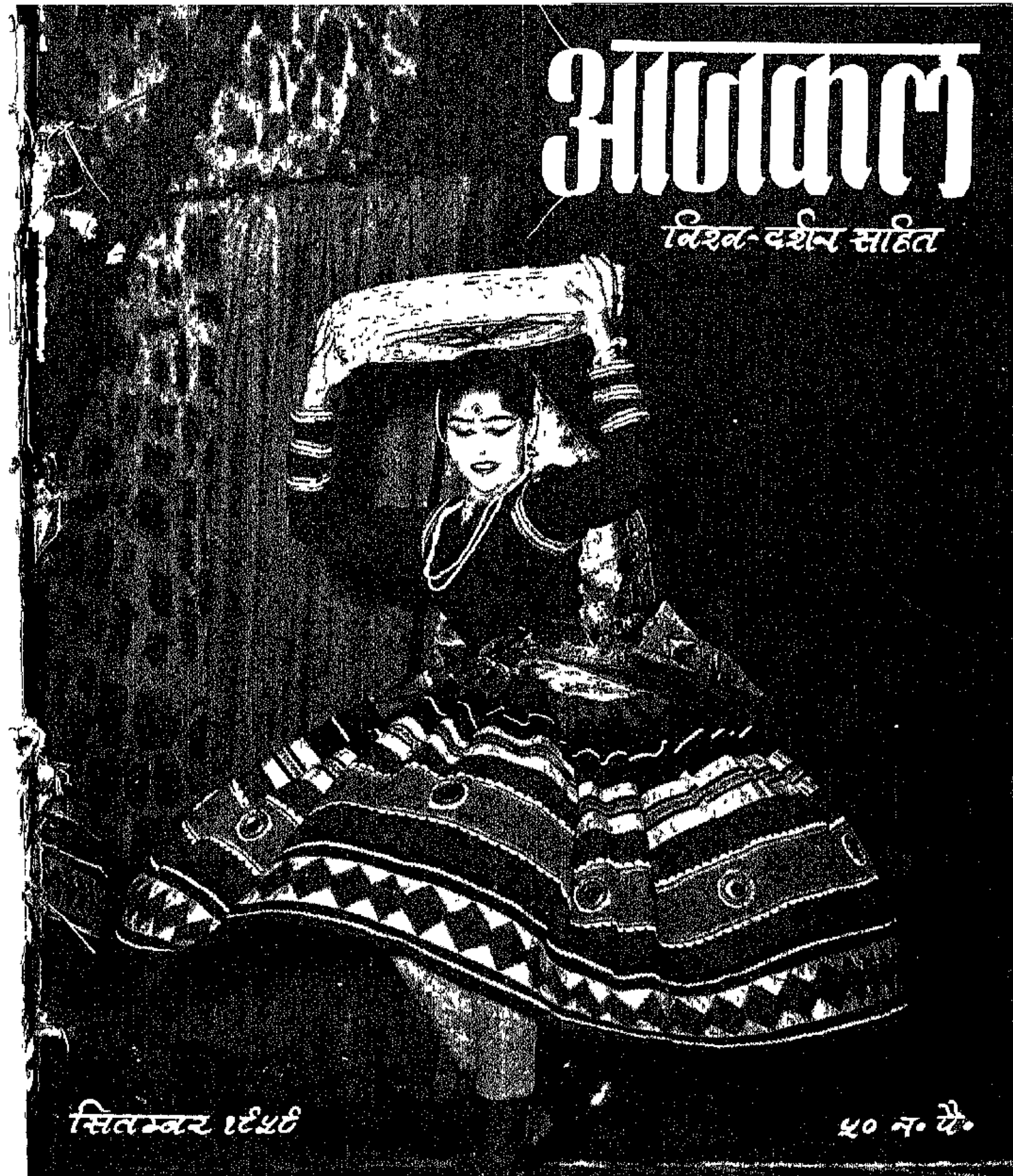


पब्लिकेशन्स डिवीजन

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली – ८

Edited and published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad

Regd No D- 510


आजकल
विश्व-दर्शन सहित
सितम्बर १९५९
५० न० पै०

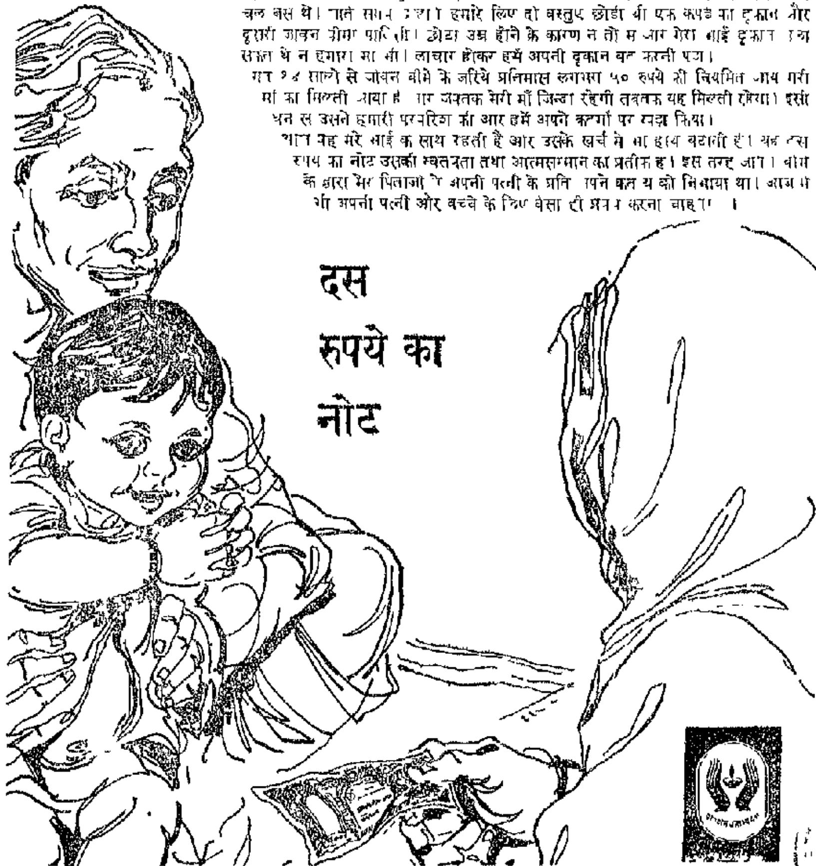
"एजेंट साहब, मेरी पत्नी के लिए एक ऐसी योजना बनाइए जिससे उसे नियमित आय मिलती रहे" यह बात एक नवयुवक के मुंह से सुनकर बीमा एजेंट के अचरज का ठिकाना न रहा। उस दम बीमा एजेंट ने पूछा, "आपका यह विचार एकाएक कैसे बना?"

सुनिये, सब कुछ बताता हूं, मैं अभी अभी अपने गांव से वापिस आया हूं। अपने प्रथम बालक को साथ लेकर मैं गया था ताकि मेरी मां अपने पोते को देख सके। जिस दिन हम वहां से निकलने वाले थे मेरी मां उठकर कमरे में गयीं और दस रुपये का नोट लेकर आयीं। उस नोट को मेरे बच्चे की मुट्ठी में रखकर बोलीं "यह तुम्हारे बच्चे के लिए है।"

इस दस रुपये के नोट ने मुझे कई साल पहले की घटना याद दिलायी। उस समय मेरे पिताजी चल बसे थे। जाते समय उन्होंने हमारे लिए दो वस्तुएं छोड़ी थीं एक कपड़े की दूकान और दूसरी जीवन बीमा पालिसी। छोटी उम्र होने के कारण न तो मैं और मेरा भाई दूकान चला सकते थे न हमारी मां ही। लाचार होकर हमें अपनी दूकान बन्द करनी पड़ी।

गत १४ सालों से जीवन बीमे के जरिये प्रतिमास लगभग ५० रुपये की नियमित आय मेरी मां को मिलती आयी है और जबतक मेरी मां जिन्दा रहेगी तबतक यह मिलती रहेगी। इसी धन से उसने हमारी परवरिश की और हमें अपने कदमों पर खड़ा किया।

आज वह मेरे भाई के साथ रहती है और उसके खर्च में भी हाथ बटाती है। यह दस रुपये का नोट उसकी स्वतन्त्रता तथा आत्मसम्मान का प्रतीक है। इस तरह जीवन बीमे के द्वारा मेरे पिताजी ने अपनी पत्नी के प्रति अपने कर्तव्य को निभाया था। आज मैं भी अपनी पत्नी और बच्चे के लिए वैसा ही प्रबन्ध करना चाहता हूं।







लाइफ़ इन्श्योरेन्स कॉर्पोरेशन ऑफ़ इन्डिया



वर्ष १५ अंक ५ पूर्णांक १८३

सितम्बर १९५९

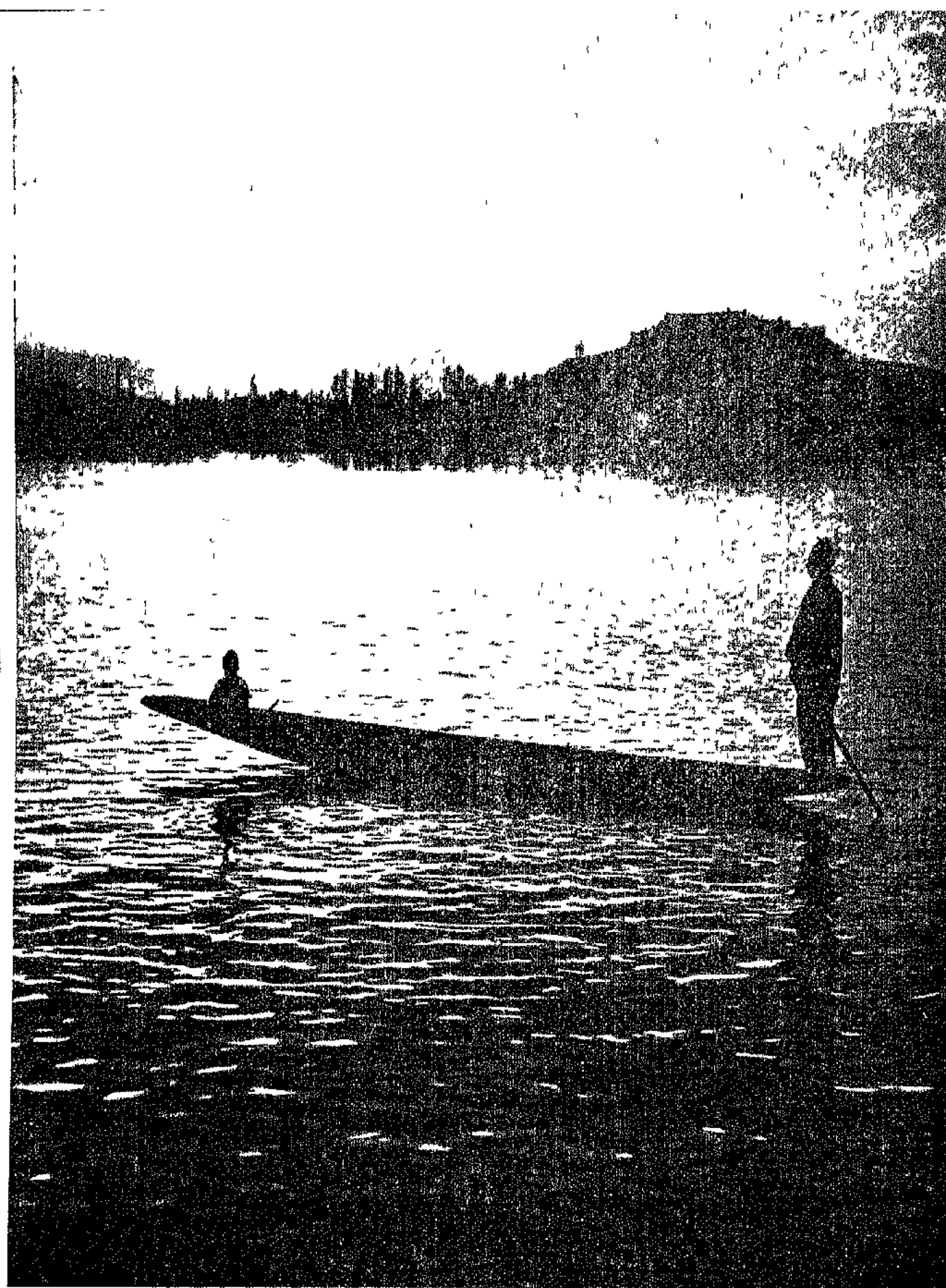
(१० भाद्रपद से ८ आश्विन १८८१)

आवरण चित्र युवक समारोह का एक चित्र
इस मास का फोटो 'डल झील में सूर्यास्त' फोटो हरबंस सिंह
अन्तिम पृष्ठ पर 'विमल वसाटी मन्दिर का भीतरी दृश्य' फोटो टी० काशीनाथ

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, बारह सेंट या नौ पेंस





'डल झील में सूर्यास्त' फोटो हरबंस सिंह



वष १५ सितम्बर १९५९ अक ५

बैरंग बेनाम चिट्ठियां

रामदरश मिश्र

कब से यह बैरग बेनाम चिट्ठी लिए हुए
यह डाकिया
दर-दर घूम रहा है
कोई नही है वारिस इस चिट्ठी का ।
कौन जाने
किसका अनकहा दर्द
किसके नाम
इस बन्द लिफाफे में पत्ते की तरह काप रहा हे ?

मैने भी तो
एक बैरग चिट्ठी छोडी हे
पता नही किसके नाम ?
शायद वह भी इसी तरह
सतरो के ओठो में अपने दर्द कसे
यहा वहा घूम रही होगी

मित्रो ।
हमारी तुम्हारी ये बैरग लावारिस चिट्ठिया
किसी दिन लावारिस जगहो पर
पर-कटे पछी की तरह पडी-पडी फडफडाएगी
और कभी किसी दिन कोई अजनबी
इन्हें कौतूहलवश उठा कर शायद पढेगा
तो तडप उठेगा--
ओह ! बहुत दिन पहले किसी ने ये चिट्ठिया
शायद मेरे ही नाम लिखी थी ।

प्रतिमा की स्वगत इच्छा

गोपाल प्रसाद

मेरी आवाज बहुत मीठी है ।
(मुझे गूगी हो जाने दो)
मैं मत्स्य आखो वाली हू ।
(मुझे अधी हो जाने दो)
मैं बहुत बहुत सुन्दर हू ।
(मुझे पत्थर हो जाने दो)
सुनो,
ओ सौन्दर्यदर्शी !

ध्वस के आने के पहले
उसे लील जाओ ।
फिर मुझे जीवित समझ कर
प्यार कर लेना ।
(मैं अजन्ता की कला हू)
तुम्हारे प्यार की कसम
मैं शान्ति चाहती हू ।

कहावत और लौकिक न्याय

कन्हैयालाल सहल

सन् १८७७ की डा० बुहलर की काश्मीर रिपोर्ट में न्याय शब्द का प्रयोग परिचित उदाहरणों से निकाले हुए अनुमान के अर्थ में किया गया था। कर्नल जैकब ने न्याय के पर्याय रूप में 'मैक्जिम' शब्द को ग्रहण किया था, किन्तु इस पर्याय से वे सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने तो केवल बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा न्याय के अर्थ में गृहीत मैक्जिम शब्द को देखकर ही इसे अपनाया था, अन्यथा उनकी मान्यता थी कि अंग्रेजी भाषा में न्याय के अर्थ को पूर्णतः व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त शब्द है ही नहीं। उन्होंने न्याय के अन्तर्गत दृष्टांत, नियम और अधिकरण तीनों का सन्निवेश किया था। अंग्रेजी का मैक्जिम शब्द इतना व्यापक नहीं कि वह उक्त तीनों प्रकार के अर्थों का वाचक बन सके। इसलिए जैकब के मतानुसार तो 'न्याय' शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करके अंग्रेजी भाषा में भी इसे ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेना चाहिए।

हिन्दी शब्द सागर के सम्पादकों की दृष्टि में 'न्याय' वह दृष्टांत-वाक्य है जिसका व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है। यह कोई विलक्षण घटना सूचित करने वाली उक्ति है जो उपस्थित बात पर घटती हो। न्याय के पर्याय के रूप में सम्पादकों ने कहावत शब्द का भी प्रयोग किया है। ऐसे न्याय या दृष्टांत वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं, और उनका व्यवहार प्रायः होता है।

संस्कृत में लौकिक न्यायों के अन्तर्गत बहुसंख्यक सूत्र उस समय की या उससे पहले की लोक-विश्रुत कहावतें ही हैं। उनमें जो युक्तिमूलक दृष्टांत हैं, वे किसी एक समय के नहीं, भिन्न भिन्न परिस्थितियों में पड़ कर बुद्धिमानों को जो सच्चे अनुभव हुए, उन्हीं को उन्होंने सूत्रबद्ध करके जनता को सौंप दिया। जनता ने उनको उपयोगी समझ कर अपना लिया। इस प्रकार भुक्तभोगियों के कितने ही सच्चे हृदयोद्‌गार लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गये।

संस्कृत-साहित्य में सहस्रों स्थलों पर न्याय का प्रयोग हुआ है। इसका व्यवहार अधिकतर टीका टिप्पणी, समालोचना, व्याख्या, शंका-समाधान आदि में देखा जाता है। ध्यानपूर्वक मनन करने से यह सर्वथा स्पष्ट हो जायगा कि न्याय में किसी घटना, किसी कहानी अथवा किसी विशेष अर्थ के वृहत भाव सूत्र रूप में गुम्फित रहते हैं। 'देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर' वाली उक्ति यहां अक्षरशः चरितार्थ होती है। न्याय आकार-प्रकार में तो बहुत छोटा होता है पर भाव इसका बहुत गभीर रहता है। पूर्व समय में मुद्रण-यन्त्र के अभाव के कारण सूत्र-पद्धति प्रचलित थी और इसी से लोकोक्तियां भी न्याय शब्द के नाम पर सूत्र-रूप में ग्रथित कर दी गयी थीं। प्रयोग में न्याय शब्द भी जुटा रहता है। यथा, घुणाक्षर न्याय, काकतालीय-न्याय, पंकप्रक्षालनन्याय, स्थालीपुलाकन्याय। न्याय शब्द का व्यवहार कभी उपमा, कभी नियम, कभी सिद्धांत, कभी उक्ति, कभी कहानी, तथा कभी विशेष कार्य के अर्थ में होते पाया गया है। प्रसंगानुसार अर्थव्यंजना होती है। प्रत्येक न्याय में विशेष भाव की व्यंजना रहती है और ध्वन्यात्मक रूप से इसका प्रयोग होता है।[1]

संस्कृत के बहुत से निबन्धों में लोकप्रसिद्ध युक्ति को न्याय की संज्ञा दी गई है।[2]

लोकोक्ति और न्याय दोनों एक ही हैं अथवा इन दोनों में अन्तर है, इस पर विचार करना आवश्यक है। न्याय के स्वरूप का विवेचन करने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है

१ अनेक न्याय ऐसे होते हैं जो केवल एक पदात्मक है। मात्स्य न्याय, टिट्टिभ न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। विश्व में शायद ही कोई ऐसी लोकोक्ति हो जो केवल एक पद में समाप्त हो जाती है। छोटी से छोटी लोकोक्ति के लिये भी कम से कम दो पद आवश्यक हैं। ट्रेंच के मतानुसार Voll Toll जर्मन लोकोक्ति दुनिया की सबसे छोटी कहावत है।

२ बहुत से न्याय अथवा अधिकांश न्याय ऐसे हैं जो द्विशब्दात्मक हैं और जिनका सम्पूर्ण वाक्य की भांति प्रयोग नहीं होता। उदाहरणार्थ कुछ न्याय लीजिये—अजाकृपाणी न्याय, अन्धगज न्याय, काकतालीय न्याय, कूपमण्डूक न्याय, जामातृशुद्धि न्याय आदि। उक्त सभी न्यायों के मूल में कोई न कोई कथा मिलती है, जिसको जाने बिना इन न्यायों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। बहुत सी कहावतें भी ऐसी होती हैं जिनके पीछे कोई न कोई कथा पाई जाती है, किन्तु कहावत सामान्यतः सम्पूर्ण वाक्य की भांति प्रयुक्त होती है, दो-दो शब्दों के पदांश की तरह नहीं। कहावती रूप में क्रिया का कभी-कभी अभाव होने पर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

३ कुछ न्याय ऐसे हैं जिन्हें लोक-प्रसिद्ध उपमाओं का नाम दिया जा सकता है। ऊषरवृष्टि न्याय, करस्थामलक न्याय, चंक्रमण न्याय, अरण्य-रोदन न्याय, अजागलस्तन न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। कहावती उपमाओं के भी उदाहरण मिलते हैं किन्तु लौकिक न्यायों में इस प्रकार की उपमाओं का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

४ अनेक न्याय ऐसे भी उपलब्ध हैं जिन्हें यदि लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जाय तो किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं दिखलायी पड़ता। नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे हैं उनमें लोकोक्ति के सभी लक्षण मिलते हैं।

क अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् अर्थात् यदि समीप ही मधु मिलता हो तो पर्वत पर जाने से क्या प्रयोजन ?

ख भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधि। लहसुन खाने पर भी रोग शान्त न हुआ। जैकब ने इस न्याय के लिए मैक्जिम शब्द का प्रयोग न कर प्रोवर्ब शब्द का प्रयोग किया है।

---

१ 'संस्कृत लोकोक्ति सुधा' श्री जगदम्बाशरण, पुस्तक परिचय ख और ग पृष्ठ।

२ 'लोकप्रसिद्धयुक्तिन्याय' भूमिका भुवनेश लौकिक न्याय साहस्री।

Redg No D-510

ग वर साशयिकान्निष्कादसाशयिक कार्षापण अर्थात् अनिश्चित निष्क की अपेक्षा निश्चित कार्षापण श्रेष्ठ है।

घ वरमद्य कपोत श्वो मयूरात्। कल के मयूर से आज का कपोत अच्छा। वात्स्यायन कामसूत्र के द्वितीय अध्याय में ग और घ सम्बन्धी उक्तियो का प्रयोग हुआ है, जिन्हें जैकब भी प्रोवर्ब कहना ही उपयुक्त समझते है।

ङ अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपात पदे पदे। जो अन्धे के सहारे लगा है, उसे पद-पद पर गिरना पडता है। इस न्याय का प्रयोग भामती में हुआ है, जहा इसका आभाणक शब्द द्वारा उल्लेख किया गया है।[1]

च सव पद हस्तिपदे निमग्नम। हाथी के पैर में सब पर समा जाते हैं।

छ शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्य। सप सिर पर और वैद्य देशान्तर में।

ज विक्रीते करिणि किमकुशे विवाद? हाथी बिक जाने पर अकुश का विवाद कैसा?

झ पुत्रलिप्सया देव भजन्त्या भर्तापि नष्ट। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से देवता की उपासना करती हुई का पति भी नष्ट हो गया।

ञ वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणि लब्धवान्। कौडी की तलाश करते हुए चिन्तामणि हाथ लग गयी। कबीर की साखियो मे इसका निम्नलिखित रूप उपलब्ध होता है।

चौहटे चिन्तामणि चढी, हाडी मारत हाथ।

५ कुछ न्याय ऐसे भी है जिनके कहावती रूप आज भी उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ

क गोमहिषीन्याय।

एक राजस्थानी लोकोक्ति में कहा गया है कि गाय की भैस के लागै और भैस की गाय के लागै। अर्थात गाय का भैस से क्या सम्बन्ध और भैस का गाय से क्या सम्बन्ध?

ख तरक्षडाकिनीन्याय। इसी न्याय का प्रतिरूप 'डाकण और जरख चढी' राजस्थानी भाषा में उपलब्ध है।

६ जैकब द्वारा सगृहीत और सम्पादित लौकिक न्यायाजलि में कही-कहीं न्याय के स्थान में निदर्शन और नियम शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा

क तम प्रकाशनिदर्शनम् अर्थात् अधकार और प्रकाश की युगपत् स्थिति का दृष्टात।

ख तैलकलुषितशालिबीजाकुरानुदयनियम। अर्थात् तैल से कलुषित शालि बीज के अकुरित न होने का नियम।

७ कही-कही प्रश्नोत्तर के रूप में भी न्यायो के उदाहरण मिलते है। जैसे,

प्रश्न जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीप
सखीजन पश्यति कौतुक मे।
क्षणैकमात्र कुरु कान्त धैर्यं
बुभुक्षित किं द्विकरेण भुक्ते?

उत्तर जागर्तु लोको ज्वलतु प्रदीप
सखीजन पश्यतु कौतुकन्ते
क्षणकमात्र न करोमि धैर्यं
बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित्॥

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री के सपादक ने बुभुक्षित किं द्विकरेण भुक्ते और बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित् की न्यायो में गणना की है।

८ न्यायो में एक आभाणक न्याय की गणना की गयी है। वराट-कान्वेषणे प्रवृत्तश्चितामणि लब्धवान इस आभाणक न्याय के अन्तर्गत रखा गया है। आनन्दघनकृत कुथुनाथ स्तवन भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है, जहा कहा गया है

रजनी बासर बसती ऊजड, गयण पयालो जाय।
साप खाय नै मुखडू थोथो, श्रे ऊखाणो न्याय॥

साप दूसरे को काटता है किन्तु इससे साप का पेट नही भरता। इसे ऊखाणो न्याय या आभाणक न्याय कहा गया है।

९ कुछ कवियो की उक्तिया भी ऐसी है, जिन्हें न्याय के अन्तर्गत कर लिया गया है। उदाहरणार्थ

क छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति। (विष्णु शर्मा)

ख सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता। (श्री मद्भगवद्गीता)

न्याय के उक्त स्वरूपो को देखने से स्पष्ट है कि सस्कृत साहित्य में न्याय शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत लोक-प्रचलित पदार्थो, प्रसिद्ध उपमाओ, विशुद्ध दृष्टातो, सूक्तियो तथा आभाणको एव लोकोक्तियो सभी को स्थान मिल गया है। बहुत से न्याय ऐसे हैं जिन्हें कहावत की सज्ञा दी जा सकती है। अनेक न्याय ऐसे है जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से लोकोक्ति तो नही कहा जा सकता, किन्तु जो सूत्र-शैली में ग्रथित ऐसे पद-समुच्चय है जो अपने में गभीर अर्थ छिपाये हुए है। दार्शनिक ग्रन्थो के भाष्यो में इस प्रकार के न्यायो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। योगाद्रूढिर्बलीयसी जैसे अनेक शास्त्रीय न्याय भी है जो कहावतो की अपेक्षा सिद्धात, नियम आदि के अधिक सन्निकट हैं।

यही कारण है कि कहावत और न्याय के आपेक्षिक विवेचन में शास्त्रीय न्यायो को जान बूझ कर छोड दिया गया है।

न्यायनुमा कहावते

सस्कृत में जिस प्रकार अजा कृपाणी न्याय आदि प्रचलित है, उसी प्रकार राजस्थानी भाषा में कुछ ऐसे दृष्टात है जो कहावतो की भाति ही प्रचलित है। ऐसे न्यायनुमा दृष्टातो के कुछ उदाहरण यहा दिये जा रहे हैं —

१ **बारठजी की घोडी**—एक बारठजी किसी बडे सरदार के यहा ठहरे हुए थे। सयोगवश उसी सरदार के पास एक दूसरे समीपवर्ती ठिकाने के ठाकुर साहब का भी आगमन हुआ। अपना बडप्पन दिखाने के लिए समागत ठाकुर साहब ने बारठजी से बडी नम्रता के साथ कहा कि कभी इस सेवक की झोपडी भी पवित्र कीजिये। थोडी देर अपने काम की बात करके ठाकुर साहब वापस चले गये। उन्हें यह स्वप्न में भी खयाल न था कि बारठजी आ ही धमकेंगे। दस-बीस दिनो के बाद बारठजी एक दिन वहा से सम्मानित होकर विदा हुए। वे अपने साथ एक घोडी रखते थे। ज्यो ही घोडी पर सवार होकर बारठजी अग्रसर हुए, उन्हें उन ठाकुर साहब के आग्रहपूर्ण निमन्त्रण की याद आई। ठाकुर साहब का गाव

(शेष पृष्ठ १८ पर)

१ तथा आभाणक अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपात पदे पदे। (भामती)

दिवोदास

राहुल सांकृत्यायन

(ऋग्वेद भारत और हिन्द यूरोपीय भाषाओं की सबसे पुरानी पुस्तक तो है ही, साथ ही वह अपने समय के इतिहास और भूगोल की सबसे पुरानी और अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री देता है। मैंने सप्त सिन्धु (पंजाब) के आदिम आर्यों का जीवन-चित्र उपस्थित करने के खयाल से उस सामग्री का आलोडन किया। वह स्वयं एक पुस्तक बन गया, और 'दिवोदास' का परिशिष्ट है, जो 'ऋग्वेदिक आर्य' के रूप में प्रकाशित हो चुका है। सप्त सिन्धु पर अधिकार करने के बाद प्राय तीन सौ वर्षों तक आर्य अनेक कबीलों (जनों) के रूप में रहते रहे। बाहर वालों से युद्ध होने पर पांचों मुख्य जन तथा उनके उपजन एक हो जाते, नहीं तो आपस में भी लड़ते भिड़ते रहते। व्यास से यमुना और हिमालय की तराई से राजस्थान के मरुस्थल तक वह फैल गए थे। उनकी गौओं, घोड़ों, भेड़ों, बकरियों ने हिमालय की तराई पर जब अधिकार करना चाहा, तो दुर्दान्त किलातों (किरातों) से उनका सामना हुआ। ऋग्वेद उन्हें दस्यु और दास के नाम से ही जानता है। पर उस युग में इन पहाड़ों में किरात नामक मंगोलायित जाति ही रहती थी। दास लोग आजकल गद्दियों, पहाड़ी गूजरों और ऊपरी कुमाउनियों की तरह अपने पशुओं को लेकर जाड़ों में तराई में 'घमलत्ती' करने आते थे। अम्बाला की तराई के संघर्ष में आर्य अपेक्षाकृत कम कठिनाई से सफल हुए और उद्दाम किलातों को वहां से हमेशा के लिए भगा दिया। पर, सतलुज से रावी तक फैली तराई के लिए शंबर ने आर्यों को लोहे के चने चबवाए और चालीसवें साल दिवोदास ने दस्युराज शंबर को हराया और मारा। इस संघर्ष में सभी आर्य जनों ने दिवोदास के नेतृत्व को स्वीकार करके भीषण युद्ध किया। आर्यों में इसके लिए एक संयुक्त केन्द्रीय सरकार कायम हुई। दिवोदास के नेतृत्व में आर्यों को किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, उनके नेताओं ने कैसे अपने मार्ग को साफ किया, एवं उस समय सप्त सिन्धु के नाना जातिक लोगों का जीवन कैसा था, इसी का सजीव चित्रण इस उपन्यास में आया है।)

अध्याय १

सात पुरियों का ध्वंस (१२२० ई० पू०)

'सप्तयत पुर शर्म शारदीर्दर्त् दासी''

सप्तसिन्धु (पंजाब) की गर्मियां असह्य होती हैं। वहां के शरद के बारे में वह बात नहीं कही जा सकती, लेकिन वह कड़ी जरूर होती है। लोग उसे बड़ा सुहावना मानते हैं। सप्तसिन्धु के आर्यों के पास जीवन के आनन्द लेने के लिये समय की कमी नहीं थी। कृषि से उन्हें थोड़े से जौ पैदा करने की जरूरत थी, जिसमें सत्तू, अपूप (रोटी) का काम चल जाए। उनकी असली जीविका पशुओं पर निर्भर करती थी। वह कामना करते थे—"कल्याण हो हमारे घोड़ों, भेड़ों, बकरियों, नर-नारियों और गायों का।" (ऋक् १।४५।६)। इन्हीं अपने पशुओं को ले वह चराते रहते थे। राजा और उनमें इतना ही अन्तर था कि जहां साधारण आर्य परिवार में पशुओं की संख्या कुछ सौ होती थी वहां राजाओं के पास हजारों हजार होती थी। पणियों के समृद्ध नगरों को आर्यों ने तीन शताब्दियों पहले जीता था। वहां के नागरिक सुख के आर्य इच्छुक नहीं थे। उन्हें अरण्यों और क्षेत्रों का खुला जीवन पसन्द था। इसीलिए वह नगरों में बसने के लिए तैयार नहीं हुए। ग्राम भी उन्हें बांध नहीं सकते थे। वस्तुत ग्राम शब्द अभी परिवारों के झुण्ड के अर्थ में आता था। अपने खेतों के पास उनके कुछ घर भी होते थे, पर घरों में बसकर वह अपने हजारों पशुओं का चारण कैसे कर सकते थे। वर्षा उनके लिये सबसे कष्ट और भय का समय था, क्योंकि इस समय सातों सिन्धु ही नहीं, नब्बे स्रोत्या (छोटी नदियां) और हजारों नाले उमड़ पड़ते थे। आर्यों के घर बह जाते थे, पर उसकी उन्हें उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी कि अकस्मात् धारा के प्रबल हो जाने पर पशुओं के विनाश से। आर्य पुरोहित बराबर इन्द्र और पर्जन्य की स्तुति करते रहते थे। उनके लिये सोम (भांग) और होम तैयार करते थे। पर, देवता कब किसी के बस में हुए? एक ओर वर्षा में सारी भूमि को हरितवसना, सभी जगह पशुओं के चरने के लिये लम्बी-लम्बी घासों को देखकर उनके मन में खुशी होती थी, तो दूसरी ओर वरुण की लाल-लाल आंखें भी उनके सामने सदा रहती थीं। न जाने कब उनका इशारा पा नदियां मनमानी करने लगें।

गर्मी में इस तरह का कोई भय नहीं था। पर, वह अपने अन्तिम दो महीनों में अत्यन्त उग्र हो उठती थी। अपने ऊनी वस्त्रों, चमड़े के परिधानों को पसीने से तर देखकर दूर हटाने के वह लिये बाध्य होते थे। कभी-कभी नग्न होने का भी मन करता, पर पूर्ण नग्नता उनके समाज में पसन्द नहीं की जाती थी। शरद उन्हें बहुत प्रिय थी इसीलिये सौ शरद जीने की कामना करते थे। शरद बिताने के लिये वह सबसे उपयुक्त स्थान ढूंढते थे, जहां उनके पशुओं के लिये चरने का पूरा सुभीता, प्राणियों को शरद के आनन्द लेने का अवसर हो।

आर्यों के अब पांच नहीं पच्चीसों जन हो गये थे। लेकिन, मूल पांच जनों—पुरु, यदु, तुर्वश, द्रुह्यु और अनु—का अब भी मान ज्यादा था, अब भी वह अधिक शक्तिशाली थे। पुरु जन सप्तसिन्धु के पूर्वी अंचल पर परुष्णी (रावी) से सरस्वती तक फैला हुआ था। कुशिक, भरत, तृत्सु आदि उसकी कई शाखायें हो गई थीं, तो भी मूल पुरु जन का सम्मान अधिक था। उसके नेता (राजा) का सभी बड़ा आदर करते थे। आर्य

Redg No D 518

राजाओं और सूरियो (राजकुमारो) में उसको प्रथम स्थान मिलता था। पुरु राजवश वीरता, निर्भीकता में सबसे आगे रहता था। हरेक पौरव राजा अपने जीवन में ऐसा काम करना चाहता था, जिससे पता लगे, कि पुरुकुल की वीरता में अब भी कोई कमी नही आई। पुरु सप्तसिन्धु के पूर्वी अचल पर बसे थे। यहा यमुना के पार अब भी कृष्ण त्वचो (असुरो) की दुनिया थी। उसके उत्तर में दुर्दान्त किरात रहते थे। इस प्रकार उन्हे सघर्ष का अवसर बराबर मिलता रहता था। फिर उनकी ताबें की तलवारे कैसे भोथी हो सकती थी?

दृषद्वती (घग्घर) की कछार में दोनो तरफ घासो का मैदान वहा तक फैला हुआ था, जहा से घना जगल शुरू हो जाता था। ऐसी समतल भूमि को पा कर पणि खेतो का स्वप्न देखते, लेकिन पशुपालो को क्षेत्र से अधिक गोचर-भूमि पसन्द आती है। इसी मैदान में कही बडे-बडे सीग और बडे डील-डौल वाली गायें महाकाय वृषभो के साथ फैली हुई थी। घोडिया—अधिकतर लाल, किन्तु कुछ सवश्वेत और दूसरे रग के भी अश्व चर रहे थे। सुपुष्ट शरीर और पोरिसे भर-भर के अश्व अपने स्वामियो के सर्वप्रिय प्राणी थे। बरसातो में दृषद्वती अवश्य विकराल रूप धारण करती थी, परन्तु यह शरद का समय था। धारा इतनी रह गई थी, जितनी कि उसके आश्रित पशुओ और मनुष्यो के लिये आवश्यक थी। धारा के पास ही झोपडियो का एक समूह था, वह हाल ही में बनी थी। जगल से फूस और लकडियो को काटकर इन्हें तैयार किया गया था। रात में सिहो और द्वीपियो (बघेरो) का पशुओ के लिये डर था, इसलिये झोपडियो के बाहर की दीवारो को मजबूत लकडियो से तैयार किया गया था। नदी की ओर छोडकर इन झोपडियो की तीन तरफ दीवारें खडी की गई थी, जिनमें भी लकडी का उपयोग हुआ था। दृषद्वती यद्यपि आगे चलकर दृषदो (पत्थरो) वाली नही रह जाती थी, यहा वह सचमुच दृषद्वती थी। इस स्थान से बृहत पर्वत बहुत दूर नही थे, पर पुरुओ को उनसे कुछ लेना देना नही था।

पशुओ की सख्या और झोपडियो के विशाल ग्राम को देखने ही से मालूम हो जाता था कि यह साधारण आर्य कुलो का आवास नही है। यहा पुरुओ का राजा पुरुकुत्स रहने आया था। राजा पुरुकुत्स के साथ इतने अधिक पशुओ और पुरुषो का होना स्वाभाविक था। ग्राम में पुरुष अधिक थे, स्त्रियो की सख्या अपेक्षाकृत कम थी। तरुण आर्य दाढी रखना पसन्द नही करते थे। हा, अपनी सुनहरी मूछो पर उनको गर्व था, पर प्रौढ होते ही सुनहली दाढियो का उन्हे शौक हो जाता था। दाढियो का सम्मान कुछ अधिक था। तरुण उनके रोब में आ जाते थे, शायद यह भी कारण हो दाढी बढाने का। एक प्रौढ आर्य नेता ने स्वीकार करते कहा था—"मेरा शरीर छोटा है, मुह भी उसी के अनुकूल है, यदि रग में अन्तर न होता, तो मुझे लोग किरात कहने लगते। दाढी रखने से चेहरा जरा भारी मालूम होता है।" हो सकता है, दाढी बढ़ाने का यह भी कारण हो। फिर दाढी रखने से आदमी वप्ता (हजाम) के फदे से बच जाता है। इस बात का तो इस आयु में डर ही नही था कि कोई मुस्कराती युवती उसे देखकर भौंहें तान देगी। प्रौढ पुरुष को अब किसी तरुणी के हृदय चुराने की आशा नही हो सकती थी।

यद्यपि पुरुग्राम स्थायी ग्राम नही था, पर तो भी पशुओ-प्राणियो की सभी तरह की आवश्यकतायें तो वहा निश्चित थी, इसलिये झोपडिया निश्चित क्रम से बनी हुई है। घोडो के लिये अलग बाडे है। गायो के लिये अलग, इसी तरह भेडो-बकरियो के लिये अपने-अपने बाडे थे। अन्धेरा होने से पहले ही वह अपने-अपने बाडो में पहुचा दिये जाते। सूर्योदय के साथ दूध दुहे जाने वाली गायो को छोड बाकी जगल की ओर हाक दिये जाते। धेनुयें भी थोडी देर बाद उनका अनुसरण करती। उषा के आगमन की प्रतीक्षा हरेक ग्राम बडी उत्सुकता से किया करता। निशा का अधेरा कितने अज्ञात भयो का वाहक होता है। मनुष्य-शत्रु के किसी समय आ पडने की आशका रहती है। फिर उनसे भी अधिक सख्या में भूत प्रेत दृषद्वती के तट पर घूमा करते है। कोई आर्य योद्धा रात को अकेले हाते से बाहर जाने की कामना नही करता। तो भी दो पर दस बहुत होते है।

लकडी की बाडो वाली मोर्चाबन्दी से घिरी पुरुओ की पुरी में सर्वत्र जीवन दिखाई पडता। कुछ लोग पशुओ के बाडो की सफाई में लगे थे। स्त्रियो ने घर सभाला। तरुण अखाडे में उतरे। आर्य निर्बल को मृत के बराबर समझते। तुवि (मोटी) ग्रीवा, ऊचा कन्धा, चौडी छाती, पुष्ट पजे सम्मानित थे। स्वभावत ही वह दीर्घकाय होते। किरात और पणि उनके सामने बच्चे से दिखाई पडते। अपनी स्वाभाविक शरीर सम्पत्ति को और बढाने की उनमें बडी कामना होती। इसीलिये आर्य ग्रामो में सवेरे के वक्त अखाडे में भीड हो जाया करती। सभी शारीरिक व्यायाम मे लगते, मल्लयुद्ध का अभ्यास करते, इससे शरीर ही पुष्ट नही होता, बल्कि द्वद्वयुद्ध में बडी सहायता मिलती। प्रौढ और वृद्ध मल्ल, तरुणो को अपना हरेक कौशल सिखलाते। यहा दसियो अखाडे थे। पुरुओ का राजा स्वय एक मल्ल योद्धा था। आयु २५-२६ से अधिक नही होगी। कुछ लालिमा लिये मक्खन जैसे श्वेत उसके मुख को देखते ही आदमी कह देता, यह असाधारण पुरुष है।

पुरुकुत्स असाधारण कुल में पैदा हुआ असाधारण पुरुष था ही। पहले वह एक-एक करके सभी अखाडो में गया। उसके शरीर पर घुटनो से जरा नीचे तक का अधोवस्त्र था, ऊपर चमडे की द्रापि ऐसे बाधे हुए था, कि दाहिना हाथ बाहर निकला था। ऊनी द्रापि भी आर्य पसन्द करते, पर पुरुकुत्स को लाल चमडे की द्रापि अधिक पसन्द थी। राजा के अनुरूप उसे सोने के तारो से सवारा होना चाहिये था। लेकिन, पुरुकुत्स सादगी पसन्द करता था। उसके साथ चलने वाले सूरि (सूरमा, राजकुमार) भी उसकी ही तरह सुदृढ शरीर थे, पर वह सबसे अधिक लम्बा और उसी के अनुकूल आयताकार था। उसे देखकर यदि लोग इन्द्र का नाम लेते हो, तो अचरज नही। जैसे देवो में इन्द्र वैसे ही मनुष्यो में पुरुकुत्स था। बल्कि वह इन्द्र से भी अधिक सुघड था, इन्द्र बपोदर (तुदिल) है, जब कि पुरुकुत्स के उदर में चर्बी का नाम नही, बस पेशिया ही पेशिया थी। कमर कितनी क्षीण और वक्ष कितना विशाल था। कन्धे तो मानो साड के डील की तरह उभरे हुए थे। वह सरल गति से एक अखाडे से दूसरे अखाडे में जा रहा था, उसकी गति में भी गम्भीरता के साथ सौन्दर्य था। यौवन सुलभ चचलता उसमें नहीं थी। एक अखाडे में वह द्रापि हटा अधोवस्त्र के स्थान पर छोटा कपडा बाध कर उतरा। कसरत के बाद वह तरुणो के साथ मल्ल युद्ध करने लगा। पसीने पसीने हो गया, लेकिन थकने का नाम नहीं लेता था। पुरु लोग अपने नेता के पौरुष को देखते आनन्दित हो रहे थे।

व्यायाम समाप्त हुआ। कुछ विश्राम कर पुरुकुत्स विशाल अग्नि-शाला में पहुचा। ऋत्विज—जिनमें सफेद दाढी-मूछवाले कितने ही

वृद्ध ऋषि भी थे-- अग्नि की ओर से स्तुति करने लगे। घृत और जौ का होम होने लगा। पुरुकुत्स स्वयं अग्नि के पास कुशासन पर बैठा। चारों तरफ मिट्टी और तांबे के कलशों में सोम (भांग) भर कर रक्खा हुआ था। अग्नि को सोम अर्पित किया गया। देवताओं को अर्पित किये बिना कुछ भी खाना आर्य पाप समझते। अग्नि के बाद इन्द्र का भी आवाहन होता। इन्द्र के पौरुष के सोम गाये गये। प्रातः सवन इस तरह समाप्त हुआ, जब कि हवन के बाद सत्तू के साथ उपस्थित आर्य नर नारियों ने अग्निशाला में सोम पान किया। यह कोई विशेष दिन नहीं था, दिन के काम पड़े रहने के कारण इस समय सोमपान को अतिमात्रा में बढ़ाया नहीं जा सकता था।

* * *

सायं सवन बीत चुका था। सभी आर्य रक्ताक्ष थे, सोम पान में कोई सीमा नहीं होती थी, यद्यपि पुरुपुरी में सख्त हिदायत थी, कि पान में अतिरेक से काम न लिया जाये। पुरुकुत्स पान की होड़ में किसी से पीछे नहीं रहने वाला था, पर उसमें स्वाभाविक संयम था। कभी उसे मदिष्ठ सोम द्वारा भी बुद्धि खोये नहीं देखा गया। आधी रात होने में कुछ देर थी, जब कि वह अपने सात मित्रों के साथ किसी गम्भीर मंत्रणा में लगा हुआ था। एक मन्त्री ने कहा--

किलात यहां से एक योजन से अधिक दूर नहीं हैं। उनके पास हजारों पशु हैं। नरम ऊनवाली मोटी मोटी भेड़ों से सारा जंगल भर गया है।

---लेकिन, अभी तो किलातों के पहाड़ से नीचे उतरने का ठीक समय नहीं है।

---ठीक समय न हो, पर शरद का आरम्भ हो गया है, इसलिये हिम के भय के मारे उन्हें ऊपरी पर्वतों को छोड़ना ही पड़ता है।

तीसरे प्रौढ़ ने कहा--- अबके साल सर्दी जल्दी आई है। इस साल वर्षा भी बहुत और लगातार चार महीनों तक होती रही। कहते हैं, जब हमारे यहां वर्षा होती है, तब ऊपर के पहाड़ों पर हिम पड़ जाती है। शायद इस कारण किलातों ने नीचे आने में जल्दी की हो।

प्रथम पुरुष ने और बातों का पता देते हुए कहा---किलात अभी अपने पुर (मोर्चाबन्दी) को सुव्यवस्थित नहीं कर सके हैं।

पुरुकुत्स ने कहा---पर, उनके आदमी तो सभी आ चुके हैं। लेकिन कोई बात नहीं। हमें इन देवद्वेषियों कृष्णत्वचों की गायों और अजा-अवियों की आवश्यकता है। इन्द्र की आज्ञा है, कि देव-द्वेषी के पास धन नहीं होना चाहिए। हम कई साल से सोच रहे हैं, लेकिन देवताओं के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं कर सके।

तीसरे मंत्री ने मन्त्रणा दी---अभी तक हम पणियों और वनचरों (निषादों) को ही अपना शत्रु बनाये हुए थे। पर्वतीय किलात दूसरी ही तरह के हैं। यह बड़े दुर्दान्त और युद्ध करने में निपुण हैं। शरीर में ये हम से अवश्य ह्रस्व होते हैं, पर युद्ध में नहीं। हमारे पूर्वजों ने एकाध बार इनसे छेड़-छाड़ की। उन्हें मालूम होने देर नहीं लगी, कि वह न पणियों की तरह युद्धोचित स्वभाव से वंचित हैं, और न निषादों की तरह निरे साधनहीन वन्य प्राणी। इसीलिये आर्यों ने किलातों से अभी तक गम्भीर छेड़ छाड़ नहीं की।

दूसरे मंत्री ने कुछ सहमति प्रकट करते हुए कहा---पणि और निषाद को हम दास बनाकर अपने पास रख सकते हैं, पर किलात को दास बनाना अभी तक संभव नहीं हुआ, जैसे कि गवय (नील गाय) को हम पालतू नहीं बना सके। मृग की जाति का यह जन्तु मांस में उससे कई गुना अधिक होता है। दूध भी बड़ी बकरी से कहीं अधिक दे सकता है, यह उसके विशाल काय से मालूम होता है। यदि हम उसे पालतू बना सकें, तो वह हमारे बड़े काम का होगा। परन्तु गवय बच्चे को पकड़ कर भी हम उसे पालतू बनाने में कभी सफल नहीं हुए।

कुत्स---हम किलातों को दास भले ही न बना सकें, पर उनके पशुओं को तो पा सकते हैं।

पहला मन्त्री---और उनकी गोचरभूमि की भी हमें आवश्यकता है। हमारे तोक-तनय (परिवार) बढ़ रहे हैं, पशु बढ़ रहे हैं। हमें और भी गोचरभूमि की आवश्यकता है।

कुत्स---इन्द्र पर विश्वास होना चाहिए। इन्द्र अजेय है। उसकी आज्ञा पालन करना हमारा कर्त्तव्य है।

और जैसे श्वेत श्मश्रु (दाढ़ी) वाले पुरोहित अब तक मन्त्रणा में भाग नहीं ले रहे थे। अब उन्होंने राजा की बात का समर्थन करते हुए कहा---कुत्स ठीक कह रहा है। मघवा कई बार कह चुका है कि मैंने इस विस्तृत मही को आर्यों को दिया। इसीलिये वह हमारे हरेक संग्राम में साथ होता है। उसने चेतावनी दी है---"यदि पुरु लोग इन्द्र-शत्रुओं से इस भूमि को मुक्त नहीं करेंगे, तो मैं उनका साथ छोड़ दूंगा।"

अब और विचार करने की आवश्यकता नहीं थी। इन्द्र पहले ही दासों (किलातों) की सात पुरियों के ध्वंस करने का वचन दे चुका था।

* * *

चारों ओर अन्धकार था। उषा के आने में अभी देर थी। इसी समय पुरुपुरी में नगरा बजी। एक क्षण में सभी जग उठे। पुरु तरुण और प्रौढ़ विशालकाय लाल-लाल घोड़ों पर सवार हो गये। पुरुकुत्स सबसे पहले अपने अरुण अश्व पर सवार हुआ। उसके सिर पर अय शिप्र (तांबे का शिरस्त्राण) था। शरीर पर द्रापि यद्यपि लाल चमड़े की थी, पर उस पर सुनहला काम किया हुआ था। बायें कन्धे से धनुष लटक रहा था, और दाहिनी कमर से असि। पीठ पर इषुधि (तूणीर) के साथ दो हाथ लम्बा डेढ़ हाथ चौड़ा चर्म (ढाल) बंधा हुआ था। रह-रह कर अपनी बड़ी-बड़ी सुनहली मूछों पर उसका हाथ चला जाता था। उसने मेघ गम्भीर स्वर में कहा---

सूरियो, उषा की स्तुति हमें दासों की पुरी में पहुंच कर करनी है, जल्दी।

सारी पुरु सेना उत्तराभिमुख रवाना हुई। संख्या पांच सौ से कम न होगी। पर, देखने में वह उस से कहीं अधिक मालूम होती थी। सभी चुने हुये सुपुष्ट दीर्घ शरीरवाले योद्धा थे। उनके घोड़े भी असाधारण लम्बे ऊंचे थे। सभी लाल रंग के थे। योद्धाओं के शरीर पर भी लाल ही रंग की द्रापियां थीं। अन्धेरे में चलते वक्त सिर्फ घोड़ों के टाप की आवाज सुनाई पड़ रही थी, आकृति अन्धकार से मिलकर एक हो गई थी। वह जंगल से बाहर-बाहर दृषद्वती के तट के समीप से दौड़ रहे थे। पत्थरों की कड़-कड़ाहट से बचने के लिये नदी की सूखी धार में से चलना नहीं चाहते थे। दास पुरी के पास तो उन्हें और सावधानी बरतनी पड़ी। इन्द्र और अपने ऊपर पुरुओं को पूरा विश्वास था, पर किलात असाधारण शत्रु थे। उनको दबाना बहुत कठिन काम था।

दास पुरी घोर जंगल में थी, पहाड़ वहां से बिलकुल समीप था। बल्कि कह सकते हैं, वह पहाड़ के चरणों में ही बनाई गई थी। पुरु शत्रु को

बिना सजग किये उसके पशुओ पर टूट पड़ना चाहते थे। अभी उषा की हलकी किरणें पूर्व में झलकने लगी थी, जब कि आर्य घुड़सवार लकड़ियो के प्राकार के पास पहुच गए। वह चुपचाप गायो के बेड़े के पास पहुच जाते, पर किलातो के कुत्ते असावधान नही थे। उनके भोंकते ही एक क्षण में सारी किलातपुरी सजग हो गई। गगरा और गोधा की आवाज से कान फटने लगे। जरा देर में किलात योद्धा बेड़ो के पास थे, जहा कुत्ते पहले ही पहुच चुके थे। दोनो दल एक-दूसरे के इतने नजदीक थे, कि बाण चलाने का अवसर नहीं था। उनके खड्ग पास नही पहुच सकते थे, सिर्फ भालो से युद्ध जारी हुआ। इसी बीच किलात स्त्रिया किलकारी मारते पहुची, और पत्थरो की वर्षा करने लगी। कुछ ही समय बाद प्राची में सूर्य का लाल गोला निकल आया। अब अन्धकार का कही पता नही था। पुरु एक बार तो किलातो के प्रचण्ड प्रहार से निराश हो गये पर उनके हाथो के लम्बे भालो ने बड़ी सहायता की। किलात मोर्चे से पीछे हटने के लिए मजबूर हुए। इसी समय कुछ पुरुओ ने घोड़ो से उतर कर लकड़ी की भीत को हटा दिया। घुड़सवार उसी से भीतर घुसे। थोड़ी देर तक किलात स्तब्ध से हो गये। पर, उन्हें अपनी अजेयता का अभिमान था। वह अनन्तकाल से जाड़ो को बिताने के लिये पशु-प्राणियो के साथ यहा आया करते थे। पर्वत से दूर हटना उनके लिये अप्रिय बात थी। पर, जाड़ो में ऊपर के पहाड़ो पर जब कई हाथ बर्फ पड़ जाती तो पशुओ और प्राणियो को बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता। आदमी को हड्डी चीरने वाली सर्दी सताती, और पशुओ के लिये घास-चारा दुर्लभ हो जाता। इससे बचने के लिये वह यहा वृहत पर्वत (हिमालय) के चरण में अपनी पुरिया बसाते, मोर्चाबन्दी करते। एकाध बार आर्यों से सघर्ष होने में यद्यपि जय-पराजय का निर्णय नही हो सका था, पर वृहत पर्वतो के निवासी सारे किलात समझते थे, कि पीत केशो को हमने बुरी तरह से हराया, वह हमारे नाम से भी भय खाते है। कितनी पीढ़ियो से यह भावना उनके हृदय में दृढ हो चुकी थी, इसलिये पुरी के घेरे के टूट जाने के बाद भी किलात हिम्मत हारने वाले नहीं थे।

पुरी का विशाल हाता दोनो ओर के युयुत्सुओ से आकीर्ण हो गया था। आर्यों के कितने ही घोड़े चोट खाकर गिर चुके थे, कितने ही योद्धा मर गये थे। किलातो को भी क्षति हुई थी। इस स्थिति ने दोनो के क्रोध को और उद्दीप्त कर दिया था। दोनो दल एक-दूसरे के भीतर घुस गये थे। भाले के उपयोग का भी अवसर नही रह गया था। पुरु अपनी तलवारें और चर्म निकाल कर घोड़ो से कूद पड़े। किलात तलवारो, पत्थर की गदाओ से प्रहार कर रहे थे। किलात नारिया भी पत्थर के टुकड़ो को बड़े वेग से फेंक रही थी। पर, आर्य सभी सुशिप्र (शिरस्त्राण बद्ध) थे। उनके शरीर पर ही चोट लग सकती थी। पुरुकुत्स का रण-कौशल इस वक्त देखने लायक था। शायद ऐसे ही आर्यवीर को देख कर इन्द्र की आकृति की कल्पना की गई। वह इन्द्र की तरह कुछ देर तक रोहिदश्व (लाल घोड़ेवाला) रहा, और अपने खड्ग के प्रसार से जहा भी किलातो को प्रबल देखता, वहा पिल पड़ता। उसका प्रहार ही प्राण लेने के लिये काफी था। पर, किलात सख्या में कही अधिक थे, इसलिये अधिक क्षति होने पर उनके प्रहार का वेग कम नही होता था। पुरुओ को पहलेपहल ऐसे भीषण सघर्ष से पाला पड़ा था। जो घायल होने के कारण लड़ने में बेकार हो चुके थे, उन्हे तो निराशा होने लगी थी। शायद इन्द्र किसी दूसरे काम में लगे रहने से हमारी सुध भूल गये—बार-बार यही उनके मन में आता था।

हाता रुधिर से लाल हो गया था। एक ओर गोरे लम्बे लम्बे पुरु तथा पीताग लघुकाय किलात एक दूसरे की पक्ति में घुसकर ताबे की तलवारो और पत्थर के वज्रो (गदाओ) को चला रहे थे। दूसरी ओर निर्जीव या सिसकते गोरे-काले एक दूसरे के पास पड़े अपनी रक्तधारा को मिश्रित कर रहे थे। पुरुओ का कुत्स घमासान होते युद्धस्थल में अपनी लम्बी असि चला रहा था, दूसरी ओर किलात सरदार भी उससे पीछे रहने वाला नही था। वह आकार में भले ही पुरुकुत्स के कन्धे तक पहुचता हो, पर उसका शरीर बहुत गठा हुआ, छाती असाधारण चौड़ी और भुजदड अत्यन्त दृढ थे। उसने कई पुरुओ को धराशायी किया। पुरुकुत्स को मालूम होने लगा था, कि उसको खतम किये बिना किलातो की कमर नही तोड़ी जा सकती। पर, वह ऐसे हार खाने वाला नही था। कितने ही साध कर मारे हुए दाव को विफल करके वह पुरु राजा के ऊपर प्रहार कर रहा था। कुत्स की जाघ पर उसने असि का एक ऐसा वार किया जिससे उसके गिर जाने में कोई सदेह नही था। इसी समय कुत्स ने अपने एक असि घात से किलात-सरदार का सिर धड़ से अलग कर दिया। कुछ क्षणो तक उसका कबध इधर-उधर हाथ मारता रहा। उसके गिरने के साथ बचे-खुचे किलात पहाड़ की ओर भागे। पुरुओ ने उनका कुछ दूर पीछा किया। पहाड़ पर चढने में वह किलातो का मुकाबिला नही कर कर सकते थे। उन्हें लौटना पड़ा। कुछ देर तक पत्थर और बाण फेंके जाते रहे। इसी समय सूर्य भी अस्ताचल पर पहुच गया।

किलातपुरी में लौटने पर देखा, पुरुकुत्स जमीन पर गिर पड़ा है। कुछ पुरु उसके पास बैठे है। उसके घाव पर कपड़ा बाधा गया, पर खून बन्द होने का नाम नही लेता था। कुत्स सज्ञाहीन था। किलातपुरी पर पुरुओ की विजय हुई, किन्तु उन्हें भारी दाम चुकाना पड़ा। पहले तो यही जान पड़ता था, कि कुत्स अब नही बच सकेगा। पर, कुछ घड़ी बाद उसने आखे खोलीं, पानी पीने का सकेत किया। पानी पीते ही उसको पूरा होश हो गया। इसी वक्त लोगो ने इन्द्र की जय मनाई। पुरुकुत्स को बधाई देते हुए कहा—"किलातो पर हमने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। रण में घायल किलातो में से किसी को हमने जीता नही छोड़ा। बाकी स्त्री-पुरुष-बच्चे पहाड़ के ऊपर भाग गये। उनकी सारी गाए, सारी भेड़-बकरिया अब हमारी हैं। यह इन्द्र की महिमा है।"

\+ + + +

किलातो के पहाड़ की ओर भागते ही पुरुपुरी में सन्देश भेज दिया गया था। अन्धेरा होने से पहले ही वहा से सैकड़ो स्त्री पुरुष घोड़ो पर चढे किलातपुरी में पहुच गये थे। पुरुकुत्स एक बार होश में आकर फिर मूर्छित हो गया था। पुरुकुत्सानी अपने पति को इस अवस्था में पाकर बड़ी कठिनाई से क्रन्दन रोके सिर को गोद में लिये अपने आसुओ से पति के मुह को धो रही थी। वृद्ध ऋषि सान्त्वना दे रहे थे—"वीर-पत्नी, चिन्ता मत करो। इन्द्र अपने यजमान का रक्षक है। उसी के प्रताप से यह विजय हाथ लगी। उसने कहा है, मेरा भक्त दासो की सात पुरियो को नष्ट करेगा। अभी तो यह पहली पुरी है।" तुर्वश-पुत्री पुरुकुत्सानी बड़े गम्भीर प्रकृति की महिला थी। अपने वीर पति के अनुरूप ही उसने दृढ सकल्प पाया था। गुलाबी रग, सुनहली आखें, भरा चेहरा, पीले लम्बे केशो के साथ वह असाधारण स्वस्थ और सुन्दरी थी। सारे आर्यजनो में उसके लावण्य की प्रसिद्धि थी। तुर्वशों के साथ पुरुओं का उस समय मेल नही था, पर पुरुकुत्सानी ने पुरुकुत्स को ही वरा। वह जानती थी, आर्यवीर का काम है,

युद्ध में लड़ना, शत्रुओं को मारना और समय पड़ने पर मृत्यु को आलिंगन करना। आर्य पत्नी का काम है अपने पति को प्रोत्साहित करना, उसके काम में सहायता देना। वह जानती थी हमारे पितर आकाश में बड़ी उत्सुकता से रण में अपनी सन्तान के पराक्रम को देख रहे हैं। वह कायर को कभी क्षमा नहीं करते। वीरों की दो गति हैं— विजय प्राप्त करके शत्रु के पशुधन—गो, अजा, अवि—के साथ विजय होना, या मरकर पितरों के पास चला जाना। सारी दृढ़ता के होते भी पुरुकुत्सानी का हृदय भीतर से विदीर्ण हो रहा था। दोनों में प्रेम असाधारण था। कर्तव्य का ख्याल करके ही वह कुछ समय के लिये एक दूसरे से अलग रहते, नहीं तो उन दोनों शरीरों में एक ही प्राण था।

आधी रात के बाद सर्दी ज्यादा हो गई, लोगों ने प्रावियों से अपने शरीर पूरी तरह आच्छादित कर लिये। पुरुकुत्सानी को सर्दी का कोई पता नहीं था। उसका सारा ध्यान अपने पति की ओर था। चर्बी के दीप के प्रकाश में वह एकटक पति के मुख की ओर देख रही थी। सांस एक रस चल रही थी। विशाल वक्ष नियमपूर्वक उठ बैठ रहा था। रक्त का बहाव कुछ देर पहले रुक चुका था। एकाएक पुरुकुत्स की आंख खुलीं। झुके हुये चहरे से उसके मुंह पर इसी समय दो बूंदें टपक पड़ीं। पुरुकुत्सानी के बदन से कितनी करुणा बरस रही होगी, इसे पूरी तौर से न देखते भी पुरुकुत्स समझता था। उसने अपने दायें हाथ को उठाकर पुरुकुत्सानी के कपोलों को बड़े स्नेह से स्पर्श किया। पूरा प्रकाश होता, तो पुरुकुत्सानी का मुंह इस समय देखने लायक था। वह 'प्रियतम' कहकर पति की छाती पर गिर पड़ी। कुछ देर तक दोनों इस अनुपम स्पर्श सुख को अनुभव करते रहे। इसी समय बायां पैर हिला। पुरुकुत्स ने एक हलकी सी आह भरी। उसे अब तक अपने घाव का पता नहीं था। लेकिन, घाव के लिये कातरता दिखलाना आर्यवीर के लिये लज्जा की बात थी। उसने इतना ही कहा—"मेरी जांघ में घाव है।" फिर यह भी, कि "किलात हमसे वीरता में किसी प्रकार कम नहीं हैं, वह किलातसूरि तो पौरुष और पराक्रम में अद्वितीय था।" फिर उसने उसके शव के बारे में पूछा। पुरुकुत्सानी ने कहा—"हमारे लोग सारे शवों को जलाने में अब भी लगे हुए हैं। आधे शवों को वह जला चुके हैं। अब किलातों को जला रहे हैं।"

किलातों की पुरी—मोर्चाबन्दी—अब पुरुओं की सम्पत्ति थी। उसके आस पास इतने मुर्दों का रहना दो चार दिन में भारी सड़ांध पैदा करता। जंगल में चरक, और सियार यद्यपि शवों की सद्गति करने के लिए तैयार थे, पर वह एक-दो दिन में यह काम नहीं कर सकते थे। पुरुकुत्स की बड़ी इच्छा थी, कि अपने प्रतिद्वन्द्वी किलातसूरि का शव-संस्कार विशेष सम्मान के साथ हो, पर वह अब तक जलाया जा चुका था।

इस महान विजय के उपलक्ष में वृद्ध ऋषि ने गद्गद् हो प्रार्थना की। अग्निदेव के मुख में घृत की आहुतियां दी गईं। इन्द्र के लिये किलातों के वृषभों (सांडों) में से २५ मार कर पकाये, सोम के कितने ही कलश प्रदान किये गये। लोगों ने यज्ञशेष खाया जरूर, पर उस रात उनके मन में कोई उत्साह नहीं था। उनका सेनानी पुरुकुत्स विजय से भी अधिक मूल्यवान था। सभी यही प्रार्थना कर रहे थे—"इन्द्र, यह विजय व्यर्थ की होगी, यदि हम कुत्स से वंचित हुये।" इन्द्र ने ऋषि के मुख से उसी समय कहलवाया—"इन्द्र पर विश्वास रक्खो, मुझे पुरुकुत्स सबसे अधिक प्यारा है।"

रात को ही पुरुकुत्स को प्रकृतिस्थ देखकर लोगों को सन्तोष हो गया। प्रातः ही उन्होंने दिव की दुहिता उषा की प्रार्थना की। पुरुकुत्सानी ने उनके लिये विशेष प्रार्थना और हवन किये।

इन्द्र का वचन सत्य निकला। पुरु दासों (किलातों) की सातों पुरियों को ध्वस्त करने में सफल हुए। उन्हें अपार पशुधन मिला। किलातों का पशुधन ही धन था। पशुपालन और आखेट यही दो उनकी जीविका के साधन थे। जंगलों के फलों को भी वह एकत्रित करते और कुछ को सुखा कर रख भी लेते पर, वह उनके लिये पर्याप्त नहीं थे। खेती का एक तरह उनमें प्रचार ही नहीं था। नीचे के पहाड़ों में देखादेखी कहीं कहीं अनाज बो देते थे। पर उसका उपयोग मनुष्यों के खाने की अपेक्षा पशुओं के चारे के तौर पर अधिक होता। यद्यपि अपनी छओं पुरियों को किलातों ने आसानी से नहीं छोड़ा, पर प्रथम पुरी के ध्वंस ने उनके उत्साह को कम कर दिया था। पुरुकुत्स को पूरी तौर से स्वस्थ होने में महीने से अधिक लगा था। लोग नहीं चाहते थे कि उसी शरद में और कोई संघर्ष छेड़ा जाए, पर पुरुकुत्स उसे मानने के लिये तैयार नहीं था। दृषद्वती के पूर्व आपया (मार्कंडा) सरस्वती और यमुना के पास किलातों की तीन शारदी पुरियां थीं, उसी तरह दृषद्वती से पश्चिम सतलुज तक भी तीन थीं। पुरियां क्या प्रतिरक्षा के उपयुक्त मोर्चाबन्दी तथा रात को रहने के लिये पशुओं के बाड़े और बिल्कुल मामूली सी फूस की झोपड़ियां थीं। विजय में प्राप्त होने वाला धन पशु के रूप में ही था। आर्यों के पास भी भेड़ें थीं, लेकिन किलातों की भेड़ों की ऊन की राशि बहुत कोमल और सुन्दर होती थी।

सतलुज से जमना तक पहाड़ की तराई पुरुओं के प्रयत्न से किलातों से खाली हो गई। किलात केवल सर्दियों के बिताने के लिये वहां आया करते थे। पुरुओं से पराजित हो वह अपने हजारों आदमियों से हाथ धो असंख्य पशुओं को खो अपनी शारदी गोचर भूमियों से वंचित हो गये। पुरुओं के चरिष्णु ग्राम अब तराई तक फैल गये। अभी-कभी दूर पहाड़ पर से किलात अपनी इस भूमि में आर्यों के घोड़ों और गौओं के झुण्डों को देखते, उनके हृदय में टीस सी उठती। एकाध बार उन्होंने छापा मारने की कोशिश की, लेकिन पुरुओं ने अपनी पुरियों को सुदृढ़ कर रक्खा था। पहाड़ का चरण दोनों की सीमा बन गया।

पुरुकुत्स सप्तसिन्धु का महावीर माना जाने लगा। सप्तसिन्धु में कहीं पर भी आर्यों ने अपने उत्तरी पड़ोसी पहाड़ी किलातों के ऊपर ऐसी विजय नहीं प्राप्त की थी, न उनकी शारदी या चरिष्णु (चलायमान) पुरियों पर आक्रमण करने का प्रयास किया था। जंगल में चरती गौओं को भले ही आर्य कभी-कभी छीन ले गये हों, पर यह वीर के तौर पर नहीं, बल्कि तस्कर के तौर पर ही, जो आर्यों के लिये शोभा की बात नहीं थी। सातों पुरियों के लिये संघर्ष तीन वर्ष तक चलता रहा। दूसरे वर्ष में पुरुकुत्सानी ने एक पुत्र जना। पिता दस्युओं को त्रस्त करने में लगा था, इसी उपलक्ष्य में पुत्र का नाम त्रसदस्यु रक्खा गया। सारे आर्यजनों में पुरु ज्येष्ठ थे। पुरुओं का ज्येष्ठ पुरुकुत्स था। उसकी ज्येष्ठ सन्तान त्रसदस्यु अपने पिता का योग्य उत्तराधिकारी होगा, इसे समय ही बतलाने वाला था। पर, त्रसदस्यु के जन्म पर सारे पुरु जन में ऐसा आनन्द-उत्सव मनाया गया, मालूम होता था कि, प्रत्येक घर में प्रथम सन्तान पैदा हुई हो।

(शेष पृष्ठ १८ पर)

Redg No D-510

तेलुगु का शतक साहित्य

बालशौरि रेड्डी

तेलुगु का शतक साहित्य इतना समृद्ध है कि उसने तेलुगु साहित्य में अपना एक युग ही बना लिया है। इसे तेलुगु की एक विशिष्टता कहे, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्राकृत भाषा में 'सप्तशती' अथवा 'सप्त सई' नाम से जो काव्य-सम्प्रदाय चल पड़ा है, वही हिन्दी साहित्य में 'सतसई' नाम से व्यवहृत है। तेलुगु का शतक सम्प्रदाय भी इसी कोटि में आता है। परन्तु सतसई में जहां ७०० अथवा ७१३ पदों का संग्रह होता है, वहां शतक में १०० अथवा १०८ पदों का संकलन होता है। शतक की रचनाएं भक्ति, नीति, उपदेशात्मक एवं श्रृंगारपरक भी होती हैं। चौथे चरण में मुकुट होता है। उसमें कवि अपने इष्ट देव, गुरु, मित्र अथवा अन्य अपने प्रिय जनों को सम्बोधन करता है। सतसई की भांति यह शतक भी मुक्तक काव्य होता है। इसमें भी एक पद से दूसरे पद का बिल्कुल सम्बन्ध नहीं होता है, अपितु वे सभी पद भाव में अपने में पूर्ण होते हैं।

तेलुगु के प्राय सभी ख्यातनामा कवि प्रारम्भ में शतक कर्त्ता ही रहे हैं। यह शतक वाङ्मय बहुत समय तक अज्ञात ही रहा है। कुछ पण्डितों का विचार है कि शतक-रचना अंग्रेजी की भाव कविता जैसी है। यह साहित्य-शाखा आज इतनी व्यापक बन गई है कि इस पर अनेक बृहत ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें श्री वंगूरि सुब्बाराव का 'शतक कवुल चरित्र' (शतक कवियों का इतिहास) और श्री वेदमुवेंकट कृष्ण शर्मा जी का 'शतक वाग्मय सर्वस्वम्' उल्लेखनीय है। इनके अलावा श्री काशि-नाथुनि नागेश्वर राव जी के शतक-संग्रह, श्री वीर राघव शास्त्री, श्री येलि कानि लच्चा राव, वाविल्ल प्रेस वालों के शतक संग्रह इत्यादि भी प्रसिद्ध हैं। इससे हम इस साहित्य शाखा की समृद्धि एवं व्यापकता का परिचय पा सकते हैं। इस प्रकार के लगभग १,००० शतकों का अब तक पता लगा है। विद्वानों का कथन है कि तेलुगु में करीब २,५०० शतक रचे गए हैं। इनमें केवल ६०० शतकों पर शोध-कार्य हो पाया है।

प्राचीन समय में साहित्यिक महत्व प्राप्त काव्यों की अधिक प्रधानता रही। शतक साहित्य को एक छोटी-सी शाखा मानकर इसका अनादर ही किया गया। महाकाव्य तथा प्रबन्ध काव्य-रचना को अधिक गौरव प्राप्त था। प्राचीन आन्ध्र महाकवियों की दृष्टि में शतक उल्लेखनीय कृति नहीं माना गया। परन्तु संख्या की दृष्टि से, काव्य-गुण भावना की प्रौढ़ता इत्यादि में शतक भी अन्य काव्यों से कम नहीं है। समीक्षकों ने भी इस ओर पहले ध्यान नहीं दिया। व० वंगूरि सुब्बाराव जी ने जब तक 'आन्ध्र शतक कवुल-चरित्र' प्रकाशित नहीं किया, तब तक वे सभी शतक आन्ध्र जगत के लिए अज्ञात ही रहे। परन्तु सुमति शतक, दाशरथी शतक, भास्कर शतक, कृष्ण शतक, नरसिंह शतक और कालहस्तीश्वर शतक को अधिक आदर प्राप्त था। ये सभी स्कूलों में पढ़ाये व कंठस्थ कराये जाते थे। श्रृंगार, भक्ति एवं नीति शतक प्रचार में थे और उस समय मंदिर जाते समय ग्रामीण, वृद्ध व युवक भी इनका पाठ किया करते थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से क्रमशः यह क्रम जाता रहा।

आज के युग में यह धारणा हो गई है कि वाग्मय के माने केवल पद्य काव्य ही नहीं है। यह केवल वाग्मय की एक शाखा मात्र है। उसके साथ अन्य शाखाओं की समुचित एवं सम्पूर्ण वृद्धि करने पर ही आन्ध्र वाग्मय रूपी कल्पवृक्ष का सौंदर्य निखर सकेगा। इस नग्न सत्य को आज के सभी साहित्यिक, समीक्षक, इतिहासकार आदि सब ने पहचाना है। सच पूछा जाए तो काव्य से भी शतक उत्तम कृति माना जा सकता है। काव्यों में कथावस्तु कवि की स्वतन्त्रता को उसी रूप में व्यक्त करने से रोक देती है। वहां कवि और काव्य के बीच में कथा उपस्थित रहती है। शतकों में ऐसी बात नहीं है। वह आत्म कविता पद्धति की है।

अब तक के उपलब्ध शतक साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र वाग्मय में शतक साहित्य का आविर्भाव भक्ति प्रधान शैव सम्प्रदाय द्वारा हुआ। सच पूछा जाय तो तेलुगु का प्रथम शतक श्री यथावाक्कुल अन्नमय्या का 'सर्वेश्वर शतक' माना जाना चाहिए। परन्तु इतिहासकार श्री मल्लिकार्जुन पंडिता राध्युडु के 'शिवतत्वसार' को शतक मानकर उसे ही शतक कविता का प्राथमिक गौरव प्रदान किया है। नियमानुसार शतक में सौ पद ही होने चाहिए। किन्तु वेमना के शतक की भांति शताधिक पद होने पर भी वह शतक के अन्तर्गत गिना जा रहा है।

आन्ध्र प्रदेश में भक्ति का आन्दोलन जब तीव्रता के साथ फैलने लगा, उन्हीं दिनों शतक का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए प्रारम्भिक शतक साहित्य भक्ति-प्रधान है। शैव कवियों ने अपने शतकों की रचना भक्ति एवं धर्मप्रचारार्थ की।

क्रमशः साहित्य में भक्ति, नीति, योग-भोग, हास्य, उपदेश आदि समस्त प्रकार के विषय वर्णित होते गए। उनमें श्रृंगार, करुण, हास्य, अद्भुत व शान्त रसों का भी वर्णन हुआ है। शब्दालंकारों का अभाव भी नहीं है। व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दाओं से पूर्ण भक्ति शतक भी हैं। और वेदान्त प्रबोधित भी। काव्य की चित्रकथा-कल्पना को छोड़ शेष काव्य के समस्त प्रकार के लक्षण तेलुगु शतक में आ गए हैं। उसमें अनुपलब्ध वस्तु कोई नहीं है। यहां तक कि १८वीं सदी में काव्य-कविता के लक्षण भी शतक कविता में वर्णित होने लगे। विष्णुपरक—राम, कृष्ण, नृसिंह इत्यादि शतकों में दशावतार तथा शैव प्रधान शतकों में त्रिपुरासुर-संहार का वर्णन हुआ है। यही नहीं, महाभारत, रामायण, भागवत् इत्यादि पौराणिक गाथाओं को भी इन शतकों ने जनसाधारण तक पहुंचाया और प्रचार किया। १७वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी के बीच में रचे गए शतकों में देश, काल, समाज, देशी राज्यों व जमींदारों का अच्छा

वर्णन मिलता है। स्वर्गीय श्री सुरवरम प्रताप रेड्डी को 'आन्ध्रुल साघिक चरित्र' (आन्ध्र वासियो का सामाजिक इतिहास) की रचना म शतको से बहुत बडी सहायता मिली है। इस प्रकार इन शतको का महत्व बहुत बडा है। जीवन के प्राय समस्त क्षेत्रो का वर्णन हम शतको म प्राप्त होता है। इस लेख में हम एक सहस्त्र शतको और उनके रचयिताओ का परिचय तो दे नही पाएँगे। कुछ प्रमुख शतको व इनके कर्त्ताओ का परिचय देना पर्याप्त होगा।

१ शिवतत्व सारम——इसके रचयिता श्री मल्लिकार्जुन पडित राध्युडु प्रथम तेलुगु शतक-स्वरूप-निर्माता माने जाते है। इनका समय सन् ११६० के लगभग है। इस शतक का मुकुट शिव है। परन्तु कुछ पद्यो म शिव जी के अन्य नाम 'महेशा', 'रुद्रा', 'भजा' इत्यादि अनेक पर्यायवाची शब्दो का भी प्रयोग इस शतक कर्ता ने किया है। इस शतक के कतिपय पद्यो में शतक लक्षण भी दिखलाई नही देते। इतना होते हुए भी 'पडिताराध्य चरित्र' के रचयिता श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने शिवतत्वसार को शतक ही माना है। कुछ आधुनिक समीक्षको न भी बडी छान-बीन के उपरान्त इसे प्रथम शतक का गौरव प्रदान किया है। इस शतक में अद्वैतमत का खडन तथा आडम्बर पूर्ण पूजा का विरोध किया गया है और साथ ही साथ शिवगण वर्णन, भक्ति की महिमा इत्यादि विषयो पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इसी नाम से कन्नड में भी एक शतक है, वह इसका अनुवाद माना जाता है। श्री पालकुरिकि सोमनाथ ने यह भी लिखा है कि श्री मल्लिकार्जुन पडितराध्युडु ने कुल ४३ ग्रन्थो की रचना की। परन्तु केवल 'शिवतत्वसार' ही अब तक उपलब्ध हुआ है।

२ सर्वेश्वर शतक कर्ता——यथावाक्कुल अन्नमय्या (सन् ई० १२१८ १२८५)। इसमें १४२ शार्दूल वृत्त है। कर्ता ने १३० व १४२वे पद्यो में अपने व अपने शतक रचना काल के सम्बन्ध में लिखा है कि वह कर्नूल जिले के दूबिकोडा नामक गाम के निवासी थे। यो तो वह गोदावरी निवासी थे, लेकिन श्री शैल की यात्रा से लौटते समय पल्नाडू तालुके की एक धर्मशाला में अपना निवास बनाया और वही पर अपने सर्वेश्वर शतक की रचना कर बडी प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके पद्य भक्ति प्रबोध-पूर्ण है। अधिकाश पद्य अद्वैतभावो से——आत्मा-अनात्मा विचारो तथा वदान्त रहस्य तथा नास्तिको को भी परमात्मा की ओर झुकाने में समर्थ है।

कुछ लोग इन्हें श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि का शिष्य मानते है। लेकिन यह कदापि सम्भव नही है। ये दोनो समस्त विषयो म भिन्नता रखते है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध का कोई अन्य प्रमाण भी प्राप्त नही हुआ है।

३ वृषाधिप शतक कर्ता——'कवि ब्रह्म' श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि (२२७०–२२)।

शतक कवियो में सोमनाथ जी का विशिष्ट स्थान है। इन्होने द्विपद-पद विन्यास के साथ तेलुगु काव्य साहित्य के क्षेत्र में कई नयी रीतियो को जन्म दिया और विद्वत्कवियो की प्रशसाए प्राप्त कीं। श्री सोमनाथ जी ने समस्त शतक लक्षण समुदाय को अपने वृषाधिप शतक में समलकृत किया। इसलिये यह समस्त शतक साहित्य का शिरोमणि बना हुआ है।

श्री सोमनाथ ने २८ ग्रन्थो की रचना की है। उनमें ७ पुस्तके तेलुगु की, आठ सस्कृत और शेष कन्नड भाषा की है। इनमें 'बसव पुराण', 'पडिताराध्युल चरित्रम्' और 'वृषाधिप शतकम' अत्यन्त मुख्य है। इस शतक कर्ता के जीवन से सम्बन्धित अनेक अद्भुत कहानिया जनपदो में प्रचलित है, जो इनकी भक्ति व पाण्डित्य का परिचय देती है।

श्री सोमनाथ जी का जन्म 'पालकुरिकि' नामक गाव में हुआ था। यह ओरुगल्लु (वर्तमान समय के वारगल) के समीप में है। इससे स्पष्ट है कि वह तेलगाना के निवासी थे। वह अच्छे भक्त भी थे। शैव सम्प्रदाय एव आचारो का पालन करते हुए लोगो में शैव धर्म का प्रचार करते रहे। इनके कई शिष्य भी थे। बीच बीच में ये श्री शैल आदि शैव तीर्थो का सेवन भी करते रहे। कुछ विद्वानो का मत है कि यह सोमनाथ कृत वृषाधिप शतक ही तेलुगु साहित्य का प्राचीनतम व प्रथम शतक है।

सोमनाथ कवि सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली थे। वह वेद-वेदागो में पारगत थे, तेलुगु, तमिल, कन्नड, महाराष्ट्री व सस्कृत भाषाओ में समान अधिकार रखते थे। वह षट शास्त्रो में प्रवीण थे। इन्होने 'बसव पुराण' और 'पडिताराध्य चरित्र' नामक काव्यो को देशी छन्द द्विपद में रचा था। इनके 'वृषाधिप शतक' में हम सोमनाथ कवि की अनेक कविता धाराओ का परिचय पा सकते है। ये पुस्तकें उनकी 'बसवेश्वर' (शिव) भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। इस शतक के अधिकाश पद्य चपक अथवा उत्पलमाला वृत्त है। इस शतक का मुकुट 'बसवा' अथवा 'वृषाधिपा' है। यह समस्त शतक-लक्षण समन्वित रचना है। मल्लिकार्जुन पडित ने शिवतत्वसार द्वारा शतक के एक स्वरूप को प्राप्त किया तो दूसरी ओर वृषाधिपशतक द्वारा शतक काव्य-कामिनी सर्वालकारशोभिता हो प्रकाशमान है। इस शतक की शैली सस्कृत समास जटिल है। इसमें कुल १०६ पद्य है। अनुप्रास, नियम और शब्दालकार वैचित्र्य इसकी विशेषताए है। कवि की भक्ति अपूर्व एव अद्भुत थी। पद-पद पर उन्होंने अपने आराध्य को पुकारा है।

४ सुमत शतक कर्ता——बद्देना (भद्र भूपाल १३, १४ सदी)।

आन्ध्र देश के आबाल-वृद्धो में विशेष रूप से प्रचार प्राप्त शतक 'सुमती शतक' है। इसके पद्य कठाग्र पर न रखने वाला व्यक्ति आन्ध्र-भर में ढूढने पर भी नही मिलेगा। इससे जन-साधारण में इस शतक की लोकप्रियता का परिचय पाया जा सकता है। इसका प्रत्येक पद्य सुभाषित जैसा महत्वपूर्ण है। परन्तु इस शतक के रचयिता के सम्बन्ध में अब तक कोई सर्वमान्य निर्णय नही हुआ है। कुछ लोगो का ख्याल है कि 'सुमति' नामक किसी जैन भिक्षु ने 'आत्मनाम सबोधन' द्वारा इस प्रकार की नीतियो का उपदेश दिया है।

श्रीमान् वल्लि रामकृष्ण कवि ने अपने 'नीति शास्त्र-मुक्तावली' नामक ग्रथ की भूमिका में लिखा है कि सुमति शतक 'भद्रभूपाल कवि' विरचित ही हो सकता है। श्री कूचिमचि तिम्म कवि ने अपने 'सर्वलक्षण सार सग्रह' नामक लक्षण ग्रन्थ की भूमिका मे इस शतक को भीम कवि कृत बताया है। परन्तु इस शतक कर्ता के सम्बन्ध में इस समय के अधिकाश विद्वानो की राय है कि यह भद्र भूपाल रचित ही है। यह शतक सुन्दर, सरल एव सुबोध तेलुगु में रचा गया है। भीम कवि की शैली सस्कृत जटिल समास युक्त है।

'सुमति शतक' का प्रत्येक पद एक हीरे के टुकडे के समान है। इसमें लोकानुभव और नीति का सुन्दर समन्वयात्मक सम्मिश्रण हुआ है। उदाहरण के लिए——

'अपनी सम्पत्ति ही इन्द्र भोग है और अपना दुःख ही समस्त जगत की दरिद्रता है।"

"दासी का भी पुत्र क्यों न हो, जिसके पास पैसा है, वही राजा है।"

"प्रेम व विनयपूर्वक देने से दूध का भी पान नहीं करते, और जबरदस्ती करने पर विषपान भी करते हैं।"

"अच्छी पत्नी काम के समय अच्छी पत्नी सिद्ध होती है, सेवा के समय दासी, भोजन के समय माता और सोने के समय रम्भा।"

यही भाव इस संस्कृत श्लोक में भी है

"कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्ये सुमाता, शयने सुरभा।"

"बिच्छू की पूंछ में जहर रहता है, मक्खी के सिर में और साँप के दाँत में, पर दुर्जन के तो सारे शरीर में विष ही विष भरा है।"

संस्कृत का एक श्लोक है

वृश्चिकस्य विषं पुच्छम् मक्षिकस्य विषं शिरः
तक्षकस्य विषं दंष्ट्रा सर्वांगं दुर्जने विषं।

"हे सुमती! इस पृथ्वी में वचन के लिए प्राण सत्य है। दुर्ग का प्राण उसके वीर रक्षक होते हैं। नारी का प्राण मान है और चिट्ठी का प्राण हस्ताक्षर होता है।"

बद्देना या भद्र भूपाल से अपरिचित व्यक्ति आन्ध्र में आपको मिल सकते हैं परन्तु सुमति शतक के पद्यों से अपरिचित शायद ही कोई प्रमाण मिलेगा। दस वर्ष पूर्व तक भी सुमती शतक के प्रायः सभी पद्य ग्रामीण पाठशालाओं में बालकों से अनिवार्य रूप से कंठस्थ कराये जाते थे।

५ वेंकटेश्वर शतक कर्ता—तालपाक अन्नमाचार्युलु (ई० स० १४०८–१५०३)। श्री अन्नमाचार्य जी के वंशज संगीत और साहित्य दोनों में प्रवीण रहे हैं। ये तिरुपति में स्थित भगवान श्री वेंकटेश्वर के सान्निध्य में वंश परम्परागत रहते आये हैं। उनमें प्रथम श्री अन्नमाचार्य थे।

भगवान की भक्ति में लीन हो आशुरूप में वह प्रतिदिन कुछ कीर्तन बनाकर गाया करते थे। भगवान के प्रति भक्त का निवेदन ही इनके कीर्तन हैं। गीत साहित्य में वह भक्त त्यागराज की कोटि में आते हैं।

श्री अन्नमाचार्य जी ने 'वेंकटेश्वर शतक' की रचना की है। इसमें एक सौ चम्पकमाला एवं उत्पलमालावृत्त हैं। इस शतक का मुकुट 'वेंकटेश्वरा' है। यह एक शृंगार प्रधान शतक है। इसमें अलिवेलमंगा और वेंकटेश्वर की लीलाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। सुन्दर शब्दयोजना, चमत्कार व भाव सौंदर्य इस शतक की विशेषताएं हैं। इनके शतक में मांडलिक पदों का प्रयोग हुआ है। भक्ति में तो ये तेलुगु के महान भक्त कवि पोतन्ना का हमें स्मरण दिलाते हैं।

६ श्री कालहस्ति शतक कर्ता—धूर्जटि कवि।

श्री धूर्जटि कवि कालहस्ती के निवासी और शिव भक्त थे। इनकी कृति 'श्रीकालहस्ति शतक' नाम से विख्यात है। इनकी कविता के सम्बन्ध में 'आन्ध्र वाङ्मय का इतिहास' के लेखक ने लिखा है—"धूर्जटि की शतक-रचना गंगा धारा के वेग के समान है।" इस शतक के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कारण, इसकी अनेक प्रतियां प्राप्त हुई हैं। किसी में १०८ पद्य हैं किसी में १२०, तो किसी में १४२-१४८ पद्य हैं। इस शतक में ३३ नये पद्यों का समावेश हुआ है। कहीं-कहीं अल्प-मात्रा में पाठ-भेद भी है। कुछ विद्वानों का मत है कि कुछ पद्य ऐसे भी पाए गए हैं जो रमानाथ बतलाने वाले हैं। इस कवि का 'कालहस्ती महात्म्य' अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है।

७ वेंकटेश्वर शतक कर्ता—श्री तालपाक तिरुमलाचार्य।

यह अन्नमाचार्य जी के द्वितीय पुत्र थे। स्वयं कवि ने अपने 'वेंकटेश्वर शतक' के अन्तिम पद्य में इस बात का उल्लेख किया है। इन्होंने भी वेंकटेश्वर शतक की रचना की है। इसके अलावा इनके और बारह ग्रन्थ मिले हैं। इन १२ ग्रन्थों में से दो शतक हैं। एक नीति प्रधान और दूसरा शृंगार रस प्रधान। दोनों का मुकुट 'वेंकटेश्वरा' है। प्रथम शतक सीस छन्द में कहा गया है। इस छन्द का यही प्रथम शतक है। बाद के शतक इसके अनुकरण पर ही बने हैं। यत्र तत्र लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए—

"गधा क्या जाने सुगंध की बास?"

८ रंगनाथ शतक कर्ता—कोड राम कवि।

इस कवि ने रंगनाथ शतक की रचना की है। वेदान्त विषय होने के कारण इसका उचित प्रचार नहीं हो पाया है। शतक साहित्य-रचना में काव्य-लक्षणों का प्रवेश कर इस कवि ने एक नई रीति को जन्म दिया है। शतक के प्रथम पद्य में इष्ट देवता की प्रार्थना की गई है। यह तिरुमल देवरायलू के समकालीन थे। इनके गुरु नागवेंकटरंगनाथ जी थे। इस शतक में विजय नगर साम्राज्य तथा तत्कालीन विभिन्न विषयों का वर्णन भी हुआ है। इस शतक में कुल १०१ पद्य हैं। मकुट इस प्रकार है—"गज पुरधाम शृंगार कलित सोम मगलोद्दाम श्री कलित रंगधाम।" वेदान्त ज्ञान और शब्दालंकार बहुलता इसकी विशेषताएं हैं।

९ वेमन शतक कर्ता—वेमना (१५६५-१६२५)।

शतक कवियों में वेमना के सम्बन्ध में जितनी छानबीन हुई है, उतनी शायद ही किसी अन्य शतककार के सम्बन्ध में हुई हो। इनके वंशज तथा समय के सम्बन्ध में विद्वानों में विशेष मतभेद न रहने पर भी स्थान के सम्बन्ध में अनेक मत-मतांतर हैं।

वेमना का जन्म रेड्डी वंश में हुआ था। इतिहासकारों का कथन है कि वेमना कोंडवीडु सीमा के निवासी थे और उनकी मृत्यु वर्तमान अनन्तपुर जिले के कटारुपल्ले में हुई। वेमना स्थायी रूप से एक स्थान पर नहीं रहे। वह समस्त आन्ध्र में भ्रमण करते रहे। हैदराबाद के तैलंगाने में भी गए। इनके अनेक मठ आजभी वहां पर मौजूद हैं। आन्ध्र में तो आज भी इनके मठों में उत्सव आदि हुआ करते हैं।

वेमना ने अपने एक पद्य में अपने निवास स्थान के सम्बन्ध में स्वयं कोंडवीडु के मूगचिंतपल्लै का उल्लेख किया है। यह स्थान वर्तमान समय के ओंगोल के समीप में पड़ता है।

वेमना के अनेक पद्यों से पता चलता है कि वह शैवयोगी थे। इसलिये कुछ विद्वानों ने उक्त पद्य में कोंडवीडु का अर्थ कैलास लगाया है। उस कैलास की प्राप्ति के लिए मूगचिंता (मौन ध्यान) नामक गांव से गुजरना होगा। तभी मुक्ति मिल सकती है।

योगी वेमना कबीर की भांति घुमक्कड़ थे। वे सदा साधु-संत, वैरागियों की संगति में रहा करते थे। इन मण्डलियों के साथ खब देशाटन भी किया ?। इसी समय वेमना ने योगाभ्यास भी किया

था। वैद्यक (दवा दारू) विद्या तथा हेमकार (स्वर्ण) विद्या भी उन्होंने सीखी। क्रमशः इहलोक की ओर से उनका मन पूर्ण रूप से उठ गया और वे अन्तर्दृष्टि को प्राप्त कर सके। धीरे-धीरे अपने शिष्यों का भी संग छोड़ वह एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे और अवधूत की भांति कौपीन धारी हो तपस्या में लीन हो गए थे।

अब तक वेमना के ४,००० पद्य उपलब्ध हुए हैं। अनुसंधान कर्त्ताओं का विश्वास है कि और भी अनेक पद्य अभी अज्ञात हैं। उनका यह भी विश्वास है कि वेमना के पद्यों में कुछ प्रक्षिप्त भी हैं। कुछ लोगों ने अपनी तरफ से कुछ पद्य रचकर वेमना के नाम प्रसारित किए। इससे उनके वास्तविक पद्यों के अनुसंधान में कुछ कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं।

वेमना के पद्य तेलुगु के सरल देशी छन्द 'आटवेलदि' और 'सेट-गीत' में हैं। कबीर जैसे लोगों ने हिन्दी के सरल छन्द दोहे को अपनाया, वसे ही तेलुगु के लिए ये दोनों छन्द सरल हैं। इसके चार पाद होते हैं और चौथे चरण में मकुट—'विश्वदाभिराम विनुवेमा' होता है। अब तक वेमना के पद्यों के अनेक चरण संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और इनकी जीवनी भी कई विद्वानों ने लिखी है। अब तक वेमना के ३,००० से ३,४०० पद्य प्रकाशित हो चुके हैं।

वेमना बहुत बड़े पण्डित भले ही न हों, किन्तु अच्छे विद्वानों का सान्निध्य उन्हें प्राप्त था। उनके पद्यों में वर्णित महत्तम विषय ही हमें इसका परिचय दे रहे हैं। उनकी भाषा साहित्यपूर्ण भले ही न हो, परन्तु उनके उपदेशों में विलक्षणता है, जो आत्मस्वरूप से अनभिज्ञ अज्ञानी लोगों को सुज्ञानी बनाने में समर्थ है।

तमिल भाषा-भाषियों का 'वेदतिरुक्कुरल' माना जाता है। वैराग्य में वेमना 'पट्टकुट्टर' (तिरुवळ्ळुवर) से भी श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। परन्तु वेमना के महान व्यक्तित्व को हम आन्ध्रवासियों ने पूर्णरूप से पहचाना ही कहां ?

वेमना जन्मजात कवि थे। अनेक सूत्रप्राय नीतियों को सर्व साधारण के लिए सुबोध शैली में छोटे-छोटे वाक्यों में देशी छन्दों में बिठाने में उनका सानी नहीं है। महाकाव्य के प्रणेताओं को वह सफलता प्राप्त नहीं हुई, जो इन्हें आटवेलदि छन्द की रचना में प्राप्त हुई है।

वेमना के पद्यों में पादात, विराम, धारा-शुद्धि, भाव-पुष्टि इत्यादि देखते ही बनता है। उनके पद्यों को पढ़ते समय पाठक के मन में ये भावनाएं विद्युत प्रवाह की भांति हृदय में प्रविष्ट हो अज्ञान-तिमिर को दूर करने में अद्भुत काम करती हैं।

वेमना परम वैरागी थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक परि-स्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर प्रजा में व्याप्त दुर्नीति एवं अन्ध विश्वासों का तीव्र रूप से खण्डन किया। वेदशास्त्र और पुराणों के प्रति उनकी श्रद्धा थी, लेकिन इनको आधार बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। ऐसे लोगों को वे क्षमा नहीं कर सकते थे। इनके पद्यों में स्वर्ग नरक, अवतार पुरुष, देवता आदि की प्रशंसा है। परन्तु बाह्याडम्बर, यज्ञ-याग, उपवास, व्रत, मूर्ति-पूजा इत्यादि का घोर विरोध किया है। काम्य कर्मों का वह विरोध करते थे। 'अहं ब्रह्मास्मि' नामक अद्वैत तत्व ही उनका लक्ष्य था। पवित्र चरित्र (आत्मशुद्धि) पर इस महात्मा ने बहुत अधिक बल दिया है। वह गुरु की प्रधानता मानते थे। गुरु द्वारा मोक्ष-साधन इन्होंने सुकर माना है।

इनके पद्यों में कुछ 'कूटपद्य' भी हैं। ठीक कबीर की तरह। उनमें रहस्य भावनाएं वर्णित हैं। इनका प्रधान छन्द 'आटवेलदि' था। इसमें वेमना ने जो प्रौढ़ता व मधुरिमा दिखाई वह और किसी कवि के लिए भी सम्भव नहीं हुई। इनका प्रत्येक पद्य एक सूत्र के समान है जिसका आन्ध्र देश में घर घर में प्रचार है। कुछ नीतिपूर्ण पद्यों का हम उदाहरणार्थ यहां उल्लेख कर रहे हैं —

मनुष्य के कर्मों को क्या शकुन रोक सकते हैं ?

क्या शिरोमुंडन से कामनाएं भी मूंडी जाती हैं ?

पत्थर (शिलाखण्ड) ही ईश्वर हो जाए, तो वह विश्व को हो निगल जाय।

जाति और वंश से भी गुण ही प्रधान है।

बिना हृदय की शुद्धि के ईश्वर की पूजा करने से क्या लाभ ?

भाल पर अंकित चिन्हों से वह भले ही भक्त जैसे दीखे, परन्तु उसका मुंह भेड़िये के समान है।

क्रोध को दबाने से कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

इस प्रकार के भाव हम वेमना के प्रत्येक पद्य में देख सकते हैं। इनमें असाधारण लोकानुभव भरा हुआ है। इनकी उपमाएं भी अद्भुत हैं। इसके अतिरिक्त वे आसानी से समझ में आती हैं।

इस महात्मा के पद्यों में लोकोक्ति और कहावत का भी समयानुकूल अच्छा प्रयोग हुआ है। इनमें नीति वाक्य भी देखने योग्य हैं —

"चाहे ये जीव अच्छे भी क्यों हों—पर कुत्ता, गाय, खरगोश बाघ, और मच्छर गज कभी नहीं बन सकते। वैसे ही लोभी आदमी स्वभाव से अच्छा होने पर भी वह दाता नहीं बन सकता है।"

"दुष्ट (निम्न जाति के) व्यक्ति को घर में प्रवेश दिया जाए तो बड़े से बड़े आदमी को भी उसके द्वारा हानि होती है। जैसे मक्खी पेट में आकर तंग करती है।"

"गधा सुगन्ध को क्या जाने और कुत्ते के पास ऊंची बुद्धि कहां से आए ? वैसे ही नीच व्यक्ति ईश्वर की उपासना करने के लिये विरक्ति कहां से पाएगा ?"

कुछ पद्यों में संस्कृत के श्लोकों की छाया भी दीखती है।

"शूद्रतनमुपों ये शूद्रुडगाननि
द्विजुडनुकोनुटेल्ल तेलिवि लेपि।"
"जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः।"

वेमना ने अपने अनुभवों व अनुभूतियों को स्पष्ट रूप से कहा है, चाहे वे अश्लील भी क्यों न हों। तेलुगु साहित्य के कवियों में वेमना अपने ढंग के अकेले हैं। दूसरे से इनकी तुलना नहीं की जा सकती।

१० कवि चौडप्पा शतक कर्ता—कवि चौडप्पा।

इस कवि के सम्बन्ध में समुचित निर्णय करने के लिए हमें इन्हीं के पद्यों में आधार मिलते हैं। चौडप्पा ने अपने पूर्व कवियों की स्तुति की और समकालीन राजाओं की प्रशंसा। राजा रघुनाथ राय की महिमा भी इन्होंने गायी है। इससे स्पष्ट है कि वह १७वीं शताब्दी के थे। उस समय के शिलालेख आदि द्वारा इनके समय का ठीक-ठीक निर्धारण किया गया, जिसके अनुसार पता चला है कि ये १६००—१६३० के मध्य भाग में कविता करते रहे।

इन्होंने अपने शतक में आत्म सबोधन परक कविता कही है। शतक का मुकुट कुदवरपु कवि चौउप्पा है। 'कुदवर' तो इनका ग्राम माना जाता है और ये उस गाव के पटवारी थे।

इनके शतक की तीन-चार प्रतियां प्राप्त हुई हैं। एक में १११ पद्य हैं, तो दूसरी में ६४ और तीसरी में ६६ ही। चौउप्पा ने अपनी रचनाओं में आत्मस्तुति भी की है। इनका प्रधान छन्द 'कद' था। इनकी रचना के प्रधान विषय आत्म स्तुति, नीति बोध, लोभी-निन्दा, भक्ति आदि हैं, अपनी नीति की प्रशस्तता का वर्णन स्वय कवि के शब्दों में सुनिए —

"ऐसे व्यक्ति को हम ढूढने पर भी नही पा सकते, जो मेरी नीति के उपदेश सुनता व पढता हो, जिसके शरीर पर सूर्य की किरणो का प्रसार न हुआ हो और जो वर्षा में भीग नही गया हो।"

"शिव जी का वरदान व्यर्थ साबित हो सकता है। देवताओं के गुरु भी नीति मार्ग से हट सकते हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी अपने मार्ग से हट सकते हैं। अयोध्या के राजा रामचन्द्र जी का बाण भी निशाना चूक सकता है। परन्तु सरस व चतुर कवि चौउप्पा का पद्य कभी नीति मार्ग से विच लित नही होता।"

"जो व्यक्ति दूसरो की सम्पत्ति को गाय के मास के समान देखता है, जो पर नारी को अपनी माता समझता है, वह मनुष्य नर नही दूसरा नारायण ही है।

११ कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक कर्त्ता—कूचिमंचि तिम्मकवि।

इन दोनो शतको के कर्ता श्री कूचिमंचि तिम्मकवि (१६६०–१७६०) थे। श्रीनाथ महाकवि के उपरान्त आन्ध्र साहित्य में इन्ही को 'कवि सार्वभौम' नामक उपाधि प्राप्त हुई। इन्होंने कुल १२ ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक नामक दो शतक भी हैं। इनके अन्य ग्रन्थो मे 'सर्वलक्षण सार सग्रह' एक श्रेष्ठ लक्षण (रीति) ग्रन्थ है। 'रुक्मिणी परिणय', 'सारंगधर चरित्र', 'राज शेखर विलास', 'शुद्ध तेलुगु रामायण शिवलीला विलास रसिक जन मनोभिराम', 'नीला-सुन्दरी परिणय' आदि भी उत्तम ग्रन्थ हैं।

कुक्कुटेश्वर शतक का आन्ध्र मे अच्छा प्रचार है। इसमें सामाजिक दुराचारो का निर्भीकता के साथ खण्डन किया गया है। भावो के आवेग और आवेश के कारण कही-कही काव्य-लक्षणो का भी अतिक्रमण हुआ है। इस शतक का मुकुट 'कुक्कुटेश' है। प्राय मुकुट के नाम पर ही शतक का नामकरण होता है। अपने आराध्य देव के नाम पर कवि ने यह शतक रचा है। इस शतक में कुल ६२ पद्य हैं। इष्ट देव तथा अन्य देवताओं की स्तुति, सुकवि स्तुति, कुकवि-निन्दा, दाता सन्त सतान, खल (दुष्ट), लोभी, सुजन, दुर्जन, सपदा, गरीबी आदि के वर्णन करने वाले पद्यो का इसमे समावेश है। जो उस समय की सामाजिक दशा का परिचय कराते हैं।

इस शतक की एक विशेषता यह है कि इसमे मुहावरो की भरमार है। कहावतें, लोकोक्तियाँ और उपमान आदि अद्भुत बन पड़े हैं। 'जातस्य मरण ध्रुवम', 'राज्यान्ते नरक ध्रुवम्' इत्यादि इसके सुन्दर उदाहरण है।

यह शतक बाद के कवियो के लिए आधार बन गया है। इसके अनुकरण पर बने अनेक शतको में 'वेणुगोपाल शतक' इत्यादि मुख्य हैं। इस कवि का दूसरा शतक भर्ग शतक है। यह समग्र रूप से उपलब्ध है। इसमें कुल मिलाकर १०१ पद्य हैं। भर्ग शतक की शैली कुक्कुटेश्वर शतक की अपेक्षा प्रौढ है। यह कवि की प्रौढावस्था में रचा गया है। यमक आदि शब्दालकारो की बहुलता पाई जाती है। १८वी शताब्दी के उल्लेखनीय शतको मे इसका भी स्थान है।

१२ भक्त मदार शतक कर्त्ता—कूचिमंचि जग्गकवि। ये कूचिमचि तिम्मकवि के तीन भाइयो में से थे। इस बात का उल्लेख जग्गकवि ने 'अनि सिह शैल महात्म्य' में किया है। ये विभिन्न प्रान्तो का भ्रमण कर अनेक राजाओं के दरबारो में गए और कितने ही कवियो को पराजित कर इन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया। इसके 'चन्द्ररेखा विलापमु' नामक ग्रन्थ के एक पद्य द्वारा मालूम होता है कि इन्होंने 'जानकी परिणय', 'द्विपद राधा-कृष्ण-चरित्र', 'सुभद्रा-विवाह', 'चन्द्ररेखा विलापमु' तथा कुछ चाटु प्रबन्ध और शतक लिखे थे। उस पद्य में 'सोमदेव राजीय' का उल्लेख नही हुआ है। सम्भवत यह कृति बाद मे रची गई होगी। उपालभ में इनसे किसी की तुलना नहीं हो सकती। चन्द्ररेखा विलाप एक निन्दात्मक काव्य है।

इन्होंने 'भक्त मदार शतक' की रचना की थी। यह कालहस्तीश्वर आदि भक्तिपूर्ण शतको की समता कर सकने वाला शतक है। इस शतक में नीति व प्रभु (राजा) निन्दात्मक पद्य भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

१३ रामलिंगेश्वर शतक कर्त्ता—अडिदमु सूरकवि (१७२०–१७८५)।

श्री सूरकवि ने अपना परिचय स्वय एक पद्य में इस प्रकार दिया है —

"कौन-सा ?—चीपुरुपल्ले।

नाम ? सूरकवि, वश का नाम अडिदमु।

आपके राजा कौन ? विजयराम महाराज।"

वह पद्य सरस है ? नहीं, राजा भोज ही है।

कवि ने कई उत्तम ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण किया। 'आन्ध्रचन्द्रालोक', 'आन्ध्रनाम शेष', 'कवि सशय विच्छेद', 'रामलिंगेश्वर शतक' और वेकटु-मत्ति शतक' इन्ही महाकवि रचित माने जाते हैं। इनका 'वेंकटमत्रिशतक' तो अपूर्ण है। रामलिंगेश्वर शतक में १०६ सीस (एक छन्द का नाम) पद्य हैं। इस शतक का मुकुट 'रामलिंगेश रामचन्द्र पुरवास' है। इसके कुल-देवता रामलिंगेश्वर स्वामी थे। इसलिए कवि ने अपनी समस्त कृतियाँ अपने आराध्य देव को समर्पित की है। इस शतक में नीति भक्ति इत्यादि के साथ उस समय के जमीदारो के अत्याचारो का भी वर्णन किया गया है। सदर्भ के अनुकूल हास्यरस पूर्ण व्यग्योक्ति तथा कहावतो का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

१४ कृष्ण शतक कर्त्ता—नृसिंह कवि।

आन्ध्र देश में सुमती व वेमना शतकों के बाद इसी नृसिंह कविकृत 'कृष्ण शतक' का विशेष रूप से प्रचार है। इस शतक का मुकुट 'कृष्ण' है। कवि ने तेलुगु के महाकवि पोतना और श्रीनाथ की कविता-रीतियो का अनुकरण किया है। नृसिंह कवि बहुत बड़े विद्वान नहीं थे, इसलिए इनके पद्यो में छन्द दोष, प्रास-भग, व्याकरणदोष इत्यादि पाए जाते है।

१५ दाशरथी शतक कर्त्ता—कचर्लगोपन्ना।

यह सत्रहवी शताब्दी में हुए थे। इनका दूसरा नाम 'रामदास' है आन्ध्र के महान भक्तो में ये भी एक थे। पोतना और त्याग राज के बाद भक्ति में इनका नम्बर आता है। इन्होंने रामचन्द्र जी पर एक शतक लिखा है। वही दाशरथी शतक नाम से प्रसिद्ध है। शतक का मुकुट 'दाशरथी करुणा पयोनिधी' है। इस शतक के प्राय. सभी पद्य भक्ति एव नीति

परक है। इस शतक का भी आन्ध्र में अच्छा प्रचार है। श्री रामचन्द्र जी आन्ध्र देश के आराध्य देव हैं। रामदास तो श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण भक्ति को मानो शतक के इन पद्यों में उंडेल ही दिया है।

इनके अलावा अन्य भी कितने ही शतककार हुए हैं। हमने ऊपर केवल ऐसे ही शतकों का परिचय दिया है, जिनका आन्ध्र देश में अधिक प्रचार है अथवा उनके कर्त्ता लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। बताया जाता है कि महाकवि पोतना ने भी 'नारायण शतक की' रचना की है। यह विवादास्पद विषय होने के कारण उस शतक पर मैंने विचार नहीं किया। अन्य शतकों में श्री एनुगुलक्ष्मण कवि कृत 'भर्तृहरि शतक' (१७२५), तथा इसी नाम का श्री पुष्पगिरि तिम्मना कृत शतक (१७५०) भी प्रसिद्ध है।

अन्य शतकों में सीतापति शतक, जानकी राम शतक इत्यादि प्रसिद्ध हैं। परन्तु अनेक कवियों ने एक ही नाम के शतक भी लिखे हैं। तेलुगु में उपलब्ध होने वाले केवल शतक व शतककर्त्ताओं के नामों का उल्लेख-मात्र भी किया जाए तो लगभग एक पोथा बन जाएगा। शतक के प्रायः समस्त प्रमुख विषयों पर मैंने संक्षिप्त रूप से यथाशक्ति प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसी में समस्त तत्वों का समावेश आ गया है। अन्य शतकों की अपनी अपनी विशेषताएं हैं। परन्तु शतक वाङ्मय में उनका प्रतिनिधित्व कर सकने वाला स्थान नहीं है। यह शतक साहित्य १२वीं शताब्दी से लेकर आज तक बराबर प्रवाहित होता जा रहा है। यहां तक कि १९५५ में भी तीन-चार शतक प्रकाशित हो चुके हैं। जब तेलगु के अन्य अज्ञात शतकों का भी पता लग जाएगा, तो तेलुगु का शतक साहित्य और भी जगमगा उठेगा।

☆

दिवोदास--(पृष्ठ १२ का शेषांश)

पुरुकुत्सानी को दैव से यह पहली सन्तान मिली, इसलिए वह इन्द्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते नहीं थकती थी। पुत्र को देखते उसे अपने पति का ओजपूर्ण शरीर याद आता। वह यही कामना करती और इसी प्रयत्न में रहती, कि त्रसदस्यु भी पिता की तरह ही दस्युओं को त्रास देने वाला हो।

☆

कहावत और लौकिक न्याय--(पृष्ठ ७ का शेषांश)

अधिक दूर नहीं था। मध्यान्ह होने के पहले पहले बारठजी ठाकुर साहब के दरवाजे पर आ पहुंचे। बारठजी को घोड़ी के साथ देखते ही ठाकुर साहब के होश उड़ गए। बारठजी घोड़ी से उतर पड़े और लगाम थामे हुए ठाकुर साहब से 'जय गोपीनाथजी की' की। ठाकुर साहब सन्न रह गए। बारठजी ने कहा, ठाकुरां, इस घोड़ी को कहां बांधूं? ठाकुर साहब ने चुपचाप अपनी जीभ निकाल दी और बोले, इसके बांध दीजिए! यह उस समय चुप रहती तो यह नौबत क्यों आती?

२ नाई हालो ठोलो, वाणिया हालो टक्को--एक नाई किसी बनिए के यहां हजामत बनाने गया। जब वह हजामत बना चुका तो उसने बनिए की टाट को एक बार अंगुलि की ग्रन्थि से बजाया। यद्यपि ऐसा करने से बनिया प्रसन्न नहीं हुआ तथापि दूरदर्शी बनिए ने नाई को उसकी करतूत का फल चखाने के उद्देश्य से कृत्रिम हर्ष प्रकट किया और पारितोषिक स्वरूप उसे एक टका (दो पैसे) दे दिया। वही नाई एक दिन किसी ठाकुर के यहां हजामत बनाने गया। बनिए से पुरस्कार मिल जाने के कारण उसे तो हजामत के बाद टाट बजाने का चस्का पड़ गया था। इसलिए पुरस्कार के लोभ से ठाकुर के सिर पर भी उसने अपनी अंगुलि की ग्रन्थि को आजमाया। इससे अपमानित होकर ठाकुर ने तुरन्त ही तलवार हाथ में ले नाई का सिर धड़ से अलग कर दिया।

इसी से मिलती-जुलती एक कहावती घटना का उल्लेख रेवरेण्ड जे० हिण्टन नोल्स ने भी 'काश्मीरी कहावतों और उक्तियों के कोष' में किया है। कहते हैं कि एक बार उच्च कुल का एक पठान जुमा मस्जिद में नमाज पढ़ने जा रहा था। पीछे से किसी ने उससे छेड़छाड़ करना शुरू किया। पठान ने उसे एक रुपया देकर अपना पिण्ड छुड़ाया। किन्तु उस दुष्ट मनुष्य को रुपया मिल गया था। उसने सोचा दूसरे किसी के साथ छेड़छाड़ करने से और रुपया मिल जाएगा। नमाज पढ़ते हुए उसने किसी अन्य व्यक्ति को तंग करना शुरू किया किन्तु वह पहले वाले पठान की तरह शांत स्वभाव का न था। वह तुरन्त तलवार लेकर उसके पीछे दौड़ा और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

३ भंडार हालो कुत्तो--एक कुत्ता किसी साधु के भंडार में घुस गया। बाबा जी के यहां धरा ही क्या था! शिष्य ने कहा--बाबा जी, भंडार में कुत्ता घुस गया। बाबा जी ने उत्तर दिया--कुत्ते को भंडार में ही बन्द कर दो। कुत्ता आहार खाने के लोभ से, बन्द स्वतः ही गया। जहां कोई कुछ प्राप्ति की आशा से जाए और उसे उल्टा अनिष्ट उठाना पड़े, वहां इस दृष्टान्त का प्रयोग किया जाता है।

---

८ टोकर खाधी हजाम नी, आप्युं भलु इनाम।
शिर छेदाव्यु हजाम नू, जुओ वणिक ना काम।। पृष्ठ ४३८ (कहेवत संग्रह) पृष्ठ १५७

वह क्षण

जैनेन्द्र कुमार

"पैसा पात्र कुपात्र नहीं देखता। क्या यह सच है?"

राजीव ने यह पूछा। वह आदर्शवादी था और एम० ए० और लॉ करने के बाद अब आगे बढ़ना चाहता था। आगे बढ़ने का मतलब उसके मन में यह नहीं था कि वह घर के काम काज को हाथ में लेगा। घर पर कपड़े का काम था। उसके पिता, जो खुद पढ़े-लिखे थे, सोचते थे कि राजीव सब संभाल लेगा और उन्हें अवकाश मिलेगा। घर के धंधे पीटने में ही उमर गई है। चौथापन आ चला है और अब वह यह देख कर व्यग्र हैं कि आगे के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया है। इस लोक से एक दिन चल देना है, यह उन्हें अब बार बार याद आता है। लेकिन उस यात्रा की क्या तैयारी है? सोचते हैं और उन्हें बड़ी उलझन मालूम होती है। लेकिन जिस पर आस बांधी थी वह राजीव अपनी धुन का लड़का है। जैसे उसे परिवार से लेना-देना ही नहीं। ऊँचे ख्यालों में रहता है, जैसे महल ख्याल से बन जाते हों।

राजीव के प्रश्न पर उन्हें अच्छा नहीं मालूम हुआ। जैसे प्रश्न में उनकी आलोचना हो। बोले—"नहीं, धन सुपात्र में ही आता है। अपात्र पर आता नहीं, आए तो वहां ठहरता नहीं। राजीव, तुम करना क्या चाहते हो?"

राजीव ने कहा—"आप के पास धन है। सच कहिए, आप प्रसन्न हैं?"

पिता ने तनिक चुप रह कर कहा—"धन के बिना प्रसन्नता आ जाती है, ऐसा तुम सोचते हो तो गलत सोचते हो। तुम में लगन है। सृजन की चाह है। कुछ तुम कर जाना चाहते हो। क्या इसीलिए नहीं कि अपने अस्तित्व की तरफ से पहले निश्चित हो। घर है, ठौर-ठिकाना है। जो चाहो, कर सकते हो। क्योंकि खर्च का सुभीता है। पैसे को तुच्छ समझ सकते हो, क्योंकि वह है। मैं तुमसे कहता हूँ राजीव कि पैसे के अभाव में सब गिर जाते हैं। तुमने नहीं जाना, लेकिन मैंने उस अभाव को जाना है। तुमने पूछा है और मैं कहता हूँ कि हां मैं प्रसन्न नहीं हूं। लेकिन धन के बिना प्रसन्न होने का मेरे पास और भी कारण न रहता। तुम्हारी आयु तेइस वर्ष पार कर गई है। विवाह के बारे में इंकार करते गए हो। हम लोगों को यहां ज्यादा दिन नहीं बैठे रहना है। तब इस सब का क्या होगा। बेटियां पराए घर की होती हैं। एक तुम्हारी छोटी बहन है, उसका भी ब्याह हो जाएगा, लड़के एक तुम हो। सोचना तुम्हें है कि फिर इस सब का क्या होगा। अगर तुम्हारा निश्चय हो कि व्यवसाय में नहीं जाना है, तो मैं इस काम-धाम को उठा दूं। अभी तो दाम अच्छे खड़े हो जाएंगे। नहीं तो मेरी सलाह तो यही है कि बैठो, पुश्तैनी काम को संभालो, घर-गिरस्ती बसाओ। और हमको अब परलोक की तैयारी में लगने दो। सच पूछो तो अवस्था हमारी है कि देखें जिसे धन कहते हैं वह मिट्टी है। पर तुममें आकांक्षा है। चाहे उन्हें महत्वाकांक्षाएं कहो। महत्त्व की हों, या कैसी भी हों, आकांक्षा के कारण धन धन बनता है। इसलिए तुमको उधर से विमुख मैं नहीं देखना चाहता। विमुख मैं स्वयं अवश्य बनना चाहता हूं। क्योंकि आकांक्षा अब शरीर के वृद्ध पड़ते आने के साथ हमें त्रास ही दे सकेगी। आकांक्षा इसी से अवस्था आने पर बुझ-सी चलती है। तुमको आकांक्षाओं से भरा देखकर मुझे खुशी होती है। अपने में उनके बीज देखता हूं तो डर होता है। क्योंकि उमर बीतने पर जिधर जाना है उधर की सम्मुखता मुझमें समय पर न आएगी तो मृत्यु मेरे लिए भयंकर हो जाएगी। तुम्हारे लिए आगे जीवन का विस्तार है। मुझे उसका उपसंहार करना है और तैयारी मृत्यु की करनी है। संसार असार है यह तुम नहीं कह सकते। हां, मैं यदि वहां सार देखूं तो अवश्य गलत होगा। तुम समझते तो हो। कहो, क्या सोचते हो?"

राजीव पिता का आदर करता था। वह चुपचाप सुनता रहा। पिता की वाणी में स्नेह था, पीड़ा थी, उसमें अनुभव था। लेकिन जितने ही अधिक ध्यान से और विनय से पिता की बात को उसने सुना, उसके मन से अपने सपने दूर नहीं हुए। अनुभव अतीत से सम्बन्ध रखता है। वह जैसे उसके लिए था ही नहीं। वह जानता था कि कमाई का चक्कर आने वाले कुछ वर्षों में खत्म हो जाने वाला है। यह बुरजुआ समाज आगे रहने वाला नहीं है। समाजवादी समाज होगा जहां अपने अस्तित्व की भाषा में सोचने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। आप सामाजिक होंगे और समाज स्वतः आपका वहन करेगा। आपका योग-क्षेम आपकी अपनी चिन्ता का विषय न होगा। राजीव पिता की बात सुनते हुए भी देख रहा था कि धनोपार्जन जिनका चिन्तन सर्वस्व है ऐसा वर्ग क्रमशः मान्यता से गिरता आ रहा है। कल करोड़ों में जो खेलता था आज चार-सौ रुपये पानेवाले मजिस्ट्रेट के हाथों जेल भेज दिया जाता है। यह वर्ग शोषक है, असामाजिक है। इसके अस्तित्व का आधार है कम दो, ज्यादा लो। हर किसी के काम आओ, इस शर्त के साथ कि अधिक उससे अपना काम निकाल लो। यह सिद्धांत सभ्यता का नहीं है, स्वार्थ का है, पाप का है। इस पर पलने-पुसनेवाले वर्ग को समाज कब तक सहता रह सकता है? असल में यह घुन है जो समाज के शरीर को खा कर उसे खोखला करता रहता है। उस वर्ग की खुद की सफलता समाज के व्यापक हित को कीमत में देने पर होती है। यह ढोंग अब ज्यादा नहीं चल सकता। इस वर्ग को मिटना होगा और फिर समाज वह होगा जहां हर कोई अपना हित निछावर करेगा। फुलाए और फैलाएगा नहीं। स्थापित स्वार्थ, संयुक्त परिवार का, वर्ग का, जाति का, सब लुप्त हो जाएगा। स्वार्थ एक होगा और वह परमार्थ होगा। हित एक होगा और वह सबका हित होगा।

पिता की बात सुन रहा था और राजीव का मन इन विचारों के लोक में रमा हुआ था। पिता की बात पूरी हुई तो सहसा वह कुछ समझा नहीं,

कुछ देर चुप ही बना रह गया। कारण, बात की संगति उसे नहीं मिल रही थी।

पिता ने अनुभव किया कि बेटा वहां नहीं कहीं और है। उन्हें सहानुभूति हुई और वह भी चुप रहे। राजीव ने उस चुप्पी का असमंजस अनुभव किया। हठात बोला—"तो आप मानते हैं, कुपात्र के पास धन नहीं होगा। फिर इंजील में यह क्यों है कि कुछ भी हो जाए धनिक का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता। उससे तो साबित होता है कि धन कुपात्र के पास ही हो सकता है।"

पिता को ऐसी बातों पर रोष आ सकता था। पर इस बार वह गम्भीर हो गए। मन्द वाणी में बोले—"ईसा की वाणी पवित्र है, यथार्थ है। वह तुम्हारे मन में उतरी है, तो मैं तुमको बधाई देता हूं और फिर मुझे आगे नहीं कहना है।"

राजीव को तर्क चाहिए था। बोला—"आप तो कहते थे कि—"

पिता और आर्द्र हो आए, बोले—"मैं गलत कहता था। परम सत्य वह ही है जो बाइबिल में है। भगवान तुम्हारा भला करे।" कहकर वह उठे और भीतर चले गए। राजीव विमूढ़ सा बैठा रह गया। उसकी कुछ समझ में न आया। जाते समय पिता की मुद्रा में विरोध या प्रतिरोध न था। उसने सोचा कि मेरे आग्रह में क्या इतना बल भी नहीं है कि प्रत्याग्रह उत्पन्न करे? या बल इतना है कि उसका सामना हो नहीं सकता। उसे लगा कि वह जीता है। लेकिन जीत में स्वाद उसे बिलकुल नहीं आया। वह आशा कर रहा था कि पैसे की गरिमा और महिमा सामने से आएगी और वह उसको चकनाचूर कर देगा। उसके पास प्रखर तर्क थे और प्रबल ज्ञान था। उसके पास निष्ठा थी और उसे सर्वथा प्रत्यक्ष था कि समाजवादी व्यवस्था अनिवार्य और अप्रतिरोध्य होगी। पूंजी की सत्ता कुछ दिनों की है और वह विभीषिका अब शीघ्र समाप्त हो जानेवाली है। उसको समाप्त करने का दायित्व उठानेवाले बलिदानी युवकों में वह अपने को गिनता था। वह यह भी जानता था कि नगर के मान्य व्यवसायी का पुत्र होने के नाते उसका यह रूप और भी महिमान्वित हो जाता है। उसे अपने इस रूप में रस और गौरव था। वह निश्शंक था कि भवितव्यता को अपने पुरुषार्थ से वर्तमान पर उतारनेवाले योद्धाओं की पंक्ति में वह सम्मिलित है। उसमें निश्चित धन्यता का भाव था कि वह क्रांति का अनन्य सेवक बना है। वह तन-मन के साथ धन से भी उस युग निर्माण के कार्य में पड़ा था और उसके वर्चस्व की प्रतिष्ठा थी। मानो उस अनुष्ठान का वह अध्वर्यु था।

लेकिन पिता जब संतोष और समाधान के साथ अपनी हार को अपनाते हुए उसकी उपस्थिति से चुपचाप चले गए तो राजीव को अजब लगा। मानो कि उसका योद्धा का रूप स्वयं उसके निकट व्यर्थ हुआ जा रहा हो। उसका जी हुआ कि आगे बढ़कर कहे कि सुनिए तो सही, पर वह स्वयं न सोच सका कि सुनाना अब उसे शेष क्या है। पिता उसे स्वस्ति कह गए हैं, मानो आशीर्वाद और अनुमति दे गए हों। पर यह सहज सिद्धि उसे कातरी-सी लगी। वह कुछ देर अपनी जगह ही बैठा रहा। तुमुल द्वंद्व उसके भीतर मचा और वह कुछ निश्चय न कर सका।

चौबीस घंटे राजीव मतिभूला सा रहा। अगले दिन उसने पिता से जाकर कहा—"आज्ञा हो तो मैं कल से कोठी पर जाकर काम देखने लग जाऊं।"

पिता ने कहा—"क्यों बेटा?"

"जी, और कुछ समझ नहीं आता।"

पिता ने कहा—"तुमने अर्थशास्त्र पढ़ा है। मैंने अर्थ पैदा किया है, शास्त्र उसका नहीं पढ़ा। शास्त्र धर्म का पढ़ा है। ईसा की बात इस शास्त्र की ही बात है। अर्थशास्त्र भी यही कहता है तो तुम जानो। मैं तो बी० ए० से आगे गया नहीं और अर्थशास्त्र की बारहखड़ी से आगे जाना नहीं। फिर भी यहां शायद मानते हैं कि अर्थ काम्य है। राजीव बेटा, धर्म में उसे काम्य नहीं माना है। इसलिए उसकी निन्दा भी नहीं है, उस पर करुणा है। तुम शायद मानते होगे, जैसे कि और लोग मानते हैं, कि तुम्हारा पिता सफल आदमी है। वह सही नहीं है। ईसा की बात जो कल तुमने कही बहुत ठीक है। बहुत ही ठीक है। मैं उसको सदा ध्यान में नहीं रख सका। तुमसे कहता हूं कि निर्णय तुम्हारा है। निर्णय यही करते हो कि कोठी के काम को सम्भालो तो मुझे उसमें भी कुछ नहीं है। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे साथ रहेगी। मैं तो उसे सात्वना देने पहुंच सकूंगा नहीं। उसके समक्ष तुम्हें स्वयं ही रहना है। इसलिए मैं तुम्हारी स्वतन्त्रता पर आरोप नहीं ला सकता हूं। पर बेटे, मैं भूला रहा तो भूला रहा, धर्म की और इंजील की बात को तुम कभी मत भूलना। इतना ही कह सकता हूं। समाजवादी हो, साम्यवादी हो, पूंजीवादी हो, व्यवस्था कुछ भी हो, धर्म के शब्द का सार कभी खत्म नहीं होता। न वह शब्द कभी मिथ्या पड़ता है। उसे मन से भूलोगे नहीं तो शायद कहीं से तुम्हारा अहित न होगा। हो सकता है समाज का भी अहित न हो। राजीव, बहुत दिनों से सोचता रहा हूं। अब पूछता हूं कि हम लोग दोनों तुम्हारी मां और मैं, अब जा सकते हैं कि नहीं। अपनी बहन सरोज के विवाह को तो ठीक-ठाक तुम कर ही दोगे।"

राजीव ने कहा—"नहीं, नहीं, यह नहीं—"

पिता ने हंसकर कहा—"लेकिन इतना जिम्मा तुम नहीं उठा सकते, यह मानने वाला मैं थोड़े ही हूं और—"

"वह तो ठीक है। लेकिन मेरा विवाह?"

"तेरा! तो यह बात है। अच्छा-अच्छा!"

राजीव ने उठकर पिता के चरण छुए। पिता ने उसके सिर पर हाथ रखा। उनकी आंखों में आंसू आ गए थे। राजीव भी गद्गद् था। उसे याद नहीं रहा कि कुछ वर्ष हुए उसने घोषणा की थी कि पांव छूना गुलामी है, वह आदर देना नहीं है। तभी यह भी निश्चय हुआ था कि विवाह में पड़ना मन्द और बन्द होना है। उन वर्षों को एकदम मिटाकर कहां से कैसे यह क्षण उसके जीवन में आ गया था, किसी को पता न था। लेकिन उस क्षण में जैसे अनन्त धन्यता भरी थी।

हमारा संसद-भवन

रामेश्वर टाटिया

पर्यटक चाहे हमारे अपने देश के हो अथवा विदेशी, सब का कहना है कि जिसने दिल्ली नही देखी, भारत नही देखा और जिसने दिल्ली में ससद-भवन नही देखा, उसने दिल्ली नही देखी।

यह उचित सही है क्योंकि हमारा ससद-भवन कुतुब मीनार, जामा मस्जिद अथवा लाल किले से कम आकर्षक नही है। इस महाकाय वृत्ताकार भवन के बरामदो के पीछे के कक्षो मे हमारे देश के कर्णधार राष्ट्र को दिशा दान देते है, जिन पर जनता की उन्नति और विकास निर्भर है।

ससद-भवन के प्रति सहज आकर्षण का कारण है इसका निर्माण-कौशल, वास्तु शिल्प एव इसका अनोखा इतिहास। दिल्ली की प्रसिद्ध इमारतो को देखने के बाद ससद-भवन को देखकर यह कौतूहल पर्यटक के मन में जग उठता है कि इमारत बुलन्द तो जरूर है पर क्या यह भारतीय स्थापत्य का प्रतिनिधित्व करती है ?

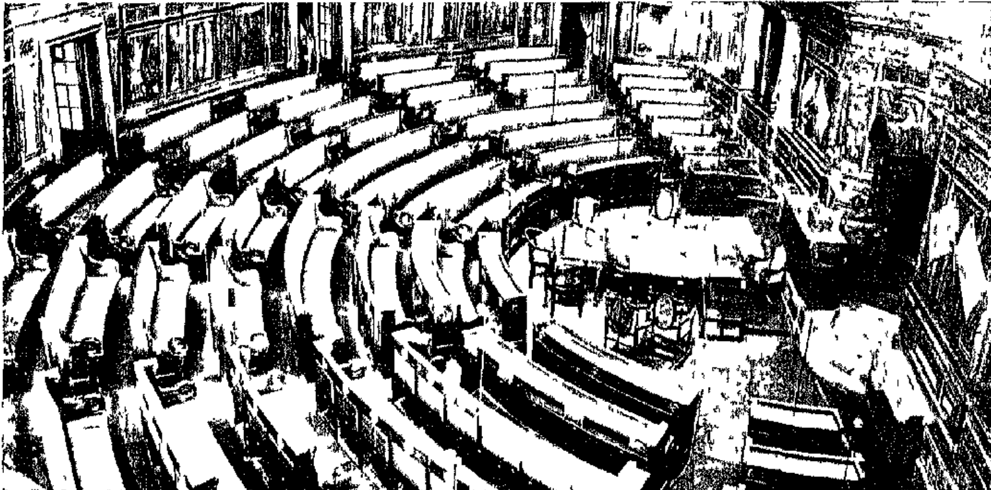
पर्यटक की दृष्टि ससद-भवन के सुदीर्घ एव मसृण खम्भो पर फिसलती सी रहती है कि सहसा उनके मन में एक आवाज गूज उठती है। जैसे ससद-भवन कह रहा हो यदि दक्षिण के मन्दिर भारतीय है, यदि ग्वालियर, उदयपुर और जयपुर के महल तथा किले भारतीय है, और यदि दिल्ली का लाल किला, जामा मस्जिद और आगरा का ताजमहल भारतीय स्थापत्य की परम्परा लिए हुए है तो मुझ पर शका क्यो ? मुझ जैसा निर्माण कही और देखा है ? मै सदियो की कला और कारीगरी को एक साथ अपने में समेटे हुए हू। ये छज्जे, मेहराब, गुम्बज, भारत के बाहर है और कही ? गवाक्ष और वातायन की ये बारीक जालिया, पत्थरो पर नफीस नक्काशी, उन पर उत्कीर्ण ये भारतीय प्रतीक—क्या ये सब नही बताते कि मै भारतीय परम्परा का हू, विशुद्ध भारतीय कुल का हू ?

बात सही है। भले ही अग्रेजो के शासनकाल मे यह भवन बना, उन्ही के द्वारा बनवाया भी गया, किन्तु इसे रूपदान दिया भारतीय कारीगरो ने ही। इसके निर्माण मे भारतीय सामग्री का उपयोग किया गया। खम्भो के लिए काले पत्थर गया से लाए गए। रगीन तथा श्वेत सगमरमर मकराना से आए। भवन में लगी मजबूत और चिकनी लकड़ी दक्षिण भारत, आसाम और बर्मा से मगाई गई थी। बर्मा उन दिनो भारत का अग था।

ससद भवन का इतिहास कम मनोरजक नही है। शासको ने शासन की सुविधा के लिए इसे बनवाया, पर यही शासितो ने उनके हाथ से शासन ले लिया, तलवार की नोक से नही, अहिंसा के बल पर।

सिपाही-विद्रोह के रूप में राष्ट्रीयता की लपट बुझाने का अग्रेजो का प्रयास स्थायी रूप से सफल सिद्ध नही हुआ। भारतीयो के हृदय में चिनगारी रह ही गई थी। 'वन्दे मातरम्' के घोष ने उस दबी हुई चिनगारी

राज्य सभा कक्ष का भीतरी दृश्य



को जगा दिया। 'बग भग' आन्दोलन ने अंग्रेजों को कलकत्ता में चैन न लेने दिया। शासन की सुविधा और सुरक्षा के खयाल से, अंग्रेजो ने कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली को ही राजधानी बनाने में कल्याण समझा। अत प्रथम महायुद्ध के बाद के 'माटग्यु चेम्सफोर्ड सुधार' के जमाने में अंग्रेजी हुकूमत ने तय किया कि उनकी विधायिका परिषद, राज्य परिषद एव नरेन्द्र मण्डल के लिए दिल्ली में एक ऐसा भवन बनवाया जाए, जहा ये तीनो एक साथ रहे। इस दृष्टिकोण से नक्शा तैयार करने का भार तत्कालीन प्रसिद्ध स्थापत्यकार सर हरबर्ट बेकर को सौंपा गया। १२ फरवरी १९२१ को इस का शिलान्यास 'काउन्सिल हाउस' के नाम से हुआ। इसके निर्माण में ६ वर्ष लगे और उस समय लागत बैठी ८३ लाख रुपए, जो आज किसी भी हालत में चार करोड से कम नहीं। भवन-निर्माण में चीफ इजीनियर थे सर ह्यू कीलिंग, पर एक्जीक्यूटिव इजीनियर थे सरदार बहादुर सिह, ठेकेदार थे रायबहादुर सेठ लछमनदास, नैनराम, शेख नत्थू और खान बहादुर सेठ हारु। यही कारण है कि अंग्रेजो द्वारा बनवाए जाने पर भी भारतीय प्रभाव का रग इस पर गहरा है। सन् १९२७ की १८ जनवरी को तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन द्वारा 'काउन्सिल हाउस' का उद्घाटन बडी शान श्रो शौकत से हुआ।

नई दिल्ली एक बार फिर मुस्करा उठी। पिछली बातें उसे याद आईं। खैबर की तग घाटी की राह हिन्दुस्तान की सरसब्ज जमीन पर उतरती हुई तुर्क, पठान, अफगान, और मुगलो की टोलिया, तैमूर, चगेज, नादिर और अहमद की रक्त पिपासु आखें। वह चिरकाल से भारत की राजधानी रही है। सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर आखिरी मुगल बादशाह *बहादुर शाह 'जफर' तक अधिकाश ने उसे ही राजधानी बनाया था।* उस जमाने में काउन्सिल हाउस होता था बादशाह के महल का एक हिस्सा दीवाने आम और दूसरा हिस्सा दिवाने खास। काजियो और अमीरो की सलाह से बादशाह हुकूमत की बागडोर सम्हालता था। सल्तनते मुगलिया के खडहर पर सल्तनते बर्तानिया बनी।

आलोक किरण में दिल्ली नई दुलहन सी लग रही थी। कल तक वह हिन्दुस्तान की दिल्ली थी आज उसे नए नाम से पुकारा गया-- 'न्यू देहली'

काउन्सिल हाउस पर यूनियन जैक लहरा-लहरा कर जैसे गा रहा था 'गाड सेव द किग।'

और बीस वर्ष बाद १५ अगस्त १९४७ को मध्य रात्रि में इसी काउन्सिल हाउस पर यूनियन जैक की जगह चक्रधारी तिरगा लहरा उठा।

दिल्ली फिर एक बार मुस्कराई। किन्तु इस मुस्कान में कुछ और बात थी। लोगों ने देखा घास पर ओस की नन्ही बूदे भी हँस रही है। काउन्सिल हाउस की अभिलाषा पूरी हुई, उसका जन्म सार्थक हो गया। उसकी गुम्बज से गम्भीर लहरी गूज निकली --

जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता!

हमारा ससद-भवन दूर से जितना प्रभावशाली दिखाई देता है, पास से उससे भी अधिक रोबदार और भव्य है। लगभग ६ एकड भूमि में यह चक्र के आकार का विशाल भवन बना है। इसकी परिधि एक-तिहाई मील है और व्यास ५६० फुट है। पहली मजिल पर एक प्रशस्त बरामदा है जो भवन की बनावट से सन्तुलन रखता हुआ, उस परिधि की भाति घेरे है। सारे बरामदे में, समान दूरी पर खडे २७ फुट ऊचे १४४ खम्भे है। ससद-भवन का विशाल गुम्बज ९८ फुट ऊचा है। इससे कुछ ही बडा गुम्बज लन्दन के सेन्ट पाल गिरजा घर का है, जिसकी गणना ससार के बडे बडे गुम्बजो में की जाती है।

भवन की धुरी है केन्द्रीय हाल, जो इस गुम्बज की ठीक नीचे है। हाल के चारो ओर खुले और बडे-बडे सहन है। सुन्दर बाग और फौवारो के कारण ये बहुत मनोरम लगते हैं। सहन में समान दूरी पर बने लोक-सभा, राज्य-सभा और ससद पुस्तकालय के सदन है। इन तीनो सदनो की बनावट अर्ध वृत्ताकार है। केन्द्रीय हाल से इनमें जाने के रास्ते हैं। इन तीनो सदनो एव सहन की परिधि के बाद ससद की विभिन्न समितियो एव कार्यालयो के कक्ष है। इन कक्षो के पीछे पुन एक विस्तृत बरामदा है, जो सम्पूर्ण भवन को घेरे हुए है।

ससद-भवन की एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि स्थापत्य शिल्प एव सुरुचिपूर्ण कला के साथ आधुनिक विज्ञान सम्मत साधनो का सन्तुलित समन्वय यहा किया गया है।

ससद-भवन को अन्दर से देखने के लिए केन्द्रीय हाल से प्रारम्भ करने में सुविधा रहती है। इस हाल में राज्य-सभा और लोक-सभा की सयुक्त बैठकें होती है। इसके अतिरिक्त विशेष अवसरो पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की बडी-बडी सभाए भी इसी हाल में होती है, इसमे पहली मजिल पर दर्शक, पत्रकार और अतिथियो के लिए अलग-अलग गैलरिया है जहा से बैठकर हाल में हो रही सभा की कार्रवाई देखी जाती है। हाल में हमारे राष्ट्र के मनीषी एव नेताओ के आदमकद चित्र प्रमुख स्थलो पर सुशोभित है।

केन्द्रीय हाल की ताप नियत्रण व्यवस्था उल्लेखनीय है। दिल्ली *अपनी सूखी गरमी के लिए प्रसिद्ध है। ताप का प्रकोप ससद की कार्रवाई* में बाधा उपस्थित न करे, इसलिए इसके नियन्त्रण की आवश्यकता है। ससद भवन के अन्य कक्षो में तो विद्युत-सचालित ताप-नियन्त्रण की प्रचलित व्यवस्था है, किन्तु केन्द्रीय हाल में, इसकी ऊचाई और विशालता के कारण वैसा करना दुष्कर था, फिर भी, इसका समाधान बडी कुशलता से कर लिया गया है। केन्द्रीय हाल में जगह-जगह दीवारो में बारीक जालियो की खिडकिया-सी बनी है। इनके पीछे फौवारे है। फौवारो से निकलती हुई जलधारा के पीछे पखे खूब तेजी से घूमते है, जिससे जल के सूक्ष्म कण हवा में उडकर फैल जाते है। इस प्रकार ताप नियत्रण तो होता ही है, साथ ही हाल के वायुमण्डल में स्वाभाविक स्निग्धता आ जाती है। पता नहीं, विश्व में और कही ऐसी व्यवस्था है या नही, कम से कम मैं जहा कहीं गया हू मेरे देखने में तो ऐसी व्यवस्था नहीं आई।

विशेष अवसरो के सिवा, साधारण अवस्था में केन्द्रीय हाल ससद का सगम है। चूकि सदन की लाबियो में जलपान का निषेध है, इसलिए राज्य-सभा और लोक-सभा के सदस्य ससद के सत्र की अवधि में केन्द्रीय हाल में एकत्रित होकर जलपान अथवा विश्राम करते हुए परस्पर विचार विमर्श करते पाए जाते है। सर्व-साधारण के लिए जिन मन्त्रियो के दर्शन दुर्लभ होते है, उन्हें यहा बैठे देख पाना आश्चर्य नहीं। ससद के सदस्यो द्वारा पास लेकर दर्शक भी प्राय. यही आते है। सवाददाता तथा पत्रकार भी अपने पत्रो के लिए यहा से सामग्री सचय करने में लगे रहते है, क्योकि सदस्यो के अतिरिक्त उन्हें मन्त्रियो, उपमन्त्रियो एव विदेशी आगन्तुको से वार्तालाप का सहज अवसर प्राप्त हो जाता है। विदेशी आगन्तुक भी यहा एक स्थान पर भारत के नेताओ को एकत्र पाकर अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकते है।

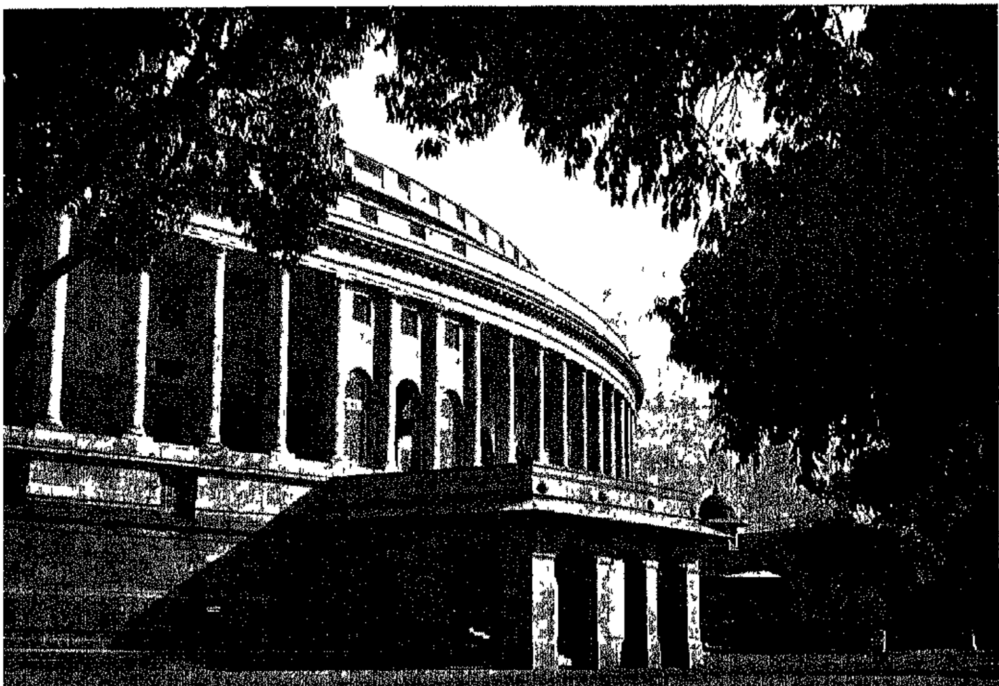
भारतीय संसद-भवन

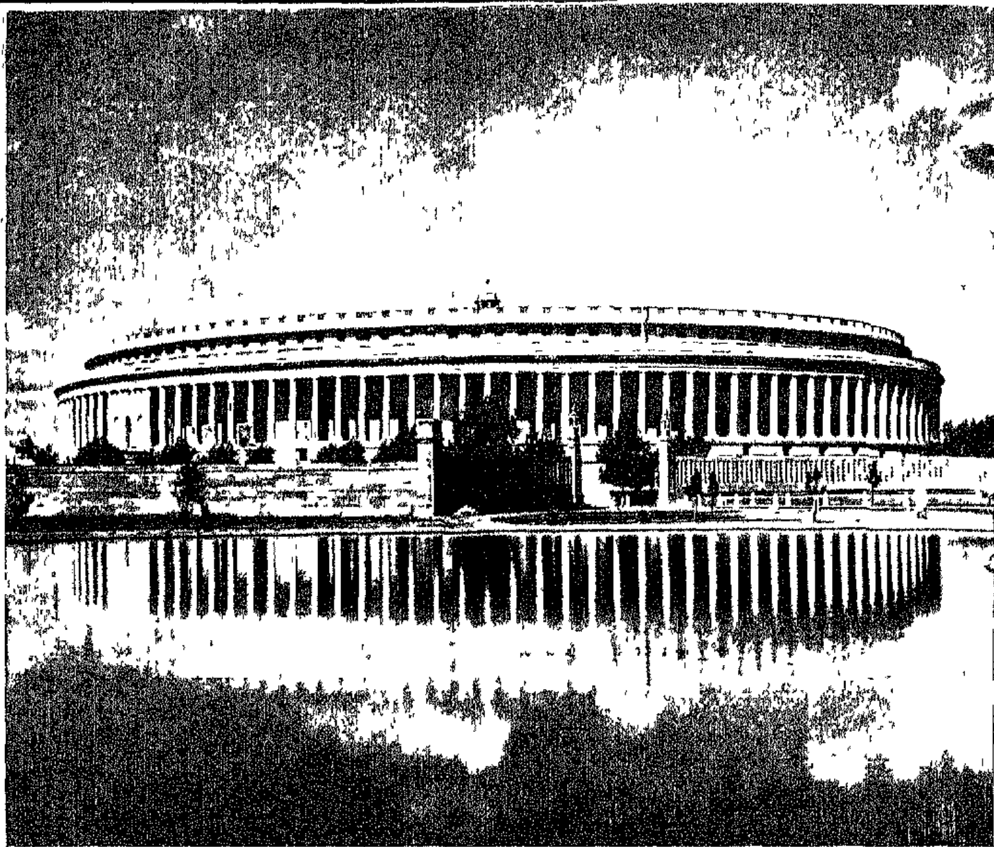


सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के बचपन की एक काल्पनिक प्रस्तर मूर्ति जो संसद-भवन के प्रांगण में स्थापित है।

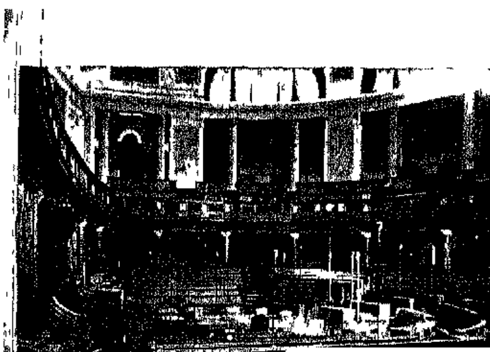
इस मूर्ति के नीचे लिखा है
"बालक प्रजापाल चन्द्रगुप्त मौर्य भावी भारत निर्माण की कल्पना में"

संसद-भवन का एक मुख्य द्वार



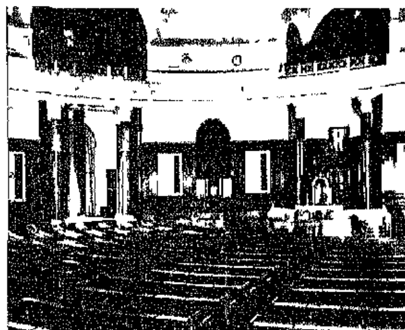


संसद-भवन दिन के समय

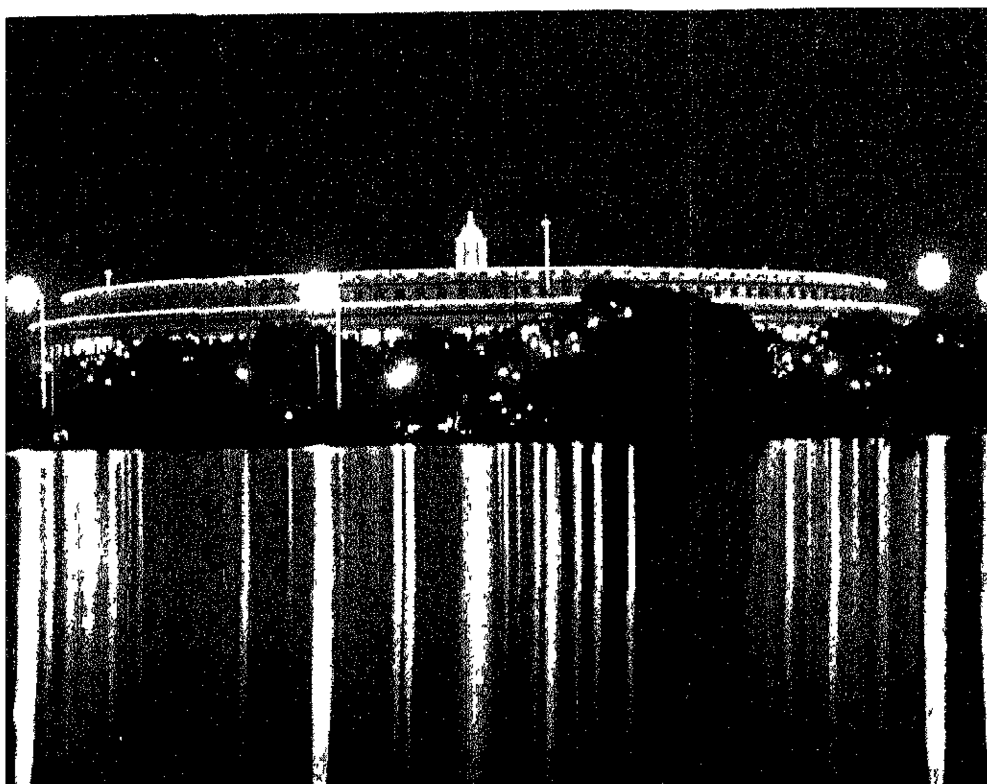


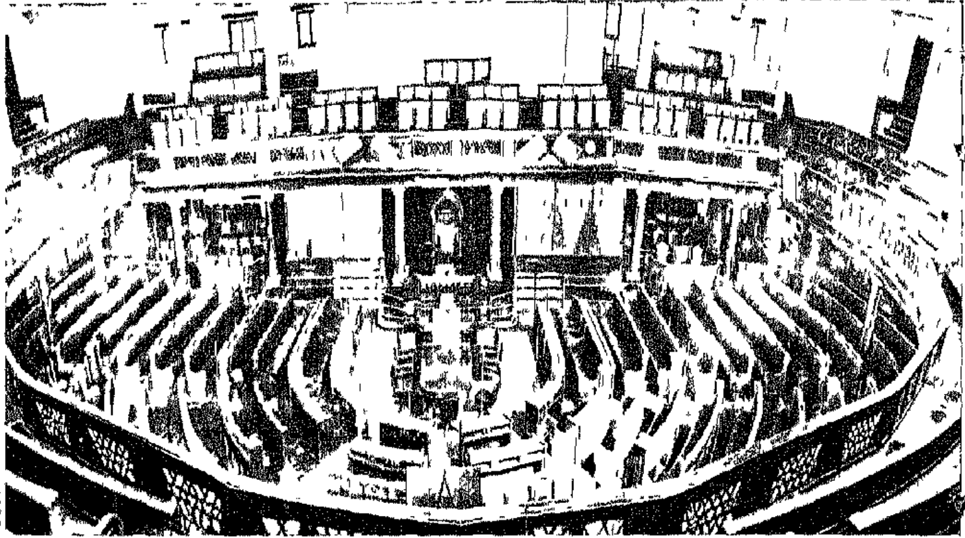
लोक-सभा कक्ष

केन्द्रीय कक्ष का भीतरी दृश्य
संविधान सभा के अधिवेशन
इसी कक्ष में हुए थे ।



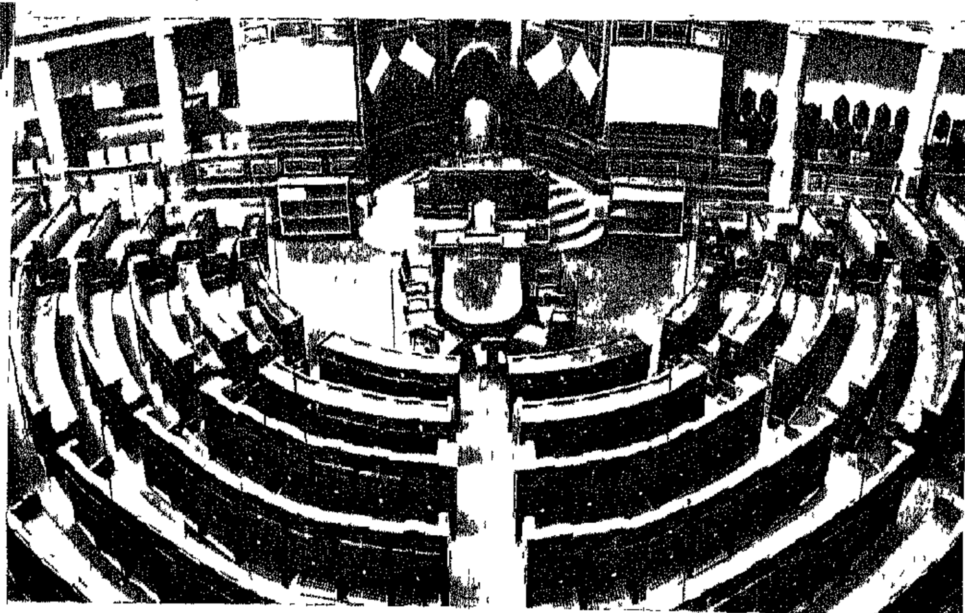
संसद-भवन २६ जनवरी की रात के समय





लोक-सभा कक्ष का भीतरी दृश्य

कक्ष का भीतरी दृश्य



केन्द्रीय हाल की परिधि के अन्दर विभिन्न पाच कक्ष है, जो कांग्रेसी दल, विरोधी दल एवं महिला सदस्यो के लिए नियत है। इन कमरो में सदस्यो के विश्राम की समुचित व्यवस्था है। यहा एक कक्ष में आधुनिक साधनो से सम्पन्न चिकित्सालय भी है, जहा सदस्यो के लिए बिना व्यय चिकित्सा का तथा प्राथमिक सहायता का प्रबन्ध है।

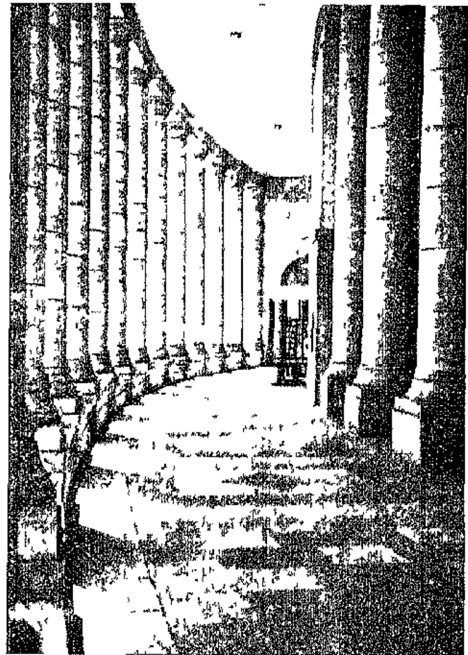
ससद का लोक-सभा कक्ष अर्ध वृत्ताकार है। अर्धवृत्त के दोनो सिरो के बीच में स्पीकर का आसन है। स्पीकर की कुर्सी की दाहिनी ओर मंत्रियो एव कांग्रेसी सदस्यो की कुर्सिया है, तथा बाईं ओर विरोधी दल के सदस्यो की। लोक सभा कक्ष का क्षेत्रफल ३६८८ वर्ग फुट है। यहा पहले केवल १४८ सदस्यो के बैठने की जगह थी, किन्तु प्रथम साधारण निर्वाचन के बाद सदन की सदस्य सख्या बढ जाने के कारण ५३० सदस्यो के बैठने की व्यवस्था कर दी गई है। कक्ष की बनावट के अनुरूप सदस्यो की कुर्सिया भी अर्ध वृत्ताकार कतारो में है। कुर्सियो के सम्मुख डेस्क भी लगे हैं।

कक्ष मे ध्वनि नियत्रण की व्यवस्था अत्यन्त सुविधाजनक एव आधुनिकतम है। यहा २० माइक्रोफोन हैं। इनकी शक्ति इतनी अधिक है कि १५ फुट दूरी तक की धीमी से धीमी आवाज को वे ग्रहण कर लेते है। इसलिए सदस्यो को भाषण देने के लिए अपनी जगह नही छोडनी पडती, वे अपने स्थान से भाषण देते है। सदस्यो के प्रत्येक डेस्क के साथ एक-एक लाउडस्पीकर लगा है। स्पीकर के लिए चार तथा सरकारी सवाददाताओ के लिए दो लाउड-स्पीकर है। ये सरकारी सवाददाता इतने दक्ष है कि सदन के भाषण आदि की प्रतिलिपि तथा कारवाही के नोट्स तुरन्त तैयार कर लेते है। इन्हें उसी दिन छाप कर सदस्यो के पास आवश्यक सशोधन के लिए भेज दिया जाता है।

कुछ समय पहले तक मतगणना के अवसर पर 'हा' अथवा 'ना' के लिए सदस्यो को अलग-अलग लॉबियो में जाना पडता था। किन्तु अब यह प्रथा नहीं रही। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की तरह मतगणना की आधुनिक व्यवस्था हमने ससद के लिए अपना ली है। प्रत्येक सदस्य की डेस्क पर पक्ष, विपक्ष और निष्पक्ष मत के लिए एक एक बटन है। सदन मे मत गणना के अवसर पर सदस्य अपने-अपने डेस्क पर लगे बटन दबा कर अपना मत प्रकट कर देते है। बटन के दबते ही सदन में लगे दो बोर्डो पर लाल, पीले और हरे तारे अकित हो उठते हैं, जिससे पता चल जाता है कि विपक्ष अथवा निष्पक्ष रूप में कितने-कितने मत हैं। इस प्रकार सदन में उपस्थित सभी सदस्यो की मतगणना हो जाती है, साथ ही साथ विभिन्न मतो का कुल जोड भी एक-दूसरे बोर्ड पर अकित हो उठता है। एव तुरन्त उसका फोटो भी स्वय ही उतर आता है। यह फोटो दूसरे दिन सदस्यो की जानकारी के लिए लॉबी में लगा दिया जाता है। इस व्यवस्था में सबसे बडी सुविधा यह है कि भूल की गुजाइश न्यूनतम है।

लोक-सभा कक्ष की पहली मजिल पर गैलरिया है। पत्रकारो की गैलरी स्पीकर की कुर्सी के ऊपर है। अन्य गैलरियो में महिलाए, राज्य-सभा के सदस्य, दर्शक, विशिष्ट आमन्त्रित व्यक्ति एव विदेशी प्रतिनिधियो के अलग-अलग बैठने की व्यवस्था है। सदन की परिधि के बाहर दो लॉबिया है। सदस्य यहा बैठकर सलाह-मशविरा करते है। सदस्यो की सुविधा के लिए यहा ४ टेलीफोन लगे है।

राज्य-सभा का कक्ष बहुत कुछ लोक-सभा के अनुरूप है, अन्तर केवल इतना है कि यह कक्ष लोक-सभा से छोटा है। पहले इसमें केवल



ससद-भवन का बरामदा

८६ सदस्यो के बैठने की जगह थी, किन्तु अब यहा २१६ सदस्य बैठ सकते है। लोक-सभा के डिप्टी स्पीकर एव स्पीकर की जगह यहा चेयरमैन तथा डिप्टी चेयरमैन होते है। लोक-सभा के सदस्य सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होते है, किन्तु राज्य-सभा के सदस्य राज्य की विभिन्न विधान सभाओ द्वारा निर्वाचित होते है। देश के शीर्षस्थानीय साहित्यकार, कलाविद्, विज्ञानवेत्ता और विद्वानो में से राष्ट्रपति अपनी ओर से १२ सदस्य राज्य-सभा के लिए मनोनीत करते है।

राज्य सभा और लोक सभा कक्ष की तरह अर्ध वृत्ताकार तीसरे कक्ष में ससद का पुस्तकालय है। अग्रेजो के जमाने म यहा नरेन्द्र मण्डल की बैठकें होती थी। स्वाधीनता के बाद यहा भारत का सर्वोच्च न्यायालय था, किन्तु अब वह अपने निजी भवन में चला गया है।

ससद के पुस्तकालय का सग्रह बहुत ही मूल्यवान एव विशद है। लगभग सवा लाख पुस्तकें यहा है। सदस्य की आवश्यकतानुसार पुस्तक न रहने पर वह खरीद कर मगा दी जाती है। इस पुस्तकालय के साथ वाचनालय भी है, जहा देश विदेश की तरह-तरह की पत्रिकाए, हमारे राष्ट्र की एव राज्य सरकारो की विज्ञप्तिया, सूचनाए, सभा समितियो की छपी हुई रिपोर्ट आदि हर समय उपलब्ध रहती है।

उक्त तीन प्रमुख कक्षो के अलावा ससद-भवन में करीब ५०० छोटे कमरे है। इनमे विभिन्न ससदीय कार्यालय एव समितियो के दफ्तर हैं।

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

एक वसन्त की तरह

अशोक वाजपेयी

मै जो
कुछ नये फल, सफेद बादल
और उजली धूप तुम्हें देता हू
तो कही लिखा नही जाएगा
कि मैंने ये तुम्हे दिए थे
और तुमने एक वसन्त की तरह
इन्हे स्वीकार कर लिया था
दिन और वर्ष सब झर जाएगे
और ढक लेगे उस राह को
जिस पर तुम्हारे अगो से
गिर पडे थे फूल
फिसल गया था बादल
और छलक पडी थी धूप
तो कही लिखा नही जाएगा
कि मै उन्हे बटोर लाया था
पतझर के पहले पत्तो-सा
और देख सका था तुम्हे
उनसे सजा-सवरा
एक वसन्त की तरह ।

हम

सैयद शफीउद्दीन

हम गरीब है
क्योकि हमारी जो माग है
और हमारी जो जरूरत है
उनका सम्बन्ध
अगरचे हमारी जिन्दगी
और महज जिन्दा रहने से है
--और जिन्दगी और जिन्दा रहने के तकाजे
कोई काले कोस तक पसरे हुए नही होते,
वह बित्ते भर जगह में अट सकते है,
पोटली में बाध
और अगोछे में सान लिये जाते है--
लेकिन हर माग और जरूरत,
गो वह कैसी भी हो,
चूकि साधन ढूढती है
और आज के जमाने में
चूकि साधन का ताल्लुक हाथ पैर,
पसीने और दिमाग से न हो कर
पुश्तैनी साधन सम्पन्नता,
सोस
और जी हुजूरी से हो गया है,
हम खलीते में धरा हुआ अधन्ना निकालते है,
मुट्ठी भर चबैना फाक,
बच रही भूख को
लोटा भर पानी से मिटा देते है,
डेढ हाथ की लगोटी बाधते है,
पैबन्द चिपकाते और गाठें लगाते है
और दिन भर तपे फुटपाथो पर, राम का नाम ले,
आने वाली सुबह को उठने,
जझने
और जले हुए खून को फिर से जलाने के इन्तजार में
सो रहते है ।
हम जिन्दा है
और जिन्दा रहना चाहते है
(गो जिन्दगी की जो परिभाषा है, उसे छू नही सकते,
क्योकि जिन्दा रहने को ही
जिन्दगी नही कहते)
लेकिन हमें लगता है,
कि हम जो है
और हमारा जो वर्तमान हमारे साथ-साथ है
और इस वर्तमान के साचे में ढले हुए
जिस भविष्य की हमारी माग है,
वह सब गलत है
और उस पर हमारा कोई भी हक नही,
क्योकि हमारे
और हमारी जिन्दगी की माग और जिन्दा रहने के
आसरे के बीच
हमारी तकदीर की दीवारें है,
हमारी खुद की कमजोरिया है--
हमारे बाप भी हमारी तरह
और उनके बाप भी उनकी तरह
चबैना फाकते, डेढ हाथ की लगोटी लगाते
और जहा कही सीग समाती, लेट-पड रहते थे,
और उन्ही की तरह हमने भी
अभाव की रेतीली धरती पर
खुद्दारी के फल-फूल हीन,
कडवे, कटीले पौदे रोपे है,
उन्हें हिम्मत की खाद दी है
और स्नेह से सींचा है ।

कविता और विज्ञान

सत्यनारायण त्रिवेदी

कविता और विज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर साहित्यिक चिन्तन क क्षेत्र मे जितना अनगल प्रलाप हुआ हे उतना कदाचित ही किसी अन्य विषय को लेकर हुआ हो। अनेक विद्वानो द्वारा ऐसा कहा जा रहा है कि अब कविता का जमाना लद गया हे और वह अपने पुराने उत्कर्ष एवम् गौरव को नही प्राप्त कर सकती है। भारत ही नही अन्य देशो में भी कविता के भविष्य को लेकर मनीषी विद्वान चिन्तित हो उठे हैं। इगलैंड, स्पेन, आदि देशो के विश्वविद्यालयो से प्राप्त आकडो से प्रकट हुआ है कि इधर कुछ वर्षों में कविता पढने और लिखने वालो की सख्या बहुत कम हो गई है। पीकाक महोदय ने लिखा है कि आज का कवि स्वय नही जानता है कि वह क्या लिख रहा है। कवि के लिए आज का युग काव्य-प्रेरणा का अतीत काल हो गया है। कविता के सृजन से किसी न किसी उपयोगी अध्ययन की क्षति होती है। सभ्यता के आदिम काल में कविता की आवश्यकता और उपयोगिता थी किन्तु वर्तमान शती में जब विज्ञान की चर्तुदिक उन्नति हो रही हो और मानव मस्तिष्क बहुत परिष्कृत और परिपक्व हो गया हो कविता की, जो एक प्रकार का मानसिक उन्माद है, कोई जरूरत नही और न इसके लिए समय नष्ट करना चाहिए। पीकाक के इन शब्दो ने विद्वत समाज के सामने एक समस्या खडी कर दी है।

बीसवी शती के सर्वश्रेष्ठ आलोचक प्रोफेसर रिचर्ड्स ने पीकाक के उपर्युक्त शब्दो को उद्धृत कर उनकी साथकता को चुनौती देते हुए स्पष्ट किया है कि काव्यगत सत्य और वैज्ञानिक सत्य में तात्विक भेद है। आधुनिक युग में विज्ञान की प्रभाववृद्धि के कारण कविता के लिए अनिवार्य हो गया है कि वह अपने स्वरूप और कार्य को सुस्पष्ट रखे। बिना कविता के विज्ञान का अस्तित्व अपूर्ण रहेगा। कुछ पाश्चात्य विद्वानो ने न केवल कविता के विशिष्ट क्रियाकलापो को दिखाने की चेष्टा की है प्रत्युत आधुनिक विज्ञान का प्रयोग करते हुए उन्होने कविता के यथार्थ स्वरूप का विश्लेषण कर यह भी बतलाया हे कि इसमें और वैज्ञानिक विवेचन में मौलिक भेद और सम्बन्ध क्या है। ऐसे समीक्षको में प्रोफेसर रिचर्ड्स का शीर्षस्थ स्थान है। कविता के स्वरूप और मूल्य सम्बन्धी अपनी स्थापना में उन्होने आधुनिक मनोविज्ञान की उपलब्धियो का प्रयोग किया है और एक वैज्ञानिक अन्वेषक की भाति यह समझाने का प्रयत्न किया हे कि कविता के सृजन में वस्तुत किस प्रकार की मानसिक प्रक्रिया होती है और वह सुधी पाठको को किस रूप से प्रभावित करती है।

जिस युग के सामयिक साहित्य की विकासधारा में किसी प्रकार का गतिरोध नही होता है उसके सामान्य साहित्यिक मूल्यो की स्वीकृति सर्वसम्मत रहती है और उस युग विशेष की समीक्षात्मक प्रवृत्ति कला के रचना-कौशल और कृतियो के मूल्याकन पर केंद्रित रहती है। यह बात अपने यहा रीतिकालीन साहित्य में स्पष्टत देखी जा सकती है। अग्रेजी साहित्य में सिडनी और शैली के बीच का समय भी कुछ ऐसा ही है। उस युग में काव्यगत सत्य क्या है, उसका स्वरूप क्या है आदि प्रश्न अधिक विवादास्पद नही थे। किन्तु आज का आधुनिक युग अपने में अनेक प्रभाव और परिवतनो को समाहित किये हुए ह। विज्ञान ने दो देशो की दूरी के व्यवधान को बिल्कुल कम कर दिया हे। हमारे जीवन की गतिविधि, चिन्तन की प्रणाली, धर्म, राजनीति, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक परिवेश—सभी आज विज्ञान द्वारा परिचालित हो रहा है। प्रत्येक वस्तु को हम विज्ञान की कसौटी पर देखने में अभ्यस्त हो गए हैं। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि ज्ञान की अभिनव शाखाओ की अवतारणा इसी आधुनिक युग में हुई है। इसी के प्रभाव में साहित्य के विभिन्न नवीन रूप सामने आए हैं। तात्पर्य यह कि समाज का सम्पूर्ण ढाचा ही आज बदला हुआ दिखाई दे रहा है। इस स्थिति में कविता और विज्ञान का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है और क्या हो सकता है, यह प्रश्न विचारणीय है।

कविता की भाषा और विज्ञान की भाषा में बहुत अन्तर है। यदि एक ओर कविता की भाषा सजीव, रससिक्त, रमणीय और सवेदना युक्त है तथा विचार और अनुभूतियो से अपने पोषक तत्वो को ग्रहण करती हुई कल्पना को परिचालित करने वाली है तो दूसरी ओर विज्ञान की भाषा शुष्क, निर्जीव, सामान्य और स्थिर है। यदि एक किसी मानसिक स्थिति और सवेदना को व्यक्त करती है तो दूसरी किसी कथन अथवा तथ्य का सही या गलत विवरण प्रस्तुत करती है। सम्भवत इसमें किसी को आपत्ति नही हो सकती है और न कोई इस सामान्य भेद को अस्वीकार ही करेगा। कवियो को विज्ञान की विशेष शब्दावली पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहिए, ऐसा आग्रह भी कोई व्यक्ति नही करना चाहेगा। किन्तु जब कुछ वैज्ञानिक शब्द धीरे-धीरे कविता की भाषा में स्वत सम्पृक्त होकर बहुत प्रचलित हो जाते हे उस अवस्था में उन शब्दो का निश्चित प्रभाव वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली से सम्बन्धित न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रहता है। कवि भाषा की अपेक्षा उसके अन्तर्गत दर्शन को आत्मसात करता है। जिस प्रकार कोई लेखक अपने युग की सस्कृति से अपने को अछूता नहीं रख सकता, आज का सामयिक कवि भी इस आधुनिक प्रभाव से अपने को अलग नही कर सकता है।

'कला कला के लिए' शीर्षक अपने लेख में ब्रैडले महोदय ने लिखा है कि कविता शब्दो का समूह है, ध्वनि, विचार और मानव सवेगो का एक सम्मिश्रण है। इस सिद्धात के अनुयायियो का कहना है कि कविता का मूल्य आतरिक है और अपने आतरिक मूल्य के ही आधार पर इसकी महानता निर्भर है। इसकी श्रेष्ठता के निणयार्थ बाह्य उपकरणो की कोई आवश्यकता नही है क्योकि इसका स्वरूप यथार्थ ससार का न तो कोई अश है और न कोई अनुकृति ही, वरन यह अपने में स्वय एक पूर्ण, स्वच्छन्द और मुक्त ससार है। जीवन से इसका कोई सम्बन्ध नही है।

कविता और विज्ञान के सम्बन्ध की मुख्य समस्या से उपयुक्त सिद्धांत का भी लगाव है। यदि कविता सचमुच जीवन से बिलग है, यदि इसका उद्देश्य जीवन की अनुकृति भी नहीं है, यदि इसका क्षेत्र देश और काल के निकुंज पर है, तब यह स्पष्ट है कि इसका मत निर्धारित करने में बाह्य तत्वों का परिज्ञान अनावश्यक है और फलतः विज्ञान से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। 'कला कला के लिए' सिद्धांत के पहले भी कवियों के सामने यह समस्या विद्यमान थी। प्रतीकवादियों ने विशुद्ध कविता का तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि विज्ञान और समाजशास्त्र सम्बन्धी विषयवस्तु का प्रवेश कविता में किसी भांति नहीं होना चाहिए। कविता एक आध्यात्मिक आह्लाद है। कवि अपनी कविता में पहले से ही ज्ञात और प्रचलित वस्तुओं की उदभावना न करके अज्ञात, अलौकिक और अतिमानवीय तत्वों की मनोरम झांकी प्रस्तुत करता है। किन्तु ऐसा देखा गया है कि प्रयत्न करने पर भी ऐसे कवियों की 'विशुद्ध' कविता सामाजिक विषयों से वंचित नहीं रह सकी है। वस्तुतः यदि कविता का जीवन से सम्बन्ध न रहा होता तो विभिन्न युगों के बीच इसका पोषक तत्व कभी समाप्त हो गया होता। हम कविता का अनुशीलन करते हैं क्योंकि हम विश्वास करते हैं कि यह हमारे जीवन को परिष्कृत एवं उन्नत करती है। कविता वैविध्यपूर्ण मानव अनुभूतियों और अन्तर्वृत्तियों में सन्तुलन उत्पन्न कर उच्चतम अर्थ में जीवन की समीक्षा प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार यदि कविता का काम जीवनगत मूल्यों और सत्यों की अवतारणा करना है तब इसके विकास और वृद्धि में विज्ञान के महत्वपूर्ण योग की सम्भावना का सर्वथा निराकरण नहीं किया जा सकता। विज्ञान के महत्वपूर्ण योग का यह अर्थ कदापि नहीं कि कविता में सामान्य वैज्ञानिक सिद्धांतों और अन्वेषणों का वर्णन किया जाए वरन उसका अभिप्राय कवि की उस सुप्त अन्तर्दृष्टि से है जो आज के मानव के स्वरूप और जगत सम्बन्धी उसकी अभिनव और विलक्षण ज्ञानशक्ति को वाणी दे सके। अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के फलस्वरूप आधुनिक मानव के व्यक्तित्व की सीमाएं अस्पष्ट वैविध्यपूर्ण और जटिल हो गई हैं। चेतन मन की परिधि बढ़ गई है। अतएव कोई आश्चर्य नहीं यदि लेखक अपने विचारों, मनोभावों, संवेगों आदि को अभिव्यक्त करने के लिए मनोवैज्ञानिक खोजों और तत्सम्बन्धी निर्णयों की सहायता लेता है।

यह मान लेने पर कि कविता कोई जादू अथवा चमत्कार नहीं बल्कि ज्ञान का एक रूप है, अब यह देखना है कि यह किस रूप में वैज्ञानिक ज्ञान के निकट अथवा दूर है। कविता हमारे लिए यथार्थ की सत्यता उसी रूप में नहीं प्रदान करती जिस रूप में विज्ञान प्रस्तुत करता है, वरन वह यथार्थ पर भावमय आदर्श की स्थापना करती हुई जीवन की समीक्षा का चित्रण करती है। अनुभूतियों की पूर्णता और संगति के लिए विज्ञान और कविता दोनों ही आवश्यक हैं और इनमें पारस्परिक विरोध अथवा पृथकत्व नहीं होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि विज्ञान की जानकारी से किसी कवि की कल्पना अधिक सशक्त और उर्वर हो जाएगी। विज्ञान किसी को कवि नहीं बना सकता है। परन्तु यदि किसी कवि में सशक्त सृजनात्मक अन्तर्दृष्टि और असंदिग्ध प्रतिभा के साथ-साथ वैज्ञानिक विचारों और उपलब्धियों का समीक्षित ज्ञान हो तो यह निर्विवाद है कि उस कवि की काव्य विषयक अनुभूति अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक विस्तृत, विश्वसनीय एवं अन्तर्भेदिनी होगी।

कविता का विषय तथ्य और इतिवृत्तात्मकता से नहीं वरन संश्लेषण और चिन्तन से सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि कवि को एक वैज्ञानिक की भांति प्रयोगात्मक गवेषणा पर आश्रित नहीं रहना पड़ता है। फिर भी कल्पना शक्ति से समन्वित विज्ञान विषयक उसकी जानकारी उसकी अनुभूति की सीमा को प्रशस्त कर सकती है। एक बार जब कवि यह समझ लेगा कि विज्ञान उसकी सृजनात्मक शक्ति का शत्रु नहीं है तब वह इस बात का अनुभव करने लगेगा कि विज्ञान भी कविता तथा अन्य कलाओं की तरह सत्य की खोज है। जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जो आज विज्ञान से प्रभावित न हो। कविता को, चाहे यह कोई दिशा ग्रहण करे, अवश्य ही विज्ञान के साथ चलना होगा। कवि चाहे विज्ञान के प्रभाव को स्पष्ट स्वीकार करे, उसकी उपेक्षा करे, अथवा अपने को उससे बचाने का प्रयत्न करे, उसकी साहित्यिक गतिविधि वैज्ञानिक उपपत्तियों, प्रयोगों और निर्णयों द्वारा न्यूनाधिक रूप से अवश्य संचालित होगी। कवि भले ही इस बात का दावा करे कि विज्ञान उसके उपयोग के लायक कोई ज्ञान नहीं प्रस्तुत करता परन्तु कवि की भावमयी भाषा पर वैज्ञानिक अनुसंधान के सिद्धांतों का आभास सहज ही देखा जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि विज्ञान का जहां अन्त होता है कविता का वहीं से आरम्भ होता है। कविता विज्ञान की उपलब्धियों को ठोस, सारगर्भित और मानवीय रूप दे सकती है। कवि और वैज्ञानिक दोनों ही सत्य का उद्घाटन करते हैं। विज्ञान के नग्न व्यावहारिक सत्य जब अपने सौंदर्यपरक तत्वों से जुड़ जाते हैं तब मनुष्य की चेतन शक्ति उन्हें सहज ही ग्रहण कर लेती है। इस कार्य को कविता अच्छी तरह पूरा कर सकती है क्योंकि मानव संवेगों से सीधा सम्पर्क रखने के कारण उसका प्रभाव हृदय पर तत्क्षण पड़ता है और इस प्रकार वह मनुष्य के भावात्मक अभावों की पूर्ति करती है। ऐसा देखा जाता है कि विज्ञान का कोई सिद्धांत साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने पर अधिक स्थायित्व प्राप्त करता है।

विषयवस्तु और उद्देश्य के आधार पर कविता और विज्ञान में परस्पर का विरोध मानने वाले व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि विश्व साहित्य में ऐसी उच्च कोटि की रचनाएं भी हैं जो तत्कालीन वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर लिखी गई हैं और जिनमें इतिवृत्तात्मकता का कुछ अंश रहते हुए भी गम्भीर विचार, कल्पना शक्ति और अन्य काव्योचित गुणों का समावेश है। विद्वत्ता और ज्ञान से सृजनात्मक शक्ति का ह्रास होता है, कविता आदिम-काल की वस्तु है जिसका सर्वाधिक विकास मानवजाति की असंस्कृत और असभ्य अवस्थाओं में होता है, विज्ञान के प्रसार से कविता सदैव के लिए मिट जाएगी आदि धारणाएं निर्मूल हैं। आजकल हिन्दी में अनेक रचनाएं, विशेषतः उपन्यास और कहानियां, लिखी गई हैं जिनका कथानक वैज्ञानिक है। पाश्चात्य साहित्य में तो इसके प्रभूत उदाहरण हैं। मिल्टन और हार्डी ने अपने वैज्ञानिक जीवन दर्शन को काव्य के माध्यम से ही व्यक्त किया। आडेन, स्पेंडर, मैकनीस ऐसे अनेक आधुनिक अंग्रेज कवियों ने अपने शब्दचित्रों और प्रतीकों के लिए वैज्ञानिक खोजों का सहारा लिया है।

ज्योंही कवि मानव-अवस्था पर विचार करना प्रारम्भ करता है वह किसी न किसी अंश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, जो सांस्कृतिक वातावरण का एक भाग है, अपने को अनिवार्यतः प्रभावित पाता है। कवि के रूप में वह चिन्तन करने से अपने को रोक नहीं सकता है। आनन्द अथवा शोक में वह केवल गुनगुनाता ही नहीं है, वरन संसार में उसके अस्तित्व का स्वरूप

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

अदला-बदली

परशुराम

कालिदास के मेघदूत की घटना शायद आप लोगों को मालूम हो। यदि भूल गए हों तो संक्षेप से सुन ही लीजिए। कुबेर का अनुचर एक यक्ष था, जिसे अपने काम में गाफिल पाकर प्रभु ने शाप दिया और उसे साल भर के लिए निर्वासन में रहना पड़ा। वह रामगिरि में आश्रम बना कर रहने लगा। आषाढ़ के प्रथम दिवस पर यक्ष ने देखा कि पहाड़ पर बादलों का जमघट लगा है, जो यों लग रहे हैं मानो हाथी प्रक्रीड़ा कर रहे हों। खिले हुए कुर्ची फूलों को अंजलि में भर कर उस विरही यक्ष ने मेघों को अर्घ्य दिया और मन्दाक्रान्ता छन्द में एक लम्बा-सा भाषण भी दे डाला। उसका सारांश यों है—"भाई मेघ, तुम्हें एक बार अलकापुरी जाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आराम से जाना, राह में जो जो चाहे जरा मौज कर लेना और इससे अगर विलम्ब हो जाए तो कोई बात नहीं। अलका में तुम्हारी भाभी मेरी विरहिणी प्रेयसी है, उसे मेरा सन्देश देकर ढाढ़स बंधाना। कहना, मेरी तबीयत ठीक ही है, लेकिन उसके लिए जी बड़ा बेचैन है। नारायण के अनन्तशय्या से उठते ही यानी लगभग कार्तिक तक हमारे शाप का अन्त हो जाएगा, और उसके बाद ही हम लोगों का पुनर्मिलन होगा।"

कालिदास ने अपने यक्ष का नाम नहीं बताया और न उन्होंने यह लिखा है कि शाप का एक साल बीत जाने के बाद वह सही-सलामत लौट भी सका था या नहीं।

महाभारत के उद्योगपर्व में एक वनवासी यक्ष का जिक्र है। उसका नाम स्थूणाकर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह यक्ष और मेघदूत का यक्ष एक ही व्यक्ति है। कालिदास ने अपने काव्य का उपसंहार नहीं लिखा। महाभारत में भी यक्ष का असली इतिहास नहीं है। कालिदास और व्यासदेव ने जिसे अनकहा छोड़ दिया है, उसी विचित्र रहस्य का उद्घाटन मैं आज यहां कर रहा हूं।

यक्षपत्नी को यक्षिणी कहूंगा, क्योंकि इतिहास में उसका नाम मालूम नहीं है। पति के विरह में अत्यन्त कातर होकर यक्षिणी दिन बिता रही थी। एक वेदी के ऊपर रोज वह एक फूल रख देती थी और बीच-बीच में गिनकर देख लेती थी कि ३६५ दिन पूरा होने में कितनी देर है। आखिर एक साल पूरा हुआ। कार्तिक का महीना भी खत्म हुआ, लेकिन यक्ष न आया। यक्षिणी उत्कंठा से कुछ दिन और प्रतीक्षा करती रही, उसके बाद उससे न रहा गया और जाकर कुबेर के पैरों पर गिर पड़ी।

कुबेर ने कहा, "कौन हो जी तुम"। देखने में तो बड़ी सुन्दर हो, लेकिन बाल ऐसे रूखे क्यों हैं? कपड़े ऐसे गन्दे क्यों? और चोटी भी एक ही! क्यों?"

यक्षिणी ने रोकर कहा, "महाराज आपने अपने जिस किंकर को सालभर के लिए निर्वासन की सजा दी थी, मैं उसी की दुखिनी भार्या हूं। एक साल पूरा बीत जाने के बाद आज दस दिन हो गए हैं, लेकिन अब भी मेरे पति लौट नहीं आए?"

कुबेर ने कहा, "घबराती क्यों हो, धीरज धरो, वह जरूर लौट आएगा। शायद कहीं फंस गया हो। वह यक्ष है, यहां सिर्फ चिपटी नाक वाली यक्षिणी और किन्नरी ही उसने देखी हैं। परदेश में शायद किसी रूपवती मानवी को देखकर उससे प्रेम करने लगा हो। चिन्ता मत करो, मानवी से जी ऊबते ही वह लौट आएगा।"

यक्षिणी ने तेजी से सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, नहीं, मेरे पति ऐसे नहीं हैं। पराई स्त्री की ओर वह आंख उठाकर भी नहीं देखेंगे। अभी उस रोज मेघ आकर उसका व्याकुल प्रेम सन्देश पहुंचा गया है। प्रभो, आप कृपया उसकी खोज कीजिए। अवश्य ही उन पर कोई विपदा आ पड़ी है—शायद शेर-बाघ ने ही उसे खा डाला हो।'

कुबेर बोले—"तुम इतनी उतावली क्यों हो रही हो? तुम्हारा पति अगर न भी लौटा तो भी तुम अनाथ न बनोगी। मेरे अन्तःपुर में तुम मजे से रह सकती हो, मैं तुम्हें हर तरह की सुख-सुविधा से रखूंगा।"

यक्षिणी ने कहा—"ऐसी बात न कहिए प्रभो, आप मेरे पिता के समान हैं। आप ही के आदेश से मेरे पति निर्वासित हुए। अब उनके दण्ड की अवधि पूरी हो गई है। उन्हें लौटा लाना आप ही का कर्त्तव्य है। अगर वह विपदा में फंस गए हों तो उससे उन्हें उबारिए। अगर मृत हों तो मुझे सही खबर ला दीजिए ताकि मैं आग में जल मरूं और स्वर्ग में जाकर उनसे मिलूं।"

कुबेर घबराकर बोले—"ओफ, तुमने भी मुझे खूब सताना शुरू कर दिया। अच्छी बात, मैं अभी तुम्हारे पति की तलाश में जा रहा हूं। रामगिरी देखने की भी मुझे बड़ी इच्छा है। तुम भी मेरे साथ चलो। अरे कोई है, झट-पट पुष्पक-रथ तैयार करने को कह दे। और तू भी तैयार हो जा—मेरे साथ चलना है।"

रामगिरी प्रान्त में एक छोटे से पहाड़ पर यक्ष ने अपना आश्रम बनाया था। वहां पर पहुंच कर कुबेर ने देखा कि मकान काफी सुन्दर बना है। दरवाजे-खिड़कियां भी हैं। लेकिन सभी बन्द हैं। कुबेर के आदेश से उनका एक अनुचर दरवाजे पर दस्तक देते हुए चिल्ला कर बोला, "अजी स्थूणाकर्ण, बाहर निकल आओ। महामहिम राजाधिराज कुबेर स्वयं पधारे हैं। तुम्हारी दुल्हन भी आई है।"

कोई आहट न मिली। कुबेर ने कहा—"ऐसा लग रहा है कि घर में कोई है नहीं। अच्छा हो आग लगा दी जाए।"

यक्षिणी ने कहा—"ऐसा काम न कीजिए महाराज। मेरा पति इसी घर में है। मुझे मछली भूनने की गंध आ रही है। वह बेशक खाना बनाने में लगे हुए हैं, हाय उन्हें कोई मदद करने वाला भी तो नहीं है।

मैं ही उन्हें बुलाती हूं। अजी, सुन रहे हो? मैं आई हूं, महाराज भी आए हैं। राधना छोड़कर तुम बाहर निकल आओ।"

एक खिड़की जरा सी खुली। भीतर से नारी कंठ में उत्तर मिला—"ऐं प्रिय तुम आई हो और प्रभु भी आए हैं? सत्यानाश! अब मैं उनके सामने निकलूं तो किस तरह निकलूं।"

कुबेर ने अचरज से कहा—"कौन हो जी तुम? अभी निकल आओ। वर्ना मकान में आग लगा दूंगा।"

तब दरवाजा खोलकर घूंघट में लिपटी एक नारी मूर्ति बाहर निकल आई। कुबेर ने धुड़की लगाते हुए कहा—"रहने दो अब नखरा, अपना घूंघट खोलो।"

सिर नीचा किए हुए घूंघटवाली ने जवाब दिया—"प्रभु, यह मुंह दिखाऊं तो किस तरह?"

कुबेर बोले—"क्यों, जला लिया है क्या? चिन्ता मत करो, महादेव जिस सांड पर सवारी करते हैं, उसका गोबर लगाने से ही ठीक हो जाओगी।"

अचानक यक्षिणी ने आगे बढ़कर एक झटके से उसका घूंघट खोल दिया। सिर पीटते हुए नारी मूर्ति बिलख पड़ी—"हाय, हाय, इससे तो मेरी मौत ही अच्छी थी!"

कुबेर ने पूछा—"तुम कौन हो? वह स्थूणाकर्ण नामक यक्ष कहां गया? तुम क्या उसकी रखैल हो?"

"महाराज, मैं आप ही का हतभाग्य किंकर स्थूणाकर्ण हूं। दैव के फेर से मेरी यह दशा हुई है। हालांकि इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। हे प्रिय, हम लोग सचमुच बड़े अभागे हैं। शाप की शांति हो जाने पर भी हम लोगों के मिलन का कोई उपाय नहीं रहा।"

यक्षिणी ने कहा—"महाराज यही हमारे पति हैं। वह देखिए जुड़ी हुई भवें। और नाक का तिल भी बदस्तूर है। हाय नाथ, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई? क्या किसी देवता से छेड़खानी की थी?"

यक्ष ने कहा—"दूसरे की भलाई करने में मेरी यह फजीहत हुई। इस दुनिया में कृतज्ञता नाम की कोई चीज रही ही नहीं।"

यक्षिणी ने कहा—"तुम औरत कैसे बन गए नाथ?"

कुबेर ने कहा—"ऐसा हो जाता है। बुधपत्नी इला पहले पुरुष थी। हर-पार्वती के एकान्त स्थान में प्रवेश करने के कारण स्त्री बन गई। बालि-सुग्रीव का पिता एक सरोवर में स्नान कर बदरिया बन गया था। बहरहाल स्थूणाकर्ण, तुम अपनी सारी कहानी ब्योरेवार बताओ।"

यक्ष कहने लगा—"महाराज करीब तीन महीने हो गए, कुछ सूखी लकड़ी बटोरने के लिए मैं निकट के उस जंगल में गया था। देखा, पेड़ के नीचे एक ललना बैठी आंसू गिरा रही है।"

यक्षिणी ने कहा—"वह स्त्री शक्ल-सूरत में कैसी थी?"

"उसे सुन्दरी कहा जा सकता है। लेकिन तुम्हारे मुकाबिले में वह कुछ भी नहीं थी। डीलडौल उबड़खाबड़ और चेहरे पर लुनाई की भी कमी। हां महाराज, उसके बाद सुनिए। मैंने उस नारी से पूछा—'भद्रे, तुम्हें क्या हो गया है? अगर मुसीबत में पड़ी हो तो मैं भरसक उसे दूर करने की कोशिश करूंगा।'"

उसने यह अद्‌भुत विवरण दिया। कहा, महाशय, "मैं पांचालराज द्रुपद की कन्या शिखंडिनी हूं। लेकिन लोग मुझे राजपुत्र शिखंडी कहकर ही जानते हैं। पूर्वजन्म में मैं काशीराज की ज्येष्ठ कन्या अम्बा थी। स्वयंवर सभा से भीष्म ने हम तीनों बहनों का हरण किया था, अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के साथ विवाह कराने के लिए। मुझे शाल्वराज से अनुराग है, यह जानकर भीष्म ने मुझे उनके पास भेज दिया।" शाल्व ने कहा—'राजकन्या, मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि भीष्म ने तुम्हारा हरण किया था और उनके स्पर्श से तुम्हें अवश्य ही पुलकित किया होगा।' तब मैंने भगवान परशुराम की शरण ली। उन्होंने भीष्म से कहा—तुम्हीं को अम्बा से विवाह करना चाहिए। पर भीष्म राजी न हुए। परशुराम ने उनके साथ युद्ध किया, लेकिन उससे कुछ नतीजा न निकला। भीष्म के कारण ही मेरा नारी-जन्म बेकार गया, इस कारण भीष्म की मृत्यु कामना कर मैं कठोर तपस्या करने लगी। उससे महादेव ने प्रसन्न हो कर वरदान दिया—'तुम अगले जन्म में द्रुपदकन्या बन कर जन्म लोगे। लेकिन बाद में पुरुष बन कर भीष्म का वध करोगे।' महादेव के वरदान से मेरा जन्म द्रुपद गृह में हुआ। कन्या होने पर भी राजपुत्र शिखंडी के रूप में ही मैं पालीपोसी गई हूं और मैंने अस्त्रविद्या भी सीख ली। जवानी में मेरा विवाह दशार्णराज हिरण्यवर्मा की कन्या के साथ हुआ। लेकिन कुछ रोज बाद ही मैं पकड़ी गई। मेरी पत्नी ने अपनी नौकरानी के जरिए अपनी मां को कहला भेजा—'अम्मा री, तुम लोग ठगे गए हो, मेरा ब्याह जिसके साथ हुआ है वह मर्द नहीं, औरत है।'

"यह दुःसंवाद सुन कर मेरे श्वसुर हिरण्यवर्मा गुस्से से पागल हो गए। दूत भेजकर मेरे पिता द्रुपद से उन्होंने कहा—'दुर्मति, तुमने मुझे धोखा दिया है, मैं सेना के साथ तुम्हारे राज्य में आ रहा हूं। मेरे साथ चार चतुर जवान औरतें भी आ रही हैं। वे मेरे जवाई शिखंडी की परीक्षा करेंगी। अगर यह देखा गया कि वह पुरुष नहीं है, तो मैं तुम्हें अमात्य परिजन सहित विनष्ट कर दूंगा।"

"पिता जी की यह भीषण विपदा देखकर मैं घर छोड़ कर इस जंगल में भाग आई हूं। मेरे लिए ही मेरे स्वजनों पर यह विपदा आई है तो मुझे इस जीवन से क्या प्रयोजन? मैं यहीं पर अनाहार प्राण दे दूंगी।"

"यक्षराज, शिखंडिनी का यह इतिहास सुनकर मुझे बड़ी हमदर्दी हुई। मैंने कहा—"तुम क्या चाहती हो? मैं धनपति कुबेर का अनुचर हूं, अदेय वस्तु भी दे सकता हूं।"

शिखंडिनी ने कहा—"यक्ष मुझे पुरुष बना दो।"

मैंने कहा—"राजकन्या, अपना पुरुषत्व तुम्हें चन्द रोज के लिए उधार दे सकता हूं, उससे तुम अपने पिता और अपने स्वजनवर्ग को दशार्णराज के क्रोध से बचा सकती हो। लेकिन परीक्षा में सफल होते ही तुम यहां पर आकर मेरा पुरुषत्व लौटा जाओगी। मेरे शाप की शांति होने में ज्यादा देर नहीं। प्रिया से मिलने के लिए मैं भी अधीर बैठा हूं, इसलिए तुम जल्दी ही लौट आना। केवल तीन महीनों का समय मेरे पास है। उससे एक दिन भी अधिक नहीं।"

"महाराज, उसके बाद शिखंडिनी जो गई, सो गई। वह लौट कर ही न आई। वह मिथ्यावादिनी द्रुपदनन्दिनी धोखेबाजी से मेरा पुरुषत्व लेकर भाग गई और उसके बदले अपना तुच्छ नारीत्व मुझे दे गई।"

यक्ष की बात सुनकर यक्षिणी बोल पड़ी—"एक अजनबी औरत के रोने से बहक कर अपनी अमूल्य सम्पदा तुमने उसे दे दी। नाथ, तुम कितने बुद्धू हो, निरे बुद्धू।"

कुबेर ने कहा—"तुम एक वज्रमूर्ख, गधे और गोबरगणेश हो। बहरहाल मैं तुम्हें अभी तुम्हारा पुरुषत्व वापस दिला दूंगा। चलो मेरे साथ।"

सभी पंचाल राज्य में पहुंचे। राजधानी से कुछ दूर एक सुनसान जंगल में पुष्पक रथ रोककर कुबेर ने अपने एक अनुचर से कहा—"द्रुपदपुत्र

शिखडी को सदेश भेजो कि धनेश्वर कुबेर ने तुम्हे बुलाया ह । अगर नही आश्रोगे तो पचाल राज्य का सवनाश हो जाएगा ।"

शिखडी व्यग्र सा होकर तत्काल आया और प्रणाम कर बोला—"यक्षराज मेरे लिए क्या आज्ञा ह ?"

कुबेर ने कहा—"शिखडी, तुमने मेरे किकर इस स्थूणाकण को धोखा दिया हे । उसकी प्रिया के साथ इसे मिलने नही दिया । जो वचन दिया था उसकी रक्षा नही की । अगर अपना कल्याण चाहते हो तो अभी इसको पुरुषत्व वापस करो ।"

शिखडी बोला—"धनेश्वर, मै अवश्य ही अपना वचन पूरा करूगा, मुझ से विलम्ब हो गया है, इस लिए क्षमा माग रहा हू । इस यक्ष ने मेरा महान उपकार किया हे, कृपया कुछ रोज और मुहलत दीजिए ।"

कुबेर ने पूछा—"क्यो? तुम्हारी इच्छा क्या अभी तक पूरी नही हुई ?"

"यक्षराज, जो विपदा आने वाली थी, वह तो टल गई । दशाण राज हिरण्यवर्मा के साथ जो युवतिया आई थी, उन्होने मेरी बार-बार परीक्षा की और उनसे कहा कि आपका जवाई सम्पूणरूप से पुरुष है, बल्कि सोलह् आने की बजाए अट्ठारह आने पुरुष ह । यह बात सुन कर मेरे श्वसुर साहब ने काफी लजाकर मेरे पिता जी से क्षमायाचना की और पर्याप्त भेट देकर अपने लाव-लश्कर के साथ प्रस्थान कर गए । जाते वक्त अपनी बेटी को भी घुडकी सुना गए हैं कि बडी बेवकूफ लडकी है । मै इस यक्ष महाशय से महीनाभर की और मुहलत माग रहा हू । उसी बीच कुरुक्षेत्र का युद्ध भी समाप्त हो जाएगा । भीष्म का वध करने के उपरान्त मैं स्थूणाकण का ऋण चुका दूगा ।"

"महारथी भीष्म का वध तुम कर पाओगे, यह बिलकुल अविश्वसनीय बात है । वही तुम्हारा वध करेगा और उसी के साथ-साथ तुम्हारा पुरुषत्व भी जाता रहेगा । यह सब नहीं चलेगा । तुम इसी क्षण स्थूणाकर्ण का पुरुषत्व लौटा दो और स्त्रीत्व वापस ले लो । वर्ना मै गवाह-सबूत वगैरा लेकर अभी तुम्हारे श्वसुर के पास जाऊगा । तुम्हारी धोखेबाजी की बात सुनते ही अपने लाव-लश्कर के साथ हमला कर वे पचाल राज्य का ध्वस कर देंगे ।"

शिखडी ने व्याकुल हो कर कहा—"हाय मेरी क्या गति होगी ?"

कुबेर बोले—"सोच किस बात की है? तुम्हारे भाई धृष्टद्युम्न है । पाच पाडव बहनोई हे, पाडवसखा कृष्ण हैं । वे ही भीष्मवध का आयोजन करेंगे ।"

शिखडी बोला—"ऐसा हो नही सकता देव । भीष्म पाडवो के पितामह हे और द्रोण उनके आचाय हे । इन दोनो गुरु स्थानीयो का वे वध नही करेंगे । इसी कारण भीष्मवध का भार मेरे ऊपर और द्रोणवध का भार धृष्टद्युम्न पर पडा है ।"

कुबेर ने कोई बहाना न सुना । आखिर में लाचार होकर शिखडी ने यक्ष को उसका पुरुषत्व लौटा कर अपना स्त्रीत्व वापस ले लिया । तब कुबेर के साथ यक्ष और यक्षिणी बडे आनन्द के साथ अलकापुरी लौट गए ।

विषाद से भरा शिखडी बहुत देर चिन्ता करने के बाद कृष्ण के पास गया । सयोग से देवर्षि नारद भी उस समय वहा मौजूद थे । कृष्ण बोले—"यह क्या है शिखडी, तुम ऐसे अवसन्न क्यो दीख रहे हो ? दो रोज पहले तो तुम्हारी वीरोचित तेजस्वी मूर्त्ति देखी थी । अब फिर कोमल नारी सुलभ भाव क्यो देख रहा हू ?"

शिखडी बोला—"वासुदेव मेरी विपदाओ का अन्त नही !"

नारद बोले—"अब तुम आराम से बातें करो, मै चलू ।"

शिखडी ने कहा—"नही, नही देवर्षि, आप जाइए नही । आप तो मेरा सब इतिहास जानते ही ह, आपसे तो कुछ भी छिपा नही ह ।"

सारी घटना सुना कर शिखडी ने कहा—"कृष्ण, तुम पाडव और पाचालो के सुहृद हो । मेरी बहन कृष्णा तुम्हारी सखी है । मुझे इस सकट से उबारो । पूवजन्म से ही मेरा सकल्प हे कि मै भीष्म का वध करूगी । महादेव का वरदान भी मुझे मिला हे । लेकिन पुरुषत्व न मिलने पर म कैसे युद्ध करूगी ?"

कृष्ण बोले—"तुम्हारा सकल्प धमसगत नही हे । नारी हो कर जन्म लिया है, तब अलौकिक ढग से क्यो पुरुष बनना चाहती हो । भीष्म का वध करने का भार किसी दूसरे पर छोड दो । देवर्षि क्या कहते है ।"

नारद ने कहा—"अजी शिखडी, कृष्ण ने ठीक ही कहा है । शाल्व राज और भीष्म ने तुम्हारा प्रत्याख्यान किया है । तो क्या हुआ ? दुनिया में और भी पुरुष हे । तुम अगर राजी हो तो मै तुम्हारे पिता से कहूगा कि वह किसी और अच्छे वर के हाथ तुम्हें सोप दें । उसी से तुम्हारा नारी जन्म सार्थक होगा । तुम्हारी पत्नी का भी सहारा लग जायेगा, वह तुम्हारी सौत बनकर मजे में रहेगी ।"

शिखडी ने कहा—"ऐसा न कहिए देवर्षि । महादेव ने जो मुझे वर दिया हे, वह सफल होकर ही रहेगा । कृष्ण, तुम्हारे लिए असाध्य कुछ भी नही है । तुम मुझे पुरुष बना दो ।"

कृष्ण बोले—"मै विधाता नही कि अनहोनी को सभव कर दू । उसी यक्ष की तरह अगर कोई स्वेच्छा से तुम्हारे साथ अग-विनिमय कर ले तो तुम पुरुष बन सकते हो । लेकिन लगता हैं कि ऐसा मूर्ख कोई और है नही । क्यो देवर्षि, आप तो विश्व ब्रह्माड का चक्कर लगाते रहते हैं, आपकी जान पहचान में कोई और ऐसा महा मूर्ख है ?"

नारद ने कहा—"हे, उन्हें तुम भी जानते हो । सुनो शिखडी, वृन्दावन-धाम मे कृष्ण के दूर के रिश्ते के एक मामा है । वे गोपवशी ह, उनका नाम आयान घोष हैं । वह अत्यन्त सदाशय, परोपकारी व्यक्ति हैं, लेकिन बडे ही मन्द बुद्धि हैं । धर्मकर्म में ही पडे रहते हे । ससार से उन्हें कोई आसक्ति नही । तुम उनकी शरण में जाओ ।"

शिखडी ने कहा, "वासुदेव, तुम मेरे लिए विशेष अनुरोध कर श्री आयान को एक सिफारशी पत्र लिख दो, वही लेकर मैं उनके पास जाऊ ।"

कृष्ण बोले, "पागल हो गए हो ? मेरा नाम अगर भूले से भी ले लिया, तो तुम्हें फौरन वह खदेड देंगे । सुनो शिखडी, मेरा भाग्य बडा खराब है । अकारण ही मै चन्द लोगो का विरागभाजन बन गया हू—कस, शिशुपाल और मेरे पूजनीय मामा आयान घोष । यहा तक कि मेरे पुत्र शाम्ब के श्वसुर दुर्योधन भी मेरे दुश्मन बन गए हे ।"

शिखडी बोले—"तो उपाय क्या है ?"

नारद बोले—"उपाय तुम्हारे हाथो में ही है । औरत के नाज नखरे और पुरुष की कूट बुद्धि दोनो ही तुम्हे स्वभावसिद्ध है । उन्ही से काम निकालना पडेगा । चलो मेरे साथ श्री आयान के साथ तुम्हारा परिचय करा दूगा ।"

वृन्दावन के एक छोर पर लोकालय से दूर यमुना के किनारे कुटिया बना कर आयान घोष रहते है । तिपहर को यमुनातट पर बैठे वह रावण रचित शिवताडव स्तोत्र का पाठ कर रहे थे, ऐसे ही समय शिखडी के साथ नारद वहा जा पहुचे ।

साष्टांग प्रणाम कर आयान ने कहा, "देवर्षि, मैं धन्य हूँ कि मुझे आपका दर्शन मिला। इस सुन्दरी को तो मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ।"

नारद ने कहा "यह पंचालराज द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी है। भगवान शूलपाणि ने इन्हें एक कठोर व्रत पालन करने का भार दिया है। यह व्रत जब तक पूरा न हो जाए तब तक इन्हें अनब्याही रहना पड़ेगा। लेकिन किसी सदाशय, धर्मप्राण पुरुष की सहायता के बिना इनका संकल्प पूरा न होगा। महामति आयान, मैं दिव्यचक्षु से देख रहा हूँ कि तुम्हीं वह भाग्यवान पुरुष हो। इनकी प्रार्थना मानो। व्रत समाप्त होते ही यह अशेष गुणवती ललना तुम्हें पति रूप में वरण करेगी और तुम्हारा जीवन धन्य होगा।"

एक लम्बी उसांस छोड़कर आयान बोले—"हाय देवर्षि मेरा जीवन कैसे धन्य होगा। मेरी गृहस्थी रहते हुए भी नहीं है। घर सूना है। लोग मुझे तुच्छ समझते हैं और पीछे पीछे धिक्कारते हैं। इसीलिए लोगों का सम्पर्क छोड़कर इस एकान्त में रहता हूँ। यह सुन्दरी राजकन्या मेरे ऐसे अभागे के पास क्यों आई है।"

शिखंडी ने मधुर स्वर में कहा—"गोप श्रेष्ठ महात्मा आयान आपकी गुणराशि सुनकर मैं दूर से ही मुग्ध हो गई थी। अब आपको देखकर विह्वल हो गई हूँ। आप ही के चरणों में मन प्राण सभी सौंप रही हूँ।"

आयान ने कहा—"मेरे इस वंचित, अभागे जीवन में ऐसे सौभाग्य का उदय होगा, ऐसा मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मनोहारिणी शिखण्डिनी, मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तुम्हें अदेय हो। मुझसे तुम क्या चाहती हो, बताओ।"

शिखंडी बोलीं—"देवर्षि आप ही इन्हें समझा दीजिए।"

व्रत के बारे में संक्षेप में बताकर नारद ने कहा—"गोपेश्वर आयान, महादेव के वर से शिखण्डिनी अवश्य ही सिद्धिलाभ करेगी। तुम्हें सिर्फ एक महीने के लिए अपना पुरुषत्व इन्हें दे देना होगा। कुरुक्षेत्र का युद्ध उसी बीच समाप्त हो जाएगा। भीष्म को भी स्वर्गलाभ होगा। उसके बाद ही राजा द्रुपद तुम्हारे हाथों में कन्यादान करेंगे। पंचाल राज्य का आधा हिस्सा और बछड़ों के साथ बहुत सी गायें भी दहेज में देंगे। वृन्दावन की अप्रिय स्मृति पीछे छोड़कर तुम नई पत्नी के साथ नए देश में बड़े सुख से राज्य करोगे।"

थोड़ी देर चिन्ता करने के बाद आयान की दुविधा दूर हुई। उन्होंने अपनी भावी वधू की प्रार्थना पूरी कर दी। फिर से पुरुषत्व पाकर शिखंडी नारद के साथ हर्ष से डगमग चली गई। उसके बाद स्त्रीरूपी आयान कुटिया का दरवाजा बन्द कर असूर्यंपश्या हो शिखण्डिनी की आशा में दिन बिताने लगा।

कुरुक्षेत्र के युद्ध के दसवें दिन शिखंडी के बाणों से जर्जर होकर भीष्म शरशय्या पर लेट गए। उसके आठ रोज बाद युद्ध समाप्त हुआ। लेकिन शिखंडी आयान के पास लौट कर न आई, चूंकि वह आ नहीं सकती थी। गहरी रात में पांडव-शिविर में प्रवेश कर अश्वत्थामा ने जिन लोगों की हत्या की थी, उनमें शिखंडी भी थे।

आयान के भाग्य में राजकन्या और आधा राज्य न लिखा था। उसका पुरुषत्व भी शिखंडी के साथ ध्वंस हो गया। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसका जीवन विफल हो गया। समय के परिवर्तन के साथ आयान में एक अनोखा आध्यात्मिक परिवर्तन भी आया। वह अपना तन-मन श्रीकृष्ण को सौंपकर आयानी नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह श्रीखोल (मृदंग) बजाना सीख गया और ब्रजमण्डल में जो सोलह हजार गोपियां रहती थीं, उनकी नेतृ बनकर निरन्तर श्रीकृष्ण कीर्तन करने लगा।

अनुवादक प्रबोधकुमार मजूमदार

हमारा संसद-भवन—(पृष्ठ २७ का शेषांश)

संसद-भवन की पहली मंजिल पर मंत्रियों, स्पीकर, डेपुटी स्पीकर एवं कांग्रेस संसदीय दल के दफ्तर हैं और डाक एवं तारघर भी हैं।

दूसरी मंजिल पर प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया का कार्यालय है। यहां टेलिप्रिन्टर पर संसार के कोने कोने से समाचार आते रहते हैं, जिन्हें सदस्यों के लिये तुरन्त ही केन्द्रीय हाल के बोर्ड में लगा दिया जाता है। इस मंजिल पर निरामिष और सामिष रेस्तरां है और स्टेट बैंक आफ इण्डिया की शाखा भी है। इनके सिवा संसदीय विभिन्न समिति कक्ष भी इसी मंजिल पर हैं। तीसरी और चौथी मंजिल पर संसद के विभिन्न विभागों के दफ्तरों के कमरे हैं।

संसद-भवन के पास दर्शकों की सुविधा के लिए स्वागत कक्ष है। दर्शक संसद के जिस सदस्य से मिलना चाहते हैं, उसका नाम वे यहां दे देते हैं और उसके आने तक प्रतीक्षा करते हैं। संसदीय प्रकाशनों की बिक्री के लिए यहां एक छोटा किन्तु आकर्षक स्टाल भी है।

संसद-भवन में प्रमुख स्थानों पर प्रेरणादायक वाक्य लिखित हैं। लोक सभा कक्ष में स्पीकर के आसन के ऊपर एक छोटा सा वाक्य लिखा है—

"धर्म चक्र प्रवर्तनाय।"

जब भी इस पर दृष्टि जाती है, ध्यान में आता है कि कितना गम्भीर उत्तरदायित्व निबाहने के लिए जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य संसद-भवन में समवेत होते हैं। न्याय का चक्र ही धर्म का चक्र है, उसका प्रवर्तन ही कर्तव्य का समुचित निर्वाह है। इसी में कल्याण, सुख और शांति निहित है।

कविता और विज्ञान—(पृष्ठ ३० का शेषांश)

और उद्देश्य क्या है, जीवन का सारतत्व क्या है, आदि जिज्ञासाओं को जानने का भी प्रयत्न करता है। और इन्हें हृदय की भावुक तरंगों की अपेक्षा चिन्तन द्वारा अधिक समझा जा सकता है। आज विज्ञान मनुष्य के सांस्कृतिक परिवेश का एक अंग हो गया है। उसका बहिष्कार करने पर भी कवि उसके असाधारण दबाव को अस्वीकार नहीं कर सकता है। यही कारण है कि आधुनिक कविता में बौद्धिक पक्ष सबल है।

आज का कवि विज्ञान-नियन्त्रित संसार में रह रहा है। विज्ञान द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के संदर्भ में ही उसका मस्तिष्क कार्य करता है और परिणामतः मानव तथा प्रकृति विषयक अपनी विवेचना में उसे विज्ञान की स्थापनाओं और निर्णयों का सहारा लेना पड़ता है। इस कार्य के लिए उसके सामने मुख्य समस्या है विज्ञान के तथ्यों और सिद्धान्तों को कला के अनुरूप शब्दावली में परिणत करना।

कविता और विज्ञान के पारस्परिक संघर्ष और विरोध का मुख्य कारण विज्ञान के वास्तविक स्वरूप को न पहचानना ही है। कोई भी कवि विज्ञान को विषयवस्तु बनाकर नहीं लिखता है और न वह वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपनी कविता में सीधी अवतारणा ही करता है। वह तो जगत के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण और दर्शन को ग्रहण करता है। कविता कविता ही है, विज्ञान नहीं, किन्तु यह अपने उपादानों को जीवन और जगत से प्राप्त करती है। अतः वैज्ञानिक संश्लेषण से यह अपने को अलग नहीं रख सकती है।

क्रेमलिन की झांकियां

नगेन्द्र भट्टाचार्य



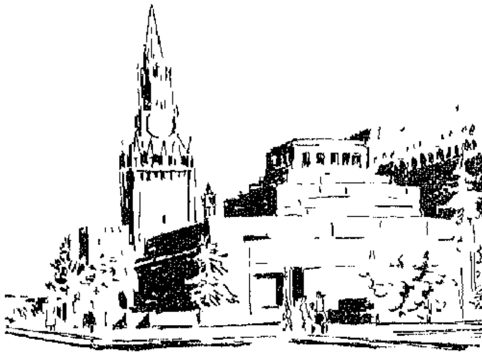
क्रेमलिन के गिरजे

हम लोगों का होटल क्रेमलिन के बहुत ही पास था। चलते-फिरते क्रेमलिन का कोई न कोई हिस्सा दिखाई पड़ जाता था। एक तरफ रेड स्क्वायर या लाल चौक, दूसरी तरफ मस्कवा नदी थी। दूसरी तरफ लाल दीवार से सटकर लड़के बच्चे खेल रहे हैं। कहीं अधिक उम्र की महिलाएं बैठ कर ऊनी कुर्ते बुन रही हैं तो कोई बेंच पर बैठकर किताब पढ़ रहा है। पास का बड़ा फाटक बन्द था, छोटे दरवाजे के पास सतर्क सन्तरी का पहरा था।

एक दिन हम लोग क्रेमलिन देखने के लिए गए। फाटक पर अनुमति-पत्र इत्यादि की जांच के बाद बड़ा फाटक खोल दिया गया। फाटक से धीरे-धीरे ऊपर को जाती हुई सड़क सीधे उत्तर की तरफ चली गई थी। बाईं तरफ पीले रंग के कुछ बड़े-बड़े मकान थे, शायद दफ्तर या ऐसे ही कुछ थे। इसके बाद ज़ार के जमाने का महल, कुछ आगे बढ़ने पर गिरजों की एक कतार थी। दाईं तरफ खुला था, जिसमें तरह-तरह के फूलों का बाग लगा हुआ था। इसके बाद लाल दीवार थी, नीचे मस्कवा नदी दिखाई पड़ रही थी। हम लोग इसी सड़क पर चलते हुए बचपन में पुस्तक में पढ़े हुए सप्ताश्चर्यों में से अन्यतम आश्चर्य मास्को के घंटे के नीचे पहुंच गए। हम घंटा देखने के अभ्यस्त थे, पर वह इतना विराट हो सकता है, इसकी कल्पना नहीं थी। लगभग दस-बारह फुट ऊंचा यह घंटा था। इसका वजन २०० टन के लगभग बताया गया। यह कांस्य और चांदी मिला कर बना हुआ था। घंटे के नीचे की तरफ एक किनारा टूटा हुआ था, पर टूटे हुए टुकड़े का वजन ११ टन था। अठारहवीं सदी के मध्य भाग में रूसी सम्राट पीतर महान की फूफी ऐनेआना ने ईवान मातोरिन से यह घन्टा तैयार करवाया था। घंटे की बगल में ही एक पुरानी तोप रखी हुई थी जो सोलहवीं सदी में बनाई गई थी। यह लम्बाई में १५ फुट थी, बगल ही में कुछ बहुत बड़े लोहे के गोले रखे हुए थे, जो इसी तोप के बताए गए। इनमें से हर गोले का वजन २ टन था। तोप और घंटा पार करके कुछ आगे बढ़े तो विभिन्न आकार के गिरजे दिखाई पड़े। इनमें १५वीं सदी का उस्पेनिस्कि गिरजा गठन कौशल की दृष्टि से तथा इसकी दीवार पर बने हुए प्राचीन चित्र के कारण स्मरणीय है। इसकी दीवार पर १७वीं सदी के जो प्राचीर चित्र हैं, उनका अभी-अभी तेल और रंग का पुचारा उड़ा कर उद्धार किया गया है। बगल ही में १६वीं शताब्दी का एक गिरजा है। इसके बनाने वाले विख्यात रूसी सम्राट ईवान हैं। इसका शिखर लगभग २५० फुट ऊंचा है और लड़ाई के समय इसका उपयोग सैनिक निरीक्षण केन्द्र के रूप में होता था। इसी की बगल में १५वीं सदी का एक और सुन्दर गिरजा था, जिसका नाम था ब्लागाइविसिस्कि यानी 'शुभ समाचार'। इस पर भी १६वीं शताब्दी के प्राचीर चित्र थे, जो बाद की विभिन्न सदियों के बनाए हुए चित्रों के रंगों के नीचे दबे पड़े थे। इसमें का अन्तिम चित्र १९वीं सदी में बना था। हाल ही में १६वीं सदी के मूल चित्रों का पुनरुद्धार सम्भव हुआ है। पास ही आर्कजल नाम से एक सुसज्जित मंडप में पीतर के पहले के सम्राटों की समाधियां बनी हुई हैं।

गिरजों की कतार देख कर लौटते समय दाहिनी तरफ क्रेमलिन का विराट हाल था। १८४९ में ज़ार निकोलस द्वितीय ने इसे तैयार कराया था। इसमें बाल्टिक इलाके के संगमरमर का बहुल प्रयोग हुआ है। यह हाल बहुत ही प्रशस्त और सुन्दर है। इसके पीछे सन्त ब्लादीमीर हाल है। इसकी दीवार पर विभिन्न सन्तों के स्मारक चिह्न उज्ज्वल रंग और सुनहरी मुलम्मे से चित्रित हैं। यह हाल कुछ बहुत चौड़ा नहीं है, पर इसे क्रेमलिन की १६वीं, १७वीं, १८वीं और १९वीं सदी के बनाए हुए हालों से संयुक्त करता है। बगल में ही ग्रेनेवितो हाल है। यह १५वीं सदी में बना था, पर इसकी दीवार पर जो चित्र बने हुए हैं, वे ज्यादा पुराने नहीं हैं, शायद १९वीं सदी के बने हुए हों। यह ज़ारों के जमाने का स्वागत करने का हाल है। उन दिनों इन स्वागतों में महिलाओं को प्रवेश का अधिकार नहीं था। ऊपर के छोटे-छोटे झरोखों से वे हाल का उत्सव देखा करती थीं। पुराने ज़ारों के जमाने में जो कमरे बनाए गए थे, वे कुछ बड़े नहीं थे, दीवारें तरह-तरह की कढ़ाई युक्त कपड़ों या चमड़ों के पर्दों से ढकी हुई थीं। कमरों में रोशनी भी कम थी। जाड़े वाले मुल्कों के रजवाड़ों की पारिवारिक स्वच्छन्दता की छाप मकानों की बनावट और असबाबों में दिखाई पड़ती थी। ज़ार द्वितीय निकोलस द्वारा प्रस्तुत 'गियोरकिस्की' हाल पत्थर और लकड़ी के सुन्दर कारुकार्य से मण्डित है। इसी विराट महल में सर्वोच्च सोवियत का अधिवेशन होता है। इसमें दो हजार से भी अधिक आसन हैं। सभापति के मंच के पीछे मेरकुरोफ की तैयार की हुई ग्रेनाइट पत्थर की लेनिन की एक मूर्ति है। गियोरकिस्की हाल में घुसते समय फ्रांसीसी चित्रकार ईवन का बनाया हुआ एक विराट चित्र है, जिसमें रूसियों और तातारियों का युद्ध दिखाया गया है। यह चित्र १८५० में बनाया गया था। शक्तिशाली चित्रकार ने वास्तविक युद्ध की भयानकता बहुत अच्छी तरह व्यक्त की है।

इस महल के एक किनारे पर एक विराट अजायबघर था। इसमें ज़ारों के द्वारा उपयोग में लाई हुई सामग्रियों तथा विभिन्न उपलक्षों में उनके द्वारा देश विदेश से प्राप्त उपहारों को अच्छी तरह सजा कर रखा



मास्को में लेनिन और स्तालिन की समाधि

गया है। सम्राट ईवान का सिंहासन, सुन्दर लकड़ी से सुसज्जित एक ऊंची कुर्सी, उनके द्वारा व्यवहृत जूता, उनके तरह तरह के प्याले, पीतर महान की कन्या एलिजाबेथ द्वारा व्यवहृत १५ हजार पोशाकों में से कुछ चुनी हुई विभिन्न ढंग की पोशाक, विभिन्न जारों के द्वारा प्रयुक्त तरह तरह के सुन्दर भोजन और पानपात्र, १८९६ में जार द्वितीय निकोलस के अभिषेक के उपलक्ष में जापान का दिया हुआ लकड़ी की सुन्दर कारीगरी से युक्त एक पैनेल, जिसमें समुद्र की ऊपर उठी हुई तरंगें कलाकार की दक्षता के कारण खुदाई की हुई लकड़ी पर स्थिर हैं। जार निकोलस के द्वारा काम में लाई हुई मेज, दावात, कलम और भी असंख्य वस्तुएं बहुत अच्छे ढंग से सजा कर रखी गई हैं। पास ही के कमरे में १५वीं से १७वीं सदी तक तैयार तरह-तरह के सोना चांदी के बरतन अपनी सूक्ष्म कारीगरी के कारण विराजमान हैं। इसी के पास के कुछ कमरों में पुराने जमाने के अस्त्र शस्त्रों का अजायबघर बना हुआ है। १३वीं से १५वीं शताब्दी तक के ढाल-तलवार तीर-धनुष, भाला-बर्छी आदि कई तरह के अस्त्र शस्त्र रखे हुए हैं, जिन पर सोना चांदी का काम किया हुआ है। उस समय तक आग्नेयास्त्र आविष्कृत नहीं हुए थे। १६वीं सदी से आग्नेयास्त्रों का प्रचलन हुआ, तब तरह-तरह की बड़ी और उद्‌भट आकार की तोपें, बन्दूकें काम में आने लगीं, पर इन पर भी तरह तरह के काम किए हुए थे। अन्त की ओर १९वीं सदी के अस्त्र-शस्त्रों के आग्नेयास्त्रों में सोना चांदी के काम का कोई स्थान नहीं है। इन अस्त्र शस्त्रों को देखने से यह पता लगता है कि सौन्दर्य तत्व पर भी किस प्रकार से आधुनिक रुचि का प्रभाव फैल गया।

क्रेमलिन अजायबघर देख कर हम लोग विस्मितचित्त से होटल में लौटे। जिस जार वंश को इन लोगों ने जड़ मूल से खतम कर दिया है, उसके जमाने की कला सामग्रियों को कितनी श्रद्धा और भक्ति के साथ सजा कर रखा गया है। इन लोगों ने अत्याचारी जार शाही को खत्म किया है, पर जारों के जमाने में रूस की जन संस्कृति सैकड़ों वर्ष तक जिस प्रकार विकसित होती रही, रूस की वर्तमान समाजवादी सरकार उसी जन संस्कृति की धारक और पोषक है, इस लिए विभिन्न जारों के द्वारा निर्मित वर्तमान सोवियत सरकार की राजधानी मास्को नगरी और उसका यह केन्द्र क्रेमलिन दर्शकों को एक साथ इन बातों की याद दिलाता है।

२० अगस्त। आज मास्को में हमारी भारतीय कला प्रदर्शनी का अन्तिम दिन था। पर यह बात बिल्कुल गुप्त रखी गई थी। मादाम जिनी-ग्रादस्काया ने कहा —यदि यह बात लोगों को मालूम हो जाए तो खतरा हो सकता है क्योंकि भीड़ इतनी भयंकर हो जाएगी कि सम्हालना टेढ़ी खीर हो जाएगी। इसकी बजाय कल प्रातःकाल के सभी अखबारों में यह खबर दे दी जाए कि प्रदर्शनी खत्म हो गई है और अकादमी के दरवाजे पर भी इश्तहार टांग दिया जाएगा कि प्रदर्शनी समाप्त हो गई।

उनकी इस व्यवस्था को परिस्थिति देखते हुए एकमात्र सही निर्णय करके मान लेना पड़ा। पर इधर बाहर के दरवाजे पर दो फर्लांग लम्बी क्यू लगी हुई थी। इससे मन पर बुरा प्रभाव पड़ा, पर कुछ किया नहीं जा सकता था। बात यह है कि उधर कीव की प्रदर्शनी का दिन तय हो चुका था। किसी भी हालत में अब यहां प्रदर्शनी का दिन बढ़ाया नहीं जा सकता था।

दुपहर के लगभग सुप्रीम सोवियत के सभापति मार्शल वोरोशिलोफ प्रदर्शनी देखने पधारे। उनके साथ बहुत सी अकादमियों के प्रमुख सदस्य थे। जैसे *उबलिश, गरासेजार, येगनसन, गेरासिमाफ आदि*। उन लोगों ने बड़ी दिलचस्पी के साथ चित्र देखे और तरह-तरह की बातचीत हुई। इन्हीं के साथ-साथ साधारण दर्शक भी देखते रहे। हां उनके चारों तरफ भीड़ जरा भारी थी, जैसे पंडित नेहरू या राजेन्द्र बाबू के प्रदर्शनी के आने पर हुआ करती है। यह धारणा बनी कि मास्को की जनता के लिए भी इन लोगों का दर्शन दुर्लभ है। हमारी दुभाषिया मासिलवा नाबोभावना बोली कि अपने जीवन में वोरोशिलोफ को उसने इतने पास से पहली बार देखा है।

रात को संस्कृति मन्त्री पोनामारेंको ने हम लोगों के सम्मान में एक बहुत बड़ा भोज दिया। इधर दोपहर के समय दादा एकाएक बीमार पड़ गए। मार्शल वोरोशिलोफ के साथ बात करते-करते ही उनकी तबियत की कुछ ऐसी हालत हुई कि वे विदाई लेकर होटल में लौटे। देखा गया कि कुछ बुखार भी है। इस पर हम लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। रात के समय जो पार्टी हुई उसमें वे नहीं आ सके। उनका लिखा हुआ भाषण पढ़ने का भार मुझ पर पड़ा। मैंने अपनी बारी में ईश्वर से अनुरोध किया कि वही इस कार्य को करें। इस प्रकार किसी तरह प्रलय टल गया। इसके अलावा यह तो भरोसा था ही कि श्री मेनन, प्रकाश कौल इत्यादि भी इस भोज में उपस्थित रहेंगे इसलिए कोई ऐसी वैसी परिस्थिति हुई तो सम्हल जाएगी।

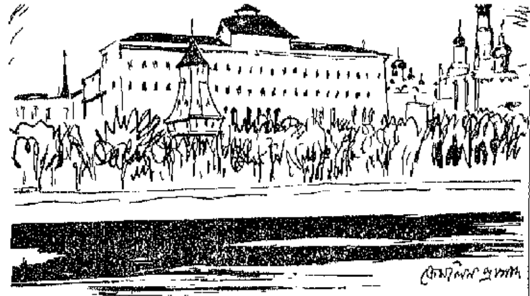
यह भोज इन्जीनियरों और भवन निर्माताओं के सम्मान में हुआ। विराट हाल में सुन्दर ढंग से मेजें लगाई गई थीं और उसके एक किनारे छोटा सा मंच था। मन्त्री महोदय और उनके सहकारी, शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी, कला अकादमी के प्रमुख सदस्य, विख्यात कला समालोचक चोक्स के महानिदेशक और संगीत नृत्य तथा अभिनय के क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्ति निमन्त्रित होकर आए थे। तरह तरह का खाना, शराबें लगी हुई थीं, मधुर संगीत और नृत्य हो रहा था और साथ ही बीच-बीच में व्याख्यान हो रहे थे और टोस्ट प्रस्तावित हो रहे थे। प्रीति, शान्ति, भारतीय जनता के साथ रूसी जनता की मित्रता के नाम पर टोस्ट प्रस्तावित हो रहे थे। 'द्रुज्बावधना' यानी 'मित्रता के लिए' प्यालों की अन्तिम बूंद तक पी जाती। एक भी बूंद डाल नहीं सकते। यह एक बहुत ही बड़ा उत्सव बन गया। उत्सव प्रधान था या भोजन, यह समझना कठिन था। साढ़े आठ बजे रात से लेकर डेढ़ बजे तक इस प्रकार लगातार खाना, पीना नाचना-गाना, व्याख्यान आदि चलता रहा। ताजकिस्तान की मशहूर नर्तकी तमाराखानम ने ताजीक, चीनी, कोरियायी,

हिन्दी और बंगला गाने सुनाए और नृत्य दिखाए। एकाएक वह साड़ी पहन कर प्रकट हो गई और उसने बंगला में "मानबो ना शृंखल, मानबो ना बन्धन" न तो शृंखल मानूगा, न बन्धन मानूगा, गाना आरम्भ किया। हम लोग तो देख कर एक दम दंग रह गए। आजर बेजान के विख्यात गायक रशीद ने भी हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय का गीत (सूर्य अस्त हो गया, गगन मस्त हो गया) और इकबाल की अमर रचना (सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा) सुनाई। इसके अलावा उजबेकिस्तान का एक बाजा, जिसे देख कर बंगाल के 'ढाक' की याद आ गई, बजाया गया। एक मैजिक दिखाने वाले ने भी अपने करतब दिखाए।

भोज के आरम्भ में ही हेब्बर ने उकील महाशय यानी दादा का लिखित भाषण पढ़ कर सुनाया और मैंने शिष्टमण्डल के सदस्यों की ओर से यामिनीराय के तीन चित्र कला-अकादमी को भेंट किए। इस उत्सव में तरह-तरह की लेन-देन हुई, शुभेच्छाए दोनों तरफ से बार बार प्रकट की गई। इन्द्रियों की परितृप्ति के साथ-साथ बुद्धि के लिए भी बहुत कुछ खुराक प्राप्त हुई। अफसोस है कि हम लोगों में कोई अच्छा वक्ता नहीं था और उकील महाशय अस्वस्थ होने के कारण अनुपस्थित थे। इसलिए हम दोनों की तरफ से धन्यवाद देने के लिए श्री मेनन से कहा गया। उन्होंने रस्म की अदायगी करते हुए इस बात पर बहुत ही खुशी जाहिर की कि प्रदर्शनी इतनी सफल रही। उन्होंने यह स्वीकार किया कि पहले उनके मन में कुछ भय था कि शायद प्रदर्शनी न सफल हो क्योंकि भारत के कलाकार किसी निर्दिष्ट नीति या पद्धति को मान कर चित्रांकन नहीं करते। भारत के कलाकार अपनी प्रेरणा और रुचि के अनुसार निरंकुश होकर काम करने के आदी हैं। वे किसी सुनिश्चित और नियमित नीति को लेकर नहीं चलते। इसलिए सोवियत कला के साथ तुलना करने पर इस प्रदर्शनी की विभिन्न शैलियों की कृतियां बहुत ही असंगत और अप्रासंगिक ज्ञात हो सकती हैं। फिर भी सोवियत सरकार ने इस प्रदर्शनी को निमन्त्रित किया इसलिए वे हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

श्री मेनन के इस व्याख्यान का उत्तर कला अकादमी के सभापति अलेक्जेन्डर गिरासीमोफ ने दिया। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वे या सोवियत कलाकार ऐसा नहीं समझते कि अच्छे चित्रों के निर्माण के लिए केवल एक ही पद्धति है। सोवियत रूस में बहुत सी जातियां रहती हैं और उनमें से हर एक की अपनी-अपनी राष्ट्रीय कला पद्धति है। सामने रखे हुए एक फूलों के गुच्छे की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि यह सारा गुच्छा मिल कर कितना सुन्दर मालूम होता है, पर हर फूल का आकार और रंग एक दूसरे से भिन्न है। इससे गुच्छे की शोभा में चार चांद ही लगे हैं।

श्री मेनन के व्याख्यान में बताई गई सोवियत कला की वस्तुतान्त्रिकता का उत्तर देते हुए सांस्कृतिक मन्त्री पोनामारेंको ने कहा कि श्री मेनन न केवल एक कूटनीतिज्ञ हैं बल्कि वे कलारसिक भी हैं। उन्होंने सोवियत सरकार की कला सम्बन्धी नीति की व्याख्या करते हुए कहा कि सोवियत संघ में कला मामूली तौर पर जनता की कला है। पहली बात तो यह है कि सोवियत कलाकार भी तरह-तरह के प्रभावों से प्रभावित होते रहते हैं, पर वे बिना समझे-बूझे सब तरह के प्रभावों को अपनाने की बजाए बराबर चिन्तन करते रहते हैं कि कौन से प्रभाव अच्छे हैं और कौन से बुरे। समालोचकों की समालोचना और कलाकारों में निरन्तर चलने वाली आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया उन्हें आवांछित तथा अवांछनीय प्रभावों



क्रेमलिन-प्रासाद

से दूर रखती है। फिर भी वे हर समय हर देश की उत्कृष्ट कला का आदर और उसकी उचित कद्रदानी करने के लिए तैयार रहते हैं।

श्री मेनन समझ गए कि अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में उन्होंने एक कोमल स्थान पर आघात किया है। इसलिए भोज के अन्त में उनके स्वास्थ्य की कामना करते हुए जो टोस्ट प्रस्तावित हुआ उसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"मैं आशा करता हूं कि मैंने सोवियत कला में वस्तु तान्त्रिकता के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, उसे किसी ने गलत रूप में नहीं लिया। सोवियत जनता ने जिस उत्साह के साथ भारतीय कला का स्वागत किया है, उससे यह प्रमाणित होता है कि उसकी कला सम्बन्धी रुचि बहुत उदार है। सम्भव है कि कला और राजनीति के क्षेत्र में भारत और सोवियत अलग-अलग मार्ग के पथिक हों, पर दोनों का लक्ष्य एक ही है। कला के क्षेत्र में हमारा लक्ष्य सौन्दर्य का निर्माण है और राजनीति में हमारा लक्ष्य विश्व शान्ति है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सोवियत संघ या संसार के किसी भी देश के साथ सहयोग करने के लिए भारत हर समय प्रस्तुत है।

इस समय मास्को में कलकत्ता की प्रसिद्ध फुटबाल टीम ईस्ट बंगाल आई हुई थी। कई दिनों से इसी की चर्चा चल रही थी। जहां देखो वहां लोग इसी की बातचीत कर रहे थे। बुखारेस्ट में जो युवक समारोह हुआ था, उसमें वे लोग आए थे। वहीं से निमन्त्रित हो कर वे रूस में आए थे। २१ अगस्त को मास्को स्टेडियम में खेल हुआ। हम लोग समय से बहुत पहले रवाना हो गए, फिर भी जब पहुंचे तो देखा भयंकर भीड़ पहले ही मौजूद है। हर मोड़ पर बोरिस निकोलाइच उतर कर पुलिस को समझा रहा था—'देलिगात्सी इन्दिस्की खुदोज़निक' यानी भारतीय कला-शिष्ट-मण्डल के सदस्य।

ज्योंही यह बात कही जाती थी त्योंही गाड़ी लाइन पार करके आगे बढ़ जाती थी। इस तरह रुक-रुक कर समझा-समझा कर आगे बढ़ते-बढ़ते गाड़ी अन्त तक स्टेडियम में पहुंची। विराट स्टेडियम था। तीन तरफ से घेर कर बैठने के लिए आसन बने हुए थे, उसमें एक लाख लोगों के लिए बैठ कर देखने की व्यवस्था थी। चौथी तरफ जो ढाल बनी हुई थी, उसमें बीस पच्चीस हजार दर्शक खड़े होकर तमाशा देखने के लिए तैयार थे।

स्टेडियम के एक किनारे पर लेनिन और स्टालिन के चित्र सुसज्जित थे। भारत और रूस के राष्ट्रीय झण्डे फहरा रहे थे। लाल कपड़े पर रूई से सफेद हरफों में हिन्दी में लिखा हुआ था 'स्वागतम्'। ज्यों ही खिलाड़ी मैदान में आए त्योंही भारत और रूस के राष्ट्रीय संगीत बजाए गए।

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

हमारे 'राष्ट्रीय गीत' की पृष्ठभूमि

सलाम मछलीशहरी

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक उपन्यास का नायक अपनी आत्मा में एक नई चेतना और विश्वास की ज्योति पाकर कहता है—"आज मैं सच्चा भारतीय हू, आज मैं हिन्दू, मुसलमान और ईसाई के बीच कोई भी अन्तर अनुभव नही कर पा रहा। आज भारत का प्रत्येक धर्म मेरा धर्म है। आज मेरे सामने एक ऐसा ईश्वर है जो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और ब्रह्मसमाजी सभी का है, जो केवल हिन्दुओं का भगवान नहीं वरन समस्त भारत का भगवान है।" यह उपन्यास जनवरी १९१५ में प्रकाशित हुआ था। और इसके छै महीने बाद २ जुलाई, १९१५ को अपनी कविता 'भारत तीर्थ' की रचना करते समय महाकवि ने सभ्यता और मानवता के शिखर से अपने देश को उभरते देखा और कहा —"मानव के रूप में हे सर्व शक्तिमान, मैं तेरा अभिनन्दन करता हू।"

आर्यो! अनार्यो!! हिन्दू, मुसलमानो!!! आओ,
पारसियो और ईसाइयो तुम सब मिल कर आओ,
हे ब्राह्मणो! जागो, तुम सब के हृदय एक हो कर पवित्र हो जाए।

यह गीत जो आज हमारा राष्ट्रीय गान है इसके आगामी वर्ष के अन्त में लिखा गया, और प्रथमबार १७ दिसम्बर, १९१६ को अखिल भारतीय काग्रेस के पच्चीसवें अधिवेशन पर जो कलकत्ता में हुआ, सुनाया गया था। दूसरे ही दिन सुप्रसिद्ध पत्र 'बगाली' ने लिखा —"अधिवेशन का आरम्भ बगाल के सुप्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत एक गीत से हुआ। जिसका अग्रेजी अनुवाद हम प्रकाशित कर रहे हैं।

"भारतीय जनता के हृदय सम्राट! हमारे राष्ट्र के भाग्य विधाता"

'अमृत बाजार पत्रिका' ने और भी सुन्दर रूप मे समीक्षा की—*"यह बगला गीत मानव नहीं वरन ईश्वर परक है — यह एक ऐसी भावना है, ऐसी शक्ति है जो उभरते राष्ट्र को प्रगति पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।"*

'जन गण मन' केवल राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत एक गीत ही नही वरन इसका शीर्षक स्वय में महान है जिसका प्रभाव पृथ्वी के केवल एक भाग पर ही नहीं पडता वरन इस गीत के पवित्र स्वर ससार के समस्त मानवो की आत्माओ को छूते है, और जिससे अनुप्राणित होकर मानव विश्वबन्धुत्व की पवित्र भावना में डूब जाता है। इसके प्रभाव से भारत का भगवान समस्त विश्व का भगवान बन जाता है, और राष्ट्रीयता सार्वभौमिक मानवीय प्रेम में परिवर्तित हो कर मुस्करा उठती है। इस गीत का ससार सकुचित दृष्टिकोण की सीमाओ से सीमित नहीं, इसलिए कि भारत जिसे हम इन सीमाओ से ऊपर उठ कर देखते है केवल एक राजनैतिक शक्ति ही नही जो केवल अपनी सीमाओ की रक्षा करने ही में समर्थ है वरन भारत विश्व की समस्त इकाइयो में से एक ऐसी प्रमुख इकाई है जिसका शेष समस्त इकाइयो से स्नेहिल सम्बन्ध है। हमारे देश का महत्व केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से ही नही है वरन वह शान्ति सद्भावना, और स्नेह की एक ऐसी आवाज है जो समस्त विश्व को एकसूत्र में बध जाने का सन्देश देती है।

वास्तव मे इस गीत की रचना एक ऐसे मानव समुदाय के लिए हुई थी जो रीति रिवाजो और धार्मिक नियमो के बन्धनो से सर्वथा मुक्त हो और एक ऐसे दृढ निश्चयी और निस्वार्थ मानव समुदाय का प्रतिनिधि हो जो अपने देश की मुक्ति के अतिरिक्त किसी भी अन्य मुक्ति का इच्छुक नहो।

काग्रेस के जलसो में गाए जाने के लिए इस गीत का चुनाव डा० नीलरत्न सरकार ने किया था। आरम्भ में देवेन्द्र नाथ ठाकुर के निर्देशन में कुछ सगीतज्ञो ने इस गीत की स्वर रचना का अभ्यास उन्ही के घर पर किया था। यू तो यह गीत आने वाले माघोत्सव में गाए जाने के लिए लिखा गया था। किन्तु डाक्टर सरकार ने इसे काग्रेस के उन तीनो सम्मेलनो मे गाए जाने के लिए अत्यन्त उपयुक्त समझा जो उन्ही दिनो होने जा रहे थे। वह स्वागतकारिणी समिति के सदस्य थे, इसलिए महाकवि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

यहा यह भी कह देना आवश्यक है कि सब प्रथम यह गीत 'तत्व बोधिनी समाज' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, जो ब्रह्म समाज का मुख पत्र था और जिसके सम्पादक रवीन्द्र बाबू ही थे। प्रारम्भ में इस गीत का शीर्षक 'भारत विधाता' था जिसे 'ब्रह्म सगीत' भी कहा जाता था। रवि बाबू का विचार था कि भारत के भगवान का यह आमन्त्रण ससार के समस्त जातियो के भगवानो के लिए भी है। इसलिए भारत का भगवान केवल भारत का नही वरन् समस्त विश्व का भगवान है। और यही विचार समस्त देशवासियो का भी है।

'माघोत्सव' में यह गीत रवि बाबू के घर पर सगीतकारो ने प्रस्तुत किया जिसका निर्देशन स्वय रवि बाबू ने किया था। १९१४ में 'धर्म सगीत' के नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई थी उस में इस गीत के सकलन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने इस गीत के द्वारा अध्यात्मवाद का सन्देश दिया है। किन्तु ऐसा समझ लेना भूल है कि उन्होने रचना करते समय यह सोचा ही नही था कि यह गीत राष्ट्रीय गीत भी है। 'गीत वितान' के 'स्वदेश' नामक भाग में इस गीत के सकलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वय कवि का वास्तविक अभिप्राय यही था।

राष्ट्रीयता और आध्यात्मिकता की भावना, जो भारतीय जनता के जीवन की प्रमुख अग है, रवीन्द्रनाथ की समस्त राष्ट्रीय कविताओ में उसी तरह स्पष्ट दिखाई देती है जिस तरह उनके राजनैतिक भाषणो में। कवि का देश पृथ्वी का ऐसा भाग नही है जो केवल अपने लिए ही हो। बापू की तरह महाकवि का विश्वास था कि —'यदि देश का विभाजन हुआ तो मुक्ति के समस्त मार्ग अवरुद्ध हो जाएगे।' दोनो के निकट राष्ट्र की सेवा मानवता की सेवा थी। गान्धी जी ने

१९ मई १९४६ के 'हरिजन' में लिखा था--'जन गण मन' राष्ट्रीय गान भी है और भक्ति गान भी।" एक बार 'माघोत्सव' के अवसर पर स्वयं महाकवि ने कहा था --"आओ हम अपना सब कुछ छोड़ते हुए साहस और धैर्य के साथ आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाली मानवता की यात्रा में सम्मिलित हो जाए। हे मानव के रूप में भगवान, तुम महान हो।"

राष्ट्रीय गान के रूप में भी यह गीत प्रेरणाप्रद है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऐसे उच्चादर्शवादी और शक्तिशाली राष्ट्र का गीत है जो विश्व के समस्त मानवता प्रेमी राष्ट्रों में अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए उभर रहा है। १९१८ की कांग्रेस के तीसवें अधिवेशन में जब यह गीत दूसरी बार गाया गया तो सी० आर० दास ने कहा था ---"यह भारत की प्रभुता और विजय का गीत है।" रवीन्द्रबाबू का दूसरा राष्ट्रीय गीत 'देश-देश वन्दना करो' जो इसी अधिवेशन के पहले दिन गाया गया था 'प्रवासी' मे इस प्रशसात्मक वाक्य के साथ प्रकाशित हुआ --"हमारे राष्ट्र का चैतन्य और अमर देवता हमारी आत्माओ को पुकार रहा है।" मेरे विचार मे दोनो गीतो की रचना का आधार यही वाक्य है। और इसीलिए महाकवि के उस उपन्यास के नायक ने यह बात कही थी जिसका आरम्भ में उल्लेख किया गया है। इस उपन्यास के नायक ही नही बल्कि उसके रचयिता का भी विश्वास है कि राष्ट्रीयता राजनीतिक नही वरन एक मानसिक विश्वास है। वास्तविक स्वतन्त्रता तब तक नही मिल सकती जब तक विश्व का प्रत्येक नागरिक यह अनुभव न करे कि समस्त ससार का भगवान एक ही है।

रवीन्द्र नाथ ने १९१७ के कांग्रेस अधिवशन में उसी अवसर के लिए लिखी हुई 'भारत की प्रार्थना' पढ़ी थी। वह विचार और भावनाओ में 'जन गण मन' जैसी ही थी। कांग्रेस की रिपोर्ट से इस गीत के सम्बन्ध में यही स्पष्ट होता है। यह गीत इस प्रकार था---

"वह तेरा नाम लेकर व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए युद्ध कर रहे है रे एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे है।"

"वे इस भूख के लिए, जो अपने ही दोषो से पल रही है, अपने भाइ से झगड रहे है।"

"वह तेरे क्रोध के विरुद्ध लड रहे है और मर रहे है। लेकिन आओ हम दृढ निश्चयी और शक्तिशाली बन कर आपत्तियो पर विजय प्राप्त करें---उसी के लिए जो सत्य है, महान है, और मानवो!

'हा, हम दृढ निश्चयी और शक्तिवान है।'

'तेरे राज्य के लिए जो मानवीय हृदयो की एकता में है।'

'उस स्वतन्त्रता के लिए जिसका सम्बन्ध आत्मा से है।'

तात्पर्य यह है कि हमारा राष्ट्रीय गीत व्यक्तिगत प्रेम के लिए सघर्ष की प्रेरणा नही देता--वरन स्वतन्त्रता के उच्च आदर्शो का उद्घोषक है--वह आदर्श जो आध्यात्मिक है।

राष्ट्रीय गीत का अंग्रेजी में अनुवाद किए जाने की कहानिया भी दिलचस्प है। और इन के द्वारा ही गीत का आध्यात्मिक और सार्वभौमिक महत्व स्पष्ट हो जाता है। इसका सर्वप्रथम अनुवाद २१ दिसम्बर १९११ को 'बगाली' नाम के पत्र में प्रकाशित हुआ और जो अनुवाद कवि ने स्वय किया था वह फरवरी १९१८ में 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुआ। १९३४ में इसका सशोधित अनुवाद 'विश्व भारती' में प्रकाशित हुआ, जिसे स्वय रवि बाबू ने किया था और वही प्रामाणिक माना जाता है।

यू तो १९१९ में रवीन्द्रनाथ ने इसका एक और भी अनुवाद किया था जबकि वे दक्षिण भारत की यात्रा पर थे। अनुवाद लेखक की हस्तलिपि और हस्ताक्षर सहित प्रकाशित हुआ था। 'मिदना पल्ली' के थियोसाफिकल कालेज के प्रिंसिपल की प्रार्थना पर इसे स्वय कवि ने गा कर सुनाया था जिससे प्रिंसिपल महोदय इतने प्रभावित हुए कि उन्होने गीत के अंग्रेजी अनुवाद के लिए अत्यन्त आग्रह किया। महाकवि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसका शीर्षक 'भारत का उषा गीत' रखा तथा प्रिंसिपल ने उसे कालेज के गीत के रूप में प्रसन्नता और धन्यवाद सहित स्वीकार कर लिया। कुछ दिनो बाद प्रिंसिपल महोदय ने महाकवि को लिखा था --"हर सुबह हाल म हमारे सैकडो नवयुक 'जन गण मन' गाते है। हम इसकी प्रतिलिपिया देश के अन्य स्कूलो और कालेजो मे भी भेज रहे है। साथ ही दूसरे देशो में भी, जिससे कि इसका पवित्र प्रभाव असीमित हो" महाकवि के हाथ का लिखा हुआ यह अनुवाद इस कालेज की 'स्मृति पुस्तक' में इन शब्दो के साथ मौजूद है "यह ससार का सर्वश्रेष्ठ अभिलेख प्रमाणित होगा।" और फिर मिदनापल्ली से उभर कर यह गीत समस्त देश में गूज उठा। आज यूरोप और अमेरिका भी इसके प्रशसक है।

जब सुभाषचन्द्र बोस ने जर्मनी में 'आजाद हिन्द फौज' का निर्माण किया तो उन्होने भी इसी गीत को अपनाया। श्री आनन्द मोहन सहाय और लायलपुर के एक युवक कवि 'हुसैन' से इसका अनुवाद हिन्दुस्तानी में कराया। जब आजाद हिन्द फौज ने स्वतन्त्रता के युद्ध में पहली बार राष्ट्रीय ध्वजा 'तिरगे' को मुक्त वातावरण में फहराया तो इस गीत के प्रेरणामय स्वरों में एक नया जीवन अगडाई लेकर झाक उठा। बाद में अस्थायी सरकार के सेक्रेटरी ने एक लेख में लिखा---"जर्मनीवासियो ने सुभाषचन्द्र बोस के सामने स्वीकार किया है कि यद्यपि वे अपने राष्ट्रीय गीत को ससार भर के राष्ट्रीय गीतो में सर्वश्रेष्ठ मानते है किन्तु यह वास्तविकता है कि आजाद हिन्द फौज का यह राष्ट्रीय गीत स्वय उनके गीत को शक्ति और प्रेरणा देता है।"

१९४४ में जर्मनो ने जो विचार प्रगट किए थे वही १९४८ में विश्व के अन्य राष्ट्रो ने भी 'सयुक्त राष्ट्रसघ' में प्रकट किए जहा एक विशेष अधिवेशन में इसे गाया गया। हमारे प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने २५ अगस्त १९४८ को इस गीत के सम्बन्ध में विधान सभा में कहा था -- "इसकी बहुत ज्यादा तारीफें हुई है। बहुत से राष्ट्रो के प्रतिनिधियो ने हमसे इसके सगीत और स्वर रचना के विषय में पूछा है। उन्हें इस की धुन अत्यन्त अद्भुत और महान अनुभव हुई है। कई देशो से इस गीत की स्वर रचना के लिए, जो अन्य राष्ट्रो के राष्ट्रीय गीतो की अपेक्षा अधिक प्रेरणाप्रद और प्रभावपूर्ण है, हमें प्रशसात्मक और बधाई के पत्र प्राप्त हुए है।"

'वन्दे मातरम्' और 'जन गण मन' के साहित्यिक महत्व की तुलना करना आसान नही है। दोनो गीतो का अपना-अपना स्थान है। 'वन्दे मातरम्' की भाषा पूर्ण रूप से सस्कृत है। एक ज्योतिर्मय स्वरूप में मातृ-भूमि को शस्य श्यामला के साथ-साथ सुखदा, वरदा, विघ्नविनाशिनी, रिपुदल हारिणी के रूप में देश के सामने रखा गया है जिसका यह मनोहारी स्वरूप देश की कोटि-कोटि जनता की आखो में नाच उठता है। वेद मन्त्रो की तरह इस गीत की रचना भी बडी प्रभावोत्पादक है। सघर्ष में रत राष्ट्र के रक्त और आसुओ से सिंच कर इस गीत की पवित्रता और भी

(शेष पृष्ठ ४४ पर)

पुस्तक समालोचना



नेपाल की वो बेटी लेखक—बलभद्र ठाकुर, प्रकाशक—हिन्दी भवन, ३२७, रानी मण्डी, इलाहाबाद-३, पृष्ठसंख्या—३५८, मूल्य—५ रु० ८० नए पैसे, सजिल्द।

श्री बलभद्र ठाकुर ने और भी कितने ही उपन्यास लिखे हैं। 'नेपाल की वो बेटी' नामक यह उपन्यास उन्होंने लगभग १५ साल पश्चिमी नेपाल में रहने के बाद लिखा है। उनका कथन है कि इस उपन्यास में वर्णित अधिकांश घटनाएं तथ्यों के आधार पर लिखी गई हैं। इस उपन्यास के कथानक का काल उन्होंने १९२०-२३ बताया है। नेपाली जीवन पर वह कुछ अन्य उपन्यास भी लिख रहे हैं।

जहां तक कथानक का सम्बन्ध है, प्रस्तुत उपन्यास बहुत मनोरंजक है। सामन्ती युग के सभी तरह के अत्याचार, अपहरण, बलात्कार, षड्यन्त्र और हत्याकाण्ड—इन सब के आधार पर निर्मित कथानक में पकड़ तो होनी ही चाहिए। और वह पकड़ इस उपन्यास में यथेष्ट मात्रा में है। इस सम्बन्ध में अधिकार के साथ मैं कुछ नहीं कह सकता कि यह उपन्यास पूर्ण-रूप से तत्कालीन नेपाल की सामन्ती आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का सही-सही चित्रण करता है या नहीं। इसका निर्णय तो नेपाल के पाठक ही कर सकेंगे। पर मेरी धारणा है कि दूसरे देशों के सम्बन्ध में इस तरह का चित्रण करने में गलती की सम्भावना रह सकती है। यह बात मैं सैद्धांतिक रूप से कह रहा हूं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में मैं अधिकार के साथ कुछ नहीं कह सकता।

'नेपाल की वो बेटी' मनोरंजक होते हुए भी उपन्यास कला की दृष्टि से यथेष्ट रूप में सुगठित नहीं है। कहानी काफी बिखरी हुई है और चित्रण भी समान स्तर पर नहीं चलता। इस उपन्यास की शैली और गठन दोनों में अभी सुधार की काफी गुंजाइश है। फिर भी मैं 'नेपाल की वो बेटी' को इस वर्ष के सबल और इसी कारण सफल उपन्यासों में गिनूंगा। वह लेखक का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है ही।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

आंखों देखा केरल—लेखक हृदयदेव मालवीय, प्रकाशक पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-१, पृष्ठ संख्या ७६, मूल्य १) रु० सजिल्द।

इधर जब से केरल में साम्यवादी मन्त्रिमण्डल कायम हुआ था, तब से केरल पर बहुत कुछ प्रकाशित हुआ। इस पुस्तिका में हिन्दी संसार के सामने पहले पहले एक कट्टर साम्यवादी के वक्तव्य आए हैं। थोड़े में घटनाओं का साम्यवादी संस्करण यह है—"श्री ढेबर ने केरल प्रदेश कांग्रेस की बीभत्स हालत को खोलकर रखा। अपने पत्र में उन्होंने लिखा—"वहां हर तीसरे साल मन्त्रिमण्डल को गिराना और उसकी जगह नया मन्त्रिमण्डल खड़ा करना कांग्रेसियों का धन्धा बन गया है। वहां एक भी ऐसा कांग्रेसी नेता खोजे नहीं मिलेगा जिसने कभी-न-कभी मन्त्रिमण्डलों को गिराने के काम में हाथ न बटाया हो। उनके इस विनाशात्मक रवैये ने कम्युनिस्टों को पूरा लाभ पहुंचाया।" (हिन्दू, ३१ मार्च, १९५८)

आगे लेखक लिखते हैं—"१९४८ से त्रावनकोर राज्य की विधानसभा के लिए पहले आम चुनाव हुए थे। उन दिनों कांग्रेस की प्रतिष्ठा आकाश को छूती थी। कांग्रेस ने पूर्ण विजय प्राप्त की। सभी सीटों पर उसने कब्जा कर लिया—केवल एक को छोड़कर, और यह स्वतन्त्र सदस्य भी बाद में कांग्रेस में शामिल हो गया।

"श्री पत्तम थानु पिल्ले त्रावनकोर राज्य के पहले कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के मुख्यमंत्री बने। उस समय मन्त्रिमण्डल में केवल तीन मूर्तियां थीं—श्री पत्तम थानु पिल्ले के अलावा श्री टी० केशवन और श्री टी० एम० वेरघीज। ये दोनों भी कांग्रेस के पुराने तपे हुए नेता थे, जो अब सार्वजनिक जीवन से अवकाश ले चुके हैं।

"मार्च, १९४८ में यह मन्त्रिमण्डल बना। अगले ही महीने, अप्रैल में, त्रावनकोर महाराज की सवारी निकली। यह एक धार्मिक अनुष्ठान था। पत्तम थानु पिल्ले—प्रजा समाजवादी पार्टी के भावी कर्णधार—इस सवारी में सबसे आगे थे। नंगे बदन, केवल अपना झाड़ू लपेटे और हाथ में नंगी तलवार लिए हुए।

"वेरघीज ईसाई थे। वह इस अनुष्ठान में शामिल नहीं हुए। श्री केशवन ने भी इनकार कर दिया। कहा—"मैं जनता का सेवक हूं, महाराज का नहीं।"

लेखक कहते हैं पत्तम थानु पिल्ले का मन्त्रिमण्डल छः महीने बाद ही सितम्बर १९४८ में धूल चाटता नजर आने लगा।

"भूमि-सुधारों के लिए सरकार ने एक कमेटी बनाई थी। श्री केशवन इसके अध्यक्ष थे। इस कमेटी ने जिन सुधारों की सिफारिश की, वे बहुत मामूली थे। लेकिन केरल में कथोलिक प्रतिक्रिया के गढ़ पादरियों ने बागानों के ईसाई मालिकों और उनके विदेशी अधिपतियों को यह भी सहन नहीं हुआ। मजा यह कि उस समय थानु पिल्ले के विरुद्ध हस्ताक्षर बटोरने के अभियान के सर्वप्रथम नेता थे ताकु पिल्ले जो अभी हाल ही में थानु पिल्ले के नेतृत्व में प्रजा समाजवादी पार्टी के सदस्य बन गए हैं। वह करीब एक साल तक काम करता रहा। उसके लड़खड़ाने पर फिर तीसरा कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना। इसी बीच १९५१-५२ में आम चुनाव आ गए। १९४८-४९ में कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़कर एक नई भारतीय समाजवादी पार्टी की स्थापना की। पत्तम थानु पिल्ले जो १९४८ में अपने पतन के बाद से किसी ऐसे अवसर की ताक में थे जिसके सहारे वह

फिर सिर उठा सकें, समाजवादी पार्टी में आ मिले और उसके झण्डे के नीचे १९५१-५२ के आम चुनावो में हिस्सा लिया।

"इसके अलावा, १९५१-५२ के आम चुनावो से पहले, आचार्य कृपलानी ने भी काग्रेस से अलग होकर एक नई पार्टी--किसान-मजदूर प्रजा पार्टी--कायम कर ली थी। केरल के पुराने गाधीवादी नेता श्री के० केलपन और श्री के० ए० दामोदर मेनन इसी किसान-मजदूर पार्टी प्रजा में शामिल हो गए और उसी के झण्डे के नीचे उन्होने १९५१-५२ में चुनाव लडे।

"चुनाव लडे गए। नतीजो ने खोलकर रख दिया कि वही काग्रेस जो १९४८ में सर्वोच्च स्थान पर थी, जिसकी सत्ता को कोई चुनौती नही दे सकता था, चार साल के भीतर ही क्या से-क्या हो गई। १०८ सदस्यो की विधानसभा में (एक नामजद सदस्य भी इनमें शामिल है) काग्रेस केवल ४४ सीटें जीत सकी। पूर्ण बहुमत से वह अल्पमत मे आ गई।

"बावजूद इसके कि काग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त नही हुआ था, वहा के राज्यपाल ने श्री ए० जे० जौन को--उस समय काग्रेसी विधान सभाइयो के वही नेता थे--मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। यह इसलिए कि काग्रेस का दल सबसे बडा दल था। लेकिन इसी तरह की स्थिति दो साल बाद जब आध्र राज्य में पैदा हुई तो इस 'पद्धति' को तिलाजलि दे दी गई। क्यो ? इसलिए कि इस बार सबसे बडा दल काग्रेसियो का नही, बल्कि कम्युनिस्टो का था।

"पत्तम थानु पिल्लै का यह मन्त्रिमण्डल भी ग्यारह महीने से ज्यादा नही टिक सका। बागानो के ईसाई मालिको का--जो अपने आपको केरल का भाग्य-विधाता समझते थे--सिहासन डोल उठा। उन्होने तय किया पत्तम मन्त्रिमण्डल को खत्म करना होगा।

"पनपपल्ली गोविन्द मेनन के मन्त्रिमण्डल के पतन के बाद इस बात की पूरी गुजाइश थी कि वहा वामपक्षियो का मन्त्रिमण्डल बन सकता, लेकिन राजप्रमुख ने इसके लिए कोई मौका नही दिया और राज्य राष्ट्रपति के शासन में चला गया। १९४७ में केरल में काग्रेस का पहला मन्त्रिमण्डल बना था। १९५७ में राष्ट्रपति के शासन के साथ उस पर यवनिका पतन हो गया।"

इसके बाद लेखक यह दिखलाते है कि किस प्रकार साम्यवादी मन्त्रिमण्डल बना और उसके कारण केरल आगे बढ रहा था। लेखक ने इस पुस्तिका में जो तथ्य दिए है, उनमें एक बहुत ही आश्चर्यजनक है कि मलयालम में करीब २७ दैनिक पत्र है जिनमें तीन ही साम्यवादी दल के है। लेखक का कहना है कि बाकी २४ पत्र बराबर साम्यवादी सरकार के विरुद्ध प्रचार करते रहते है।

लेखक सब कुछ कहने के बाद कहते है कि "इससे साफ है कि सच्ची राष्ट्रीयता में और कम्युनिज्म में वैर नही, बल्कि साम्य है। दोनो सहयोग और सहकारिता के--पार्टियो के सह-अस्तित्व के--पथ पर आगे बढकर देश को आगे बढा सकते है। आखिर कम्युनिस्ट कही आसमान से नही टपके है, वे इसी देश की जनता के बीच से पैदा हुए है। यह कहना भी गलत न होगा कि खुद काग्रेस के गर्भ से उन्होने जन्म लिया है।"

—मन्मथनाथ गुप्त

कर्मनाशा की हार लेखक--शिवप्रसाद सिह, प्रकाशक--भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, पृष्ठ सख्या--१८८, मूल्य--३) रु०।

प्रस्तुत कहानी सग्रह के लेखक श्री शिवप्रसाद सिह हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार है। उनकी विशेषता है गाव के निम्न मध्यम वर्ग के जीवन का कुशल चित्रण करना। आज हिन्दी में शहरी और ग्रामीण कथाकारो के ये दो दल बन गये है। हमारी दृष्टि से यह विभाजन कृत्रिम है, कम से कम यह एक दूसरे के विरोधी नही है बल्कि पूरक है। देश में जैसे-जैसे जागृति बढेगी, पिछडा वर्ग आगे बढेगा तो उन्ही में से नये कलाकार अपने आसपास के जीवन का चित्रण करेंगे। 'कर्मनाशा की हार' में अधिकाश कहानिया ग्रामीण जीवन का ही चित्रण करती है। लेकिन नागरिक जीवन को लेखक ने बिलकुल भुलाया नही है। ऐसी भी कहानी है जिसका सम्बन्ध न ग्रामीण जीवन से है न शहरी जीवन से जैसे 'कहानियो की कहानी'। वह अपने अनूठे शिल्प, कौतुक के कारण पठनीय है। सग्रह की सारी कहानिया अप्रतिम हो ऐसी बात नही, कुछ तो बहुत ही साधारण है लेकिन फिर भी उनमें ताजगी है। इस सग्रह की एक कहानी तो सचमुच अप्रतिम है और वह है 'बिन्दा महाराज'। वह एक हिजडे की कहानी है। और विषय की नवीनता, भाषा की स्पष्टता तथा मानव जीवन के गहन अन्तर में छिपी हुई वेदना के कारण वह कहानी एक बार पढ लेने पर हमेशा हृदय और मस्तिष्क दोनो को कचोटती रहती है। इसी तरह और भी कहानिया है जो अपने चरित्र चित्रण और सहानुभूति के कारण प्रभाव डालती है जैसे 'माटी की औलाद', 'पाप जीवी' और 'कर्मनाशा की हार' आदि-आदि। 'कर्मनाशा की हार' एक श्रेष्ठ कहानी है और उसका अन्त ईसा की उस प्रसिद्ध कहानी की याद दिला देता है जिसमे एक व्यभिचारिणी स्त्री को जनता पत्थरो से मार डालना चाहती है और तब ईसा कहते है, पहला पत्थर इस नारी को वह मारे जिसने अपने जीवन में कोई पाप न किया हो। कुल मिला कर यह कहानी मर्म को छूती है। चित्रमयता, सम्वेदन, भाषा की लुनाई मोहक है। यद्यपि कही कहीं वर्णन का मोह प्रभाव को कम कर देता है फिर भी तीव्र व्यग्य की कमी नही है। यदि सकेत कुछ अधिक सूक्ष्म हो पाते तो इन कहानियो का प्रभाव अपरिसीम हो उठता।

अपराजिता लेखक--भगवती शरण सिह, प्रकाशक--भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, पृष्ठ सख्या--१७६, मूल्य--२।) रु०।

प्रस्तुत सग्रह की कहानियो को तीन भागो मे बाटा जा सकता है एक ग्रामीण जीवन की कहानिया जैसे 'जीवन-साथी', दूसरे नागरिक कहानिया जैसे 'अपराजिता' आदि, और तीसरे भाव-प्रधान कहानिया जैसे 'कला की सृष्टि' आदि। लेखक में कहानी कहने की क्षमता है लेकिन उसकी भाषा बडी अटपटी और उलझी हुई लगती है और इसीलिए इन कहानियो को पढना बहुत सरल नही है तथा पाठक उनके रस में तन्मय नही होता बल्कि जैसे छूट भागने को आतुर हो उठता है। यही इन कहानियो की असफलता है। लेकिन जहा कही लेखक भाषा के इस जाल से बच पाया है वहा कहानी बहुत मार्मिक बन पाई है जैसे 'दो बतखें'। यह सचमुच मन को कचोटने वाले अन-भिव्यक्त प्यार की कहानी है और अन्त तक पहुचते-पहुचते लेखक के साथ-साथ पाठक के आसू झरने लगते है। इसी तरह 'जीवन-साथी' ग्रामीण वातावरण की सृष्टि करने में पूर्ण सफल हुई है। 'अपराजिता' आदर्शपूर्ण पर एक सीधी, सरल कथा है और अपनी सरलता के कारण

प्रभावशाली भी है । 'कलाकार' की भाषा सुघड है और इसीलिए वह सुन्दर बनी है। उसको पढकर सचमुच ही मन तृप्त हो उठता है। भावना प्रधान कहानियों में 'कला की सृष्टि' भी सुन्दर है और सहानुभूति से पूर्ण है। हमारा विश्वास है कि प्रेजेण्टेशन की ओर लेखक अधिक ध्यान दें तो उनकी कहानियां निस्सन्देह ही प्रभावशाली हो सकती हैं ।

सुबह के घंटे (पांच अंकों का नाटक) लेखक—श्री नरेश मेहता, प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन गृह, खुसरू बाग रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या—११२, मूल्य—३) रु० ।

प्रस्तुत नाटक अपनी कई विशेषताओं के कारण मौलिक नाटक है और सम्भवतः यह पहला नाटक है जिसमें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को सम्पूर्ण रूप से मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । लेखक की मान्यताओं से मतभेद हो सकता है लेकिन मौलिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता । मौलिकता इस दृष्टि से भी है कि लेखक ने किसी एक वाद या मत को स्वीकार नहीं किया है । नाटक का नायक अन्त में अपनी पत्नी से कहता है—"गौतम के लिए जीवन दुःख था, मार्क्स के लिए वर्ग क्रांति और गांधी के लिए उपवास । यह सब आंशिक सत्य हैं। गांधीवादियों के अपने सांचे हैं तो कम्युनिस्टों के भी अपने सांचे हैं। उन्हें अपने ही अनुरूप लोग चाहियें, वे लोगों के अनुरूप नहीं होना चाहते । मार्क्स ने इतिहास के आधार पर नीति बनाई थी, लेकिन गांधी नीति के माध्यम से इतिहास बनाते थे ।" आगे चल कर वह फिर कहता है—"हम कम्युनिस्ट भारतीय नहीं हैं। यहां की परम्परा और संस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टि हमने नहीं दी । इस अर्थ में गांधी भारतीय राजनीति के गुरु हैं। साहित्यकार दत्तात्रेय होता है। वह कई गुरुओं का एक साथ शिष्य हो सकता है। लेकिन राजनीति असहिष्णुओं का दल होता है ।"

इस नाटक का यही सन्देश है और इसी सन्देश को प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने कथा का विकास किया है और इस विकास को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने रेडियो की फ्लेश बैक पद्धति को अपनाया है। नाटक का नायक एमन (जेल में) फांसी की कोठरी में अपने अन्तिम क्षणों में पिछले सारे जीवन को याद करता है और उसी के साथ भारतीय स्वतन्त्रता की परतें खुलती चली जाती हैं । आज रंगमंच पर इसको प्रस्तुत करना कठिन है लेकिन कल ऐसा नहीं होगा । बल्कि हमारा विश्वास है कि कल ऐसा होगा और फिर यह नाटक बड़ी सफलतापूर्वक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकेगा । नाटक में केवल राजनीति ही हो ऐसी बात नहीं, समाज दर्शन भी है और व्यक्ति के प्रेम की कहानी भी। इसलिए यह केवल तर्क शास्त्र ही नहीं है बल्कि इसमें सहानुभूति और प्रेम का पवित्र झरना दिखाई देता है । नाटक पढ़ने में बहुत सुन्दर लगता है, सोचने पर विवश करता है, हृदय को कचोटता है और इसी लिए हमारा विश्वास है कि कुछ संशोधनों के साथ तथा कलेवर को कुछ कम कर देने के बाद, जो कि बड़ी आसानी से हो सकता है, यह नाटक एक दिन बड़ी सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकेगा । भाषा की दृष्टि से इसमें कुछ नये प्रयोग किए गए हैं लेकिन वह कोई बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं ।

जयजयवन्ती (मनोवैज्ञानिक उपन्यास) लेखक—रमेश वर्मा, प्रकाशक—यंगमैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—२३२, मूल्य—६) रु० ।

प्रस्तुत उपन्यास साधारण पाठक की दृष्टि से एक रहस्यमय और जासूसी उपन्यास हो कर रह जाता है जिसमें इस धरती का कुछ नहीं है बल्कि सब कुछ अलौकिक है । लेकिन लेखक का दावा कुछ और है। उसने एक ही व्यक्ति को लेकर उसके विभिन्न रूपों को अलग-अलग व्यक्तित्व देकर प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का नायक 'विकल' कई व्यक्तित्वों का समन्वित रूप है । अपने स्वाभाविक रूप में निरन्तर अप्राप्य की कामना में रत रहने के कारण वह विकल है। असल उसके व्यक्तित्व का ऐसा रूप है जो पुष्ट है। राजीव की आत्मा उसके व्यक्तित्व का तीसरा रूप है जो उसकी विफल वासनाओं का रूप है। और जैसा कि भूमिका लेखक श्री भिक्षु ने लिखा है, उपन्यास के दूसरे पात्र भी उसी के मोह, कर्त्तव्य, पुण्य और सम्बल के प्रतीक हैं। उन्हीं के संघर्ष की कहानी इस उपन्यास में कही गई है तथा सत्य और झूठ के दो मार्गों का संग्राम दिखाया गया है। विकल के मित्र, नातेदार, सभी उसे सत्य के मार्ग से ले जाना चाहते हैं लेकिन राजीव की प्रेतात्मा उसे झूठे मार्ग से ले जाने में सफल हो जाती है । इसलिए सब कहीं निराशा, असफलता और मृत्यु है । उपन्यास में यही कुछ है लेकिन यह सब द्रविड़ प्राणायाम जैसा लगता है । लेखक में क्षमता है और यदि वह मनोवैज्ञानिक कथा की सृष्टि करना चाहते हैं तो उन्हें अलौकिक का सहारा न लेकर लौकिक की पृष्ठभूमि पर ही उसका अध्ययन प्रस्तुत करना चाहिए । उसके लिए क्षेत्र का अभाव नहीं है ।

—विष्णु प्रभाकर

क्रेमलिन की झांकियां— (पृष्ठ ३७ का शेषांश)

वहां इकट्ठी अपार भीड़ ने सम्मान के साथ खड़े हो कर खिलाड़ियों का स्वागत तथा राष्ट्रीय संगीतों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। मास्को स्तालिन आटोमोबाइल कारखाने के विख्यात टारपीडो टीम के साथ ईस्ट बंगाल का मैच हुआ ।

रूस की ओर से स्वागत किए जाने के बाद ईस्ट बंगाल के कप्तान श्री गुह ने भाषण दिया। इसके बाद खेल शुरू हुआ। कुल मिला कर डेढ घण्टा खेल हुआ, इसमें दो बार पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के लिए विश्राम हुआ। इस प्रकार खेल एक ही घण्टा रहा। खेल बहुत ही तगड़ा रहा और उसका हर मिनट उत्तेजनाओं से पूर्ण रहा। खेल की तकनीकों से अच्छी तरह परिचित होने पर भी हमारे खिलाड़ी रूस के तेज दौड़ने वाले और विराट आकृति के खिलाड़ियों के साथ खेलते हुए हर समय हांफते ही रहे। अन्त

(शेष पृष्ठ ४७ पर)



सम्पादकीय

आइसनहावर-ख्रुश्चेव मिलन

संसार भर में यह समाचार अत्यन्त प्रसन्नता और सन्तोष के साथ सुना गया है कि रूस के प्रधानमंत्री श्री निकिता ख्रुश्चेव अमेरिकन राष्ट्रपति के निमंत्रण पर बहुत शीघ्र अमेरिका जा रहे हैं और उसके बाद उनके निमन्त्रण पर राष्ट्रपति आइसनहावर रूस यात्रा करेंगे। कुछ अमेरिकन विचारकों की राय से पिछले १० बरसों का यह सब से अधिक महत्वपूर्ण समाचार है। अमेरिका और रूस आज संसार के सब से अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली देश हैं। इन दोनों देशों में परस्पर जो मतभेद है, वह भी सर्वविदित और स्पष्ट है। दोनों देश संसार की दोनों प्रमुख धड़ेबन्दियों के नेता हैं। पिछले १० बरसों में अमेरिका और रूस का मतभेद कितनी ही बार इतना भयंकर रूप धारण कर चुका है कि तीसरे विश्वयुद्ध की सम्भावनाएं मानव जाति को कंपा देती रही हैं। पिछले कुछ बरसों में यह अत्यन्त दुष्कर कार्य प्रतीत हो रहा था कि अमेरिका और रूस के पारस्परिक मतभेदों का कोई सन्तोषप्रद हल निकाला जा सके। इस कार्य के लिए सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की थी कि उक्त दोनों शिखर देशों के ये दोनों नेता एक साथ बैठ कर संसार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करें। पर वह सम्भव तक प्रतीत नहीं होता था। रूसी प्रधान मंत्री इस बात के लिये तैयार थे, पर पश्चिमी शक्तियों के तत्कालीन एक महत्वपूर्ण नेता श्री डलेस इस सम्मेलन को अवांछनीय मानते थे। अब अमेरिकन उपराष्ट्रपति श्री निक्सन, ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री मैकमिलन तथा ६ अमेरिकन गवर्नरों की सिफारिश से संसार के इन दोनों सर्वोच्च शिखर नेताओं का सम्मिलन सम्भव हो गया है—यह मानव जाति के लिए निस्सन्देह हर्ष का विषय है।

भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू रूस और अमेरिका के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात कहते रहे हैं। वह यह कि उक्त दोनों देशों को निकट से देख कर उनकी यह धारणा बनी है कि दोनों देशों में ऊपरी तौर से कितना ही मतभेद दिखाई देने पर भी दोनों देशों की जनता, उनकी रुचि, उनका जीवन और जीवन के प्रति उनका रवैया—लगभग एक ही प्रकार का है। दोनों देशों में इतना भेद दिखाई देते हुए भी वास्तव में वे एक दूसरे के यथेष्ट निकट हैं। हाल ही में अमेरिका के उपराष्ट्रपति निक्सन ने रूस यात्रा में कई बार इस तथ्य की घोषणा की है कि अमेरिकन जनता भी उसी प्रकार शान्ति चाहती है, जिस प्रकार रूसी जनता। दोनों देश शान्ति के इच्छुक हैं और युद्ध के विरोधी हैं। दोनों देश सह-अस्तित्व की भावना को स्वीकार करते हैं। इससे यह आशा करनी चाहिए कि अमेरिकन राष्ट्रपति तथा रूसी प्रधानमंत्री एक दूसरे से विचार-विमर्श करते हुए कुछ ऐसे उपाय जरूर ढूंढ निकालेंगे जिनसे विश्व शान्ति सुदीर्घ काल के लिए निश्चित हो जाए।

यह एक सचाई है कि बीसवीं सदी में सम्पूर्ण मानव जाति एक बहुत बड़ी क्रान्ति में से गुजरी है। इसी सदी में संसार के अधिकांश देश मानव-समानता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दे पाए हैं। परिणाम यह हुआ है कि पुराने ढंग का पूंजीवाद आज कहीं भी जीवित नहीं है। संसार का कोई सभ्य देश आज किसी भी जमात को विशेष अधिकार प्राप्त जमात नहीं मानता। संसार भर के सभी देशों में, चाहे वे किसी भी धड़े में क्यों न हों, आज मजदूर और किसान का उतना ही महत्व है, जितना किसी अन्य जमात का। इन परिस्थितियों में संसार की दोनों प्रमुख जीवन धाराओं, अमेरिकन कैपिटलिज्म तथा रूसी, कम्यूनिज्म में परस्पर कोई ऐसा समझौता हो जाना पूरी तरह सम्भव और वांछनीय है, जिससे दोनों धाराओं में एक दूसरे के प्रति भय और सन्देह की भावना समाप्त हो जाए। हमें विश्वास है कि विश्व के ये दोनों महान नेता इस तरह के कोई उपाय अवश्य ढूंढ निकालेंगे।

जहां तक श्री आइसनहावर और श्री ख्रुश्चेव के व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, ये दोनों मानव जाति के अत्यन्त महान् व्यक्ति तो हैं ही, दोनों ही विश्व शान्ति के लिए अत्यन्त इच्छुक हैं, इस सम्बन्ध में दो राय नहीं हो सकतीं। हमें आशा है कि आज की मानव जाति के ये दोनों महान नेता अपने भारी उत्तरदायित्व को पूरी तरह समझेंगे और उसे खूबी के साथ निबाहेंगे। संसार के ढाई अरब मानव उत्सुकता से इस मिलन के परिणाम की प्रतीक्षा करेंगे, क्योंकि उन सब का भविष्य उसके साथ बंधा हुआ है।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥

—भर्तृहरि

परोपकार के लिए वृक्ष फलते हैं, परोपकार के लिए नदियां बहती हैं, परोपकार के लिए गौएं दूध देती हैं, यह मानव शरीर भी परोपकार के लिए ही है।

हमारे 'राष्ट्रीय गीत' की पृष्ठभूमि---(पृष्ठ ३६ का शेषांश)

बढ़ गई है । इसमें अतीत के युगों के जयघोषों के साथ-साथ उन महा पराक्रमी देश भक्तों के स्वरों की प्रतिध्वनि गूंजती है जो शताब्दियों पूर्व अतीत के गर्भ में खो गए ।

दूसरी ओर रवि बाबू का 'उषा गान' एक ऐसे राष्ट्र की कहानी है जो नवीन शक्ति की सर्वथा नवीन किरणों से अनुप्राणित होकर अंगड़ाइयां लेकर जाग उठा है और जिसका पूर्ण विश्वास, विश्वबन्धुत्व की महान् भावना में निहित है । इसमें संघर्ष की गूंज नहीं वरन पूर्ण विश्वास झलकता है । यह गीत राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है--ऐसी राष्ट्रीय भावना से जिसमें समस्त विश्व के प्रति स्नेह, सौहार्द और बन्धुत्व की साध मुस्कराती हुई दिखाई देती है और यही मुस्कान इस गीत को उषा गीत के साथ साथ 'मानव का गीत' समझे जाने पर विवश कर देती है । हमारा यह राष्ट्रीय गीत वास्तव में अद्वितीय है । युद्ध के कगारों पर खड़ी संघर्षरत जनता के लिए आज के अशान्त वातावरण में यह शान्ति का सन्देश देता है ।

धार्मिक आस्थाओं और धारणाओं के अनुसार यह अमर सारथी का अभिनन्दन गीत है । यह गीत एक ऐसा पवित्र दर्पण है जो राष्ट्रीय और विश्वबन्धुत्व की भावनाओं का सम्मिलित स्वरूप प्रदर्शित करता है ।

इस गीत की प्रथम पंक्ति भारत का भौगोलिक वर्णन ही नहीं करती वरन् समस्त देश की आत्मा का चित्रण करती है । वह देश की भौगोलिक शक्ति का दिग्दर्शन ही नहीं करती वरन् देश के उस विस्तृत आंचल का भी प्रदर्शन करती है जिसमें अनेक विभिन्न स्वरूप दीख पड़ते हैं । इस गीत का वास्तविक आधार और सम्मिलित भावनाएं यह सन्देश देती हैं कि विभिन्न प्रान्तों में बटा हुआ भारत एक है, और यह सन्देश राजनैतिक ही नहीं वरन् इस विश्वास का प्रतीक भी है कि इस देश का प्रत्येक मानव एक ही भगवान का पुजारी है । देश के कोटि कोटि मानव एक ही पिता की सन्तान हैं । इस गीत के आध्यात्मिक और सार्वभौमिक दृष्टिकोण ने ही इसे अन्य राष्ट्रीय गीतों में सर्वश्रेष्ठ बना दिया है ।

इस गीत में भारत की महानता और उसकी सार्वभौमिक बन्धुत्व की भावना निहित है । संघर्षों की वेदना पूर्ण अन्धकारमयी रात्रि के लिए यह नए सवेरे का सन्देशवाहक है और अन्त में इसकी मधुरिमा संसार के सम्राटों के सम्राट के चरण छूने लगती है जो हम सब पर और सम्पूर्ण विश्व पर राज्य करता है । इसके शब्द और स्वर एक ऐसे राष्ट्र की भावनाओं को विस्तृत करते हैं जो विश्व प्रेम, विश्वमैत्री और मानवता का सन्देश विश्व के कोने-कोने में पहुंचा देने का इच्छुक और प्रयत्नशील है ।

और यही महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन का आदर्श और लक्ष्य था ।

अनुवादक--प्रकाश नगाइच


थोडा-सा* टिनोपाल
सफ़ेद कपडो को सबसे —अधिक सफ़ेद— बनाता है
TINOPAL BVN
*'टिनोपाल' जे आर गायगी, एस ए, बाल, स्विट्जरलैंड का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है।
निर्माता सुहृद गायगी प्राइवेट लिमिटेड, वडो वाडी, बडौदा—एकमात्र वितरक सुहृद गायगी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, पो आ बॉक्स ९६५, बम्बई १

क्रेमलिन की झांकियां (पृष्ठ ८७ का शेषांश)

तक दोनों तरफ से तीन-तीन गोल हुए और इस प्रकार अन्तिम मीमांसा नहीं हो सकी। फिर भी दोनों तरफ से बहुत जोर का खेल दिखाया गया। एक पक्ष ने गोल किया कि तालियों की गड़गड़ाहट मच जाती थी। दक्षिण भारत के अध्यापक बुखारेस्ट से लौटते हुए पधारे थे। वे बहुत ही जोश में थे। ज्योंही भारत ने पहला गोल चुका दिया त्योंही उन्होंने खुशी के मारे अपने शरीर का कोट खोल कर आसमान की तरफ फेंका। दर्शकों ने उन्हें कोट लौटा दिया, इस पर फिर उन्होंने कोट को दूसरी तरफ फेंक दिया। इस प्रकार देर तक उनके कोट का तमाशा चलता रहा। पर रूसी दर्शक निष्पक्ष बने रहे। जिस तरफ भी खेल अच्छा होता था वे फौरन उसी तरफ को प्रोत्साहन देते थे और उसकी पीठ ठोकते। बोरिस ने सलाह दी कि खेल खत्म होने के कुछ पहले ही निकल पड़ना चाहिए। इस बीच में बहुतों ने हम लोगों के शरीर के रंग की तरफ ध्यान दिया था। बहुतों ने यह समझ लिया था कि हम भारतीय हैं। बहुतों ने हाथ बढ़ा कर हमसे हाथ मिलाए। कुछ उत्साही लड़के रेलिंग पार करके इधर कूद गए और उन्होंने हमसे हाथ मिलाए। इससे कुछ गड़बड़ी पैदा हो गई। कहीं यह गड़बड़ी व्यापक न हो जाए, इसलिए हम लोग जल्दी से निकल पड़े।

यदि बोरिस की सलाह मान कर हम न निकलते और भीड़ के साथ निकलते तो पता नहीं कब होटल में लौटने की बारी आती। आज बर्मा के राजदूत श्री मंग अहन ने हम लोगों के सम्मान में यहां के विख्यात होटल सोवियतस्काया में एक सन्ध्याकालीन भोज का आयोजन किया था। श्री अहन बड़े विद्वान और बन्धुवत्सल तथा निरहंकार व्यक्ति थे। उनके साथ बैठ कर बहुत सी समस्याओं के सम्बन्ध में दिल खोल कर आलोचना करने में बड़ा आनन्द आया और हम लोगों के बहुत से सन्देह दूर हो गए। जब भी किसी प्रकार की कोई जरूरत होती थी तो वे हमारी सहायता करते थे और हम से मिलने आते थे। वे हमारे पड़ोसी राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं। इसी नाते नहीं, बल्कि वे जब हम लोगों से मिलते थे तो परम मित्र की तरह घर के एक आदमी की तरह मिलते थे। श्री मंग अपने अन्य गुणों के अलावा रूसी भाषा भी अच्छी तरह जानते थे और वे मेट्रो, ओम्निबस में ही नहीं बल्कि जहां तक हो सके पैदल ही घूमते रहते थे, इसीलिए उन्हें यहां की जनता के विषय में सही बातों को जानने का अच्छा मौका था और उसका उन्होंने खूब उपयोग किया था।

हम लोग जो कुछ देखते थे, वह बहुत कुछ ऊपरी होता था, हम गहराई तक नहीं पहुंच पाते थे, पर श्री मंग के साथ बातचीत करने पर हमें सारी बातों का सही ज्ञान हो जाता था। इतने ज्ञानी होने के साथ ही साथ उनमें धैर्य और सहानुभूति भी हद दर्जे की थी। इस प्रकार के व्यक्तियों से विभिन्न राष्ट्रों में मतभेद की सीमाएं फौरन मिट जाती हैं। वे सही तौर पर कहा करते थे कि भारत और बर्मा की तरह तटस्थ देशों की जिम्मेवारी बहुत अधिक है। उन्हें यह विश्वास था कि एक न एक दिन दो लड़ने वाले पक्षों में पुल का काम करने का भार उन्हीं देशों पर पड़ेगा। उनका कहना था कि हम लोग जो कुछ देखते हैं, उसे अच्छी तरह समझने के लिए धैर्य से काम लेना पड़ेगा। अधैर्य और भावुकता दोनों सहज बुद्धि और सम्यक दर्शन के मार्ग में रोड़े हैं और उनका त्याग किए बिना सत्य का परिचय नहीं मिल सकता। यदि अधैर्य और भावुकता से काम लिया गया जैसा कि अक्सर लिया जाता है तो गलती ही होगी और वह गलती व्यक्ति और राष्ट्र दोनों को गलत रास्ते पर ले जा सकती है।

संसार का अंत

सूखे पत्तों पर पेड़ से फल जो गिरा तो खरगोश सहम गया "प्रलय आ रहा है" उस का दिल धड़कने लगा, "जान बचानी है तो यहाँ से भागो।"

उसे अंधा धुंध भागते देख कर, खेतों में चरते हुये एक हिरन ने उसे पुकारा, "भाई क्या मुसीबत आ पड़ी ?"

"जानते नहीं प्रलय आ रहा है।" खरगोश सांस संभालते हुये बोला, "जान बचानी है तो मेरे पीछे आओ।"

हिरन उसके पीछे दौड़ने लगा। और देखते देखते इन के साथ एक जंगली भैंसा, बैल, गेंडा, चीता, हाथी और शेर भी आ मिले। यूँ समझिये कि जंगल का जंगल एक जुलूस में भागा जा रहा था।

पागलों की तरह वे कोसों भागते गये। और जब थकने लगे तो हाथी को आश्चर्य होने लगा कि प्रलय का और कोई चिन्ह क्यों नजर नहीं आ रहा। उस ने चीते से पूछा "क्यों भाई चीते, तुम्हें विश्वास है कि प्रलय आ रहा है ?"

चीता रुक गया, "हाँ गैंडे ने तो ऐसा ही कहा था।"

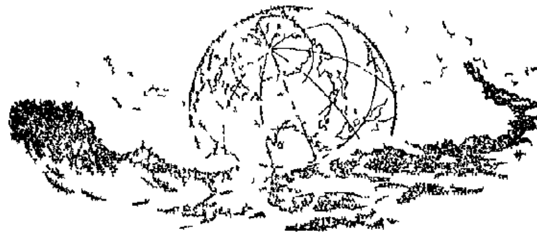
"मुझे क्या पता।" गेंडा बोला, "मुझे तो जंगली बैल ने बताया था।"

जंगली बैल खीज कर बोला, "मुझे दोष न दो। जो भैंसे ने कहा वही मैं ने दोहरा दिया।"

भैंसे ने हिरन का नाम लिया। हिरन मुंह ही मुंह में बोला, "खरगोश ने इस कहानी की शुरूआत की थी।"

हाथी ने खरगोश को पुकारा, "हाँ तो श्रीमान खरगोश जी आप को किस ने प्रलय की सूचना दी ?"

"मुझे कौन सूचना देगा।" खरगोश ने तुरत जवाब दिया "धमाका होते ही मैं जान गया था। मैं ने सोचा, निश्चय प्रलय आ रहा है"



"तो यह तुम्हारी सोच थी" हाथी खिलखिला कर हंस पड़ा। अन्य जानवर भी हंसते हुये अपने घरों को चल दिये।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिन बातों की आसानी से जांच परख हो सके उन के बारे में बाजारी चर्चों पर कान मत धरिये। 'डालडा' ही को लीजिये। इस के सम्बन्धित तथ्य क्या है ? शुद्ध वनस्पति तेलों से सरकारी आदेशानुसार बनाया हुआ यह पाक माध्यम हर प्रकार के पकाने के काम आता है।

अधिक पोषण के लिए इस के हर औंस में विटामिन 'ए' के ७०० और विटामिन 'डी' के ५६ अंतरराष्ट्रीय यूनिट्स मिलाये जाते हैं। लाखों गृहणियाँ अपना खाना डालडा वनस्पति में पकाती हैं क्योंकि वे जानती हैं कि यह केवल पाक माध्यम ही नहीं—पौष्टिक भी है।

DL 470 \ 52 HI

हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड, बम्बई

	मूल्य	डाक खर्च
	रु० नए पैसे	रु० नए पैसे
रूसी-हिन्दी शब्दकोश (लेखक—वीर राजेन्द्र ऋषि)	३५ ००	
भारत के पक्षी (लेखक—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह)	१२ ५०	
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड १)—१८८४-१८९६		
कपड़े की जिल्द	५ ५०	० ८५
कागज की जिल्द	३ ००	० ५०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२-१९५६)	३ ५०	० ८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४९-५३)	५ ००	१ ३५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण)	५ ००	१ ३०
भारतीय कविता १९५३	५.००	१ ७५
भारत १९५८	३ ५०	० ९५
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष	३ ००	० ४५
भारत के बौद्ध तीर्थ	२ ००	० ३०
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष	२ ००	० २५
दसवाँ वर्ष	१ ५०	० २५
अशोक के धर्मलेख	१ ००	० २५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

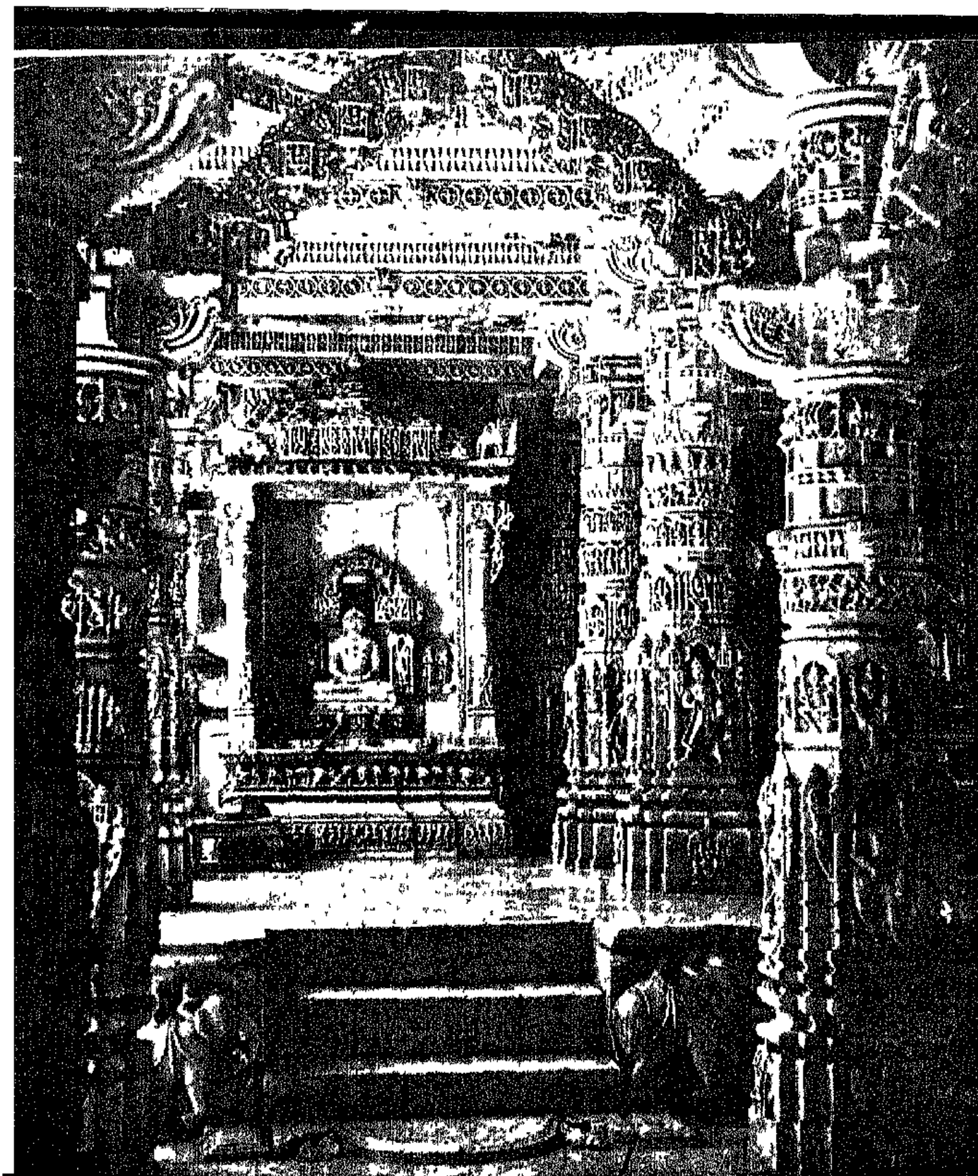
२५ रुपए या इससे अधिक की पुस्तकें मंगाने पर डाक खर्च नहीं लिया जाता है
सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं या निम्न पते से प्राप्य



पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८



आबू स्थित विमल वसाही मन्दिर का भीतरी दृश्य

Edited and published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad.

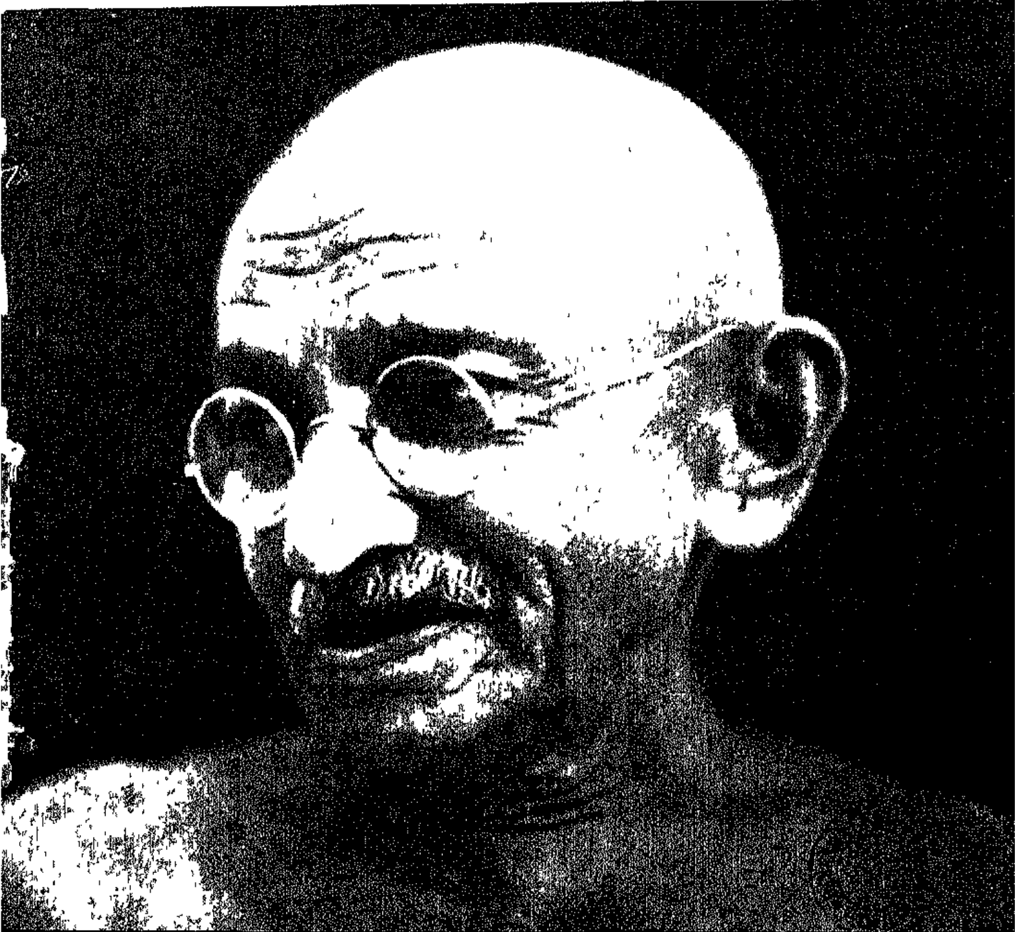
Regd No D—510

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

५० नये पैसे

अक्तूबर १९५९



विदेशों में 'आजकल' इन पतों पर मिल सकता है :

फ़ीजी—देसाई बुक डिपो, पोस्ट बॉक्स नं० १६०, सूवा

मॉरिशस—बख्तावर सिंह, १४ बिवालेनविल स्ट्रीट, पोर्ट लुई

सिंगापुर—एच० के० लक्ष्मी प्रसाद, पोस्ट बॉक्स नं० १०२२, ८७ मार्केट स्ट्रीट, सिंगापुर

सूरीनाम—जे० बी० कन्धाई, प्रीट डेवार स्ट्रीट १६ ए, पोस्ट बॉक्स न० १५७, परामारीबो



वर्ष १५ अंक ६ पूर्णांक १८४

अक्तूबर १९५९

(९ आश्विन से ९ कार्तिक १८८१)

सूचना

'दिवोदास' की दूसरी 'धारा' नवम्बर अंक में प्रकाशित होगी

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली ८

वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, बारह सेंट या नौ पैंस





'रेत और प्राण' फोटो : सूरज नारायण शर्मा



चँद्रमा तक पहुंचने की राह

(एक पुरानी भारतीय कथा)

"दुनिया में जब भी कुछ पूछो वे हमें बच्चा समझ कर डांट देते हैं।" जंगल में बंदरों के बच्चे आपस में बातें कर रहे थे, "हम बच्चे नहीं हैं, नहा हैं!" उन्हों ने फैसला किया।

"हम उन्हें बता देंगे!" उन का नेता बोला, "हम अपना जत्था बनायेंगे, और मनमानी करेंगे!"

सभा समाप्त हुई। सब अपने अपने घर चले गये। लेकिन उस रात वे अपने अपने माँ बाप के साथ नहीं सोये, बल्कि टोलियाँ बना कर, एक झील के किनारे, वृक्षों की सब से ऊँची डालियों पर सो रहे।

आधी रात होगी जब एक बंदर की आंख खुली। वृक्ष के ऊपर से जो उस ने देखा तो झील में, पानी के अंदर, उसे चमकता हुआ चाँद नजर आया।

"उठो, जागो, साथियो!" वह चिल्लाया, "चाँद झील में गिर गया है! चलो, चल के उसे निकालें! जल्दी करो, कोई और न पहुंच जाये!"

"हाँ, हाँ, चलो!" सभी चिल्लाये, "इस से हम दुनिया भर में मशहूर हो जायेंगे!"

"चाँद तक पहुंचने का यही तरीका है," नेता बोला, "कि हम एक दूसरे के पीछे जंजीर बना कर चलें।"

बंदरों की एक लम्बी जंजीर बनी—हर बंदर ने दूसरे की दुम मजबूती से पकड़ ली। उन के पानी में कूदने की आवाज जंगल में गूंज उठी—और वे चाँद को निकालते निकालते आप भी डूब मरे!

शिक्षा: ऐसे लोगों की बातों में न आइये जो अपने आप को हर बात में लाल बुझक्कड़ समझते हैं! केवल उन्हीं की सुनिये जो सचमुच जानते हैं। वनस्पति को लीजिये। आहार और स्वास्थ्य के जानकारों का कहना है कि वनस्पति स्वास्थ्यदायक आहार भी है और भारतीय खुराक में एक अमूल्य बढ़ोती भी। डालडा वनस्पति—लाखों गृहणियों का आजमाया हुआ छाप—शुद्ध वानस्पतिक तेलों से, सरकारी आदेशानुसार बनाया जाता है। हर प्रकार का खाना पकाने का यह साधन शक्तिदायक चिकनाइयों का भंडार है! इस के हर औंस में विटामिन ए के ७०० और विटामिन डी के ५६ अंतरराष्ट्रीय यूनिट्स मिलाये जाते हैं। याद रखिये 'डालडा' केवल एक पाक माध्यम ही नहीं—पौष्टिक भी है!

हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, बम्बई



वर्ष १५ अक्तूबर १९५९ अंक ६

पावन

सियारामशरण गुप्त

('सामरी' नाम से उल्लिखित स्त्री सीरिया के समारा नामक प्रदेश की थी। आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व के यहूदियों की दृष्टि में यह भू-भाग इतना अपवित्र था कि उन्हें गैलिली जाना होता तो समारा होकर जाने की अपेक्षा समुद्र के मार्ग से अथवा चक्कर काट कर दूसरे स्थल से जाते थे। अपनी गैलिली यात्रा में ऐसे ही स्थल के एक गाँव के बाहर कुएं पर ईसु एकान्त में बैठे थे। उसी समय का वर्णन यह है।)

पथ है सुनसान चारों ओर से
तप रहा है सूर्य नभ के मध्य में।
मौन-भार भरे दबे-से गिरि-शिखिर,
वायु है गतिरुद्ध तरु-पल्लव अचल।
जब कभी जो विहग स्वर की काकरी
स्तब्ध-से निःशब्दता के अतल में
छोड़ देता है, उठाकर लघु लहर
डूब वह जाती वहीं तत्काल है।
कूप की इस जगह पर बैठा हुआ
एक ही है पुरुष निस्सन्देह वह।
दूर तक कोई द्वितीय नहीं यहां।
स्फटिक-गौर सतेज मुख-मण्डल रुचिर
दीखता है दमकता रवि-ताप में,
आतपालेपन विभूषण है उसे॥
साथ थे जो शिष्य वे सब पास के
गाँव में आहार लेने हैं गए;
बाट उनकी जोहते हैं ईसु ये।

यह समारा प्रान्त, इस भू-भाग की
सब प्रजा अपवित्र है उनके लिए—
दर्प से जो उच्च बन बैठे स्वत।
ईसु का आदेश—सविनय नम्र नत
शिष्य सादर जाएं उनके बीच में
बरसती जिन पर सदैव घृणा रही
गगन-क्षिप्त हिमोपलों की भांति है।
कठिन जो अब तक न आप घुलें-मिलें,
भार रूप गिरे पड़े रह जाएंगे।
सामरी थी एक वह, जो इस समय
नीर भरने आ रही थी कूप पर,
रह गई ठिठकी-थमी कुछ दूर से
देखकर बैठा यहां यह कौन है।
चकित थी, क्या आ पड़ा यह दृष्टि में
तीर-सा धसता चला जो जा रहा
हृदय के गभीर तल में, मूर्ति यह
मनुज की कैसी सभी से भिन्न जो?

देखती आई जिन्हें वह आज तक
हाथ उनके मारने के ही लिए;
पैर केवल रौंदना है जानते,
जीभ में उनके छुरे की धार है,
श्वान ज्यों वृग-ज्वाल उनकी भूकती;
हृदय में विद्वेष विष ही घोलते।
और यह आश्चर्य वह किससे कहे,
देखकर इसको कहीं पर चित्र में
एक बिन्दु कठोर कटु आगा नहीं॥

कह रहे हैं कौन ये—'जल दो मुझे।'
ग्राह्य होगा जल इन्हें इस हाथ का?
नीर इस मेरे मलिन कर का छुआ
आप अपनी देह को लगता नहीं।
ठीक तो मेरे श्रवण हैं सुन रहे?
मुग्ध-मोहित सामरी आगे बढ़ी,
स्पष्ट ही उसने सुना—'जल दो मुझे।'

जल भरे इस कलश मे मेरे कहा ?
आग मे फुकते हुए भी उच्च जन
उबरना तक चाहते हमसे नही ।
तृषित है, कसे हरू इनकी तृषा ?
भीग यह सहसा गई फिर जानकर,
ज्ञात है मेरा पतित जीवन इन्हें
कौन म हू कुछ नही इनसे छिपा,
और अब भी प्रेम यह निश्छल अमल !
हायरी हतभागिनी अति हीन म !
होड थी मैंने बदी ससार से—
खर-प्रखर कर और अपनी आग तू,
मैं करूगी फिर वही, फिर-फिर वही,
देख लू तेरी घृणा का पूण बल ।
और सहसा हू पराजित आज मैं ।
कौन हो तुम, जानती हू मै नही ,
साथ लाए शस्त्र तुम यह कौन-सा
एक पल में विजित मै जिससे हुई ।
भूमि जिनकी बाट कब की जोहती,
मिल गया है ख्रीस्ट वह मेरा यही ।
भेंट लो प्रभु, पामरी के नीर को
सामरी भी है समर्पित साथ ही ॥

आ गए थे लौट कर इस बीच में
शिष्य जन आहार लेकर गाव से ।
सामरी दौडी गई द्रुत गति वहा—
सब सुनो, ओ बन्धुजन तुम सब सुनो,
यह नया सवाद कितने हर्ष का,
आ गए प्रभु आप अपने द्वार है !
दौडकर बढकर उन्हें हम लें सभी ॥

और तब कृतकृत्य छोटा गाव वह
ईसु के पावन पदार्पण से हुआ ।
न्यौत सादर ले गए वे सब उन्हें,
हीनता निज अब यहा सबको खली ।
अतिथि जो आया महत्तम आज है,
गाव मे स्थल योग्य उसके कौन-सा ?
स्वच्छ आसन तक किसी के घर नही,
योग है निश्चय घृणा के पात्र हम !
ज्योति बरसा कर मधुर मुसकान की
ग्लानि वह उनकी बहा दी ईसु ने ॥

गाव का उल्लास वह, आनन्द वह,
आ गया था जागरण का पव-सा ।
ईसु से प्रत्यक्ष सुनने को मिली
अमृतमय उनकी गिरा, चिरकाल तक
अन्य जन सम्पूर्ण भावी काल के
सुन सकेंगे अन्य के मुख से जिसे ।
बीत थे दो दिन कहा कैसे गए
जानने पाए नही थे सब वहा ।
आ गया सहसा विदा का वह समय
प्रेम पूरित हष और विषाद का ।
सामरी ने शुभ वचन प्रस्थान के
बाष्प-गदगद कण्ठ से सविनय कहे ।
देर तक अपलक रही वह देखती
जा रहे हैं ईसु, उनके शिष्य वे
दौडते से अनुसरण ह कर रहे ।
जब कभी इस ठौर से उस भीड मे
देख पाती मात्र उनकी पीठ ह ।
आ गई है मोड अब यह, और लो
हो गए ह ओट सबके सग वहा ।
सामरी के नयन झर-झर झर उठे ।
तडपती-सी लहरती मूच्छित पडी
सामने पगरेख निर्जन माग की
थी दिखाई, शून्य नभ था सीस पर ।
वन्य तरु बिखरे खडे चिन्तन-निरत
डोलते थे सास लेकर जब कभी ।
सास गहरी छोड बोली विह्वला
"प्रभु करो प्रस्थान ! विवशा बावरी
रोक रखना चाहती थी म तुम्हें ।
रोक जो तुमको सके वह कौन है ?
सुन चुकी हू वचन तुमरे आप यह—
कौन मेरे बाप मा भाई बहिन ?
सब तुम्हारे हे स्वजन सगी सगे ।
किस हृदय का पाट है इतना बडा
एक अपने में तुम्हें जो छेंकले ?
चाहिए सारा भुवन सारा जगत
कर सकोगे निज चरण निक्षेप तब ।
प्रभु करो प्रस्थान बल यह दो तुम्ही
आज ऐसे में न ये आसू बहें,
आज मैं झूली फिरू, फूली फिरू ।
देख मै तुमको सकी जिस आख से,
और किस जल से पुनीत उसे करू ?"

"प्रभु अपार अनन्त पथ पर जा रहे,
बीच मे यह गाव मेरा पड गया ।
सब किसी का अब इसे वे कर गए ।
और अपनी आज मै ही हू कहा ?
आज तक इसकी कभी उसकी रही,
पा गई हू मुक्ति अब निर्बाध हू ।
'जल मुझे दो'—यह उन्ही से सुन सकी ।
पी सकी मीठी मृदुल उनकी गिरा,
रूप-प्यासी निरख मे उनको सकी,
पग पखारे हाथ से उनके स्वय,
इन पगो से फिर सकी उनके लिए ।
चाहता म यिरसलम की क्या कहू,
वह बडो का है, हमारा वह कहा ?
नीच हम तो घृणित हे अस्पृश्य ह ।
नीच ही चिरकाल तक रहते बने
तुम अचानक आप ही आते न जो ।
दीन का दुबल दुखी का गेह भी
तीर्थ के सम तुल्य यात्रा योग्य है ।
हाय तब तो श्रेष्ठ राजकुमार-से
तुम हमें ही खोजते आए यहा ।
धन्य यात्री दूसरा है कौन वह
भूमि पर तुम-सा तपा हो आप जो,
बाट जोही हो निरन्तर देर तक
कूप पर जिसने तृषातुर कण्ठ में
पापिनी मुझ-सी अभागी व्यक्ति की ?
जल तुम्हें देते हुए सहसा जकी,
आत्म-प्रत्यय कर सकी क्षण भर न मै
नीर दू कसे तुम्हें हू जो पतित ।
काट सकते थे हिचक मेरी तुम्ही ।
हो गई आश्वस्त सुनकर वे वचन—
क्या अकेली एक, केवल एक म ?
सुन रहे थे वे वचन छोटे-बडे,
उच्च लघु पापी-अपापी विश्व के
जो जहा थे, सुन रहा आकाश था,
सुन रहा था भूमि का प्रत्येक कण,
सुन रहा था आज, कल था सुन रहा,
'मान तू माई, अरी विश्वास कर,
आ रहा है, आ गया है वह समय,
धाम ये सब और पूजेगी न तू,
सोचती है बाल तू जिस ख्रीस्ट की
मैं वही हू, बोल जो तुझसे रहा ।
कर सचाई से भजन तू ईश का,
चाहता है, तारता है वह उन्हें
हृदय-आत्मा स उसे जो पूजते ।'
और तब तत्काल मैं यह तर गई ॥

प्रगति दूर भविष्य के सुवसन्त की
सुचिर सुषमा औ विभा निज में भरे
अमृत घन की यह नई रिमझिम हुई
धूर-कादे से पटी ही भूमि पर
और अमृता वह गिराजग की प्रथम
अधम ये मेरे श्रवण ही सुन सके ।
निरखकर यह धन्य मैं यह धन्य हू ।
दूर तक फैले उजाड उदास में
उग पडी यह कौन सुख में अन्य है ?

तापिता थी, हू हरी, अब हू भरी ।
पूर्व कुछ होती प्रतीति भला किसे ?
धूर में जो मोमबत्ती तुच्छ तर
मलिन घूरे पर कही कब की बुझी
थी पडी, मुख आप ही काला किए,
था किसे आभास उसमें है निहित
तीर्थ मन्दिर दीप का आलोक यह ।
प्रभु तुम्हारे श्री करो से ही जगी
ज्योति, पूजा में तुम्हारी भेंट है
प्रथम ही तुम ग्रहण इसको कर चुके ।।

हाय री, ओ हाय री, तू हृद मे
रम रही कैसे सभी कुछ भूलकर
भूमि पर ही रह गगन म उड न यो ।
प्रभु हमारे तरण-तारन हार वे

जिस भयानक पथ मे आगे गए,
जानती है तू, वहा नर है नही ,
भेडिए ये हू मनुज के वेश में ।
ये अरे क्या कुछ न कर बैठ यहा ।
हाथ, तब हमसे अभागे अधम जन
लोक म किसका तकेंगे आसरा ?
अमर आभा यह अभी तो है जगी,
बुझ गई तो जो तिमिर छा जाएगा
सब कही ससार में चिरकाल को
तब अरे, तुम औ महाजन जीव सब,
सुख अकेले ही गमाओगे कहा ?

अ ! किया मैंने अभी प्रण था नया,
पोछ दूगी मैं विकार विरोध सब,
और दृढ विश्वास कर पाई न मैं ।

पाप यह मेरा तुम्हारे प्रति हुआ
पथम है मेरे लए इस जन्म म
जीव तुम भगवान के मुझको क्षमो !
तुम बडे धनवन्त हो, गुनवन्त हो,
लाज क्या जो भीख तुमसे माग लू ।
प्रभु तुम्हारे बन्धु—और गए अभी
अहित उनका हो न कुछ तुमसे यहा,
ईश के है पुत्र सबके ख्रीस्ट वे ।
तुच्छ नारी मे महा मूर्खा अधम,
देखते ही समझ जब उनको गई,
कठिनता क्या तब समझने में तुम्हें ।
तुम उन्हें सत्कार दोगे अतिथि का ।
प्रार्थना मेरी, रहो सुख से सदा,
हो तुम्हारे साथ ही हम सब सुखी !"

तेलगु कविता

महाप्रस्थान

श्री श्री

हुकार ! विश्व हुकार ! महा हुकार !
मद भरी बहती जवानी—झरनी का हुकार,
नये विश्व—जीवन की रण-भेरी का हुकार,
उठ रहा है प्रलय घोष भुवन भर,
सुन पडता नही क्या रे उनीदो ।
सुनो, उठो कमर कसो,
बढे चलो, बढे चलो,
आगे आगे बढे चलो ।
मूढ-विश्वास के अचल भूधर चूर-चूर कट जाएगे,
कदम से कदम मिला कर
रण के मदोन्मत्त गीत गा गा कर
धीर वीर दिलो की ललकार सुनाकर,
हुकार ! विश्व हुकार ! महा हुकार !
बुला रही है तुम्हें वीरो,
नई दुनिया बुला रही है ।
उमर—साप के काटे बूढो,
सडी हड्डियो के नामर्दो,
तुम मर जाओ,
मिट्टी से गले लगाओ,
तोपो का जवाब
दिल से दिलाने वालो,
आकर मिल जाओ,
चढ जाएगे,
बढ जाएगे,
इस तपते पथ को
हृदय-रुधिर से प्लावित कर जाएगे,
क्या नदी-नद,
क्या गहन गिरि कानन,
क्या मौत की छाया-सी फैली मरुभूमिया,
रोक सकते कब ये राह हमारी ?
ये खौलते तेल नही,
आग की लपट भरे—
गहन समुदर से,
उछल-उछल कर जाएगे ।
सिर उठाए ऊपर जाएगे ।
गिरि-ध्वसक उर के वीरो,
सुनो, उठो, चलो आगे ।
बज रही है
बज रही है
महा शक्ति की भेरी,
दीखती नही क्या वे चिनगारिया
चूमती जो उठ कर नभ को है,
वे है उस नए विश्व की
आग के किले की,
देख तो लो उस उत्थान की ओर,
लहराते है लहू के सिचित झण्डे ।
लपट रही हो ज्यो महा यज्ञ की ज्वालाए
जगली कुत्ते के वेग से
काले साप की गति से,
रण के जोशीले घोडे जैसे सरपट
चढ जाए,
बढ जाएगे,
बिजली के झण्डे धरने वालो,
आग के भालो से भिड जाने वालो,
पाप के पहाडो से मोर्चा लेने वालो,
बोलो महादेव जी की जय हो ।।
बोलो हर हर हर हर हर,
हरो हर हरो हर हरो हर ।।
गूज रही है पृथ्वी सारी,
बज रही है महा शक्ति की भेरी,
प्रलय-पवन का आभास दिलाये,
प्रलय जल-धारों की घोषणा बने,
मूर्तिमान स्फूर्ति बने,
टूट पडेंगे,
ज्वालामुखी ज्यो फूट पडेंगे,
बढे चलो, बढे चलो,
कदम से कदम मिला कर,
झुको नही, हटो नही,
बढे चलो, आगे चलो,
देख तो लो उधर,
धक-धक कर रहे है अग्नि त्रय,
उठ उठ कर गिर पडते है,
लाखो सुमेरु पर्वत
घूम-घूम कर नाच रहे है सब सागर

अनुवादिका . कुमारी निर्मला

गांधी जी के जेल-जीवन के दो संस्मरण

शंकरलाल बैंकर

१९२२ में बारडोली में प्रारम्भ किए गए सत्याग्रह के लिए ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी को ६ वर्ष की सजा दी थी। उन्हें यरवदा जेल में रखा गया था। वहां जेल के अधिकारियों को भय रहता था कि गांधी जी ने बाहर सरकार के सामने जो बवंडर उठाया है, जेल में भी वैसा कुछ क्यों नहीं करेंगे? अतः उन्हें, उन लोगों ने जेल के एक अनोखे ब्लाक में रखा था। उसे 'सेपरेट ब्लाक' कहा जाता था। वह त्रिकोणाकार था। उस ब्लाक के सारे कमरे खाली कराकर गांधी जी को उसमें रखा गया था। उसमें भी बीच का एक कमरा गांधी जी के उपयोग के लिए तथा एक मेरे उपयोग के लिए दिया गया था। दो तरफ से तो यह ब्लाक बन्द था, किन्तु एक तरफ से बाहर चौगान दिखता था।

जेल के अन्य कैदियों के साथ गांधी जी का किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रहना चाहिए, ऐसा जेल के अधिकारियों का संकल्प था। और गांधी जी के लिए जो वार्डर नियुक्त किया गया था, उसे इसकी खास सूचना दी गई थी। पहले तो हिन्दू या मुसलमान वार्डर रखे जाते थे, किन्तु वे विलम्ब से या अविलम्ब गांधी जी के प्रभाव में आ जाते, इस डर से उनकी चौकसी के लिए एक सोमाली वार्डर नियुक्त किया गया था। उसका नाम था आदम। उस समय अफ्रीका के सोमालियों ने भी ब्रिटिश सरकार के सम्मुख विरोध किया था, और ऐसा करने वालों की धरपकड़ हुई थी जिसमें आदम भी पकड़ा गया था। उसे हिन्दुस्तान भेज कर यरवदा जेल में रखा गया था।

आरम्भ में आदम ने खूब चौकसी रखी। चौगान से होकर कोई कैदी जाता होता और गांधी जी बाहर घूमते रहते, तो गांधी जी को प्रणाम करने के लिए वह प्रेरित होता। परन्तु आदम किसी को ऐसा कुछ करते देखता तो उसका नाम लिखकर आफिस में सुपरिन्टेन्डेन्ट को सूचित कर देता। तीन दिनों तक तो वह अत्यन्त सख्ती के साथ पहरा देता रहा, किन्तु चौथे दिन वह मेरे पास आया और कहने लगा—"गांधी जी मजहबी आदमी हैं। उनकी पहरेदारी क्या करनी? सुबह चार बजे उठकर तो प्रार्थना करते हैं, और सारा दिन काम में ही बीत जाता है। किसी से बोलने तक का अवकाश उन्हें नहीं है। ऐसे मजहबी आदमी की पहरेदारी क्या करूं?"

उसकी बातों का तात्पर्य मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका। इतना तो समझ गया, कि गांधी जी की दिनचर्या एवं कार्यक्रमों का प्रभाव उस पर भी पड़ा था। और फिर तो वह पहरेदारी की बात छोड़ किस प्रकार गांधी जी की मदद कर सके, यह मौका ढूंढने लगा। उनका जो काम मैं करता था उसके लिए भी वह मुझ से कहने लगा—"यह सब मैं करूंगा!"



'डांडी मार्च का ऐतिहासिक दृश्य'

कुछ दिनों बाद, एक सुबह वह 'टाइम्स' लेकर आया और मुझे कहने लगा, "देखो, मैं क्या लाया हूं? टाइम्स अखबार है। ताजा अखबार। गांधी जी के लिए लाया हूं। तुम ले जाओ और गांधी जी को दे दो।"

उन दिनों सत्याग्रही कैदियों को समाचारपत्र नहीं मिलते थे। समाचारपत्र की सख्त मनाही थी फिर भी बाहर की दुनिया में क्या होता है, यह जानने की इच्छा सत्याग्रही कैदियों को रहा करती थी, जो स्वाभाविक भी थी। अतः वे वार्डरों या बाहर जाते कैदियों द्वारा अखबार मंगवाते। आदम को इस बात की जानकारी होगी और उसे ऐसा लगा होगा कि गांधी जी को भी अखबार पढ़ने की इच्छा होती होगी, इस कारण कुछ व्यवस्था कर वह अखबार ले आया। परन्तु गांधी जी के विचार तो दूसरे कैदियों से अलग ही थे। उनकी लड़ाई सत्याग्रह की थी और उसके अनुसार यदि कानून या नियमों को भंग भी करना था तो सविनय। एक बार सजा होने के बाद जेल के नियमों को अच्छी तरह मानना चाहिए, ऐसा वे कहते थे। उनका कहना था कि यदि इन नियमों को नहीं मानना है तो स्पष्ट विरोध करना चाहिए। चोरी से, लुक-छिपकर कायदे-कानून का विरोध हो ही नहीं सकता। अतः आदम द्वारा लाया गया अखबार गांधी जी नहीं देखेंगे, यह मैं पहले से ही जानता था। मैंने यह बात आदम को समझाई भी, परन्तु यह बात उसके दिमाग में बैठी



'गम्भीर मन्त्रणा'

नहीं। वह कहने लगा—"तुम नहीं दे सकते हो तो मैं ही दे दूंगा।" इतना कहकर वह सामने के कमरे में गया और गांधी जी के हाथ में अखबार दे दिया।

गांधी जी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखकर पूछा—"आदम! यह क्या है?"

आदम हँसकर कहने लगा—"महाराज, अखबार है, ताजा अखबार है, तुम्हारे लिए लाया हूं, देखो।"

गांधी जी ने तुरन्त उत्तर दिया—"यह अखबार मैं नहीं देख सकता, यह कानून के खिलाफ है। तुम वापस ले जाओ।"

आदम उन्हें समझाने लगा—"ताजा अखबार है। सब लोग अखबार देखना चाहते हैं। बहुत मुश्किल से लाया हूं।"

गांधी जी ने कहा—"यह सब मैं समझता हूं। लेकिन कानून के खिलाफ है, इसलिए मैं नहीं देख सकता। तुम इसे ले जाओ, जला दो, नहीं तो मुझे शिकायत करनी होगी।"

आदम निराश हो गया। कुछ घबराया भी। गांधी जी के पास से आकर मुझे कहने लगा—"महाराज कहते हैं, कानून के खिलाफ है। किसका कानून? सरकार तो बदमाश है। सरकार के कानून का खयाल क्या करना? लेकिन गांधी जी मजहबी आदमी हैं। वे हमारी बात नहीं सुनते हैं। आप उन्हें समझायें।"

मैंने कहा—"मुझ से यह काम हो सके, ऐसा नहीं है। गांधी जी ऐसी बातें कभी सुनेंगे भी नहीं। उलटे नाराज होंगे।"

इससे वह दुःखी हुआ। इतनी अधिक जोखिम उठाकर लाया गया अखबार फाड डाला जाए, या जला दिया जाए, यह उसे अच्छा नहीं लगा। किसी भी तरह गांधी जी वह अखबार देखें तो उसकी मेहनत, उसका साहस सफल हो। अतः मन ही मन विचार करने लगा। फिर कोई युक्ति समझ आई तो वह उठकर गांधी जी के पास गया और कहने लगा—



'दंगा से ध्वस्त पूर्वी बंगाल का पैदल यात्रा करते हुए'

"आप तो बहुत बड़े मजहबी आदमी हैं, आप अखबार नहीं देखेंगे। लेकिन हमको यहां जेल में आए काफी दिन गुजर गए हैं। हमारे मुल्क का क्या समाचार है, यह देखो और हमको सुना दो।"

आदम की यह बात सुनकर गांधी जी को हँसी आई। वे समझ गए कि अखबार पढवाने की यह एक युक्ति है। लेकिन फिर सोचा कि इसका इतना अधिक आग्रह है तो नाराज नहीं करना चाहिए। उन्होंने अखबार पढ़ा और सोमालीलेंड में जो लडाई चल रही थी उस विषय के जो समाचार छपे थे, सुनाए। इससे आदम बहुत खुश हुआ और तुरन्त बाहर आकर

'उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की सभा में'





'चिन्तन की मुद्रा में'

छोटे बालकों की तरह हँस-हँस कर कहने लगा---"देखा, गांधी जी ने अखबार पढ़ा। मैंने उन्हें कैसा मनाया!"

इसके बाद तो आदम की भक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। गांधी जी के साथ का सम्बन्ध अत्यधिक निकट होता गया। गांधी जी के छोटे-बड़े सभी काम आदम भक्ति के साथ करने लगा। सुबह भोर में उठकर चार बजे गांधी जी के लिए गरम पानी भी तैयार कर देता। उसके बाद वह गांधी जी की प्रत्येक प्रवृत्तियों में रस लेने लगा। गांधी जी का भी उस पर अब तक अत्यधिक प्रेम हो चुका था।

फिर गांधी जी ने सोचा कि यह हिन्दुस्तान में रहता है तो उसे उर्दू सीख लेनी चाहिए। अतः उसे उर्दू सीखने के लिए कहा। आदम ने भी यह बात मान ली और गांधी जी से सीखने लगा। गांधी जी भी उन दिनों उर्दू का अभ्यास कर रहे थे अतः उन्हें भी इस कार्य में रस था।

थोड़े महीने इस प्रकार बीते, फिर सूत कातने के अधिक श्रम से गांधी जी की आंखें दुखने लगी थीं। डाक्टर ने आराम करने के लिए कहा था। सुबह जल्दी उठकर सारा दिन काम करने के बदले थोड़ा काम करने की सलाह दी। परन्तु गांधी जी ने एक भी बात स्वीकार नहीं की। गांधी जी की आंखों में अत्यन्त पीड़ा थी जिसका आदम को भी बहुत दुःख था। अतः वह उन्हें काम कम करने के लिए समझाने लगा। गांधी जी ने भी उसकी बातें सुनीं और कहा---"देखो आदम, यह आफताब अपना काम कभी छोड़ता नहीं, ठीक समय पर निकलता है और सारे संसार को रोशनी देता है। तो हम अपना काम कैसे छोड़ें?"

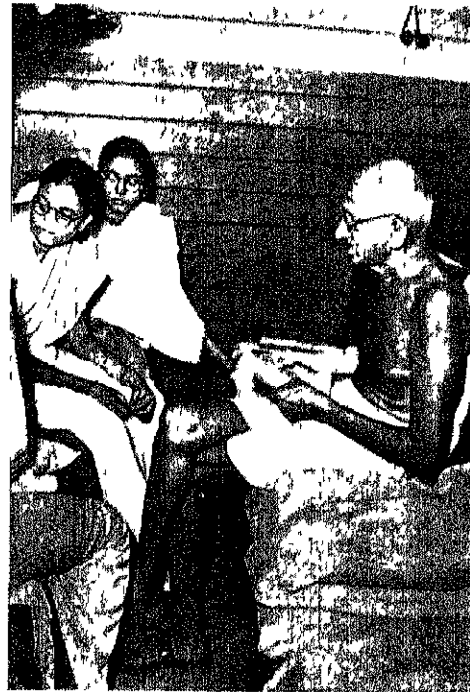
आदम तो बेचारा यह बात सुनकर चुप हो गया, क्योंकि वह स्वयं भी धर्मनिष्ठ था। नियमानुसार नमाज पढ़ता था। इस दलील का असर उस पर पड़ा। फिर भी वह सोचता था कि यदि गांधी जी काम कुछ कम कर दें तो अच्छा। थोड़े दिनों बाद तबीयत कुछ अधिक बिगड़ी तो गांधी जी ने खाना कम कर दिया। रोज चार रोटियां लेते थे तो अब दो ही देने को आदम से कहा। अतः आदम तो उनके सम्मुख देखता ही रह गया और बोला---"महाराज! आफताब तो कानून को छोड़ता नहीं, तो आप रोटी कैसे कम कर सकते हैं?"

आदम की यह दलील सुनकर गांधी जी हँस पड़े। इस परदेशी को भी गांधी जी के प्रति कितनी श्रद्धा थी! आदम की सेवा से गांधी जी भी खुश थे और उसके प्रति क्या कर सकते हैं, यह सोचा करते थे। वे उसके विषय में जानना चाहते थे। उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट से बातें कीं। फलस्वरूप अल्प समय में ही आदम को छोड़ दिया गया।

(२)

गांधी जी के परोपकारी एवं साधु जीवन का असर जैसा आदम पर हुआ वैसा जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट पर भी होने लगा। हम लोग साबरमती जेल से यरवदा जेल में गए थे। वहां कुछ महीनों बाद जेल में नए सुपरिन्टेन्डेन्ट आए। ये स्वभाव के अतिशय कठोर और नियमों के पालन में बहुत कड़े थे,

'तीसरे दर्जे में रेल यात्रा करते हुए'





'नोआखली में गाव को दो लडकियो के साथ प्रात कालीन सैर'

ऐसी बात जेल में फैल चुकी थी। परन्तु हमारे साथ के व्यवहार में तो वे अत्यन्त मिलनसार स्वभाव के, सरल और सज्जन पुरुष लगे। गाधी जी को जिस विभाग में और जिस कमरे में रखा गया था, वह उसे सतोषकारक नही लगा। उसे अनुभव हुआ कि यदि गाधी जी एव अन्य राजनीतिक कैदियो को 'यूरोपियन क्वार्टर्स' में ले जाया जाए तो बहुत अच्छा हो।

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने यह बात गाधी जी के आगे रखी। गाधी जी को यह विचार पसन्द आया और उन्होने उन कमरो में जाने की अनुमति दे दी। निश्चित दिन हम लोग अपना सामान लेकर इस नए वार्ड में आए।

सांझ को हम लोग एक साथ बैठे तो गाधी जी के मन में एकाएक कुछ विचार आया और मुझ से कहने लगे--"शकरलाल, हमने यहा आकर भूल की है। हमें अपने पुराने ब्लाक में वापस जाना चाहिए। मुझे सुपरिन्टेन्डेन्ट से मिलकर बातें करनी है। आप उन्हें सूचित कर दें।"

गाधी जी की ये बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और खेद भी। मैं कुछ समझ नहीं सका। अतः पूछा--"बापू! ऐसा क्यो कहते हैं? यहा रहने में क्या आपत्ति है?"

गाधी जी ने तुरन्त जवाब दिया--"हमें यहा लाने में मेजर ने भारी भूल की है। सुपरिन्टेन्डेन्ट की हैसियत से यद्यपि उसे ऐसा करने का अधिकार है, परन्तु वह सामान्य कैदियो के लिए है, मेरे लिए नही। मेरे लिए वह जगह सरकार ने निश्चित की होगी और इस कारण वह बदली नही जा सकती।"

मैंने कहा--"ऐसा किस लिए मानते है? फिर इस सिलसिले में तो उसने भी विचार तो किया ही होगा न? हमारे कहने से वह हमें यहा लाया नही। तो फिर वापस जाने के लिए हम क्यो कहें?"

परन्तु गाधी जी ने निश्चय कर ही लिया था अत मुझे समझाने लगे--"यह बात इतनी सरल नही है। उसने जरूर भूल की है और सरकार को

'प्रात कालीन सैर'



इसका पता चल जाए तो उसे दण्डित होना पड़ेगा। मेरा तो धर्म है उसे बताना।"

इसके आगे तर्क करना व्यर्थ था। सूचना सुपरिन्टेन्डेन्ट को दी गई और दूसरे दिन सुबह ही वे मिलने आए।

गाधी जी ने अपने विचार उसके सामने रखे लेकिन सुपरिन्टेन्डेन्ट को यह बात नहीं भाई। वह कहने लगा—"ऐसा विचार करने की कोई जरूरत नहीं। सरकार को मेरा यह काम पसन्द नहीं आएगा और वह विरोध करेगी तो मैं त्याग-पत्र दे दूगा।"

फिर भी गाधी जी अपने विचारो पर दृढ रहे। अपने लिए सरकार क्या सोचती है और क्या इच्छा रखती है, यह वे समझते थे और उसका दावा रखते थे। अत उन्होने कहा—"आप कहते है, वह सत्ता आपको भले ही मिली हो, परन्तु वह सामान्य कैदियो के लिए है, मेरे लिए नही। मैं इस विषय में अधिक समझता हू। अत मेरी बात मानिए और हमें पुराने स्थान पर भेज दीजिए।"

गाधी जी ने देखा कि यह मेजर भी जिद्दी है और नही मानेगा तो उन्होने कहा—"आपका मेरे प्रति जो स्नेह है, वह मैं समझता हू। आभारी भी हू। आपके कथनानुसार करने की इच्छा भी है। मात्र सरकार की क्या इच्छा है, यह जान लें तो अच्छा हो। अत हमें अभी वापस ले जाए और फिर आप होम मेम्बर के साथ बातचीत करें। उसके बाद यदि मुझे 'यूरोपियन क्वार्टर्स' में ले जाने की अनुमति मिले तो ले चलिएगा।"

गाधी जी की इस बात से मेजर राजी हो गया और हमें पुन पुराने स्थान में ले आया।

इस बात के तीन-चार दिनो बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट गाधी जी से मिलने आए तथा गाधी जी का आभार मानने लगे। उन्होंने कहा—"आपकी बात सत्य है। मैने होम मेम्बर से बातें की थी। आपको इस स्थान में रखने का निर्णय सरकार ने दिया है और बिना उसकी अनुमति के स्थान नही बदला जा सकता। स्थान बदलकर मैं अत्यन्त कठिनाई में पड़ जाता। मैं भी हठी आदमी हू। आपको यूरोपियन क्वार्टर्स मे ले जाकर वापस लाने का समाचार सरकार तक पहुचता तो मुझे त्याग-पत्र देना ही पड़ता। आपने जो सलाह दी, वह उचित थी, अत उसके लिए मैं आपका जितना भी आभार मानू कम ही होगा।"

गाधी जी ने इस सम्बन्ध में पहले से ही यह सोच लिया था और उनका अनुमान सच निकला। वह वक्त उन्हें सन्तोष हुआ कि उन्होने ठीक कदम उठाया था। पर उसके साथ ही सुपरिन्टेन्डेन्ट की सज्जनता की प्रशसा किए बिना न रह सके। इस बात की सुपरिन्टेन्डेन्ट के मन पर भी गहरी छाप पड़ी। और गाधी जी को अपना मित्र समझ कर कैदी होने पर भी जल के अटपटे प्रश्नो के सम्बन्ध में उनकी सलाह लेने लगा।

—अनुवादक गोपालदास नागर

चिन्ता

राजेन्द्र किशोर

मेरे मन की प्रत्येक दिशा में एक मन्दिर है,
मेरे व्यक्तित्व के प्रत्येक आयाम में एक देवालय है,
मैं पुजारियों के साथ भागी हुई देवदासियों का पता अपनी धर्मपत्नी से पूछता हूं।

मैं स्रष्टा परमेश्वर हू '
पत्नी के दैहिक-मानसिक ऐश्वर्य का एकान्त भोक्ता,
देवदासिया मेरे अवैध पुत्रो की कुवारी माताएं हैं।

पत्नी झाडू देती है, खाना बनाती है, गन्दी रहती है,
देवदासिया मेंहदी रचती है, शृगार करती है, पान खाती है।

पत्नी के पाओ की आहट से प्रेत चौकते है,
देवदासियो के घुघरुओ से जाने कैसी उत्तेजना होती है।

पत्नी थकी-उदास रहती है, डाट सुनती है,
देवदासिया सिर्फ सेज उसाती है, गाना गाती हैं।

मैं विरही हू, प्रिया-कातर हू,
मेरी धर्मपत्नी मेरे प्रश्न के उत्तर में गाली देती है;
मन्दिर से आती हैं पवित्र घण्टाध्वनिया ''
अरे! आह!! पुजारियो के साथ भागी हुई देवदासिया कहां है?

मराठी कविता

और घूमता शुभ्र कबूतर

विन्दा करंदीकर

मन में है ऊंची मीनारें
उनपर बना कबूतर खाना,
शुभ्र कबूतर वहा घूमता
सपनो का खा-खाकर दाना।

शुभ्र कबूतर है युगयुग का'' '
कब जन्मा वह ? और किसलिये ?
कबतक ? कितने दिन घूमेगा ?
अर्थहीन रव क्या न व्यर्थ है ?

कोई प्रश्न पूछता है ये;
देता कोई अगम्य उत्तर !
आसपास ही चक्कर खाकर
वहा घूमता शुभ्र कबूतर।

—अनुवादक : अनिल कुमार

शिशिर भादुड़ी

मोहनसिंह सेंगर

भी गत २९ जून को जब नाट्याचार्य शिशिरकुमार भादुड़ी के निधन का दु:संवाद मिला, तो उनके एक सहयोगी ने भरे गले और सजल आंखों से मानो संतोष की सांस लेकर कहा—"चलो अच्छा ही हुआ कि मृत्यु ने उन्हें जीवन की असहनीय यन्त्रणा से मुक्त कर दिया।" सुनने में यह बात कितनी ही कटु एवं अप्रिय क्यों न लगे, पर है यह यथार्थ सत्य। उनकी जीवन-संध्या सचमुच बड़ी दुखद थी।

अन्त का पूर्वाभास

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व मिलने गए एक मित्र से उन्होंने कहा भी था—"ठीक कहां हूं, भाई? पेट की तकलीफ बहुत बढ़ गई है। खाना प्राय: बन्द ही कर देना पड़ा है। कोष्ठबद्धता ने बड़ी निर्ममता के साथ धावा बोला है। रात को नींद भी नहीं आती। मेरी रात की एकमात्र साथिन पुस्तक थी, सो आंखों में मोतियाबिंद उतर आने से अब तो पढ़ना भी बन्द कर देना पड़ा है। दिन को थोड़ा-बहुत ऊंघ-भर लेता हूं।" फिर खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखकर भरे गले से बोले—"जीवन की संध्या आ पहुंची है। लगता है कि जैसे मेरा यही अंतिम वर्ष है। इसी साल सर हेनरी अर्विंग मरे थे। गिरीशचन्द्र भी मरे थे। अब शायद मेरी बारी है। आंखों से दिखाई नहीं पड़ता—मोतियाबिंद हो गया है। शरीर प्राय: ही असहयोग करता है। इस पर भी मन—उसकी बात जाने ही दो।"

पर मन की बात जाने कैसे दी जाए? कुछ ही दिन पहले एक बार स्वयं ही आर्त्त कंठ से वे उसे एक मित्र से कह बैठे थे—"बस, बन्द करो मेरी नाट्यकला की प्रशंसा। कलाकार की बात कोई भी तो नहीं सोचता। मैं जिन्दा हूं या मर गया, कहां हूं, कैसे हूं, किसी को भी तो इसकी चिन्ता नहीं। पर जिस दिन मैं मरूंगा, देखना, इसी रास्ते में कितनी भीड़ होगी। सब फूलों की मालाएं लेकर दौड़े आएंगे।" और फिर एक बड़ी ही व्यंग्यपूर्ण तिक्त मुस्कराहट के साथ अभिनय-सा करते हुए बोले—"गिरीश पार्क में गिरीशचन्द्र की एक मूर्ति लगी है। देखी है न? अवश्य ही उसके साथ गिरीशचन्द्र के चेहरे का कोई मेल नहीं। शायद इसी ढंग की मेरी भी एक मूर्ति बनाई जाएगी। फिर उसके उद्घाटन के लिए किसी ऐसे गण्यमान्य व्यक्ति को बुलाया जाएगा, जिसका रंगमंच के साथ निश्चय ही कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा हो। वह मेरी मूर्ति को फूलमाला पहनाएगा और फिर मगरमच्छ के-से दो आंसू गिराकर लम्बे भाषण द्वारा प्रमाणित करेगा कि शिशिरकुमार एक अभिनेता थे।" कदाचित इसी व्यंग-विद्रूप की कटु पूर्वानुभूति के कारण ही उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र को आदेश दिया था—"मेरे मरने पर एक बिलकुल साधारण खटिया लाना और उस पर मुझे लिटा कर ऊपर से एक कोरा सफेद कपड़ा ढक कर श्मशान-घाट ले जाना। फूलों की मालाएं मैं नहीं चाहता।"

दैन्य, कष्ट और असफलता

शिशिर बाबू से मिलने का मौका मुझे कई बार मिला है—कभी



शिशिर भादुड़ी

किसी के साथ और कभी अकेले। उनके स्वभाव और 'मूड' के कारण अक्सर उनके पास जाते डर-सा लगता था, संकोच होता था। पर जाकर जैसे एक नई दुनिया दिखाई पड़ती थी। यद्यपि उनकी अवस्था देख और बातें सुन कर मन पर जो यातनापूर्ण प्रभाव पड़ता था, वह कई-कई दिनों तक खिन्न-उदास बनाए रखता था। लगता था, जैसे एक असाधारण प्रतिभा आंखों के सामने ही मुरझा रही है और हम कुछ कर नहीं पा रहे।

एक बार बिना किसी पूर्व सूचना के मैं शिशिर बाबू के घर (मंचाभिनय से अवकाश ग्रहण कर इधर तीन वर्षों से शिशिर बाबू बेरकपुर ट्रंक रोड पर एक पुराने दुमंजिले मकान में रहते थे) चला गया। मन में डर था कि पता नहीं वे कैसे मूड में होंगे और बात भी करेंगे या नहीं? पहले तल्ले की बैठक के दरवाजे पर पहुंच कर पांव ठिठक गए। एक तख्त पर लेटे वे कुछ गुनगुना रहे थे। कान लगाकर कुछ समझने की चेष्टा की। लगा जैसे वे असंख्य बार दुहराई गई एक पुरानी कविता की आवृत्ति कर रहे हैं

बड़ दुःख बड़ बाथा, सम्मुखेते कष्टेर संसार।
बड़ोई दरिद्र, शून्य, बड़ क्षुद्र बद्ध अंधकार।

अन्न चाइ, प्राण चाइ, आलो चाइ, चाइ मुक्त वायु।
चाइ बल, चाइ स्वास्थ्य, आनंद उज्ज्वल परमायु।
साहस विस्तृत वक्ष-पट, ऐ दैन्य माझारे कवि।
एक बार निये एसो स्वर्ग हते विश्वासेर छवि।

सुन कर मेरा मन भर आया कि इस भावुक कलाकार के लिए अब स्वर्ग से विश्वास की यह छवि (चित्र) भला कौन लाएगा ? मुझे लगा जैसे अगणित निराशाओं और असफलताओं से दग्ध शिशिर बाबू आज फिर किसी नई निराशा को आमन्त्रण दे रहे हैं—उस निराशा को, जो उन्हें झकझोर झकझोर कर सिए अधमरा करके छोड़ जाएगी। उनके गले के दर्द से ऐसा लगा मानो आलमगीर की जीवन-संध्या का सफलतम अभिनय करने वाले शिशिर बाबू आज स्वयं अपनी जीवन-संध्या में टूट से गए हैं। और यह अभिनय नहीं, यथार्थ मनोव्यथा है, विशुद्ध यन्त्रणा है।

आवृत्ति समाप्त होने पर मैंने उन्हें सूचना देने के लिए जरा खांसा। एक मैले तकिए पर से गर्दन उठाकर उन्होंने द्वार की ओर देखते हुए पूछा—"कौन ?"

मैंने आगे बढ़ कर उन्हें नमस्कार किया। उठकर तकिए का सहारा लेकर बैठते हुए उन्होंने पूछा—"आज अचानक इधर कैसे भूल पड़े ? तुम्हें कई दिन से देखा ही नहीं। आओ। कैसे हो ? बोलो, तुम्हारे कलकत्ते के क्या हालचाल हैं ?"

मैंने विनम्र भाव से कहा—"कोई खास तो नहीं। पर हां, मंच पर लोग आपका अभाव अवश्य महसूस करते हैं।"

"यह तुम मुझ से कह रहे हो ?"—बड़ी वेदना के साथ शिशिर बाबू ने तनिक उत्तेजित होकर कहा—"खाक अभाव अनुभव करते हैं। उनमें से कोई भी तो ऐसा बुद्धिमान नहीं, जो आगे आकर कहता कि आप अपना स्वतन्त्र मंच चलाइए। राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना कीजिए। जो खर्च लगेगा, मैं दूंगा।" "पर यह शायद मेरी ही समझ का फेर है, क्योंकि बुद्धि और पैसा दोनों भला एक साथ कैसे रह सकते हैं !"

फिर वे ठंडी सांस लेकर बोले—"अब भी जब लोग मेरे पास नाटक की चर्चा करने, कोई नया नाटक दिखाने या अभिनय के बारे में कुछ पूछ-ताछ करने आते हैं, तो मैं उनसे कहता हूं कि मेरे पास धरा ही क्या है, जो तुम लोग दौड़ दौड़ कर आते हो ? मेरे पास तो कोई मंच नहीं। कभी-कभी किसी नए लेखक का नाटक अच्छा भी लग जाता है। पढ़ते-पढ़ते लगता है कि इसका अभिनय करूं। किन्तु कहां ? अब मैं कर ही क्या सकता हूं ?"

इस विवशता के पीछे शिशिर बाबू की विफलता की एक लम्बी करुण कहानी है। एक बार जिक्र चलने पर स्वयं ही उन्होंने कहा था—"मैं अस्वीकार नहीं करता अपनी असफलता को। पर जानते हो, मेरा थियेटर क्यों नहीं चला ? मैं अच्छे नाटक ही देना चाहता था ? 'परिचय' देखा है न तुमने ? 'दु खीर ईमान' देखा है ? उनके माध्यम से मैं श्रोताओं को बहुत सी बातें सुनाना चाहता था। पर उन्होंने कहां सुना ? मैं टिकटों की बिक्री पर ध्यान रख कर तो नाटक नहीं कर सकता।"

फिर एक ठंडी सांस लेकर बोले—"सच बात तो यह है कि इस देश में क्या सरकार और क्या जनता, नाटक की कदर कोई नहीं जानता। जब मुझे भाड़ा चढ़ जाने के कारण श्रीरंगम् (थियेटर) छोड़ना पड़ा, तो मैंने एक परिचित व्यक्ति से कहा था कि धनाभाव के कारण मुझे जो श्रीरंगम् छोड़ना पड़ रहा है, उसका मुझे विशेष दुःख नहीं। बंगाल अच्छे नाटकों और नाट्यशाला का महत्व समझता है। एक-डेढ़ साल में निश्चय ही कुछ इन्तजाम हो जाएगा। पर तीन वर्ष बीत गए और कुछ भी तो नहीं हुआ। उस दिन मैंने जो कुछ कहा था, अब लगता है कि वह गलत था।"

नाटक और नाट्य-कला

इसके बाद नाटकों का जिक्र चल पड़ा। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से हिन्दी नाटकों के बारे में पूछा। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि लक्ष्मीनारायण मिश्र या गोविन्दवल्लभ पन्त तो दूर रहे, उन्होंने 'प्रसाद' तक का नाम कभी नहीं सुना था। जब मैंने निवेदन किया कि हिन्दी में यद्यपि अभी कोई अच्छा पेशेवर मंच तो नहीं बन पाया है, पर इधर नए ढंग के नाटक लिखे जरूर जा रहे हैं और अनेक स्थानों पर शौकिया दल उनको काफी सफलता के साथ खेलते भी हैं, तो जैसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। प्रसंग बदलते हुए वे बोले—"बंगला नाट्यशाला का इतिहास पढ़ा है। बंगला नाटक पढ़े हैं ? जानते हो, स्वाधीनता-पूर्व के युग में बंगाल को किसने प्रेरणा दी ? किसने जगाया ? इसी नाट्यशाला ने। अनेक नाटकों के चरित्रों के माध्यम से सब से पहले बंगला नाट्यशाला ने ही अंग्रेजों को भारत से भगाने का स्वप्न देखा था। पर आज तो हम बहुत बढ़ गए हैं। आज समय आ गया है कि हम नाटक को एक नया मोड़ दें। लोग अभी भी (अर्थात् सिनेमा के अधिक प्रचार और सस्तेपन के बावजूद) नाटक देखना चाहते हैं, बशर्ते कि नाटक सचमुच अच्छा हो।"

इसी सिलसिले में पश्चिम बंग सरकार की ओर से खोली गई संगीत-नाटक-अकादमी की चर्चा छिड़ गई, जिसका अध्यक्ष होने से शिशिर बाबू ने इन्कार कर दिया था। बड़े संयत भाव से शिशिर बाबू ने इस बारे में हुई बातचीत का जिक्र करते हुए कहा—"हमारा मत मिला नहीं, इसी से मैंने अस्वीकार कर दिया।" और फिर तनिक आवेश के साथ बोले—"क्या सिर्फ रुपयों और पाठ्य-पुस्तकों से ही कहीं अभिनेता तैयार किए जा सकते हैं ? स्कूल खोल कर अभिनय-कला सिखाई जा सकती है ? यहां तो मुझे नाम और पैसे की भूख के सिवा किसी भी शिक्षार्थी में अभिनय-विद्या या नाट्य कला के प्रति कोई निष्ठा दिखाई नहीं देती। कितने लोग हैं, जो सच्चे मन से अभिनय-कला सीखना चाहते हैं ? कुछ सुनकर, कुछ नकल कर, बस स्टेज पर आए, एक दो बार तालियां पिटीं और उन्होंने समझा कि बस, हम तो हो गए कुशल अभिनेता ! कोई एक किताब पढ़ने या मेहनत करने तक को तो राजी नहीं। अब मुझे ही देखो न, बूढ़ा हो गया हूं, आंखों से दिखाई नहीं देता, पर कोई अच्छा नाटक या अभिनय-कला पर कोई नई पुस्तक हाथ लग जाए, तो पढ़े बिना जी ही नहीं मानता।"

मेरे यह कहने पर कि आपका अनुभव ठीक हो सकता है, पर आप शायद अभिनय-कला सीखना चाहने वालों की जरूरत से ज्यादा कड़ी परीक्षा लेना चाहते हैं, क्योंकि आखिर ऐसी कौन-सी कला है, जो प्रबल इच्छा और प्रयास होने पर भी सीखी न जा सके, तो वे बोले—"यह तो मैंने नहीं कहा। स्वयं मैंने कितने ही लोगों को अभिनय-कला सिखाई है, जैसे विश्वनाथ, शैलेन, प्रभा, कंका आदि। पर सब एक-एक कर

ज्यादा पैसे के लोभ से दूसरी कम्पनियों में चले गए। किसी एकाध खेल में थोड़ा-सा नाम होने पर ही ये समझने लगे कि ये बहुत बड़े सफल अभिनेता-अभिनेत्री हो गए। पर इससे तो काम नहीं चलता। मेरे साथ जिन्होंने साधारण-साधारण चरित्रों के अभिनय में नाम कमाया था, वे अन्यत्र जाकर किसी भी स्मरणीय चरित्र की सृष्टि करने में सफल नहीं हुए।"

मैंने निवेदन किया—"अभिनय की कला और उसके कौशल को आयत्त करना हर व्यक्ति के लिए तो शायद सहज स्वाभाविक रूपेण सरल भी नहीं है, फिर भी इस सफलता के लिए भी नाटक में खासा दम होना चाहिए। उदाहरण के लिए आज भी बंगला या हिन्दी में शेक्सपियर, ऑस्कर वाइल्ड, बर्नार्ड शॉ, यूजीन ओनील आदि के अच्छे रूपांतर जितने जमते हैं, उतने देशी भाषाओं के मौलिक नाटक नहीं। इसके बाद मैंने हाल ही में कलकत्ते में रंगमंचों पर 'सफलता के साथ ५-५ सौ बार खेले गये' कुछ बंगला नाटकों के अनाटकीय तत्वों का उल्लेख कर बताया कि इनके द्वारा बंगला रंगमंच भले ही जीवित रखा जा रहा हो, पर क्या उन्हें वे सचमुच नाटक कहेंगे?"

आंखें मूंद कर जोर से अपना सिर हिलाते हुए उन्होंने कहा—"नहीं, कदापि नहीं। बंगला नाटकों की कमी तो मुझे लज्जास्पद लगती है। यूजीन ओनील के नाटक मुझे सब से ज्यादा पसंद हैं। बंगला में तो उस कोटि का एक भी नाटक नहीं।" यह कहते-कहते विषाद से उनके चेहरे की नसें तन सी गईं और उनका चेहरा फीका पड़ गया।

दुराग्रही दुराचारियों पर प्रहार

अदम्य उत्साह और निष्ठा की इस मूर्ति, प्रचंड प्रतिभा के इस प्रतीक और कभी किसी के सामने न झुकने वाले इस कट्टर आदर्शवादी पर छाई विषाद की छाया से मैं भी अछूता न रह सका। भान ही नहीं रहा कि अब उनसे क्या कहूं या क्या पूछूं? मुझे चुप देखकर जैसे मंच पर अपने किसी सह अभिनेता से पूछते हों, वैसे ही एक फीकी मुस्कराहट के साथ शिशिर बाबू ने पूछा—"क्या सोचने लगे? चुप क्यों हो गए?"

सहसा मेरे दिमाग में दीनबंधु मित्र के 'सधवार एकादशी' नाटक की बात कौंध गई। कुछ ही दिनों पहले मैंने उस नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया था। यद्यपि उसमें उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाली समाज का शराबखोरी से हुआ सामाजिक और नैतिक पतन अपनी सारी कुरूपता और करुणा के साथ आंखों के सामने आ खड़ा होता था, पर कुल मिलाकर मुझे वह नाटक की दृष्टि से विशेष सुरुचिपूर्ण नहीं लगा था। मुझे लगा था कि उसके कई स्थल तो किसी शालीन गोष्ठी या गृहस्थी में पढ़कर भी नहीं सुनाए जा सकते। मैंने सुना था कि शिशिर बाबू ने न जाने कितने हफ्तों तक उसे मंचस्थ किया है और उसमें निमचांद का अभिनय अद्भुत कौशल के साथ कर उसे गौरवास्पद भी बनाया है। अतः मैंने उत्सुकतावश पूछा—"आप जैसा आदर्शवादी और निष्ठावान कलाकार भला 'सधवार एकादशी' जैसे निकृष्ट और गंदे नाटक में अभिनय करने के लिए अपने आपको राजी कैसे कर सका?"

उनकी बड़ी-बड़ी आंखों में सहसा एक चमक नजर आई और बड़ी दर्प-दीप्त दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"तुमने अच्छी तरह पढ़ा है उस नाटक को? उसका अभिनय देखा है?"

"जी, उसका अभिनय तो अभी तक नहीं देखा, पर पढ़ा जरूर है। मैंने उसका हिन्दी में अनुवाद भी किया है।"—मैंने नम्रतापूर्वक कहा।

"खाक पढ़ा है!"—गर्दन को एक झटके के साथ दूसरी ओर मोड़कर उन्होंने तनिक खिन्नता के साथ कहा—"अच्छा, एक बार घर जाकर उसे फिर से अच्छी तरह पढ़ो। मेरा तो मत है कि वह बंगला का एक अन्यतम श्रेष्ठ नाटक है। उसका मुख्य उद्देश्य सिर्फ शराबियों को गालियां देना ही नहीं, बल्कि जो लोग शराबखोरी में अंग्रेजों की नकल कर देशी अंगरेज बनना चाहते थे, उन पर वह एक तगड़ा सटायर (व्यंग-विद्रूप) है।"

अपने बंगला और बंगाली समाज के नाम मात्र के ज्ञान के आधार पर मैंने शिशिर बाबू जैसे महान और सूक्ष्म दृष्टि वाले कलाकार से अधिक तर्क करना ठीक नहीं समझा और चुप हो रहा। बात गई-आई हुई। पर कुछ दिनों बाद जब मैं शिशिर बाबू की सेवा में उपस्थित हुआ, तो उन्होंने सूचना दी कि २४-२५ अगस्त, १९५८ को वे थियेटर-सेंटर के मंच पर 'सधवार एकादशी' खेलने जा रहे हैं, अतः मैं उसे देखने जरूर जाऊं। मैंने बताया कि मैं उसे देखने आ रहा हूं। वे बोले—"देखकर फिर मुझे अपना मत बताना।" मैंने वचन दिया और चला आया।

संयोग से दोनों ही दिन मैं 'सधवार एकादशी' देखने गया और अकेला ही बैठा, ताकि अपना पूरा समय मैं नाटक को ध्यान से देखने में लगा सकूं। छोटा हाल तो पूरा भरा ही था, पर उससे चौगुनी-पचगुनी भीड़ थी आसपास और बाहर। शिशिर बाबू के अभिनय पर जो प्रशस्तियों की बौछार हुई, तालियों की जो गड़गड़ाहट हाल को गुंजाती रही—वह आज भी याद है और याद है यह भी कि ७० वर्ष के शिशिर बाबू ने २४-२५ साल के शराबी निमचांद का जो सजीव, सफल और कुशल अभिनय किया, उसे देखकर लोग विस्मय-विमुग्ध रह गए। मंच पर जैसे ७० वर्ष के बूढ़े शिशिर बाबू नहीं, बल्कि एक शराबखोरी से बिगड़ा हुआ नौजवान अपनी सारी कुंठाओं, क्लीवता और करुणा के साथ सशरीर उपस्थित था। उसका अभिनय देखकर लोगों की आंखें भर आईं, मन भर आया। कई अच्छे नाटकों में तो मैंने शिशिर बाबू का अभिनय देखा ही था, पर यह अभिनय देखकर मुझे ऐसा लगा जैसे उनके अभिनय ने इस नाटक को किसी गंदी नाली से निकाल कर स्वर्ण सिंहासन पर ला बिठाया हो। मुझे लगा कि मैं कोई नाटक नहीं देख रहा, बल्कि १९वीं शताब्दी के एक ऐसे मध्य-वित्त बंगाली परिवार में रह रहा हूं, जिसे शराब और बाईजी नैतिक पतन के गहनतम गह्वर में लिए जा रहे हैं। शिशिर बाबू के सजीव और यथार्थपूर्ण अभिनय ने उसे एक अद्भुत जादुई प्रभाव दे दिया था। मेरे पास जैसे इसकी प्रशंसा के लिए ठीक-ठीक शब्द ही नहीं थे।

कुछ दिनों बाद जब मैं शिशिर बाबू से फिर मिला, तो मैंने अपना परिवर्तित मत उन्हें बताया। सुनकर उन्हें संतोष हुआ। साथ ही मैंने निवेदन किया—"पर सच पूछिए, तो मुझे दीनबंधु बाबू का 'नील-दर्पण' ही उनका सर्वश्रेष्ठ नाटक लगता है। वैसे इस विशेष समस्या पर 'सधवार एकादशी' की अपेक्षा मुझे गिरीश घोष का 'प्रफुल्ल' ज्यादा अच्छा नाटक लगा।"

"तो तुमने पढ़ा है 'प्रफुल्ल'?"—उन्होंने पूछा।

"जी हां, पढ़ा है और उसका अभिनय भी देखा है। उसमें योगेश की भूमिका में आपका अभिनय देखा है और एक दूसरे अभिनेता का भी।"

जैसे किसी वृक्ष के उखाड़ने से जमीन में छिपी-मुंदी उसकी जड़ों का गुच्छा ऊपर निकल आता है, वैसे ही 'प्रफुल्ल' का नाम आते ही शिशिर

बाबू के मन के किसी कोने में दबा पड़ा स्मृतियों का एक उलझा हुआ-सा गुच्छा ऊपर आ गया। बड़े भावुकतापूर्ण स्वर में बोले—"'प्रफुल्ल' की बात जाने भी दो। यह तो तुम्हारे पैदा होने से भी पहले की बात है। पहले-पहल वह शायद १८८६ में (यह उस साल की बात है, जब मेरा जन्म हुआ था) स्टार थियेटर के मंच से खेला गया था, जिसमें योगेश की भूमिका में अभिनय किया था अमृतलाल मित्र ने। फिर १८९५ में जब वह क्लासिक थियेटर के मंच पर खेला गया, तो इस भूमिका में स्वयं गिरीश बाबू ने अभिनय किया था। मैंने तो कई वर्ष बाद जब उन्हें इस भूमिका में देखा, तब मैं काफी छोटा था। पर गिरीश बाबू के अभिनय और 'प्रफुल्ल' नाटक की छाप मेरे मन पर बड़ी गहरी पड़ी। उन दिनों टेम्परेंस (मद्यपान निवारण) आंदोलन बड़े जोरों पर था। बंगाली समाज नैतिक पतन की चरम सीमा भी जैसे लांघ गया था। लोग घर का सब कुछ फूंकने के बाद भीख मांग-मांग कर भी शराब पीते थे। भीख मिलना भी बन्द हो जाता, तो पता नहीं क्या करते धरते रहे होंगे। पर फिर किसी दिन उनकी लाश किसी गली रास्ते में ही पड़ी नजर आती थी। बड़े-बड़े खानदानी लोग भी घर पर शराब पीकर ऐसा ऊधम मचाते और मार पीट करते थे कि पास पड़ोस वाले की तो कौन कहे, उनके घर के स्त्री-बच्चों को भी घर के बाहर ही रात बितानी पड़ती थी। 'प्रफुल्ल' के रमेश का परिचय तो तुम्हें है न? उस तरह के वकील बैरिस्टरों की तत्कालीन बंग-समाज में कमी नहीं थी। ये गुंडे और दलाल रखते थे, जो बहका-फुसला या ज़ोर-जबरदस्ती छीन कर भी भले घरों की बहू-बेटियों को भगा लाते थे। इनके द्वारा ये लोग अपने मुवक्किलों की हविस पूरी करते थे। प्रायः बगीचों और गंगा के किनारे बने मकानों में ही ऐसे लोगों की सुरा सुन्दरी की महफिलें जमती थीं।"

कहते-कहते वे रुके। उनकी चुरुट शायद बुझ गई थी। उसे सुलगाया और फिर एक लंबा कश खींच कर अन्यमनस्क भाव से धुआं छोड़ते हुए बोले—"उन दिनों थियेटरों का वातावरण भी इससे अछूता नहीं बच सका था। मैंने अपनी आंखों से तो नहीं देखा, पर सुना जरूर है कि थियेटर समाप्त होने पर—और वह प्रायः रात के २–३ बजे ही समाप्त होता था—ग्रीन रूम शराबियों की कृपा से ग्रीन हैल से भी बदतर हो उठता था।" यह सुनकर मेरे मन में तो आया कि शिशिर बाबू से ही पूछूं कि तब आज भी बंगाल के सिर्फ उच्चवर्गीय लोग ही नहीं, बल्कि चोटी के अनेक अभिनेता अभिनेत्रियों, जिनमें शिशिर बाबू भी शामिल हैं, अपने आपको शराब से बरबाद क्यों किए दे रहे हैं? पर विषयान्तर के डर से पूछ न सका। वैसे बाद में एक अन्य अवसर पर शिशिर बाबू ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया कि बंगाल में इस ज़हर का प्रभाव-प्रचार आज भी कुछ कम नहीं है।

सारी बातों को जान-सुन कर मैंने महसूस किया कि सचमुच इस परिस्थिति में आकंठ शराब के गंदे नाले में डूबे बंगाली समाज को सर्वनाश नेस्तनाबूद होने से बचाने में 'प्रफुल्ल' और 'सधवार एकादशी' ने ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया है। इनमें दुराग्रही दुराचारियों और समाज विरोधी तत्वों पर किए गए निर्मम प्रहारों और व्यंग-विद्रूपों ने बंगाली समाज को इस खतरे की जहरीली नींद से जगाया है, गिरे हुओं को उठाया और उद्बुद्ध किया है, इस बारे में कोई दो मत नहीं हो सकते। इसके अभिनयों को अधिक सबल, सजीव और लोकप्रिय बनाकर शिशिर बाबू ने इस कड़ी को टूटने नहीं दिया। यही बात शरत बाबू की 'षोडशी' में उनके द्वारा किए गए जीवानंद के अभिनय के बारे में भी कही जा सकती है।

अध्यापन से अभिनय की ओर

शिशिर बाबू से मिलकर वैसे तो उनकी बातचीत के रूप में हर बार कुछ-न कुछ मिला ही है, पर उनके मुंह से उनके बारे में कुछ जानने की उत्सुकता जैसे कभी भी पूरी नहीं हुई। प्रसंगवश या परोक्ष रूप से उनके मुंह से कभी कोई बात भले ही निकल जाय, अन्यथा अपने बारे में प्रायः वे कोई चर्चा ही नहीं करते थे। न वे अपनी प्रशंसा किसी दूसरे के मुंह से सुन कर खुश होते थे और न अधिक पत्रकारों से ही भेंट करते थे।

एक बार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त, राय कृष्णदास और डा० मोतीचंद कलकत्ता आए हुए थे। तय हुआ कि शिशिर बाबू का कोई नाटक देखा जाय। उन दिनों श्रीरंगम् में कई हफ्तों से उनका 'परिचय' चल रहा था। हम सब उसी को देखने गए। गुप्त जी का सरल-करुण वैष्णव-हृदय तो इस नाटक में हिन्दू अबला की दुरवस्था देखकर इतना पिघला कि वे पूरे नाटक भर अपने आंसू नहीं रोक सके।

इंटरवल में शिशिर बाबू से मिलने की इच्छा प्रकट की। पहले मैं अकेला भीतर गया और शिशिर बाबू से कहा। वे मेक-अप में थे और अभिनय की थकान दूर करने को एक तख्त पर मोटे गावतकिए के सहारे अधलेटे थे। मुझे देखते ही पूछा—"नाटक देखने आए हो? कैसा लग रहा है?" मैंने इस बात को टालकर तीनों आगंतुक सज्जनों का परिचय देते हुए कहा कि वे एक मिनट के लिए आपसे मिलना चाहते हैं। तनिक संकोच के साथ वे बोले—"किस लिए? इतने बड़े-बड़े विद्वानों से मैं भला क्या बात करूंगा। मैं तो कोई लेखक, कवि या अध्यापक नहीं, एक सामान्य नट हूं, कोरमकोर अभिनेता। मैं भला उनसे क्या बात करूंगा?"

मैंने कहा—"बातें कोई खास नहीं हैं। चूंकि वे लोग बाहर से आए हैं, अतः सिर्फ आपको देख भर लेना चाहते हैं। अच्छा, तो मैं उन्हें लिवाए लाता हूं।"

और यह कह बिना शिशिर बाबू की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए मैं बाहर चला आया और तीनों अतिथियों को भीतर लिवा ले गया। शिशिर बाबू ने उठ कर तीनों का अभिवादन किया और फिर अपने मेक-अप को दिखाते हुए बोले—"इस वेश-भूषा में मैं भला क्या आपका स्वागत करूं? बड़ी कृपा की आपने दर्शन देकर और मेरा उत्साह बढ़ाकर।" इसके बाद चंद मिनट कुछ इधर-उधर की बातें हुईं और फिर हम लोग चले आए।

कुछ दिन बाद जब फिर शिशिर बाबू से भेंट हुई, तो उन्होंने तीनों महानुभावों का विस्तृत परिचय पूछा और सुनकर बोले—"तुम्हारे हिन्दी में इतने बड़े-बड़े विद्वान हैं। क्षेत्र भी काफी विस्तृत है और साधन-सुविधाएं भी प्रचुर हैं। क्यों नहीं वे लोग कुछ अच्छे नाटक प्रस्तुत करते। बड़े-बड़े सभी नगरों में हों तो राष्ट्रीय रंगमंचों की बड़ी आवश्यकता है।"

"सो तो है।"—मैंने सहज भाव से कहा—"नाटकों पर जितना ध्यान देना चाहिए, हमारी हिन्दी में अभी तक उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा। सभी तो आपकी तरह हैं नहीं, जो प्रोफेसरी या और कोई अच्छा धंधा छोड़कर अभिनय के क्षेत्र में आएंगे।"

"ओह!"—कुछ आश्चर्य के साथ उन्होंने गौर से मेरी ओर देखकर कहा—"तो तुम्हें मालूम है मेरी प्रोफेसरी की बात?"

मैंने कहा—"हां, आपके सहपाठी डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ही एक बार बातों के सिलसिले में बताया था। पर तभी से मेरे मन में एक जिज्ञासा भी बनी हुई है।"

"वह क्या ?"

"यही कि जब आप अंग्रेजी के इतने अच्छे अध्यापक थे, तो आपका अभिनय की ओर झुकाव कैसे हुआ ? क्यों हुआ ?"

वे एक क्षण चुप रहे। फिर बोले—"मुझे कई नाटकों की कई-कई भूमिकाएं तो जबानी याद हैं, पर अपने बारे में कुछ भी याद नहीं।"

"फिर भी आखिर यह तो आप बता ही सकते हैं कि अभिनय को पेशे के रूप में आपने क्या समझ कर अपनाया ?"

"पैसे या पेट के लिए तो हर्गिज नहीं। यद्यपि अध्यापक के रूप में मुझे १५०) रु० मासिक मिलते थे और मेडन थियेटर ने मुझे ७५०) रु० दिए थे।"—दूसरी ओर मुंह फेर कर दृप्त स्वर में उन्होंने कहा—"अभिनय में मुझे रस आता था और इस रस-सृष्टि को मैं सर्वसाधारण में बांटने को उतावला हो पड़ा। १० दिसम्बर, १९२१ का दिन तो मुझे कभी नहीं भूलेगा, जब कि मैंने पहली बार पेशेवर कम्पनी की तरफ से 'आलमगीर' में अभिनय किया था। इसके बाद तो न जाने कितने नाटकों में अभिनय किया। पर जो कुछ करने का सोचकर मैं इस क्षेत्र में उतरा था, वह तो आज तक भी नहीं कर पाया। मैं तो नाट्य-कला का एक सेवक मात्र हूं। भला अकेला सेवक क्या कर सकता है ? राष्ट्रीय रंगमंच का निर्माण तो सब के सम्मिलित प्रयत्न से ही सम्भव है। परिवर्तन के चक्र में पड़कर सभी कुछ बदल रहा है। पर जब तक मेरा शरीर ठीक है, आवाज ठीक है, दिमाग खराब नहीं होता, मैं अपना प्रयत्न जारी ही रखूंगा।"

प्रथम और अंतिम स्वप्न

एक दिन शिशिर बाबू ने बड़ी वेदना भरे स्वर में कहा था—"मुझे विश्वास है कि मेरे मरने के बाद भी मेरी अभिनय शैली जिन्दा रहेगी, मेरे द्वारा चलाई गई प्रयोग-पद्धति भी जारी रहेगी। पर मेरा उद्देश्य नाटक या अभिनय से जीविकोपार्जन करना या अपने आपको अमर बनाना तो नहीं। मेरा एकमात्र स्वप्न या ध्येय तो रहा है राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना। अंग्रेजी में एक कहावत है कि A nation is known by its stage (किसी भी देश की पहचान उसके रंगमंच से ही होती है)। यह बिलकुल सच बात है। ड्यूक आफ विलिंग्टन को कौन याद रखेगा ? अगर लोग याद रखेंगे, तो शेक्सपीयर को, बर्नार्ड शॉ को।"

कुछ रुक कर वे फिर बोले—"जानते हो, स्वाधीनता-पूर्व के भारत के इतिहास में नाट्यशाला की देन कितनी है ? बंग-भंग और असहयोग के समय बंगाल को प्रेरणा और उद्‌बोधन एकमात्र नाट्यशाला से ही मिले। 'नील-दर्पण' आदि के अनेक चरित्रों की ओट में बंगाल ने ही सर्व-प्रथम अंगरेजों को भारत से हटाने का स्वप्न देखा था। पर नाटक की आज कोई कद्र नहीं। कोई अच्छा रंगमंच ही नहीं।"

कुछ ही दिन पहले शिशिर बाबू आकाशवाणी के कलकत्ता केन्द्र से रेडियो नाटक प्रसारित करना और 'पद्मभूषण' उपाधि भी अस्वीकार कर चुके थे, अतः सरकार की ओर से कुछ कहने का साहस मुझे नहीं हुआ। फिर भी मैंने साहस बटोर कर निवेदन किया—"आपका मत चाहे जो भी हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि रेडियो और संगीत-नाटक अकादमी के प्रयत्नों से नाटक की प्रवृत्ति को कुछ-न-कुछ प्रोत्साहन तो मिल ही रहा है—भले ही यह पूर्णतया संतोषजनक न हो।"

"खाक मिल रहा है।"—वे कुछ झल्लाकर बोले।

मैंने और अनुनयपूर्ण स्वर में कहा—"देखिए, उपाधियों या पुरस्कारों की महत्ता बहुत अधिक भले ही न हो, लेकिन शिशिर बाबू, क्या आप यह नहीं मानेंगे कि आपका सम्मान करना आपके मंच-कौशल और कृतित्व की स्वीकृति है ? यह बंगाल ही नहीं, देश के रंगमंच और नाट्य-प्रवृत्ति का सम्मान है ?"

"देखो बाबा, यह सब मैं कुछ नहीं जानता।"—दोनों हाथों को दोनों ओर फैला कर गर्दन नीची कर वे बोले—"खिताब विताब मैं कतई पसन्द नहीं करता। मुझे थियेटर से प्रेम है, रंगमंच से प्रेम है, इसीलिए मैंने इन्हीं को लेकर अब तक की जिन्दगी बिताई है। आज अचानक मुझे सम्मानित करने या मेरी कला की स्वीकृति दिखाने की जरूरत क्यों हुई ? अगर मेरे प्रति सरकार के मन में कुछ भी दरद होता, तो रंगमंच के प्रति भी होता। अतः मुझे उपाधि से सम्मानित करने के बदले मुझे ज्यादा खुशी होती, अगर वह कलकत्ता में एक अच्छा रंगमंच स्थापित करने की घोषणा करती। मेरी दृष्टि में कोरे खिताबों और उपाधियों का तो कोई मूल्य नहीं।"

मैं चुप हो रहा। दूसरे ही क्षण अपनी सजल आंखें मेरी ओर घुमा कर बड़े आर्द्र कण्ठ से शिशु सुलभ सरलता के साथ उन्होंने कहा—"जानते हो, 'सीता' का अभिनय देखकर कार्पोरेशन के तत्कालीन मेयर देशबंधु चित्तरंजन दास ने मुझे बधाई देते हुए कहा था—'शिशिर, मैं तुम्हारे लिए कलकत्ता में अवश्य एक राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना करवाऊंगा।' नेताजी सुभाषचन्द्र बसु ने भी मुझे यही वचन दिया था। पर कहां ? कुछ भी तो नहीं हुआ! देश के स्वाधीन होने के बाद मैंने राष्ट्रीय सरकार से राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की दिशा में बड़ी-बड़ी आशाएं की थी। पर वैसा कोई सुयोग मुझे नहीं मिला। तब फिर कोरी उपाधि लेकर मैं क्या करूंगा ? जानते हो, जब ब्रिटेन के बादशाह ने जार्ज बर्नार्ड शॉ को खिताब बख्शा, तो उन्होंने उसे वापस करते हुए कहा था—"The name G B S needs no decoration !" (जी० बी० एस० नाम के साथ किसी आलंकारिक उपाधि की जरूरत नहीं)! यही बात मेरी भी है। मैं शिशिर भादुड़ी, शिशिर भादुड़ी ही भला। उपाधि आदि मुझे नहीं चाहिए।"

और यह सब जिस गहरी अनुभूति से उन्होंने कहा, उसकी साक्षी उनकी अश्रुपूर्ण आंखें दे रही थीं।

कहना न होगा कि शिशिर भादुड़ी वास्तव में अपने जीवन के अंतिम क्षण तक शिशिर भादुड़ी ही बने रहे और राष्ट्रीय रंगमंच का उनके जीवन का प्रथम स्वप्न उनका अन्तिम स्वप्न बन कर ही रह गया। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं शिशिर बाबू जितना हताश-निराश नहीं हूं। मेरा विश्वास है कि अगर भारत में शिशिर बाबू का नाम रहेगा, उनकी अभिनय-शैली रहेगी, उनकी प्रयोग-पद्धति रहेगी, तो एक-न-एक दिन उनका राष्ट्रीय रंगमंच का स्वप्न भी अवश्यमेव सत्य होकर रहेगा। उनके देशवासी अवश्य उनके जीवन की इस साध को पूरा करेंगे।

आंख सम्बन्धी हिन्दी तथा मराठी वाक्सम्प्रदाय

हरिहर प्रसाद गुप्त

वाक्सम्प्रदायो (मुहावरो) में अभिधेय अर्थ के स्थान पर व्यंजना की प्रमुखता होती है। इसलिए ये भाषा को सजीव, सटीक एवं प्राणवत बनाने में अत्यन्त सहायक होते हैं। भाषा के ये अलंकरण हैं। हमारी भावना को थोड़े से शब्दों में जितनी क्षमता से ये व्यक्त कर लेते हैं उतनी समर्थता से उस भाव का अभिव्यक्तीकरण लम्बे-लम्बे वाक्यों द्वारा नहीं हो सकता। किसी विचार को प्रभविष्णु बनाने के लिए इनकी उपादेयता अत्यधिक है। भावना की तीव्रता इनके सृजन का मुख्य कारण है, अत स्वाभाविकता इनका विशेष गुण है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों में आंख का सर्वोच्च स्थान है। इनके द्वारा न केवल हम ज्ञान की प्राप्ति करते हैं वरन् इनकी भाव-भंगिमा, इनका वर्ण, इनकी दशा आदि से हम किसी व्यक्ति के अन्तस्तल की गहराई तक पहुचने में भी समर्थ होते हैं। किसी की मुखाकृति के अध्ययन में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे चरित्र को प्रतिबिंबित करने में ये दर्पण का काम करती हैं। *आंखो का लाल होना, इनका घूरना, इनका निर्निमेष देखना,* आदि से क्रोध, उत्सुकता आदि भावो का सहज परिचय मिल जाता है। तिरछी चितवन का शृगार के अनुभावो में एक मुख्य स्थान है। अत इनसे हम किसी के प्रेम, रोष, शोक, जुगुप्सा आदि भावो को भाप लेने में सब से अधिक समर्थ होते हैं। वस्तुत ये वाणीहीन होते हुए भी सवाक् हैं। साहित्य में भी इसीलिए इनकी विशेष चर्चा है, इनसे सम्बन्धित वाक्सम्प्रदायो की संख्या प्रत्येक भाषा में काफी मिलती है। इस निबन्ध में हिन्दी तथा मराठी में प्राप्त एतत् सम्बन्धी सम्प्रदायो को तुलनात्मक अध्ययन के रूप में रखा जा रहा है। इससे न केवल हम दो आर्य भाषाओ के तुलनात्मक विकास को ही समझने में समर्थ होंगे वरन् उनकी समानता के आधार पर हम दोनो भाषाओ के कितने ही शब्दों-वाक्यांशों आदि के मूल को भी खोजने में सफल होंगे। भारतीय आर्य भाषाओ के इस प्रकार के अध्ययन की आज कितनी अपेक्षा है यह हम प्रत्येक क्षण अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार का अनुशीलन न केवल भाषा-वैज्ञानिको के लिए ही महत्वपूर्ण है वरन् भारतीय एकता को सुदृढ़ देखने वाले प्रत्येक राष्ट्र सेवी के लिए यह रुचिकर होगा।

१ आंख आना या उठना—मराठी में आंख के लिए डोला (पु०) शब्द व्यवहृत होता है। अत इसे डोले यणे (आना) कहते हैं। डोले उठण वाक्सम्प्रदायो के रूप में नही प्रयुक्त होता यद्यपि 'उठणे' क्रिया ऊपर उठने अथवा सूजने के अर्थ में प्रयुक्त होती है।

२ आंख उठाना या उठाकर देखना—यह एक तो देखने के अर्थ में आता है जिसके लिए मराठी में पाहणे शब्द है। दूसरा अर्थ हानि पहुंचाने की दृष्टि से देखना है, एतदर्थ भासदेणे, वक्रदृष्टि अथवा वाकड्या नजरेने (वैर दृष्टि) पाहणे प्रयुक्त होता है। वाकडा (टेढ़ा) डोला तिरस्कार की दृष्टि या बुरी नजर का बोधक है।

३ आंख उलट जाना—यह मृत्यु के पूर्व की उस भयावह अवस्था का द्योतक है जब पुतली उलट या फिर जाती है और केवल डेले का श्वेत भाग ही दिखाई पड़ता है, इसके लिए मराठी में डोले पाढरे (पाढर-श्वेत) करणे या होणे प्रयोग में आता है। प्राण की अत्यन्त संकटावस्था अथवा घबराई हुई दशा में भी इसका प्रयोग होता है।

४ आंख का काजल चुराना—यह अत्यन्त चालाकी के भाव को अभिव्यक्त करता है। मराठी में भी डोल्यातले काजल चोरणारा पक्के चोर के लिए प्रयुक्त होता है।

५ आंख खुलना—यह नींद टूटने, भ्रम दूर होने अथवा होश में आने के अर्थ में आता है। मराठी में इसे डोले उघडणे (खुलने) कहते हैं। 'रामचरितमानस' में उघरत, उघरहि, उघरे तथा उघारा (उघरना, उघड़ना स० उद्घाटन्) खुलने-खोलने के अर्थ में बराबर आया है। जनपदीय भाषा में अब भी यह प्रयोग चलता है। साहित्यिक हिन्दी में इसे *अपना लेना चाहिए।* मराठी में *उघडणे अकर्मक तथा सकर्मक (अर्थात्* खुलने और खोलने या प्रकट करने) दोनो ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। अर्थ-विस्तार से मराठी में बारिश थमने, बादल छटने अथवा अच्छे दिन आने के अर्थ में भी उघडणे का व्यवहार होता है। उघडझाप बार-बार खोलने और बन्द करने तथा अर्थ विस्तार से बादलो के बार-बार आने और छटने के लिए आता है। मराठी में उघडकीस आणणे—बात खोल देने या भंडाफोड करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। विशेषण के रूप में उघड—स्पष्ट, या प्रकट तथा उघडा—खुला नंगे बदन व अर्थ विस्तार से अनाथ या निराश्रित के लिए प्रयुक्त होता है। हिन्दी नंग-धड़ंग के लिए उघडा वाघडा तथा बिना लाई-चुपड़ी या चिकनी-चुपड़ी बात अथवा साफ हिसाब के लिए मराठी में उघडा हिशोब आता है।

६ घूरकर अथवा आंखें फाड़-फाड़ कर देखने के लिए मराठी डोले फाडून पाहणें आता है। हिन्दी फाडना और मराठी फाडणे दोनो ही समानार्थी हैं। हि० फाड खाना म० में फाडून खाणे—बरस पड़ना (क्रोध से) अथवा टूट पड़ने के अर्थ में आता है।

७ आंख खोल कर पढ़ना—ध्यानपूर्वक या भली भांति ठीक-ठीक पढ़ने के लिए आता है। म० में इसके लिए डोले फाडून वाचणे प्रयुक्त होता है। हि० फोड़ना म० में भी फोडना, चीरना, तोड़ना तथा अर्थ विस्तार से फूट डालना, अलग करना, रहस्य प्रकट करना आदि के अर्थ में आता है। ताश के पत्तो को खोलने के लिए भी इसका प्रयोग है। फूट डालकर काम निकालने के लिए म० में फोडा नि झोडा वाक्यांश प्रयुक्त होता है तथा फोडून काढणे का प्रयोग हि० खाल उधेड़ना अथवा खाल खींचने के अर्थ में आता है।

८ आंख में खटकना (अर्थात बुरा लगने) के लिए म० में डोल्यावर (आंख पर) येणे प्रयुक्त होता है।

९ आखे चार करना या मिलाना--इसके लिए म० मे नजर भिडवणे प्रयुक्त होता हे। नजर शब्द हिन्दी मे भी प्रयुक्त होता है। हि० भिडना तथा भिडाना म० में क्रमश भिडणे तथा भिडविणे के रूप में हे तथा भिडा हुआ क्रिया विशेषण के लिए भिडलेला प्रयुक्त होता है। हि० आखे चार होना के लिए म० मे दृष्टादृष्ट (सज्ञा) का प्रयोग हे।

१० आख चुराना अथवा बचाना--यह सामने न होने या कतराकर निकल जाने के लिए आता है। मराठी में एतदर्थ डोले नजर अथवा दृष्टि चुकविणे आता हे। हि० चूकना (भूलना, अवसर खो देना) के लिए म० में चुकणे हे। किन्तु अर्थ विस्तार से म० चुकणे--टलने या टल जाने के अर्थ में भी आता हे, सकर्मक रूप मे चुकविणे (टालना, कतराना) का प्रयोग हे।

११ सकोच या लज्जा के कारण आखें ऊपर या ऊची नहीं होती जिसे आखो का नीचा होना कहते हैं। म० में इसके लिए डोले वर (ऊपर) न होणे आता है।

१२ आख जाना--अधे होने के अर्थ में आता हे। म० मे डोले फुटणे इसी अर्थ मे हे, इसके अतिरिक्त डोल्याच्या खाचा (गड्ढा) होण भी प्रयुक्त होता हे।

१३ आख डबडबाना, उमडना या भर आना--यह अश्रु प्रकट होने के अर्थ में आता है, इसके लिए म० में एक रमणीय सम्प्रदाय है डोल्यात गगा यमुना येणे और आसुओ की झडी लगने के अर्थ में गगा यमुना वाहणे आता है। यह वाक्सम्प्रदाय सावन-भादो की झडी के लिए भी प्रयुक्त होता है। म० में गगा-जमनी यौगिक शब्द का प्रयोग बेमेल बात के लिए होता है। हिन्दी में ये विशेषण मिले-जुले ढग आदि का सूचक है। भोजपुरी (आजमगढ़, उ० प्र०) में गगा-जमुनी करब (करना) हल जोतते समय नाधा (हरिस और जुआठ को सम्बन्धित करने वाली रस्सी) को महदेउवा (जुआठ के मध्य का उठा हुआ भाग जहा नाधा अटकाया जाता है) के दोनो ओर रखने (समतोल के अभिप्राय से) के अर्थ में प्रयोग करते हे। मुहावरे की रचना में सादृश्य का कितना हाथ होता है यह ध्यान देने योग्य हे, गगा-यमुना महादेव आदि का नामकरण तथा वाक्याशो पर प्रभाव स्पष्ट है।

१४ कानपटी में जोर से मारने पर चोट लगने वाले व्यक्ति की आखो के आगे क्षण भर के लिए एक प्रकार का प्रकाश स्फुरण होने लगता है जिसे तारे दिखाई पडना या तारे छूटना या तिरमिरे छूटना कहते हैं। मराठी में भी यह लगभग इसी रूप में प्राप्त है--डोल्यापुढे काजवे (जुगनू) दिसणे।

१५ क्रोध की दृष्टि से देखने को आँख दिखाना, गुरेरना, तरेरना, निकालना, या लाल करना, या लाल लाल आँखे दिखाना अथवा तेवर बदलना या चढना आता है। मराठी में इसे डोले वटारणे या डोले लाल होणे अथवा रागानें (क्रोध से) पाहणे या पाहाणे कहते हैं। सस्कृत मे राग शब्द प्रेम, आसक्ति तथा रोष या क्रोध दोनो अर्थों में है। हिन्दी में राग शब्द का प्रयोग क्रोध के लिए कदाचित् ही मिले किन्तु मराठी में इसका प्रयोग अन्य अर्थों के अतिरिक्त क्रोध, कोप, रिस अथवा क्षोभ के लिए बराबर मिलता है। भाषा के अनुशीलनकर्त्ताओ के लिए यह एक प्रश्न उपस्थित करता है। राग से सम्बन्धित (क्रोध और ईर्षा के अर्थ में) मराठी में कई सम्प्रदाय हैं यथा, राग गिलणे--गुस्सा पी जाना, राग नाकावर असणें--गुस्सा नाक पर होना, राग मानणे--अप्रसन्न होना, राग येणे--क्रोध आना, गुस्सा चढना, रागाने लाल होणे--आग बबूला होना, अगारा होना या आपे से बाहर हो जाना, रागावणे--क्रोध में आना, चनखना, रूठना, सतराना, राग आजणे--चिढाना, राग करणे--खार (डाह) खाना, राग काढणे--खार उतारना।

१६ हि० आखे पथराना के लिए म० में डोले निश्चल या निर्जीव होणें आता हे।

१७ हि० आखो मे पालना के लिए म० में एक सुन्दर सम्प्रदाय है डोल्यात तेल घालून जपणे।

१८ आख प्यासी अथवा अतृप्त होना--इसके लिए डोल्यात प्राण उरणे (शेष रहना) है।

१९ आखो मे जचने या भाने के लिए म० में डोल्यात भरणे तथा आखो में समाने (हृदय मे बसना) के लिए डोल्यात मावणे (समाना) प्रयुक्त होता हे।

२० गर्व से किसी की ओर ध्यान न देने के लिए आखो मे चरबी छाना कहा जाता है, मराठी में इसके लिए डोल्यावर (आख पर) धुर येणे--(उन्माद होना) प्रयुक्त होता है।

२१ सरासर धोखा देना अथवा आखो मे धूल झोकना मराठी में भी ज्यो का त्यो डोल्यात धूल फेकणे के रूप में प्राप्त है।

२२ शुभ-अशुभ की सूचना आखो के फडकने से मिलती है, मराठी में इसके लिए डोले लवणे (हिलना) आता है।

२३ तृप्ति या शान्ति होने को आखे ठडी होना कहते हे। म० में इसके लिए एक तो डोले थड होणे किवा निवणें (प्रसन्न, शात या ठडा होना) है दूसरा डाल्याचे अथवा दृष्टीचे पारणे फिटणे है। स० पारण (हि० पारन) उपवास या व्रत के बाद अन्न ग्रहण करने को कहते है, म० में यह पारणे है। पारणे फिटणे का अर्थ हे इच्छा पुरी होना। धार्मिक लोकाचार तथा जीवन का वाक्सप्रदायो के निर्माण में कितना हाथ होता हे इसका यह एक सुन्दर उदाहरण है।

२४ इशारा करने को आख मारना कहते है। म० में भी डोले मारणे प्रचलित है, इसके अतिरिक्त इसे डोल्याची खूण (इशारा) भी कहते हैं।

२५ नेत्रो की तृप्ति के लिए आख भर देखना आता है जिसके लिए म० में डोले भरून पाहणे प्रयुक्त होता हे--एकनाथ ने एक स्थल पर लिखा हे 'पाहीन डोले भरून हरी। दुजी उरी ठेवीना।।'

२६ नीद आने को आख लगना कहते हैं, म० में इसे डोल्याशी डोला लागणे कहते है।

२७ हिन्दी तथा मराठी दोनो में नजर (दृष्टि) शब्द का प्रयोग होता है। किसी को कोई वस्तु भेंट करने के अर्थ में दोनो भाषाओ में नजर करना (म० करणे) सम्प्रदाय है। सरसरी नजर से देखने को म० में नजर टाकणे अथवा दृष्टि खालून जाणें कहते है। ध्यान में आने के लिए म० में नजर येणे तथा किसी की महत्वाकाक्षा बढने पर नजर फाकणें (फैलना) का प्रयोग है जो ध्यान देने योग्य है। म० नजर पडणें का अर्थ हि० दीठ लगने से है।

२८ दृष्टि शब्द म० में दृष्टि तथा दृष्ट दोनो रूपो में मिलता है अत दोनो से ही सम्बन्धित वाक्सप्रदाय है। हि० दीठ या नजर लगने के लिए म० दृष्ट लागणे तथा नजर अथवा दीठ उतारणे या दीठ जलाने के अर्थ में म० दृष्ट काढणें आता है। म० में दृष्ट भेट अतिम दर्शन (मरने

(शेष पृष्ठ ३० पर)

तीसरी द्यूत सभा

परशुराम

कुरुक्षेत्र का महायुद्ध आरम्भ होने में अभी बीस-पच्चीस दिन बाकी थे। महाराज युधिष्ठिर सुबह की सुहावनी बेला में अपने शिविर में बैठे थे और सहदेव उन्हें संगृहीत वस्तुओं की सूची पढ़कर सुना रहे थे। अर्जुन इस वक्त पांचाल शिविर की मंत्रणा सभा में उपस्थित थे। नकुल सेना की कवायद का निरीक्षण कर रहे थे और भीम विशेष रूप से आर्डर देकर बनवाई गई सौ गदाओं की देखभाल करने में व्यस्त थे। प्रत्येक गदा को वह उठाते और उसे हाथ में उछालकर इस बात का अन्दाजा लगाते कि किस गदा से धृतराष्ट्र के किस पुत्र को मारना ठीक रहेगा। ९९ गदाएं सागवान की लकड़ी की बनी हुई थीं। सिर्फ एक गदा कपड़े की थी। भीम ने कपड़े की इस गदा से दुर्योधन के अठारहवें भाई विकर्ण को मारने का निश्चय किया था। सौ भाइयों में यही एक लड़का ऐसा था जो 'सभ्य' कहला सकता था। द्रौपदी-चीर-हरण का अकेले इसी ने विरोध किया था।

सहदेव पढ़ते जा रहे थे—"जौ का सत्तू १,२०० मन, बेसन ८ लाख मन, चना ५० लाख मन ।"

युधिष्ठिर का धैर्य उनका साथ छोड़ गया। सुबह से ही यह सब सुनते-सुनते वह बुरी तरह घबड़ा उठे थे। किन्तु आग्रह न दिखाना भी उचित नहीं था। इसी सोच-विचार में पड़े थे कि प्रतिहारी ने उपस्थित होकर निवेदन किया—"महाराज की जय हो! एक कुब्ज पुरुष आपके दर्शनार्थ बाहर खड़े हैं। उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया। कहते हैं—महाराज से कुछ गुप्त बातें कहनी हैं।"

सहदेव ने झुंझलाकर कहा—"महाराज इस समय आवश्यक कार्य में व्यस्त हैं। उनसे फिर कभी आने के लिए कहो।"

किन्तु युधिष्ठिर हिसाब-किताब के इस झंझट से मुक्ति पाने का यह सुअवसर खोना नहीं चाहते थे। प्रतिहारी को रोकते हुए बोले—"नहीं, नहीं, उन्हें सम्मानपूर्वक यहां ले आओ!"

एक प्रौढ़ व्यक्ति ने अन्दर प्रवेश किया। वक्र शरीर, शीर्ण मुंडित मुंह सिर पर बड़ी पगड़ी और गले में नील-वर्ण रत्नहार। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने अभिवादन किया—"धर्मराज की जय हो!"

युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखते हुए पूछा—"आप कौन हैं सौम्य?"

"धृष्टता क्षमा करें, महाराज!" आगन्तुक ने उत्तर दिया—"मुझे जो-कुछ निवेदन करना है वह परम गोपनीय है। अत:"

युधिष्ठिर संकेत समझ गए। बोले—"सहदेव! अब तुम जा सकते हो। चने के जितने बोरे आए हैं उन्हें खोलकर देख लेना—कहीं उनमें घुन न लगे हों।"

सहदेव रुष्ट होकर वक्र दृष्टि से आगन्तुक को देखते हुए कमरे से बाहर चले गए। आगन्तुक ने एक बार चारों ओर देखकर एकान्त होने का विश्वास कर लिया और फिर धीमे स्वर में कहा—"मैं सुबल पुत्र मत्कुनि हूं महाराज! शकुनि मेरा सौतेला भाई है।"

"आप क्या कह रहे हैं?" युधिष्ठिर ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"फिर तो आप मेरे पूजनीय मातुल हुए। प्रणाम प्रणाम। आइए, सिंहासन पर विराजिए।"

"नहीं महाराज! मैं आपकी इस संवर्धना के अयोग्य हूं। मेरा आसन नीचे ही है—मैं दासी-पुत्र हूं।"

"अच्छा-अच्छा! तब आप उस शृगाल-चर्मावृत वेदी पर विराजिए। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मैंने इससे पूर्व आपको नहीं देखा।"

मत्कुनि ने सिर हिलाकर कहा—"कैसे देखोगे महाराज, मैं अधिकतर अंतराल में ही रहता हूं। इसके अलावा १३ वर्ष मैं विदेश रहा। कुबड़ा होने के कारण क्षात्र-धर्म पालन करने में तो समर्थ हूं नहीं अत: मन्त्र तन्त्र की सिद्धि कर दिन व्यतीत कर रहा हूं। विश्वकर्मा ने मुझे वरदान भी दिया है। धर्मराज! मैंने सुना है कि द्यूत-क्रीड़ा में आपकी प्रतिभा असामान्य है?"

युधिष्ठिर ने विरक्ति से सिर हिलाते हुए कहा—"हां! कुछ लोग ऐसा ही कहते हैं।"

"फिर भी आप शकुनि से क्यों हार गए, जानते हैं?"

धर्मराज की भौंहों पर बल पड़ गए। बोले—"शकुनि ने धर्म-विरुद्ध कपट-जुए का आश्रय लेकर मुझे हराया था। लोगों की धारणा है कि शकुनि के अक्ष में स्वर्णपट्ट रखा है। इसी वजन के कारण वह भार हमेशा नीचे की ओर झुक जाता है। और ऊपर गरिष्ठ बिन्दु-संख्या दीखने लग जाती है। वह "

मत्कुनि ने बीच ही में कहा—"इन बातों में कोई सार नहीं है पांडवराज! स्वर्णगर्भ या पारदगर्भ वाले पासे से खेलने वाले हमेशा ही नहीं जीतते—दो-चार बार उनकी हार भी निश्चित है। आप लोगों ने न जाने कितनी बाजियां खेलीं—कभी एक बार भी जीते आप?"

दीर्घ निश्वास लेकर युधिष्ठिर ने सिर झुका लिया।—"नहीं, एक बार भी नहीं! किन्तु अब इन बातों में क्या रखा है? युद्ध में कुछ ही दिन बाकी रह गए हैं। अब न तो मुझे द्यूत-क्रीड़ा करने का अवकाश है और न ही द्यूत-क्रीड़ा में मैं शकुनि को कभी हरा सकता हूं।"

"निराश न हों पाण्डवश्रेष्ठ!" मत्कुनि ने शान्त स्वर में कहा—"यह तो मेरी भूमिका मात्र थी। गूढ़ बातें तो मैंने आपसे अभी कहीं ही नहीं। कृपया ध्यान देकर सुनें। शकुनि वाले अक्ष का निर्माता मैं ही हूं। उसके भीतर मन्त्र-सिद्ध यन्त्र है, इसी से उसका दांव कभी बेकार नहीं जाता। उसने मुझे आश्वासन दिया था कि आप पांचों भाइयों के निर्वासन के पश्चात् दुर्योधन से कह कर वह मुझे इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिलवा देगा। किन्तु यन्त्र-कौशल सीखने के पश्चात् उस दुरात्मा ने मेरे साथ छल किया। आप लोगों के वनवास के बाद जब मैंने दुर्योधन से शकुनि के आश्वासन की बात कही तो उसने कहा—"मुझे कुछ नहीं मालूम। मामा से मिलो।"

शकुनि से मिला तो उसने भी स्पष्ट टाल दिया—"मैं कुछ नहीं कर सकता। दुर्योधन से मिलो।" इतना ही नहीं अन्त में उन दोनों पापियों ने धोखे से मुझे बाह्लीक द्वीप के कारागार में बन्द कर दिया। तेरह वर्ष पश्चात किसी सूरत से भाग निकला हूं और अब आपकी शरण में आया हूं।"

युधिष्ठिर की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। गम्भीर स्वर में बोले—"हूं! तो अब आप मुझे बहलाकर राज्य प्राप्त करना चाहते हैं—क्यों?"

"धर्मपुत्र! मेरे पूर्व अपराधों को क्षमा कीजिए। इस वक्त मैं आपका मित्र हूं। मैंने बौना होकर इन्द्रप्रस्थ रूपी चांद को पकड़ने की चेष्टा की थी। आप नाराज न हों। मुझ पर विश्वास करें और विजयी होकर शकुनि को मौत के घाट उतार दें। मुझे गान्धार-राज्य दे दीजिएगा बस!"

धर्मराज की मुख-मुद्रा अभी तक कठोर थी—"हूं, तो आपके द्वारा निर्मित अक्ष मेरे सर्वनाश का कारण बना?"

"क्षमा धर्मराज!" मत्कुनि के स्वर में कातरता थी—"बीती बातों को भूल जाइए। परमात्मा साक्षी है मैं इस समय आपके भले की बात कह रहा हूं। विश्वस्त सूत्र से मुझे ज्ञात हुआ है कि संजय धृतराष्ट्र की आज्ञा से अभी आपकी सेवा में उपस्थित हुआ ही चाहते हैं। दुर्योधन और शकुनि की मन्त्रणा से धृतराष्ट्र पुनः आपको द्यूत-क्रीड़ा का निमन्त्रण भेज रहे हैं। दुहाई है महाराज! इस मौके को किसी प्रकार भी हाथ से न जाने दीजिए।"

धर्मराज के कुछ कहने के पूर्व ही बाहर से रथ के पहियों की घर-घर ध्वनि सुनाई पड़ी। मत्कुनि ने चौंककर कहा—"संजय आ पहुंचे। महाराज विनती करता हूं इस प्रस्ताव को अस्वीकार मत कीजिएगा। कहिएगा—मैं सोचकर जवाब भिजवा दूंगा। तब तक मैं बगल के कमरे में छिप जाता हूं। दुहाई है महाराज!"

× ×

संजय के विदा होने के क्षण भर बाद ही मत्कुनि बगलवाले कमरे से बाहर निकल आए—"आपने उपयुक्त उत्तर दिया है धर्मराज! अब मेरी राय मानिए। शाम को ही कुरुराज के पास अपना एक विश्वस्त दूत भेज दीजिए कि पूज्य ज्येष्ठ तात! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अति अप्रिय होने पर भी हम इस तृतीय द्यूत-क्रीड़ा में सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत हैं। आपके द्वारा निर्मित अक्ष की कोई आवश्यकता नहीं—हम अपने ही अक्ष से खेलेंगे। आपकी शर्तें भी स्वीकार हैं। केवल एक शर्त हमारी है—शकुनि और हम केवल तीन बार अक्ष फेंकेंगे। जिसके अक्ष की बिन्दु-समष्टि अधिक होगी वही विजेता माना जाएगा।"

युधिष्ठिर गम्भीर भाव से मुस्कराए—"हे सुबल-नन्दन! आप मेरे मातुल हैं किन्तु इस क्षण वातुल प्रतीत हो रहे हैं। किस विश्वास पर पुनः शकुनि से मैं जुआ खेलने को तैयार होऊं? सिर्फ तीन ही बार अक्ष-क्षेपण क्यों करूं? और इस बात का क्या प्रमाण है कि आप दुर्योधन के गुप्तचर नहीं हैं?"

"शान्त होइए धर्मराज!" मत्कुनि ने अविचल भाव से कहा—"मैं आपके सभी संशयों का निवारण कर रहा हूं। अगर आप धृतराष्ट्र वाले अक्ष से खेलेंगे तो आपकी हार निश्चित है क्योंकि धूर्त शकुनि उस अक्ष को हाथ में लेकर अवश्य ही अपने अक्ष से बदल लेगा। बाह्लीक द्वीप में १३ वर्ष मैंने चुपचाप बैठकर नहीं बिताए हैं। काफी गवेषणा के पश्चात शकुनि के अक्ष से भी प्रचण्डतर अक्ष का मैंने निर्माण किया है। आप मेरे इसी नव-निर्मित अक्ष से खेलिएगा—शकुनि की हार सुनिश्चित है। एक बात और, मेरे इस नव निर्मित अक्ष का यन्त्र बहुत सूक्ष्म है, अतः एक दिन में अधिक बार क्षेपण करना उचित नहीं। फिर विजय करने के लिए तीन बार क्षेपण करना ही पर्याप्त है। आप मेरे इस नव-निर्मित अक्ष की परीक्षा स्वयं करके देख लीजिए।"

युधिष्ठिर ने हाथीदांत-निर्मित उस अक्ष को हाथ में लेकर देखा—ठीक शकुनि के अक्ष के समान सुगठित और पृष्ठ समूह गोलाकार, प्रत्येक बिन्दु में सूक्ष्म छिद्र। मत्कुनि के कहने पर उन्होंने क्षेपण करके देखा—आश्चर्य! तीनों बार छः बिन्दु आए।

युधिष्ठिर ने कहा—"अक्ष विश्वास योग्य है। किन्तु आप विश्वास-घात नहीं कीजिएगा, इसका दायित्व कौन लेगा?"

मत्कुनि मुस्कराया—"आप मुझे अभी से बन्दी कर लें, महाराज! जब आपकी पराजय का समाचार यहां आए, तो मेरे पहरे पर नियुक्त सैनिक मेरा सिर उतार लें। आप उन्हें अभी से आदेश दे दें।"

"ठीक है!" युधिष्ठिर ने स्वीकार किया और कुछ क्षणों तक विचार-मग्न रहकर बोले—"किन्तु शकुनि का अक्ष मेरे अक्ष से पराभूत हो गया, तो इसका अर्थ होगा कि यह खेल धर्म-विरुद्ध हुआ। यह कपटता होगी एक प्रकार की।"

"हाय! हाय! महाराज!" मत्कुनि ने सिर पर हाथ दे मारा—"आप भी कितने भोले हैं! आप दोनों का ही अक्ष मन्त्र पूत है—इसमें कपटता का प्रश्न ही कहां उठता है? धर्मराज! इस तृतीय द्यूत-क्रीड़ा में मैं ही उभय-पक्ष हूं—आप और शकुनि तो निमित्त मात्र हैं!"

युधिष्ठिर पुनः विचारमग्न हो गए। थोड़ी देर बाद बोले—"मातुल, आपका वक्तव्य सुनकर मेरी अजीब स्थिति हो गई है। धर्म की गति काफी सूक्ष्म है। मैं तो दुविधा में पड़ गया हूं। आपका साधारण जीवन मेरे हाथ में है जब कि मेरी बुद्धि, धर्म, राज्य सब कुछ आपके हाथ में है। इस पर भी वर्तमान समय में तो आपकी आज्ञा का पालन करना ही उचित प्रतीत होता है। लाइए, अक्ष मुझे दे दीजिए।"

"धर्मराज की जय हो!" मत्कुनि ने प्रसन्न होकर कहा—"किन्तु महाराज! अक्ष फिलहाल मेरे पास ही रहने दें। उचित परिचर्या के अभाव में इसके गुण नष्ट हो जाएंगे। द्यूत-क्रीड़ा में जाने के दिन मुझसे ले लीजिएगा।"

× × ×

बड़े समारोह के साथ द्यूत-सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। सर्व-सम्मति से बलराम सभापति बनाए गए। बलराम जी ने आसन ग्रहण करते हुए कहा—"विलम्ब से कोई लाभ नहीं। खेल आरम्भ हो। इस द्यूत में कुरु पक्ष की ओर से शकुनि और पाण्डव-पक्ष की ओर से युधिष्ठिर एक-एक अक्ष लेकर खेल आरम्भ करेंगे। तीन बार अक्ष-क्षेपण होगा। जिसकी बिन्दु-समष्टि अधिक होगी, वही विजेता माना जाएगा। हारे हुए पक्ष को राज्य सौंपकर वनवासी होना पड़ेगा। सुबल-नन्दन शकुनि, आप वय में ज्येष्ठ हैं। पहले आप ही अक्ष-क्षेपण करें।"

शकुनि ने अक्ष-पात किया। देखा गया—उसका अक्ष कुछ दूर तक लुढ़ककर स्थिर हो गया—ऊपर छः बिन्दु थे। कर्ण और दुर्योधन चीख पड़े—"जीत हमारी है।"

बलराम जी ने कहा—"युधिष्ठिर! अब तुम अक्ष पात करो।"

युधिष्ठिर ने पासा फेंका । एक पलटा खाकर अक्ष स्थिर हो गया। ऊपर छ बिन्दु थे । पाडव जोरो से चिल्लाए--"धर्मराज की जय हो !"

बलराम जी बिगडे--"व्यर्थ ही क्यो तुम लोग चिल्लाते हो ? अभी किसी की जीत नही हुई । दोनो की बाजी समान है।"

शकुनि ने दूसरी बार पासा फेंका । इस बार पाच बिन्दु थे--जबकि, युधिष्ठिर के छ बिन्दु आए। शकुनि ने लक्ष्य किया--उसका पासा कुछ काप सा रहा है।

पाडव-पक्ष आनन्द से गरज उठा । बलराम जी ने धमकाते हुए कहा--"अब कोई चीखा तो उसे कान पकडकर सभा से बाहर निकाल दूगा।"

अन्तिम दाव देखने के लिए सभा स्तब्ध हो गई। सभी उत्सुक भाव से देखने लगे। दोनो पक्षो ने अक्ष निक्षेप किया । शकुनि के पासे में एक बिन्दु और युधिष्ठिर के पासे मे पुन छ बिन्दु थे। बलराम जी ने तेज आवाज में निर्णय दिया--"धर्मराज की जय हो!"

तभी सभा के उपस्थित सभी व्यक्तियो ने आश्चर्य से देखा--जमीन पर पडा युधिष्ठिर का पासा उछलता कूदता शकुनि के पासे की ओर बढ रहा है। सभी चिल्ला पडे--"माया जाल ! इन्द्र-जाल !"

दुर्योधन ने कहा--"मै इस निर्णय को नही मानता।"

बलराम बोले--"मै इन दोनो पासो की परीक्षा करूगा।"

शकुनि ने झपटकर अपना पासा उठा लिया--"मै अपना पासा देखने नही दूगा।"

बलराम जरा मस्ती में थे। शकुनि के गाल पर तमाचा कसते हुए पासा छीन लिया और दोनो पासो को पत्थर पर पटक कर तोड डाला । शकुनि के पासे से 'घुरघुर' नामक एक कीडा निकलकर निर्जीव भाव से पख फडफडाने लगा। युधिष्ठिर के पासे से निकली एक गोधिका (विस्तुइया), और निकलते ही उसने झट 'घुरघुर' कीडे पर धावा बोल दिया।

सारी सभा क्षुब्ध हो उठी। धृतराष्ट्र ने परेशान होकर पूछा--"क्या हुआ ?"

बलराम ने कहा--"शकुनि क अक्ष मे 'घुरघुर' कीट था।"

"अजीब बात है । किसी को हानि तो नही पहुचाई उसने ?"

"किसी को नही । यह कीट बहुत बदमाश जाति का होता है। चित या करवट लेना जानता ही नही । अक्ष के भीतर रहने के कारण हमेशा पट पडा रहता है। युधिष्ठिर के अक्ष के भीतर एक गोधिका थी। उसे तो ब्रह्मा भी करवट ले के नही सुला सकता । गोधिका की महक पाकर ही शकुनि के अक्ष का कीट भय से सिकुड गया था, इसी से उसका काम ठीक ढग से नही हुआ।"

धृतराष्ट्र ने अधीर होकर पूछा--"किन्तु जीत किसकी हुई ?"

बलराम ने अपना निर्णय दिया--"निस्सदेह ही युधिष्ठिर की। दोनो ही कूट पासे से खेल रहे थे, इसलिए कपटता की आपत्ति नही चल सकती । सुनता आया था, शकुनि बहुत चतुर है। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर तो उससे भी चतुर निकले।"

युधिष्ठिर ने खडे होकर मत्कुनि की कहानी सुना दी । बलराम बोले--"धर्मराज ! दुख प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं। कूट पासो का प्रयोग द्यूत-विधिसम्मत है।"

युधिष्ठिर अवज्ञा के साथ बोले--"हलधर ! तुम केवल महावीर हो--शास्त्र की बातो से सर्वथा अनभिज्ञ। भगवान मनु ने स्पष्ट कहा है--

'अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोकेद्यूतमुच्यते,
प्राणिभि क्रियते यस्तु स विज्ञेय समाह्वय ।'

--अप्राणी को लेकर जो खेल खेला जाता है, उसे द्यूत-क्रीडा कहते हैं और प्राणी लेकर खेले जाने वाले खेल को समाह्वय (जानवरो की लडाई पर बाजी लगाना)। कुम्भराज ने मुझे अप्राणिक द्यूत-क्रीडा के लिए बुलाया था, किन्तु दैवयोग से मेरे अक्ष के भीतर प्राणी निकला है । अत यह द्यूत नाजायज है।"

कर्ण ने हर्ष से ताली पीट दी--"धर्मराज ! तुम्हारा नाम पूर्णत सार्थक है।"

बलराम ने विरक्ति के भाव से कहा--"धर्मराज का शास्त्र-ज्ञान काफी है, किन्तु सासारिक ज्ञान बिलकुल नही है। माना, यह द्यूत नाजायज है, पर पहले भी तो दोनो द्यूत-क्रीडाए भी नाजायज थी। धृतराष्ट्र ! आपके साले के कपटाचरण से व्यर्थ ही पाडवो को कष्ट भोगना पडा। अब इनका राज्य इन्हें वापस कर दें, अन्यथा आप लोग नरकवासी होगें।"

युधिष्ठिर नाराज हो गए--"इन व्यर्थ की बातो में मेरी कोई आस्था नही है। द्यूत-क्रीडा से मुझे अत्यन्त घृणा हो गई है। हम युद्ध से ही राज्य प्राप्त करेंगे । ज्येष्ठ तात ! नमस्कार, हम जा रहे हैं।"

शिविर में आते ही युधिष्ठिर ने कहा--"सबसे पहले मत्कुनि को मुक्ति दे दी जाए। अभागे का परिश्रम व्यर्थ हो गया।"

युधिष्ठिर के मुख से सारी कहानी सुनकर मत्कुनि ने अपना सिर पीट लिया--"हाय भगवान ! तुम सर्वत्र प्रबल हो । मैंने गोधिका को खिला-खिलाकर मोटा कर दिया था, इसी से कमबख्त ने उछल कूद कर सब काम चौपट कर दिया। बलराम जी ने स्थिति सभाल भी ली थी, पर हमारे धर्मराज ने शास्त्रोपमा देकर सारा गुड-गोबर कर दिया। अब मुझे मुक्ति दान करने से भी क्या फायदा है। जेल से बाहर जाते ही दुर्योधन मुझे कच्चा चबा जाएगा!"

--अनुवादक गोपाल माहेश्वरी



आत्मकथा-साहित्य

ज्ञानवती दरबार

साहित्य के विकास में आत्मचरितात्मक लेखनकला महत्वपूर्ण प्रगति की द्योतक है। प्रारम्भ में जब मनुष्य ने पढने-लिखने की कला सीखी, तब सर्वप्रथम उसके मानस पर आसपास के वातावरण का प्रभाव अंकित होना स्वाभाविक था, और जब यह कला उसने हस्तगत की अथवा उसे इसमें कुछ क्षमता हासिल हुई, तब तज्जनित प्रभाव की प्रतिक्रिया ही उसके रचित साहित्य में उद्भासित हुई। बडी-बडी नदियो, ऊचे पर्वतो, विशाल सागर, विस्तृत आकाश, चाद और सूरज, सक्षेप मे, प्रकृति की सभी प्रेरक शक्तियो ने मानव के मानस में अक्षय प्रेरणा को जन्म दिया। जब इन शक्तियो ने मानव-जीवन को अभिभूत किया तो मानव हृदय से उनके प्रति कुछ भय और कुछ आदर-मिश्रित भाव अभिव्यक्त हो उठे। प्रकृति की प्रशसा में उसने स्तोत्र और गीत रचकर मानो उसके अदृश्य प्रकोप को शात करने के लिए भावो का अर्घ्य चढाया। उसने प्राकृतिक शक्तियो को देवी-देवता मान अर्चना की। प्रकृति की नीराजना के लिए बनी इस भावभूमि में साहित्य का जन्म हुआ।

यह था साहित्य का प्रभात। इसकी प्रथम किरण ने जब भावसृष्टि को आलोकित किया तब भारत ने जाना कि वह वैदिक काल था। इस काल में अधिकाश रूप से पूजा अर्चना के गायन और स्तोत्रो की ही रचनाए हुई। इनका मुख्य विषय आत्मरक्षण और सुख समृद्धि के लिए देवी-देवताओ से प्रार्थना करना था। कुछ सूत्रो और ऋचाओ के अध्ययन से यह भली प्रकार ज्ञात हो सकता है कि इनमें हृदय की कितनी गहरी भावनाओ का समावेश है और किन गहरे तथा गम्भीर भावो में डूब कर हमारे ऋषि मुनियो ने इनकी रचना की है।

किन्तु समय की गति प्रतिपल आगे बढती और बदलती जाती है और उसके साथ ही मनुष्य का दृष्टिकोण भी बदलता है और उसकी शक्ति में भी अन्तर पडता है। कालान्तर में मनुष्य अपने विचारो में अधिक स्वतन्त्र बना। उसका मन बाह्य जगत् से हटकर अन्तर्मुख होता गया। इस अन्तर्मुखी वृत्ति ने आत्मगत विचारधारा को जन्म दिया। परिणामत आत्मगत लेखनकला का उद्भव हुआ। अब मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य, मानवीय प्रतिष्ठान के भविष्य और स्वय उसकी उत्पत्ति के उद्देश्य के विषय में कल्पना करने लग गया।

मानव-मन अधिकाधिक विकसित होता चला गया और मनुष्य जीवन की कला से तो क्या जीवन के रहस्य से भी पूर्णत अभिज्ञ बन गया। जीवन की रहस्यपूर्ण बातो और बहुमुखी समस्याओ को जानने और समझने के लिए वह तत्पर और सन्नद्ध था। मानव-मन की इस विकास-धारा के साथ साहित्य सरिता भी आगे बढती चली। भौतिक विज्ञान, वर्णनात्मक रचनाओं, कविता और कहानी जैसी मनोरजक कलाओ इत्यादि के साथ-साथ आत्मगत अनुभवो की अभिव्यक्ति को भी अब मार्ग मिला। हमारे प्राचीनतम साहित्य में अभी भी इस प्रकार के साहित्य की सर्वोत्तम कृतिया मिलती हैं। भारत मे गौतम बुद्ध और महावीर के प्रवचनो और उपदेशो के विभिन्न सग्रहो में आत्मचरितात्मक तत्व मिलते है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य में भी वही विचारधारा दिखाई देती है। यह कौन नही जानता कि प्रारम्भिक ईसा-काल की रचनाओ के लेटिन साहित्य में 'सेंट ओगस्टीन्स कन्फशन्स' और कासानोवा की 'आत्मकथा' का बहुत ऊचा स्थान है। फ्रेंच क्राति के पूर्व और उन वर्षों में जब गिलोटिन द्वारा सैकडो व्यक्तियो की जाने ली जाती थी, उस समय तत्कालीन राज-नीतिक क्राति के आधार पर अनेक पुस्तकें लिखी गई। उन रचनाओ में एक रचना जिसका अभी भी अध्ययन किया जाता है और जो करीब ५० वर्षो तक यूरोपीय विचारधारा को प्रभावित करती रही रूसो की 'कन्फै-शन्स' नामक आत्मकथा थी।

महान् पुरुषो की आत्मकथाओ का और उनके समान जीवन चरिता त्मक साहित्य का मानव हृदय पर बडा गहरा प्रभाव पडता है, परिणामत ऐसी रचनाओ की गहरी छाप समकालीन साहित्य पर पडती है और दीर्घ-काल तक ये रचनाए साहित्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं। वर्तमान भारतीय साहित्य भी इस विचारधारा से प्रभावित हुआ है और इस आत्मचरिता त्मक लेखनकला की ओर लेखको के सहज झुकाव को पुष्ट करता है। राजनैतिक क्राति और सतत सघर्ष के गत सौ वर्षों में भारतीय साहित्य ने सभी भाषाओ में, जिसमें अग्रेजी भी समाविष्ट है, आशातीत प्रगति की है। इस काल में केवल राजनैतिक या ऐतिहासिक ही नही किन्तु साहित्यिक रचना भी बहुत बडे परिमाण में हुई है। क्राति के विचार, मुक्तिकरण के आदर्श और जन जीवन में रचनात्मक कार्य की प्रेरणा, इन सबको इस साहित्य मे पूरी अभिव्यक्ति और अभिव्यजना मिली है। तत्सम्बन्धी सभी कृतिया साहित्य की दृष्टि से अनुपम है, किन्तु हमारे नेताओ के जीवन-चरित्र की कहानिया और उनकी आत्मकथाओ का उसमें विशेष स्थान है। केवल साहित्य और उसके विकास की दृष्टि से ही इन कृतियो का विशेष महत्व नही। जो प्रभाव इन कृतियो ने समकालीन विचारधारा पर डाला है और जो अभी भी उसे प्रभावित कर रही है तथा भारतीय मानस को चित्रित करने में इनका जो हिस्सा है, उसके कारण इनका विशेष महत्व है। जब हम इस पर विस्तार से विचार करते है तो हमें यह अनुभव होता है कि ये थोडी बहुत कृतिया हमारे साहित्याकाश में ध्रुव तारे की तरह अटल और स्थिर रूप से अपनी प्रतिभा बिखेरती है।

वर्तमान युग के साहित्य का दर्शन करते समय हमारे सामने काफी सख्या में, उन व्यक्तियों की, जो अपने समय में राजनैतिक अथवा सामाजिक जनक्राति के अगुआ रहे हैं तथा जो स्वतन्त्रता के सग्राम में जनता जनार्दन के माने हुए नेता रहे हैं, उनकी आत्मकथाए और उनकी जीवनिया मिलती है। इनमें सबसे प्रथम और सबसे आगे महात्मा गाधी का नाम है। उनकी 'सत्य के प्रयोग' नामक आत्मकथा एक बडी रचना है, केवल इसलिए

नहीं कि यह भारत के एक सर्वमान्य नेता के द्वारा लिखी गई है, वरन् उसका अपना महत्त्व है। उसकी शैली, तत्कालीन समस्याओं के प्रति लेखक का दृष्टिकोण और उसमें निहित विचार सामग्री पर लेखक ने अपने ऊँचे चरित्र और प्रतिभा की अमिट छाप डाल दी है। इस प्रकार यह आत्मकथा स्वाधीनता के महान आन्दोलन, जिसका गांधी जी ने नेतृत्व किया और जो उस समय भारत में स्वराज्य प्राप्ति के लिए उच्च शिखर पर पहुंच गया, की पृष्ठभूमि का उज्ज्वल दर्शन करवाती है। इस आत्मकथा का गांधी जी के अनुगामियों पर और जो इस भारी अहिंसक आंदोलन में रुचि रखते थे उन पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस आत्मकथा ने गांधी जी के आदर्शों के सत्य रूप को केवल भारतीयों के लिए ही नहीं बल्कि समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट कर दिया। इसलिए इसमें तनिक भी आश्चर्य की बात नहीं है कि गांधी जी की इस आत्मकथा को उनके जीवन के अनुभवों और सत्य के प्रयोगों की एक अमूल्य निधि माना जाता है।

इस 'सत्य के प्रयोगों की कहानी' के साथ-साथ इसी शताब्दी में कुछ अन्य आत्मकथाएं भी प्रकाश में आईं। प्रमुख रूप से इनमें श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, लाला लाजपत राय, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद और कतिपय अन्य व्यक्तियों की आत्मकथाएं हैं। इस काल में शायद पहली बार हमें एनी बेसेन्ट और विजय लक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं द्वारा लिखित जीवनगाथाएं प्राप्त हुईं। इन सभी आत्मकथाओं ने समकालीन इतिहास के साहित्य में श्रीवृद्धि की है, विशेषतया स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने वाले भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास को इन पन्नों में सुरक्षित करके भारत की इस युग की विचारधारा को प्रभावित किया है, जिसमें आधुनिक साहित्य भी विकसित हुआ। यह सारा ही आत्मकथा साहित्य बड़ा कीमती और ऊंचा है। इस युग की प्रेरणा-शक्ति इसमें निहित है। इसलिए इसमें से बापू के बाद जवाहरलाल जी और राजेन्द्र बाबू की आत्मकथाओं को कुछ विस्तृत कथन के लिए हम चुन रहे हैं। इस रूपरेखा से आत्मकथा के सम्पूर्ण साहित्य का चित्र अवश्य खिंच जाएगा।

जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी'

यह एक ओजपूर्ण कर्मयोगी, प्रभावशाली व्यक्तित्व, महान् विचारक, राजनैतिक नेता, सूक्ष्म दार्शनिक और सर्वोपरि रूप से राष्ट्र एवं जन-जीवन के साथ आत्मसात हुए जननायक की जीवन कहानी है। जैसे जैसे पुस्तक के पन्ने उद्घाटित होते हैं जान पड़ता है मानो घटनाएं तेजी से आगे बढ़ती चली जा रही हैं, नये विचार उमड़ रहे हैं और मानो नवजागरण का सूर्य उदय हो रहा है। इसमें आत्मा की स्वर-लहरी के साथ राष्ट्र की धड़कन स्पष्ट सुनाई देती है। नेहरू जी इतिहास के गंभीर विद्यार्थी हैं। उन्होंने भारत के भूतकाल की कड़ी को वर्तमान से जोड़ा है। हमारे इतिहास की कुछ धुंधली रेखाओं पर उन्होंने अपनी कलम से ऐसा रंग चढ़ाया है, एक कलाकार बनकर भूतकाल के इतिहास के चित्र को ऐसा उजला बना दिया है कि आज का महान् से महान् इतिहासकार भी उनसे ईर्षा किए बिना नहीं रह सकता। आरम्भ से अंत तक 'मेरी कहानी' जीवन के साथ स्फुरित होती हुई, समस्याओं का विश्लेषण करती हुई स्वाभाविक और वैज्ञानिक दृष्टि से नए नए मार्ग सुझाती है। इस पुस्तक ने अगणित भारतीयों और विदेशियों को प्रेरणा दी है। सबसे अधिक आकर्षक है जवाहरलाल जी की अपनी मोहक शैली और तथ्यों को प्रस्तुत करने की कला। उनकी लेखनी से पाठक अक्सर भ्रम में पड़ जाता है कि इस पुस्तक की गणना इतिहास में करे या कहानी कथा में, या इसे कला की एक अनुपम कृति माने अथवा एक महान् स्वप्नद्रष्टा का आत्मनिवेदन निमित्त लिखित गद्यकाव्य समझे।

नेहरू जी की 'मेरी कहानी' से राजेन्द्र बाबू की 'आत्मकथा' के पास पहुंचने पर व्यक्ति अनुभव करता है मानो पर्वतीय झरने के सौन्दर्य को देख लेने के पश्चात शांत सरोवर के किनारे आ पहुंचा है। यदि जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' गिरि गरिमा और महिमा लिये आवेग से आती उस जलधारा की तरह है जो शिखरों और पत्थरों से टकराती बहती चलती है, तो राजेन्द्र बाबू की 'आत्मकथा' उस शांत गंभीर सरिता की तरह है जो सहज गति से एक उद्देश्य को लिये आगे बढ़ती जाती है। उसके प्रवाह में शांति है, पर गहराई के साथ-साथ उसमें पारदर्शन की क्षमता है। इसमें पाठक को देहात के वातावरण और गांव के घरौंदों की साफ झलक दिखाई देती है। गांवों की सरलता और ग्राम्य जीवन की मधुर शांति का लेखक की सरल शैली और घटनाक्रम के सहज वर्णन के साथ सुन्दर योग है। वर्णन-शैली न अतिरंजनपूर्ण है और न बोझिल। पुस्तक के पढ़ने से लेखक का आकर्षक व्यक्तित्व अपने सब गुणों और विशेषताओं के साथ सहज ही उभरता दीख पड़ता है। साधारण और सरल प्रकृति के व्यक्ति को यह पुस्तक उतनी ही रुचेगी जितनी ऐसे पाठक को जो जीवन के संघर्ष से जूझ रहा हो और अपने आपको जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में प्रयत्नशील हो। जहां तक लोकसेवा और सार्वजनिक कार्य में दिलचस्पी लेने वालों का प्रश्न है वे इसे एक धार्मिक ग्रन्थ के समान पढ़ेंगे और प्रेरित होंगे। यह एक पुरानी कहावत है कि "शैली व्यक्तित्व का दर्पण है।" ऐसी बहुत कम महान् कृतियां होंगी जिन पर यह कहावत इतनी चरितार्थ होती हो जितनी राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा पर। उनकी स्वाभाविक सरलता, विचारों की स्पष्टता और मानस की उत्कृष्टता आत्मकथा में स्थल-स्थल पर प्रतिबिंबित होती है।

आत्मचरितात्मक साहित्य का यह एक विशेष गुण है कि समकालीन साहित्यकारों के लिए वह एक उदाहरण प्रस्तुत करता है, उनके सामयिक विचारधारा सम्बन्धी ज्ञान में अभिवृद्धि करता है और पाठकों को चिर-नवीन प्रेरणा प्रदान करता है।



भारतीय कला-प्रदर्शनी के कुछ चित्र

फोटो मोतीराम जैन



"जुलूस" बी० प्रभा



"मातृस्नेह" अरूप दास

"चचल नन्द-किशोर" बलवन्त्रे ए० जोशी







"एक पूर्वी नारी" ए० पी० चार्ल्स राज

'आत्मचित्र" शान्तिलाल एस० दवे

"दो लड़कियाँ" बी० प्रभा



'गोष्ठी"





"काश्मीर की डल झील"   रतन प्रिमू



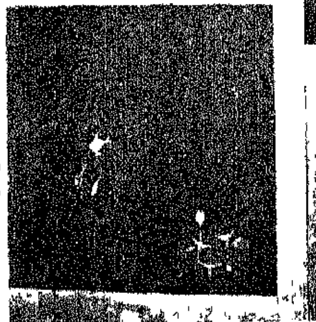
"सौराष्ट्र के ग्वाले"   खोडीदास बी० परमार

लक्ष्मीनारायण









"तालाब" प्रद्युम्न तारा

"पपक्षप" मृणालकान्ति वर्धन



'काश्मीर की वृक्षाच्छादित एक राह" ए० ए० रैना



शरतबाबू के सम्बन्ध में

राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

मैंने अपने दो लेखों में, जो कई मास हुए 'आजकल' में प्रकाशित हुए थे, प्रसिद्ध उपन्यासकार शरतबाबू के भागलपुर व मुजफ्फरपुर सम्बन्धी जीवन की चर्चा की थी। वे दिन उनकी तरुणावस्था के थे, अनियन्त्रित स्वच्छन्दता के। फिर भी, जैसा कि इन लेखों से जाहिर है, उनकी वह तरुणाई केवल खेल-कूद और आवारगी ही में व्यतीत नहीं हुई, बल्कि उनके उन भावी गुणों का ढांचा भी उन्हीं दिनों तैयार होता रहा, जो आगे चल कर उनकी महान् ख्याति के कारण बने। अच्छाइयों और बुराइयों से भरा हुआ उनका जीवन सदा रहस्यपूर्ण बना रहा। शरतबाबू की कतिपय कृतियां उनकी आत्म-कथा-सी प्रतीत होती हैं पर फिर भी उन्होंने साफगोई से अपनी बातें कभी किसी से नहीं कही। और यही कारण है कि आज उनके व्यक्तिगत जीवन के चित्रांकन में उनकी जीवनी लिखने वालों को इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। दरअसल वे उन व्यक्तियों में थे जिनकी आत्मा स्वर्ग से पुकार-पुकार कर यह कह सकती है कि—

मुर्दम् ज गलतफहमिए मुर्दुम् मुर्दम्,
ऐ काश कसे हराचे हस्तम् दानद्।

(दुनिया की नासमझी से मैं मारा गया। मैं जैसा था, वैसा किसी ने न समझा।)

उदाहरणार्थ शरतबाबू के ईश्वर सम्बन्धी विचारों को ही लीजिए। वे अक्सर लोगों से इस बात पर जोर देते हुए कि ईश्वर नहीं है बहस किया करते थे और इससे यह धारणा आमतौर पर फैली हुई है कि वे अनीश्वरवादी थे। पर उन्हीं के सम्बन्ध में उनके एक वृद्धावस्था प्राप्त मामा श्री भूपेन गांगुली ने हाल ही में मुझ से एक घटना का जिक्र किया था जो इस प्रचलित धारणा के बिलकुल विपरीत बैठती है। उनके शब्द इस प्रकार हैं—

"शरत से मेरी अन्तिम भेंट शाल्लावर-पानीत्रास नामक गांव में हुई जहां नदी के किनारे उसका बड़ा सा दुमंजिला मकान था। मैं कई दिनों तक उसके साथ रहा। वह सुबह चाय में दो-चार बूंद 'आइनम लेसिया' दे कर पीता था, फिर पैसे लेकर बैठता और आने वाले भिखारियों में उन्हें बांटा करता था। वह उन दिनों सुरापान करना छोड़ चुका था, उसकी जगह काफी परिमाण में अफीम खाया करता था। घर में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति थी, जिनकी पूजा-अर्चना के लिए एक पुजारी नियुक्त था। कभी-कभी वह पुजारी अस्वस्थ हो जाता, तब शरत स्वयं अपने हाथों उनकी सेवा पूजा करता था। एक बार मैं बरामदे में बैठा हुआ था, जब शरत मन्दिर के भीतर से पूजा करके बाहर निकला। मैंने देखा कि उसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही है।"

और यह वही शरच्चन्द्र है, जिनके सम्बन्ध में यह धारणा है कि वे नास्तिक थे।

मैंने उनके मामा से शरतबाबू के सम्बन्ध में बहुत सी बातें पूछी थीं और उनके उत्तरों को नोट कर लिया था। वे नोट अभी मेरे सम्मुख हैं। इनमें से कुछ पाठकों के मनोरंजनार्थ नीचे दिए जाते हैं—

"शरत का छोटा भाई प्रकाश था, जो अधिक सुरापान के कारण कलकत्ता-बालीगंज में अल्प वयस में ही काल-कवलित हो गया। मेरे पिता के पास उसे रख कर शरत बर्मा चला गया था।

"बर्मा से लौट कर जब वह शिवपुर में रहा करता था, तब मैं एम० ए० और लॉ की परीक्षाओं की तैयारी कर रहा था। मैं अक्सर उससे मिलने शिवपुर आया करता था। बर्मा से आई हुई एक महिला उसके साथ रहती थी। उसने मुझे बताया था कि यह मेरी वधू है, बल्कि एक रोज एक सोने का गहना भी जो अभी-अभी तैयार हो कर आया था, मुझे दिखाया और कहा कि यह मैंने अपनी पत्नी के लिए बनवाया है। वह मोटी और सांवले रंग की थी। मुझे देखते ही घूंघट काढ़ लिया करती थी। बड़ी शर्मीली थी।

"प्रसिद्ध लेखक या कवि के सम्बन्ध में हम प्रकृतितः यह जानना चाहते हैं कि वह किस प्रकार लिखता है। मैंने भी शरत से एक बार यह पूछा, जिसका उत्तर उसने इन शब्दों में दिया था—'लोग सोचते हैं कि शरत बैठता है और सरसर लिखे चला जाता है, किन्तु ऐसा नहीं है। कई बार एक पंक्ति लिखने के लिए शरत को पचास बार घर के भीतर चहलकदमी करनी पड़ती है, तब ठीक तरीके से वह लिख पाता है।'

"और उन दिनों वह दिन में नहीं, रातों में लिखा करता था।"

इसमें शक नहीं कि अत्यन्त ध्यानमग्न और तन्मयता से की गई शरतबाबू की इस लेखन-क्रिया का ही फल है कि उनके उपन्यास की पंक्तियों में ऐसा प्रवाह है और वे इतनी गठीली हैं कि उन्हें पढ़ने से ऐसा लगता है मानों किसी शब्द संगतराश ने उन्हें काफी तराश-खराश के बाद तैयार किया हो। और तभी वे इतनी सुन्दर और मार्मिक हो पाई हैं। साथ ही वे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से भरी हुई भी हैं और सजीव हैं।

सामयिक समस्याओं के सम्बन्ध में शरतबाबू के विचार उग्र थे, राष्ट्रीय भावनाओं से उनका हृदय ओत-प्रोत था। गांधी जी के अहिंसा और चर्खा के सिद्धान्तों से सहमत न होते हुए भी उन पर उनकी अगाध भक्ति थी और कभी-कभी सार्वजनिक उत्सवों में चर्खा लेकर भी वे बैठ जाते थे। लोकमान्य तिलक को वे 'भारतेर तिलक' कहा करते थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री विपिनबिहारी गांगुली अक्सर उनसे पैसे ले जाया करते थे। एक बार इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने अपने

उपर्युक्त मामा से हँस कर कहा था कि विपिन जब भी मेरे पास आता है, दोनों पाकिट में पिस्तोल रख कर, मानो पिस्तौल के बूते पर वह पैसा वसूल करना चाहता है।

शरतबाबू अपने जीवन काल में ही काफी धनी हो चुके थे। दो बड़ी बड़ी मोटरें इसकी गवाही दिया करती थीं, फिर भी ऐशो-आराम में वह अपना समय नष्ट नहीं करते थे। अन्त काल तक वह घण्टों बठकर लिखा करते थे। बहुधा दूसरों की रचनाओं का भी देर तक बैठे हुए संशोधन करते रहते थे। पर इस बात को वे गुप्त रखते थे। गांगुली महोदय ने मुझे बताया कि एक दिन वे अकस्मात उनके शिवपुर वाले मकान के अध्ययन-कक्ष में चले गए तो उन्होंने शरतबाबू को बंगला के प्रसिद्ध वर्तमान लेखक श्री (नाम हम जान-बूझ कर नहीं दे रहे) की एक रचना संशोधन करते पाया। यह रचना आज प्रसिद्ध हो चुकी है।

गांगुली महोदय ने तब मुझे वे डाक्यूमेंट दिखलाए जो शरतबाबू ने उन्हें दिए थे और कहा था कि गांगुली परिवार में वे पाले-पोसे गए, इस बात को उन्होंने सदा स्मरण रखा और जब उसके बीच अनबन हो गई तो स्वयं भागलपुर आ कर उन्होंने सम्पत्ति का विभाजन कराया था।

शरतबाबू के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें कही और लिखी गई हैं, पर श्री भूपेन गांगुली की उपर्युक्त बातें महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये उनके चरित्र पर नया प्रकाश डालती हैं। गांगुली महाशय उनके घनिष्ठ सम्बन्धियों में से ही नहीं थे बल्कि वे उनके साथ भी रहे थे।

सहवासो विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम्।

मास्को में गोर्की इन्स्टीट्यूट नामक एक संस्था है, जिसका वार्षिक खर्च साठ लाख रूबल है। इसमें प्रायः दो सौ व्यक्ति रोजाना काम करते हैं। इसका उद्देश्य गोर्की के जीवन और रचनाओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करना है। साथ-साथ संसार की विभिन्न भाषाओं में उनके ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित करना भी। खेद है कि हमारे देश में ऐसी एक भी संस्था कायम न हुई, और यही कारण है कि आज तक हम अपने सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार शरतचन्द्र तक की प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित नहीं कर पाए हैं।

आंख सम्बन्धी हिन्दी तथा मराठी वाक्सम्प्रदाय—(पृष्ठ १६ का शेषांश)

वाले का) को कहते हैं। दूर से देखने के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। दीठ मारने के लिए दृष्टि घालणे भी प्रचलित है।

म० में घालणे (क्रि०) डालना, रखना, चलाना (घोड़ा) मिलाना (दूध में पानी), पहनना, (कपड़ा, जूता) परोसना तथा भेजना (पत्र) अर्थ में आती है जबकि हिं० में घालना—डालना (कबहूं पालनें घालि झुलावैं) 'मानस', चलाना (घालति छूरि प्रेम की बानी सूरदास को सकै सभारि) मारना (समय जानि सुवा सेमर की चोंच घालि पछितायौ), तथा नष्ट करना (तुलसी यही कुभांति घने घर घालि आई, घनें घर घालति है घनै घर घालि हैं) के ही अर्थ में आता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को एक में मिलाने अर्थात् गड्ड बड्ड करने के अर्थ में हिं० घाल-मेल पौ० शब्द आता है पर मराठी में यह शब्द घांधलो या गडबडी का सूचक है, मिश्रण के भाव के लिए म० में मिसळणें प्रयुक्त होता है।

२६ म० दृष्टि चुकणे भूल या गडबड़ी पड़ने, दृष्टि फाटणे (फटना, तितर बितर होना) आकांक्षा बढ़ने (व्यंग्यात्मक) तथा दृष्टि फाकणें भौचक्का होने के अर्थ में आता है। हिं० दीठ पड़ने के लिए म० में दृष्टीस पडणे तथा हिं० दीठ बांधने के लिए दृष्टि चोरणे या बंद करणे प्रयुक्त होता है।

३० हिन्दी में दीदा (फा० दीदह) शब्द भी दृष्टि के अर्थ में प्रयुक्त होता है और इससे सम्बन्धित दीदा लगना—मन लगने तथा दीदे का पानी ढल जाना निर्लज्ज होने के अर्थ में आते हैं। अर्थ विस्तार से दीदा अनुचित साहस के भी अर्थ में आता है। म० में दीदा का प्रयोग नहीं मिलता

३१ हिन्दी टक—स्थिर दृष्टि अथवा एकाग्र अवलोकन के लिए आता है। मराठी में भी यह शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। हिं० टकटकाना या टकटकी लगाकर देखना म० में टकलावणें है। हिं० टुकुर-टुकुर (देखने) के लिए म० टकमक प्रयुक्त होता है।

३२ हिं० देखना म० में देखणे तथा पाहणें दोनों रूपों में है। किन्तु म० देखण संज्ञा (न०) के रूप में नेत्र के लिए भी आता है। म० देखणें पण ज्ञान दृष्टि का बोधक है। हिं० में हमारे देखते-देखते का भाव है हमारे समक्ष, म० में यह देखत-देखता के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त देखते-देखते—तुरन्त या झटपट के अर्थ में भी आता है, म० में एतदर्थ पाहता-पाहता (पाहणें—देखना) प्रयुक्त होता है। देखनहारा देख निहार (अवधी) या निरीक्षक के लिए म० पाहणारा है, हिं० देखहरू या देखुवार ध्वनि से वर देखने वाले (तिलकहरू) के अर्थ में आता है। इसी प्रकार हिं० मुंह देखाई या देखनी भी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिं० देखभाल के लिए म० में पाहणी है। अवधी में तथा भोजपुरी दिखावा-तकावा या सुनावा का भाव है किसी ओझा के पास जाकर भूत-प्रेत की व्याधा का हाल जानना और इस प्रकार देखने-सुनने वाले को दरसनिया ओझा या सोखा कहते हैं। म० में ऐसे व्यक्ति को पाहण्या या भगत कहते हैं। भगत में अर्थ व्यापकत्व ध्यान देने योग्य है। देखरेख दोनों ही भाषाओं में व्यवहृत होता है। हिं० देखावा (दिखावा) म० में भी देखावा ही है। इसके लिए हिं० में थाटबाट या ठाटबाट भी आता है जिसके लिए म० थाटमाट है। हिं० दिखाऊ (दिखावटी) म० में ज्यों का त्यों है। हिं० देखते रह जाना—चकित होने के भाव में आता है, म० में यह पाहात राहणें कहलाता है। अवधी में सुन्दर या रूपवान् पुरुष के लिए देखनौक आता है, म० में इसके लिए देखणा (स्त्री० देखणी) व्यवहृत होता है। हिं० देखना-सुनना (जानकारी प्राप्त करना) के लिए म० में माहिती (जानकारी, ज्ञान) घेणें या माहिती करून घेणे आता है।

अन्योक्ति और हिन्दी साहित्य

ससार चन्द्र

अन्योक्ति काव्य का एक ऐसा प्रमुख तत्व है कि इसका प्रयोग प्राचीन काल से लेकर क्या भारत और क्या अन्य देश, सभी के साहित्यो मे बराबर देखने में आता है। हमारे यहा तो वैदिक काल से लेकर आज तक के साहित्य में इसके प्राधान्य की अमिट छाप दिखाई देती है। हिन्दी भाषा के आदि काल के सिद्ध-साहित्य से लेकर भक्ति और सूफी धाराओ से परिसिक्त हुआ अन्योक्ति तत्व किस तरह छायावाद और रहस्यवाद एव प्रगतिवाद और प्रयोगवाद तक में प्रयुक्त हुआ चला आ रहा है, यह किसी भी साहित्य-मनीषी से तिरोहित नही है। काव्य की रूप-रेखाए बदल रही है, नए रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो रहे है और नई नई उद्भावनाए एव शैलिया हिन्दी साहित्य क्षेत्र में नए नए वादो को जन्म दे रही है किन्तु अन्योक्ति काव्य की सदा एक ऐसी स्थायी पद्धति रही है कि जिसके बिना किसी भी युग के कलाकारो की कला का पूरी तरह निर्वाह नही हो सका और न हो सकेगा, यह निश्चय है।

कहने की आवश्यकता नही कि काव्य की उक्ति साधारण उक्ति की अपेक्षा कुछ विलक्षण अथवा अन्य ही हुआ करती है जो मनुष्य की आत्मा में उसकी सौन्दर्यषणा को ही नहीं तृप्त करती प्रत्युत उसे आनन्द-विभोर भी कर देती है। अन्य का अर्थ साधारणत उपमान, प्रतीक या सकेत होता है। उसे अप्रस्तुत भी कहते है। तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत के समानान्तर स्थित अप्रस्तुत वस्तु प्रस्तुत के रहस्य को समझने में बडी सहायक होती है। वह पाठक के हृदय में ठीक ठीक बिम्ब-ग्रहण करा देती है अर्थात् उसके सामने प्रस्तुत के सौन्दर्य का, आकार-प्रकार का अथवा व्यापार-समष्टि का वैसा ही चित्र खीच देती है, जो कवि के हृदय में खिचा होता है और साथ ही उसमें भी वैसी ही अनुभूति या भावोद्रेक पैदा कर देती है जो कवि को हो रहा हो। प्रस्तुत-विषयक अविकल सौन्दर्यानुभूति तथा रस-मग्नता में पाठक और कवि की यह एकाकारता अप्रस्तुत-विधान की सफलता की कसौटी है। अप्रस्तुत-योजना के भीतर काव्य का कला-पक्ष, कल्पना-पक्ष और अनुभूति-पक्ष भी आ जाता है। उदाहरण के लिए मेहरुन्निसा के नवोदित यौवन-सौन्दर्य का यह प्रतीकात्मक चित्र लीजिए

यह मुकुल अभी ही खिलकर मुख खोल अवाक् हुआ है,
है अभी अछूता दामन मधुपो ने नहीं छुआ है,
है हृदय पुष्प अनबेधा, है नहीं किसी ने तोडा,
शृगार हार का करके हे नही गले में छोडा,
मन-मन्दिर सुरुचि बना है, प्रतिमा अभी न थापी,
यौवन है उठा घटा-सा नाचा है नहीं कलापी।[1]

इसे पढते ही नवयौवना का चित्र अपने अस्पष्ट, शुद्ध, अनविद्ध रूप में सामने खडा होकर एकदम हृदय को छू लेता है। कबीर, जायसी, प्रसाद, पन्त, महादेवी आदि कवियो की रहस्यवादी रचनाओ और छायावादी गीति-गीतिकाओ को उनकी अप्रस्तुत-योजना ने ही इतना अधिक गौरव प्रदान किया है। अतएव रामदहिन मिश्र के शब्दो में "यह (अप्रस्तुत-योजना) काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है, प्रेषणीयता लाती है, भावो को विशद बनाती है और रमणीयता को वर्द्धित करती है।"[2]

काव्य में सौन्दर्याधान का काम अलकार का है, या वामन के शब्दो में यो कह लीजिए कि "सौन्दर्य ही अलकार है।"[3] किन्तु स्मरण रहे कि यहा वामन ने अलकार शब्द को सकुचित अर्थ में न लेकर व्यापक अर्थ में लिया है और इसके भीतर काव्य की केवल कलात्मक बाह्य सज्जा ही नहीं, बल्कि भव्य भावलोक भी सन्निविष्ट कर रखा है। हम देखते है कि अन्योक्ति की अप्रस्तुत-योजना में जहा, एक ओर, साम्य-मूलक और विरोध मूलक अलकारो की परिनिष्ठा रहती है, वहा, दूसरी ओर, उसमें भाव-जगत भी स्पन्दित हो उठता है। 'ऐसे अलकार काव्य में बहिरग नहीं समझे जा सकते और कटक-केयूर की तरह पृथक् होने वाले आभूषणो से उनकी तुलना नही हो सकती। उनकी तुलना तो कामिनियो के उन अलकारो से की जानी चाहिए जिन्हे भरत ने सामान्याभिनय-प्रकरण में हाव-भाव आदि कहा है।"[4] कामिनियो के मनोगत हाव-भावो की तरह अलकार ही पाठको को कवि के हृदय की थाह का पता देते है। छायावाद और रहस्यवाद में से यदि हम अन्योक्ति को हटा दें तो आत्म-विषयक अभिव्यक्ति भी स्वय हट जाएगी। अन्योक्ति के बिना सारा अध्यात्म-जगत 'वाचामगोचर', रहस्यमय अरूप-रूप परासत्ता तथा उसकी सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनुभूतिया आज तक अनभिव्यक्त ही पडी रहती। इसलिए हमारे विचार से ऐसे अलकार भाव की अभिव्यक्ति से पृथक् कैसे हो सकते है। यदि इन्हें कटक-कुडल आदि की तरह ही मानने का आग्रह हो, तो गुलाबराय के शब्दो में "महात्मा कर्ण के कवच और कुडलो की भाति सहज" मान लें। ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य तो इससे भी आगे बढे हुए है। उन्होंने अन्योक्ति को अलकारो की पक्ति से हटाकर एकदम ध्वनि के उच्चासन पर बिठा दिया।[5] सभवत इसी आधार पर कविराज मुरारिदान ने पूर्वाचार्यो को यह चुनौती दी हो कि "प्राचीनो ने अप्रस्तुत से प्रस्तुत की गम्यता में अप्रस्तुत-प्रशसा अलकार (अन्योक्ति) का स्वरूप समझा है, सो भूल है। वह तो व्यग्य का विषय है, अलकार नहीं।"[6]

---

१ 'नूरजहाँ', पृष्ठ ४५, एकादश सस्करण (गुरुभक्त सिह)।

२ 'काव्य मे अप्रस्तुत योजना', पृष्ठ ७३।

३ 'सौन्दर्यमलकार', काव्यालकारसूत्र, १।१।२।

४ Some Concepts of Alankar Shastra, page 51

५ "अप्रस्तुतस्य सरूपस्याभिधीयमानस्य प्राधान्येनाविवक्षायां ध्वनावेवान्तःपात", ध्वन्यालोक कारिका १३ की वृत्ति।

६ जसवन्तजसोभूषण, पृष्ठ ११४।

व्यग्य से यहा कविराजा की ध्वनि विवक्षित है, जो वस्तु रूप भी हो सकती है, और अलकार रूप अथवा रस-रूप भी। इसलिए हमारे विचार मे अन्योक्ति को सीमित परिधि मे बाधना ठीक नही। वह काव्य का एक व्यापक तत्व है। यह अलकार भी है, ध्वनि भी है और पद्धति भी है।

अन्योक्ति पद्धति का रूप तब ग्रहण करती है जबकि वह अपने चुटकीले चुभते विद्रूप (Satire) या व्यग्य के रूप मे मुक्तक-बद्ध न होकर व्यापक बन जाती है अथवा एक प्रबन्ध के रूप में हमारे सामने आती है। अन्योक्ति-पद्धति में हम किसी लबे लौकिक या दैविक आख्यान को प्रतीक बनाकर उसके द्वारा जीवन की किसी समस्या, रहस्य या भाव को अभिव्यक्ति देते है। साहित्यिक परिभाषा मे इस बृहद् अन्योक्ति को प्रबन्ध गत व्यग्य काव्य के अन्तर्गत करेंगे। आजकल इसे साधारणत 'रूपक काव्य' (Allegory) के नाम से पुकारा जाता है। मुक्तक अन्योक्ति म तो पूर्वापर सम्बन्ध रखे बिना एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप रहता है और वह अपने में स्वतन्त्र रहती है, किन्तु अन्योक्ति-काव्य मे ऐसी बात नही। यहा तो पूर्वापर सम्बन्ध रखे हुए एक कथानक पर दूसरे कथानक का आरोप रहता है। एक कथा प्रस्तुत रहती है और दूसरी अप्रस्तुत। जायसी का पद्मावत एव सूफी कवियो के प्रेमाख्यान तथा प्रसाद की कामायनी आदि रचनाए अन्योक्ति-काव्य कहलाई जाती है। इन साकेतिक प्रबन्धो के अतिरिक्त हिन्दी के आदियुगीन सिद्ध-साहित्य के साधनात्मक और भावात्मक रहस्यवादी गीतो और उलटवासियो में, छायावाद युग की सूक्ष्म तथा मृदुल अनुभूतियो की सकेतात्मक गीतिकाओ में और आजकल प्रयोगवाद युग के प्रतीकात्मक यथार्थवाद के गद्य-गीतो मे भी अन्योक्ति-पद्धति ही काम कर रही है। उसमें प्रतीक-योजना अभिव्यजना की एक शैली ही बनी रहती है।[7] शुक्ल जी के विचारानुसार पन्त, प्रसाद, निराला आदि कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए। छायावाद को एक काव्य-शैली या पद्धति विशेष के रूप में लेना हम भी स्वीकार है किन्तु शुक्ल जी की छायावाद के ईसाई सन्तो और फ्रासीसी प्रतीकवादी दल के कवियो (Symbolists) के अनुकरण पर रचे जाने की धारणा से हम सहमत नही है। हम पीछे कह आए है कि प्रतीक पद्धति भारतीय साहित्य में बडी पुरानी चीज है।

इस सचाई से कोई इन्कार नही करेगा कि हिन्दी-साहित्य अपनी मूल प्रेरणाओ के लिए वैदिक और सस्कृत साहित्य का उपजीवी रहा है। जिस अन्योक्ति-पद्धति पर हम विचार कर रहे है, उसके दर्शन भी हमें सबसे पहले वेदो में ही होते है। वेदभाष्यकार यास्क मुनि मन्त्रो के भौतिक अर्थ बताने के बाद स्थान स्थान पर उनके आध्यात्मिक सकेतो का भी स्पष्टीकरण करते जाते है यद्यपि सायण-भाष्य अधिकतर देवता-परक और यज्ञ परक ही रहा और रहस्यात्मक पहलू में नही घुसा। लेकिन अपनी यौगिक अनुभूतियो के आधार पर वेदार्थ को एक नया आलोक देने वाले योगिराज अरविन्द घोष समस्त ही वैदिक साहित्य को एक बृहद् अन्योक्ति विधान मानते है। उनके विचारानुसार वेद की भाषा को ऐसे शब्दो और अलकारो में आवृत कर दिया था जो कि एक ही साथ विशिष्ट लोगो के लिए आध्यात्मिक अर्थ तथा साधारण पूजार्थियो के समुदाय के लिए एक स्थूल अर्थ प्रकट करती थी। वेद के प्रतीकवाद का आधार यह है कि मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है, एक यात्रा है, एक युद्ध-क्षेत्र है। ये रहस्यमय (वेद के) शब्द है, जिन्होने कि सचमुच रहस्यार्थ को अपने अन्दर रखा हुआ है, जो अब पुरोहित, कर्मकाण्डी, वैयाकरण, पण्डित ऐतिहासिक तथा गाथा-शास्त्री द्वारा उपेक्षित और अज्ञात रहा है।[8] छायावाद-युग की चूडान्त रचना 'कामायनी' एक रूपक काव्य है, जिसका मूलाधार स्वय प्रसाद जी ने ऋग्वेद और शतपथ-ब्राह्मण को माना है और प्रमाण के लिए उन-उन मत्रो और सन्दर्भों को ग्रन्थ के 'आमुख' में उद्धृत भी कर दिया है, जिनसे उन्होने अपने काव्य के लिए प्रेरणा ली है। इस तरह मनु के पार्थिव आख्यान के आवरण में आध्यात्मिक एव मनोवैज्ञानिक समस्याओ के विश्लेषण की मूल-भावना कवि को वेदो से ही प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त सारे वैदिक तथा सस्कृत वाङ्मय में छाया हुआ देवासुर-सग्राम, स्वामी शकराचार्य के शब्दो मे, "अनादि काल से प्राणिमात्र के अन्तर्जगत मे चले आ रहे सात्विक और तामसिक मनोवृत्तियो के मध्य परस्पर सघर्ष के सिवा और कुछ नही है।"[9] यद्यपि हमारे विचार से उक्त सग्राम का अपना ऐतिहासिक एव मानवीय आधार भी अवश्य है। पुराण-ग्रन्थसमूह जिन्हें वेदो का उपबृहण-मात्र कहा गया है, अपने अधिकाश वर्णनो में प्रतीक-पद्धति को लेकर चलते है। प्रतीको का अच्छी तरह ज्ञान हुए बिना लोग पौराणिक बातो को यो ही कपोल-कल्पित कह देने की भूल कर बैठते है। हिन्दी में द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया में जब छायावाद ने जन्म लिया था, तब भी प्रारम्भ में लोगो ने छायावादी कवियो के प्रतीको को न समझ कर उसका बडा भारी विरोध किया। स्वय द्विवेदी जी तथा शुक्ल जी जैसे साहित्य महारथियो ने भी 'कल्पना की कलाबाजी', 'कल्पना का कलापूर्ण और मनोरजक नृत्य' इत्यादि पुकार कर छायावाद की छीछालेदर की थी। किन्तु बाद में प्रतीक-ज्ञान हो जाने पर सभी ने उसका महत्व माना जो इतना बढा कि कुछ समय के लिए छायावाद हिन्दी साहित्य में छा-सा गया। इसी तरह हमें पुराणो के प्रतीको को भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए जिनका ज्ञान काल-प्रभाव से अब लुप्त-सा हो गया है। विस्तार के भय से यहा स्पष्टीकरण के लिए हम पौराणिक प्रतीको की गहराई में नही जा सकते। श्रेण्य सस्कृत के परवर्ती कालिदास आदि कलाकारो की अन्योक्ति पद्धति से तो सभी सस्कृतज्ञ परिचित ही है। काव्य के अतिरिक्त नाटक-क्षेत्र में कृष्णमिश्र का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक प्रतीकात्मक नाटक बडा प्रसिद्ध है, जिसके अनुकरण पर बाद को सस्कृत साहित्य में मोह पराजय, चैतन्य-चन्द्रोदय, विद्या-परिणय आदि प्रतीकात्मक नाटको की बाढ-सी आ गई। भारतेन्दु का पाखण्ड-विडम्बन प्रबोध-चन्द्रोदय के एक अक का अनुवाद मात्र है। प्रसाद की कामना, पन्त की ज्योत्स्ना आदि हिन्दी की आधुनिक छायावादी मनोवैज्ञानिक नाटिकाए भी इसी शैली में लिखी गई है। गद्य में पचतन्त्र

७ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ८०६-७।

८ 'वेद-रहस्य', प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११, १४, १५ (अनुवादक आचार्य अभयदेव विद्यालकार)।

९ देवासुरा ह वै यत्र सयेतिर। उभये प्राजापत्या (छान्दो० उपनि० अध्या० १ खण्ड २) शा० भाष्य—'देवा शास्त्रोद्भासिता इन्द्रियवृत्तय। असुरा तद्विपरीता स्वेष्वेव प्राणनक्रियासु रमणात् तमआत्मिका इन्द्रियवृत्तय एव' इति सर्वप्राणिषु प्रतिदेह देवासुर-सग्रामोऽनादिकालप्रवृत्त।

आदि जन्तुकथा-साहित्य, जिसका मूल हमें महाभारत में मिलता है, शृगाल, सिंह आदि को प्रतीक बनाकर राजपुत्र प्रभृति को राजनीति और *व्यवहार नीति की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही निर्मित है।* अन्योक्ति पद्धति की ऐसी छोटी-छोटी जन्तु-कथाओं को अंग्रेजी में फेबल्स और पैरेबल्स कहते हैं। इस तरह स्पष्टतः सारा संस्कृत साहित्य अन्योक्ति-पद्धति से बड़ा प्रभावित रहा है।

हिन्दी का प्रारम्भिक रूप अपभ्रंश है जो बौद्ध वज्रयानियों की यौगिक अनुभूतियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों से खूब भरा पड़ा है। रहस्यवादी प्रवृत्ति के अनुसार सिद्ध लोग अपनी अनुभूति को 'गहिण-गुहिर भास' (गहन गुह्य भाषा) में अभिव्यक्त किया करते थे। वज्रयान सिद्धान्त के अनुसार साधना द्वारा प्राप्य निर्वाण—'महासुह' वह अवस्था है जिसमें साधक का शून्य में यों विलय हो जाता है जैसे कि जल में नमक की डली का। इस लयावस्था का शृंगारिक प्रतीक *'युगनद्ध'* अर्थात् नर नारी की परस्पर गाढालिंगनबद्ध मुद्रा है। यही कारण है कि तान्त्रिक प्रक्रिया में मद्य, मांस और स्त्रियों—विशेषतः डोमिनी, कौलिनी, शबरी का उल्लेख मिलता है क्योंकि वहां स्त्री महामुद्रा या प्रज्ञा (सुरति-चित्त-एकाग्रता) की प्रतीक मानी जाती है। हमारे विचार से हिन्दी में माधुर्य-भाव के रहस्यवाद के मूल-प्रवर्त्तक कबीर को न मानकर इन सिद्धों को ही मानना उचित होगा। इसी तरह सन्त-युग के साधनात्मक रहस्यवाद और उलटवांसियों के मूल सूत्र भी सिद्ध साहित्य में ही निहित हैं।

सिद्ध युग के बाद वीरगाथा काल हमें अपनी पृष्ठभूमि में देश को मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा रण-क्षेत्र बनाए हुए मिलता है। ऐसी संघर्ष-स्थिति में अधिकतर वीर-काव्य लिखे गए जिनमें अन्योक्ति-पद्धति को यथेष्ट स्थान न मिलना स्वाभाविक ही है। फिर भी मैथिल-कोकिल विद्यापति की राधा-माधव को माध्यम बनाकर शृंगारात्मक कोमल-कान्त पदावली की मधुर बांसुरी भी एक ओर से बजती ही रही। उनके ये पद संस्कृत में जयदेव कवि रचित गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचे प्रतीत होते हैं जिसमें, डा० बड़थ्वाल के शब्दों में, "निर्गुण-पंथियों के अनुसार 'जयदेव' ने अन्योक्ति के रूप में ज्ञान कहा है। गोपियां पंचेन्द्रियां हैं और राधा दिव्य ज्ञान। गोपियों को छोड़कर कृष्ण का राधा से प्रेम करना—यही जीव की मुक्ति है।"[10]

भक्ति-काल में मुस्लिमों का देश में प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। अब विजित और विजेताओं में परस्पर समन्वय की ज्वलन्त समस्या देश के सामने खड़ी थी। ऐसे समय में माधवाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानन्द आदि महान धर्म-प्रचारक विभूतियां आविर्भूत हुईं, जिन्होंने देश का सारा वातावरण ही बदल दिया। उनके मन्त्र फूंकते ही एकदम जन-मन में भक्ति का स्रोत फूट पड़ा जो निर्गुण और सगुण दो धाराओं में बहा। पहली धारा भी ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी नाम से दो और उप-धाराओं में विभक्त हुई जिनमें पहली में बहने वाले कवि 'सन्त' कहलाए और दूसरी में बहने वाले 'सूफी'। रचना-प्रकार की दृष्टि से क्या तो सन्त और क्या सूफी कवि—दोनों ने अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रतीकों को अपनाकर अधिकतर अन्योक्ति-पद्धति का ही आश्रय लिया है। अतएव यदि इस निर्गुण धारा-युग को हम अन्योक्ति-युग ही कहें तो अनुचित न होगा।

सन्त कवियों में कबीर, नानक, दादू और सुन्दरदास विशेष प्रसिद्ध हैं। कबीर इसके नेता हैं। साधनात्मक रहस्यवाद में ये वज्रयानियों और गोरखपंथियों के पद-चिह्नों पर चले और योग-प्रक्रिया से सम्बन्धित अन्तर्भूमियों के वर्णन के लिए इन्होंने सूर्य, चन्द्र, गंगा, जमुना, सरस्वती, त्रिवेणी, अमृतकुंड, कमल आदि का प्रतीक-विधान ही अपनाया। इनकी विरोध-मूलक उलटवांसियां भी प्रतीकात्मक हैं और योगरूपक वर्ग के भीतर आती हैं। हां, ज्ञान क्षेत्र में भक्ति (प्रेम) का पुट लाने में कबीर का अध्यात्मवाद हृदय शून्य न रहा यद्यपि इसे हम अज्ञात सूफीधारा का प्रभाव कहेंगे। कबीर की भक्ति सखी-सम्प्रदाय की भक्ति है, इसलिए वे आत्मा के ब्रह्म में मिलन को पत्नी के पति से मिलन के प्रतीक में अभिव्यक्त करते हैं। कबीर की विरहिणी अपने 'सांई' से मिलने को बड़ी आतुर होती है और उसे प्राप्त करके अपार आनन्द में मग्न रहती है। यही उसके जीवन की सफलता भी है। भक्ति पर यह शृंगार का पुट संस्कृत साहित्य में बड़ी पुरानी वस्तु है। आध्यात्मिक अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य में हमारे पास दाम्पत्य-प्रणय के समकक्ष लौकिक सरस प्रतीक दूसरा कोई नहीं हो सकता है।

निर्गुण पंथ की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि जायसी हैं। इनका रहस्यवाद भी माधुर्य भाव का है। किन्तु उसमें विदेशी पुट है। ये परमार्थ और साधक को कबीर की तरह प्रियतम और प्रियतमा के रूप में न लेकर इसके ठीक विपरीत प्रियतमा और प्रियतम के रूप में लेते हैं। अरब संस्कृति में आशिक ही माशूक पर मरता है। शृंगार-क्षेत्र में इतना भेद रखते हुए भी सूफी कवि साधनात्मक रहस्यवाद में प्रायः भारतीय हैं। इनके प्रेमाख्यानक काव्यों में कहानियां भी भारत से ही ली गई हैं। डा० बड़थ्वाल के शब्दों में "ये कहानियां एक प्रकार से अन्योक्तियां हैं, जिनमें लौकिक प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक है।"[11] अतएव "प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुमति के बिना सूफियों के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है।"

सूफी प्रेमाख्यानों में जायसी का 'पद्मावत' सर्व-प्रसिद्ध है। इसमें शृंगार कबीर की तरह केवल कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि उसका अपना पुष्ट ऐतिहासिक और मानवीय आधार भी है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और उनकी परम सुन्दरी रानी पद्मिनी की प्रणय-कथा का वर्णन है। किन्तु कवि ने दो लौकिक प्राणियों की सच्ची प्रेम-कथा की ओट में जीव-ब्रह्म के रहस्यमय अभेद-मिलन को मुखरित किया है अथवा यों कहिए कि दार्शनिक नीरस ज्ञान-साधना को लौकिक शृंगार का मधुर परिधान पहनाकर मूर्त और मांसल बना दिया है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता बहुत ही ऊंची कोटि की है। विश्व-हृदय की अधिष्ठात्री पद्मिनी के प्रतीक में कवि ने विराट सौन्दर्य-ज्योति की ओर संकेत किया है

> रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
> रतन पदारथ मानक मोती।

रत्नसेन जीव का प्रतीक है जो उस विराट ज्योति को प्राप्त करके आनन्द-लीन है। अलाउद्दीन माया का प्रतीक बनकर पद्मिनी को अपनाना चाहता है, परन्तु वास्तव में वह ज्योति सर्वथा मायातीत ठहरी। वह

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

---

१० 'हिन्दी काव्य में निर्गुण-धारा', पृष्ठ ३३।
११ 'हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय', पृष्ठ २१।

जग्गू

लाल पुष्प

जग्गू को देखकर मैं रुक गया।

किन्तु उससे कुछ कहूं कि उससे पहले ही वह पूछ बैठा, "क्यों साहब मजे में हैं ?"

मैंने सिर हिलाकर 'हां' कर दी।

जग्गू ने बीड़ी सुलगाते हुए पूछा—"आज, स्कूल नहीं गए ?"

"कल दिन भर तो 'गोली' खेलता रहा, स्कूल का काम हुआ नहीं ..."

मैंने बात पूरी भी नहीं की थी कि वह बीच में बोल उठा—"तो तुम भी मास्टर से डरते हो।"

"बहुत तेज हैं।"

जग्गू ने दूसरी बीड़ी सुलगाई और दो-तीन दम भर कर कहा—"लेकिन आज के मास्टर तो हमारे जमाने के मास्टरों से अच्छे हैं।"

मैंने आंखें नचाते हुए कहा—"हूं।"

"हां। हमारे जमाने में ऐसा कहां था ? सालें घंटे भर, तेज धूप में नंगे पैर खड़ा कर देते थे, पीठ पर बेंत की छड़ी तोड़ना तो उनके लिए हंसी मजाक था। इसीलिए तो मुझे मास्टर और किताब दोनों से चिढ़ हो गई थी। जानते हो, मास्टर से डरकर मैं क्या करता था ?"

मैंने सिर हिलाकर जता दिया कि नहीं जानता।

"नवलराय के बेटे तुलसी के संग भाग जाता था और चोरी-चोरी, ज्ञानचन्द के बगीचे में प्रवेश कर, हम दोनों आम तोड़ा करते थे। वह भी एक जमाना था।"

मैं मुस्करा दिया।

जग्गू ने बीड़ी फेंकते हुए कहा—"हमारे जमाने में, आज जैसे सरल स्वभाव के मास्टर होते, तो सच कहता हूं, मैं चाय थोड़े ही बेचा करता ? अरे तब तो मैं किसी बड़े अस्पताल में डाक्टर होता !"

इतना सुन मैं ठहाका मार कर हंसा।

हँसी में जग्गू ने भी मेरा साथ दिया। किन्तु उसी वक्त वह उदास हो गया। मुझे ऐसा लगा कि जग्गू ने जो अभी ठहाका मारा था, वह उसका अपना नहीं था, नहीं तो फिर वह उदास क्यों हो जाता !

कुछ देर वहां मौन रहा।

फिर जग्गू ने तीसरी बीड़ी सुलगाई। जग्गू बीड़ी पीता है, यह सब जानते हैं, किन्तु इस बुरी तरह, यह कोई नहीं जानता था। मुझ से रहा नहीं गया, कह ही दिया—"बहुत बीड़ी पीते हो ?"

बहुत गम्भीर आवाज में उसने कहा—"ठीक है साहब। लगे दम, मिटे गम।"

इतना कह कर उसने एक गहरी ठंडी सांस ली।

मुझ से रहा नहीं गया, पूछ बैठा—"क्या बात है, जग्गू ?"

"आज अपनी औरत को बहुत पीटा है !"

"क्यों ?"

"अरे बदजात से कहा, सिर में दर्द है, थोड़ा दबा दो, तो कहने लगी, मैं थकी हूं—घर का बहुत काम किया है—आराम करूंगी। मुझे आ गया गुस्सा।" इतना कह, उसने मेरी ओर देखा, फिर कहा—"दिन भर मेहनत करता हूं, क्या इतना भी अधिकार नहीं है उस पर कि उससे सिर दबवा लूं ?"

मैं चुप रहा। जग्गू मुझ से कुछ भी छिपाता नहीं है। न जाने, हम दोनों में यह अपनापन कहां से आ गया है।

"साहब, उसे कितना प्यार करता हूं, कितना चाहता हूं, किन्तु उससे प्यार के दो मीठे बोल कभी सुनने को नहीं मिले। तुम देखते हो, मैं केवल बनियान पहनता हूं, पर उसके लिए रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियां लाया करता हूं। अपने बदन पर कभी अच्छा, खुशबू वाला साबुन नहीं लगाया, लेकिन उसके लिए 'पीयर्स' साबुन लाता हूं। फिर भी पत्नी प्यार क्यों नहीं करती है, यह मेरी समझ में नहीं आता है।"

इस बात पर मैं कहता तो क्या कहता ?

जग्गू की आवाज भारी हो गई थी। वह कहने लगा—"कभी-कभी तो मन करता है कि सब कुछ छोड़ कर कहीं चला जाऊं। किन्तु सच कहता हूं जीवन का मोह भी तो नहीं छूटता है। यह तो बताओ साहब, आदमी अपने जीवन में इतना दुख उठाता है, इतनी कठिनाइयों का सामना करता है कि वह मरने को आतुर हो उठता है। लेकिन फिर भी जीवन का मोह उससे क्यों नहीं छूटता ? ऐसा क्यों होता है, साहब ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके बाद, वह भी अपने रास्ते चला गया।

जग्गू न केवल मेरा अपना है, बल्कि सबका अपना है। वह सब का दर्द पहचानता है। वह कहानीकार नहीं है, वह कवि नहीं है। लेकिन फिर भी वह सबका इतना अपना क्यों है, कैसे सबका दर्द पहचानता है, यह मेरे लिए स्वयं प्रश्न है। वह एक गंवार है, उसके मुंह से जो बात निकलती है, उनमें गन्दी गालियों की भरमार रहती है। लेकिन उसका चेहरा जितना काला है, उसका दिल उतना ही साफ है। मसाले वाले पान खाने और तीखे तम्बाकू की बीड़ी पीने की उसको बुरी आदत है। भांग और तेज चाय तो वह प्रतिदिन पीता है। शराब की उसे आदत नहीं है, लेकिन त्यौहार आदि के दिन उसे भी नहीं छोड़ता। कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जग्गू धूल में से भी रुपया बनाने में उस्ताद है। कभी भी किसी ने उसको कोई एक धंधा करते नहीं देखा, कभी चाय बेचता है, कभी कुल्फी और कभी केले।

चाय की केतली लेकर जा बैठता है 'हवाई जहाज' होटल के सामने। जग्गू बेचता है, दो पैसे में एक कप। लेकिन कभी किसी ने यह शिकायत

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

नया नाखून

अमृतराय

एक रोज ऐसा हुआ कि मैंने अपने पैर में खुद ही चोट मार ली। पता नही किस ध्यान में था कि कमरे का दरवाजा बन्द करने के लिए जो खीचा तो पैर की एक उगली अच्छी तरह---यानी बुरी तरह---चपेट में आ गई। नाखून निकला तो नही पर एकदम काला पड गया। खूब दर्द हुआ और काफी दिनो तक हुआ। पकने के भी कुछ लक्षण दिखायी पडे। सेंक-बाध, मरहम-पट्टी भी कम नही करनी पडी। धीरे धीरे दर्द जाता रहा मगर वह चोट खाया हुआ काला नाखून ज्यो का त्यो काला बना रहा। न तो वह ठीक होकर अपनी सही रगत पर आता था और न झडता था। अजब बेडौल-सा नजर आता था और जब-जब मेरा ध्यान उस पर जाता तब-तब यही खयाल आता कि कैसे यह घायल नाखून झडे और इसकी जगह नया नाखून आये। मगर कुदरत के कारखाने में भला किसे वखल है। वहा तो हर चीज अपने वक्त पर होती है। दो-चार बार यह भी सोचा कि लाओ नोचकर अलग कर दू, झझट खत्म हो, खामखाह एक फूहड, बेडौल-सी चीज अपने शरीर से हिलगी हुई है, न किसी काम की न काज की !

मेरी आख में गडना ही उसका काम हो तब और बात है। यह भी तो एक मुसीबत है आदमी के साथ---शरीर में, मन में कही कोई चीज दुखती हो, गडती हो, टपकती हो, टीसती हो, कुछ हो, बस फिर क्या है, सारा ध्यान घूम-फिरकर उसी जगह पर पहुच जाता है। कितना ही आप हजरते दिल को इधर-उधर की बातो में बहलाइए उससे कुछ होता-हवाता नही, मौका मिला नही कि जनाब फिर, शाम के वक्त अपने स्थान पर लौटती हुई गाय की तरह, ठीक अपनी जगह पर पहुच जाते है !

मान लीजिए आपका सिर दीवार से टकरा गया या खोपडी की छत पर किरकिट की गेंद आकर गिरी और उस जगह पर एक बडा-सा गुमडा निकल आया (अरे साहब बुरा क्यो मानते हैं, मैं तो केवल एक उदाहरण दे रहा था। जाने भी दीजिए गुमडा आपके सर में नही निकला, मेरे सर में निकला)। यो चाहे आपका, यानी मेरा, हाथ कभी अपने माथे पर या सर पर न जाता हो लेकिन अब आप देखेंगे कि आपका हाथ हर वक्त उसी जगह पर पहुचा हुआ है और गुमडे को सहला रहा है। गुमडा तो गुमडा, बडी चीज होती है, नन्हा-सा एक मुहासा चेहरे पर निकल आता है तो हाथ साहब उसकी अर्दली में पहुच जाते हैं। किशोर वय के छोकरो को आपने देखा होगा, हर वक्त अपने मुहासो को छेडते रहते हैं---आपको याद न होगा, आप भी उस वक्त ऐसा ही किया करते थे और अगर खुदा न खास्ता बूढे मुह मुहासा फिर निकल आय तो आप फिर वही बात करेंगे---इसमें उसका कोई दोष नही है। शरीर के किसी हिस्से में एक नन्ही-सी, जीरे के बराबर फुसी निकल आये, तब देखिए कैसा तमाशा होता है, न सोते चैन न जागते, न इस करवट न उस करवट, सारी चेतना उसी एक बिन्दु पर जाकर केन्द्रित हो जाती है और कोई उसको वहा से जौ भर भी हिला नही सकता, उसी तरह जैसे रावण की सभा में अगद का पैर कोई अपनी जगह से हिला नही सका !

यही हाल अब मेरे इस घायल नाखून का था। जैसा कि मैं कह चुका हू, एकाध बार मेरे जी में आया भी कि हिम्मत करके उसे नोच फेंकू, मगर मैं कौन ऐसा रणबाकुरा हू, हिम्मत नही पडी और अब सोचता हू कि अच्छा ही हुआ हिम्मत नही पडी वर्ना लेने के देने पड जाते। यह सब तो खैर बातें हैं, लेने के देने तो जब पडते तब पडते, हिलाने-डुलाने से ही मुझ को पता चल गया कि इसके साथ ज्यादा छेड-छाड करना ठीक नही। नहाते वक्त, कपडे या जूते पहनते वक्त जब भी उस नाखून को जरा-सी ठेस लगती, वह जैसे चीखकर कह उठता---यह मत समझना कि मुझ में जान नही है। भले ही मैं खुद मुर्दार हो गया होऊ मगर जब तक कि उन तन्तुओ में प्राण बाकी हैं जो कि मुझे उगली के जीवित मास से जोडते हैं, यानी जब तक कि मेरी जड मे कुछ भी रस, कुछ भी प्राण शेष है तब तक मैं भी जीवित हू और कोई मुझे अपनी जगह से हिला भी नही सकता।

इस दर्पोक्ति के बाद किसकी हिम्मत थी कि उसके साथ छेड-छाड करता। मैंने हारकर उस काम से हाथ खीच लिया और वसी डालकर तालाब किनारे बैठे हुए मौन, वीतरागी मछलीमार की तरह तटस्थ भाव से उस घडी की प्रतीक्षा करने लगा जब वह नाखून आप से आप झडेगा। जाहिरा उसमें कोई तबदीली नजर नही आती थी सिवाय इसके कि धीरे-धीरे वह नाखून अपनी जड छोडता जा रहा था।

और फिर एक दिन सबेरे मैंने देखा कि वह घायल, काला नाखून गायब था और उसकी जगह दूसरा नन्हा-सा, गुलाबी नाखून झाक रहा था, कि जैसे गुलाबी रग की कोई ढीठ दोशीजा मुडेर चढकर झाक रही हो !

और सबसे मजे की बात यह हुई कि मुझे पता भी नहीं चला कि कब वह मुर्दार नाखून झड गया।

जग्गू---(पृष्ठ ३४ का शेषांश)

नही की कि उसकी चाय में वह मजा नही है, जो होटल की एक आने वाली चाय मे है। जिस होटल के बाहर जग्गू बैठता था, उसका तो दीवाला निकलने पर ही गया। होटल का मालिक, चिढता, कुढता और उसे डाटता तो जग्गू का उत्तर होता---'सडक तुम्हारे बाप की है ?' विवश हो, होटल मालिक जग्गू की हथेली पर चमकता रुपया रख देता था, और जग्गू ऐसा बेवकूफ नही था कि रुपया पाकर भी वही बैठा रहता।

(शेष पृष्ठ ४४ पर)

पुस्तक समालोचना



भूले-बिसरे चित्र : लेखक—भगवती चरण वर्मा, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली ७, पृष्ठ संख्या ७४०, मूल्य—११) रु० सजिल्द।

'भूले बिसरे चित्र' नामक श्री भगवती चरण वर्मा का यह उपन्यास इस वर्ष का इतना महत्वपूर्ण प्रकाशन है कि उसके सम्बन्ध में कुछ भी कहने से पहले बहुत संक्षेप में मैं हिन्दी उपन्यास की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें कहना चाहता हूं।

हिन्दी उपन्यास आज स्पष्टतः नई ऊंचाइयों पर पहुंच गया है। स्वाधीनता के उपरान्त हिन्दी कथा साहित्य (कहानी, नाटक, उपन्यास, आत्म-कथा और कथा-काव्य) के सभी अंगों में से उपन्यास का सबसे अधिक विकास क्यों हुआ, यह अध्ययन का एक अत्यन्त मनोरंजक विषय है। भारतीय परम्परा में नाटक, चम्पू, कथा-काव्य, कथा और जीवनी (हर्षचरितम् आदि) प्राचीन माध्यम हैं। पर वे सब आज हिन्दी में उस ऊंचाई तक भी नहीं पहुंचे, जिस ऊंचाई तक वे संस्कृत साहित्य के युग में (उस युग की तुलना में) पहुंच चुके थे। कहानी और उपन्यास हिन्दी में उन्नीसवीं सदी के अन्त तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लिखे जाने शुरू हुए। उन दोनों माध्यमों का वास्तविक विकास प्रथम महायुद्ध के आस-पास प्रारम्भ हुआ। हिन्दी कहानी के सौभाग्य से इसी प्रारम्भिक युग में प्रेमचन्द-सी महान् प्रतिभा उसे प्राप्त हो गई। प्रथम महायुद्ध के बाद बीसवीं सदी की तीसरी दशाब्दी (१९२१ से १९३०) और उससे भी बढ़कर चौथी दशाब्दी (१९३१ से १९४०) हिन्दी कहानी के लिए अत्यन्त उर्वरा सिद्ध हुईं। इन दो दशाब्दियों में ही हिन्दी कहानी जैसे एक पूरी शताब्दी की मंजिल पार कर गई। इस युग में खूब अच्छी-अच्छी कहानियां हिन्दी में लिखी गईं। इन सब कहानीलेखकों में प्रेमचन्द सर्वश्रेष्ठ थे। पर अन्य भी कितने ही अच्छे-अच्छे और प्रथम श्रेणी के कहानी-लेखक उक्त दो दशाब्दियों में हिन्दी को प्राप्त हुए।

पर हिन्दी उपन्यास की दशा इससे भिन्न थी। इस क्षेत्र में भी श्री प्रेमचन्द ही सर्वश्रेष्ठ थे। उक्त दोनों दशाब्दियों में प्रेमचन्द के निकट तक पहुंच सकने वाला भी कोई अन्य उपन्यासकार हिन्दी में नहीं था। पर मेरी राय में विश्व-उपन्यास की दृष्टि से प्रेमचन्द भी उच्च-द्वितीय श्रेणी तक ही पहुंचते हैं, निम्न-प्रथम श्रेणी तक भी नहीं, यद्यपि कहानी लेखक की दृष्टि से उनकी गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ कहानीलेखकों में अर्थात् उच्च-प्रथम श्रेणी के कहानी-लेखकों में, की जा सकती है। उस युग में भी प्रेमचन्द के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसिद्ध उपन्यासकार हिन्दी में हुए, पर उनमें से कोई भी प्रेमचन्द की ऊंचाई तक भी नहीं पहुंच पाया था।

सन् १९३६ में प्रेमचन्द का देहावसान हुआ। यह हिन्दी कथा-साहित्य की एक बहुत बड़ी क्षति थी। पर हिन्दी कहानी की मशाल की चमक उसके बाद भी जारी रही। इधर जहां तक हिन्दी उपन्यास का सम्बन्ध है, इस क्षेत्र में एक बहुत बड़ा खालीपन आ गया। त्यागपत्र, दादा कामरेड, शेखर, विराटा की पद्मिनी, सुखदा आदि खासे-अच्छे कुछ उपन्यास इस युग में (द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तथा उसके दौरान में) प्रकाशित हुए। पर उसके बाद जैसे बरसों के लिए इस क्षेत्र में अंधेरा-सा छा गया। इसी युग में (दूसरे महायुद्ध तथा उसके अनन्तर) हिन्दी कहानी में भी गत्यवरोध दिखाई दिया। बहुत कम अपवादों के साथ उन्नीसवीं सदी की पांचवीं दशाब्दी और उसके बाद के भी कुछ वर्ष हिन्दी कथा साहित्य (कहानी और उपन्यास दोनों की दृष्टि से) में काफी वीरान सिद्ध हुए।

पर पिछले ५-६ वर्षों में हिन्दी उपन्यास में जो जीवन-संचार हुआ है, वह हिन्दी उपन्यास को आश्चर्यजनक ऊंचाइयों तक ले गया है। नव-चेतना के इस काल में हिन्दी उपन्यास का जैसे कायाकल्प हो गया है। अब वह केवल लेखक के घोर अहंभाव और मानसिक घुटन के चित्रण तक ही सीमित नहीं रहा, जैसा कि वह 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' आदि में दिखाई पड़ा था। अब हिन्दी उपन्यास अपने लिए अत्यन्त स्वस्थ, उन्मुक्त और विशाल प्रदेश तलाश कर रहा है। पिछले ५-६ वर्षों में हिन्दी में कितने ही अच्छे-अच्छे उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें से मैं 'मैला आंचल', 'बूंद और समुद्र', 'परती परिकथा', 'झूठा सच', और 'भूले-बिसरे चित्र' को पृथक्-पृथक् लैण्ड मार्क के समान मानता हूं। यह कहते हुए मैं 'मृगनयनी' जैसे कोमल और कलापूर्ण निर्माण और 'त्यागपत्र' तथा 'नदी के द्वीप' जैसी शक्तिशाली रचनाओं को भी भूला नहीं हूं। हिन्दी उपन्यास की यह विविधता और ये नई ऊंचाइयां हिन्दी के लिये निस्सदेह हर्ष तथा गौरव का विषय हैं। और सब देख-सुन कर मैं यह कह सकता हूं कि स्वाधीनता के उपरान्त के युग में हिन्दी साहित्य के सभी माध्यमों में उपन्यास ने सबसे अधिक और सबसे श्रेष्ठ प्रगति की है।

मुंशी प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं और उन्हें बहिर्मुखी कहा जा सकता है। उनके बाद के बहुत से लोकप्रिय हिन्दी उपन्यास पूरी तरह या मुख्यतः अन्तर्मुखी हैं। उनमें एक-दो व्यक्तियों के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण करने का प्रयत्न किया गया है—त्यागपत्र, शेखर, सुखदा आदि उपन्यास उसी श्रेणी में आते हैं। पर वर्तमान दशाब्दी के हिन्दी उपन्यास फिर से मुख्यतः बहिर्मुखी बन गए हैं। यहां मैं यह अवश्य स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि उपन्यास की श्रेष्ठता या हीनता की कसौटी यह कदापि नहीं है कि उपन्यास अन्तर्मुखी है या बहिर्मुखी। हिन्दी

उपन्यास की वर्तमान प्रवृत्ति का उल्लेख भर करने के उद्देश्य से मैंने यह जिक्र यहां किया है।

'भूले-बिसरे चित्र' को हिन्दी साहित्य में इस दृष्टि से एक नया प्रयोग कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में चार पीढियों का तथा उनके आस पास के युग का चित्रण किया गया है। 'भूले-बिसरे चित्र' का कथानक सन् १८८५ से प्रारम्भ होता है, जब अर्जीनवीस मुंशी शिवलाल का सुशिक्षित तरुण बेटा ज्वालाप्रसाद नायब तहसीलदार के पद पर नामजद किया जाता है। ज्वालाप्रसाद वास्तव में इस उपन्यास का प्रधान नायक है। साधारण मानवीय कमजोरियों के रहते भी वह मूलतः एक अत्यन्त ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ प्राणी है। ज्वालाप्रसाद तरक्की करते-करते डिप्टी-कलैक्टरी तक पहुंचता है तो उसका पुत्र गंगाप्रसाद अपने जीवन का प्रारम्भ ही डिप्टी-कलैक्टरी से करता है। यह गंगाप्रसाद इस उपन्यास का दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र है। ज्वालाप्रसाद जहां उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के संधिकाल के धर्मभीरू, ठहरे हुए और मूलतः ईमानदार, उच्च मध्यवर्गीय कुलीन जमात का प्रतिनिधित्व करता है, वहां गंगाप्रसाद उक्त समाज से सम्बद्ध महायुद्ध के आस-पास के युग का। सुरा-सुन्दरी आदि के सम्बन्ध में बहुत-सी कमजोरियां रहते हुए भी गंगाप्रसाद मूलतः ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ अफसर है। उसमें अपने पिता की अपेक्षा बहुत अधिक जीवन और आत्मसम्मान की भावना है। इस गंगाप्रसाद के चरित्र का भी अत्यन्त श्रेष्ठ विकास 'भूले-बिसरे चित्र' में किया गया है। गंगाप्रसाद का पुत्र नवलकिशोर आई० सी० एस० में सम्मिलित हो सकने की सम्भावना तथा एक अत्यन्त धनी परिवार में विवाह होने के अवसर को स्वेच्छापूर्वक ठुकराकर १९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित होकर जेल चला जाता है। इस तरह 'भूले-बिसरे चित्र' सन १८८५ से लेकर १९३० तक की ४ पीढियों की शक्तिशाली कहानी है। इसी तरह का, बल्कि इससे भी अधिक महत्वाकांक्षापूर्ण प्रयोग 'सोना और खून' के रूप में आचार्य चतुरसेन शास्त्री कर रहे हैं, पर अभी वह एकदम अधूरा है।

मुख्यतः तीन पीढियों का (मुंशी शिवलाल की पीढी का चित्रण आनुषंगिक ढंग पर है) चित्र होने के कारण इस उपन्यास के पात्र स्पष्टतः तीन सैटों में बांटे जा सकते हैं। इस कारण एक ही समय में अधिक पात्र न रहते हुए भी पूरे उपन्यास में कुल पात्रों की संख्या खासी बडी हो गई है। इतने पात्रों में सभी का चित्रण तो प्रथम श्रेणी का नहीं है, पर 'भूले-बिसरे चित्र' के कुछ पात्र निस्सन्देह अत्यन्त शानदार हैं। ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, छिनकी और भीखू—इन चारों पात्रों की गणना हिन्दी उपन्यास साहित्य के अमर पात्रों में की जाया करेगी। ये चारों तीन विभिन्न श्रेणियों के प्रतिनिधि हैं, पर उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने में लेखक को यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है। यों और भी कितने ही शक्तिशाली पात्र इस उपन्यास में हैं—प्रभुदयाल, जैदई, लक्ष्मीचन्द, बरजोरसिंह, सन्तो, लाल रिपुदमनसिंह, फरहतुल्ला, ज्ञानप्रकाश, नवलकिशोर और विद्या—इन सब को भी पाठक आसानी से नहीं भूल सकेगा।

ज्वालाप्रसाद एक ईमानदार, शरीफ पर धर्मभीरु सरकारी वर्ग का प्रतिनिधि है तो उसके पुत्र गंगाप्रसाद का व्यक्तित्व आत्माभिमान पूर्ण, शक्तिशाली सरकारी अफसरों का। निम्न श्रेणी की जात में उत्पन्न होने पर भी छिनकी और उसके बेटे भीखू का चरित्र अत्यन्त गरिमाशाली है। ये दोनों अपने मालिकों के परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण, आन्तरिक तथा अपरिहार्य अंग बन गए हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' की सबसे बडी शक्ति उसकी स्पष्टता, यथार्थता और मनोरंजकता है। व्यक्ति और परिस्थितियों का इतना साफ-सुथरा, स्पष्ट और यथार्थतापूर्ण चित्रण आपको आसानी से देखने को नहीं मिलेगा। जहां तक मनोरंजकता का प्रश्न है, इस उपन्यास में इतनी पकड है कि आप इसे बीच में छोडना नहीं चाहेंगे। और मेरी राय से मनोरंजकता किसी भी अच्छे उपन्यास की एक आवश्यक शर्त गिनी जानी चाहिए।

जहां तक आधी शताब्दी (१८८५ से १९३०) के कुछ विभिन्न पात्रों के चित्रण का सम्बन्ध है, लेखक को अपने प्रयास में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई है। पर यदि इस उपन्यास में आप उक्त अर्द्ध-शती के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की सही-सही झांकी लेना चाहेंगे, तो इसमें आपको पूरा सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। मुंशी बनवारीलाल अर्जीनवीस से लेकर कम्यूनिस्ट प्रेमशंकर तक जितने पात्रचित्र इस उपन्यास में है, वे सब के सब १९३१ के बाद के उत्तर भारत में भी आपको जगह-जगह मिल जाएंगे। केवल बडे जागीरदारों और राजाओं की फराखदिली, प्रेमकाण्डों और हत्याकाण्डों की कहानियां शायद अतिरंजित मालूम हों। पर उस तरह की बातें स्वाधीनता से पूर्व के भारत में काफी मात्रा में होती रही हैं। उपन्यास के प्रथम दो खण्ड अत्यधिक मनोरंजक है, पर उनमें ऐसी बातें बहुत कम हैं, जो उस युग के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ढांचे को पाठक के मानसिक नेत्रों के सम्मुख चित्रित कर दें। इस पर भी उक्त तीनों पीढियों का जो चित्रण लेखक ने किया है, वह विभिन्न श्रेणी के पात्रों का चित्रण होता चला गया है,—इस तथ्य के कारण युग-चित्रण की दृष्टि से भी इस उपन्यास में कोई बडी न्यूनता पाठकों को प्रतीत नहीं होगी।

इस उपन्यास की एक विशेषता इसकी अत्यन्त मनोरंजक अन्तर्कथाएं भी हैं। बरजोरसिंह द्वारा प्रभुदयाल की हत्या, बुद्धूसिंह पहलवान और बिसनगुरु की कुश्ती, लाल रिपुदमन द्वारा अपनी पत्नी तथा उस के प्रेमी की हत्या, अली रजा के यहां से माया का उद्धार, आर्य-समाजी-मुस्लिम-ईसाई शास्त्रार्थ आदि की उपकथाएं लगभग पौने तीन लाख शब्दों के इस उपन्यास में बहुत आकर्षक ढंग से पिरो दी गई हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' में कितनी ही छोटी बडी कमजोरियां भी हैं। सबसे बडी कमजोरी (चार पीढियों के उक्त ऐतिहासिक युग में भारतीय जीवन के सामाजिक और आर्थिक जीवन में आने वाले परिवर्तनों, संघर्षों और विकासों की संतुलित कहानी न होकर यह उपन्यास उसके कुछ पहलुओं को ही चित्रित करता है। यद्यपि जितना चित्रण किया गया है, वह प्रथम श्रेणी का है।) का जिक्र पहले ही किया जा चुका है। उपन्यास का नाम 'भूले-बिसरे चित्र' रक्खा गया है। इस नाम से यह भ्रम भी हो सकता है कि यह ग्रन्थ उपन्यास न होकर संस्मरण या स्केचों का ग्रन्थ है। पर यह नाम एक तरह से इस रचना का प्रतीक भी कहा जा सकता है। यह उपन्यास युग का चित्रण न होकर लगभग दो दर्जन प्रतिनिधि-पात्रों का चित्रण बन गया है। उपन्यास की टैकनीक की दृष्टि से इसे एक दोष कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य साधारण कमजोरियां मेरी राय से इस प्रकार हैं :—

१ उपन्यास अधूरा प्रतीत होता है। चौथी पीढ़ी का अधिनायक नवलकिशोर पाठक के हृदय की पूरी सहानुभूति तो प्राप्त कर लेता है, पर १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में उसे जेल भेज कर उपन्यास को समाप्त कर दिया गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस उपन्यास में एक समय में एक ही मुख्य पात्र रहता है। उपन्यास के पिछले सवा सौ पृष्ठों में नवल किशोर ही मुख्य नायक है। उसे तथा उसके साथी सभी पात्रों, विद्या, ज्ञानप्रकाश, प्रेमशंकर, माया, सत्यव्रत आदि को बीच ही में छोड़ दिया गया है। मेरी राय से यदि इस उपन्यास को १९४७ तक लाया जा सकता, तो उससे उपन्यास का कलेवर चाहे १,००० पृष्ठों तक जा पहुंचता, पर उपन्यास की अन्तिम पीढ़ी के साथ उचित न्याय हो पाता। दूसरा विकल्प यह हो सकता था कि गंगाप्रसाद की पीढ़ी के साथ ही सम्पूर्ण कथानक को समेट लिया जाता और चौथी पीढ़ी के पात्रों के प्रति पाठकों की उत्सुकता जगाई ही न जाती। उस दिशा में चौथी पीढ़ी के कितने ही पात्र अनावश्यक बन जाते और उपन्यास लगभग १०० पृष्ठ छोटा हो जाता।

२ इस उपन्यास के कथानक की एक कमजोरी रानी हेमवती और राजा सत्यजित की बेटी की सगाई की रात का अत्यन्त अस्वाभाविक चित्रण है। मेरी राय से ये दोनों तथा इसी तरह कुलीन वर्ग के अल्प महत्व के कुछ अन्य पात्र 'भूले बिसरे चित्र' के बहुत कमजोर और काफी अंश तक अस्वाभाविक चित्र हैं। सन्तो और गंगाप्रसाद के सम्बन्धों का चित्रण भी उसी श्रेणी का है। मेरी राय से इस तरह की सुनी-सुनाई या अफवाहों के रूप में फैली हुई बातों को इस रचना में सम्मिलित नहीं करना चाहिए था। उक्त अमीर श्रेणी के अच्छे बुरे पहलुओं व शक्तियों और कमजोरियों का चित्रण यदि करना आवश्यक था तो उसका स्तर भी वही रखना चाहिए था, जो तत्कालीन मध्य श्रेणी के चित्रण का है, जहां लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

३ कहीं कहीं मध्य श्रेणी के चित्रण में भी कम-अधिक अस्वाभाविकता आ गई है। यहां दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। लक्ष्मीचन्द उन्नीसवीं सदी के अन्त के एक अत्यन्त लोभी बनिये का बेटा है, जो अपने बाप की हत्या के बाद उसी के पदचिन्हों पर चलकर करोड़पति और बहुत बड़ा व्यवसायपति बन जाता है। इस लक्ष्मीचन्द की माता जैदेई अच्छे स्वभाव की महिला है। सम्पूर्ण उपन्यास में लक्ष्मीचन्द को अपनी माता से विमुख नहीं दिखाया गया, यद्यपि असन्तुष्ट अवश्य दिखाया गया है। ज्वालाप्रसाद का पुत्र गंगाप्रसाद जैदेई के यहां रह कर ही पढ़ा-लिखा है और वह लक्ष्मीचन्द को अपने भाई के समान मानता है। उनके परस्पर सम्बन्ध भी अच्छे दिखाए गए हैं। पर जैदेई की मृत्यु के समय जब वह अपनी व्यक्तिगत बचत लक्ष्मीचन्द को देना चाहती है, तब लक्ष्मीचन्द अपनी माता का भयंकर अपमान करता है, बल्कि इसी धक्के से उसकी मां की मृत्यु हो जाती है। यह सब मेरी राय से काफी अतिरंजित और अस्वाभाविक है। दूसरा उदाहरण उस समय का है, जहां गंगा प्रसाद (उपन्यास का दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र) अपनी एक समय की प्रेमिका माया को उसके विवाह के बाद भी जबरदस्ती अपने आलिंगनपाश में पकड़ लेता है, विशेषतया उस दशा में जब वह उसका सहारा लेने आई है। इस तरह की अतिरंजना और अस्वाभाविकता के अन्य उदाहरण भी इस उपन्यास में हैं।

४ सन्तो और वायसराय के ए० डी० सी० मेजर वाटस का किस्सा तो एकदम स्वाधीनता से पूर्व के उर्दू-पत्रों के स्तर का है। यह स्पष्टतः निम्न स्तर के एक क्षेपक के समान प्रतीत होता है। यों भी सब मिला कर सन्तो के चित्रण में लेखक को सफलता नहीं मिली।

५ कुछ अत्यन्त मामूली ढंग की तथ्यात्मक त्रुटियां भी हैं। उदाहरण के लिए पृष्ठ ४६५ पर वर्णित युग में भारत में अंग्रेजी फौज की संख्या डेढ़ लाख नहीं थी, जैसा कि यहां ज्ञानप्रकाश जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति से कहलवाया गया है, वह इससे लगभग आधी थी। इसी तरह पृष्ठ ६३८ पर जहां गंगाप्रसाद, जो एक बार कानपुर का कलैक्टर भी रह चुका है, की मृत्यु पर मिलने वाली सरकारी राशि जितनी न्यून बताई गई है, उससे बहुत अधिक राशि उस युग के उक्त कोटि के अफसरों अथवा उनके उत्तराधिकारियों को मिला करती थी।

पर जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, इन सब बातों का महत्व बहुत कम है। सब मिला कर यह 'भूले-बिसरे चित्र' नामक उपन्यास हिन्दी का एक प्रथम श्रेणी का उपन्यास है। इस वर्ष (१९५९) के अब तक प्रकाशित सभी उपन्यासों में निस्सन्देह यह सर्वश्रेष्ठ है। मुझे विश्वास है कि भारत की सभी भाषाओं में 'भूले-बिसरे चित्र' का अनुवाद अविलम्ब प्रकाशित होगा। इस अत्यन्त श्रेष्ठ रचना के लिए श्री भगवतीचरण वर्मा हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

पुराना दिया नई रोशनी लेखक—सुरेन्द्रकुमार मल्होत्रा, प्रकाशक—सरहोना सदन, १ फैज बाजार, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के) १४८, मूल्य ३।) रु० सजिल्द।

यथेष्ट सुन्दर रूप से प्रकाशित इस संग्रह में श्री सुरेन्द्रकुमार मल्होत्रा की १३ कहानियां हैं। उनका यह पहला कहानी-संग्रह है। इस संग्रह की कहानियां पढ़ कर यह निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि न सिर्फ लेखक में कहानी लिखने की यथेष्ट शक्ति है, अपितु उसे कहानी की टैकनीक तथा कहानी की सज्जा में पूरी दिलचस्पी भी है।

'पुराना दिया नई रोशनी' यह नाम खासा गुथीला होते हुए भी बुरा नहीं है। मेरी राय से यह नाम इस संग्रह की कहानियों का प्रतीक है। बहुत जगह ऐसा प्रतीत होता है, जैसे लेखक कह रहा हो "देखो, मैं किस तरह अपनी कहानी कह रहा हूं"—पाठक के लिए यह अनुभूति बहुत वांछनीय नहीं होती। उस पर भी कहानियां बुरी नहीं हैं। कुछ कहानियों की पकड़ और उनकी शक्ति प्रशंसनीय है।

इस संग्रह की सबसे बड़ी कमजोरी संग्रह की भूमिका या वक्तव्य के रूप में दिया गया एक परिसंवाद है। मेरी राय से यह परिसंवाद संग्रह के दूसरे संस्करण से निकाल देना चाहिए।

मुझे विश्वास है कि श्री सुरेन्द्रकुमार मल्होत्रा अपनी कहानियों में तत्व पर अधिक बल देने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा हो सका तो उनका भविष्य निस्सन्देह उज्ज्वल होगा।

ओथेलो मूल लेखक—विलियम शेक्सपियर, अनुवादक—बच्चन, प्रकाशक—राजपाल एंड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या २३५, मूल्य ३.५० सजिल्द।

'ओथेलो' का यह अनुवाद धारावाहिक रूप में 'आजकल' में प्रकाशित हो चुका है। इससे पूर्व बच्चनजी 'मैकबैथ' का अनुवाद कर

चुके हैं। 'आजकल' के पाठकों को याद ही है कि 'ओथेलो' का यह हिन्दी अनुवाद मूल रचना के ढग पर ही हुआ है, अर्थात पद्य का अनुवाद पद्य में और गद्य का अनुवाद गद्य में। इसी वर्ष दिल्ली में डा० बच्चन द्वारा कृत 'मैकबैथ' का हिन्दी अनुवाद पूरी तैयारी के साथ हिन्दी शेक्सपियर रगमच की ओर से अभिनीत हुआ था। इस अभिनय से डा० बच्चन द्वारा कृत अनुवाद के गुण-दोष स्पष्टत सामने आ गए थे। उक्त अभिनय के डायरेक्टर महोदय का कथन है कि शेक्सपियर जैसा प्रवाह इस अनुवाद में नहीं आ पाया। हमारी राय से इस तरह की आशा करना ही अयुक्तियुक्त है। अच्छा होता यदि डायरेक्टर महोदय कोई रचनात्मक सुझाव अपनी आलोचना में देते, यानी वह बताते कि बच्चन द्वारा अनुवादित शेक्सपियर की किस पंक्ति का अनुवाद उनकी राय से किस रूप में अधिक अच्छा किया जा सकता है। मैं मानता हूं कि अभिनय करते हुए कथोपकथन में सरलता लाने की दृष्टि से कुछ न कुछ सुधार किसी भी अनुवाद में अवश्य किया जा सकता है, पर यह कार्य अभिनय की तैयारी करते हुए ही सम्भव है।

कुछ ही दिन पूर्व 'ओथेलो' के हिन्दी रूपान्तर के कुछ भाग का पाठ डा० बच्चन द्वारा आयोजित किया गया था। 'हिन्दी शेक्सपियर रगमच' ने यह निश्चय किया है कि शीघ्र ही 'ओथेलो' का अभिनय भी किया जाए। हमें विश्वास है कि इस बार भाषा सम्बन्धी आवश्यक सुधार उक्त अभिनय की तैयारी के दौरान में ही कर लिए जाएंगे।

शेक्सपियर का अनुवाद एक अत्यन्त कठिन कार्य है। डा० बच्चन पूरी सूझ और तन्मयता के साथ यह अनुवाद कार्य कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि उनके इस प्रयास से हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में मूल्यवान सहायता मिलेगी।

बापू की कहानी मूल लेखिका—श्रीमती कृष्णा हठीसिंह, अनुवादक—मुगनी अमरोहवी, प्रकाशक—बम्बई प्रकाशन प्रा० लि०, बम्बई-१, पृष्ठ सख्या ६०, मूल्य सवा दो रुपय।

विशेषत बच्चो के लिए लिखी गई बापू की यह जीवन कथा जिस नयनाभिराम रूप में छापी गई है, उसी सुन्दर रूप में वह लिखी भी गई है। पुस्तक की शैली अत्यन्त आकर्षक है और बापू की जीवनी की उन्हीं महत्वपूर्ण बातो को इस पुस्तक में लिया गया है, जिनमें बच्चे पूरी दिलचस्पी ले सकें। पुस्तक में जो रेखाचित्र दिए गए हैं, वे श्री सियावक्ष चावडा के बनाए हुए हैं। ये सब चित्र बहुत सुन्दर और कलापूर्ण हैं। हमें विश्वास है, यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक खूब लोकप्रिय सिद्ध होगी।

पत्रकार बृहत्त्रयी लेखक—गौरीशकर गुप्त, प्रकाशक—हिन्दी ससद्, गाय घाट, बनारस, पृष्ठ सख्या ८०, मूल्य सवा रुपया।

इस पुस्तक में हिन्दी के इन तीन प्रमुख सम्पादको के सम्बन्ध में ३ लेख हैं प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, प० बाबूराव विष्णु पराड़कर, प० लक्ष्मण नारायण गर्दे। पुस्तक की भूमिका श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखी है। उक्त तीनो सुप्रसिद्ध सम्पादको के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर परन्तु सक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया है। आज जब सम्पादक वर्ग तथा पत्रो के प्रकाशक वर्ग में कुछ मनमुटाव सा दिखाई दे रहा है और जब स्वतन्त्र प्रेस दुर्लभ वस्तु बन गया है, उक्त तीनो सम्पादको के चरित्र उज्ज्वल प्रकाश स्तम्भो के समान दिखाई देते हैं। हमारी राय से इन तीनो सम्पादको के सम्बन्ध में तथा स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी व अन्य उच्च कोटि के भारतीय सम्पादको के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए।

मेरा देश है यह लेखक—सत्यपाल ग्रम, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई सड़क, दिल्ली, पृष्ठ सख्या ४८, मूल्य १) रु०।

भारतीय बच्चो को अत्यन्त सक्षिप्त रूप में अपने देश का परिचय देने के लिए यह पुस्तिका लिखी गई है। पिछले दिनो इस तरह की बहुत-सी छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हमारी राय से इस छोटी-सी पुस्तिका में जिस तरह भारत की भौगोलिक स्थिति, नाम, इतिहास, सस्कृति, भारत की राजधानी, भारतीय राज्यो के नव-निर्माण आदि पर प्रकाश डाला गया है, वह इतना अधिक सक्षिप्त है कि उससे पाठक के मन में कोई स्पष्ट चित्र नहीं उभरता। अच्छा होता, यदि एक-आध पहलू लेकर उस पर अधिक स्पष्ट और आकर्षक ढग से प्रकाश डाला जाता। यों पुस्तक उपयोगी है और उसमें दिए गए चित्र भी सुन्दर हैं।

चीन के कम्यून लेखक—राहुल साकृत्यायन, प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ सख्या ७२, मूल्य ७५ नए पैसे।

गत वर्ष महापडित राहुल साकृत्यायन चीन गए थे और वहां उन्होंने ६ कम्यूनो की यात्रा की थी। चीन के ये नए कम्यून ससार के लिए वाद-विवाद और चर्चा का विषय बने हुए हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका में उक्त कम्यूनो के सगठन तथा सचालन पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है।

राजस्थान का पिंगल साहित्य लेखक—मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, हीरा बाग, गिरगाव, बम्बई-४, पृष्ठ सख्या २७६, मूल्य ६॥) रु० सजिल्द।

हिन्दी साहित्य में राजस्थान का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तर भारत के सगीत, शिल्प, चित्रकला, भाषा, साहित्य आदि के विकास में राजस्थान ने जो मूल्यवान सहयोग दिया है, वह अध्ययन का एक अत्यन्त प्रिय विषय है। डा० मेनारिया लिखित यह ग्रन्थ ६ अध्यायो में विभक्त है पृष्ठभूमि, प्रारम्भिक काल, मध्य काल, सन्त साहित्य, आधुनिक काल तथा उपसहार। इनमें से आरम्भिक काल सम्वत् १५५० से १७०० है, मध्य काल १७०० से १९०० और आधुनिक काल सम्वत् १९०० से प्रारम्भ होता है। इनमें रचना की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण काल सम्वत् १७०० से लेकर १९०० तक का है। राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ ग्रथ रूप में यह प्रकाशन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

उर्दू के लोकप्रिय शायर माला के ग्रन्थ

(१ से ६)—**सौदा, दर्द, अकबर इलाहाबादी, जौक, मीर तकी मीर, नजीर अकबराबादी,** (७–८) **अदम, कतील शिफाई,** सम्पादक (१ से ६ तक) श्री सरस्वती शरण कैफ और (७–८) प्रकाश पंडित, पृष्ठ सख्या क्रमश १०८, ११२, ११२, ११२, ११२, १००, २०४, तथा ९६, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली। मूल्य प्रत्येक का १॥) रु० सजिल्द।

उक्त ग्रन्थमाला में इससे पूर्व गालिब, इकबाल, जोश, फैज, मजाज, साहिर, जिगर, जाफरी और हफीज आदि सुप्रसिद्ध उर्दू कवियो के सम्बन्ध में इसी तरह की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारम्भ में सम्बद्ध कवि का परिचय लगभग २४ पृष्ठो में दिया गया है। इस परिचय में जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओ के अतिरिक्त कवि के काव्य की विवेचना भी की गई है। इन सब कवियो के लिखने की पृथक् पृथक् शैली रही

है और उनको रचनाओं की सख्या भी काफी बडी है। इन रचनाओं में से चुनी हुई गजले, रुबाइया, चौपदे, शेर, मसनवी, सेहरा आदि इन सग्रहो में एकत्र किए गए हैं। श्री सरस्वती सरन कैफ उर्दू साहित्य के विवेचनशील पाठक हैं। उनका चुनाव निस्सदेह प्रशसनीय है। मूल रचनाओ के साथ फुटनोट के रूप में कठिन शब्दो के अर्थ भी दे दिए गए है।

इन कवियो में से अकबर और मीर हिन्दी में काफी समय से लोकप्रिय हो चुके हैं। उनके कितने ही सग्रह आज से बहुत समय पूर्व हिन्दी में प्रकाशित हुए थे। यह देखकर हमें विस्मयपूर्ण प्रसन्नता हुई कि उर्दू के कवि आज हिन्दी में बहुत लोकप्रिय हो रहे है। कितने ही उदाहरणो में ऐसा हुआ है कि मूल रचनाए उर्दू में उतनी लोकप्रिय नही हो पाई, जितनी वे हिन्दी मे आकर हुई। यह तो स्पष्ट ही है कि इस तरह के प्रकाशनो से उर्दू कवियो के पाठको का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। हमें आशा है कि उर्दू में भी हिन्दी कवियो के सम्बन्ध में इसी तरह की रचनाए प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जाएगा। उर्दू को हम आसानी से हिन्दी की एक शैली मान सकते है। यदि फारसी और अरबी के शब्दो का अर्थ साथ ही दे दिया जाए, तो उर्दू समझने मे हिन्दी पाठको को दिक्कत नहीं होती। उर्दू कविता की लोकप्रियता का एक स्पष्ट कारण यह भी है। जहा बगला, मराठी आदि की रचनाओ का पूरा अनुवाद करने की आवश्यकता होती है, वहा उर्दू रचनाओ में केवल कठिन शब्दो का अर्थ दे देने से ही काम चल जाता है।

हिन्दी म आज उर्दू कवि जिस तरह लोकप्रिय सिद्ध हो रहे है, उससे हमारे हिन्दी कवियो को भी एक सबक लेना चाहिए। एक अत्यन्त शानदार परम्परा रहते हुए भी नई हिन्दी कविता आज जिस तरह रचना तथा भाव की दृष्टि से अत्यन्त बिखरी हुई सी बन रही है, उसके कारण उसकी लोकप्रियता स्पष्टत कम हो रही है। दूसरे शब्दो में आज की हिन्दी कविता का एक खासा बडा अश इतना दुरूह और उलझन भरा बन गया है कि वह पाठको क लिए बोधगम्य नही रहा। उधर उर्दू कविता शैली की दृष्टि से अत्यन्त मँजी हुई और भाव की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होती है, चाहे तत्व और विचार की दृष्टि से वह बहुत ऊची न भी प्रतीत हो। फलत सर्वसाधारण पाठक उसमें रस प्राप्त कर सकते हैं।

इन पुस्तको पर यदि क्रम-सख्या भी दी जा सके, तो उससे प्रकाशक और पाठक दोनो को आसानी होगी।

इस ग्रन्थमाला की पुस्तको की हम जबरदस्त सिफारिश करते है और चाहते है कि भारत की सभी भाषाओ की कविताए इसी तरह हिन्दी में उपलब्ध हो। हमें विश्वास है कि ये पुस्तिकाए हिन्दी जगत में यथेष्ट लोकप्रिय सिद्ध होगी।

भारत भारती तमिल, तेलुगु और कन्नड़ प्रकाशक—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पृष्ठ सख्या प्रत्येक की १००, मूल्य १) रु० प्रत्येक।

हिन्दी भाषियो को भारत की अन्य भाषाए सिखाने के उद्देश्य से य तीनो प्राथमिक पुस्तिकाए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से प्रकाशित की गई है। इन पुस्तिकाओ पर सम्पादक का नाम नही दिया गया है। पर प्रकाशक के वक्तव्य से प्रतीत होता है कि इनका सुझाव श्री सिद्धनाथ पत द्वारा दिया गया और इन पुस्तिकाओ की रूपरेखा तयार करन का कार्य श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने किया। अन्य व्यक्तियो का सहयोग भी इन पुस्तिकाओ के लिए प्राप्त किया गया। प्रत्येक पुस्तक ३ भागो मे विभक्त है। पहले भाग के लगभग एक दजन पाठो में महत्वपूर्ण तमिल, तेलुगु और कन्नड शब्द तथा वाक्य हिन्दी अनुवाद सहित दिए गए हैं। दूसरे भाग में रोजमर्रा के कामकाज की बातें ६ पाठों में दी गई है। और तीसरे भाग में प्रत्येक प्रदेश के महत्वपूर्ण कवियो और लेखको के परिचय के अतिरिक्त प्रत्येक प्रदेश की भाषा, रहन-सहन और लोगो के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है।

यह कार्य निस्सन्देह अत्यन्त उपयोगी है। हमारा सुझाव यह है कि इस तरह की पुस्तिकाए अधिक आकर्षक रूप में और कुछ अधिक विस्तार के साथ प्रकाशित की जानी चाहिए। इन पुस्तिकाओ में यदि प्रादेशिक शैली पर कुछ चित्र भी दिए जा सकते, तो और भी अधिक अच्छा होता। हमें आशा है कि भारत की सभी भाषाओ के सम्बन्ध में इस तरह की पुस्तिकाए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से प्रकाशित की जाएगी।

निराला लेखक—रामविलास शर्मा प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झासी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ सख्या ७२, मूल्य ।।।) रु०।

बालको के लिए सुप्रसिद्ध कवि श्री सूर्यनारायण त्रिपाठी निराला के व्यक्तित्व, जीवन और साहित्य का परिचय डा० रामविलास शर्मा ने इस पुस्तक में इतने सुन्दर रूप मे दिया है कि यह पुस्तक न केवल विद्यार्थियो के लिए मनोरजक और उपादेय सिद्ध होगी, अपितु नव-साक्षरो के लिए भी यह बहुत मूल्यवान सिद्ध होगी। बच्चो के लिए आजकल जो जीवनिया प्रकाशित की जा रही है, वे यदि इसी शैली में लिखी जाए, तो निस्सदेह वे बहुत लोकप्रिय सिद्ध होगी।

चिन्तन लेखिका—दिनेशनन्दिनी डालमिया, प्रकाशक—पचशील प्रकाशन सस्थान, दानपुर हाउस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ सख्या १००, मूल्य ३) रु० सजिल्द।

गद्य काव्य लिखने में श्रीमती दिनेशनन्दिनी विशेष यश प्राप्त कर चुकी है। उनके ४ कविता सग्रहो के अतिरिक्त ८ गद्य काव्य सग्रह इससे पूर्व प्रकाशित हो चुके है। स्पष्टत उनकी रचनाओ में अब पहले से भी अधिक निखार और प्रौढपन आ गया है। श्रीमती दिनेशनन्दिनी की पिछली रचनाए यदि भावुकता-प्रधान थी, तो यह रचना स्पष्टतः विचार-प्रधान भी बन गई है। काव्य गुण तो इसमें है ही।

इस सग्रह के 'मूक बोल' की अत्यन्त भावपूर्ण अन्तिम दो पक्तिया इस प्रकार हैं

"सकल्प-विकल्प रूपी अपनी दोनो कर जोड प्रेरणा-प्रताडित मेरी अल्प-बुद्धि कहती है यह मेरे है मेरे नही है !!!"

इस सग्रह में से उदाहरण के लिए दो गद्य-गीत हम यहा उद्धृत कर रहे हैं

"मेरे सुहाग के मनोरथो को न सह सकने और रति-सुख को छीनने के लिए उसने निशिगधा को दूती बनाकर भेजा, किन्तु यौवन का खुमार खतम होने तक, हृदय की ध्वनि धीमी पडने तक, नींद मे रस आने तक, मृत्यु मे मिलन का मोद भरने तक, मै तुम्हे न जाने दूँगी,

अश्व पर जीन कसा रहने दो, प्रतीक्षा-उन्मीलित प्यालियो को पीते-पीते पो फटने दो,

तुम्हारा दर्शन ही मेरे जीवन का महोत्सव है अत जिन्दगी की नाटिका पर अधकार की यवनिका का पटाक्षेप न हो, तब तक उस माया-विनी को मन मसोस रहने दो ।"

× × ×

"वैरागी ! नारी की वृथा निन्दा न कर क्योकि यह अनुचित, अनगल प्रलाप तो तेरे विकारो की ही करुण कहानी है,

नारी-जगत् की मरुस्थली मे प्रेम और तपस्या की स्वर्णगा है जिसके पावन स्पर्शमात्र से त्रिताप शान्त होते है, वह सौन्दर्य की सुधा है जिसे पान कर मानव देवत्व प्राप्त करता है , वह वेदो की पुनीत स्वर-लहरी है, जिसे सुनकर श्रोता अपने को भूल जाता है ,

वह गृहस्थाश्रम के दुर्ग की अधिष्ठात्री-देवी दुर्गा और गज-लक्ष्मी है जिसके आशीर्वाद से मनुज षड्रिपुओ पर विजय प्राप्त करता है ,

वह ससार-सागर को सुगमता से पार करने के लिए विरचि-निर्मित स्वर्ण-परी है ,

वीतरागिन, अनिन्द्य किन्तु वन्द्य नारी की निन्दा कर अपनी चित्त-वृत्तियो को कलुषित न कर, क्योकि ब्रह्म-यौनि ही जगत्-सर्जिका है ।"

तिरुक्कुरल . मूल लेखक—तिरुवल्लुवर , अनुवादक—शकर राजु नायडू , प्रकाशक—मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास , पृष्ठ सख्या बडे आकार के ३२८ पृष्ठ , मूल्य ४) रु० सजिल्द ।

सत तिरुवल्लुवर का यह ग्रन्थ तमिल साहित्य की एक अत्यन्त श्रेष्ठ रचना मानी जाती है । सत तिरुवल्लुवर का काल ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है । मद्रास विश्वविद्यालय के वाइस चासलर श्री मुदालियर के कथनानुसार सत तिरुवल्लुवर की रचनाओ का अनुवाद लेटिन, जर्मन, अग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाओं में भी हो चुका है । इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद कर श्री शकर राजु नायडू ने अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण कार्य किया है । अनुवाद अत्यन्त श्रेष्ठ है । तमिल से इतना अच्छा अनुवाद मेरी निगाह में बहुत कम आया है । इस प्रकाशन की एक विशेषता यह भी है कि सम पृष्ठो पर सत तिरुवल्लुवर के मूल उपदेश, जो सूत्र रूप में है, दिए गए हैं और विषम पृष्ठो पर उनके ठीक सामने उक्त उपदेशो का हिन्दी में अनुवाद दिया गया है । ये सन्देश कुल १२३ भागो में विभक्त है और उनकी सम्पूर्ण सख्या १,३३० है । जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओ पर इन सदेशो में प्रकाश डाला गया है । मुझे विश्वास है कि सत तिरुवल्लुवर के ये सन्देश ससार के किसी भी अत्यन्त श्रेष्ठ सत के सन्देशो के समान शातिदायक तथा स्फूर्तिदायक सिद्ध होगे । इस अत्यन्त श्रेष्ठ रचना के लिए अनुवादक तथा प्रकाशक दोनो बधाई के पात्र है ।

विज्ञान जगत : मूल लेखक—विलियम एच० क्रूसे , अनुवादक—देवेन्द्र कुमार , प्रकाशक—राजपाल एण्ड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली , पृष्ठ सख्या बडे आकार के १८८ , मूल्य ३) रु० सजिल्द ।

सर्वसाधारण पाठको को विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा देने के उद्देश्य से यह पुस्तक अग्रेजी में लिखी गई थी । इस पुस्तक में बहुत सरल ढग से आग, गरमी, स्टीम इजन, बिजली, टेलीफोन, ट्रासमिटर, रेडियो-तरगें, प्रकाश, चलचित्र, टेलीविजन, रेडार, विमान तथा परमाणु शक्ति पर प्रकाश डाला गया है । पुस्तक में यथेष्ट चित्र है । स्पष्टत ये चित्र मूल ग्रथ से लिए गए है और उनका चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में हुआ है । पुस्तक की छपाई-सफाई आदि भी प्रथम श्रेणी की है । पर जहा तक अनुवाद का सम्बन्ध है, हम उससे बहुत सन्तुष्ट नहीं है । अनुवाद की भाषा यथेष्ट सहल और यथेष्ट प्रवाहमयी नही है । इस पुस्तक मे मुख्यत अग्रेजी के वैज्ञानिक शब्द उसी रूप में दिए गए है । इस सम्बन्ध में भी हमें कोई ऐतराज न होता, यदि साथ ही साथ कुछ वैज्ञानिक शब्दो का नवनिर्मित हिन्दी रूप न दिया गया होता । इस पुस्तक में एक ओर नाभिक सायुज्जन, सम्पीडित वायु, आयाम, बिन्दु परिवर्तक आदि हिन्दी वैज्ञानिक शब्द दिए गए है, दूसरी ओर डिवेलप, डायरैक्टर, शैफ्ट, फोकस, ब्राडकास्टिग, ट्रासमिटर आदि ऐसे शब्दो का हिन्दी अनुवाद भी नही दिया गया, जिनके लिए बहुत समय से हिन्दी में स्वीकृत शब्द विद्यमान है । फ्रीक्वैन्सी, मोडुलेशन, मोडुलेटिग इन्फेक्ट, प्रोपुलर इजन, टरबाइन, कौम्प्रेसर आदि अग्रेजी वैज्ञानिक शब्द उसी रूप में दिए गए है । इस सबन्ध में स्पष्टत एक ही नीति अपनायी जानी चाहिए । हमारी राय में अच्छा यह रहता कि सब वैज्ञानिक शब्दो का हिन्दी रूपान्तर पुस्तक के प्रारम्भ में दे दिया जाता, अथवा हिन्दी वैज्ञानिक शब्दो का प्रयोग करते हुए फुटनोट के रूप में सब स्थानो पर अग्रजी पारिभाषिक शब्द भी दे दिए जाते । हिन्दी अभी निर्माण की दशा में है और हमें अभी हजारो बल्कि लाखो नए वैज्ञानिक शब्दो का हिन्दी ग्रन्थो में समावेश करना है । इस कारण इस सम्बन्ध में एक स्पष्ट और निश्चित नीति बना लेने की आवश्यकता है । हमारे प्रकाशको को इस ओर अभी से यथेष्ट ध्यान देना चाहिए । पुस्तक निस्सदेह अत्यन्त उपयोगी है ।

बौद्ध भारत मूल लेखक—टी० डब्लू० ह्राइस डविड्स , अनुवादक—भुवनाथ चतुर्वेदी , प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद , पृष्ठ सख्या—२४८+३२ पृष्ठ नकली आर्ट पेपर पर तस्वीरो के, मूल्य—५) रु० सजिल्द ।

श्री ह्राइस डेविड्स का 'बुद्धिस्ट इडिया' नामक ग्रन्थ एक अत्यन्त प्रामाणिक और सुप्रसिद्ध रचना है । बौद्धकालीन भारत के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से प्रामाणिक माना जाता है । इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता भी निर्विवाद थी । मूल ग्रन्थ की शैली अत्यन्त सरल और मनोरजक है ; उसे पढने में सचमुच आनन्द आता है । पर हमें खेद है कि इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद काफी बोझिल रूप में किया गया है । उदाहरण के लिए —

"इनकी दन्त कथाए मनुष्यो की किसी ऐसी अद्भुत प्रभावशाली जाति से सम्बन्ध रखती जान पडती है जिनके साथ वृक्ष-पूजा, नाग-पूजा और नदी-पूजा के पूर्ववर्ती सिद्धान्तो सम्बन्धी विचार खिचडी हो गए है ।"

यह वाक्य अनावश्यक रूप से उलझनभरा और अस्पष्ट हो गया है । इसी तरह—

"ऋग्वेद की रचना समाप्त होने और बौद्धधर्म के उदय के बीच में काफी लम्बे समय का अन्तर है ।"

हमारी राय से इस वाक्य का रूप होना चाहिए · "ऋग्वेद की रचना समाप्त होने और बौद्ध धर्म के उदय के बीच समय का काफी लम्बा अन्तराल (या अन्तर) है ।" 'बीच में' तो यो ही अशुद्ध प्रयोग है, 'बीच' के साथ 'में' अनावश्यक है ।

उक्त वाक्य के बाद केवल एक वाक्य छोड कर कहा गया है "इसलिए बौद्धधर्म के उदय के समय वैदिक कथाओ और लोक-धर्म में जो अन्तर था उनमें से कुछ का कारण अज्ञात-काल का प्रभाव हो सकता है । किन्तु इससे केवल आशिक, सम्भवतः अन्तर के अत्यन्त न्यून भाग का समाधान होता है ।" 'जो अन्तर था, उनमें से कुछ का कारण' यह वाक्याश एकदम अस्पष्ट

है। इसी तरह उक्त दूसरा वाक्य भी अस्पष्ट है। उसमें 'सम्भवत' शब्द का प्रयोग स्पष्टतः अशुद्ध स्थान पर किया गया है।

इसी तरह के कितने ही उदाहरण इस ग्रन्थ में से दिए जा सकते हैं। पर वह अनावश्यक होगा। हिन्दी प्रकाशकों को इस तरह के ग्रन्थों का अत्यन्त प्रामाणिक और श्रेष्ठ अनुवाद कराने की व्यवस्था करनी चाहिए।

भालू : मूल लेखक—विलियम फाकनर, अनुवादक—सूर्यकुमार जोशी, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या १५८, मूल्य २) रु०।

नोबल पुरस्कार-विजेता श्री विलियम फॉकनर अपनी शैली के अनोखे लेखक हैं। प्रकृति-चित्रण और व्यंजनात्मक लेखन की दृष्टि से संसार के लेखकों में उनका बहुत ऊंचा स्थान है। उनकी यह रचना संसार भर में अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। इस रचना में प्रकृति और मनुष्य के सनातन संघर्ष की कहानी है। हमें विश्वास है पाठक इस रचना से अवश्य प्रभावित होंगे। आजकल जिस श्रेणी के अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं, उसे देखते हुए यह अनुवाद अपेक्षाकृत अच्छा है। पर ऐसी श्रेष्ठ रचना में जो सहज प्रवाह रहना चाहिए, वह पूर्ण रूप से इस अनुवाद में भी नहीं है। श्रेष्ठ ग्रन्थों के अनुवाद का प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा मार्जन करवा लेना हमारी राय से अत्यन्त आवश्यक है। आशा है, हमारे प्रकाशक इस ओर ध्यान देंगे।

आज की लोक कथाएं लेखक—मनमोहन मदारिया,
सतलुज की कहानी . लेखक—राजेन्द्र शर्मा,
तुलसी लेखक—बालकृष्ण।

प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ६६ दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या बड़े आकार के क्रमशः ४०, ४४, और ४०, मूल्य प्रत्येक का १) रु०।

पहली पुस्तिका में ५ मनोरंजक और शिक्षाप्रद लोक-कहानियां दी गई हैं। प्रत्येक कहानी में १-१ सुन्दर रेखाचित्र भी दिया गया है।

दूसरी पुस्तिका 'सतलुज की कहानी' हमारी राय से विशेष उपयोगी है, क्योंकि उसमें सतलुज की कहानी बहुत अच्छे ढंग से दी गई है। इस पुस्तिका के लेखक इस लघु रचना के लिए बधाई के पात्र हैं। अपने ढंग की यह मूल्यवान रचना है।

तीसरी पुस्तिका में गोस्वामी तुलसीदास के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी रचनाओं के कुछ अंश भी दिए गए हैं।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

गणेशशंकर विद्यार्थी लेखक—श्री देवव्रत शास्त्री, प्रस्तावना-लेखक—श्री जवाहरलाल नेहरू, सम्पादक—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, पृष्ठ संख्या १६२, मूल्य ३) रु०।

यह बहुत ही खुशी की बात है कि श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित शहीद ग्रन्थमाला के तृतीय पुष्प के रूप में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की यह प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित हुई है। यह उचित ही है कि जिस ग्रन्थमाला के पहले पुष्प के रूप में शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा और द्वितीय पुष्प के रूप में अध्यापक भगवानदास द्वारा लिखित 'यश की धरोहर' छपी, उसी ग्रन्थमाला के तीसरे पुष्प के रूप में श्री देवव्रत शास्त्री द्वारा लिखित 'गणेशशंकर विद्यार्थी' छपी है।

गणेशशंकरजी एक अलौकिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। यदि वे चाहते तो बहुत धनी हो सकते थे, पर उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में और राजनीति के क्षेत्र में ईमानदारी को सबसे बड़ा स्थान दिया। वे जिन सिद्धान्तों का प्रचार करते थे, उन्हीं पर चलने का प्रयत्न भी करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें शहीद होना पड़ा।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में गणेशशंकरजी का उदाहरण एक उज्ज्वल ग्रह की तरह है। शायद ही और कोई नाम इतना उज्ज्वल हो, पर दुःख है कि उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में जो मानदण्ड कायम किए, आज उनका नामलेवा पानीदेवा बहुत कम लोग हैं। आज तो पत्रकारिता अन्य किसी भी पेशे की तरह एक पेशा बन गई है। उनका जो दूसरा बड़ा दान था, वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की साधना थी, पर उस क्षेत्र में भी पाकिस्तान बनने से यह कहा जा सकता है कि उनका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। पर कई सिद्धान्त ऐसे होते हैं जो बहुत जल्दी सफल नहीं होते। इसलिए उनकी असफलताओं में ही हम सफलता की झलक देखते हैं, कम से कम वे हमारे लिए एक उज्ज्वल मशाल की तरह रहेंगे। प्रत्येक पत्रकार तथा राजनीति के विद्यार्थी की मेज पर यह पुस्तक होनी चाहिए।

कार्ल मार्क्स एक जीवनी लेखिका—ई० स्तेपानोवा, अनुवादिका—रामदर्शनी शर्मा, प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड, एम० एम० रोड, नई दिल्ली-१, पृष्ठ संख्या ८८, मूल्य १।) रु०।

यों तो सारी दुनिया में बहुत से विचारक हुए हैं पर कार्ल मार्क्स को ही इतिहास में पहली बार यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि उनके विचारों पर एक राष्ट्र नहीं दो राष्ट्र नहीं बल्कि इस समय सारे संसार में कई राष्ट्र चलने का दावा करते हैं। उनमें से रूस-चीन गुट की जातियों के अलावा सारे संसार में बहुत से दल हैं जो मार्क्स के विचारों पर चलते हैं। इसका यह अर्थ न समझा जाए कि मार्क्सवाद की कोई एक विचारधारा है। इसकी भी उतनी ही व्याख्याएं हैं जितनी किसी और महान् सिद्धान्त की। भारत में भी कई दल हैं जो अपने को मार्क्सवादी कहते हैं, पर उनमें आपस में बहुत भेद है। ऐसे महान् विचारक की संक्षेप में प्रामाणिक जीवनी बहुत आवश्यक है। यह पुस्तक एक रूसी की रचना है, और रूसी इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी हैं।

स्वाभाविक रूप से इस जीवनी में वक्तव्यों के साथ-साथ उस व्यक्ति के विचारों के विकास का इतिहास विस्तार के साथ दिया गया है। मार्क्स के विरोधियों को भी यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

मैं और मेरी मोटर : लेखक—राजेन्द्रलाल हांडा, प्रकाशक—किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या १४४, मूल्य २।।) रु०।

इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक श्री राजेन्द्रलाल हांडा की २२ रचनाएं एकत्रित हैं। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भूमिका में ठीक ही कहा है "हांडा जी स्वयं हास्यरस के एक अत्यन्त सफल लेखक हैं। वह पाठक को सिर्फ अपने साथ बहा कर ही नहीं ले जा सकते, वह सभी परिस्थितियों में उसे हँसा सकते हैं। इस पर भी उनका हास्य सिर्फ पाठक को गुदगुदा देने का काम नहीं करता, वह उसे सोचने तथा अनुभव करने को भी लाचार कर देता है। और यही श्रेष्ठ हास्य-रस की पहचान है। प्रस्तुत पुस्तक के सभी रेखाचित्र और स्टूडी बेकर सम्बन्धी सोदेबाजी इस श्रेष्ठ हास्य-रस के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। आशा है, हिन्दी को अभी श्री राजेन्द्रलाल हांडा से और भी बहुत कुछ प्राप्त होगा।"

सब रचनाएं सुपाठ्य हैं और उनमें किसी न किसी मानवीय कमजोरी पर बड़ी दक्षता से चोट की गई है।

भूदान-यज्ञ, क्या और क्यों लेखक—चारुचन्द्र भण्डारी, अनुवादक—विद्याभूषण वर्मा 'श्री रश्मि', प्रकाशक—अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी, पृष्ठ संख्या २८०, मूल्य एक रुपया।

यह पुस्तक श्री चारुचन्द्र भण्डारी की लिखी हुई एक बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। लेखक ने भूदान को वैज्ञानिक रूप में पेश करने की चेष्टा की है। वह केवल सत्य और अहिंसा पर व्याख्यान देकर ही निवृत्त नहीं होते बल्कि जहां तक हो सके भूदान को आंकड़े तथा अर्थशास्त्र के जरिए से बल पहुंचाने की कोशिश करते हैं। लेखक ने जनसंख्या वृद्धि पर बहुत विस्तार के साथ लिखा है और उन्होंने यह माना है कि संतति नियमन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। अवश्य लेखक संतति-नियमन में कृत्रिम उपायों का प्रयोग नहीं मानते। उस हालत में कहना न होगा कि संतति-नियमन शब्द का प्रयोग एक अजीब प्रयोग है और जैसा कि मैंने बराबर इस सम्बन्ध में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति ३६५ दिन में केवल एक दिन संयम न करे तो संतति-नियमन का उद्देश्य बिलकुल नष्ट हो सकता है। जब लोगों को वैज्ञानिक तरीका पसन्द नहीं है तो उन्हें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग ही नहीं करना चाहिए। भूदान पर यह पुस्तक बहुत ही अधिक तथ्य पेश करती है।

बिखरे पुष्प लेखक—रमादत्त झा, अनुवादिका—श्रीमती मनोरमा झा, प्रकाशक—रमा प्रकाशन बनारस, पृष्ठ संख्या १०८, मूल्य १।) रु०।

इस पुस्तक में लेखक के विविध विषयक लेख संगृहीत हैं। लेखक ने कालिदास और शेक्सपियर, विज्ञान और कला, भास आदि विषय पर लिखने के साथ ही कालेज कैण्टीन पर भी एक लेख इस संग्रह में रखा है, जो कुछ खटकता है। लेख सुन्दर हैं।

कानपुर की श्रमिक बस्तियां लेखक—रमादत्त झा, प्रकाशक—रमा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या ३६, मूल्य आठ आना।

कानपुर की श्रमिक बस्तियों के सम्बन्ध में तथा श्रमिक आन्दोलन की कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जानकारी के साथ विचार किया गया है।

—मन्मथनाथ गुप्त

प्यार बांटते चलो रचयिता—इन्दीवर, प्रकाशक—वोहरा एण्ड कम्पनी, कालबादवी रोड, बम्बई-२, पृष्ठ संख्या ६६, मूल्य २।) रु०।

कुछ उर्दू बहर और कुछ हिन्दी छन्दों में प्रस्तुत इन गीतों का 'चटखारा' साधारण पढ़े-लिखे भी ले सकते हैं और काव्य-रसिक भी। इन कविताओं के विषय में और कोई बात सच हो, न हो, यह तो निर्विवाद है कि भावों का जो हल्कापन और भाषा की जो लोच इनमें है, उससे ये कवि सम्मेलनों में अवश्य बहुत ही पसन्द किए जाते होंगे। काव्य-साहित्य में इन्हें कितना-क्या स्थान मिलेगा, इसकी चिन्ता ही भला आज कितनों को होती है।

भाव तेरे, शब्द मेरे रचयिता—मदनमोहन व्यास, प्रकाशक—व्यास बन्धु प्रकाशन, मुरादाबाद, पृष्ठ संख्या ८८, मूल्य २।) रु०।

श्री मदनमोहन व्यास के गीतों का यह संग्रह सामान्य गीत-संग्रहों से कुछ अलग और कुछ विशिष्ट है। भावपक्ष तो इसका भी प्रायः अन्य गीत-संग्रहों का-सा ही है, पर अभिव्यक्ति में प्रवाह है और भाषा भी बहुत प्रवाहमयी है। भाषा बहुत ही प्रसादगुण-युक्त है। एक प्रकार का सहज-सरल आत्म-मंथन और आत्म-दर्शन कवि की अपनी विशेषता है। हां, मेरी निजी राय है कि श्री व्यास को केवल गीतों और छन्दोबद्ध कविताओं तक ही सीमित रहना चाहिये क्योंकि उन्हीं में उनकी लेखनी को विशेष सफलता मिलने की आशा है। संग्रह की मुक्त छंद वाली सभी कवितायें केवल 'जमाने की हवा' से प्रेरित होकर लिखी गई प्रतीत होती हैं।

पीड़ा : रचयिता—चक्रवर्ती, प्रकाशक—नूतन साहित्य निकेतन, बौलाराम (आन्ध्र प्रदेश), पृष्ठ संख्या ५५, मूल्य २) रु०।

यह एक तेलुगु-भाषी कवि की रचना है, और इस दृष्टि से इसे सफल और सुन्दर कृति कहा जाएगा। निस्सन्देह, 'प्रसाद' के 'आंसू' की छाप इसकी पंक्ति-पंक्ति में है प्रायः सम्पूर्ण रचना के पीछे प्रेरणा ही 'आंसू' की प्रतीत होती है। पर फिर भी, श्री चक्रवर्ती ने हिन्दी काव्य-रचना के क्षेत्र में पदार्पण कर श्लाघनीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में वे हमें अन्य, अधिक मौलिक और परिपक्व रचनायें देंगे।

कवि की यह प्रथम कृति है, अतः कुछ कमजोरियां होनी स्वाभाविक हैं। जैसे—छन्दोभंग-दोषयुक्त ये पंक्तियां—

(१) हम उसी एक चितवन में
प्रिय, मधु पर्व मनाते। (पृष्ठ १३)

(२) चिर क्रन्दन विश्व अखिल का
सिन्दूर की निर्ममता। (पृष्ठ १४)

(३) मकरन्द भार लिये कोई
चुपचाप हृदय पर छाया (पृष्ठ २८)

(४) मधु स्मृतियां लो सोयीं
सस्मित मेरे स्पन्दन। (पृष्ठ ३१)

आदि-आदि। इसी प्रकार भाषा और व्याकरण की दृष्टि से भी कुछ चिन्त्य प्रयोग हैं, यथा—

(१) वेदना-निसृत अपनापन।

(२) ये जाता कौन व्यथा है
अपने आकुल अंतर का ?

(३) मैं बेसुध होकर गाया।

(४) क्या कम था उनका अनुग्रह ?

आदि-आदि। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, ये साधारण-सी भूलें हैं जो आगे चलकर निश्चय ही सुधर जाएंगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि तेलुगु-भाषी श्री चक्रवर्ती ने हमें यह हिन्दी काव्य दिया। हम इसका, भविष्य की आशाओं के साथ, स्वागत करते हैं।

—प्रयागनारायण त्रिपाठी



कहीं हम भूल न जाएं

इस २ अक्तूबर को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की ९०वीं जन्म-तिथि है। बापू कहा करते थे कि वह १२५ वर्ष जीवित रहेंगे। यदि आततायी की गोली से उनका शरीरान्त न किया जाता, तो इस बात की पूरी आशा थी कि वह अभी तक देश की रीति-नीति का संचालन और नेतृत्व कर रहे होते। वह तो नहीं हो पाया, पर जहां तक देश के नेतृत्व का सम्बन्ध है, वह अभी तक महात्मा गांधी के अनुयायियों के हाथ में है। परिणामतः भारत की आन्तरिक व्यवस्था-नीति और भारत की विदेशी नीति इन दोनों का संचालन गांधी जी द्वारा बताए मार्ग और आदर्शों पर करने का भरसक प्रयत्न अवश्य हो रहा है। पर जहां तक जन-साधारण की वर्तमान मनोवृत्ति का सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि हम अभी से राष्ट्रपिता द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से विचलित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे ऊंचे आदर्श हमारी दृष्टि से ओझल होते चले जा रहे हैं और स्वार्थ-साधन और धड़ेबन्दी हमें अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। देश की सर्वसाधारण जनता छोटी-मोटी, बेकार की बातों को बड़े बड़े ध्येयों और हिम्मत के कार्यों से अधिक महत्व देने लगी है। पिछले स्वाधीनता-दिवस पर प्रधान मंत्री ने ठीक ही कहा था कि देश के भीतर गैर-ज़रूरी बातों को अधिक महत्व देकर जो समस्याएं पैदा की जा रही हैं, वे समस्याएं बाहर की समस्याओं से अधिक चिन्ताजनक हैं। स्पष्ट है कि यह राष्ट्रपिता का बताया हुआ मार्ग नहीं है।

इन परिस्थितियों में यह और भी आवश्यक था कि भारत की सर्वसाधारण जनता को राष्ट्रपिता के आदर्शों और उनकी व्यक्तिगत महानता से अधिकाधिक परिचित करने का अधिकतम प्रयत्न किया जाए। महात्मा गांधी सच्चे अर्थों में नवीन भारत के निर्माता थे। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सत्य, निर्भयता और क्रियाशील त्याग—ये सब राष्ट्रपिता द्वारा बताए गए आदर्श हैं। व्यावहारिक जीवन में इनका समन्वय किस तरह किया जा सकता है, जीवन भर यह पाठ राष्ट्रपिता ने भारत को दिया था। आज जब भारत के सामने कितनी ही बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं, हमें आशा है, भारतीय जनता अपने राष्ट्रपि[illegible] नहीं भूलेगी।

गांधी जन्म-शताब्दी

आज से ठीक १० वर्ष बाद २ अक्तूबर १९६९ को महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी है। हमें विश्वास है कि वह शताब्दी भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में पूरी शान के साथ मनाई जाएगी। यहां इस सम्बन्ध में हमें दो ही सुझाव देने हैं। पहला तो यह कि राष्ट्रपिता का जो भी स्थूल स्मारक इस देश में बनना हो, वह तब तक बन कर तैयार हो जाना चाहिए। दूसरा यह कि इस गांधी जन्म-शताब्दी का पूरा कार्यक्रम बनाने के लिए राष्ट्रीय पैमाने पर एक शक्तिशाली समिति तथा एक क्रियाशील उप-समिति का निर्माण अभी से हो जाना चाहिए।

नेहरू-आयूबखान मुलाकात

बहुत समय के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच सद्भावना की झलक दिखाई दी है। श्री लियाकतअली खां और श्री गुलाम मुहम्मद के बाद पाकिस्तान का शासनतन्त्र जिन लोगों के हाथ में रहा, वे सब के सब कम-अधिक भारत-विरोध को ही पाकिस्तान में अपनी लोकप्रियता का आधार बनाते रहे। परिणाम यह हुआ था कि भारत और पाकिस्तान के बीच के सम्बन्ध अधिकाधिक बिगड़ते चले गए। भारत सदा यही प्रयत्न करता रहा कि अपने पड़ोसी और कल तक के भाई राष्ट्र के साथ उसके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहें, पर उपर्युक्त परिस्थितियों में भारत को इस प्रयत्न में सफलता नहीं मिली और दोनों देशों के बीच के झगड़ों की सूची अधिकाधिक लम्बी बनती चली गई। अक्तूबर १९५८ में पाकिस्तान में सैनिक शासन स्थापित हुआ। जनरल आयूबखान ने भी प्रारम्भ में कुछ ऐसे भाव प्रकट किए थे, जिनसे भारत और पाकिस्तान के बीच के सम्बन्धों के सुधरने की आशा पनपने नहीं पाई थी।

पर हाल ही में जनरल आयूबखान ने दिल्ली में रुक कर भारत के प्रधान मन्त्री से मिलने की इच्छा प्रकट की। भारत के प्रधान मन्त्री ने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और प्रथम सितम्बर को पालम हवाई अड्डे पर दोनों देशों के इन दो नेताओं में अत्यन्त मैत्रीपूर्ण वाता-वरण में खुली बात-चीत हुई। जनरल आयूबखान ने अपने वक्तव्य में कहा है कि इस बात-चीत से दोनों नेता एक दूसरे की स्थिति और विचारों को ठीक तरह समझ गए हैं। उन्होंने श्री जवाहरलाल नेहरू पर पूर्ण विश्वास भी प्रकट किया है। भारत और पाकिस्तान—दोनों देशों के प्रेस ने इस मुलाकात पर हर्ष प्रकट किया है। हमें आशा करनी चाहिए कि भारत और पाकिस्तान के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए अब जनरल आयूबखान भी अधिकतम और गम्भीर प्रयत्न करेंगे।

जग्गू——(पृष्ठ शेषांश)

काम करने को जग्गू चार घंटे से अधिक मेहनत नहीं करता था। बाकी समय वह शामन के कमरे में बिताया करता था। वहां क्या नहीं होता था। होने को जुआ होता था, भांग छानी जाती थी, और बड़े-बड़े हवाई किले भी बनाए जाते थे।

जग्गू मुझे प्यार और आदर से 'साहब' कहता था। जब वह अधिक परेशान हुआ करता था तो बार-बार साहब शब्द का प्रयोग करता था। मुझ से कहा करता था—"साहब, मानता हूं, मुझ में गन्दी आदतें हैं, लेकिन यदि पत्नी मुझे प्यार से समझाए तो सच कहता हूं साहब, मैं

उन्हें छोडने का प्रयत्न करू। किन्तु वह तो प्रतिदिन लड-झगड कर कहती हे इस प्रकार मे तो जन्म भर में नही सुधर सकूगा !"

मैं उसकी व्यथा को, प्रेम पाने की लालसा को समझ गया था। एक दिन वह मिला तो बहुत उदास था।

मै उससे पूछ ही तो बैठा—"कहा रहते हो आजकल ?"

"झामन के कमरे में।"

"क्या करते हो, दिन भर वहा ?"

"शराब पीता हू ।"

"लेकिन इतनी शराब क्यो पीते हो ?"

"मरना चाहता हू।"

"मरना क्यो चाहते हो ?"

"क्योकि जीना नही चाहता !" और मैंने जब उसकी आखो में देखा तो वे गीली हो आई थी, सिसकिया भरे हुए उसने कहा—"साहब, वह कल घर छोड कर भाग गई !"

मैं समझ गया कि 'वह' कौन हे। पूछा—"कहा गई ?"

"पडोसी, गगन के सग भाग गई। लेकिन मेरा क्या बिगाडा, खुद रोएगी रोटी टुकडे के लिए।"

मै क्या कहता, क्या करता ?

उस दिन के बाद मैंने उसे कई दिनो तक नही देखा। इधर मैं भी बहुत परेशान था, पिता की मृत्यु हो गई। घर का पूरा भार मुझ पर आ पडा। मैट्रिक तो मैंने पास कर लिया था, लेकिन नौकरी कहो मिले तब तो ? घर में एक अजीब उदासी छाई रहती थी। कमाने वाला एक मै था, वह भी बेकार बैठा था। एक दिन दिल्ली से एक प्राइवेट कम्पनी में एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर नौकरी ग्रहण करने का आदेश-पत्र आ गया।

लेकिन अब समस्या दूसरी थी। दिल्ली जाने के लिए पैसे कहा से आए ? यहा-वहा सब जगह मागे, लेकिन कोई भी देने को तैयार नही था। मै परेशान था कि पैसे न मिले तो दिल्ली कैसे जाऊगा। दिल्ली न गया तो नौकरी नहीं मिलेगी और नौकरी न मिली तो—इन समस्याओ और परेशानियो में कितना शृखलाबद्ध सम्बन्ध रहता है ? कि एक दिन जग्गू अचानक मुझे मिल गया। मुझे देखते ही मुस्करा दिया, लेकिन मै मुस्करा न सका।

"क्या बात है, साहब ?" जग्गू ने व्यग्रता से पूछा। मैंने देखा, उसके शरीर का मास मानो कोई नोच-नोच कर खा गया था। हड्डियो का ढाचा रह गया था। आखें भीतर धस गई थी, उनके नीचे काली गहरी लकीरें पड गई थी। मैंने उसे सब बता दिया। वह मुस्कराया, शायद वह व्यग्य की हसी थी। उसने शीघ्रता से मुझ से कहा—"यही ठहरना, साहब मै अभी आता हू।" इतना कह, वह तेज चाल से झामन के कमरे की ओर चला गया। जब वह लौटा तो, दस-दस के पाच नोट उसके हाथ में थे। ये नोट मुझे देते हुए उसने कहा, "जाओ, जाकर नौकरी करो और फलो-फूलो।"

शिष्टाचार के तौर पर जब मैंने 'नही' की तो बोला—"साहब, दिल मत दुखाओ। किसी को तो अपना कहने का अधिकार दो।" और नोट मेरी मुट्ठी में बन्द करते हुए उसने कहा—"साहब, बचाने की आदत होती तो, इस समय मेरे पास हजार रुपये होते।" और वह मुस्करा दिया। मैंने उसकी बात मान ली, और सोचा, आदमी कभी-कभी किसी को अपना कहने के लिए इतना पागल क्यो हो उठता हे ?

दिल्ली की नौकरी छोड मै फिर बम्बई आ गया, क्योकि वहा सरकारी नौकरी मिल गई। सोचा था, जग्गू के पचास रुपए उसे अब लौटा दूगा। एक दिन उसका दोस्त मिला तो मैंने पूछा, "जग्गू आजकल कहा रहता हे ?"

"ऊपर ! आसमान में !" और उसने अपनी एक अगुली से आसमान की ओर इशारा किया। मैंने सचमुच ऊपर की ओर देखा। एक बादल सूरज की ओर भागा जा रहा था—शायद, उसे अपना कहने को। कि तभी उसके साथी की आवाज कान में पडी—"साले ने शराब में अपने को डुबा दिया !"

मेरी आखो में आसू भर आए ! बादल, सूरज को ढक नही सका था, उसे पार कर गया था।

—अनुवादक गोपाल कृष्ण

अन्योक्ति और हिन्दी साहित्य—(पृष्ठ ३३ का शेषाश)

तो रत्नसेन-जीवात्मा को साथ लेकर एक हो गई है और शाश्वत काल तक एक ही हुई रहेगी। जायसी ने ग्रन्थ के उपसहार में अपनी अन्योक्ति के सभी प्रतीको को स्वय खोल भी दिया है।

भक्तिवाद की सगुण-धारा के सूर और तुलसी मुख्य प्रतिनिधि हैं। वे परमात्मा को असीम, अनाथ, अरूप-रूप में न लेकर ससीम, सनाथ, सरूप-रूप में लेते हैं। अवतारवाद के अनुसार कृष्ण और राम के रूप में परोक्ष के प्रत्यक्ष एव गुह्य के प्रकट हो जाने पर सगुण-धारा में रहस्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं रहता, क्योकि रहस्यवाद सदा अज्ञात और रहस्यमय निर्गुण तत्व पर ही आधारित रहा करता है। इसलिए सूर-तुलसी की बहिर्मुखी काव्य में अन्योक्ति-पद्धति नही यद्यपि जैसा कि हम कह आए हैं, सूर के राधाकृष्ण-चरित को जीव-ब्रह्मपरक मानने वाला एक देशी मत उसे भी अन्योक्ति-पद्धति के भीतर अन्तर्गत करता हुआ कभी से चला आ रहा है। हां, सूर के भ्रमर-गीत और दृष्टकूटो में एव तुलसी के स्वाति-बूद के लिए सतत अकुलाते चातक और जल पर जान दे देने वाले मीन के वर्णनो में अन्योक्ति-पद्धति निर्विवाद ही है।

रीतिकाल हिन्दी का पतनकाल माना जाता है। इसमें भक्तिकाल का दिव्य प्रेम आध्यात्मिकता के उत्तुग शिखर से उतर भौतिक धरा-तल पर आ बैठा और चारो ओर ऐन्द्रिय पद की प्रदर्शनी लगा दी। हमारे विचार से रीतियुगीन शृगार सर्वथा लौकिक है, प्रतीकात्मक नहीं। अत इसमें भी अन्योक्ति-पद्धति का प्रश्न नहीं उठता यद्यपि रीति युग में रची केशव की 'विज्ञान-गीता' तथा देव के 'देव-माया-प्रपच' को हम अवश्य अन्योक्ति-पद्धति की रचनाए मानेंगे। हिन्दी में आधुनिक काल के भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग में भी कला प्राय बहिर्मुखी और विषय-परक ही रही, विषयी-परक नही बनी। हा, भारतेन्दु के विद्यासुन्दर, प्रबोधचन्द्रोदय, चन्द्रावली और भारत-दुर्दशा अन्योक्ति-पद्धति में रचे नि सन्देह प्रतीकात्मक नाटक हैं। इसी तरह द्विवेदी-युग के राष्ट्रीय काव्य क्षेत्र में भी हमें अवश्य अन्योक्ति-पद्धति के दर्शन हो

जाते हैं जबकि कांग्रेस के सत्याग्रह-युद्ध ने महाभारत का चोला पहन लिया था और ब्रिटिश शासन 'दुःशासन', शासक 'कंस', मोहनदास गांधी 'मोहन' (कृष्ण), भारत माता 'द्रौपदी', सत्याग्रही कैदी 'वसुदेव' और कारागार 'कृष्ण का जन्म स्थान' बन गए थे।

अन्योक्ति-पद्धति का सर्व समृद्ध काल छायावाद युग है। इसमें कलाकार बाह्य जगत से सर्वथा पराङ्मुख हो अन्तर्जगत में पैठ गया और एक नए ही प्रतीक-विधान एवं नव मृदुल भंगिमा को लेकर प्रकृति के चित्र-फलक पर अपनी सूक्ष्म, अतीन्द्रिय अनुभूतियों के विभिन्न चित्र उतारने लगा। स्वयं छायावाद शब्द की प्रवृत्ति-निमित्त बनी हुई 'छाया' प्रतीक (Symbol) का ही अपर पर्याय है। जो कुछ कहो, सीधा न कहो, प्रतीक द्वारा कहो—यही छायावाद का मूल मन्त्र है। इसलिए डा० शम्भूनाथ सिंह के शब्दों में हम यही कहेंगे कि "छायावादी कविता में लघु रूपक गीतियों की प्रधानता है क्योंकि अधिकांश कवियों ने अन्योक्ति या रूपकातिशयोक्ति की शैली में आत्माभिव्यक्ति की है। लक्षणा व्यंजना और ध्वनि के अधिक प्रयोग के कारण अधिकांश कवि-ताएं स्वतः रूपकात्मक हो गई।"[१२]

छायावाद-युग की प्रतिनिधि भूत सर्वश्रेष्ठ रचना प्रसाद की 'कामायनी' मानी जाती है। यह एक अन्योक्ति-काव्य है। प्रागैतिहासिक काल की पृष्ठभूमि पर आधारित इस ग्रन्थ में एक ओर तो आदिम पुरुष मनु तथा आदिम नारी श्रद्धा का इतिहास है और दूसरी ओर "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा, इडा आदि अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्त कर देते हैं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष—हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध श्रद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है।"[१३] यही इसमें अन्योक्ति-तत्व भी है।

१२ 'छायावाद युग', पृष्ठ २०८
१३ 'कामायनी'—आमुख।

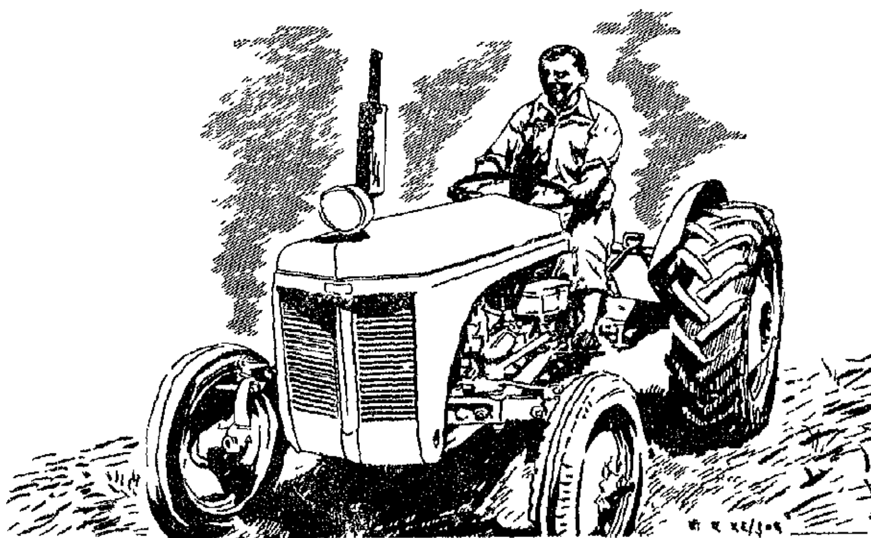
सहकारी खेती—उन्नति की सीढ़ी

सहकारी ढंग की खेती से सभी किसानों की खुशहाली बढ़ती है, इसका ताज़ा उदाहरण पंजाब के करनाल जिले के भिक्कारी गांव से मिलता है।

आरम्भ में वहां सात किसानों ने अपनी भूमि मिलाकर मिलीजुली खेती शुरू की। बाद में कुछ लोग और भी आ मिले जो मेहनत, मजदूरी और अन्य काम करने को तैयार थे। इस प्रकार उन्होंने एक सहकारी समिति बना ली। सम्मिलित साधनों से इस समिति ने एक ट्रैक्टर खरीद लिया, अच्छे बीज मंगवाये, अधिक रासायनिक खाद डाली और खेती के उन्नत तरीके अपनाये। इन सब का परिणाम यह हुआ कि गेहूँ की प्रति एकड़ पैदावार १४ मन से बढ़ कर १८ मन हो गई। इस बढ़ी हुई आय में से समिति ने शुरू में लिया हुआ कर्जा भी बहुत थोड़े समय में चुका दिया।

सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दीजिये। इससे राष्ट्र की प्रगति में ही सहायता नहीं मिलती, बल्कि अपना स्वयं का भी लाभ होता है।

योजना की सिद्धि—आपकी समृद्धि



पुनर्जन्म

"हमें तत्काल ओपरेशन करना होगा।" बाबा हरबंस खन्ना के लिए ये शब्द बम्ब के गोले से कम न थे। उन्होंने शान्त स्वर से पूछा, "डाक्टर, अगर मैं न करा सकूँ तो क्या होगा?" डाक्टर साहब पशोपेश में पड़ गये और बोले, "अगर यह गिल्टी न निकाली गयी तो सम्भव है कि आप एक वर्ष से अधिक जीवित न रह सकेंगे।"

बाबा हरबंस सोचने लगे, "किन्तु पैसा कहाँ से आयेगा?" डाक्टर के कमरे से बाहर आते समय यह कटु सत्य उनकी आँखों के सामने नृत्य कर रहा था। वे इस दुनिया में अकेले ही थे और इस नाजुक समय में कौन उनकी सहायता करता?

दिन तेजी से बीतने लगे। चौथे महिने के एक प्रातः को वे अपने कागजात टटोल रहे थे। उस समय उन्हें फीके रंग की आजीवन बीमा पालिसी मिली। उन्हें याद आया, "आज से कई साल पहले किसी एजेंट को खुश करने के लिए यह पालिसी लखनऊ में ली थी।" परन्तु गत कई वर्षों से उन्होंने किस्त ही नहीं दी थी।

वे विचारों में मग्न थे। "क्या इस पुराने कागज की भी कोई कीमत हो सकती है?" उन्होंने कम्पनी को खत लिखकर पूछने का निश्चय किया। पालिसी की शर्तों के अनुसार वह चुकते बीमे में अपने आप परिवर्तित हो चुकी थी। कम्पनी से तुरन्त उत्तर मिला "हमें यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि आप अपनी इस पालिसी पर ९५० रुपये कर्ज के रूप में ले सकते हैं।"

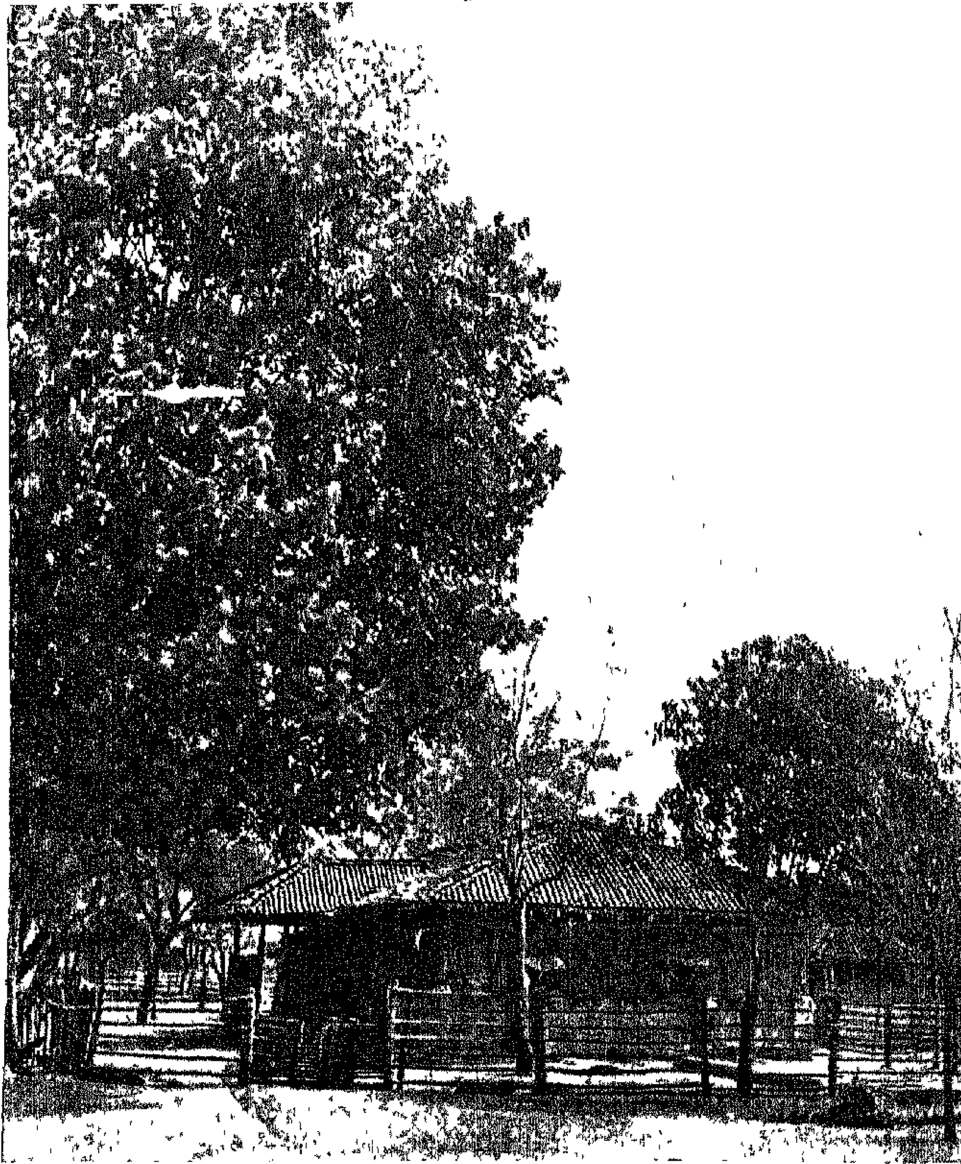
उन्हें ओपरेशन के लिए ठीक समय पर कर्ज मिला। एक महीने के बाद बाबा हरबंस बिल्कुल चंगे होकर अस्पताल से निकले। जीवन की नयी कांति उनके मुख पर छायी थी। वे बोल उठे, "जीवन बीमे को धन्यवाद!"

इफ़ इन्श्योरन्स

कॉर्पोरेशन ऑफ़ इन्डिया



ASP/LIC 41B HIN



सेवाग्राम में राष्ट्रपिता की कुटिया

Edited and published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad.

d No D—510

विश्व-दर्शन सहित





वर्ष १५ अंक ७ पूर्णांक १८५

नवम्बर १९५९

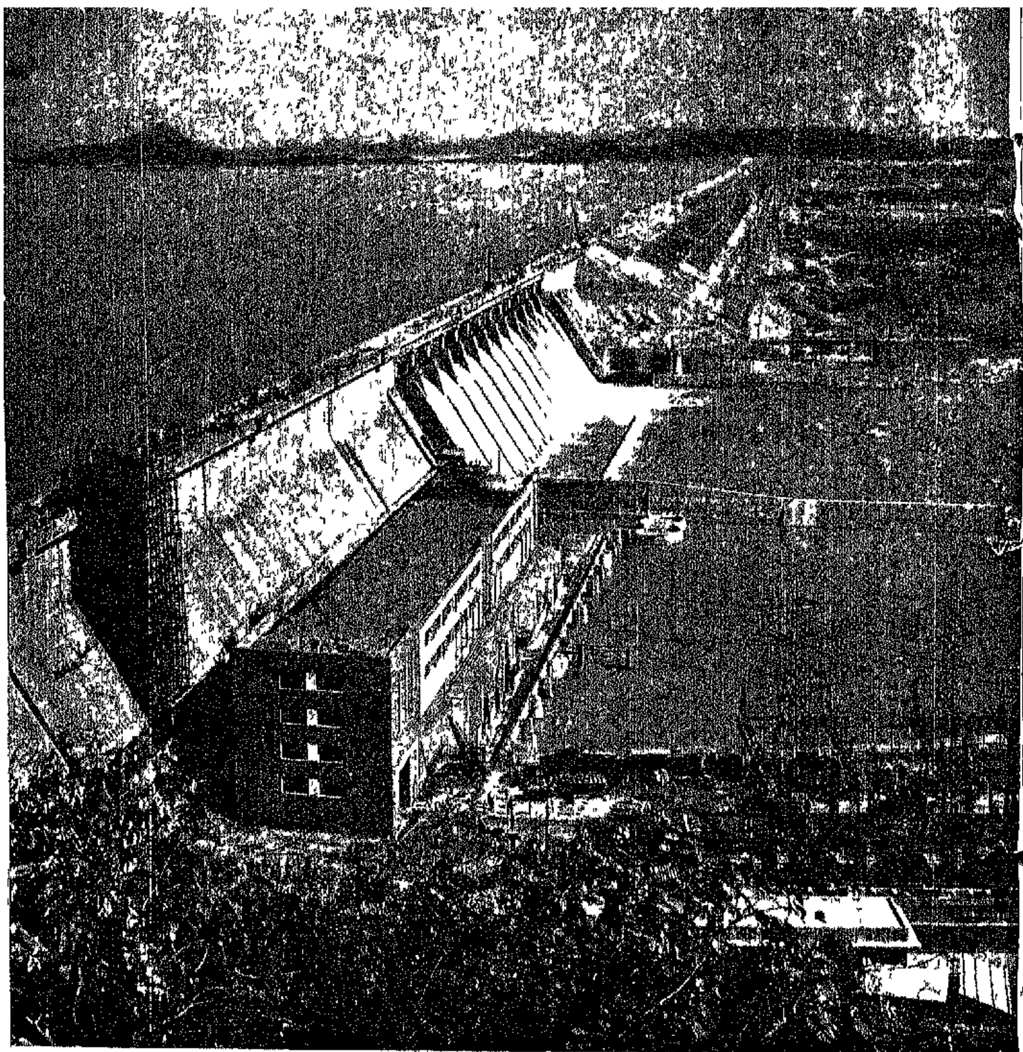
(१० कार्तिक से ९ मार्गशीर्ष १८८१)

मुखपृष्ठ "जयपुर का अम्बर महल" फोटो सूरजनारायण शर्मा
इस मास का फोटो 'हीराकुड बांध'
कवर का चौथा पृष्ठ 'हरसिल की एक सुन्दरी' फोटो सुखदेव

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८



वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, बारह सेंट या नौ पैस



भारत का नवीन तीर्थ 'हीराकुड बांध'

सहयोग, मेहनत और लगन हो तो कुछ भी असम्भव नहीं। उत्तर प्रदेश के सेहानी गांव में चार औरतों ने कुआ खोद कर कमाल कर दिखाया है।

इस गाव में पानी की बड़ी दिक्कत थी। औरतो को मीलो दूर से पानी लाना पडता था। अत एक दिन उन्होने मिल कर घर के पास कुआ खोदने की योजना बनाई। पुरुषो ने इसे अनहोनी बात समझ कर टाल दिया पर चार स्त्रिया खुदाई के काम में कमर कस कर जुट गईं। ६० फुट की गहराई पर जब पानी चमक आया तो स्त्रियो की बाछें खिल गईं और पुरुष दातो तले अगुली दबाने लगे।

सेहानी की स्त्रियो की बहादुरी की कहानी से आस-पास के सभी गावो में उत्साह की लहर दौड गई।



मिल-जुल कर काम करके अपने लिए सुख सुविधाएं बढ़ाई जा सकती है और समाज कल्याण के कार्य किए जा सकते हैं। यही नहीं इससे राष्ट्र की प्रगति में भी मदद मिलती है।

योजना की सिद्धि आपकी समृद्धि

DA—19/101



वष १५ | नवम्बर १९५९ | अक ७

कन्नड कविता

आकांक्षा

जसदेवीताई लिगाडे

सोन्नलापुर के सिद्ध
कल्याण के बसव
शृगेरी के शकर
बुद्ध महावीर के
आगमन की आकाक्षा
कर रही हू, आस जीवन के लिए ।

आओगे फिर से
यही विश्वास किए
खे रही भव-नैया
तरग क्या, प्रस्तर खड क्या ?
भीति नद की न डराती मुझे
जीती मैं सागर ही में—

हाक लू नौका,
अधिक चाहती नही
तुम ही से मिलूगी''
डरती न मृत्यु से
मरण तुम्हारा ही तो आचल ?
वह न अन्य, मेरा पीवर ही है ।

गीत

कमला चौधरी

बीत न जाए मिलन की बेला
धुक-धुक मन करता क्यो पगले
सघन जगत में रहा अकेला

सीप सरिस अखिया अति प्यासी
चातक सी आकुल अभिलाषी

गहन प्रीत की व्यथा छुपाए
विरह बहुत तूने है झेला

भटक रहा तू करुण काल में
घिरा हुआ है भरम जाल में

घूमा घिरा कर जन्म मरण में
खेल नियति ने तुझ से खेला

लगन सुभग नश्वरता लाई
पाट पुरानी उर की खाई

जन्म-जन्म की आस पुरा ले
भव बन्धन का काट झमेला

हुलस पुलक तू कर पहुचाई
उर धडकन की ले शहनाई

हृदय ज्योति की आरति लेकर
बढ चल कर ले दर्शन मेला ।

दो कविताएं

सूर्यकुमार भारती

एक

सर दर्द के बाद
एक खामोशी छा जाती है
बहुत अरसे तक
जैसे
तूफान के पहले
वातावरण का थम जाना
या मौत के कवल
रोगी का जोश
ठहरो ।
सब्र करो
देखो, इसके बाद क्या होता है
लम्बी खामोशी का असर
नन्हीं सासो पर
कब तक ठहरता है
असर अभी नही गया
सासो का अस्तित्व
जो जिन्दा है
जो इस लम्बे अरसे के बाद भी
शायद दर्दों को ढोता जा रहा है
मजबूरी है
इसे रोको मत
जाने दो
शायद इसकी कुंठा को कहीं
कोई सहारा नजर आए ।

दो

मुह अधेरे की माग
मुर्गे की बाग और प्राती का गीत
उषा की घनी लटो में उलझा
गोरा गाव
दूर तक
चला जाता है
रात ज्यो
किसी राहगीर का
पहला लोकगीत ।
मानस में गभीर
भावो का सचरण
भोर होते ही मरण
मद्दी-सी गूज पर
बढे चरण
टप-टप की आवाज
दफ्तर की फाइलें अस्तव्यस्त
पा रही शिकस्त
सिमटी, गर्म कोलाहल
पौ फटने तक
मुह अधेरे
किसी ने पुकारा
कल का अधूरा काम
बासी ईंट, चूना औ' गारा
किसने पुकारा ?
बच्चो का रोना
अलारम की घटी
रट्टू चोच की चीख
बासो की भूख
लातो के भूत
और मेरा नन्हा पूत
सभी की माग हुई शुरू
' रोटी, जीवन, मौत
दो चार पैसे '

कविता

पद्मा सुधी

जले अगोचर सुख का दीपक
दुख का शलभ मरा जाता है
किरण-तीर छोड़ा दिनकर ने
कृष्ण पख टूटा निशि-खग का,
स्वर्णिम शोणित कण लो छिटके
'शाश्वत् मिलन' विरह लाता है ।
रूप-गन्ध-रसहीन वायु-सा
सुख निर्गुण है निराकार है ।
व्यथा सगुण मेघो का रूपक,
घटा लिए मारुत आता है ।
लोचन है सुख, दुख आसू है
देख रहा सुख, दिखा न मुझको
अवनि अकेली, गगन अकेला,
कहा क्षितिज जो मिल पाता है ?

और समझना

श्री माता जी

किसी चीज को पढ लेना एक बात है और उसे समझना एकदम दूसरी बात है। जब तुम पढते हो तब तुम उस चीज को अपने ऊपरी मन से ग्रहण करते हो और वह चीज मानो बाहर से एक विदेशी वस्तु के रूप में तुम्हारे अन्दर प्रवेश करती है। यह चीज तुम्हारे अन्दर डाल दी जाती है, प्राय तुम्हारे अन्दर जबरदस्ती ठूस दी जाती है। तुम उसे आत्मसात् नही करते, संपूर्ण रूप से अपनी चीज नही बना लेते। यदि तुम उसके प्रति बेपरवाह होते हो, कुछ समय के लिए एक किनारे रख देते हो तो वह तुम्हारे दिमाग में से साफ निकल जाती है। परन्तु, दूसरी ओर, किसी चीज को समझ लेने का अर्थ है उसे हजम कर लेना, अपनी सत्ता के सत्त्व के अन्दर उसे धारण कर लेना, अपनी भीतरी चेतना में उसे अपने जीवन का अंग बना लेना। जब तुम किसी चीज को समझ लेते हो तब तुम उसे कभी नही भूलते, वह तुम्हारी चेतना का एक अंग बन जाती है। वर्ष पर वर्ष निकल जा सकते है फिर भी वह चीज उतनी ही स्पष्ट और उज्ज्वल बनी रहेगी, जितनी कि वह पहले दिन थी।

जो पाठ तुम इतनी कठिनाई और कष्ट के साथ पुस्तको से या स्कूलो में अध्यापको से सीखत-पढते हो उसे तुम इतनी आसानी से क्यो भूल जाते हो? इसका कारण यही है कि तुम महज सीख-पढ लेते हो, परन्तु समझते नही। तुम अपने मस्तिष्क में शब्दो को, बाहरी सूत्रो या रूपो को रख लेते हो, जो बात कही जाती है उसे टाग लेते हो, पर जिसको वे सब चीजें सूचित करती है, उनका जो गूढ अर्थ और आतरिक विधान होता है, जीवत सत्य होता है वह एक दम तुम्हारी पकड से बाहर रह जाता है। तुम आइन्स्टीन की पुस्तक पढते हो, बार-बार उनके दिए हुए सूत्रो तथा समीकरणो को पढते हो और उन्हें याद भी कर लेते हो, बार-बार रटकर कण्ठाग्र कर लेते हो, परन्तु कुछ दिन बाद, जब उनके साथ तुम्हारा कोई काम नही पडता, वे तुम्हारे मन मे से उड जाते है अथवा बहुत क्षीण और अस्पष्ट हो जाते है और तुम्हे फिर नए सिरे से उन्हें सीखना आरम्भ करना पडता है। इसका कारण यह है कि तुमने महज एक पाठ के रूप में आइन्स्टीन की पुस्तक पढ ली थी, इसके विपरीत यदि इन सूत्रो द्वारा अभिव्यक्त सत्यो को तुम आयत्त कर लेते, इन्हें निर्धारित करने वाले आतरिक सिद्धातो को हृदयगम कर लेते, यदि किसी तरह आइन्स्टीन की चेतना ही तुम्हारी चेतना बन जाती तो तुम सूत्रो को समझ लेते और उन्हे कभी नही भूलते। उस समय यह एक पाठ ही नही होता बल्कि वह एक अनुभव बन जाता है।

आवश्यकता है बस इसी आतरिक जागृति की, जिससे तुम किसी चीज को अपने जीवन मे उतार लेते हो, उसके साथ एकात्म हो जाते हो, घुलमिल कर एकरूप बन जाते हो, और महज उससे मुलाकात या रास्ता चलते-चलते परिचय ही नहीं कर लेते। जब तक चेतना मे यह जागृति अथवा, जैसा कि हम इसे नाम देते है, यह उद्घाटन नहीं हो जाता, तब तक, चाहे जितना भी अधिक कोई पाठ तुम्हारे अन्दर क्यो न ठूसा जाए, वह काफी गहराई तक नहीं बैठ सकता, तुम तोते की तरह सीख लोगे, परन्तु कुछ समझ नही पाओगे, वह तुम्हारे मस्तिष्क के ऊपर से गुजर जाएगा और शीघ्र ही भूल जाएगा।

प्राचीन ऋषियो और रहस्यवादियो को यह डर था कि साधारण अशिक्षित लोग उनके ज्ञानो का अनुचित प्रयोग करेंगे और इसीलिए उन्होने उन्हें छिपाने के लिए एक अस्पष्ट भाषा में, सकेतो, रूपको और गुप्त लेखनो में व्यक्त करने की चेष्टा की, परन्तु सच पूछो तो इस बात की उतनी अधिक आवश्यकता न थी। यदि वे अपने ज्ञान को साधारण भाषा में भी व्यक्त करते तो सामान्य लोग उसे जरा भी नही समझ पाते। साधारण भाषा में भी उन बातो को कहना ठीक चीनी भाषा में तुम से कोई बात कहने के जैसा ही होगा, तुम उससे कुछ भी समझ नही पाओगे। मनुष्य केवल वही बात समझ पाता है जिसे वह पहले से अपने अन्दर अधिकृत कर रखता है, कहने का तात्पर्य, जो कुछ तुम जानना और समझना चाहते हो उसका कम-से-कम थोडा सा अश, उससे मिलती-जुलती, स्वभाव और प्रकपन की दृष्टि से एक समान कोई भी चीज पहले से तुम्हारे अन्दर अवश्य होनी चाहिए। जब मै तुम से यह कहती हू कि तुम्हें खुले रहना चाहिए तब मेरा मतलब यही होता है, तुम्हारा मन और तुम्हारी चेतना जिस चीज को पकडना चाहती है उसकी ओर उसे मुडे रहना चाहिए, उसके साथ समस्वर हो जाना चाहिए, उसके अन्दर कुछ प्रकाश अवश्य होना चाहिए जिसमे कि वह बाहरी और ऊपरी प्रकाश को ग्रहण कर सके। यदि उसमें सिर्फ अन्धकार ही हो तो फिर प्रकाश आकर वहा उजेला नहीं करता अगर प्रकाश किसी तरह भीतर आ भी जाता है तो वह तुरन्त निकल जाता है अथवा अन्धकार से ग्रस्त हो जाता है।

मानव-मन केवल तीन आयतनो (डाइमेन्शन्स) वाली वस्तु को पकड सकता है। साधारणतया तीन पक्षो का ज्ञान ही उसके अधिकार में होता है। परन्तु चौथा और पाचवा पक्ष भी है (जिनके विषय में यूरोप के कुछ विज्ञानिक कल्पना करने लगे है)। सच पूछा जाए तो वर्तमान सृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले कम-से-कम बारह पक्ष है। अभी हम तुरन्त चार पक्षो वाली वस्तु का चित्र नही आक सकते, पाचवा पक्ष तो अलौकिकता की सीमा पर पहुच जाता है और उसके परे मानवीय चेतना के लिए सब कुछ शून्य है। अगर मै इन बहुविध पक्षो से सम्बन्ध रखने वाले अनुभवो की बात तुम से कहू तो तुम भला उन्हें क्या समझोगे?

एक उदाहरण ले लो। तुम लोग बहुत कुछ और निरन्तर ही भगवान के विषय में पढते और सुनते हो। परन्तु वास्तव में तुम्हारे लिए साकार (स) या निराकार (तत्) भगवान क्या है? कोई अस्पष्ट, धूमिल सत्ता वस्तु है या शब्दमात्र है। उनका अनुभव तुम्हारे लिए उतना ठोस, सच्चा

(शेष पृष्ठ ९ पर)

संस्कृत का प्रचार

भगवतशरण उपाध्याय

स्वराज्य प्राप्ति के बाद, विशेषकर पिछले कुछ सालो से, सस्कृत के अध्ययन-अनुशीलन और प्रचार के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रयत्न हुए और हो रहे हैं । इस सम्बन्ध में कुछ तथ्यो पर विचार करना यहा अनुचित न होगा ।

देश में सस्कृत के व्यापक महत्व के अस्तित्व से इन्कार नही किया जा सकता । देश की सस्कृति में भाषा और ज्ञान के रूप म सस्कृत शरीर की नसो की तरह छाई हुई है । धर्म, विश्वास, दर्शन, साहित्य--प्राचीन और अर्वाचीन--आधुनिक साहित्यो की पृष्ठभूमि और परम्पराओ पर भी--उसका दूरगामी और गहरा प्रभाव है । इसी स्थिति को ध्यान में रख कर देश के सविधान ने चौदह राष्ट्रीय भाषाओ में इसको भी गिन, है । वस्तुत चाहे जितना भी इसका व्यापक असर हो, बोली जाने वाली भाषा की दृष्टि से सस्कृत जीवित नही कही जा सकती । अनेक लोगो ने इस बात में भी सन्देह किया है कि सस्कृत कभी भी, प्राचीन काल में भी, वाल्मीकि और कालिदास के समय भी, बोली जाती थी । उनका कहना है कि भाषा यह यद्यपि अत्यन्त महत्व की, पर मात्र दर्शन, धर्म और साहित्य की, शिष्टो की थी, और शिष्ट ही उसे विशेष अवसरो पर बोलते थे ।

जिस प्रकार किसी जमाने में फ्रेंच यूरोपीय देशो की जबानो पर हावी थी, जिस प्रकार चार्ल्स द्वितीय के चौदहवें लुई के फ्रांसीसी दरबार से लौटकर लदन में राजसत्ता पुनर्ग्रहण कर लेने के बाद फ्रेंच दरबार तथा शिष्ट समुदाय की सास्कृतिक भाषा बन गई थी (जिसका परिणाम यहा तक हुआ कि आज न केवल मिस्र और ईरान तक बल्कि अफगानिस्तान तक में लोग ऐसे मिल जाते हैं जो फ्रेंच लिख बोल लेते हैं) उस प्रकार और उस मात्रा में भी सस्कृत का प्रचार कभी इस देश में नहीं हुआ, उस काल भी नहीं जब उसकी सत्ता देश के सारे साहित्यो और भाषाओ के ऊपर प्रतिष्ठित थी । और युग ऐसे भी आए जब सस्कृत तथा सस्कृत की सास्कृतिक सत्ता के विरुद्ध मनीषियो ने विद्रोह भी किया और प्राकृतो के पक्ष में आवाज उठाई । निर्ग्रन्थ नाटपुत्त (वर्धमान महावीर) का छठी ईस्वी पूर्व में अर्द्धमागधी में जैन धर्म का और छठी-पाचवीं सदी ईस्वी पूर्व में बुद्ध का पाली में प्रवचन और बौद्ध धर्म का प्रचार, फिर पीछे की सदियो में जैन धर्म के अनेक ग्रथो का धारावाहिक रूप से प्राकृतो में लिखा जाना उसी ब्राह्मण-सस्कृत विरोधी परम्परा के प्रमाण हैं । यह नि सदेह सही है कि बौद्ध परम्परा कम से कम दर्शन के क्षेत्र में एक बार फिर सस्कृत की परिधि में खिच आई, विशेषकर जब सिद्धातो का प्रणयन दार्शनिक दृष्टि से सघ के ब्राह्मण-भिक्षु और स्थविर करने लगे । फिर भी शास्त्रार्थो से पृथक् सस्कृत का जनबोली तो क्या शिष्टो की विशिष्ट अवसरभिन्न बोली होना भी प्रमाणाभाव में असिद्ध ही है । सस्कृत साहित्य में भी जहा जनसकुल मानव परिवार का दर्शन होता है, जैसे नाटको के पात्र वर्ग में, वहा भी स्वाभाविक ही राजा, मत्री और पुरोहित को छोड शेष प्राय सभी प्राकृतें या सस्कृत भिन्न जनबोली बोलते हैं ।

इस स्थिति से जब यह प्रकट है कि स्वाभाविक जनबोली, 'प्राकृतो', का ही प्राचीन काल में जनसत्ताक उपयोग होता था और सस्कृत का उपयोग बहुत कुछ आज की ही भाति, यद्यपि मात्रा में कुछ अधिक, परिमित था, तब उसे सजीवित करने के कृत्रिम उपाय कहा तक सफल या नीतिसम्मत होंगे, यह कहने की आवश्यकता नही । सस्कृत के तत्वबोध में, उसके देश के सास्कृतिक जीवन के ऊपर प्रभाव मे, साहित्यो पर व्यापक सत्ता में तब किसी प्रकार या अश में हानिकर असर नही पडता यदि उसके प्रचार में उन अनेक त्रुटियो को तज दिया जाए जो आज की हवा में हैं पर वस्तुत गहराई से देखने पर विशेष अर्थ नही रखती ।

आज सस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए देश में पर्याप्त प्रयत्न हो रहे हैं, यद्यपि अधिकतर प्रचारो के मूल में सस्कृत के ज्ञान और सस्कृत भाषा के गैरजानकार लोग ही अधिकतर सक्रिय रहे हैं । जो भी हो, सस्कृत के प्रचारार्थ जो सकल्प हुए हैं उनका कार्य सर्वथा उपेक्षणीय नही है । सस्कृत विश्व परिषद् देशव्यापी अधिवेशन कर रहा है, ओरियटल कान्फ्रेंसो में सस्कृत विभाग का अपेक्षाकृत प्रसार भी अधिक हुआ है, कुरुक्षेत्र मे एक सस्कृत यूनिवर्सिटी का सूत्रपात भी हुआ और बनारस में तो सस्कृत यूनिवर्सिटी देश के अन्य विश्वविद्यालयो की भाति विविध विषयो के विधान से, ज्ञान के साधन और अध्ययन-अध्यापन के विभिन्न अर्वाचीन उपकरणो की सहायता से कार्य भी कर रही है । इधर जो केन्द्रीय सरकार ने एक सस्कृत-कमीशन की नियुक्ति की थी उसनें भी अनेक सुझाव उस भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए दिए हैं ।

कहा तो यहा तक गया है कि सस्कृत को अग्रेजी का स्थानापन्न कर दिया जाय, सस्कृत को स्कूलो के पाठयक्रम में व्यापक रूप से अनिवार्य कर दिया जाय, औपचारिक अवसरो पर सस्कृत का ही उपयोग किया जाय और कुछ लोगो ने तो यहा तक साहस कर कहा कि सस्कृत राजभाषा बना ली जाए । स्वाभाविक ही इस साहस की बात पर विचार करने की आवश्यकता नही, पहले तो इस कारण कि सभी समझदार व्यक्तियो ने इस नीति का घना विरोध किया है, दूसरे इस भाषा का आम प्रयोग इस देश में भी असम्भव है, आज के दिन भी, जब पहले भी अर्थात् उसके असाधारण उत्कर्ष के दिनो में भी, ऐसा न हो सका था । कहा तो यहा तक जा सकता है कि यदि आधुनिक ग्रीक इस देश की राजभाषा बना दी जाय तो शायद इतना अनुचित न होगा जितना सस्कृत को बनाना अनुचित होगा, क्योकि आखिर ग्रीक किसी देश की आज जीवित भाषा है जिसे वहा के रहने वाले आमतौर से बोलते हैं ।

जहां तक स्कूलो में संस्कृत को अनिवार्य बनाने की बात है वह स्वय विशेष महत्व की नही। इस बात को इस सम्बन्ध में भली भाति समझ लेना चाहिए कि जिस भाषा का समाज में सक्रिय और जीवित प्रयोग नही उसका अध्ययन चाहे जिस मात्रा में अनिवार्य कर दिया जाय उसका प्रचार अकेले इस साधन से नही हो सकता। इस दिशा में एक-आध उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। १९वी सदी मे, कुछ अशो म आज भी ऐसा है, यूरोप के स्कूलो में ग्रीक या लैटिन का अध्ययन अनिवार्य था, पर स्कूल की परीक्षाए पास करते ही विद्यार्थी उन भाषाओ से उदासीन हो जाते और प्राय सभी उन्हें सर्वथा भूल जाते थे। हा, आधुनिक भाषाओ को अगर वे वैकल्पिक रूप से सकल्पत पढते, निश्चय उन्हे वे अपने ज्ञान में जीवित रख पाते थे, क्योंकि उन भाषाओ का सक्रिय रूप में व्यवहारत जीवित होना स्वय उनके अविस्मरण की गारटी था। हा, जो पडित प्राचीन ग्रीक, लैटिन, आर्य अथवा शेमी भाषाओ का अभ्यास करते, अपने शोध और गवेषणा का, अनुसधान का विषय बनाते, वे निश्चय उन्हें अपने में अथवा अपने तक पुनर्जीवित कर अपने-अपने ज्ञान और उनकी सस्कृति का लाभ आम जनता को कराते हे। इसी प्रकार यदि सस्कृत के पडित जिनका उस भाषा मे राग है केवल वे ही उसे जीवित रख सकते है, और उनको रखना चाहिए। और इस दिशा में काम करने वाले विद्वानो की सख्या बढे तथा उनकी स्थिति समृद्ध हो इसका प्रयत्न राष्ट्र और राज्य दोनो की ओर से समुचित होना चाहिए।

स्वय देश में, विशेषत उत्तर प्रदेश में, एक इसी प्रकार के अनिवार्य पाठ्यक्रम की असफलता भी उद्धृत की जा सकती है। उत्तर प्रदेश के स्कूलो में आठवी कक्षा में उर्दू प्रधान भाषा लेने वाले को अनिवार्यत हिन्दी पढनी पडती थी और हिन्दी प्रधान भाषा लेने वाले को अनिवार्यत उर्दू। पर केवल इसी कारण न गैरहिन्दी वालो ने हिन्दी सीखी और न गैरउर्दू वालो ने उर्दू। इसलिए इस बात का कुछ अर्थ है कि जहा तक स्कूलो में सस्कृत की अनिवार्यता का प्रश्न है हमारे अनेक राज्यो ---मद्रास, आध्र, मैसूर, केरल, पजाब, आसाम, उडीसा और बम्बई--- ने उसका विरोध किया है।

यह हमे निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि भाषा का विस्तार विद्वान नही करते, वे केवल साहित्य का निर्माण कर सकते है, कि राजसत्ता भाषा का विस्तार नही करती, कि भाषा का विस्तार प्रचार द्वारा भी कुछ ही और वह उपेक्षणीय मात्रा में किया जा सकता है। जनता जब तक भाषा को अपनाकर उसे जनबोली का रूप नही देगी तब तक आज का यह सस्कृत सम्बधी मृगतृष्णा का भावुक प्रचार मृगतृष्णा मात्र बन कर रह जाएगा। जनता अपनी बोली किसी भाषा को नितात उन मूलभूत कारणो से बनाती है जो भाषा के आदित निर्माण और उदय के प्रथम कारण है, यानी अभिव्यक्ति के लिए, अपनी इच्छा को दूसरो पर प्रकट करने के लिए। और ऐसा तब तक नही हो सकता जब तक जनता की अपनी स्वाभाविक प्राकृत या ऐसी भाषा पहले से ही व्यवहार में प्रयुक्त होती रही हो, जो उसकी मातृ-भाषा और जनबोली है। इसलिए सस्कृत के भारत में जनभाषा, राजभाषा या औपचारिक भाषा होने की कोई सभावना नही, ईमान-दारी से कोई आग्रह नही। राष्ट्रभाषाओ में भी उसकी गणना मात्र उसकी सास्कृतिक व्यापक सत्ता के प्रति आदर प्रदर्शन है, कुछ अनिवार्य सामूहिक आवश्यकता नही।

देश में सस्कृत विश्वविद्यालयो का अनेकत निर्माण, सस्कृत बोर्डों की प्रतिष्ठा, सस्कृत के भाषा, साहित्यादि के क्षेत्र में अनुसधान आदि का सपोषण वस्तुत अपेक्षित प्रक्रिया है जिसका अभिनदन हर समझदार व्यक्ति करेगा। इनके माध्यम से सस्कृत भाषा समृद्ध भी होगी। सस्कृत के उन्नायको को भूसी और अन्न के अन्तर को समझ कर उस महती समृद्ध भाषा के उन्नयन का प्रयत्न वैज्ञानिक साधनो से करना चाहिए न कि सख्या के परिमाण से।

★

पढना और समझना--(पृष्ठ ७ का शेषांश)

नही है। तुम उनके विषय में चाहो तो सन्देह कर सकते हो। उनके अस्तित्व को अमान्य कर सकते हो, उन पर श्रद्धा-विश्वास करना इन्कार कर सकते हो। परन्तु एक बार यदि तुम उन्हें अनुभव कर लो, अपनी आतर सत्ता और चेतना में चाहे अति सामान्य रूप में ही सही, चाहे अति तुच्छ मात्रा में ही सही, उन्हें पकड लो, चाहे किसी भी ढग से उनका सीधा सम्पर्क प्राप्त कर लो, तो फिर वही चीज अविस्मरणीय हो जाती है, वह बनी रहती है और सदा-सर्वदा बनी रहती है। यदि सारा जगत् अस्वीकार करता है और हसी-मजाक करता है तो भी तुम अचल अटल बने रहते हो, तुम जगत के ऊपर हसते हो, क्योंकि तुम जानते हो कि तुम क्या जानते हो।

तब यह अनुभव पाने का, चेतना में यह उद्‌घाटन ले आने का पथ क्या है? दिव्य उपस्थिति मौजूद है, ज्योति मौजूद है, कृपा-शक्ति सदा ही तुम्हारी ओर झुकी रहती है, तुम्हें घेरे रखती है। अब तुम्हारी ओर से भी उसी के अनुरूप एक मनोभाव होना चाहिए। तुम्हें सच्चाई के साथ पूरे दिल से वह चीज मागनी चाहिए, अथक भाव से उसकी अभीप्सा करनी चाहिए। तुम्हें लगातार वह चीज मागनी होगी, श्रद्धा-विश्वास का भरोसा कभी खोना न होगा, समय का कोई लेखा-जोखा किए बिना तुम्हें दृढता-पूर्वक लगे रहना होगा।

वहा एक लौह द्वार मजबूती से लगाया और बन्द किया हुआ है। उसे तोडना होगा। यह वह दरवाजा है जो तुम्हें तुम्हारी सकीर्ण अह चेतना के अन्दर बन्द कर रखता है। तुम्हें उस बाधा को भंग कर डालना होगा और अपने-आपको विस्तरित कर देना होगा। तुम्हें इसकी इच्छा करनी होगी, दृढतापूर्वक लगातार इसके लिए परिश्रम करना होगा दूसरी ओर से भी, कृपाशक्ति की ओर से भी दबाव पडता है। कृपाशक्ति के साथ युक्त होने पर तुम्हारा अभीप्सामय सकल्प अवश्य ही उस कठोर दीवार को तोड कर आवश्यक पथ बना लेगा।

गोविन्ददास

संसार के छ प्राचीन देश है --भारत, मिस्र, चीन, यूनान, मेसोपोटेमिया और बेबीलोनिया। मेसोपोटेमिया और बेबीलोनिया का आज के जगत् में कोई स्थान नही है, पर शेष चार का तो किसी न किसी प्रकार का स्थान है ही। भारत का तो मै रहने वाला हू ही, शेष तीन देशो में मै गया हू। परन्तु, आज इन तीन देशो की प्राचीन सस्कृति के इन देशो के जन-जीवन में दर्शन नहीं होते। यदि आप इन देशो की प्राचीन सस्कृति के दर्शन करना चाहें तो या तो वह इन देशो के पुराने खण्डहरो में दिखाई देती है, अथवा अजायबघरो में। ससार भर में एक मात्र भारत ही ऐसा देश है जिसकी प्राचीन सस्कृति की परम्परा हमें आज के भारतीय सामाजिक जीवन में देख पडती है। इसका प्रधान कारण है हमारी सस्कृति का मुख्य अवलम्बन---धर्म। धर्म शब्द को मै यहा व्यापक अर्थ में ले रहा हू। 'मजहब' या 'रिलीजन' हमारे 'धर्म' शब्द के ठीक अनुवाद नही है। धर्म की हमारे यहा न जाने कितने ग्रथो में कितनी व्याख्या की गई है। 'धर्म' शब्द 'धृ' (धारण करना) धातु में 'मच' प्रत्यय लगाने से बन जाता है अर्थ हुआ जो धारण करे। अत धर्म उन सिद्धान्तो का एकीकरण , जिससे मानव और मानव-समाज अपने अस्तित्व को धारण करता है। यह अस्तित्व तभी टिक सकता है, जब मनुष्य और उसका समाज सन्मार्ग पर चले। इस सन्मार्ग की भी हमारे यहा न जाने कहा-कहा और कितनी व्याख्याए की गई है। परन्तु, मुझे सबसे अच्छी और व्यापक व्याख्या वैशेषिक-दर्शन के प्रणेता कणाद की जान पडती है। वे कहते है---"यतोऽभ्युदय नि श्रेयस सिद्धि स धर्म"। अर्थात् जिससे अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। अभ्युदय से लौकिक और नि श्रेयस से पारलौकिक सिद्धि की उपलब्धि होती है। हमारी सस्कृति की नीव में अध्यात्म अवश्य है परन्तु, इसका यह अर्थ कदापि नही है कि हमने सदा आकाश की ओर ही देखा है और पृथ्वी की ओर नही। सदा से अध्यात्म की नींव पर ही हमने भविष्य का निर्माण किया है। वे भूल करते है जो कहते है कि आध्यात्मिकता अकर्मण्यता लाती है। हमारे दर्शनशास्त्र का निचोड भगवद्गीता आध्यात्मिकता के साथ कर्मयोग जीवन का लक्ष्य निर्धारित करती है। फिर हमारे यहा सस्कृति और सभ्यता दोनो को महत्व प्राप्त है। जो सस्कृति और सभ्यता को एक ही चीज मानते है वे भूल करते है। प्रकृति ने हमें जो कुछ दिया है उसे काम में लेकर मनुष्य ने जो आधिभौतिक प्रगति की है, उसको हम सभ्यता (सिविलीजेशन) कहते है। बुद्धि का उपयोग कर मानव जो सृजन करता है, वह सस्कृति (कल्चर) है।

हमारी सभ्यता और सस्कृति का उद्गम वनो में हुआ था। वैदिक काल में अपनी इसी सभ्यता और सस्कृति की खोज में भारतीय मानव हिमालय के सघन वन प्रदेश में भटका और उसने गिरि-कन्दराओ को अपना निवास-स्थान बनाया। यहा उसे प्रकृति के पालक रूप के महान दर्शन हुए और अन्त में यही पर्वतीय प्रदेश उसके मनन, चिन्तन तथा बुद्धि के विकास का साधन बना।

किसी भी देश की सभ्यता और सस्कृति के दर्शन हमें घर बैठे केवल इतिहास की पुस्तको के पृष्ठो, बृहत नगरो और विशालकाय कल-कारखानो में नही हो सकते। उसके वास्तविक दर्शन हमे प्राकृतिक स्थलो, सघन वनो, छोटे-छोटे कस्बो-ग्रामो और मेहनतकश मजदूरो की झोपडियो मे मिलते है। इसके लिए हमें इन स्थलो, वनो, पर्वतो, कस्बो, ग्रामो तथा मजदूरो की झोपडियो तक जाना पडता है। एक यात्रा करनी पडती है, अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, कृत्रिमता से स्वाभाविकता की ओर।

यात्रा को सारे ससार में महत्व प्राप्त है। पश्चिम में तो बिना यात्रा किए कोई व्यक्ति पूर्ण शिक्षित ही नही माना जाता। वहा यात्रा शिक्षा का एक विशिष्ट अग बन गई है, जो शिक्षा मानव को सच्चा मानव बनाती है। इस यात्रा को हमारे धर्मप्राण सस्कृति वाले देश में तीर्थ यात्रा का रूप देकर उसे उच्चतम आवश्यकताओ में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रामायण, महाभारत, पुराणादि में तीर्थ-यात्रा के अनेक माहात्म्यो का वर्णन है।

हमारा कुटुम्ब एक धार्मिक कुटुम्ब रहा है। इस कुटुम्ब मे जन्म पाकर तथा इसके वायुमण्डल म बडे और शिक्षित होकर इस कुटुम्ब के धार्मिक सस्कारो से भी मै ओत-प्रोत रहा। इस सम्बन्ध में अनेक प्रसगो का वर्णन मैने अपनी आत्मकथा में किया है। अन्य धार्मिक कृत्यो के साथ हमारे कुटुम्ब में तीर्थ यात्राए भी होती थी, तथा अब भी होती है। सन् १६१६ में मै अपने पिताजी के साथ जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारिका गया था। इस प्रकार हमारे यहा के चार प्रधानतम धार्मिक 'धामों' में से तीन धामो में मै बहुत पहले से हो आया था। जगन्नाथपुरी



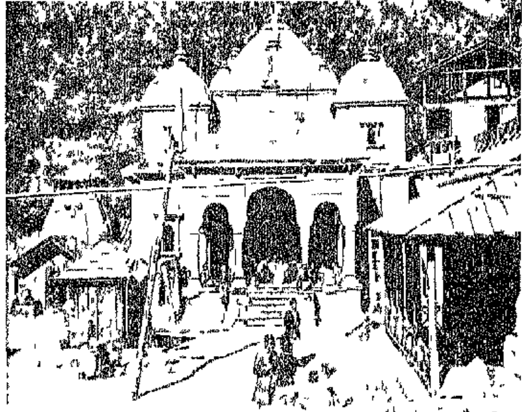
गगोत्री

और रामेश्वर तो इसके बाद भी दो-तीन बार गया। जब पिताजी के साथ रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और द्वारिका गया, उसी समय बदरीनाथ भी जाने का विचार था, परन्तु वह इच्छा उस समय पूर्ण न हो सकी।

सन् १९५९ की १८ मई को जब हम लोग उत्तराखण्ड के यमनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ की यात्रा पर रवाना हुए, उस समय मुझे अपने पिताजी के साथ सन् १९१६ की उपरोक्त तीन धामो की यात्रा और उसके सम्बन्ध की सारी बातें स्मरण हो आईं। सामर्थ्य, साधन और प्रबल इच्छा होते हुए भी हम उस वक्त बदरीनाथ नही जा सके थे और आज उस समय की सामर्थ्य और साधनो की तुलना में कोई मिलान न होते हुए भी इस कष्टसाध्य यात्रा के एक धाम केवल बदरीनाथ ही नही अपितु, चारो धामो, यमनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ के दर्शनो के सकल्प से हम आबद्ध थे। हा, हमारी इच्छा-शक्ति अवश्य उस समय से आज अधिक बलवान थी।

उत्तराखण्ड की यह यात्रा बडी लम्बी और कठिन यात्रा है। मै देश में निरन्तर घूमता रहता हू और विदेशो में भी अनेक बार गया हू। किन्तु, इतनी लगातार लम्बी पैदल, और कठिन यात्रा मैंने पहले कभी नहीं की थी। अत अनेक शारीरिक कष्ट इस यात्रा में हुए। आदमी की तीन प्रधान आवश्यकताए है—(१) भोजन, (२) वस्त्र और (३) निवास। भोजन में वहा नये चावल मिलते हैं, जिनका स्वाद घास के सदृश होता है, दाल जो वहा के पानी में गलती ही नही, आलू, खराब आटा और घी। हा, घी अच्छा मिलता है। किन्तु, यदि कोई घी पी कर रह सके तब तो उसके लिए भोजन की समस्या ही न रहे। पर मेरे लिए यह असम्भव था। धोबी यहा मिलता नही, अत सारी यात्रा में मैले कपडे ही पहनने पडे। निवास के लिए यहा जो चट्टिया बनी है, वे इतनी गन्दी तथा प्रकाश और वायु से रहित है कि आज के जमाने में पशु भी उनमें सुख अनुभव नही करेगा। हा, सौ दो सौ वर्ष पहले की बात मै नहीं कहता। किन्तु, इन सब कष्टो के विपरीत जो मानसिक अन्तर हमें यहा के प्राकृतिक दृश्यो के कारण मिला, उससे ये कष्ट हमें अधिक दुखदायी प्रतीत नही हुए। यहा के प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलना में न कश्मीर के दृश्य है, न स्विटजरलैण्ड के। कश्मीर के अमरनाथ के कुछ दृश्य अधिक सुन्दर हो सकते है, किन्तु जो एक प्रकार की महानता हमें यहा इन दृश्यो में दृष्टिगोचर हुई, वह अन्यत्र कही नही।

उत्तराखण्ड के चारो धाम चार पवित्र नदियो के तट पर अवस्थित है। यमुनोत्तरी का मार्ग यमुना के किनारे-किनारे, गगोत्तरी का मार्ग गगा के किनारे-किनारे, केदारनाथ का मार्ग मदाकिनी के किनारे तथा बदरीनाथ का मार्ग अलकनन्दा के किनारे-किनारे गया है। यात्रा के प्रारम्भ में पहले हमें साधारण वृक्षो के जगल मिलते है, फिर एक खास ऊचाई पर चीड के वृक्ष। उसके ऊपर पहुच कर देवदार के वृक्ष मिलते है। देवदार के वृक्ष चीड के वृक्षो से भी सुन्दर होते है। इनमें चीड के वृक्षो की अपेक्षा अधिक हरे पत्र-गुच्छ रहते है। ऊचे-ऊचे शिखरो से गिरते जल-प्रपात तथा हिमानी शृग इस वन प्रदेश की शोभा में चार चाँद लगा देते है। जिस प्रकार के यत्र-तत्र शोभायमान हो रहे हिम-शृग यहा है, विशेषकर केदारनाथ की वह हिमानी जिसकी ऊचाई लगभग तेइस हजार फीट है, उस प्रकार की इतनी विशाल और भव्य हिमानी ससार में कही नही। और फिर सघन हरित वनो के इस प्रदेश में हमने केदारनाथ से लगभग दो मील पूर्व देखा कि हरित शिखरावलो के

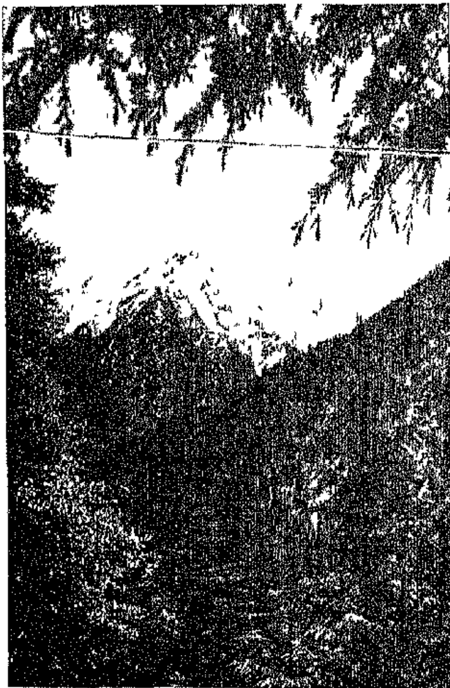


गगोत्री मन्दिर



गगोत्री के मार्ग का एक दृश्य





गगोत्री के मार्ग का एक अन्य दृश्य

ये तरु एकदम लुप्त हो गए हैं। ये गिरि-शृग वृक्षावली से सर्वथा रहित है, परन्तु इन पर अगणित भाति के पुष्पो के पौधे उगे हुए है। कितने रगो, आकृतियो और रूपो के थे ये कुसुम। शायद ही कोई ऐसा रग हो, जिसके दर्शन इन सुमनो में न हो। लाल रग के जितने भी प्रकार होते है--गहरा लाल, गुलनार, हलका लाल, गुलाबी। पीले रग की भी जितनी किस्में होती हैं--केसरी, गहरा पीला, हल्का पीला, चन्दनी। नीले रग में भी जितने प्रकार होते है--बैगनी, ऊदा, आसमानी अर्थात् भाति-भाति के रग थे। जान पडता था कि प्रकृति प्रदत्त इस रूप-राशि का ही मानव ने अपने भाति-भाति के सुन्दर वस्त्रो, विभिन्न डिजाइनो, खाद्य-पदार्थों और आभूषणो में अनुकरण किया है। इन पुष्पो से, कुछ में भीनी-भीनी मादक महक भी रहती है, जो वायु के मन्द-मन्द झोको के साथ हल्की-सी उस सुरा की मादकता का अनुभव कराती है, जिसके अनुपात में सेवन करने से आदमी एक प्रकार की एकाग्रता का अनुभव करने लगता है। इसीलिए इस पार्वत्य-स्थल का नाम हमारे ऋषियो ने 'गन्धमादन' रखा है। फिर बदरीनाथ की ये गिरि-श्रेणिया छोटे-बड़े शिखरो के रूप में पक्तिबद्ध हो हमें शैल समाज सी दृष्टिगोचर होती है। यहा भी सर्वथा तरु और तृण-रहित नग्न गिरि-शृग शोभायमान हैं। जान पडता है कि हिमालय की यह शिखरावली भगवान बदरीनाथ के चरणो में अपना सर्वस्व भेंट कर दिगम्बर हो शिखर सम्मेलन के रूप में भगवान बदरीनाथ की आराधना में लीन है और इसकी इस आराधना से प्रसन्न हो भगवान बदरीनाथ ने अपने चरणोदक रूपी हिम की वृष्टि कर इसे पवित्र बना दिया है। इन शिखरो पर इधर-उधर छिटका हुआ-सा हिम, श्याम शरीर पर शुभ्र आभूषणो सा प्रतीत होता है।

फिर चारो नदियो का प्रवाह देखिए। यमुना का श्याम, गगा का श्वेत, मन्दाकिनी का हरा और अलखनन्दा का नीला नीर भिन्न-भिन्न धामो को जाने वाले यात्रियो को अत्यन्त सुखदायक प्रतीत होता है। अब इनके प्रवाह की गति देखिए। कल-कल करती कालिन्दी अपने श्याम रूप से श्याम पाषाणो पर बहती, भागीरथी अपने श्वेत-नीर से श्वेत और नीले पाषाण खण्डो को चीर किस शान, किस तूफानी वेग से तुमुल नाद-सा करती बहती जाती है, जिसके रूप और गति को देख दर्शक चकित, स्तम्भित और भयभीत भी हो जाते है। ऐसा प्रवाह मैंने दुनिया की किसी नदी में नही देखा। अलखनन्दा भी कही वेग से और कही शान्ति से किसी विरही बाला की तरह दौडी जाती है। फिर जहा इन नदियो के सगम होते हैं वहा के दृश्य और भी मनोहर बन जाते है। इन सगमो से आगे जो प्रवाह जाता है, उसका नामकरण हमारे ऋषि-मुनियो ने जिस दूरदर्शिता से किया है, उसे भी देखिए। अगणित निर्झरो और जलप्रपातो के विविध रग के नीर को अपने में विलीन कर जो प्रवाह अपने ही एक रूप से बहता है, उसी का नाम आगे भी चलता है। इन प्रवाहो को हम विभिन्न नदियो के नाम से पुकारते है। आगे फिर ये नदिया

भैरव घाटी मे गगा



बडी नदियो मे मिलती है, इनमें जो अपना रूप, रग और अस्तित्व को समाप्त कर जिस नदी मे समाहित होती है, उस नदी का नाम चलता है। जैसे—केदारनाथ से निकली मन्दाकिनी अपने हरित नीर को मन्दाकिनी के नीले नीर मे रुद्रप्रयाग में समाहित कर देती है और यहा से आगे का प्रवाह अलखनन्दा का प्रवाह माना जाता है। इसी तरह गगा में भिलगना, अलखनन्दा और यमुना के विविध रग के प्रवाह लोप होते है और आगे गगा का ही नाम चलता है। गगा की एक विशेषता भी है, इसमें बडी-बडी नदियो का समावेश होता है, किन्तु मिलने वाली नदियो के आकार, जल-विस्तार आदि का कोई प्रभाव गगा पर नही पडता। वह सभी को उदरस्थ कर अपने ही रूप, रग और प्रवाह में आदि से अन्त तक बहती है। प्रयागराज को ही लीजिए। यहा गगा की अपेक्षा यमुना में अधिक पानी रहने पर भी यमुना के पानी का गगा के पानी पर कोई असर नही पडता और इस विपुल जलराशि वाली यमुना को भी अपने मे समाहित कर गगा गगा ही रहती है। सब नदियो को अपने में उनके रूप-रग और आकार सहित धारण करने की जो सामर्थ्य गगा में है, वह कदाचित उसके वेगवान प्रवाह के कारण है।

उत्तराखण्ड के चारो धामो में यमुनोत्तरी और गगोत्तरी का मार्ग जितना बीहड और सकीर्ण है, उतना केदारनाथ और बदरीनाथ का नही। यमुनोत्तरी और गगोत्तरी में एकदम सीधी और विकट चढाइया



भागीरथ ग्लेशियर (१८,००० फुट)



गगा का स्रोत गोमुख (ऊचाई १४,००० फुट)

है, फिर दो-ढाई से तीन फुट तक का सँकरा मार्ग, हजारो फुट नीचे गहरे भयानक खडु और इन सरिताओ के प्रवाह। कही-कही ऊपर सिर पर कच्चे पहाड, जिनके टूटने का भय बना रहता है। यमुनोत्तरी के मार्ग में एक जगह तो पहाडो पर चर रही भेडो ने कुछ पत्थरो की वर्षा भी करदी थी। हा केदारनाथ का मार्ग अच्छा है। चढाई है, पर एकदम सीधी नही। मार्ग चौडा है, घुमाव पर मोड बना दिए गए है और चढाई के प्रारम्भ होते ही पाषाण-शिलाओ पर अकित हमें यह जानकारी भी मिल जाती है कि यहा से कितनी चढाई और है तथा कौन स्थान कितनी दूरी पर है। अन्य आवश्यक सूचनाए भी इन मार्गों में दी गई है। इसी तरह बदरीनाथ के मार्ग में भी हमें उतनी कठिनाई नही हुई।

हमने यहा की धार्मिक भावनाओ को तथा सरिताओ के उद्गम स्थानो, सगमो और देवमन्दिरो मे पूजन देखा। मैं वल्लभ सम्प्रदाय का हू और वल्लभ सम्प्रदाय में पूजा न होकर सेवा होती है। वल्लभ सम्प्रदाय की यह भगवत्सेवा भी बडी अलौकिक होती है। भिन्न-भिन्न दर्शनो में अष्टछाप के आठ कवियो के पदो के कीर्तन होते है, जिनमें सूरदास प्रमुख है। केदारनाथ और बदरीनाथ में पूजा होती है। यहा की पूजा की जो विधि मैंने देखी, उससे भी मै अत्यन्त प्रभावित हुआ। सर्वप्रथम प्रातः 'सौडि' दर्शन होते है। फिर बदरीनाथ के निराकरण दर्शन। जिसमें पचामृत के साथ स्वरसहित शुक्ल यजुर्वेद का पाठ



गंगोत्री में ब्रह्मकुण्ड

और इसके बाद विष्णु सहस्रनाम का पाठ होता है। मुझे पांच वर्ष की अवस्था में ही विष्णु सहस्रनाम कण्ठस्थ कराया गया था। जब मैं मन्दिर के आचार्यों के साथ ही विष्णु सहस्रनाम का पाठ कर रहा था, तो लोगों को कुछ आश्चर्य हुआ। यह मुझे तब मालूम हुआ जब पूजनोपरान्त हम लोग अपने निवास स्थान पर लौटे और हमारे पंडित जी ने हमें बताया कि लोग पूछ रहे थे कि ये गांधी टोपी-धारी कौन थे, जो विष्णु सहस्रनाम का बिना पुस्तक देखे शुद्ध पाठ कर रहे थे। तो इस तरह की विधि-विधान से पूर्ण पूजा जैसी मैंने यहां देखी, वैसी कदाचित काशी के विश्वनाथ मन्दिर और रामेश्वर में भी नहीं होती, ऐसा मुझे लगा। इसके साथ ही सरिताओं के पावन संगमों पर एकत्रित यात्रियों का समूह, स्नान-ध्यान पूजन, मनन-चिन्तन व पिण्डदान और तर्पण में निमग्न रहता है। कैसा मनोहर था वह दृश्य। कोई भगवान् भास्कर को अर्घ्य दे रहा है। कोई हाथों में पुष्प लिए अपनी भक्तिभाव से भीगी श्रद्धांजलि भागीरथी को भेंट कर रहा है, तो कोई कुशा और जनेऊ हाथों में थामे विधिवत् अपने पितरों का श्राद्ध-तर्पण और पिण्डदान कर रहा है। इन संगमों पर पण्डे और उनके यजमान यात्रियों का यह संगम कितना भव्य, कैसा भक्तिभाववर्द्धक और कैसी असीम आस्तिकता का द्योतक होता है, यह उस दृश्य का दर्शक ही समझ सकता है। मन्दिरों में आचार्य, रावल और पुजारी वेद मन्त्रों, यजुर्वेद की ऋचाओं और भक्ति गीतों एवं स्तुतियों का मुक्त कण्ठ से सस्वर पाठ करते हैं। यात्रियों के झुण्ड के झुण्ड भगवत्दर्शन करते ही कैसा असीम सुख, एक अव्यक्त शान्ति और एक प्रकार की कठिन तपश्चर्या के बाद प्राप्त फल सिद्धि का-सा अनुभव करते हैं।

ऐसे धार्मिक और सांस्कृतिक भव्य वायुमण्डल का यह दृश्य केदारनाथ और बदरीनाथ के इन मन्दिरों में देख कर मुझे हमारी सगुणोपासना का जो रहस्य अनुभव हुआ, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। जब हमारे ऋषि मुनियों ने इन पवित्र तीर्थों की स्थापना कर मूर्ति-पूजा के सगुणोपासना के महत्व को बढ़ाया, तब से हमारी आस्तिक धर्म प्राण जनता का यहां प्रति वर्ष मेला सा लगा रहता है और आज भी मार्ग की अनन्त असुविधाओं और पहाड़ों की भीषण दुर्गमताओं के होते हुए भी यात्रियों की यह संख्या दिनोदिन बढ़ती ही जाती है। कदाचित कोई यह कहे कि अब पहले की अपेक्षा मार्ग अच्छे हो गए हैं, इसलिए अधिक लोग आते हैं किन्तु मैं उनसे फिर निवेदन करूंगा कि अमरनाथ के अत्यन्त दुर्गम मार्ग में आज भी जो लोग जाते हैं, क्या वे वहां के प्राकृतिक दृश्यों को देखने जाते हैं? बात ऐसी नहीं है। यदि वहां भी कैलाश और मानसरोवर के सदृश ही केवल प्राकृतिक सौन्दर्य मात्र होता तो शायद ही कोई जाता। लोगों को जहां उनकी धार्मिक भावनाओं के साकार दर्शन इन पवित्र देवालयों में होते हैं, भले ही कितने ही ऊंचे शिखर और कितने ही दुर्गम मार्ग द्वारा उन्हें प्राप्त हों, श्रद्धा और भक्ति के सहारे अनन्त कठिनाइयों को झेलते आतुर भाव से भारत का यह धर्मप्राण जन-समुदाय दौड़ा जाएगा। हमारी इस सगुणोपासना की श्रेष्ठता गोस्वामी तुलसीदास जी ने केवल एक संक्षिप्त चौपाई में जिस प्रकार स्पष्ट की है उसका यह उल्लेख पर्याप्त होगा——

'फूले कमल सोह सर कैसे,
निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे।'

मैं सगुणोपासना और मन्दिरों की मूर्तियों को हिन्दू धर्म के विकास का एक बहुत बड़ा साधन मानता हूं। बदरीनाथ की मूर्ति को लीजिए। इस मूर्ति में 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के अनुसार दर्शन होते हैं। यह मूर्ति डेढ़ फुट ऊंचे श्याम संगमरमर की है। हम वैष्णवों को इस मूर्ति में भगवान विष्णु के दर्शन होते हैं। शैवों को शिव के। जैनियों को तीर्थंकर के और बौद्धों को बुद्ध के। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि कम से कम एक मूर्ति तो ऐसी है जिसमें भारत के विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों और सम्प्रदायों के लोगों को अपने-अपने इष्टदेव प्रतिभासित होते हैं। यह मूर्ति भारत की समन्वयकारी संस्कृति की प्रतीक बन गई है। किन्तु, इसका दूसरा पहलू भी है, वह झगड़े का है। यदि कोई बौद्ध, कोई जैन अथवा अन्य कोई मतावलम्बी मन्दिर पर अपने अधिकार का दुराग्रह या दावा करे, तो यह एक अनिष्टकारक बात होगी।

महर्षि वेदव्यास और आद्य शंकराचार्य के कार्यों, उनके निवास-स्थानों का हमें आज भी यहां प्रत्यक्ष दर्शन होता है। वेदव्यास ने यहीं महाभारत की रचना की। इस सम्बन्ध में महाभारत का पहला श्लोक इस प्रकार है——

'नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवी सरस्वती चैव ततोजयमुदीर्यते।।'

यहीं निकट जो व्यास गुफा है, उसके समीप नर और नारायण पर्वत तथा सरस्वती का पावन प्रवाह है। गुफा से तीनों के सुन्दर दर्शन होते हैं। इस श्लोक में एक ओर व्यास जी ने नर-नारायण और सरस्वती की वंदना की और दूसरी ओर नर-नारायण पर्वत तथा सरस्वती नदी की भी।

ज्योतिर्मठ में हमने शहतूत का वह वृक्ष भी देखा, जिसके नीचे शकराचार्य को ज्योति के दर्शन हुए और उनके निकट ही उनकी वह शकर गुफा है जहा वे निवास करते थे। शहतूत के इसी वृक्ष के नीचे जगत गुरु ने तत्वज्ञान के महान् ग्रन्थ 'शाकर भाष्य' की रचना की थी। अब यह वृक्ष विशाल हो गया है। हमे बताया गया कि इसकी जड़ें दो मील आगे विष्णुप्रयाग तक गई है। सेब, नासपाती, अखरोट आदि फलो से लदे पौधो का ज्योतिर्मठ बगीचा, सस्कृत का विद्यालय आदि अनेक दर्शनीय चीजें आज भी जगतगुरु शकराचार्य के पवित्र प्रयत्नो और सकल्पो को दुहरा रही है जिनके दर्शन मात्र से भारतीय जन प्रेरणा पाता है।

हमारे ऋषि-मुनियो ने इन दूर तपोवनो में एकान्त साधना द्वारा भी सदैव भारत की जो एकता सिद्धि तथा हितचिन्तना की, वह उनके कार्यों से सिद्ध हो जाती है। उनकी इस भारतीय एकता की भावना की पुष्टि मे यहा एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारत के उत्तर में स्थित इन दो देवमन्दिरो, केदारनाथ और बदरीनाथ, के पुजारी (जिन्हे रावल कहा जाता है) उत्तर के न होकर क्रमश कर्नाटक से और केरल से आते हैं। केदारनाथ के रावल वीर-शैव सम्प्रदाय के होते है और बदरीनाथ के नम्बूदरी ब्राह्मण कुल से आते है। इस नियम में अपवाद नही होता

हम यद्यपि इस यात्रा के लिए प्रधानतया धार्मिक भावना से गए थे, तथापि जब तक आधिभौतिक शरीर है, तब तक मानव किस प्रकार रहता है और क्या-क्या सहता है, इससे भी आखें नही मूदी जा सकती। अत आध्यात्मिक प्रेरणा से इन सात सप्ताहो का जीवन ओत-प्रोत रहने पर भी हम यहा की गरीबी को तथा अकर्मण्यता को देख दुखी हुए बिना न रह सके। यो तो सारा भारत देश ही गरीब है, न लोगो को भरपेट भोजन मिलता है, न पहनने को पूरे वस्त्र और रहने को यथेष्ट आच्छादन। जहा प्रकृति ने अटूट धन बरसाया है, वहा मानव के कुछ न करने के कारण गरीबी और भी उत्कट स्थिति में है। यहा इतना पानी है, जितना अन्यत्र कम होगा। पर सिचाई में उसका कम से कम उपयोग होता है। इस सिचाई से यहा केवल अधिक अन्न ही नही उपजाया जा सकता, अपितु फलो के बडे-बडे उद्यान लगाए जा सकते हैं। खनिज पदार्थों की खोज कर उन खनिज पदार्थों को पर्वतराज के पेट से निकाल जन-उपयोग में लाया जा सकता है। जगली वृक्षो और बांस के कारखाने चलाए जा सकते है। भेडो की नस्ल सुधार कर उनसे ऊन की उत्पत्ति बढा ऊन के गृह उद्योग जारी किए जा सकते है। और भी न जाने क्या-क्या किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रदेश जितनी आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करता है उतना ही आधिभौतिक दृष्टि से भी सम्पन्न बनाया जा सकता है। परन्तु, ये कार्य तो दूर रहे, अभी तक यात्रा की सुविधाओ तक की व्यवस्था भी नही हुई है। जिस उत्तराखण्ड में हजारो और लाखो यात्री पैदल जाते है, वहा के रास्तों को ठीक करना, वहा के ठहरने के स्थानो को दुरुस्त करना आवश्यक है। वहा दो-दो रुपये सेर आटा मिले यह अक्षम्य है। यात्रा यदि चलती है, तो इसका श्रेय काली कमली वाले पचायत क्षेत्र को है, यद्यपि काली कमली वालो की चट्टियो की धर्मशालाए उनके लिए कलक की वस्तुएं है। सरकार और जो दानी सज्जन काली कमली वालों को दान देते है उन सब का ही ध्यान इन सुधारो की ओर जाना अत्यन्त आवश्यक है। सरकार को सडकें सुधरवानी चाहिएं, सस्ती खाद्य-सामग्री की दुकानें खुलवानी चाहिए और काली कमली वालो की चट्टियो की धर्मशालाए सुधरवाने के लिए अनुदान देने चाहिए। जो सज्जन काली कमली वालो को सैकडो और हजारो रुपया देकर मुफ्तखोरो को खाने के लिए भण्डारे कराते है, उन्हें अपनी दान-प्रणाली में सुधार कर उस दान के धन को इन धर्मशालाओ आदि के सुधार में व्यय करना चाहिए। सरकार ऐसे कामो के लिए अनुदान तब देती है जब जनता भी उस अनुदान के साथ अपना हिस्सा मिला दे। यदि सरकार और जनता दोनो का इन सुधारो में सहयोग हो जाए तो ये काम अविलम्ब किए जा सकते है।

सरकार ने स्वास्थ्य की ओर कुछ ध्यान अवश्य दिया है। हैजे का टीका यात्रियो के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। शौचालयों और मूत्रालयो की भी व्यवस्था हुई है। इसका फल भी निकला है। जो हैजा इन क्षेत्रो में यात्रा के समय फैल जाता था, वह अब सर्वथा समाप्त हो गया है। इसके लिए सरकार धन्यवाद की पात्र है। पहले जहा तक मोटरें और मोटर बसें जाती थी, उसकी अपेक्षा अब आगे जाने लगी है। परन्तु, मेरी दृष्टि से मोटरो का यह यातायात इस यात्रा के लिए वरदान न होकर अभिशाप हुआ है। इस यातायात से इन तीर्थों की महिमा घटी है, मोटर और मोटर बसो में बैठे हुए यात्रियो का ध्यान प्राकृतिक शोभा की ओर नही जा पाता और मोटरो के इस यातायात से डण्डी, कण्डी चलाने वाले और सामान ढोने वाले मजदूरो की आजीविका के मार्ग बन्द हो गए हैं। चट्टिया बन्द हो गई है, जहा छोटे-छोटे दूकानदार अपनी रोजी कमा लेते थे। अत मै एक बडी साहसपूर्ण घोषणा करूगा। मेरी राय में लक्ष्मण झूले के

(शेष पृष्ठ १८ पर)

गगोत्री के मार्ग मे गगा का दृश्य



जीवन का 'शेष'

अमृता प्रीतम

आज प्रातः चाय का प्याला पीकर मैंने जब अखबार खोला तो पहले पृष्ठ पर मिस्टर फैनर ब्राकवे की तस्वीर थी, जिसने हाउस ग्राफ कामन्स में नसली भेदभाव को मिटाने के लिए एक बिल पेश किया था।

नसली भेदभाव भी एक अद्भुत समस्या है। मानव को खुली आंखों से देखा जाए तो कितना आधारहीन दिखाई देता है, कितना नीरस, परन्तु बन्द आंखो से मानव ने ही इस उलझन में इतनी पक्की गांठें लगा दी हैं कि सदियां गुजर गईं, इसकी कोई गिरह भी खुलने में नहीं आती। इस उलझन को सुलझाते बुद्ध और ईसा के हाथ भी थक गए। "इक्को नूर" कहते हुए गुरु नानक ने सारी जिन्दगी लगा दी, गांधी ने इस उलझन को खोलने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी, और दुनिया भर के लेखक अपनी लेखनियों का सारा बल इसी के लिए लगा गए—पर आज भी यह गिरह वैसी ही सख्त है कि किसी एम० पी० को हाउस ग्राफ कामन्स में इसके लिए बिल पेश करना पड़ता है।

फिर मेरा ध्यान अखबार के सामने के पृष्ठ पर जा पड़ा। पृष्ठ के तीसरे कालम में लिखा हुआ था—"श्रीमती चेतना कुमारी की मौत"। मैं उन्हें जानती थी इससे मैंने जल्दी-जल्दी वह खबर पढ़ी, "अहमदाबाद के मशहूर सेठ श्री देवीदत्त की पत्नी श्रीमती चेतना कुमारी कल रात को दो बजे के लगभग स्वर्ग सिधार गईं। श्रीमती चेतना को देर से रक्तचाप का रोग था। परसों जब उनकी हालत खराब हो गई, तो उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा यह प्रकट की कि उन्हें बम्बई के सी-ग्रीन होटल में ले जाया जाए, कमरा नम्बर ६ में। कल सवेरे श्रीमती चेतना को कार में अहमदाबाद से बम्बई लाया गया। हालांकि बम्बई में उनकी अपनी कोठी थी, तो भी उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें सी-ग्रीन के कमरा नं० ६ में ठहराया गया। नगर के अच्छे से अच्छे डाक्टर उनकी सेवा में रहे पर रात के दो बजे श्रीमती चेतना का देहावसान हो गया।" इसके आगे अखबार वालों ने लिखा था—"श्रीमती चेतना ने सामाजिक और राजनीतिक कामों में सदा महत्वपूर्ण भाग लिया। कांग्रेस के संग्राम के समय कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता उनसे सहायता लिया करते थे। अहमदाबाद में मजदूरों की जो सब से बड़ी हड़ताल हुई थी, उस समय महात्मा गांधी ने श्रीमती चेतना की सहायता से मिल मालिकों द्वारा मजदूरों की शर्तें मनवाई थीं और हड़ताल खुलवा दी थी। गांधी जी के सुझाव और मजदूरों की खुशी के लिए उस दिन से एक मिल का नाम रखा गया था 'चेतना क्लाथ मिल'। राष्ट्रीय कार्यों के लिए बड़ी-बड़ी रकमें देकर श्रीमती चेतना ने बड़ा नाम कमा लिया था।"

"चेतना तू चली गई।" मेरी आंखें भर आईं, और मन जैसे जोर-जोर से उसके साथ बातें करने लगा। "जाने तूने जिन्दगी में क्या कुछ कमाया और क्या कुछ गवाया। परन्तु जो कुछ शेष बचा, उसे केवल तू ही जानती थी, और कोई नहीं जानता। ये बेचारे अखबार वाले ...!"

गत अप्रैल का महीना मेरे सामने आ खड़ा हुआ। मैं १२ दिन की छुट्टी ले कर बम्बई गई थी। कोई काम न था, चाहती थी बारह दिन अपने साथ और सागर के साथ बिता दूं। इसलिए अपने वहां जाने की खबर मैंने किसी को नहीं दी थी। सागर के तट पर सी-ग्रीन में कमरा नं० ६ मैंने लिया था। कमरे के हर कोने में बैठे हुए मुझे सागर दिखाई देता था। मेरे जाने के पांचवें दिन की बात है। एक रात होटल के डाईनिंग रूम में खाना खाने के बाद अपने कमरे में जाने के लिए जब मैं लिफ्ट के पास आई, होटल के मैनेजर ने आकर मुझे कहा—"बाहर ड्राइंग रूम में एक औरत आपसे मिलना चाहती है।"

"मुझे?"—हैरानी थी—"मेरे आने की सूचना किसी को न थी, मुझे मिलने कोई किस तरह आ सकता है?" पर मैं ड्राइंग रूम की ओर गई। एक अच्छी रूपवती नारी वहां बैठी हुई थी। मुझे लगा जैसे मैंने पहले इसे कहीं नहीं देखा।

"आपका नाम अमृता प्रीतम है?" उसने पूछा।

"जी।"

एक गहरे स्वार्थ के कारण यहां बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। उम्र में वह मुझ से बड़ी थी, उसके चेहरे पर बड़प्पन का कुछ ऐसा प्रभाव था कि उसका आदर करने को हर किसी का जी करता था। मैंने कहा—"आइए—मेरे कमरे में आइए।"

मेरा कमरा दूसरी मंजिल पर था। जब मैंने उनके लिए कुर्सी आगे सरकाई तो उन्होंने कहा—"है तो यह मेरी बड़ी खुदगर्जी। आपकी जगह कोई और होता तो मैं कुछ न कहती, चुपचाप वापस लौट जाती। पर अपने स्वार्थ की बात आपसे कहना मुझे कठिन प्रतीत नहीं हुआ।"

"आज्ञा कीजिए।"

"मैं अहमदाबाद रहती हूं। जब सब ओर से मेरा मन उदास हो जाता है, तो मैं दो एक दिन के लिए यहां आ जाती हूं। यहां बम्बई में मेरी अपनी कोठी है, पर वहां भी मेरा मन नहीं लगता। हर दो चार महीनों के बाद मैं यहां आ जाती हूं, इसी कमरे में ठहरती हूं। ६ नम्बर में। तब अपना आप संभल जाता है। दो दिन रहकर मैं वापस चली जाती हूं। आने से पूर्व होटल वालों को तार द्वारा सूचना भेज देती हूं, वे मेरे लिए यह कमरा खाली रख लेते हैं। इस बार न जाने क्या हुआ, इन्हें मेरा तार नहीं मिला। जब मैं यहां पहुंची तो पता लगा कि कमरा खाली नहीं है। बड़ी परेशान थी, होटल के रजिस्टर में आपका नाम पढ़ा तो नाम कुछ जाना-पहचाना प्रतीत हुआ। मैं सोचने

लगी—तब मुझे याद आया कि हाल ही में आपका उपन्यास 'अश्रु' मैंने पढ़ा था। मुझे विश्वास हो गया जो हृदय अश्रु की पीडा को पहचान सकता है, वह मेरी पीडा को भी पहचान लेगा—"

"बडी मामूली सी बात है, आप चाहती हैं तो मैं कमरा बदल लूंगी। मुझे इस में कोई आपत्ति नहीं है। मैं अभी मैनेजर से पता करती हूं, कई कमरे खाली होंगे।"

मैंने घंटी बजाई, बैरा जाकर मैनेजर को बुला लाया।

"आप इसी खास कमरे में रहना चाहती हैं और मुझे कमरा बदलने में कोई आपत्ति नहीं है।" मैंने कहा।

"जी हां, आप हमेशा इसी कमरे में ठहरती हैं। इस बार हमें इनका तार नहीं मिला, आपसे भी हम कुछ नहीं कह सकते थे, तब इन्होंने कहा कि स्वयं आपसे अनुरोध करेंगी।"

"कोई भी कमरा हो—इसी तरह साफ होना चाहिए। बस, एक ही बात जरूरी है कि वह इसी तरह समुद्र की ओर हो।" मैंने कहा, और साथ ही कहा—"समुद्र की तरफ न हो तो भी कोई बात नहीं। इन्हें यह कमरा दे दीजिए।"

"पांचवी मंजिल पर इसी तरह का एक कमरा है, २५ नम्बर का बल्कि इससे भी सुन्दर, इसी तरह समुद्र की ओर। मैं बैरे को भेजता हूं, आपका सामान ऊपर ले जाए।"

"क्षमा कीजिएगा। आपको इतनी तकलीफ दे रही हूं।"—उस नारी का मुख भावों के उद्रेक से और भी कोमल हो गया और वह पहले से भी अधिक सुन्दर लगने लगी।

"पांचवीं मंजिल पर—मैं बल्कि आकाश के और भी समीप हो जाऊंगी। समुद्र भी इसी तरह मेरी खिडकी के सामने बहता रहेगा।" मैं हंस दी और अलमारी में बिखरे पडे वस्त्र सूट केस में रखने लगी।

"अश्रु की कहानी आपने कैसे लिखी थी?" उसने पूछा।

"सारी पढ़ी थी आपने?"

"हां, और पढ़ कर मैं बहुत रोई थी।"

"लोग कहते हैं, अश्रु जैसे पात्र नारियों में होते ही नहीं। ऐसे दृढ़ व्रती और हृदय को इतना अर्पण करने वाले।"

"बिल्कुल गलत है, जिन्होंने कभी किसी को इस तरह हृदय अर्पण न किया हो, उन्हें ऐसे व्यक्ति कहां मिलेंगे, मुझे तो अपने हृदय में ही एक अश्रु बसी हुई प्रतीत हुई थी।"

"आपके दिल की दौलत भी कम नहीं मालूम पडती। मुझे पहली नजर में ही आपका मुख बडा अच्छा लगा था।"

"दृष्टि वाले ही मूल्य को बढ़ा देते हैं। वर्ना मुंह तो ऐसे कई धूल में मिल जाते हैं।"

"नहीं आपका मुख ही बडा अमीर है। जिन्दगी की दौलत से भरपूर।"

"जिन्दगी की दौलत—" उस नारी के चेहरे पर और चमक आई और वह तनिक रुक कर कहने लगी—"जिन्दगी में प्राप्त भी बहुत कुछ किया है, और खोया भी बहुत कुछ है। पर जो कुछ शेष बचा है—मैंने कभी किसी को इस 'शेष' की बात नहीं बताई। पर आज लगता है कि जैसे यह बात आपको बताए बिना मुझ से रहा न जाएगा।"

"मुझे एक और अश्रु मिल जाएगी।"

"यह बात किसी अश्रु लिखने वाली को ही बताई जा सकती है।"

"आप अपना कमरा ठीक कर लें। मैं भी अपने नए कमरे की देखभाल कर आऊं।"

"फिर आप मेरे कमरे में आ जाइएगा। मैं ही आ जाती, परन्तु वह बात इसी कमरे में बताने योग्य है।"

और जब मैं कोई आध घण्टे बाद उनके कमरे में आई, तो उन्होंने कमरा ठीक से सजा लिया था, कॉफी मंगाई गई। कमरा भीतर से बन्द करके समुद्र के तट की ओर बढ़े हुए बरामदे में कुरसियां बिछा ली गईं। गुलाब के फूलों का एक बडा सुन्दर गुच्छा मेज पर रखा हुआ था।

"मेरा नाम चेतना है।"

"चेतना!"

"कानपुर में पैदा हुई थी और अहमदाबाद में ब्याही गई। मिल वालों के घर बचपन गुजारा था, मिलवालों के घर जवानी गुजार दी।

"चांदी की चम्मच लेकर जन्म लेना शायद इसी को कहते हैं।" चेतना हंस दी और कहने लगी—"चम्मच चांदी की हो या सोने की, पर जब तक चम्मच में शहद की बूंद न हो, अन्तर भूखा ही रहेगा। मैं छोटी सी थी। मिल वाले बाप की कोठी के समीप एक तंग सा घर था। कांग्रेस के सत्याग्रह के समय उस घर का बाप जेलों में ही रहा और उस घर का बेटा एक साधारण से स्कूल में पढ़कर साधारण सी नौकरी करने लगा। युगराज उसका नाम था। मैं जब भी उसे देखती, मेरे अन्दर शहद सा भर आता था। पर हम मिल वालों के घरों में उन तंग घर वालों का जिक्र नहीं हो सकता था। जब मेरी शादी हो गई तो मुझे लगा कि जैसे चांदी की चम्मचें तो बहुत थीं, परन्तु जिन्दगी की कटोरी खाली थी। बडी अच्छी-अच्छी पुस्तकें मैंने पढ़ीं, बडे अच्छे व्यक्तियों से मिली, मन की कमी को पूरा करने के लिए जहां तक हो सका, परिस्थितियों की सभी तरह की कमियों को पूरा करती रही।

"एक बार मेरे पति की मिल में मजदूरों ने हडताल कर दी। मैंने अपनी पूरी हमदर्दी मजदूरों के फटे हुए पल्लू में डाल दी। मेरी हमदर्दी धरती पर बिखर जाती, क्योंकि उन गरीबों के पल्लू फटे हुए थे। भूख और बीमारी बढ़ती जा रही थी। उनकी प्रतिज्ञा टूट रही थी, मैंने गांधी जी के बलवान हाथों का सहारा लिया और उन्हें निमन्त्रित किया। कुछ मांगें मनवाई गईं और हडताल खुल गई। इसी प्रकार और भी अवसर आए। जो भी सुख मैं किसी को बांट सकती थी बांटती रही, और उसकी खुशी अपने अन्दर भरती रही। पर पता नहीं कैसा गढ़ा था मेरे मन में, किसी धन से भी कुछ न बनता था।

"कांग्रेस के एक उत्सव में मैंने युगराज को शेर पढ़ते सुना। पता नहीं उसके अस्तित्व में क्या बात थी कि एक सुगन्ध-सी उठ कर मेरी ओर आई और मेरे मन के शून्य में भरने लगी। मैंने कुछ मिनट उससे बातें कीं। वह मेरे पास खडा था, उसकी सांस मुझ से झेली न गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसकी सांस की सुगन्ध नदी के प्रवाह-सी बह रही हो, जिसके पानी में मेरे पांव जैसे उखड रहे हों, मैंने अपने आपको सम्भाला और घर आ गई।

"दूसरे दिन मैंने कई बार टेलीफोन का डायल घुमाया और कितनी ही बार अपना हाथ रोक लिया। पर एक बार हाथ न रुका और मैंने कांग्रेस के दफ्तर फोन करके युगराज को बुला लिया। वह जब मेरे फोन के जवाब में बोला—"

चेतना एकाएक चुप हो गई। बडी देर वह चुप रही। मैंने केवल उसका हाथ अपने हाथ में पकड लिया। पर उसकी खामोशी को न तोडा।

फिर चेतना ने अपना मौन स्वय ही भग किया और कहने लगी—"कितनी अजीब बात है, जब उसकी आवाज आई, मुझे प्रतीत हुआ जैसे उसकी सास मुझे स्पर्श कर रही है। मै चौक उठी। भला फोन में से किसी की सास कैसे आ सकती है। फोन मे सास की सुगन्ध किस तरह आ सकती है!—युगराज ने बताया कि उसे दिल्ली वापस जाना है। सिर्फ सोच रहा है कि एक दिन के लिए बम्बई जाए या न जाए। वहा उसका कुछ काम रुका हुआ था। बम्बई में हमारी कोठी बन रही थी और मै अगले दिन कोठी की जाच करने के लिए बम्बई आने वाली थी। मैने उससे कहा—"यदि बम्बई में मै आप का काम करवा सकू तो मुझे बड़ी खुशी होगी। अगले दिन वह बम्बई मेरे साथ आया। पहले मै सदा अपनी एक सहेली के घर ठहरती थी। पर उस दिन मुझ से उसके घर न जाया गया। मै यही ठहरी। इसी कमरे में।"

चेतना ने कहानी की गाठ खोल दी थी, अब उसने सुर्खरू होकर एक लम्बी सास ली और कहा—"यही कमरा था। खाना खाने के बाद मैने उससे कहा—"यदि आप को नीद न आई हो तो आप कुछ देर मेरे कमरे में ठहर कर मुझे शेर सुनाए।" इसी तरह इसी बरामदे में उसने कुर्सिया बिछाई। रात के दो बजे तक वह मेरे पास बैठा रहा। मेज पर इसी तरह गुलाब के फूल रखे हुए थे। शेर सुनाता हुआ वह पहली खत्म हो रही सिगरेट के साथ दूसरी सिगरेट सुलगा लेता था—

"अमृता!"

"हा चेतना—"

"कोई आपत्ति न हो तो—"

"क्या?"

"मै भी एक सिगरेट सुलगा लू।"

"सिगरेट?"

"मै सिगरेट नही पीती। पर जब कभी इस कमरे में ठहरती हू, मुझे सदा जलती सिगरेट हाथ में रखना अच्छा प्रतीत होता है। उसी तरह ये गुलाब के फूल मिल सकें तो फूल जोड लेती हू। उसी तरह जलती सिगरेट हाथ में पकड लेती हू। फिर मुझे उसका अस्तित्व और भी अधिक भासता है।"

"भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है।"

चेतना ने एक सिगरेट सुलगाई पर फिर मुख से नहीं लगाई। अपनी उगलियों में जलती सिगरेट थाम वह कहने लगी—"उसके सासो में से एक सुगन्ध उठती रही, और मुझे यह प्रतीत होता रहा कि अपने मन के शून्य को भरने के लिए जो कुछ पाना था, मैने पा लिया है। जिन्दगी के सवाल को सभी हल करते है, मैने भी हल किया है। इस सवाल में बहुत कुछ जमा होता रहा, बहुत कुछ घटता रहा, पर आज जब उस घटना को बीते बीस वर्ष हो गए है और मै अपनी जिन्दगी पर निगाह डालने बैठती हू, तो लगता है, जो कुछ इस प्रश्न का शेष है, वह मात्र उसकी सासो की सुगन्ध है।"

"चेतना!" मेरे मन में चेतना के लिए बहुत कुछ उछला, पर मै एक बार उसका नाम लेने के सिवा कुछ न कह सकी। नही कह सकती मेरा कितना मन उस एक शब्द में भर गया था। चेतना ने हाथ में सुलग रही सिगरेट की तरह सुलग कर कहा—"कुछ महीनो के अन्तर के बाद मै इसी कमरे में आ जाती हू। न किसी उम्र ने अन्तर डाला, न किसी और वस्तु ने। इस कमरे में मुझे सारी रात उसकी सासो की सुगन्ध आती रहती है।"

फिर जैसे चेतना को मेरे अस्तित्व की भी सुध न रही। गुलाब के फूलो की सुगन्ध भी शायद दूर हट गई, चेतना के हाथ में सुलग रहे सिगरेट का धुआ भी शायद दूर हट गया। चेतना की झूमती आखो में जो सरूर भर गया, वह उसकी कल्पना की लपेट में से उठती सुगन्ध का जादू था, जिसे मैने अपनी आखो से देखा।

मै कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई और एक बार धीरे से पुकारा—"चेतना!" चेतना ने मेरी ओर देखा, पर उसकी आखो में मेरे लिए पहचान न थी। उसके होठो के अन्दाज से मुझे लगा जैसे वह कह रही थी—"युगराज!"

मैने धीरे से कमरे का द्वार खोला, और बाहर आ गई।

* * *

यह अप्रैल की बात है। आज मई की २२ तारीख है। मैने अखबार देखा है। उसमें लिखा है—"श्रीमती चेतना की अन्तिम इच्छा—सी ग्रीन होटल, कमरा न० ६, रात, दो बजे—"

चेतना की आवाज मेरे कानो में गूजने लगी—"जिन्दगी का सवाल सभी हल करते है, मैने भी हल किया है, इस सवाल में बहुत कुछ जमा होता रहा, बहुत कुछ घटता रहा। पर आज जब बीस वर्ष बीत गए है और मै जिन्दगी का सवाल हल करने बैठी हू, तो लगता है इस प्रश्न का जो कुछ शेष है, वह मात्र उसकी सासो की सुगन्ध है।

अब हवा का एक झोका आया है और उसने अखबार का पहला पृष्ठ फिर ऊपर ला फेंका है। सामने मिस्टर फैनर ब्राकवे का चित्र है जिसने हाउस आफ कामन्स में नसली भेदभाव को मिटाने के लिए बिल पेश किया है और चेतना की मृत्यु की खबर से मेरी आखो में भरे हुए अश्रु कह रहे है

वर्ग भेदभाव—हृदयो के कौन से हाउस में कौन कोई बिल पेश करेगा। एक चेतना नही, हजारो चेतनाए जिन्दगी के प्रश्न हल कर रही है। कुछ जमा होता है, कुछ बाकी होता है, और जब सारी आयु लगा कर वे इस प्रश्न का शेष निकालती है, तो एक आग उनकी सासो में सुलगती बाकी रह जाती है।

●

उत्तराखण्ड की यात्रा—(पृष्ठ १५ का शेषाश)

आगे मोटरो का यातायात सर्वथा बन्द कर देना चाहिए। यदि मोटरो की सडकें बनाने में धन खर्च हुआ है, तो इसके लिए पश्चाताप की आवश्यकता नही, इससे पैदल यात्रा सुगम हो जाएगी।

यहा के निवासियों की जिस एक बात ने हमें सबसे अधिक प्रभावित किया, वह थी उनकी ईमानदारी। इन गरीबो को हमने जितना ईमानदार पाया, वैसे ईमानदार कम लोग होगे। जो लोग यह कहते है कि वे चोरी आदि जुर्म गरीबी का परिणाम है, उन्हें उत्तराखण्ड के इस अत्यधिक गरीब और अमेरिका के अत्यधिक अमीर क्षेत्रो का निरीक्षण करना चाहिए। उत्तराखण्ड के गरीबो में जुर्म करने की न्यूनतम प्रवृत्ति है। दोनो स्थानो के जुर्म करने वालो के आकडो की तुलना बहुत शिक्षाप्रद सिद्ध होगी।

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

बच्चन

भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी के कवियों में जिसे मैं सबसे अधिक निकटस्थ पाता हूं वह बच्चन है और इसलिए बच्चन का साहित्य में अभी तक जो मूल्यांकन हुआ है, उससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। अपने समकालीन की कविताओं में, जो मुझे आप ही आप कण्ठस्थ हो गई हैं, जिन्हें मैं भावना के क्षणों में प्रायः अनायास ही गुनगुनाने लगता हूं, जिन्हें बेर-बेर पढ़ने पर एक नया रस मिलता है, अधिकांश कविताएं बच्चन की हैं। यह एक ऐसा सत्य है जिसे सुनकर हिन्दी के अधिकांश आलोचक हँस देंगे और उन्हें मेरी परख अथवा रुचि पर सन्देह होने लगेगा। पर इस सत्य को स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं। कविता को कला होने के नाते मैं केवल भावनात्मक संवेदना मानता हूं। दर्शन और ज्ञान से सर्वथा पृथक। बच्चन, मेरी दृष्टि में महान कलाकार हैं। उसकी कला निष्कपट और निश्छल है। उसकी कला में बौद्धिक सजावट नहीं है और न उसमें ज्ञान और दर्शन की कोई आरोपित स्थापना है। उसमें भावना का स्वाभाविक आवेग है और इसीलिए वह पढ़ने वाले को तन्मय कर लेती है।

वर्तमान हिन्दी कविता को श्रेष्ठतम विश्व साहित्य के समकक्ष लाने में जिन कवियों का योगदान हुआ है, उनमें बच्चन का एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि हिन्दी के आलोचकों की कसौटी पर बच्चन बहुत खरा नहीं उतरता। संस्कृत साहित्य की प्राचीन मान्यताओं और सिद्धांतों को ध्रुव सत्य मान लेने वाले हिन्दी के प्राध्यापक या विश्व की नवीन विकृतियों द्वारा जनित वादों के अनुयायी, जिन्होंने हिन्दी साहित्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली है—इस प्रकार के आलोचकों की कसौटी पर निश्चय-रूप से बच्चन की कविता उपेक्षा की चीज है। इस प्रकार का आलोचक अपनी विशिष्ट धारणा और मान्यता की कुण्ठा को लेकर आगे बढ़ता है। कला का मूल्यांकन करने के समय वह संवेदना-तत्व से दूर बहक कर कला में अपनी मान्यताओं को ढूंढ़ने लगता है।

बच्चन की कविता अलंकार-रहित है। कहीं भी उसमें शब्दों के साथ खिलवाड़ नहीं किया गया है। वह विशुद्ध रूप से भावना की अभिव्यक्ति है और उसमें एक मोहक संगीत है। मैं बच्चन को इस युग का सबसे अधिक सफल और प्रभावशाली गीतकार मानता हूं। बच्चन के कवित्व में भावना का आवेग कहीं-कहीं उद्दाम हो उठता है। वह इसलिए कि बच्चन भौतिकता का कवि है। कुछ लोगों का कहना है कि बच्चन में उदात्त भावना की कमी है या उसकी कविता अधिकांश में वासना की प्रतीक है। बच्चन की कविता शरीर-तत्व से सम्बद्ध है—इससे मैं इनकार नहीं कर सकता और मेरा अपना मत तो यह है कि शरीर-तत्व को कला छोड़ ही नहीं सकती। जो शरीर-तत्व से ऊपर वाली चीज लिखी जाती है, वह धर्म, दर्शन अथवा उपदेश भले ही हो, उसे कला कहने में मुझे संकोच होगा। आज का बुद्धिवाद झूठा शब्दजाल रचकर असली साहित्य और कला का घातक हो रहा है, मुझे तो कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है। जितनी कला है, वह शरीर-तत्व को छोड़ ही नहीं सकती—आत्मा-तत्व तो अवश्य है, वह शरीर-तत्व में ही स्थित है।

बच्चन जहां है, वहां महान है। वैसे पार्थिवता और भौतिकता के मोह में फँसे हुए बच्चन पर लोग व्यंग कर सकते हैं, उसकी भौतिक सफलता पर ईर्ष्या कर उस पर प्रहार कर सकते हैं, लेकिन इस प्रकार के व्यंगों और प्रहारों का उस पर कोई प्रभाव नहीं। बच्चन की कुछ कविताएं अमर साहित्य की चीजें हैं।

यह सत्य है कि बच्चन के पास विविधता नहीं है, उसकी कला का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत नहीं है। कुछ इने-गिने गीत हैं उसके पास, लेकिन यह इने-गिने गीत युगों-युगों तक जीवित रहने की क्षमता रखते हैं। किस साहित्यकार का कितना साहित्य अमर हो सका है, विशेषतः गीतकारों का? जयदेव के कुछ इने-गिने पद, विद्यापति के कुछ इने-गिने पद, मीरा के कुछ इने-गिने गीत। अगर बच्चन अपने उन गीतों के अलावा और कुछ न लिखे, तो भी बच्चन साहित्य में अपना अमर स्थान बना चुका है।

× × ×

बच्चन को प्रथम बार मैंने देखा एक कहानीकार के रूप में। सन् १९३२ या ३३ की बात है। कवि की हैसियत से मैं हिन्दी साहित्य में अपने को स्थापित कर चुका था, अपने कण्ठ के बल पर। कवि सम्मेलनों में उन दिनों मेरा बड़ा ऊंचा स्थान माना जाता था। प्रयाग विश्वविद्यालय में कहानी प्रतियोगिता हुई थी और बच्चन ने अपनी एक कहानी सुनाई थी वहां। उस समय तक मैंने कहानियां लिखना भी आरम्भ कर दिया था। और उस कहानी प्रतियोगिता में मैं भी एक निर्णायक था। बच्चन की वह कहानी मुझे पसन्द आई थी—जहां तक मेरा खयाल है बच्चन को उस कहानी पर प्रथम पुरस्कार मिला था।

मँझोले कद का एक दुबला-सा नवयुवक, कुछ अपने में खोया-सा, नाप-तोल कर बात करने वाला, चेहरा सुन्दर—कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा था मेरे ऊपर उस समय बच्चन का। उसके बाद मैं बच्चन को एक प्रकार से भूल ही गया। मन में यही सोचा कि यह युवक भविष्य में एक बड़ा उपन्यासकार अथवा कहानीकार होगा।

मनुष्यों की प्रतिभा को पहचानने में मेरी वह सबसे बड़ी गलती थी—इस बात को मैंने अनुभव किया करीब दो साल बाद, जब मैंने किसी गोष्ठी में बच्चन की मधुशाला की कविताएं सुनीं। मुझे अपने कण्ठ का गर्व था, लेकिन बच्चन का कण्ठ मेरे कण्ठ से अधिक सुरीला था। उस दिन कवि-सम्मेलन की भाषा में मेरा रंग फीका रहा। बच्चन के कण्ठ को मैंने स्वीकार किया, बच्चन की कविता को स्वीकार करने से मेरे अन्दर वाली ईर्ष्या ने इनकार कर दिया। और अब जब बात उठ ही खड़ी हुई है, तो

में यह भी कह दूं कि वह ईर्ष्या मुझ में तब तक रही, जब तक मैं अपने को कवि की हैसियत से महत्व देता रहा।

बच्चन मुझ से उम्र में प्राय चार-पाच वर्ष छोटे हैं और इस अवस्था में भेद को मैं आज तक नहीं भूल सका हूं। मैं बच्चन के सम्पर्क से अधिक नही आ सका, एक तरह की दूरी रही है, हम लोगो में। इधर धीरे-धीरे वह दूरी कम होती गई है और मैं बच्चन को काफी निकट से देख सकता हूं।

बच्चन का व्यक्तित्व निश्छल और निष्कपट है। बच्चन क्या सोचता है, बच्चन की भावना क्या है—यह उसके मुख पर स्पष्ट है। बच्चन के पास कोई आवरण नही है—स्वाभाविक अथवा कृत्रिम, और इसीलिए बच्चन साधारणत लोगो में प्रिय नही है। वह सफल सामाजिक प्राणी नही बन सका। हरेक वातावरण के अनुकूल वह अपने को नही बना सका। लेकिन इसके यह अर्थ नही कि बच्चन में शिष्टता का अभाव है। बच्चन में एक तरह का परिष्कार है जो अन्यत्र मुश्किल से देखने को मिलता है।

विश्वविद्यालय वाली शिक्षा में बच्चन हिन्दी के वर्तमान कवियो में सबसे अधिक आगे है। वह प्रयाग विश्वविद्यालय में अंग्रेजी का प्राध्यापक रहा है, इगलैंड जाकर उसने डाक्टरेट ली है। बहुत कम भारतीयो ने कैम्ब्रिज से यह डिग्री प्राप्त की है। अब बच्चन भारत सरकार में एक ऊंचे पद पर है। लेकिन इस सब से उसके अन्दर वाले कलाकार को कुछ बाधा ही मिली है—ऐसा मेरा मत है। बच्चन के अन्दर वाला उद्दाम और महान कलाकार परिस्थिति की कुण्ठा से जैसे कुछ हद तक दबा दिया गया है—स्वय शेक्सपीयर बनने की महत्वाकाक्षा को छोड़ कर वह शेक्सपीयर का अनुवाद करने लगा है। बच्चन की परिस्थितियो ने उसके आत्मविश्वास को मानो डिगा दिया है। उसके पास समय नही है कि सृजनात्मक परिश्रम करे और सृजन करे। लेकिन सृजन की प्रेरणा तो उसमें है ही। और इसलिए बच्चन ने इधर कुछ ऐसी कृतिया दी है, जो उसके अनुरूप नहीं है। इन कृतियो से केवल यह स्पष्ट होता है कि बच्चन सर्वथा सफल और समर्थ कलाकार है, जिस भी शैली को वह चाहे अपना सकता है, जिस भी विषय को वह चाहे निभा सकता है।

बहुत सम्भव है कि बच्चन का ठीक मूल्याकन मैं नहीं कर पा रहा। मुझ ऐसा लगता है कि बच्चन को समझने में मुझ से कही कोई गलती हो रही है। एक बात मैं कभी नहीं भूल सकता, बच्चन उदार है—बहुत अधिक उदार। शायद अपनी उदारता की भावना से बच्चन ने यह सब किया हो, पर न जाने क्यो मुझे यह सब अच्छा नही लगता। जैसा मैं पहले कह चुका हू, मेरे मत में हिन्दी-साहित्य को विश्व-साहित्य के समकक्ष लाने में मैं बच्चन का योगदान महत्वपूर्ण मानता हू और मुझे बच्चन से बहुत बड़ी आशाए है। सम्भवत इसीलिए बच्चन पर मुझे क्रोध होने लगता है और इस खीज में मैं उचित-अनुचित कह सकता हू।

या फिर यह भी हो सकता है कि बच्चन के अन्दर वाले कलाकार में एक तरह की थकावट-सी आ गई है। मैं पहले ही कह चुका हू कि कलाकार में दुनिया को देने के लिए अपना निजी बहुत कम होता है। बच्चन का जो निजी है वह बच्चन साहित्य को दे चुका है, और उसे मैं अमर समझता हू। गीत में सबसे बड़ा गुण यह है कि उसमें विशुद्ध भावना की अभिव्यक्ति है। भावना को विस्तार देती है कहानी और कहानी-तत्व के कौतूहल के साथ भावना मिल कर विविधता से भरे साहित्य का सृजन करती है।

मुझे कुछ ऐसा लगा कि बच्चन पाश्चात्य विचारो और दर्शन से बहुत प्रभावित है। भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रति मोह की उसमें न्यूनता सी रही है। सम्भवत इसीलिए परम्परागत महाकाव्य लिखने को उसे उसके अन्दर से प्रेरणा नही मिलती। लेकिन महान कलाकार नवीन परम्पराओ की स्थापना भी तो करता है, और बच्चन को मैं इतना सक्षम और समर्थ कलाकार मानता हू कि वह नवीन परम्पराओ की स्थापना करे।

× × ×

बच्चन कल्पना-जगत पर विश्वास नही करता—जो उसके सामने है उसी पर उसे आस्था है, विश्वास है। वह पूर्णरूप से पार्थिवता का कवि है—कही भी अपार्थिवता के दर्शन उसमें नही होते। सम्भवत इसका कारण यह भी हो कि बच्चन पर उर्दू संस्कृति का प्रभाव काफी अधिक है। उसकी कविता में शरीर-तत्व की अपेक्षा आत्मा-तत्व अधिक है—यह सत्य है और इसका कारण बच्चन पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव है। लेकिन आध्यात्मिकता और अपार्थिवता उसमें कही नही है।

बच्चन के इस गुण का प्रदर्शन बच्चन की इस कविता में सब से अधिक मिलता है

इस पार, प्रिये, मधु है, तुमहो, उस पार न जाने क्या होगा!
यह चाद उदित होकर नभ मे कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरा-लहरा यह शाखाए कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झाने वाली कलिया हँस कर कहती हैं मग्न रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से सदेश सुनाती यौवन का,
तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा।

(२)

जग मे रस की नदिया बहती, रसना दो बूदे पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झाकी नयनो के आगे आती है,
स्वर-तालमयी वीणा बजती, मिलती है बस झकार मुझे,
मेरे सुमनो की गध कही यह वायु उड़ा ले जाती है।
ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये, ये साधन भी छिन जाएगे,
तब मानव की चेतनता का आधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

(३)

प्याला है, पर पी पाएगे, है ज्ञात नही इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है असमर्थ बना कितना हमको!
कहनेवाले, पर, कहते है, हम कर्मों मे स्वाधीन सदा,
करनेवालो की परवशता है ज्ञात किसे, जितनी हमको?
कह तो सकते है, कहकर ही कुछ दिल हल्का कर लेते है,
उस पार अभागे मानव का अधिकार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

(४)

कुछ भी न किया था जब उसका, उसने पथ मे काटे बोए,
वे भार दिए धर कधो पर, जो रो-रोकर हमने ढोए,
महलो के स्वप्नो के भीतर जर्जर खडहर का सत्य भरा!
उर मे ऐसी हलचल भर दी, दो रात न हम सुख से सोए!

अब तो हम अपने जीवन भर उस क्रूर-कठिन को कोस चुके,
उस पार नियति का मानव से व्यवहार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

(५)

संसृति के जीवन में, सुभगे ! ऐसी भी घड़ियां आएंगी,
जब दिनकर की तमहर किरणें तम के अन्दर छिप जाएंगी,
जब निज प्रियतम का शव रजनी तम की चादर से ढक देगी,
तब रवि-शशि-पोषित यह पृथिवी कितने दिन खैर मनाएगी !
जब इस लंबे-चौड़े जग का अस्तित्व न रहने पाएगा,
तब तेरा-मेरा नन्हा-सा संसार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

(६)

ऐसा चिर पतझड़ आएगा, कोयल न कुहुक फिर पाएगी,
बुलबुल न अंधेरे में गा-गा जीवन की ज्योति जगाएगी,
अगणित मृदु-नव पल्लव के स्वर 'मर-मर' न सुने फिर जाएंगे
अलि-अवली कलि-दल पर गुंजन करने के हेतु न आएगी,
जब इतनी रसमय ध्वनियों का अवसान, प्रिये, हो जाएगा,
तब शुष्क हमारे कंठों का उद्गार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

(७)

सुन काग प्रबल का गुरु गर्जन निर्झरिणी भूलेगी नर्तन,
निर्झर भूलेगा निज 'टल-मल', सरिता, अपना 'कल-कल' गायन,
वह गायक-नायक सिन्धु कहीं, चुप हो छिप जाना चाहेगा !
मुंह खोल खड़े रह जाएंगे गन्धर्व, अप्सरा, किन्नरगण !
संगीत सजीव हुआ जिनमें जब मौन वही हो जाएंगे,
तब, प्राण, तुम्हारी तन्त्री का जड़ तार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

(८)

उतरे इन आंखों के आगे जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली सुकुमार लताओं के गहने,
दो दिन में खींची जाएगी ऊषा की साड़ी सिन्दूरी,
पट इन्द्रधनुष का सतरंगा पाएगा कितने दिन रहने !
जब मूर्तिमती सत्ताओं की शोभा-सुषमा लुट जाएगी,
तब कवि के कल्पित स्वप्नों का शृंगार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

(९)

दृग देख जहां तक पाते हैं, तम का सागर लहराता है,
फिर भी उस पार खड़ा कोई हम सबको खींच बुलाता है !
मैं आज चला, तुम आओगी कल, परसों, सब संगी-साथी,
दुनिया रोती-धोती रहती जिसको जाना है, जाता है ।
मेरा तो होता मन डगमग तट पर के ही हलकोरों से !
जब मैं एकाकी पहुंचूंगा मझधार, न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा !

बच्चन का अपना निजी दर्शन है—नियतिवाद का। लेकिन बच्चन का नियतिवाद कृष्ण के आशावाद से युक्त कर्मवाद का प्रतीक है—निराशावाद से बहुत दूर। अपने निकट से निकट प्रियजन के बिछोह की टीस को मिटाने का कितना सुन्दर प्रयत्न है

(१)

जो बीत गई सो बात गई !
जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया,
अम्बर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहां मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अम्बर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(२)

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उस पर नित्य निछावर तुम,
वह सूख गया तो सूख गया,
मधुवन की छाती को देखो,
सूखी कितनी इसकी कलियां,
मुर्झाईं कितनी वल्लरियां,
जो मुर्झाईं फिर कहां खिलीं,
पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(३)

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया,
मदिरालय का आंगन देखो,
कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,
जो गिरते हैं कब उठते हैं,
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(४)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन ले कर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं,
फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं, मधुप्याले हैं,
जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीने वाला है

जिसकी ममता घट-प्याला पर,
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

बच्चन में अपूर्व संगीत है—वह संगीत प्राणों के तार-तार हिला देता है। बच्चन का यह गीत जब मैं पढ़ता हूँ तब मुझे एक नया रस आता है। कितना महान कवित्व है बच्चन की इन पंक्तियों में, भावना का इतना मदिर सौष्ठव मैंने तो कहीं नहीं देखा है

(१)

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!
मेरे वर्ण-वर्ण विश्रृंखल,
चरण-चरण भरमाए,
गूंज गूंज कर मिटने वाले
मैंने गीत बनाए,
कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर,
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

(२)

जब-जब जग ने कर फैलाए,
मैंने कोष लुटाया,
रंक हुआ मैं निज निधि खोकर
जगती ने क्या पाया!
भेंट न जिसमें मैं कुछ खोऊँ
पर तुम सब कुछ पाओ,
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

(३)

सुन्दर और असुन्दर जग में
मैंने क्या न सराहा,
इतनी ममतामय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा,
देखूँ अब किसकी रुकती है
आ मुझपर अभिलाषा,
तुम रख लो, मेरा मान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

(४)

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी, कुछ रहता,
जीवन की अन्तिम घडियों में
भी तुम से यह कहता,
सुख की एक साँस पर होता
है अमरत्व निछावर,
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

इस स्थान पर मैं बच्चन का एक और गीत देने का लोभ संवरण नहीं कर सका जो उसी काल का लिखा हुआ है, जब पिछला गीत लिखा गया था। भावना वही है, लेकिन उस भावना का रूप कितना बदल गया है। संगीत की मोहिनी वही है, पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण कितना बदला हुआ। उर्दू शैली का प्रभाव इस गीत में पराकाष्ठा पर पहुँच कर यह स्पष्ट कर देता है कि हर शैली की अपनी निजी विशिष्टता है और सफलता है। बच्चन का यह गीत इसके पहले वाले गीत की ही भांति अमर साहित्य की निधि है

इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!

(१)

जमीन है न बोलती न आसमान बोलता,
जहान देख कर मुझे नहीं जबान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहाँ न अजनबी गिना गया,
कहाँ-कहाँ न फिर चुका दिमाग-दिल टटोलता,
कहाँ मनुष्य है कि जो उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!

(२)

तिमिर-समुद्र कर सकी न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी, विषाद याद से भरी,
न कूल भूमि का मिला, न कोर भोर की मिली,
न कट सकी, न घट सकी विरह-घिरी विभावरी,
कहाँ मनुष्य है जिसे कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे दुलार लो!
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!

(३)

उजाड़ से लगा चुका उमीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद की बसंत के बयार की,
मरुस्थली मरीचिका सुधामयी मुझे लगी
अंगार से लगा चुका उमीद मैं तुषार की,
कहाँ मनुष्य है जिसे न भूल शूल-सी गड़ी,
इसीलिए खड़ा रहा कि भूल तुम सुधार लो!
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार दो, दुलार कर सुधार लो!

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि बच्चन के गीतों पर मैं मुग्ध हूँ। एक छोटा सा गीत लेकिन अथाह भावना—अजस्र कवित्व।

(१)

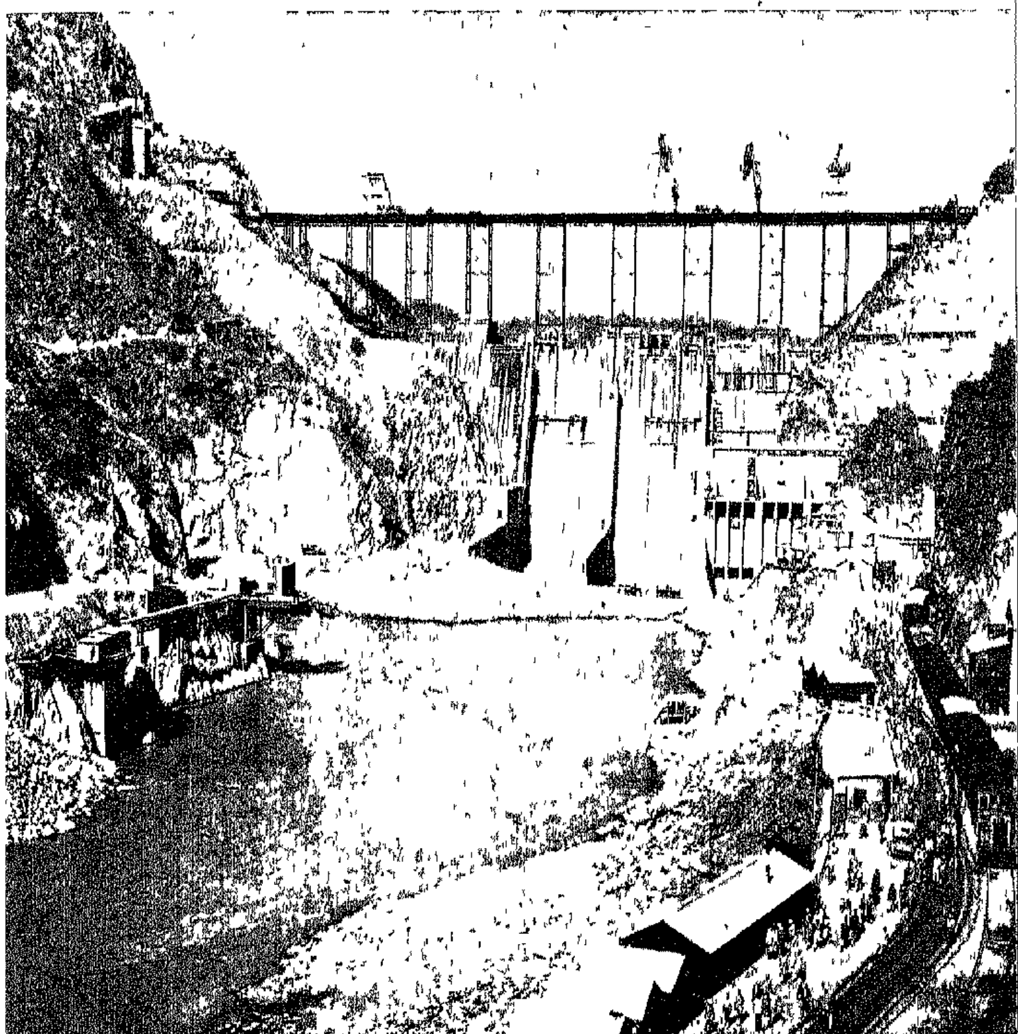
साथी, सो न, कर कुछ बात!
बोलते उडगण परस्पर,
तरु दलों में मन्द 'मरमर',
बात करतीं सरि-लहरियाँ कूल से जल-स्नात!
साथी, सो न, कर कुछ बात!

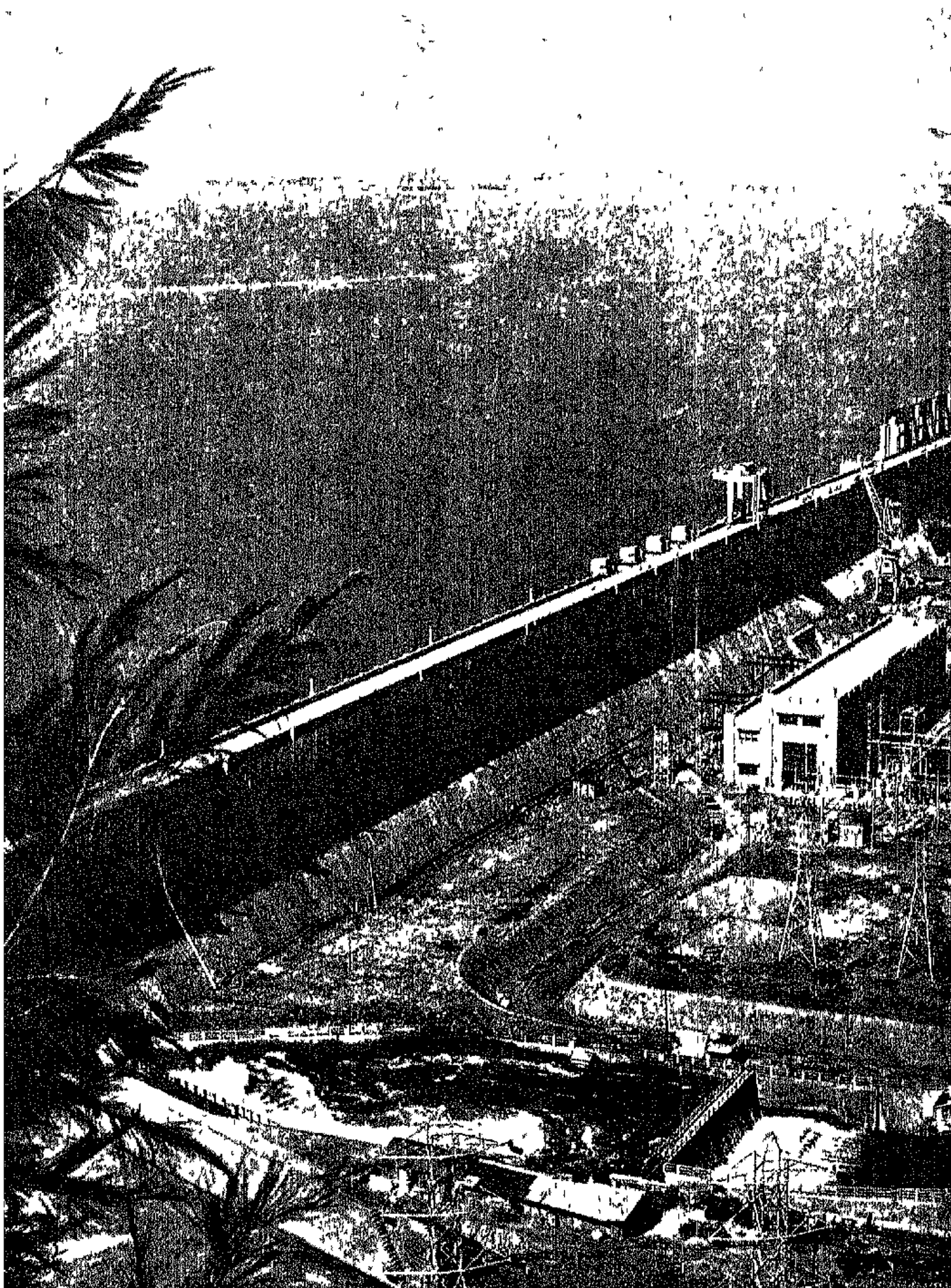
(२)

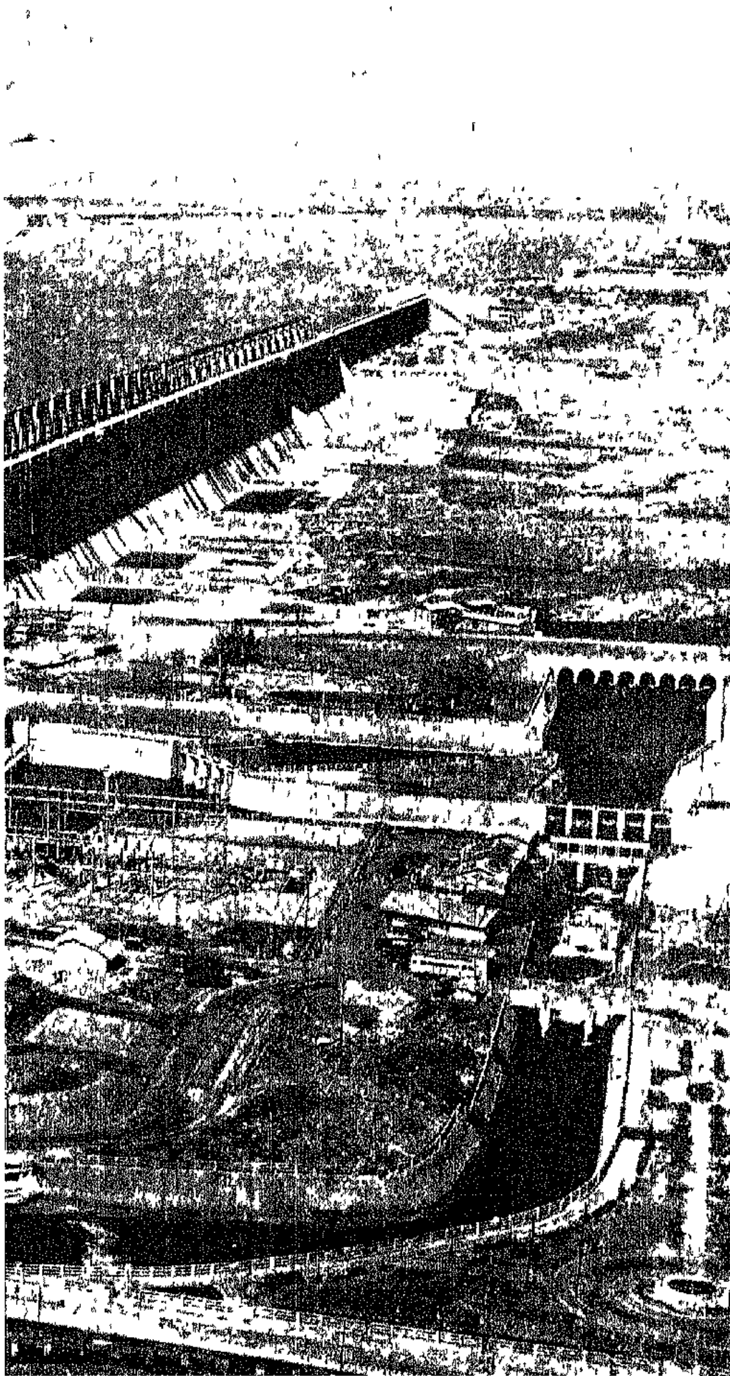
बात करते सो गया तू,
स्वप्न में फिर खो गया तू,
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात!
साथी, सो न, कर कुछ बात!

भारत के नवीन तीर्थ

भाखड़ा बांध

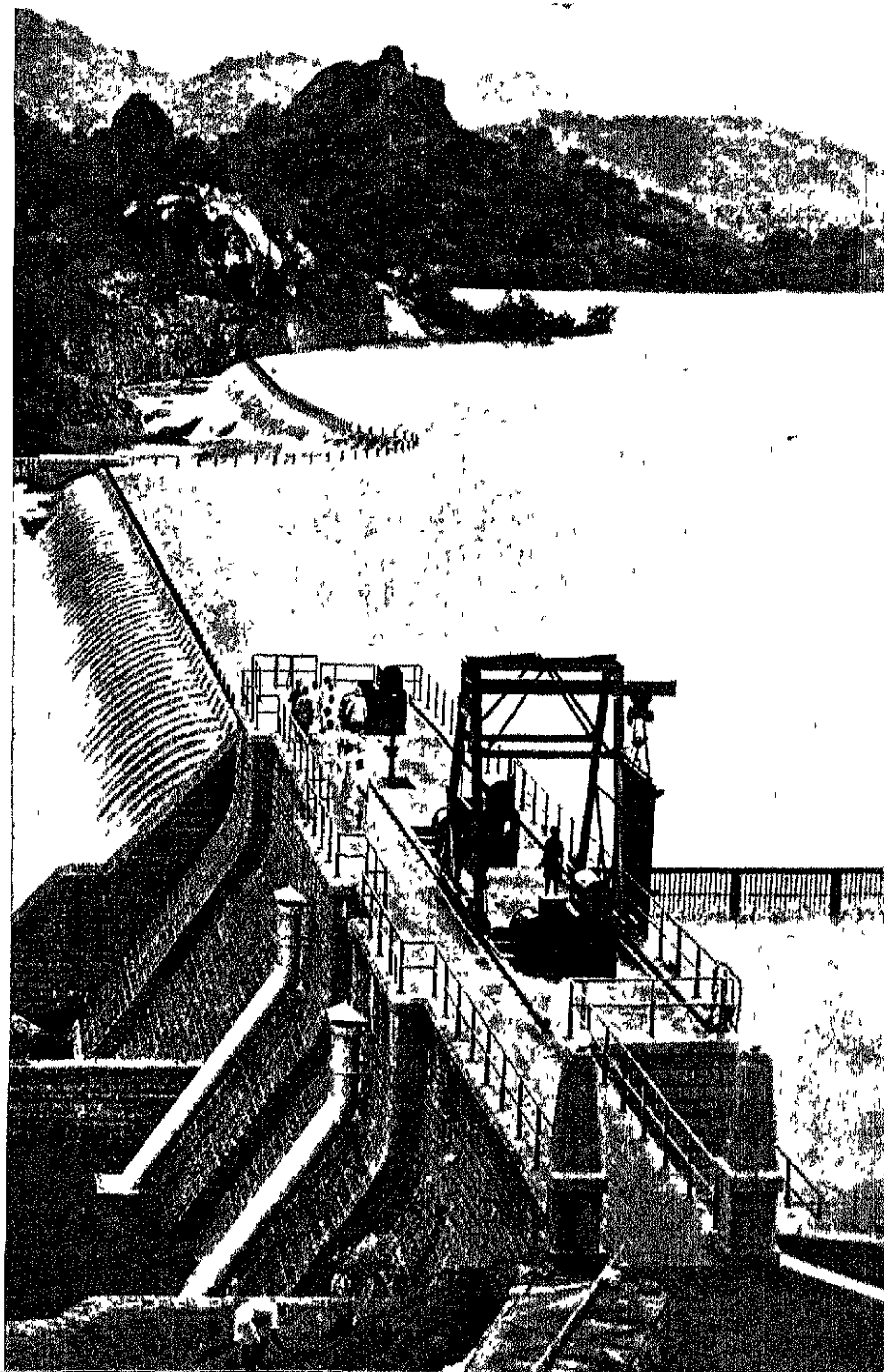






तुगभद्रा बाध (आन्ध्र मे)
इस योजना से आन्ध्र तथा मैसूर लाभान्वित हो रहे है।

जोर (मद्रास) में
मगाल पापनाशम
जलाशय



(३)

पूर्ण करदे वह कहानी,
जो शुरू की थी सुनानी,
आदि जिसका हर निशा में, अन्त चिर अज्ञात !
साथी, सो न, कर कुछ बात !

बच्चन के पहले दौर की कविताओं में जो मादकता से भरा संगीत है ठीक उसके विपरीत बच्चन का नया दौर विचारों की उथल-पुथल का है। विचारों के इस उथल-पुथल का कवित्व बच्चन के संगीतमय कवित्व से कितना भिन्न है

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(१)

जिस दिन मेरी चेतना जगी मैंने देखा
मैं खड़ा हुआ हूं इस दुनिया के मेले में,
हर एक यहां पर एक भुलावे में भूला,
हर एक लगा है अपनी-अपनी दे-ले में,
कुछ देर रहा हक्का-बक्का, भौचक्का-सा—
आ गया कहां, क्या करूं यहां, जाऊं किस जा?
फिर एक तरफ से आया ही तो धक्का-सा,
मैंने भी बहना शुरू किया उस रेले में,
क्या बाहर की ठेलापेली ही कुछ कम थी,
जो भीतर भी भावों का ऊहापोह मचा,
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी,
जो कहा, वही मन के अन्दर से उबल चला,
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(२)

मेला जितना भड़कीला रंग-रंगीला था,
मानस के अन्दर उतनी ही कमजोरी थी,
जितना ज्यादा संचित करने की ख्वाहिश थी,
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी,
जितनी ही बिरमे रहने की थी अभिलाषा,
उतना ही रेले तेज ढकेले जाते थे,
क्रय-विक्रय तो ठंडे दिल से हो सकता है,
यह तो भागा-भागी की छीना-छोरी थी,
अब मुझ से पूछा जाता है, क्या बतलाऊं,
क्या मान अकिंचन बिखराता पथ पर आया,
वह कौन रतन अनमोल मिला ऐसा मुझको,
जिस पर अपना मन-प्राण निछावर कर आया,
यह थी तकदीरी बात मुझे गुण-दोष न दो,
जिसको समझा था सोना, वह मिट्टी निकली,
जिसको समझा था आंसू, वह मोती निकला।
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(३)

मैं कितना ही भूलूं, भटकूं या भरमाऊं,
है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पांव पड़े ऊंचे-नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,
मुझ पर विधि का आभार बहुत-सी बातों का
पर मैं कृतज्ञ उसका इस पर सबसे ज्यादा—
नभ ओले बरसाए, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है,
मैं जहां खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है,
ले मापदण्ड जिसको परिवर्तित कर देती
केवल छूकर ही देश-काल की सीमाएं
जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

आरती और अंगारे की कविताओं में कवि अपने नए प्रयोगों से कुछ उलझ गया है—लेकिन उसका रास्ता साफ है

गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है।
सख्त पंजा, नस-कसी चौड़ी कलाई
और बल्लेदार बाहें,
और आंखें लाल चिनगारी सरीखी,
चुस्त औ' सीधी निगाहें,
हाथ में घन और दो लोहे निहाई
पर धरे तो, देखता क्या,
गर्म लोहा पीट, ठण्डा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है।
भीग उठता है, पसीने से नहाता
एक से जो जूझता है,
जोम में तुझको जवानी के न जाने
ख्वाब क्या-क्या सूझता है,
था किसी नग देवता ने स्वयं से कुछ
फेर दी यों बुद्धि तेरी,
कुछ बड़ा तुझ को बनाना है कि तेरा उम्महा होता कड़ा है।
गर्म लोहा पीट, ठण्डा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है।
एक गज छाती मगर सौ गज बराबर
हौसला उसमें, सही है,
कान करनी चाहिए जो कुछ तजुर्बे-
कार लोगों ने कही है,
स्वप्न से लड़ स्वप्न की ही शक्ल में हैं
लोहे के टुकड़े बदलते,
लोह-सा वह ठोस बनकर है निकलता जो कि लोहे से लड़ा है।
गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है।

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

कवि की अन्तिम इच्छा

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

(१)
भारत के विकास के पथ में
काटे जो बिछ रहे अनन्त ।
किस उपाय से, किस कर बल से
कर पायें हम उनका अन्त ।
सबल, समुन्नत हो कर कैसे
भारत होगा यशशाली ।
श्री किस भांति वरेगी उसको
विश्व-हृदय हरने वाली ।

(२)
इसकी चिन्ता करते हों क्या
बालक, युवती युवक किशोर ।
अगर नहीं तो होते हो तुम
अपने ही वंचक, ठक चोर ।
ऐसा करो कि देश हमारा
पक्षपात में ग्रस्त न हो ।
प्रेम त्याग कर द्वेष-भावना
के प्रताप से त्रस्त न हो ।

(३)
सम्प्रदाय-भिन्नता कभी मत
अन्यायों का हो आधार ।
सबको हो समान ही वितरित
अन्न-वस्त्र-शिक्षा भंडार ।
विश्व-समाज-सेवियों द्वारा
पोषित हो जो नीति उदार ।
भारत के कोने-कोने में
जाओ उसका करो प्रचार ।

(४)
निज दिव्यानुभूति जगती में
सभी ओर तुम फैलाओ ।
दावानल जल रही जहां है
मलय-पवन लेकर आओ ।
नैतिकता के उच्च स्तर पर
ले जाओ अपना आचार ।

गिरीश जी ने यह कविता अपने देहावसान से कुछ ही दिन पूर्व 'आजकल' में प्रकाशनार्थ भेजी थी ।

भारत के दयनीय दीन जन
को दो नव जीवन का सार ।

(५)
माता की पीड़ा को लेकर
चलो, करो उनका निर्माण ।
प्रगति-शील हो, प्रगति करो तुम
प्रगति-मार्ग ही में कल्याण ।
जहां न कोई स्वार्थ-भावना,
जहां नहीं वंचक व्यापार ।
माता की वेदना वहीं तो
पा सकती अस्तित्व-प्रसार ।

(६)
करनी यदि स्वदेश की सेवा
धारो मातृ-वेदना मात्र ।
सच्ची प्रगति मिलेगी तुमको
होगे तुम आदर के पात्र ।
अपनी प्रगति-भावना में तुम
माता को केन्द्रित कर दो ।
प्यासे, पीड़ित भारत भर में
माता के आंसू भर दो ।

(७)
आंसू की धारा में सारा
स्वार्थ सभी जन का बह जाय ।
उसके तीव्र वेग से आहत
संग्रह-कूलद्रुम ढह जाय ।
दो सर्वस्व दान दीनों को
रिक्त-हस्त हो जाओ पूर्ण ।
देगी प्रगति रिक्तता ही यह
स्वाद इसी का पाओ पूर्ण ।

(८)
जहां दस्युगण हरण-शक्ति के
आराधन में रत दिन रात ।
भारत के दरिद्रनारायण
को प्रतिपल देते आघात ।
माता की आहों की ज्वाला
का प्रसार तुम करो वहां ।
अनायास ही एक निमिष में
उनका जीवन हरो वहां ।

(९)
देश कार्य के संचालक गण
मातृभावना पोषक हों ।
सम्भव नहीं कि भूखे भारत—
शिशु के फिर वे शोषक हों ।
मातृभावना से स्वतन्त्रता
भारत में हमने पायी ।
मातृ-भावना ही रक्षा की
विधि भी संग लिए आयी ।

(१०)
जननी अपना स्वार्थ त्याग कर
प्रिय शिशु की सेवा करती ।
उसके हित मरने को जीती
उसके जीवन-हित मरती ।
भारत का प्रत्येक हितैषी
यही भावना अपनाए ।
हानि व्यक्तिगत हो तो हो ले
लाभ देश का हो जाये ।

(११)
राजकीय जन सुविधा पायें
किन्तु न हो जायें सुकुमार ।
शीशे की पेटी में होकर
बन्द, न खो दें अपना सार ।
देश-हितैषी-हित न उचित यह
अविरत पूंजी वृद्धि करें ।
लोभ बढ़ा कर के अधिकाधिक
अपनी अर्थ-समृद्धि करें ।

(१२)
अर्थ लाभ, अधिकार-लाभ में
वे न स्वयं को करें समाप्त ।
अधिक त्याग का पथ अपनायें,
हो जायें जीवन में व्याप्त ।
तुम भावी समाज-संचालक
रचना ऐसा सबल समाज ।
राजकीय जन-दुर्बलता पर
गिरे सहज ही आकर गाज ।

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

श्रोता

कन्हयालाल कपूर

जिस दिन से वह एक अप्रसिद्ध द्वीप की यात्रा से वापस आया था, बहुत उदास रहता था। यह बात तो नही थी कि उसे उस द्वीप की याद रह-रह कर आती हो, क्योंकि वह इस योग्य ही कब था कि उसकी यात्रा फिर से की जाए। कोई बडा नीरस सा द्वीप था—'काना बाटा काटा', और वह प्रशान्त महासागर में स्थित था। वह एक सास्कृतिक दल के साथ उस द्वीप में गया था। यह ठीक है कि उस द्वीप में रहने वालो का रहन-सहन विचित्र था। उदाहरणार्थ वह चाय अथवा कॉफी के स्थान पर सौफ का अर्क पीते थे। नमस्कार करने की बजाय एक दूसरे के कान ऐंठते थे, कोट के ऊपर कमीज पहनते थे। नाचते समय रोते थे और उपासना के समय जोर-जोर से हँसते थे। ये ऐसी बातें थी, जिन्हें रोचक कहा जा सकता है और जिन्हें सुनने के लिए लोगो को व्याकुल होना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य से जब भी उसने 'काना बाटा काटा' का नाम किसी के सामने लिया, उसे बहुत निराशा हुई। प्रथम तो 'काना बाटा काटा' का नाम सुन कर ही श्रोता अट्टहास करने लगते, नही तो कोई तत्क्षण चमक कर कहता—"हटाओ यार इस बकवास को, तुम वहा क्या गए। एकदम बोर बन कर लौटे हो। अब देखो—'काना बाटा काटा'! कोई काम की बात करो।"

कई बार, उसने उचित अवसर देखकर 'काना बाटा काटा' का विवरण आरम्भ किया, परन्तु लोगो ने तो जैसे इसमें रुचि न लेने की शपथ खा रखी थी। एक बार कुछ कवियो में बैठे हुए उसने कहा—"सम्भवत आप नही जानते कि 'काना बाटा काटा' में सभी कवि गद्य में कविता करते है और वह भी कुछ गिने चुने विषयो पर ही, जैसे—गीदड, खटमल, चमगादड। वहा सबसे बडा कवि उस व्यक्ति को समझा जाता है, जिसने गीदड पर सबसे अधिक कविताए लिखी हो। मै आपको 'गोला-गोला' की एक कविता सुनाता हू। गीदड को सम्बोधित करते हुए वह कहता है—

"ऐ गीदड, यदि तुझे रात भर नीद नही आती तो तू मार्फिया का टीका क्यो नही लगवा लेता। इतने जोर से मत चिल्ला! कही ऐसा न हो कि तेरा बडा सा फेफडा फट जाए और ऐ गीदड—"

और किसी कवि ने इसकी बात बीच ही में काट कर कहा—"भगवान के लिए दया करो हमारी दशा पर! क्यो बोर करने पर तुले हो?" और उसकी बात सुनाने की आकाक्षा मन ही मन में रह गई, गीदड वाली सारी कविता वह उन कवियो को न सुना सका।

इसी प्रकार एक बार उसने वकीलो की एक सभा मे कहा था—"आप सम्भवत नही जानते कि 'काना बाटा काटा' में, वकील को 'टापा' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है, रोचक झूठ बोलने वाला, और निर्णयक को 'कापा' कहा जाता है जिसका अर्थ हुआ, 'गल्त निर्णय देने वाला'। वहा साक्षी को कहते है 'मापा' जिसका अर्थ "

इस पर एक वकील ने उसकी ओर सकेत करते हुए कहा था— "और आपको वहा 'बापा' कहा जाता होगा जिसका अर्थ हुआ 'व्यर्थ की बकवास करने वाला'।"

उस दिन के बाद उसने निश्चय कर लिया कि किसी सभा में 'काना बाटा काटा' का नाम नही लेगा, बल्कि इक्के दुक्के आदमी के साथ बात चलाने का प्रयत्न करेगा। एक दिन सडक पर चलते हुए एक फकीर ने उससे पैसे का सवाल किया। उसने फकीर की हथेली पर एक लकडी का सिक्का, जो वह 'काना बाटा काटा' से लाया था, रखते हुए कहा—"जानते हो, यह किस देश का सिक्का है?"

"नही जानता।"

"यह 'काना बाटा काटा' का सिक्का है। जानते हो यह देश कहा है?"

"नही जानता।"

"प्रशान्त महासागर में—जापान से तीन हजार—"

"जी होगा, परन्तु दीनदयाल मने तो आपसे पैसे का सवाल किया था।"

एक दुकानदार से साबुन खरीदते समय उसने कहा—"काना बाटा काटा में साबुन नही होता। वास्तव में उसकी आवश्यकता भी नही होती। वहा के लोग साधारणत एक वर्ष के पश्चात स्नान करते है। विचित्र देश है। वहा दुकानदार को 'चमेट्' कहते है, जिसका अर्थ हुआ "

दुकानदार ने उसकी बात की नितान्त उपेक्षा करते हुए पूछा—"अच्छा तो आपको कौन-सा साबुन चाहिए?"

एक बार उद्यान में भ्रमण करते हुए उसकी भेंट एक वृद्ध व्यक्ति से हुई। उसने सोचा, अवसर अच्छा है, इससे लाभ उठाना चाहिए। नमस्कार करने के पश्चात् उसने कहा—"बडे मिया, आपकी आयु क्या है?"

"पैसठ वर्ष।"

"काना बाटा काटा में किसी व्यक्ति को पैसठ वर्ष के बाद जीवित रहने की आज्ञा नही है।"

"यह 'काना बाटा काटा' क्या बला है?"

"बला नही साहब, एक बडा विचित्र द्वीप है। प्रशान्त महासागर, में, जापान से "

"अच्छा, होगा।"

"परन्तु क्या यह विचित्र बात नहीं कि वहा पैसठ वर्ष के पश्चात किसी को जीवित "

"तो क्या उसे फासी के तख्ते पर चढा दिया जाता है?"

"जी हा।"

"बड़ा बेहूदा देश है।"

"जी नहीं, बेहूदा नहीं। देखिए न, इस नियम का यह लाभ कि"

"अजी रहने दीजिए, बुजुर्गों के साथ ऐसा निकम्मतापूर्ण व्यवहार"

"सुनिए तो, आपने पूरी बात तो सुनी नहीं।"

"क्षमा कीजिए, मैं ऐसी व्यर्थ की बातें नहीं सुना करता।"

आखिर जब यह शस्त्र भी कोई विशेष सफल न हुआ, तो उसने एक और युक्ति निकाली। 'काना बाटा काटा' से वह अपने साथ कुछ मूर्तियों के नमूने लाया था। ये सब नमूने उसने अपने कमरे के एक कोने में रख दिए। उसका अनुमान था कि जब कोई व्यक्ति उससे मिलने आएगा तो इन पर दृष्टि डालने के पश्चात् अवश्य उनके सम्बन्ध में प्रश्न करेगा, और बात चल निकलेगी। परन्तु उसके सब अनुमान गलत प्रमाणित हुए। अधिकांश आगन्तुकों ने उनकी ओर देखा तक भी नहीं। एक-आध ने देखने के बाद अनुमान लगा लिया कि किसी कबाड़ी से औने-पौने कुछ व्यर्थ की मूर्तियां खरीदी गई हैं। एक दिन उसने एक आगन्तुक का ध्यान एक मूर्ति की ओर आकर्षित करते हुए कहा—"जानते हो यह किस की मूर्ति है?"

"किसी बन्दर की जान पड़ती है।"

"अरे नहीं बन्दर की नहीं, यह 'काना बाटा काटा' के प्रसिद्ध दार्शनिक 'भो-भो की को' की है।"

"हूं!"

"भो-भो की को' बड़ा पहुंचा हुआ दार्शनिक था। उसके विचार में पुरुष की सबसे बड़ी दुर्बलता नारी नहीं, बल्कि अफीम है। स्वयं भो-भो की-को प्रतिदिन तीन से छः माशे अफीम खाया करता था। एक दिन जब उसे अफीम न मिली तो जानते हो उसने क्या किया?"

"सम्भवतः आत्महत्या कर ली होगी।"

"नहीं, आत्महत्या नहीं की, वह एक पोस्त का पौधा जड़ों और पत्तों सहित खा गया—परन्तु जब उसे"

"अच्छा यार, कोई और बात करो—यह तुम किस मनहूस का जिक्र ले बैठे।" उसे सबसे अधिक दुख तब होता था, जब बात चल निकलने के बाद वह एकाएक बीच में रुक जाती। जैसे एक रविवार को एक सम्पादक मित्र उसके पास बैठा हुआ था। उसने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"आप सम्भवतः नहीं जानते कि 'काना बाटा काटा' में लोग पढ़ने के लिए नहीं, वरन् आग जलाने के लिए अखबार खरीदते हैं।"

"परन्तु वह पत्र पढ़ते क्यों नहीं?"

"उनका विचार है कि पत्रों में 'स्कैंडल' के अतिरिक्त कुछ नहीं होता।"

"यह तो कोई ठोस तर्क नहीं।"

"अपना-अपना विचार है साहब। और हां, वहां सब पत्रों का नाम एक ही होता है—अर्थात् 'रगड़ रगड़'—जिसके अर्थ हुए—"

"कुछ भी हो, कोई काम की बात करो यार!"

और एक दिन तो उसके साथ एक विचित्र घटना हुई। उसका एक मित्र जो पेरिस से तीन वर्ष के पश्चात् वापस आया था, उससे मिलने के लिए आया। उसने सोचा कि वह अवश्य 'काना बाटा काटा' की कुछ बातों में दिलचस्पी लेगा। उसने अभी भूमिका ही बांधी थी कि उसके मित्र ने मुस्करा कर कहा—"यार क्या बात है, फ्रांस भी एक रोचक देश है, और पेरिस! पेरिस तो जिन्दा दिलों का नगर है। प्रत्येक रात वहां 'शबरात' की बराबरी करती है। वहां के कलाकार बड़े मनचले स्वभाव के व्यक्ति होते हैं और गलियां बड़ी रहस्यपूर्ण। होटल वधुओं की भांति सजाए जाते हैं। रेलवे स्टेशनों पर परिस्तान का धोखा होता है। सड़कें इतनी साफ कि हाथ लगाए तो मैली हो जाए। राजनीतिज्ञ मर्मस्पर्शी, और युगद्रष्टा, मदिरा—आह! जालिम, जैसे मदिरा नहीं, एक तेज छुरी है कि उतरती ही चली जाए—" इत्यादि! आखिर दो घण्टे के बाद जब उसके मित्र ने पेरिस काण्ड समाप्त किया, तो उसने अनुभव किया कि ऐसे व्यक्ति से 'काना बाटा काटा' का वर्णन करना सचमुच महामूर्खता थी।

जब उसका प्रत्येक शस्त्र व्यर्थ सिद्ध हुआ, तो वह खोया-खोया-सा रहने लगा। उसे मनुष्यों से चिढ़-सी होने लगी। यह कैसे लोग हैं—इन्हें अपने अतिरिक्त किसी वस्तु में रुचि ही नहीं, केवल रोटी कमाने का धन्धा इनके मन और मस्तिष्क पर सवार है। 'काना बाटा काटा' का वर्णन न सुन कर ये अपने साथ कितना अन्याय कर रहे हैं। वह इन बातों के सम्बन्ध में जितना सोचता, उसकी उदासी उतनी ही बढ़ती जाती।

एक दिन उसने अपने को आवश्यकता से अधिक उदास पाया, वह एक डाक्टर की दुकान की ओर चल दिया। संयोग से डाक्टर के पास एक रोगी बैठा हुआ था। जब वह औषधि लेकर चला गया, तो डाक्टर ने कहा, "कहिए—आपको क्या शिकायत है?"

"हर समय उदास रहता हूं।"

"कारण?"

"प्रकट रूप में कोई कारण दिखाई नहीं देता।"

"यह शिकायत कब से है?"

"जब से 'काना बाटा काटा' से लौटा हूं।"

"काना बाटा काटा? यह किसी देश का नाम है क्या?"

"जी हां, एक द्वीप है—प्रशान्त महासागर में।"

"जापान से कितनी दूर है?"

"तीन हजार मील"

"आप वहां किस सम्बन्ध में गए थे?"

"एक सांस्कृतिक दल के साथ गया था।"

"आप कलाकार हैं?"

"जी, चित्रकार हूं"

"तो खूब भ्रमण किया होगा?"

"जी हां, एक महीना रहा।"

"तो क्या-क्या देखा वहां आपने?"

"बहुत कुछ देखा। बड़ा विचित्र द्वीप है।"

"हमें भी कुछ बताइए।"

"वहां डाक्टर नहीं होते।"

"डाक्टर नहीं होते, तो फिर जो लोग बीमार पड़ते हैं, वह इलाज किससे कराते हैं?"

"क्योंकि वह जानते हैं कि इलाज करने वाला कोई नहीं, इसलिए बीमार ही नहीं होते।"

"अच्छा कोई और बात बताइए?"

"वहां मकानों के द्वार नहीं होते।"

"तो लोग भीतर कैसे आते हैं?"

"खिड़कियां जो होती हैं।"

(शेष पृष्ठ ३८ पर)

भारतीय वस्त्र उद्योग

अवनीन्द्र कुमार विद्यालकार

यदि यह प्रश्न किया जाए कि भारत का सर्वाधिक संगठित और सबसे बड़ा उद्योग कौनसा है, तो उत्तर मिलेगा सूती वस्त्र उद्योग। कुछ साल पहले इस व्यवसाय की शताब्दी मनाई गई थी। आज यह उद्योग भारत के लिए जीवनदायी रक्त के समान है। यह पुनरुत्थित व नूतन भारत का प्रतीक है। यह भारत की आकांक्षाओं और मनोरथों का मूर्त्त रूप है। भारत की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में इस उद्योग का महत्व अत्यधिक है।

स्वाधीनता संग्राम के विकास और वृद्धि के साथ-साथ इसका भी विकास हुआ है और प्रगति हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद विश्व में भारत कपड़े का सबसे बड़ा उत्पादक है। यह कपड़े का एक मुख्य निर्यातक देश भी है। रूई के उत्पादन में, दुनिया भर में केवल सोवियत रूस, चीन और अमेरिका ही भारत से आगे हैं। इस उद्योग में १२० करोड़ रु० की पूंजी लगी हुई है। ८,००,००० मजदूर प्रत्यक्ष रूप से इससे आजीविका पाते हैं। भारतीय सूती मिलें लगभग ५८ लाख रूई की गाठें (५० लाख देशी रूई की और ८ लाख लम्बे रेशे की विदेशी रूई की) हर साल खपाती हैं। इस रूई का मूल्य २०० करोड़ रुपया होता है। २० लाख टन ईंधन (कोयला, कोक, लकड़ी का कोयला व लकड़ी) भी इसमें खपत है। इसका बिजली का खर्च ६,००० लाख किलोवाट है, जिसका मूल्य ११ करोड़ रुपया होता है।

सूती मिल उद्योग सूत पैदा करके १५ लाख हाथकरघा बुनकरों को रोजी देता है। इस प्रकार यह लघु परिमाण के उद्योगों में भी सहायता पहुंचाता है। इस उद्योग का वार्षिक वेतन बिल १०० करोड़ रु० का होता है, औसत मजदूर हर साल वेतन में १,६०० रु० पाता है। यह राशि तुच्छ नहीं है। क्योंकि एक भारतीय की औसत वार्षिक आय २८२ रु० कूती गई है। भारत के १७५ शहरों में ४७० सूती मिलें चल रही हैं। इनमें ५०,००० शिल्पी, मिस्त्री, तकनीकी और प्रबन्धक काम करते हैं। सूती मिलों द्वारा तैयार किए गए कपड़े का मूल्य ४०० करोड़ रु० वार्षिक होता है, अर्थात प्रत्येक भारतीय की आय में इस उद्योग का अनुदान हर साल १० रु० है।

देश के स्वाधीन होने के बाद सूती मिल उद्योग के सामने दो समस्याएं थीं। पहली यह कि वह रूई के लिए किसी अन्य देश पर निर्भर न हो, और मिल की मैशीनरी और साज-सामान की दृष्टि से आत्म-निर्भर हो। भारत का यह सबसे पुराना उद्योग मैशीनरी और उपयुक्त साज-सामान के लिए परमुखापेक्षी रहे, यह उचित नहीं कहा जा सकता। दूसरे महायुद्ध ने इसकी हानियां स्पष्ट कर दी थीं। सूती मिलों के लिए आवश्यक यंत्र इस देश में तैयार करने से अनेक सहायक उद्योगों का जन्म हुआ।

सूती मिल उद्योग की मैशीनरी और स्टोर की पूर्ति के लिए जिन उद्योगों का जन्म हुआ उन्होंने बड़ी तेजी से प्रगति की। फलतः मैशीनरी का आयात बन्द हो गया। करघे, रिंग फ्रेम, कार्डिंग ऐंजिन, ड्राविंग फ्रेम, विंडिंग मशीन, वारपिंग मशीन, ड्राइंग सिलीमर, स्लेप्टर, साईजिंग उपकरण, स्टार्च मैंगल, जिमर्स आदि इसी देश में बनाए जाते हैं। करघे, रिंग फ्रेम और कार्डिंग ऐंजिन किस मात्रा में तैयार हो रहे हैं यह नीचे की तालिका से देखा जा सकता है —

वर्ष	करघे	रिंग फ्रेम	कार्डिंग ऐंजिन
१९५१	२,५०८	२७६	—
१९५२	२,३०४	२८८	१०८
१९५३	२,४२४	२०४	१९२
१९५४	१,८८८	३६०	४३२
१९५५	२,७३६	८६४	६००
१९५६	२,८६८	१,११६	७३२
१९५७	२,५५२	१,३६४	१,०२३
१९५८	३,१५१	८७७	१,१४८

सूती मिलों की मैशीनरी और साज-सामान का उत्पादन १९५५-५६ में ४ करोड़ रु० मूल्य का था। सन् १९५८ में यह ७ ३१ करोड़ रु० के मूल्य का था।

वस्त्र उद्योग के साथ टैक्सटाइल स्टोर्स उद्योग का भी विकास हुआ है। बड़े परिमाण के उद्योग के साथ अनेक छोटे-छोटे उद्योगों का भी निर्माण होता है। वस्त्र उद्योग को प्रति दिन स्टोर और सहायक वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। इस आवश्यकता ने बाबिन, शटल, काटन हेल्ड, वायर हेल्ड, स्टील रीड पेग आदि बनाने के उद्योगों को जन्म दिया। इनकी क्या स्थिति है, यह निम्न तालिका से ज्ञात होगा —

वस्तुओं के नाम	कारखानों की संख्या	१९५८ में उत्पादन	१९५४ में किया गया आवश्यकता का अनुमान
बाबिन	७६	४,१२,८५० ग्रास	४,५०,००० ग्रास
शटल	२१	४,४३८ ग्रास	९,००० ग्रास
पिकर्स	४३	२३,४३८ ग्रास	६०,४२४ ग्रास
पिकिंग बैंड	११	२,७१,९०२ पौंड	६,२०,००० पौंड
पिकिंग स्टिक	११	२,८२२ ग्रास	४,२०० ग्रास
वायर हेल्ड	१२	१,३५,५०३ (००० नगों में)	१,१९,००० (००० नगों में)
काटन हेल्ड	९	१,३७,६२१ दर्जन	८,००,००० सेट
[illegible]	[illegible]	[illegible] दर्जन	[illegible] दर्जन

रिपड्स हेप	४६	३८,६६६ रोल्स	१५,७१,४०० रोल्स
पेपर कोम व ट्यूब	११	६,८६,६३७ पौ०	८,११,२३१ पौ०
कार्ड कॅन	५	५०,४६३ नगो मे	१,७६,००० नगो में
डाब्बी लेटीसेस व पेग	८	३२,२५,८३६ (००० नगो में)	१४,६८३ (००० नगो में)
मशीन बलाथ	७	८०,४०३ गज	१,५६,३०६ गज
रीड रिब	१	३८,४२१ नगो मे	७,८५,०६० नगो में

वस्त्र उद्योग के आवश्यक स्टोर उद्योग की प्रगति सन्तोषजनक रही है। यह उपर्युक्त तालिका को देख कर कहा जा सकता है।

दूसरे महायुद्ध के बाद सूती मिल उद्योग को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। अमेरिका और ब्रिटेन के बाद तकुओं की सख्या की दृष्टि से यह दुनिया भर में अग्रणी है। सन् १९१३ में भारत ब्रिटेन से ही अकेले २५,७६० लाख गज कपडा आयात करता था। आज हालत बदली हुई है। सूती मिल उद्योग ने पिछली आधी शती में कितनी तरक्की की है, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट है

वर्ष	मिलो की सख्या	तकुओ की सख्या	करघो की सख्या	सूत का उत्पादन (लाख पौंड में)	कपडे का उत्पादन (लाख गज में)
१९००	१९३	४९,४६,०००	४०,०००	—	—
१९१०	२६३	६१,९६,०००	८३,०००	—	—
१९२०	२५३	६७,६३,०००	१,१९,०००	—	—
१९३०	३४८	९१,२५,०००	१,७९,०००	८,६७०	२५,६१०
१९४०	३८८	१,००,०६,०००	२,००,०००	१३,४९०	४२,६९०
१९५०	४२५	१,०८,४९,०००	२,००,०००	११,७४०	३६,६६०
१९५६	४६५	१,२३,७६,०००	२,०७,०००	१६,७१०	५३,०७०
१९५७	४३६	१,२४,९१,३७४	२,००,८९३	१३,८००	५३,१७०
१९५८	४७०	१,३०,५४,०९८	२,०१,२८०	१६,८५०	४९,२७०

पिछले तीन सालो के उत्पादन के आकडो को देखने से ज्ञात होगा कि कपडे का उत्पादन घट रहा है। किन्तु अब स्थिति सुधरी है। सन् १९५९ के पहले चार मासो का उत्पादन देखने से इस बात की पुष्टि ही होगी —

(लाख गजो मे)

वर्ष	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल
१९५५	४,३००	३,९९०	४,२२०	४,१९०
१९५६	४,१४०	४,२५०	४,१९०	४,२१०
१९५७	४ ८४०	४,३५०	४,५३०	४,६४०
१९५८	४,३७०	३,९१०	४,०५०	४,०८०
१९५९	४,३००	३,९२०	४,०६०	४,०९०

मासिक उत्पादन के ये तुलनात्मक आकडे बता रहे है कि कपडे का उत्पादन पुनः अपने उच्च स्तर पर आ रहा है।

द्वितीय पचवर्षीय नियोजन ने ३१ मार्च १९६१ तक कपडे के उत्पादन का लक्ष्य ८४,००० लाख गज निर्धारित किया है। इसमें हाथकरघो का उत्पादन भी सम्मिलित है। इससे प्रति व्यक्ति १८ १/२ गज कपडा मिलना सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त निर्यात का लक्ष्य १०,००० लाख गज निर्धारित किया गया है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए रूई की उपज भी बढाने की आवश्यकता है।

रेशे की लम्बाई की दृष्टि से भारत मे उत्पन्न रूई १/२″ से १ १/१६″ की होती है। रूई की किस्मो को पाच वर्गों में विभक्त किया गया है —

(क) सुपीरियर लाग स्टेपल (१/८″ और इससे ऊपर)
(ख) लाग स्टेपल (७/८″ से ३१/३२″)
(ग) सुपीरियर मीडियम स्टेपल (१३/१६″ और २७/३२″)
(घ) मीडियम स्टेपल (१३/१६″ से नीचे और ११/१६″ से ऊपर)
(ङ) शार्ट स्टेपल (११/१६′ और इससे नीचे)

इन विभिन्न किस्मो का रूई का उत्पादन १९५७-५८ में इस प्रकार हुआ

	(हजार गाठो मे, ३९२ पौंड की एक गाठ)
सुपीरियर लाग	३२३
लाग स्टेपल	१,५००
सुपीरियर मीडियम स्टेपल	१,४८१
मीडियम स्टेपल	५१४
शार्ट स्टेपल	८४५
योग	४,७५३

भारत में कपास दुनिया भर मे सबसे अधिक एकड जमीन में बोई जाती है। किन्तु कपास व रूई की पैदावार की दृष्टि से भारत का स्थान दुनिया में चौथा है। भारत से ऊपर तीन देश है अमेरिका, चीन और सोवियत रूस। कपास कितने एकड मे बोई जाती है और उत्पादन किस परिमाण मे होता है यह नीचे की तालिका मे देखिए —

	क्षेत्र (हजार एकडो मे)	पैदावार (हजार गाठो में)
१९५३-५४	१७,२६५	३,९४४
१९५४-५५	१८,६८४	४,२२७
१९५५-५६	१९,९७८	४,००१
१९५६-५७	१९,८७३	४,७३७
१९५७-५८	२०,१५८	४,७५३

भारत जहा रूई का निर्यात करता है, वहा आयात भी करता है। क्योंकि लम्बे रेशे की रूई की उसकी आवश्यकता भारत में पूरी नहीं होती। महीन और बारीक कपड़ा इसी रूई से तैयार होता है।। भारत पूर्वी अफ्रीका अमेरिका, मिस्र, सूडान और पेरू से रूई आयात करता है। स्वाधीन भारत मे रूई का निर्यात और आयात किस मात्रा में किया, यह निम्न तालिका में देखिए :—

(गाठें एक गाठ ३६२ पौंड की)

वर्ष	निर्यात	आयात
१९४७-४८	११,७२,०००	८,९१,७००
१९४८-४९	४,२६,०००	९,०३,८००
१९४९-५०	३,३०,०००	११,४७,२००
१९५०-५१	८४,०००	७,३८,९००
१९५१-५२	१,३२,०००	१२,३०,४००
१९५२-५३	४,०५,०००	६,७१,०००
१९५३-५४	१,५०,०००	६,५८,७००
१९५४-५५	३,६०,०००	६,१५,४००
१९५५-५६	५,४०,०००	५,८०,४००
१९५६-५७	२,४०,०००	६,१०,९००
१९५७-५८	३,१०,०००	४,२३,०००

भारत का लक्ष्य १०,००० लाख गज (एक अरब गज) कपडा निर्यात करना है। किन्तु इस लक्ष्य की पूर्ति में अनेक बाधाए हैं। पहली रुकावट यह है कि भारत की मशीनें पुरानी है। 'टेक्निकल सबकमेटी' ने १११ मिलो का निरीक्षण किया था और इनमें ४५,३९३ करघे सन् १९१० से पहले के थे, २३,३७५ सन् १९१०-२५ के दौरान में लगाए गए और २३,१३० सन् १९२५ के बाद लगाए गए थे। मशीनरी कितनी पुरानी है, यह इससे स्पष्ट है। कमेटी की राय थी कि इन सब की जगह नई मशीनें लगाई जानी चाहिए।

यह युग स्वचालित करघो (ऑटोमेटिक लूम) का है। इसके व्यवहार से कपडा सस्ता तैयार होता है और अधिक मात्रा में तैयार होता है। उनके चालू होने पर भारत अन्तर्राष्ट्रीय वस्त्र बाजार में सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर सकेगा। किन्तु स्वचालित करघो की दृष्टि से भारतीय सूती मिलें बहुत पिछडी हुई है। अन्य देशों के मुकाबले में भारत की स्थिति का आभास निम्न तालिका से लग सकता है ––

ब्रिटेन ४४,८६३, अमेरिका ३,५०,१०९, जापान ७,५३०६,

जर्मनी ५८,१६७, इटली ७९,५६७, भारत १४,११८,

अमेरिका के बाद भारत सबसे अधिक मात्रा में कपडा तैयार करता है, किन्तु स्वचालित करघो की दृष्टि से वह सबसे पीछे है। एशिया में पहले भारत का प्रतियोगी जापान ही था, अब चीन भी हो रहा है। जापान का कपडा सस्ता क्यो होता है, इसका उत्तर एक यूरोपियन पर्यवेक्षक ने इन शब्दो में दिया है "विशिष्टीकरण, प्रतिमानीकरण, पैकेज की बडी मात्रा के साथ काम करना, कताई मिलो की प्रक्रिया को छोटा करना, बुनने की मिलो में स्वचालित करघो का लगाना, कारखाने का लाभानुकूलित होना, काम के वेग को बढाना, आदि बातें है, जिनसे वस्त्र उद्योग लाभजनक अवस्था में चल सकता है। जापानी सूती मिलो में ये सब बातें भरपूर मात्रा में है।"

चीन अब जापान को भी चुनौती दे रहा है। सन् १९५२ में चीन की सूती मिलो में ५६ लाख तकुए थे, लेकिन १९५७ में इनकी सख्या बढ कर ७५ लाख हो गई है। यही बात करघो के सम्बन्ध में है। सन्, १९५६ में वहा १,८०,००० करघे थे और ४७,००० लाख गज कपडा तैयार होता था। सन् १९५७ म ५९,६०० लाख गज कपडा तैयार होने लगा। वस्त्र प्रतियोगिता म टिके रहने और ८०,००,००,००० गज कपडा निर्यात करने के लिए भी भारत को अपनी लडाई के दिनो में २४ घण्टे बराबर चली घिसी घिसाई पुरानी मशीनो की जगह नई मशीनें और स्वचालित करघे लगाने की बडी आवश्यकता है।

सन् १९५६ में निश्चय किया गया था कि १८,००० स्वचालित करघे हर साल लगाए जाए। किन्तु यह योजना स्थगित करनी पडी। अब यह स्थिति है कि निर्यात के लिए आवश्यक कपडा तैयार करने के उद्देश्य से ३००० स्वचालित करघे हर साल लगाए जाए। इसके अतिरिक्त वर्तमान साज-सामान का नवीनीकरण करने के लिए तीन साल तक प्रति वर्ष २५,०० स्वचालित करघे लगाए जा सकते है। किन्तु आवश्यकता को देखते हुए यह बहुत कम है।

सूती वस्त्र उद्योग का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। निर्यात की बात छोड भी दें, देश की आन्तरिक खपत को ही लें, तब भी मालूम होगा कि सूती वस्त्रो का उत्पादन अभी बहुत बढाने का अवकाश है। यदि प्रति व्यक्ति २२ गज कपडे की वार्षिक खपत हो और देश की जनसख्या ४० करोड हो, तो देश के लिए ही ८८० करोड गज कपडे की आवश्यकता होगी। यह आज के उत्पादन से लगभग दुगना है। देश की जनता का जीवन-प्रतिमान बढने के साथ-साथ कपडे की खपत अवश्य बढेगी। इस समय प्रति व्यक्ति १५ गज कपडे की साल भर में खपत देश की गरीबी और उसके दैन्य को सूचित करती है। इसके दूर होने और देश की समृद्धि बढने के साथ-साथ कपडे की खपत भी बढेगी। उस समय के लिए अभी से तैयारी करने की आवश्यकता है।

उत्तराखण्ड की यात्रा-

–(पृष्ठ १८ का शेषाश)

हम जब इस यात्रा के लिए निकले, उस समय की हमारी मानसिक स्थिति और यात्रा से लौटने के बाद की मानसिक स्थिति में क्या कुछ अन्तर पडा है या नही और पडा है तो क्या और किस प्रकार का––इस सम्बन्ध में अन्त में मै कुछ लिखना चाहता था। परन्तु यात्रा को अभी इतना कम समय बीता है कि इस सम्बन्ध में कुछ लिखना शायद उचित न होगा। 'श्मशान वैराग्य' हमारे यहा बहुत प्रचलित शब्द है। क्षणिक आवेशों के लिए इन शब्दो का प्राय प्रयोग होता है। अत क्षणिक आवेश में मै इस विषय में कुछ लिख डालू, तो वह शायद वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन न हो। इसलिए इस विषय को यहा छोड अन्त में मै एक ही बात लिखूगा। हिमालय पर जाकर वन-प्रदेश में कुछ समय रह कर मनुष्य को इतना अवश्य अनुभव होता है कि प्रकृति कितनी महान और उदार है और उसके सम्मुख सर्वश्रेष्ठ मानव-जीवन कितना क्षुद्र और सकीर्ण है। उस जीवन की छोटी से छोटी बातें सृष्टि के इस सर्वश्रेष्ठ प्राणी को कहा से कहा ले जाती है, जो ब्रह्म साक्षात्कार की क्षमता रखता है। मनुष्य को उसका यथार्थ रूप दिखाने के लिए हिमालय के दर्शन और उन प्रदेशो में भ्रमण तथा रमण शायद एक आवश्यक चीज है।

मै लोगों से निवेदन करूगा कि वे अधिकाधिक सख्या में उत्तराखण्ड के इन चार धामो की यात्रा पर जाए और यहा के मन्दिरो के दर्शन करें, सरिताओ के सगमो पर स्नान करें तथा हिमालय में प्रकृति की अतुल सम्पदा के उपभोग का भरपूर आनन्द लेने के साथ ही यहा पग-पग पर हमारी भारतीय आत्मा के जो दर्शन होते है, उसे हृदय में धारण कर लौटें। तब वे देख सकेंगे कि हमारा भारत क्या है और उसकी सस्कृति कितनी महान् है।

दिवोदास

राहुल साकृत्यायन

अध्याय २

सरस्वती तीर (१२१७ ई० पू०)

"इयमदाद् दिवोदास वध्र्यश्वाय सरस्वती ।"[1] (ऋक् ६।६१।१)

सप्तसिन्धु की सबसे पूर्व की प्रसिद्ध नदी सरस्वती अपनी अन्य छ बहिनो—सतलुज, विपाश (व्यास), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता, (जेलहम) और सिन्ध—की तरह हिमगलित स्रोतवाली सदानीरा नही थी । जाडो और गर्मियो में उसकी धारा अत्यन्त क्षीण हो जाती । पर, शताब्दियो तक आर्यो को अपने सीमान्त पर इस जगह डटे रहने का उसने अवसर दिया था, इसलिए वह उसके प्रति बाकी छ बहिनो से भी अधिक कृतज्ञ थे । परुष्णी सप्तसिन्धु के बीच में थी । आर्य मानते थे, इन्द्र की उसके ऊपर महती कृपा है, तो भी, सरस्वती का वह विशेष आदर करते थे । सरस्वती से पूर्व कुछ योजन पर यमुना एक विशाल नदी थी, पर उसे आर्य अपनी नही कह सकते थे । दुर्दान्त दस्यु उसके तट पर अधिकार रखते थे, यदि सरस्वती ने अन्न और शरण देकर सहायता न की होती, तो दस्युओ के सामने आर्यों के पैर उखड जाते । परुष्णी से ही पुरु जन की भूमि आरम्भ हो जाती थी, पर पुरु अब स्वय कई जनो में विभक्त हो गये थे । मध्य सारस्वत देश कुशिको का था । उसके उत्तर भरत पूर्व से पश्चिम परुष्णी तक फैले हुए थे । परुष्णी के तटपर उन्ही की एक शाखा तृत्सु जन रहता था, विग्रह होने पर एक जन दूसरे जन को अपने भीतर गोचारण—जीविका करने—की आज्ञा नही दे सकता था । पर शान्ति के समय वैसी कोई बाधा नही थी । आर्यो के भीतर जब सघर्ष होने लगता, तो दूसरे जन किसी पक्ष की ओर से मैदान में उतर पडते । यदि दस्युओ से सघर्ष होता, तो सभी आर्यजन एक होकर उनसे लडने के लिये बाध्य थे ।

सरस्वती वाला प्रदेश—सारस्वत देश—अत्यन्त समृद्ध था । देश के ही प्रताप से वैसा हो, यह नही कहा जा सकता, पर तो भी सारस्वत भूमि की गाए सबसे अधिक दूध देती थी, वहा के वृषभ सबसे बलिष्ठ होते थे । घोडे-घोडियो के पैदा करने में यद्यपि वह पीछे नही था, पर तो भी उसमें दूसरे भी मुकाबिला कर सकते थे । अवियो (भेडो) के लिये गन्धारि आर्य-जन प्रसिद्ध था, जो सिन्धु से पश्चिम में चारण करता था । सारस्वत भूमि हरे-भरे अरण्यो से—अश्वत्थ (पीपल), खदिर (खैर), विभीदक (भेला), हरिद्रु, किशुक (पलाश) आदि वृक्षो और मुज, काष्ठ, कुश, दूर्वा आदि तृणो से ढकी थी । यहा के स्वाभाविक और कृत्रिम जलाशयो में पुडरीक जब गर्मियो में फूलते, तो दिशाए सुगन्धित और सौन्दर्य से भर जाती थी ।

सारस्वत निवासी भरत हो या कुशिक, इन्द्र और अग्नि की सेवा में सदा लग्न रहते । घर-घर में अग्नि अखड जला करती, जिसकी साय-प्रात. परिचर्या करने में प्रत्येक आर्यकुल लगा रहता । सवेरे या सायकाल को यदि इन गावो में कोई पहुच जाता, तो प्रत्येक घर से हवन का धूम आकाश मे फैलता दिखाई पडता, उसकी सुगन्धि मन को तृप्त करती, कानो में गायत्र, रथन्तर या दूसरे साम (गीत) के मधुर स्वर सुनाई देते । दस्युओ की भूमि के पास होने से भरतो और कुशिको को सदा हथियारबन्द रहना पडता, पर यह उनके लिये चिन्ता नही, प्रसन्नता की बात थी । भरत और कुशिक अपने को सौभाग्यशाली समझते थे, कि इन्द्र ने अपनी विजय के लिये हमें चुना है । यमुना पार के कृष्णत्वचो के लिये वह अपने को पर्याप्त समझते थे, आवश्यकता पडने पर पुरुओ के सारे जन ही नही, बल्कि दूसरे आर्य जन भी साथ देने के लिये तैयार थे । यमुना पार दस्युओ की सख्या अधिक थी, वह साधनहीन भी नही थे । आखिर पणियो के दिये हुए हथियारो के बलपर ही तो आर्य सफलता की आशा रखते थे । ताम्र, सुवर्ण, मणि, मुक्ता सभी के स्वामी पणि थे । धन के अधिक लाभ तथा नागरिक जीवन ने उनको निर्बल बना दिया था, पर तो भी वह सर्वथा पौरुषहीन नही थे । यमुना के पूर्व पहाड की जड से नीचे भी दूर तक अनास (चिपटी नाकवाले) किरात रहते थे । यदि पणि और किरात मिलकर प्रहार करते, तो सरस्वती का तट उजाड हो जाता । पर, उनमें आपस में सघर्ष रहता था ।

पुरुओ का हरेक जन असाधारण सूरियो (सूरमाओ) को पैदा करने में सफल हुआ । इन्ही में वसिष्ठ पैदा हुए । इन्ही से कुशिको ने गाधिपुत्र विश्वामित्र को पैदा किया । भरतो ने देवश्रवा, देववात जैसे सपूत देकर सारस्वत भूमि को दस्युओ के आक्रमण से बचाया ।

मित्रों, बन्धुओ का समागम सबको अच्छा लगता है, पर, आर्यजन उसके लिए तो विशेष रूप से लालायित रहते थे । अपनी जीविका के लिए उनके अपने गो, अश्व, अजा, अवि पर्याप्त थे । पर, उनकी तो मान्यता थी—"केवलाघो भवति केवलादी" (केवल अपने आप खानेवाला केवल पाप खाने वाला होता है) । एक पिता के ही पाच पीढी में कितने परिवार हो जाते है । पुरुओ की तो पन्द्रह-बीस पीढिया बीत चुकी थी, इसलिए उनका अनेक जनो, ग्रामो, कुलो में बटना स्वाभाविक था । पर, अपने रक्त के साथ वह बहुत स्नेह रखते थे । कोई भी पौरव उनके लिए अपने घर का जैसा था, वैसे, आर्यमात्र के लिए घर का दरवाजा खुला रहता था । अतिथि सचमुच उनकी दृष्टि में देव था । उसकी उसी तरह श्रद्धा से परिचर्या करते, जैसे अग्नि की । इसीलिए हरेक आर्य-परिवार का अपनी शक्ति से अधिक दूध, दधि, सत्तू, मास का व्यय था । इसीलिए इन भोगो को अपनी जाति से भिन्न लोगो से छीनकर लाना वह धर्म समझते थे । जो सप्तसिन्धु के बीच में बसते थे, वह और न मिलता, तो दूसरे आर्यजन की गायो को ही लूटते । बुलाया आने पर वह सीमान्त पर भी पहुच जाते ।

[1] "इस सरस्वती ने वध्र्यश्व के लिये दिवोदास को दिया,"

पुरुकुत्सानी और उसकी ननद—पौरवी—में सगी बहिनो से भी अधिक स्नेह था। पौरवी अब तृत्सु जन के राजा वध्र्यश्व की रानी थी, इसलिए अपनी भाभी के साथ बराबर कैसे रह सकती थी। पर, यह असमर्थता थी। दोनो का सौभाग्य उदय हुआ, जो भरतो की भूमि मे उन्हें साल भर से अधिक रहने का अवसर मिला। यमुना पार के पणि, अज, शिग्रु और यक्षु— अभी आर्यो के सामने नतमस्तक नही हुए थे। पीत-केशो के पराक्रम को वह अच्छी तरह जानते थे, इसलिए भरसक सघर्ष करने से बचते थे। लेकिन, आर्य उन्हें शात रहने देना पसन्द नही करते थे। फलत उन्हें भी तैयार होना पडता था। तीनो पणि जनो के सम्मिलित आक्रमणो को अकेले भरत रोक नही सके, इस पर पुरुओ के सारे जन उनकी सहायता के लिए पहुचे।

सरस्वती के दोनो कक्ष तथा यमुना के पास के अरण्य में अब पुरुओ और तृत्सुओ के गोष्ठ थे। पणि टक्कर खाकर यमुना पार भाग चुके थे। उनकी गगा (नदी) के किनारे के नगरो को भी आयजन लूट ले गये थे। पर, आर्यो के लिये यमुना के पूर्व की दुनिया अज्ञात थी। उन्हें नही मालूम था, वह कितनी दूर तक है और पणियो की सख्या कितनी है। इसलिए यमुना से आगे पैर बढना उन्हें पसन्द नही था। पणियो का भय बराबर था। क्योकि आर्यो के अत्याचारो का बदला लेना वह आवश्यक समझते थे। आर्यजनो के लिए अपनी भूमि से बाहर बरस-छ महीने रह जाना कोई बात नही थी। उन्हें अरण्य की आवश्यकता थी। सत्तू और अपूप (रोटी) उनके खाद्य में थे, पर, थोडी ही मात्रा में, जिसका मिलना दुर्लभ नही था। इसीलिए इस भूमि में पुरुओ के भिन्न-भिन्न जन और उनके जननायक पडे हुए थे। एक-एक के पास हजारो पशु थे, इसलिए उनके डेरे दूर-दूर थे। अश्व जैसे शीघ्रगामी वाहन उनके पास थे, इसलिए पाच-सात योजन उनके लिए कुछ घटो की दूरी थी। आर्य नारिया पुरुषो की तरह ही घुडसवारी में दक्ष थी, और शत्रु का मुकाबिला भी निर्भीकता से कर सकती थी। इसी कारण कभी पौरवी वध्र्यश्व के साथ पुरुओ के गोत्र (गोष्ठ) में पहुचती और कभी छ वर्ष के कशोजु एव अपने पति को लिए पुरुकुत्सानी ननद के गोत्र में पहुचती।

त्रसदस्यु का नाम अब कशोजु पड गया था। पिछले साल की बात है। एक दिन शाम को सरस्वती के टेढे-मेढे तट के भीतर एक तरुण सिह छिपा हुआ था। त्रसदस्यु को कोडा लेकर बछडे-बछडियो के पीछे दौडना बहुत पसन्द था। वह वैसे ही दौड रहा था, कि आदमी की आवाज पा सिह अपने छिपने की जगह से निकला। त्रसदस्यु ने इस नए जन्तु को देखा, और कशा (कोडा) लिए उसके पीछे दौडा। सिह भागा जा रहा था, और बालक उसका पीछा कर रहा था। लोगो की नजर पडी। डर गए। पुरुओ का भावी राजा काल के गाल मे जा रहा था। लोगो ने दौडकर उसको पकडा। उसके साहस से पुरुजन बहुत प्रभावित था और पारितोषिक के रूप में अब उसे लोग कशोजु (कोडा लिये दौडनेवाला) कहने लगे। माता-पिता पुत्र के इस बाल-पराक्रम पर मुग्ध थे।

बुआ कशोजु की कहानी अनेक बार सुनकर भी तृप्त नही हुई थी। दोनो ननद-भाभियो में अभी एक ही सन्तान थी, इसलिए दोनो का स्नेह उसी पर केन्द्रित था। उनको काम भी क्या था? आर्य जनो में कोई भी काम करना राजा रानी और साधारण प्रजा में एक समान था। पुरुकुत्सानी और पौरवी भी कलशो को लेकर अपनी गायो का दूध दुह लेतीं, उन्हें जगल में हाक ले जाती थी। दूध गरम करना, दही-मक्खन बनाना, जौ या दूसरी चीजो को दूध में डालकर अशिर तैयार करना, यही नही गोष्ठो के कूडे-कर्कट को फेंकना भी उनके लिए त्याज्य नही था। पर, काम करनेवालो की कमी नही थी। साधारण आर्य परिवारो में भी पणि या निषाद जाति के दास-दासिया रहते थे। पुरुकुत्स और वध्र्यश्व के कुल के बारे में तो पूछना ही क्या? पुरुकुत्सानी के पास किलात दासी आश्चर्य की चीज थी, क्योकि अभी तक आर्यो के घरो मे किलात दास नही देखे जाते थे। सातापुरिया के युद्ध के समय कोई बच्ची पडी मिली। सैनिक उसे भी मारने के लिए उद्यत थे, इसी समय घोडा दौडाती पुरुकुत्सानी वहा पहुच गई। उसने उसे उठा लिया। अब वह आठ नौ वर्ष की थी, अधिकतर कशोजु के साथ खेलना उसका काम था। अबोध बालिका अभी समझ नही रखती थी कि उसके साथ कैसा बर्ताव किया जा रहा है। कभी-कभी शबला (काली) कह कर उसको झिडका जाता, तो उसे यह अवश्य मालूम होता, कि मेरी गणना पीतकेशो मे नही, कृष्णत्वचो मे है। यह वर्ण (रग) की रेखा को नही मिटा सकती थी, पर पुरुकुत्सानी का किलाती (किलात पुत्री) पर वात्सल्य था। कशोजु और किलाती अपने खेल मे लगे थे। और ननद-भाभिया एक अन्य अश्वत्थ (पीपल) के नीचे बैठे मन बहलाव कर रही थी।

वसन्त का समय था, कुछ वृक्षो के पत्ते गिरने लगे थे। कितने ही तो नगे हो चुके थे, कितनो मे नए पत्ते आ गए थे। अश्वत्थ के पत्र वैसे भी कोमल और कितने चिकने होते है, यह नवीन पत्र तो शुकपोत के पखो जैसे सुहावने मालूम होते थे। आर्यो के शरीर पर बारहोमास चमडे या ऊन की पोशाक रहती थी, इसलिए जाडे से उन्हें क्यो भय होने लगा। अपराह्न में गर्मी भी नही थी। दोनो सज-धज कर आई थी। ननद अभी किशोरी थी, भावज उसे सजाने में आनन्द अनुभव करती थी। पौरवी के पिगल केशो को चार कपर्दो (वेणियो) मे गूथकर दो पीछे दो कपोलो पर लटका दिया था। उसकी बडी-बडी नीली आखें हर्षोत्फुल्ल हो अपनी भाभी की ओर स्नेह के साथ देख रही थी। भाभी और भी स्नेह प्रतिदान करती बोली— ननद, तू कितनी सुन्दरी है?

—भाभी, तुम किससे कम हो? तुम्हारे लावण्य का बखान तो सारे सप्तसिन्धु में हो रहा है।

—पर मैं तो पुत्रवती हो चुकी हू, तू तो अभी कमोर है।

—पुत्रवती होना तो बडे सौभाग्य की बात है, फिर तुम्हे कशोजु जैसा पुत्र मिला है।

—नही ननद तू भी पुत्रवती होने ही वाली है।

—तब मै भी पुरानी हो जाऊगी।

—तेरी जैसी का सौन्दर्य इतनी जल्दी पुराना नही हो सकता। पैजवन (वध्र्यश्व) सचमुच बडा भाग्यशाली है, जो उर्वशी जैसी पत्नी उसे मिली।

—भाभी उर्वशी कैसी रही होगी, जिसके पीछे पुरूरवा पागल बना फिरा।

—बिल्कुल तेरी जैसी। देखती नही, जहा पौरवी पहुच जाती है, नर-नारी उसी की तरफ एकटक देखने लगते है। आर्यनारी का सौन्दर्य तेरे रूप में निखरा है। केशो को देखें या तुग नासिका को, नीले नेत्रो को देखें या लाल अधरो को, चन्द्रखड जैसे कपोलो पर दृष्टिपात करें या उन्नत श्वेत ललाट पर? शक्तिसम्पन्न सुघर बाहुलताओ को देखें या उनकी कोमल पतली अगुलियो और आरक्त करतल को। वक्ष, कटि, जानु, जघा (पिडली) पादतल सभी इतने सुन्दर है, कि तेरी उपमा तू ही हो सकती है।

--इसीलिए मै द्वितीय उर्वशी हू, क्यो ?

--हा, वह उर्वशी नही है, जो पुरुरवा को रुलाती रही ।

--अपने प्रियतम से ऐसा निष्ठुर बर्ताव वह कैसे कर सकी ?

--वह मानवी नही थी ।

--पर दानवी भी तो नही थी । अप्सरा थी, देवागनाओ में श्रेष्ठ थी

--ननद तेरे मुह से कितनी बार मै उर्वशी का गीत सुन चुकी हू पर तृप्त नही हुई । एक बार और सुना ।

--लेकिन मै तभी गाने के लिये तैयार हू जब तुम भी उस गान मे साथ दो ।

--कैसे ?

--पुरुरवा की बातें मै गाऊगी और उर्वशी की तुम ।

--नही प्यारी तू उलटा कहती है । उर्वशी लायक तू ही है । नारी सुलभ कोमलता का मुझमे अभाव है ।

--भाभी ऐसा क्यो कह रही हो । शौर्य और सौन्दर्य का अद्भुत मिश्रण तुम्हारे भीतर है इसे सभी कहते है और तुम भी जानती हो ।

--अच्छा तो शौर्य की एकाधिकारिणी होने के कारण म ही पुरुरवा के गीत गाती हू ।

दोनो ने उस स्थान से पुरुरवा की गाथा शुरू की जब कि उर्वशी तीन साल तक रह अपने पुत्र भरत को पैदा कर उसे छोड कर आना चाहती थी । पुरुकुत्सानी ने पुरुरवा के करुण स्वर मे गाया --

हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर कर, ठहर, हम आपस में बात करे । यदि हम दोनो मत्रणा न करेंगे तो आने वाले हमारे दिन सुख के नहीं होंगे । पुरुकुत्सानी (उर्वशी)--इस हमारी बात से क्या प्रथम उषा-सी मै तेरे पास नहीं आई ।

हे पुरुरवा अपने घर चला जा । वायु की तरह मै दुर्लभ हू ।

पुरुरवा--तेरे बिना मेरे तूणीर से बाण नही फेंका जाता, श्री नही मिलती । सैकडो गौओ को मै जीतकर नही ला सकता, वीरो-रहित मेरे कार्य शोभते नही । न (मेरे) योद्धा नाद करने की सोचते हे ।

उर्वशी-- हे उषा, यदि वह उर्वशी श्वसुर का धन देने की इच्छा करती तो पास के घर से शयन-घर में जाती और दिन-रात आराम से रहती । हे पुरुरवा, दिन मे तीन बार मुझे तू दण्ड से पीटता था । मेरा किसी सौत से झगडा नही था ।

मेरे ही घर में तू आता था, तब तू हे सुवीर, मेरा अग था ।

पुरुरवा-- जब पुरुरवा मानुष होकर अमानुषियो का सेवन करने के लिये बढ़ा, तो वह हरिनी की तरह या रथ में जोते अश्वो की तरह भयभीत होकर भागी । जब (उसने) मरणधर्मा होते अमृताओ से सम्पर्क करने के लिए उनके पास जाने का प्रयत्न किया, तो वह अन्तर्धान हो गई । उन्होने शरीर को नही दिखाया ।

क्रीडा करते अश्वो की तरह भाग गई ।

बिजली की तरह चमक धारण करती जो उर्वशी मेरी कामनाओं को पूरा करती थी । जिसने (मेरे लिए) सुजात मानुष-पुत्र जना वह उर्वशी उसे दीर्घायु करे ।

उर्वशी--हे पुरुरवा, तूने रक्षा के लिये (उसे) ऐसे पैदा किया, मेरे में आज धारण किया । जानते हुए मैने तुझे कहा था ।

उस समय मेरी बात तूने नही सुनी, (अब) क्यो व्यर्थ बोलता है ।

पुरुरवा-- पैदा हुआ पुत्र (तेरी) इच्छा करेगा । क्या जानते हुए वह आसू नही गिराएगा ?

स्नेह युक्त पति-पत्नी को कौन वियुक्त करेगा ?

जो श्वसुर के घर में आग जल रही है, उसे कौन बुझाएगा ?

उर्वशी-- मै तुझे बतलाती हू । वह (शिशु) तेरे पास आसू नही गिराएगा न रोएगा । मै उसका कल्याण करूगी, उसे मै तेरे पास भेज दूगी ।

तू घर लौट जा, तू मुझे नही पा सकता ।

पुरुरवा-- सूर (पुरुरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके (वह) फिर नही लौटेगा ? वह आपदाओ के नीचे दबेगा, उसे भेडिये बलात् खा जायेंगे ।

उर्वशी-- हे पुरुरवा, तू नही मर, नही गिर, न अशिव भेडिये तुझे खाए । स्त्रियो की मित्रता नही हुआ करती, (उनके) ये हृदय (नही) हे तो, शालावृको (भेडियो) के हृदय होते हे ।

दोनो के मधुर कठ से निकले गीत के स्वर चारो ओर फैल रहे थे । पुरुरवा-उर्वशी के वियोग का गान क्यो उन्हें पसन्द आया ? वह बहुत करुण था । गाते-गाते दोनो के नेत्र गीले हो गए, और पौरवी ने मानो अपने हृदय के विषाद को हटाने के लिए ही कहा

--यह नही हो सकता । स्त्रियो के हृदय की उपमा भेडिए से नहीं दी जा सकती, जिसे एक बार हृदय अर्पित कर दिया, उसके साथ ऐसी निष्ठुरता नही बरती जा सकती ।

पुरुकुत्सानी बोली--लेकिन, उर्वशी मानवी नही देव-कन्या, अप्सरा थी । वह देवलोक को कैसे छोड सकती थी ?

--यदि किसी नारी को अपने लोक और प्रेमी में एक को चुनना हो, तो वह प्रेमी को ही चुनेगी ।

--देवो में हमारी तरह का एकान्त समर्पण नही है--पुरुकुत्सानी ?

--मै एकान्त समर्पण की बात नही करती । समर्पण दोनो तरफ से होता है । यदि दूसरी तरफ वैसा भाव न हो, तो मै नारी को दासी बनने के लिए नही कहती । अच्छा भाभी, उर्वशी के पुत्र का क्या हुआ ?

--उर्वशी का पुत्र भरत था, जिसकी सन्तान भरत जन है ।

--अर्थात् हमारे तुत्सु उसी भरत की सन्तान है । तो क्या यह अर्धदेव और अर्ध-मानव है ।

--अर्धदेव अर्धमानव कोई नही हो सकता । तुत्सु, भरत पूरे मानव है । पुरुरवा भी मनु की सन्तान था ।

किलाती के साथ खेलता त्रसदस्यु दूर चला गया था । शायद गाने की आवाज उसके कानो में पडी, वह दौडा-दौडा आया । मा से पहले ही बुआ ने गले से लगा लिया । बुआ के गीतो को वह बहुत पसन्द करता था । उसने कहा--"बुआ, एक बार फिर गाओ ।"

उसका आग्रह टाला नही जा सकता था । लेकिन, गीत को दोहराने से पहले पौरवी ने अपनी भाभी से कहा--

--भाभी, इस का नाम अर्धदेव क्यो न रक्खा जाए ?

--कितने नाम रखोगी ? क्या त्रसदस्यु और कशोजु पर्याप्त नहीं है ।

--पर, मुझे अर्धदेव पसन्द आता है, मै तो इसे, इसी नाम से पुकारूगी ।

पौरवी ने फिर एक बार पुरुरवा की गाथा को अकेले गाकर सुनाया ।

× ×

पेजवन कौल (कुल) में आज आनन्द-उल्लास फैला हुआ था । वृद्ध ऋत्विज इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-सोम, इन्द्र-वरुण की स्तुति गा रहे थे । प्रज्ज्वलित

अग्नि में हवन हो रहा था। स्त्रिया मधुर कण्ठ से गीत गा रही थीं। आज वध्र्यश्व को प्रथम पुत्र प्राप्त हुआ था। सरस्वती की गद्गद् होकर वह वन्दना कर रहा था---सरस्वती ने पैजवन कुल को यह पुत्र प्रदान किया।

पुरुकुत्सानी पहले से कशोजु के साथ आ गई थी। पुत्रजन्म के दिन पुरुकुत्स भी पहुच गया। बालक त्रसदस्यु चारो ओर के उल्लास को देखकर जानने की कोशिश करता था ? पुरुकुत्सानी उसे यही कह कर समझाती थी---तेरा भैया आ रहा है। लेकिन, बालक की जिज्ञासा इतने से तृप्त थोड़े ही हो जाती। वह प्रश्नो की झडी लगा रहा था---कहा है मेरा भैया, दिखा। कहा से आया।

त्रसदस्यु बचपन ही से इन्द्र की महिमा सुनता आया था। महान् इन्द्र भैया को भेज रहा है, यह उत्तर उसे पर्याप्त मालूम हुआ। लेकिन, वह बड़ी अधीरता से नये भैया के देखने की प्रतीक्षा में था, और नये शिशु को देखने वालो में वह पहला था। सफेद गोल-गोल लोंदा सा देखकर उसे पहले सन्तोष नही हुआ। शिशु की आखें मुदी हुई थी। जिससे वह समझने लगा, शायद उसकी आखें नही है। पर, मा और फुआ ने समझाने की कोशिश की---तू भी जब महान इन्द्र के पास से आया था, तो ऐसा ही था।

सरस्वती-तट पर रहते ही त्रसदस्यु ने नवागत शिशु की खुली आखें देखी, जो उसकी मा की तरह नीली थी। त्रसदस्यु की मा सुवर्णाक्षी थी, पर फुआ नीलाक्षी। खड़े होने तक के लिए पुरु जन सरस्वती के किनारे नही रह सका, पर त्रसदस्यु ने अपने नवागत भाई को आखें खोलते गूगा करते देखा। उसके चेहरे का आकार-प्रकार अब नवजात जैसा नही था। उसका नाम दिवोदास रक्खा गया। दिवोदास बेचारा अभी समझता भी नही था, पर त्रसदस्यु दिन में पचास बार दिवोदास कहकर पुकारता था। उसकी गोद में शिशु को देना नही चाहते थे, लेकिन कभी-कभी किलाती की गोद से लेकर वह अपना वात्सल्य प्रकट करता। बालक-सुलभ भाषा में कहता---दिवो, कोई बात नही, तू भी बड़ा हो जायेगा, मेरे जैसा। फिर हम दोनो खेला करेंगे। बछेड़ो को पकड़ेंगे, मुह में लगाम देकर उन की पीठ पर चढ़ेंगे। डरने की बात नही। मेरी नना (माता) खूब घोड़ा दौड़ाती है। उसका घोड़ा बहुत बड़ा है। मै तो उसके पेट को भी नही छू सकता। देखा, वह कैसे कूदकर उस पर चढ़ जाती है। मै भी चाहता हू। मुझे बछेड़ा पहचानता भी है हा वह, मेरा मुह सूघता है, उसी तरह जैसे नना। समझ रहा है ना ?

दिवो के गू को त्रसदस्यु ने समझा, वह हू कर रहा है। फिर वह उससे बातें करने लगा---हम दोनो बड़े हो जाएगे, तो जानता है क्या करेंगे ? खूब अश्व दौड़ाएगे। कैसा अश्व पसन्द करेगा ? लाल या सफेद ? हम दोनो के घोड़े एक ही रग के होने चाहिए।

दिवो ने फिर 'गूं' किया, त्रसदस्यु ने अपनी बात जारी रक्खी---हा, ठीक कहा। हम दोनो के अश्व एक ही रग के रहेंगे। पुरुओ के पास बहुत अच्छे-अच्छे घोड़े हैं। मै उन्हें पसन्द करूगा। बछेड़े का रग लाल। खेलते-खेलते वह हमारे दोस्त बन जाएगे। फिर उन्ही पर हम सवार होंगे।

दोनों के वार्तालाप में विघ्न डालने के लिये मातायें तैयार नही थी, पर उनकी बात समाप्त कहा होने जा रही थी। मा को पास आया देख कर त्रसदस्यु शरमा गया।

पुरुओ के उत्तर जाने के कुछ दिनो बाद तृत्सु भी पश्चिम की ओर चले गए। पौरवी को पुरुओ का वियोग दुःखदायक लगा, और जब सरस्वती को छोड़ने का दिन आया, तो उसका दिल भारी हो गया। सरस्वती ने उसे पुत्र प्रदान किया था। वह उसके लिए हृदय से कृतज्ञ थी। सरस्वती के लिए हवन करते उसने हृदय से कृतज्ञता प्रकट करते कहा---माता सरस्वती तुम्हारे उपकार को मै कभी नही भूलूगी। दिवोदास मेरा नही तुम्हारा पुत्र है। इसकी रक्षा करना तुम्हारा काम है। पैजवन कुल के गौरव को कायम रख सके, इसके योग्य तुम इसे बनाना।

उस दिन भरतो की ओर से भोज हुआ। देववात भरत ने सैकड़ो वृषभ पकाये, सोम की तो मानो नदी बहा दी। साय सवन के बाद जो भोज और नाच-गाना आरम्भ हुआ, तो भिनसार तक वह चलता रहा। तृत्सु और भरत नर-नारी भारी सख्या में इस भोज में सम्मिलित हुए। सबेरे सूर्योदय के होते ही तृत्सु चले गये। उनके गोष्ठो का सूनापन कितने ही दिनो तक भरतो को उदास करता रहा। पर, आर्यो का जीवन तो सदा एक जगह रहने का नही था। उसमें सयोग-वियोग होते ही रहते थे। बन्धु-प्रेम और अतिथिपरायणता ऐसी बातें थी, जो उन्हें मिलने का प्राय: अवसर दे दिया करती थी। युद्धो के कारण भी वह प्राय एकत्रित हो जाया करते थे। साल भर की प्रतीक्षा के बाद मालूम हो गया, यमुना के पार के पणि अब फिर भरतो की भूमि पर आक्रमण करने की हिम्मत नही रखते, इसीलिए अब सरस्वती के किनारे आगन्तुक जनो के रहने की आवश्यकता नही थी।

× × ×

बीस महीने से परुष्णी का तट वध्र्यश्व पैजवन देख नही पाया था। सरस्वती के लिए उसके हृदय में स्नेह और भक्ति थी। पर परुष्णी (रावी) उसकी अपनी माता थी। सरस्वती को वह स्नेहमयी मौसी का स्थान दे सकता था। यद्यपि वह यह कह कर सरस्वती देवी को रुष्ट नही करना चाहता था। पर, कहा परुष्णी और कहा सरस्वती ? परुष्णी की धार गर्मियो में भी बढ़ जाती थी, जाड़ो में भी वह विशाल थी, जिसके स्वच्छ निर्मल जल के भीतर बालुका-कण झिलमिल-झिलमिल चमकते थे। उसमें तैरने में विशेष आनन्द आता था। सरस्वती की क्षीण धार को, तो जान पड़ता था, आदमी कूद कर भी पार हो जाये। परुष्णी की धार में तैर कर पार करने में पूरा व्यायाम हो जाता था, और पार जाना सभी के बस की बात नही थी। वध्र्यश्व को यह भी भलीभाति मालूम था, कि परुष्णी पर इन्द्र की बड़ी कृपा है। उषादेवी से छेड़छाड़ करते एक बार इन्द्र ने उसके शकट के चक्के को परुष्णी के किनारे गिरा दिया था। सरस्वती के किनारे जब हजारो गाय-घोड़े आ जाते, तो डर लगता, वह कही सारे पानी को न पी जाए। पर, परुष्णी का जल क्या कभी कम होने वाला था ? इतने दिनो के बाद परुष्णी के जल के स्पर्श से वध्र्यश्व को विचित्र आनन्द मालूम होता था।

दिवोदास छ ही महीने का था, जब वह सरस्वती की गोद छोड़ कर चला आया था। उसको उसे क्या याद आ सकती थी ? पर, नना सरस्वती के प्रति बड़ी कृतज्ञ थी। वह अपने पुत्र के कानो में बराबर सुनाती रहती थी---"सरस्वती तेरी माता है, उसने तुझे हमें दिया।" इसके साथ सरस्वती सम्बन्धी कुछ ऋचायें भी वह बड़े मधुर स्वर से गाया करती थी। दिवोदास को सरस्वती नदी के तौर पर नही, बल्कि देवी के तौर पर याद रह गई। पर, उसे बढ़ना परुष्णी के किनारे था।

मातुलपुत्र त्रसदस्यु कितनी ही बार अपनी मां के साथ पैजवनकेत में आता। इस समय दोनों बालक साथ खेला करते, पर दोनो की आयु में

सात वर्षों का अन्तर था, इसलिये वह एकता स्थापित नही हो सकती थी जो समवयस्कों में होती है। त्रसदस्यु ने पाच वर्ष की आयु में कशोजु की उपाधि प्राप्त की, तो दिवोदास भी निर्भीकता में कम नहीं था। शरीर के आकार और बल में वह अपनी आयु के लडको से सदा दो साल बडा मालूम होता था। मना को इसके लिए बडा अभिमान था। जिस तरह उसका पुत्र बढ़ता जा रहा था, उसी तरह मना की देवताओ में भक्ति भी बढती जा रही थी। यद्यपि तीन साल बाद पौरवी को एक और पुत्र सुमित्र पैदा हुआ, पर वह दिवोदास से माता के स्नेह को बटाने में सफल नही हुआ। शायद उसका कारण दिवोदास का अधिक शरीर-सौन्दर्य, बल और प्रतिभाशाली होना था। त्रसदस्यु दिवोदास और अपने लिये दो बछेडो को नही चुन सका, पर दिवोदास का बछेडो से बहुत शौक था। चार वर्ष की उमर में ही वह एक बछेडे की पीठ पर चढ गया, और दौडने पर जब जमीन पर गिर पडा, तो जरा भी नही रोया। पिता को हथियार बाध कर बाहर जाते देखकर दिवोदास भी मचल पडता और उसका हठ इतना जबदस्त था, कि उसे पूरा ही करना पडता। उसके लिए छोटा-सा अय शिप्र (ताबे का शिरस्त्राण), छोटा सा धनुष और इषुधि, यहा तक कि छोटी सी असि भी बना देनी पडी थी। इसे पहन कर वह लघु वध्र्यश्व बन जाता। वध्र्यश्व यद्यपि पुरुओ के मुख्य जन का नायक नही था। वह सौभाग्य तो उसके साले पुरुकुत्स को प्राप्त था। पर वैयक्तिक शौर्य के कारण वह सप्तसिन्धु में ऊचा स्थान प्राप्त कर चुका था। युद्ध में वह एक कुशल सेनानी था। पर, एक बडे योद्धा के कारण ही उसकी प्रसिद्धि नही थी, बल्कि सभी जनो की समृद्धि की कामना करते हुए वह सबके लाभ के लिए प्रयत्नशील रहता, और आपसी झगडे को मिटाने में सदा सफल रहता। उसके पहले तृत्सु जन और और पैजवन राजकुल की स्थिति बहुत ऊची नही थी। परुष्णी के तट की उर्वर भूमि—जो क्षेत्रो और महान् अरण्यो से ढकी थी—ने उसके गो-अश्वो को बढाकर समृद्ध बनाने दिया था, तो भी वध्र्यश्व के अपने निजी गुण यदि अधिक न होते, तो उसका प्रताप इतना न बढता। इस उत्कर्ष से पडोसियो को ईर्ष्या भी कभी-कभी होती थी। पुरु नही चाहते थे, कि हमारी एक शाखा (तृत्सु) हमसे समानता का दावा करे। तुर्वश, यदु, अनु, द्रुह्यु भी तृत्सुओ और उनके राजा को पुरानी दृष्टि से देखना चाहते थे। पर, वध्र्यश्व उनकी ईर्ष्या को आगे बढने नहीं देता था। यदि वह अपने योद्धापन का अभिमान करता, तो अवश्य पडोसियो के कोप का भाजन बनता। परन्तु वह तो सबका मित्र, सबका बन्धु था। उसके गोत्र में सबका दिल खोलकर स्वागत होता। आर्यजनो के सैकडो अतिथि प्रतिदिन उसके साथ भोजन-पान करते। अपनी स्वाभाविक बन्धुता के कारण वह शत्रु को भी अपना मित्र बना लेता। दिवोदास पिता के इस जीवन का अग होते बढने लगा।

जाडो में वध्र्यश्व का गोत्र उत्तर में, ऐसे स्थान में चला जाता, जहा से उत्तर के बृहत् पर्वत बहुत दूर नही रह जाते। दिवोदास अपने पिता से इन पर्वतो के बारे में पूछता। वस्तुत पर्वतो को देखने का उसे कई सालो तक अवसर नही मिला था। भरतो की भूमि में पर्वत नही थे। मातुलकुल के उत्तरी छोर पर बृहत् पर्वत अवश्य थे, पर उन्हें देखने का उसे अवसर नही मिला था। पहले पहल उन्हें देखकर उसे मालूम हुआ, कि यह भी मेघ है। मना ने बतलाया—"मेघ नहीं, यह पर्वत है। मेघ पानी के बने होते है, और यह पत्थर के बने है।" पीछे तो हर साल उसे पर्वतो के पास जाना पडता। कभी-कभी उसकी इच्छा पर्वतो में घुसने की भी होती, लेकिन पिता-माता मना कर देते थे। वहा क्या भय की चीज हो सकती है, यह दिवोदास की समझ में नही आता था। फिर कहा जाता—वहा इन बृहत् पर्वतो में देव, गन्धर्व और अप्सराए रहती है। पर, दिवोदास के लिए यह भय की वस्तुए नही थी। वह उनको सम्मान दिखाने के लिए तैयार था। वह भी अपने भक्तो पर कृपा करते हैं, यह उसे मालूम था।। फिर माता ने बतलाया—वहा पिशाच रहते हैं, जो आदमी को पकडकर खा जाते है। बहुत वर्षों तक उसे समझ में नही आया कि पिशाच क्या चीज है? आर्यों से भिन्न शरीर के वर्ण आकृति-वाले आदमी उसने देखे थे। भूरे पणि और काले निषाद तो उसके अपने घर में दास-दासियो की तरह रहते थे। अपने मातुलकुल में उसने दासी किलाती को भी देखा था, जो अब तरुणी हो चुकी थी। लेकिन, पिशाच मानव नही है, यह भी वह सुनता था। इसलिए वह उनके आकार-प्रकार को अपनी आखों के सामने चित्रित नही कर सकता था। पिशाच को देखने की उसकी बडी इच्छा थी। हमारे आसपास में भी रात-बिरात वही पिशाच आ जाते हैं, यह उसे नहीं बतलाया गया था। माता-पिता अपने पुत्र को निर्भीक रखना चाहते थे, इसलिए भयभीत होने का कोई अवसर उप-स्थित नही होने देते थे।

उस छोटी आयु में दिवोदास को मृगया में जाने का कहा मौका मिलता? पर, वह अपने धनुष-बाण को बराबर लिए घूमता, और जब सियार, लोमडी अन्धेरे-उजाले में कभी दिखलाई पडते, तो तीर छोडे बिना नही रहता। उसका तीर ऐसा सधा होता, कि ठीक लक्ष्य पर जाता। उसके तीर के फल न तेज थे, न उसके धनुष में इतना बल था कि लक्ष्य का कोई नुकसान होता, पर अपनी इस सफलता पर उसे बडी प्रसन्नता होती।

श्रोता—(पृष्ठ ३० का शेषांश)

"अच्छा और क्या देखा ?"

"वहा बच्चे की उत्पत्ति पर शोक मनाया जाता है।"

"वह क्यो ?"

"वह कहते है कि प्रत्येक नया बच्चा अपने साथ नई मुसीबतें लाता है।"

"बहुत खूब, अच्छा मै आपके लिए औषधि तैयार करता हू—शेष बातें———"

"औषधि रहने दीजिए—अब इसकी आवश्यकता नहीं रही।"

"अभी तो आप कह रहे थे कि आप हर समय उदास रहते है।"

"जिस वस्तु की कमी मुझे उदास रखती थी, वह मुझे मिल गई।"

"वह कौनसी वस्तु है?"

"श्रोता।"

डाक्टर उसका मुह ताकने लगा, लेकिन वह चुपके से नमस्कार कर औषधालय से बाहर चला गया।

अनुवादक . जयभगवान गोयल

पुस्तक समालोचना



शतरज के मोहरे लेखक—अमृतलाल नागर, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुड रोड, बनारस, पृष्ठ सख्या—४३०, मूल्य—६ रु० सजिल्द ।

उपन्यासो के साथ भूमिका देने की आवश्यकता आमतौर मे नही होती। पर 'शतरंज के मोहरे' एक ऐसा उपन्यास है, जिसके साथ भूमिका देना नितान्त आवश्यक था। यह उपन्यास अवध की नवाबी के वातावरण में सन् १८२० से प्रारम्भ होकर १८३७ में समाप्त होता है। लखनऊ के नवाब गाजीउद्दीन और उनके बेटे नवाब नसीरुद्दीन की कहानी इस उपन्यास में है। उन दिनो के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाचे का अत्यन्त सजीव चित्रण 'शतरज के मोहरे' में किया गया है। मेरी राय में यह आवश्यक था कि इस पूर्णत सफल उपन्यास के लेखक श्री अमृतलाल नागर अपने पाठको को यह प्रारम्भ ही में बता देते कि इस उपन्यास में इतिहास कहा तक है और कल्पना कहा तक। उपन्यास के बहुत से पात्र स्पष्टत काल्पनिक होते हुए भी यदि कोई उपन्यास अपने युग का सही-सही चित्रण करता है, तो उसे पूरी तरह काल्पनिक नही कहा जा सकता।

विशेषत: 'शतरज के मोहरे' में जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह एक ऐसा सडा-गला समाज है, जहा किसी तरह के आदर्शवाद की गुंजाइश ही नही है। एक अत्यन्त कायर, कृतघ्न, स्वार्थी, धोखेबाज, लम्पट और लुटेरे समाज का अत्यन्त सजीव खाका देख कर सहृदय पाठक स्वभावत: यह जानना चाहेगा कि क्या आज से सवा सौ वर्ष पूर्व का उत्तर भारतीय समाज सचमुच इसी ढग का था। फिर इस उपन्यास में कुछ ही पात्रो का अन्तर्मुखी चित्रण नहीं है, एक पूरे का पूरा अत्यन्त कलुषित, नीच और कायर मानव-समूह इस उपन्यास में चित्रित है। पाठक यह जानना चाहेगा कि इस सब में सचाई कहा तक है। मेरी धारणा है कि लेखक को उस काल के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हुई है, और उसी को आधार बना कर लेखक ने इस प्राणवान उपन्यास की रचना की है। पर जैसा कि मै प्रारम्भ में लिख चुका हू, इस सब का स्पष्टीकरण भूमिका अथवा परिशिष्ठ में आवश्यक था।

'शतरज के मोहरे' लखनऊ की नवाबी के सम्बन्ध में पहला उपन्यास नही है। इस से पूर्व भी उस युग के बारे में कितने ही मनोरजक उपन्यास लिखे जा चुके है। पर उन उपन्यासो और 'शतरज के मोहरे' में एक आधारभूत अन्तर है। जहा उन उपन्यासो में नवाबी युग के कुछ सामन्तो या कुछ गिने चुने पात्रो को ही महत्व दिया गया था, वहा 'शतरंज के मोहरे' में उक्त १७ वर्षों के अवधी जन-समूह का चित्रण करने का सफल प्रयत्न किया गया है। और इसे मै लेखक की एक बहुत बडी सफलता मानता हू।

इस उपन्यास की दूसरी सफलता इस की मनोरजकता है। उपन्यास अत्यन्त मनोरजक है। मै तो यहा तक कहूगा कि 'शतरज के मोहरे' स्काट के उपन्यासो से कम मनोरजक नही है। यद्यपि शैली की दृष्टि से यह एकदम भिन्न श्रेणी का है।

जहा तक आज से सवा सौ वर्ष पूर्व के लखनऊ के सतही चित्रण का सम्बन्ध है, 'शतरज के मोहरे' पूर्णत सफल रचना है, पर मानव हृदय और परिस्थिति-जन्य मानसिक सघर्षों की गहराइयो में जाने का कोई प्रयास इस उपन्यास मे नही किया गया। उस दृष्टि से यदि आप इस घटना-प्रधान मनोरजक उपन्यास को परखना चाहेंगे, तो आप को निराशा होगी। टालस्टाय के 'वार एण्ड पीस' की शानदार गहराइया इस रचना में नहीं हैं। वह शायद लेखक को अभिप्रेत भी नही था। सीधा-सादा पर अत्यन्त मनोरजक और प्राणवान कथानक इस उपन्यास में है। मुझे विश्वास है कि 'शतरज के मोहरे' खूब लोकप्रिय सिद्ध होगा। यह रचना श्री अमृतलाल नागर के यश के अनुरूप है, और यह देख कर मुझे बहुत खुशी हुई है कि हिन्दी के इस श्रेष्ठ कलाकार के पास कल्पना और भावना दोनो का यथेष्ठ भण्डार है।

सत्ती मैया का चौरा लेखक—भैरवप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन, ५ खुसरो बाग, इलाहाबाद, पृष्ठ सख्या—७४४, मूल्य १२) रु० सजिल्द।

लगभग २ लाख शब्दो का यह उपन्यास लेखक का छठा और और सबसे बडा उपन्यास है। अब स्थिति यह है कि मैने श्री भैरवप्रसाद गुप्त का एकमात्र यही उपन्यास पढा है। उनकी कहानिया मैने पढी हैं और उनसे प्रभावित भी हुआ हू, पर 'सत्ती मैया का चौरा' पढ कर मेरी आशा पूर्ण नही हुई।

इस उपन्यास का नायक मन्ने नामक एक मुसलमान जागीरदार है। देश विभाजन से पूर्व और देश विभाजन के बाद इस परिवार की आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक स्थिति का चित्रण 'सत्ती मैया का चौरा' में है। उपन्यास का प्रारम्भ उस समय से होता है, जब उर्दू साहित्य का विद्यार्थी होते हुए भी मन्ने कालेज की एक हिन्दी डिबेट में हिस्सा लेने का निश्चय करता है और अन्त वहा होता है जब जमीदारी नष्ट हो जाने के बाद अपने गाव में जारी किए गए एक स्कूल की प्रबन्ध समिति का मुखिया होने के कारण मन्ने पर लाठियो से आक्रमण होता है। मन्ने को कस्बे के अस्पताल में दाखिल करना पडता है, मरहम पट्टी के बाद वह गाव की पचायत के सभापति से कहता है : "मै मरूगा नही सभापति जी!"

इस दीर्घकाय उपन्यास में कथानक और घटनाएं अत्यन्त मात्रा में हैं, पर यह बात किसी उपन्यास को आवश्यक रूप से कमजोर नहीं बनाती।

गहरी विवेचना और अन्तरानुभूति के सम्यक चित्रण से कथानक और घटनाओं की न्यूनता पूरी की जा सकती है। पर इस उपन्यास में किसी तरह की अन्तरानुभूति का प्रभावशाली चित्रण या किन्ही परिस्थितियों की गहरी विवेचना भी नही है। यो अत्यन्त सामान्य बातो की मानसिक प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में लम्बे-लम्बे चिन्तन 'सत्ती मैया का चौरा' में प्रभूत मात्रा में है। पर वे अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण उपन्यास को और भी दुर्बल बना देते हैं।

श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने इस उपन्यास में कुछ नई शैलियो का प्रयोग अवश्य किया है। एक प्रमुख प्रयोग तिथिक्रम को आगे पीछे करने का है। एक घटना का चित्रण करते हुए पुरानी कोई बात याद आ जाती है और उसका विशद चित्रण किया जाता है। इस सम्बन्ध में लेखक यथेष्ट सफल भी हुआ है। विशेषत मन्ने के पूर्वजो के समय का चित्रण तो खूब शक्तिशाली और प्राणवान है। इसी तरह उपन्यास के कुछ अन्य स्थल भी अच्छे बन पडे है। पर सब मिला कर पूरा उपन्यास, मेरी राय से, कमजोर है। मेरी इस प्रतिक्रिया का शायद एक कारण यह भी हो कि श्री भैरवप्रसाद गुप्त से मुझे इसकी अपेक्षा बहुत अधिक प्राणवान रचना की आशा थी और जैसा कि मै पहले कह चुका हू, उनका अन्य कोई उपन्यास मैने अभी तक नही पढा।

उपन्यास की छपाई, सफाई, जिल्दबन्दी आदि सुन्दर है।

भोर की किरणें लेखक—अरुण, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सज, कश्मीरी गेट, दिल्ली ६, पृष्ठ सख्या—१८०, मूल्य—२ ५० सजिल्द।

'भोर की किरणें' प्रागैतिहासिक युग के मानव के प्रेम और जीवन-सघर्ष के सम्बन्ध में लिखा गया लघु उपन्यास है। इस युग के सम्बन्ध लिखने के लिए जिस अध्ययन, विवेचन शीलता और कल्पना की आवश्यकता होती है, यह सब इस रचना में कहीं भी दिखाई नहीं देता। हा, विषय की नवीनता के कारण यह रचना अपरिपक्व मन के पाठको को प्रभावित कर सकती है।

कुहासा मूल लेखक—प्रेमेन्द्र मित्र, अनुवादक—हसकुमार तिवारी, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरीगेट दिल्ली, पृष्ठ सख्या—१२२, मूल्य—२ ५० सजिल्द।

श्री प्रेमेन्द्र मित्र बगला के सुप्रसिद्ध लेखक है। उनका यह लघु उपन्यास पाठक को चाहे कायल (convinced) भले ही न कर सके, पर पाठक इसकी शक्तिमत्ता से इन्कार नहीं कर सकेगा। इस उपन्यास का नायक जिस तरह एकाएक स्मृति शक्ति खोकर भी बाकी सभी तरह की शक्तिया बनाए रखता है, वह स्पष्टत अस्वाभाविक है। इस तरह की अस्वाभाविकता से बचने के लिए टाल्सटाय अपनी कहानियो में देवदूत या दैवी शाप आदि की कल्पना किया करते थे। व्यक्तिगत रूप से मै उसी तरीके को अधिक पसन्द करूगा। उपन्यास के कथानक को बीच ही में छोड दिया गया है। इसकी कैफियत शायद यह हो कि उपन्यासकार को तो दिमागी कुहासे से ही मतलब था। वह कुहासा समाप्त हो गया तो उपन्यास भी समाप्त हो गया। अब उपन्यास के पात्रो का चाहे जो कुछ हो। अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है।

कच्चे धागे: लेखक—धर्मप्रकाश आनन्द, प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन, ५ खुसरो बाग, अलाहाबाद, पृष्ठ सख्या—२२२, मूल्य—३ ७५ सजिल्द।

श्री धर्मप्रकाश आनन्द की यह रचना देख कर मुझे सहसा एक उल्लास-सा अनुभव हुआ और आज से लगभग २० साल पहले का जमाना याद आगया, जब लाहौर में कृष्णचन्द्र, बेदी, धर्मप्रकाश आनन्द, अश्क, बलराज साहनी आदि उर्दू और हिन्दी में कहानिया लिखा करते थे और ये सब ऐसे लेखक थे, जिन के सम्बन्ध में मेरी उन दिनो भी यह धारणा थी कि इन सब का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। इन सबकी अपनी-अपनी शैली थी और अपना-अपना मौलिक दृष्टिकोण था। धर्मप्रकाश आनन्द में कुछ ऐसी ताजगी थी और उनकी रचनाओ में व्यग्य और फिलासफी का कुछ ऐसा पुट था कि मुझे उनसे भी बडी-बडी आशाए थी। उक्त सभी लेखकों में मै पूरी दिलचस्पी लेता रहा हू। ये पाचो लेखक आज अपने-अपने क्षेत्र में यथेष्ट सफल है। यह बात जुदा है कि बलराज साहनी अभिनय के क्षेत्र में चले गए और बेदी सिनेमा लेखन के क्षेत्र में। आज श्री धर्मप्रकाश आनन्द की यह प्रथम प्रकाशित पुस्तक पढ कर जहा मुझे खूब आनन्द आया, वहा एक खिज-सी भी अनुभव हुई कि वह अब लिखते क्यो नही। यद्यपि उक्त पाचो व्यक्तियो के सम्बन्ध में आज भी मेरी धारणा यही है कि ये पाचो के पाचो लेखक सब से पहले है और बाकी सब कुछ बाद में। यहा तक कि श्री धर्मप्रकाश आनन्द (जिनकी गत बीस वर्षों में यही एक पुस्तक प्रकाशित हुई है) को भी मै सबसे बढ कर लेखक ही मानता हूँ।

'कच्चे धागों' में श्री धमप्रकाश आनन्द की १० कहानिया है। अपनी इन रचनाओ के सम्बन्ध में उनका कथन है —

मै तो उनमे से हू जो इस दुनिया का काम-काज भी करते है और इसकी दिलचस्पियो के तमाशाई भी है। हमारे रोजमर्रा के जीवन में बहुत-सी बाते ऐसी होती है, जिन्हें दूसरो के सामने दोहराने को जी चाहता है। इस रोज के तमाशे के कुछ पहलू मुझे भी दोहराने योग्य लगे है। ये कहानिया उन्ही कुछ पहलुओ की एक झाकी-मात्र है। यह जरूरी नही कि जो बाते मुझे दिलचस्प लगती है, वे बाकी दुनिया को भी दिलचस्प लगे। हा, इतना मुझे विश्वास है कि मै इन बातो को दोहराने योग्य समझने में अकेला नही। इन्हे अक्सर पाठको ने पसन्द किया है।

और फिर कहानी को देखने का, उसमे क्या है—यह ढूढने का एक ही कोण तो होता नही। कहानी तो कलाकार के मॉडल की तरह है। कहानीकार उसका निर्माता भी है, दर्शक के नाते उस माडल को देखने का उसका अपना ही कोण है। बाकी दर्शक भी उस मॉडल को अपने-अपने परस्पैक्टिव, अपनी-अपनी दृष्टिदिशा से ही देख सकते है। मॉडल का अपना व्यक्तिगत अस्तित्व तो है ही, लेकिन अपने से बाहर नही। दर्शक उसे अपने कोण से देखता है। उसे जो पहलू नजर आता है उसके आधार पर वह अपनी कल्पना मे जिस मॉडल को साकार करता है, वह उसकी अपनी कृति है, उसके अपने दृष्टिकोण, अपनी सस्कृति, अपनी अनुभूतियो पर आधारित। जिस मॉडल को दर्शक ने मूर्तिमान किया है, वह सामने पडे मॉडल की व्याख्या है, प्रतिकृति नही। उसी मॉडल मे एक चित्रकार को कुछ नजर आएगा, दूसरे को कुछ और। चित्रकार फूजिटा की कल्पना मे ढल कर वह एक चीज बनेगी, जामिनी राय की कल्पना मे दूसरी और पिकासो की कल्पना मे कुछ और ही। एक तरह से मॉडल के उतने अस्तित्व है, जितने उसके दर्शक। इसी तरह कहानी मे क्या है?—इसके भी उतने ही उत्तर है, जितने उसके पाठक।

मेरी राय यह है कि श्री धर्मप्रकाश आनन्द की उक्त कहानियों में एक ऐसा कोमल रोमान्स ओत-प्रोत है, जो प्राय किशोर आयु में जीवन का सब से बड़ा सत्य और सब से बड़ी शक्ति बन जाता है। पर इस कोमल रोमान्स के साथ बहुत ही खुशनुमा व्यग्य और विचारोत्तेजक दार्शनिकता भी आपको इन कहानियों में मिलेगी। इस तरह इन कहानियों को मैं साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति मानता हू। पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री धर्मप्रकाश आनन्द अब बहुत समय से उस सीमा को पार कर आए हैं, जब वह इस तरह की रोमांटिक रचनाए लिख सकते थे। उक्त रोमान्स चित्रण के साथ उन में व्यग्य और दार्शनिक दृष्टिकोण की जो शक्ति है, वह उनकी भावी नई रचनाओं को और भी उपादेय और प्राणवान बना देगी, क्यो अब वह और भी अधिक प्रौढ और अनुभवी बन गए हैं। मेरी जबरदस्त सलाह है कि वह सौ काम छोड कर भी लिखें अवश्य, और वह भी जहा तक सम्भव हो नियमित रूप से।

'कच्चे धागे' एक अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकाशन है। उसकी कहानिया निस्सन्देह श्रेष्ठ कोटि की हैं। सग्रह की 'यह भी वह भी' शीर्षक कहानी अत्यन्त प्राणवान और स्थायी महत्व की कहानी है, जिसे पढ कर पाठक गहराई से सोचने को विवश हो जाता है। इस सग्रह की मैं जबरदस्त सिफारिश करता हू।

गीली मिट्टी : लेखक—अमृतराय, प्रकाशक—हस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ सख्या—१३६, मूल्य—३) रु० सजिल्द।

श्री अमृतराय का यह ७वा कहानी सग्रह है। इस सग्रह में १६ कहानिया हैं। इन १६ कहानियो में से दो 'गीली मिट्टी' और 'लाट साहब की आमद' 'आजकल' में पहले पहल प्रकाशित हुई थी। उक्त दोनो कहानिया, विशेषत. 'गीली मिट्टी' इस सग्रह की श्रेष्ठ कहानियो में है। इन दोनो कहानियो से 'आजकल' के पाठक इस सग्रह की कहानियो के स्टैण्डर्ड का अन्दाज लगा सकते हैं।

अमृतराय जी १०० के लगभग कहानिया लिख चुके हैं। उनकी कहानिया सच्चे अर्थों में 'लघु' होती हैं। इस सग्रह की कहानियो की औसत लम्बाई ७।। पृष्ठ (लगभग १,८०० शब्द) है। इन लघुकथाओ में तत्व और समवेदनात्मक अनुभूति दोनो हैं। यह इन कहानियो का बलवान पक्ष है। इन कहानियो का कमजोर पक्ष यह है कि इनमें न सिर्फ कथानक की न्यूनता है, अपितु शैली में भी यथेष्ट 'पकड' नही है, विविधता चाहे उसमें कितनी भी क्यो न हो। अमृतराय जी के आदरणीय पिता मुशी प्रेमचन्द की कहानियो में ये दोनो गुण भी भरपूर मात्रा में थे। आश्चर्य इस बात का है कि अमृतराय जी अपनी कहानियो में अपने पिता से जरा भी प्रभावित प्रतीत नही होते। बल्कि जैसे वह जान बूझ कर प्रेमचन्द-शैली से बचने का प्रयत्न करते हैं। इस बात से अमृतराय की मौलिकता भले ही सिद्ध होती हो, पर मैं इसकी तारीफ नही करूगा। मेरी राय से किसी भी प्रतिक्रिया को चिरस्थायी बनाना वाछनीय नही होता।

इस सग्रह के 'निवेदन' में अमृतराय जी ने हिन्दी में तथाकथित आचलिक कथाओ या ग्राम कथाओ का ज्वार आ जाने की चर्चा की है। कहानियो का यह वर्गीकरण एकदम बचकाने ढग का है। इस तरह तो कहानियो के सैकडो वर्ग बनाए जा सकते हैं, पर उसका कुछ भी महत्व नहीं है। कहानी की आत्मा और उसके रूप को पहचाने बिना इस तरह का वर्गीकरण लेखको और पाठको दोनो के लिए भ्रामक होगा। अमृतराय जी ने इस 'निवेदन' में जो कुछ कहा है, उससे सहमत होते हुए भी, मेरा ख्याल है कि उन्हें इस पहलू को अधिक महत्व नही देना चाहिए था।

यह कहानी सग्रह श्री अमृतराय की हिन्दी साहित्य को मूल्यवान देन है।

अनेक देश एक इन्सान लेखक—कुलभूषण, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ६६ दरियागज, दिल्ली पृष्ठ सख्या—३३८, मूल्य—६) रु० सजिल्द।

अप्रैल १९५७ में श्री कुलभूषण नाइजीरिया होते हुए अमेरिका गए थे और वहा से यूरोप के कुछ देशो का भ्रमण कर वापस आए थे। उनकी यह यात्रा सोद्देश्य थी। जनता के लिए उपयोगी साहित्य के सस्ते प्रकाशन की विधियो का अध्ययन उनका मुख्य उद्देश्य था। इस पुस्तक में उसी यात्रा का मनोरजक वर्णन है। दूसरे महायुद्ध के बाद यह पृथ्वी जैसे और भी छोटी हो गई है और लाखो व्यक्ति प्रति वर्ष विदेशो में आते-जाते हैं। भारत से विदेश जाने वालो की सख्या भी अब बहुत अधिक बढ गई है। पर इन लाखो पर्यटको में ऐसे लोग कम हैं, जो अपने यात्रा-वृतान्त को ठीक तरह लिख सकें। यात्रा-वृतान्त को सूचनादायक और ज्ञानवर्धक के साथ ही साथ मनोरजक बना सकना और भी कठिन कार्य है। श्री कुलभूषण की इस रचना में ये सब गुण हैं। जिन देशो और स्थानो की यात्रा लेखक ने की थी, उनके सम्बन्ध में किसी तरह का गभीर राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक अध्ययन तो इस रचना में नही है, पर लेखक विभिन्न देशो के जिन लोगो के ससर्ग में आया, उनका बहुत सजीव और ईमानदारीपूर्ण वर्णन इस पुस्तक में है। इस तरह यह एक खूब सफल यात्रा-वर्णन है। मेरी राय से यह और भी अधिक अच्छा होता यदि लेखक अपने विशेष अध्ययन के विषय का भी इस रचना में समावेश कर पाता। तब इस यात्रा-वृतान्त का महत्व और भी बढ जाता। फिर भी यह यात्रा पुस्तक हिन्दी का एक अत्यन्त सफल और मनोरजक यात्रा-सम्बन्धी प्रकाशन है। पाठक के सम्मुख विभिन्न देशो और उनके निवासियो का स्पष्ट चित्र उभार सकने की शक्ति इस यात्रा-वर्णन में है। पुस्तक में चित्र भी यथेष्ट मात्रा में दिए गए हैं।

—चन्द्रगुप्त विद्यालकार

कालिदास लेखक—जयकृष्ण चौधरी, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६, पृष्ठ सख्या—१६१, मूल्य—३) रु० सजिल्द।

इस पुस्तक में कालिदास के जीवन, कला और कृतित्व पर कुछ लिखने का प्रयास किया गया है, पर लेखक इस कार्य के लिए कहा तक उपयुक्त है, इस विषय में सन्देह है। उन्होने जो हवाले दिए हैं, उनसे यही मालूम होता है कि उन्होंने थोडा-बहुत कालिदास पर अध्ययन किया है, उसके अलावा वे केवल मौलवी मुहम्मद अजीज मिर्जा, प्यारेलाल शाकिर और प्रेमचन्द पर निर्भर करते हैं। इस पुस्तक में यत्र-तत्र उनके लम्बे-लम्बे उद्धरण दिए गए हैं। शायद लेखक को उन उर्दू-ग्रन्थो के अलावा दूसरे सन्दर्भ ग्रन्थ उपलब्ध नही थे।

मौलवी मुहम्मद अजीज मिर्जा साहब ने 'विक्रमोर्वशी' की जो भूमिका लिखी है पुस्तक का प्रारम्भ उससे किया गया है। ५८ पृष्ठ लिख जाने के बाद लेखक लिखते हैं—"स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अजीज मिर्जा ने कालिदास के काव्य के सम्बन्ध में जो निबन्ध लिखा है उससे कालिदास की महानता

व ख्याति का परिचय प्राप्त होता है। उसके एक अंश को पाठकों के परिचय के लिए यहां उद्धृत कर देना उचित होगा।"

इसके बाद उक्त मौलाना के उद्धरण से ही अध्याय समाप्त होता है। लेखक इन उर्दू विशेषज्ञों के द्वारा इतने प्रभावित हैं कि वे संसार के नाटककारों को गिनाते समय लिख जाते हैं—"जहां एक नाट्य-साहित्य का प्रश्न है संस्कृत साहित्य में केवल भवभूति, अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर (जिसे किन्हीं अंशों में विश्व-साहित्य का प्रतिनिधि नाटककार भी कहा जा सकता है) तथा उर्दू साहित्य में मीर अनीस (यह भी केवल काव्य साहित्य को दृष्टि में रखते हुए, क्योंकि उर्दू का नाटक-साहित्य अधिक सम्पन्न नहीं) के साथ ही कालिदास की तुलना अधिक संगत प्रतीत होती है।"

शेक्सपियर और भवभूति तक तो समझ में आते हैं, पर मीर अनीस को यह मर्यादा देना कहां तक उचित है, यह मैं नहीं कह सकता। कम से कम यह पहली ही बार सुनने में आया है। आगे चलकर लेखक लिखते हैं—"कालिदास और भवभूति के समान भावभूमि पर आधारित काव्य-साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा, जो मौलवी मुहम्मद इस्माइल ने की है, को पाठकों के उपयोग के लिए उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा। मौलवी साहब के विचारों के मुख्य आधार निम्नांकित हैं।"

इसके बाद फिर लम्बा उद्धरण दिया गया है। कालिदास और शेक्सपीयर की तुलना प्रेमचन्द की पुस्तक से उद्धृत है। जहां-तहां कालिदास के एक-आध श्लोक उद्धृत किए गए हैं, उनके साथ कभी-कभी उनके किसी उर्दू कवि द्वारा किया हुआ अनुवाद भी दिया गया है। यह पुस्तक बीस वर्ष पहले उर्दू में लिखी गई थी, *शायद उस समय यह उचित और उपयोगी भी* था, पर इस समय इसके हिन्दी में अनुवाद किस कारण से हुआ, यह समझ में नहीं आया।

भावना और समीक्षा लेखक—डा० ओमप्रकाश, प्रकाशक—भारत प्रकाशन मन्दिर, सुभाष रोड, अलीगढ़, पृष्ठ संख्या—२१७, मूल्य—४) रु० सजिल्द।

इस पुस्तक में लेखक के कुछ आलोचनात्मक निबन्ध संगृहीत हैं। लेखक ने जहां-जहां अपने को साहित्य या साहित्यिक विषयों तक सीमित रखा है, वहां-वहां उनसे मतभेद रखते हुए भी उनके अध्ययन की कद्र करनी पड़ती है। पर जहां वे साहित्येतर विषय में उतर जाते हैं, वहां वे कई तरह के अर्द्ध-सत्य कह जाते हैं जैसे 'हिन्दी-काव्य के एक हजार वर्ष' नामक लेख में लेखक ने बहुत से सन्देहजनक वक्तव्य दिए हैं। उसमें वे कुछ ऐसा कह रहे हैं कि हिन्दी काव्य के प्रारम्भिक युग में राष्ट्रीयता मौजूद थी और विदेशी आक्रमणों ने इस राष्ट्रीयता को छिन्न-भिन्न कर दिया। यह कहां तक सही है? पाश्चात्य देशों में भी राष्ट्रीयता की भावना पूंजीवादी युग की देन मानी गई, भारत में तो यह और भी देर में आई। उपयुक्त प्रमाणों के बिना इतनी बड़ी स्थापना लेकर सामने आना शायद उपयुक्त नहीं है।

वे लिखते हैं—"और नवीन शासन भारतीय जनता के लिए आश्वासन, आशा, उत्साह तथा सम्मान के स्थान पर भय, संशय, कायरता तथा दलन का ही चिन्ह बना रहा। हिन्दू न शासन में भाग ले सकता था, न सेना में सम्मिलित हो सकता था, उसके सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में भी संशयालु शासन को राजनीतिक विद्रोह की तैयारी दिखाई पड़ती थी; महिलाएं निर्भर होकर घर से बाहर न निकल सकती थीं, और पुरुष सुखी तथा सम्पन्न जीवन न बिता सकते थे। कुछ शासक भले ही इतने बर्बर न रहे हों, परन्तु ऊपर से नीचे तक शासन की व्यवस्था जिनके हाथ में थी वे स्वयं इतने असंस्कृत थे कि आत्मसम्मान नामक गुण का महत्व उनकी समझ से परे था। विदेशी शासन इतना ओछा था कि स्वभावतः सीधे चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसे अपने को बड़ा दिखलाई पड़ा और प्रायः पैरों को काटकर उसने उसको अपने से छोटा करना चाहा, किन्तु जो अपने पैर कटवाने के लिए जबरदस्ती न सह सका उसका सिर काट दिया गया। भयभीत हिन्दू ने अपने घर में भीतर से ताला लगा लिया, और परवश होकर वह अपने गृहस्थ में ही मन बहलाने लगा, साहस तथा उत्साह के द्वार शायद सदा के लिए बन्द हो गए।"

यह उन्होंने तुर्क और अफगान राजाओं के शासन के बारे में कहा। यह कहां तक सत्य है, इस पर मैं यहां विचार नहीं करूंगा। पर यह पूर्ण सत्य तो नहीं हो सकता कि सारे सामन्तवादी युग में केन्द्रीय शक्ति कमजोर रहती थी और जो जहां शासन करता था वह वहां प्रधान बना रहता था। खैरियत यह है कि लेखक मुगल शासकों पर उतने क्रुद्ध नहीं मालूम होते।

यदि यह अध्याय पुस्तक में न होता तो पुस्तक का मूल्य बढ़ता, पर लेखक तो इस अध्याय को बहुत आवश्यक मानते हैं, तभी यह प्रथम स्थान पर दिया गया है। आगे भी लेखक ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म की बहुत-सी व्याख्याएं करते हैं जो विवादग्रस्त हैं। वे लिखते हैं—

"ब्राह्मण धर्म की विकारग्रस्त वर्णाश्रम प्रथा से तिलमिलाकर जब पददलित जनता ने महात्मा बुद्ध के नेतृत्व में विद्रोह का स्वर उठाया तो देश में आमूल परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। पुराने विचार, पुरानी भाषा, पुराना साहित्य, पुराने प्रमाण (धार्मिक ग्रन्थ आदि) सभी को त्याज्य समझा गया, और बुद्ध के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण इस विद्रोह ने थोड़े ही समय में अद्भुत परिवर्तन दिखा दिया। ऐसा जान पड़ने लगा मानो इससे पूर्व या तो कुछ था ही नहीं या यदि था भी तो अधिकतर सारहीन ही था। परन्तु वृक्ष के साथ उसकी छाया भी विलीन हो गई और उसकी पत्तियां खड़-खड़ का सूखा शब्द करती हुईं अपने निर्जीव अस्तित्व का ही प्रतीक बन बैठीं। एक ओर बौद्धों में विकार पर विकार आने लग गए, दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म ने भी सचेत होकर करवट बदली। अतः शंकराचार्य की एक ललकार ने अवैदिक मतों के छक्के छुड़ा दिए। बहुत दिनों के उपरान्त वर्णाश्रम धर्म फिर सिंहासनासीन हुआ। पतित जनता में स्वतन्त्र चिन्तन का चिर-लोप हो चुका था। अतः समाज के अधिकारियों ने अवैदिक मतावलम्बियों के अनाचार को लक्ष्य बनाकर जनता को उनसे विमुख कर दिया और ब्राह्मण धर्म की एक बार फिर प्रतिष्ठा की।

"विद्रोह तो शांत हो गया परन्तु उसके कुछ चिन्ह न मिट सके, जिनमें से मुख्य भाषा विषयक था, ब्राह्मण धर्म वाले भी यह समझ गए कि अब देववाणी मानव-जगत् के लिए व्यवहार्य नहीं रही। अवैदिक अनात्मवाद चिन्तन के क्षेत्र में मायावाद बनकर आया और सामाजिक जीवन में वह भाग्यवाद, आत्मत्याग तथा स्वामि-सेवा में बदल गया। नारी भोग तथा अविश्वास की भी पात्र समझी जाने लगी। विद्रोह की प्रतिक्रिया भी जम कर हुई और वेद-शास्त्र एवं वेदोक्त गुणों के प्रति भरसक श्रद्धा दिखलाई गई, जनता की भाषा को साहित्य में स्थान देकर भी उसको संस्कृत भाषा से सजाना प्रारम्भ हो गया।"

लेखक ने जो कुछ लिखा है, उसमें अत्यधिक अति-सरलीकरण दिखाई पड़ रहा है। क्या यह सत्य है कि महात्मा बुद्ध के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह किया था या शासक वर्ग में से ही एक क्रांतिकारी हिस्से ने उससे अलग

होकर उसने विद्रोह किया था ? अवश्य वाद को चलकर जनता में नाना कारणों से बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। बौद्धों में विकार क्यों हुआ ? ब्राह्मण धर्म जो सचेत हुआ वह शासक वर्ग की तरफ से या शोषित वर्ग की तरफ से ? स्वयं ही लेखक यह कहते हैं कि बौद्ध धर्म में जनता में प्रचलित भाषा को अपनाने की प्रवृत्ति थी। लेखक राजपूतों के स्वभाव की व्याख्या करते हुए यह लिख जाते हैं—"अवैदिक मतों ने संसार से पलायन का जो आदर्श रखा वह ब्राह्मण धर्म को ग्राह्य न था। इसलिए इस युग में भोग्य वस्तुओं का निर्लिप्त भोग नेताओं का ध्येय बन गया।" यह कहां तक सत्य है ? इसी प्रकार लेखक जो यह कहते हैं कि बौद्ध लोग जीवन की अपेक्षा मृत्यु को अधिक सत्य मानते थे। यह कहां तक ग्राह्य है ?

इस प्रकार इतिहास सम्बन्धी कई सन्देहपूर्ण व्याख्याओं में लेखक फँस जाने पर भी वे विद्यापति, चण्डीदास, कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी, प्रेमचन्द, ताराशंकर आदि पर जो कुछ कहते हैं, वह काफी विचारोत्तेजक है और साहित्य के अच्छे ज्ञाता को भी उसमें नई बातें मिलेंगी। लेखक ने बंगला रामायण लेख में कृत्तिवास को तुलसीदास से घटिया सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया है, उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। दोनों जनता के कवि थे और इनकी तुलना एक ही दृष्टिकोण से होनी चाहिए थी कि कहां तक उनकी पैठ जनता में हुई और उन्होंने कहां तक उस पैठ का उपयोग जनता को उस समय की प्रचलित कुरीतियों में बांधने के लिए नहीं बल्कि उनसे उभारने के लिए या उठाने के लिए किया। पुस्तक संग्रहणीय है।

—मन्मथ नाथ गुप्त

फुलझड़िया रचयिता—धर्मपाल साहू, प्रकाशक—हिन्दी प्रकाशन, अकोला, पृष्ठ संख्या—१६०, मूल्य—तीन रुपए।

यह श्री साहू की 'पौन सौ अनूठी कविताओं तथा गीतों का एक संग्रह' है। स्वयं लेखक के शब्दों में—"अनूठी कविताओं और गीतों से मेरा तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में छपने के पूर्व ये कविताएं और गीत किसी भी अन्य मासिक, साप्ताहिक या दैनिक पत्र में नहीं छपवाए गए।" —और इस प्रकार ये सबके सब मासिक, साप्ताहिक या दैनिक पत्र इस कवि की इन 'अनूठी कविताओं और गीतों' को छापने के महान सौभाग्य से वंचित रह गए।

कृपया अनूठी कविताओं के कुछ नमूने देखें—

(१) जब सब ठुकराते थे मुझ को
तुम गोदी में ले लेती थी
सुख स्पज से फिर तुम मेरे
गीले गाल सुखा देती थी।

(प्रयोगवादी कवि कृपया 'सुख-स्पज' की नवीनता पर ध्यान दें।)

(२) बहेन कसम है तुम को मेरी
बहोत दूर तुम कभी न जाना।

('बहेन' और 'बहोत' का प्रयोग दृष्टव्य है।)

(३) जा रहा है एक राही सोचता है हृदय माही।

('राही' और 'माही' की तुक खूब बैठी है।)

(४) चमगीदड़ वृक्षों में लटके, पक्षी नीड़ों में है सिमटे,
इस तपन से हा तड़प कर, लोग निज घर में है चिमटे।

(घर में 'चिमटने' का प्रयोग सुना है आपने पहले कभी ?)

(५) कालिदास यदि काठ फोड़ते
ही रहते जीवन भर
तो रहता सूना सूना,
संस्कृत वाणी का आंचर।

कहने का तात्पर्य यह, कि इस पुस्तक पर व्यय की गई स्याही और कागज को मैं सर्वथा अनावश्यक और व्यर्थ मानता हूं। मेरा साहू जी से यही निवेदन है कि वे अभी कुछ समय तक हिन्दी भाषा, व्याकरण, छंद, अलंकार आदि का सामान्य परिचय प्राप्त करें और तभी काव्य रसिकों को अपनी अनूठी रचनाओं से कृतकृत्य करें।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य लेखक—डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—४६७, मूल्य—१२॥) रु०।

यह पुस्तक विद्वान लेखक के पी० एच डी० के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप है। शोध-प्रबन्धों में जिस अध्ययनशीलता और परिश्रम की झलक मिलती है, वह इसमें भी है। प्रेम और सौन्दर्य के तात्विक और मार्मिक विवेचन के साथ-साथ अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत करने में लेखक को यथेष्ट सफलता मिली है। हां, एक बात अवश्य खटकने वाली है। पुस्तक का कलेवर बढ़ाने के मोह में लेखक ने कहीं-कहीं अप्रासंगिक बातों की भी चर्चा कर दी है। यथा, प्रगतिवाद-प्रयोगवाद का गुण-दोष विवेचन। पर कुल मिलाकर पुस्तक यथेष्ट रोचक है, और आशा है कि यह शोध की दिशा में और गम्भीर अध्ययन की प्रेरणा देगी।

गीतांगिनी सम्पादक—राजेन्द्रप्रसाद सिंह, प्रकाशक—मधुरिमा साहित्य प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, बिहार, पृष्ठ संख्या—९६, मूल्य—२॥) रु०।

गीतांगिनी में हिन्दी के प्रायः सभी जाने-माने, नये-पुराने गीतकारों की रचनायें संग्रहीत हैं। संग्रहकर्ता की राय में गीतांगिनी वर्तमान दशक के हिन्दी गीत काव्य का प्रतिनिधि संकलन है। और इसमें संदेह नहीं कि गीतांगिनी के गीतों में आज की प्रगीतात्मक काव्य-उपलब्धि के अच्छे से अच्छे नमूने मिलते हैं। आज की काव्य-उपलब्धि के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाली इस पुस्तक को सभी साहित्य प्रेमी पढ़ें, यही मेरी आशा और कामना है।

—प्रयाग नारायण त्रिपाठी

कवि की अन्तिम इच्छा—(पृष्ठ २८ का शेषांश

(१३)
दोष से मत घृणा करो तुम
दोषों से ठानो मत प्रीति

प्रगति दिनों दिन हो स्वदेश की
अपनाओ वह सेवा-नीति
शान्ति रहे, स्वदेश रक्षित हो

उन्नति होती चले यथार्थ।
सब को ही समान सुविधा हो
मानो इसको अपना स्वार्थ।



श्री बण्डार नायके की हत्या

बौद्ध भिक्षु की पोशाक पहने एक आततायी के हाथों श्रीलंका के प्रधान मंत्री श्री बण्डार नायके की हत्या इस युग की एक अत्यन्त दुःखपूर्ण तथा दुर्भाग्यपूर्ण हत्या है। श्री बण्डार नायके अपने देश के अत्यन्त लोकप्रिय नेता होने के साथ ही साथ मानवजाति के अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं में गिने जाने लगे थे। उनकी सूझ, साहस और क्रियाशीलता अत्यन्त असाधारण थी। श्रीलंका के नए प्रधान मन्त्री श्री विजयानन्द दहनायके के शब्दों में "महानता के लक्षण श्री बण्डार नायके में उनके जन्म ही से दिखाई देने लगे थे। एक महान राजनीतिक नेता होने के साथ ही साथ वह एक महान सन्त भी थे। मन्त्री मण्डल के पांच व्यक्ति मिल कर भी उनकी तुलना नहीं कर सकते थे।" श्री बण्डार नायके अपने देश को पूरी तरह सफल और सम्पन्न प्रजातन्त्र बनाने का ठोस प्रयत्न कर रहे थे। वह एक बहुत बड़े वीर थे, गोली लगने के बाद उन्होंने जो असाधारण वीरता और क्षमाशीलता दिखाई, वह श्रीलंका के इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगी। भारत ही की तरह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में शक्तिशाली तटस्थता की नीति उन्होंने अपनाई थी। एशिया के एक ऐसे महान नेता के असामयिक देहावसान से सम्पूर्ण मानवजाति की बहुत बड़ी क्षति हुई है। भारत भर में यह समाचार अत्यन्त दुःख से सुना गया है। भारतवासियों की पूरी सहानुभूति अपने पड़ोसी श्रीलंका वासियों के साथ है। श्रीलंका के इतिहास में उसके वीर नेता श्री बण्डार नायके का नाम अमर रहेगा।

इस हत्या के पीछे जो मनोवृत्ति है, उसका दमन करना नितान्त आवश्यक है। एशियाई देशों की यह घातक कमजोरी कभी तो समाप्त होनी चाहिए। अरब देशों में इस तरह की कितनी ही घटनाएं हुई हैं। १९४६ में बर्मा में जिस तरह श्री औंगसेन तथा उनके साथियों की हत्या की गई थी, उससे संसार कांप उठा था। १९४८ में भारत के राष्ट्रपिता पर घातक प्रहार हुआ। १९५० में पाकिस्तान में प्रधान मन्त्री लियाकत अली खां की हत्या की गई थी और अब श्रीलंका में यह कलुषित कार्य हुआ है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि एशियाई देशों में यह भावना खूब गहराई से भरी जाए कि इस तरह के कायर आक्रमण मानवजाति के प्रति सबसे बड़ा और घृणित अपराध है।

अमेरिका का बजट

संयुक्त राज्य अमेरिका संसार का सबसे अधिक सम्पन्न देश है। उसका इस वर्ष (१ जुलाई १९५९ से ३० जून १९६०) का बजट अमेरिका के इतिहास का एक सबसे बड़ा बजट है। इस वर्ष अमेरिका की पुनः अनुमानित आय ३,९५,००,००,००,००० रुपया होगी और व्यय ३,९४,५०,००,००,००० रुपया। भारत की तीसरी बड़ी योजना (जो अब तक की सभी भारतीय योजनाओं में सबसे बड़ी है) के पूरे व्यय से अमेरिका का यह एक साल का बजट लगभग ४ गुना है। भारत सरकार के पूरे बजट से यह बजट लगभग ४० गुना बड़ा है, जबकि भारत की आबादी अमेरिका की आबादी से दुगुनी है।

अमेरिका का सरकारी ऋण भी बहुत बड़ा है। केवल सूद के रूप में ही अमेरिकन सरकार को प्रति वर्ष ४५,५०,००,००,००० रुपया देना पड़ता है। अमेरिकन सरकार को केवल आयकर के रूप में ही २,०५,००,००,००,००० रुपयों की आय होती है। हमें इस बात का संतोष है कि संसार के सबसे अधिक सम्पन्न राष्ट्र अमेरिका के नागरिक यह सिद्धान्त स्वीकार करते हैं कि उनकी सम्पन्नता का लाभ संसार के आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों को भी होना चाहिए।

पुस्तक समालोचना

संस्कृति (त्रैमासिक) चैत्र १८८१, प्रकाशक—वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सांस्कृतिक कार्य मन्त्रालय, २-ई ५ कर्जन रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या—६८, मूल्य इस अंक का १) रु०।

वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सांस्कृतिक कार्य मन्त्रालय की ओर से प्रकाशित यह हिन्दी पत्रिका बहुत उदात्त उद्देश्यों को सामने रखकर प्रकाशित की गई है। इस पत्रिका में कुछ स्थायी स्तम्भ रखे गए हैं। इस अंक में जो स्थायी स्तम्भ हैं, अगले अंकों से उनके अलावा दूसरे स्थायी स्तम्भ भी होंगे। दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्पादक यह चाहते हैं कि कलाकारों, प्रशासकों और जनसाधारण के बीच अपनी जीवन-पद्धति के बारे में ऐसे तत्वों की चर्चा को बढ़ावा दिया जाए जिनके परिवर्तित या परिवर्द्धित होने की मांग हो सकती है।

'संस्कृति' ने इस अंक में यह प्रश्न उठाया है कि क्या साहित्य, नाट्य, चित्रकला, मूर्तिकला और दूसरी ललित कलाओं के क्षेत्र में राज्य द्वारा सहायता जरूरी है और यदि जरूरी है तो यह राज्य-सहायता किस रूप में और किन शर्तों के साथ दी जानी चाहिए? इस विषय पर लिखते हुए श्रीमती लक्ष्मी मेनन ने लिखा है—"चूंकि राज्य भी जनता द्वारा बनाई हुई चीज ही है, इसलिए वह संस्कृति के विकास में एक हिस्सा ले सकता है, पर इसके लिए राज्य की सहायता भले ही वह कुछ मदद दे सकती हो, मेरी राय में जरूरी नहीं है। इससे संस्कृति की उपयोगिता बढ़ जाएगी, पर इससे उसकी निश्छलता—उसका तेज और संघर्ष—मिट्टी में मिल जाएगा। बांध बन जाने पर नदी ज्यादा उपयोगी हो जाती है, पर वह एक बहता हुआ जलाशय बन जाती है। सहायता मिलने पर

SISTA'S SG 73











सास्कृतिक विकास वासा बन जाता है और अपनी ताजगी, तेज और जिन्दगी देने वाले तत्व खो देता है।"

अब लेखिका से पूछा जा सकता है कि यदि राज्य सचमुच जनता का है तो उससे सहायता लेने से संस्कृति की निष्कलकता---तेज और संघर्ष---मिट्टी में कैसे मिल जाएगे ? या तो लेखिका का सन्देह है कि राज्य जनता का होते हुए भी नही है, नही तो उनका यह चिन्तन तार्किक रूप से कुछ पल्ले नहीं पडता । आगे लेखिका यह कहती है कि हम इजीनियरिंग के कौशल से भूकम्प पैदा नहीं कर सकते, उसी तरह राज्य सहायता से अच्छा साहित्य तैयार नहीं कराया जा सकता । यह उपमा सही इसलिए नही है कि इजीनियरिंग का उद्देश्य भूकम्प पैदा करना शायद नही है। सम्भव है कि कभी हम भूकम्पो पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त कर लें यहा तक कि इच्छानुसार भूकम्प पैदा कर उसका उपयोग कर सके, उस समय की बात और है। ऐसा मालूम होता है कि लेखिका तर्को की बजाए उपमाओ से अपने साध्य को प्रमाणित करने में अधिक विश्वास करती है। इसलिए वह कहती है---"यह पुरानी कहावत कि 'आप घोडे को पानी तक ले जा सकते है, पर उसे पानी नही पिला सकते', लेखको के प्रसग में बिलकुल खरी उतरती है। तानाशाही से व्यवस्था और लोगो में समृद्धि आ सकती है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कडे अनुशासन के कारण लोगो की आत्मा को कुचल देती है। हमें तानाशाही के अधीन साहित्य, कला और दर्शन की बरबादी और संस्कृति के सुन्दरतम मूल्यो के क्षय का हमेशा अनुभव रहा है। जब जीवन एक विशेष विचारधारा के साथ अनुशासन-बद्ध हो जाता है, तो उसकी आत्मा का अन्त हो जाता है और व्यक्ति खुद डिजाइन न रहकर डिजाइन की एक सीवन भर ही रह जाता है। अत मैं नही समझती कि राज्य-सहायता से साहित्य का विकास किया जा सकता है।"

यहा भी वही गडबडी दिखाई पडती है कि जनता की सरकार के सम्बन्ध में लेखिका की धारणा स्पष्ट नही है। क्या जनता की सरकार के लिए यह जरूरी है कि वह किसी प्रकार की तानाशाही की व्यवस्था अपनाए या एक विशेष डिजाइन को लेकर ही चले। अवश्य युद्ध का भय तथा अन्य समय में सम्भव है सरकार एक विशेष दिशा ग्रहण करे, पर साधारण समय में जनता की सरकार लोगो की आत्मा का हनन करना चाहेगी, यह बात समझ में नही आती। जनता की सरकार जनता के साहित्य को कुठित क्यो करेगी ? यह सब कह जाने पर भी लेखिका अजीब तरीके से इस नतीजे पर पहुचती है कि 'नाट्य-कला के विद्यालय और नाटक सम्बन्धी प्रतिभा के विकास को अवसर प्रदान करना राज्य और जनता की जिम्मेवारी होनी चाहिए। असली नाटक प्रचारवादी नहीं होते, वे ऐसे मूल्यो का चित्रण करते है, जो स्थायी गुणो वाले होते है।' क्या यह बात साहित्य तथा अन्य कलाओ पर लागू नही है ? नाटक को तो राज्य *सहायता पहुचाए और दूसरी कलाओ को न पहुचाए, यह क्या बात हुई ?* नाटक में वह कौन-सा दुम या सुर्खाब का पर लगा है, जिसके कारण वह सरकारी सहायता पाकर भी अपनी निष्कलकता, तेज और संघर्ष अव्याहत रख सकेगा; लेखिका उसे बताने में असमर्थ रही। ऐसी हालत में उनका कथन आफ्टर थाट मात्र लगता है।

इसी प्रकार से फिलिप सप्राट भी साहित्य के सम्बन्ध में लेखिका की राय लगभग मानते हुए नाटक तथा रंगमंच के सम्बन्ध में सरकार से कुछ आशाए रखते है।

इन लेखो के अलावा इस पत्रिका में स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, हिन्दी नाटक, सजीव संग्रहालय पर अच्छे लेख है। पत्रिका का गेटअप सास्कृतिक दृष्टि से और अर्थपूर्ण हो सकता था। लेखो का अनुवाद भी इससे अच्छा हो सकता था। हिन्दी पत्र के सभी लेख अंग्रेजी से अनूदित हो यह भी बात खटकती है। ---मन्मथनाथ गुप्त

•

बच्चन---(पृष्ठ २७ का शेषाश)

घन-हथोडे और तौले हाथ की दे
चोट अब तलवार गढ तू,
और है किस चीज की तुझ से भविष्यत
माग करता, आज पढ तू
औ' अमित सतान को अपनी थमा जा
धारवाली यह धरोहर,
वह अजित ससार में है शब्द का खर खड्ग लेकर जो खडा है।
गर्म लोहा पीट, ठण्डा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

इधर हाल में बच्चन ने मुक्त छन्द में कविताए लिखी है, जहा विचारो की प्रखरता तो अवश्य है, लेकिन ऐसा लगता है कि कवि की प्रेरणा में थकावट आ गई है। अति व्यस्त जीवन---समय का अभाव। कवि महान शिल्पी है---वह अवधी में जनगीता लिख सकता है---सफलता-पूर्वक, *वह शेक्सपीयर के नाटको का अनुवाद कर सकता है---उन* नाटको के अनुरूप छन्दो में और भाषा में। लेकिन कलाकार की हैसियत से वह जो ऊचे से ऊचा दे सकता है, उसने अभी तक नही दिया है। गीत-कार के रूप में बच्चन बेजोड है---यह अमर है, प्रबन्ध काव्य में अब उसे अपनी क्षमता दिखानी है।

गर्मियों की समाप्ति के साथ ही अध्ययन अध्यापन का आरम्भ होता है

आपको अपनी पसन्द की पुस्तके चुनने मे सुविधा हो इसके लिए नीचे हमारे हाल के प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थो की तालिका प्रस्तुत है ।

हिन्दी प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ	मूल्य
राष्पकालीन नेताओ की जीवनिया	स्वतन्त्रता सग्राम इतिहास समिति द्वारा सकलित	३००	१ रु०
वाजिद अलीशाह और अवध का पतन	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	३१४	४ ५० रु०
स्वतन्त्र भारत की एक झलक	श्री बाबूराम मिश्र	२६३	४ ५० रु०
गदर के फूल	श्री अमृतलाल नागर	२९२	४ ५० रु०
चन्द्रसखी के लोकगीत और भजन	सम्पादक श्री प्रभूदयाल मीतल	११२	२ रु०
उत्तर प्रदेश के लोकगीत	श्री विद्यानिवास मिश्र	२६६	२ ५० रु०
समाजवाद	डा० सम्पूर्णानन्द	८२	७५ न०पै०
भारतीय बुद्धिजीवी	डा० सम्पूर्णानन्द	३२	७५ न०पै०
अतरिक्ष यात्रा	डा० सम्पूर्णानन्द		७५ न०पै०
दो वैज्ञानिक कहानिया	डा० नवल बिहारी मिश्र श्री विजय कुमार मिश्र	४४	५० न०पै०
उत्तर प्रदेश क लोक नृत्य	सकलित	२६	१ रु०
उर्दू हिन्दी शब्दकोप	श्री मुहम्मद मुस्तफा खा मद्दाह	८००	१६ रु०
भारत का भाषा सर्वेक्षण	सर जार्ज अब्राहम ग्रियसन अनुवादक डा० उदयनारायण तिवारी	४००	७ रु०
भारत का सगीत सिद्धान्त	श्री कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति		६ ५० रु०

अंग्रेजी प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ	मूल्य
फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश भाग १, २ और ३ अंग्रेजी	डा० एस० ए० ए० रिजवी डा० मोतीलाल भार्गव	५१४	१० रु०
लीव्ज फ्राम ए गवर्नर्स डायरी	श्री वी० वी० गिरि, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश	२४४	४ रु०
म्यूजिशियन्स आई हैव मेट	श्री एस०के० चौबे	११२	३ रु०
थाट्स आन एजूकेशन एड सम एलाइड प्रोब्लेम्स	डा० सम्पूर्णानन्द	९६	३ रु०
इडियन इन्टेलेक्चुअल्स	डा० सम्पूर्णानन्द		७५ न० पै०
साइन्टिफिक फाउन्डेशन आफ एस्ट्रोलोजी	डा० सम्पूर्णानन्द		२५ न० पै०
स्पेस ट्रेवल	डा० सम्पूर्णानन्द		७५ न० पै०

उर्दू प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ	मूल्य
कौमी शायरी के सौ साल	श्री अलीजवाद जैदी	४३२	५ रु०

उपयोगिता, मुद्रण एव मूल्य की दृष्टि से इन्हे आप महत्वपूर्ण पाएगे ।

प्राप्ति का स्थान

१. सूचना विभाग,
रायल होटल बिल्डिग
लखनऊ ।

२. सूचना साहित्य,
फरीदी बिल्डिग,
हजरत गज, लखनऊ

		मूल्य रु० नए पैसे	डाक खर्च रु० नए पैसे
रूसी-हिन्दी शब्दकोश (लेखक—वीर राजेन्द्र ऋषि)		३५ ००	
भारत के पक्षी (लेखक—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह)		१२ ५०	
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड १ व २)—१८८४-१८९८			
कपड़े की जिल्द	प्रत्येक	५ ५०	० ८५
कागज की जिल्द	प्रत्येक	३ ००	० ५०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२-१९५६)		३ ५०	० ८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४९-५३)		५ ००	१.३५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण)		५ ००	१ ३०
भारतीय कविता १९५३		५ ००	१ ७५
भारत १९५९		३ ५०	० ९५
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष		३ ००	० ४५
भारत के बौद्ध तीर्थ		२ ००	० ३०
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष		२ ००	० २५
बारहवाँ वर्ष		१ ५०	० २५
अशोक के धर्मलेख		१ ००	० २५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

२५ रुपए या इससे अधिक की पुस्तकें मंगाने पर डाक खर्च नहीं लिया जाता है
सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं या निम्न पते से प्राप्य



पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

१, गार्स्टिन प्लेस, कलकत्ता—१

३, प्रास्पेक्ट चेम्बर्स, दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई—१



Edited and published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Manager, Government of India Press, Faridabad.

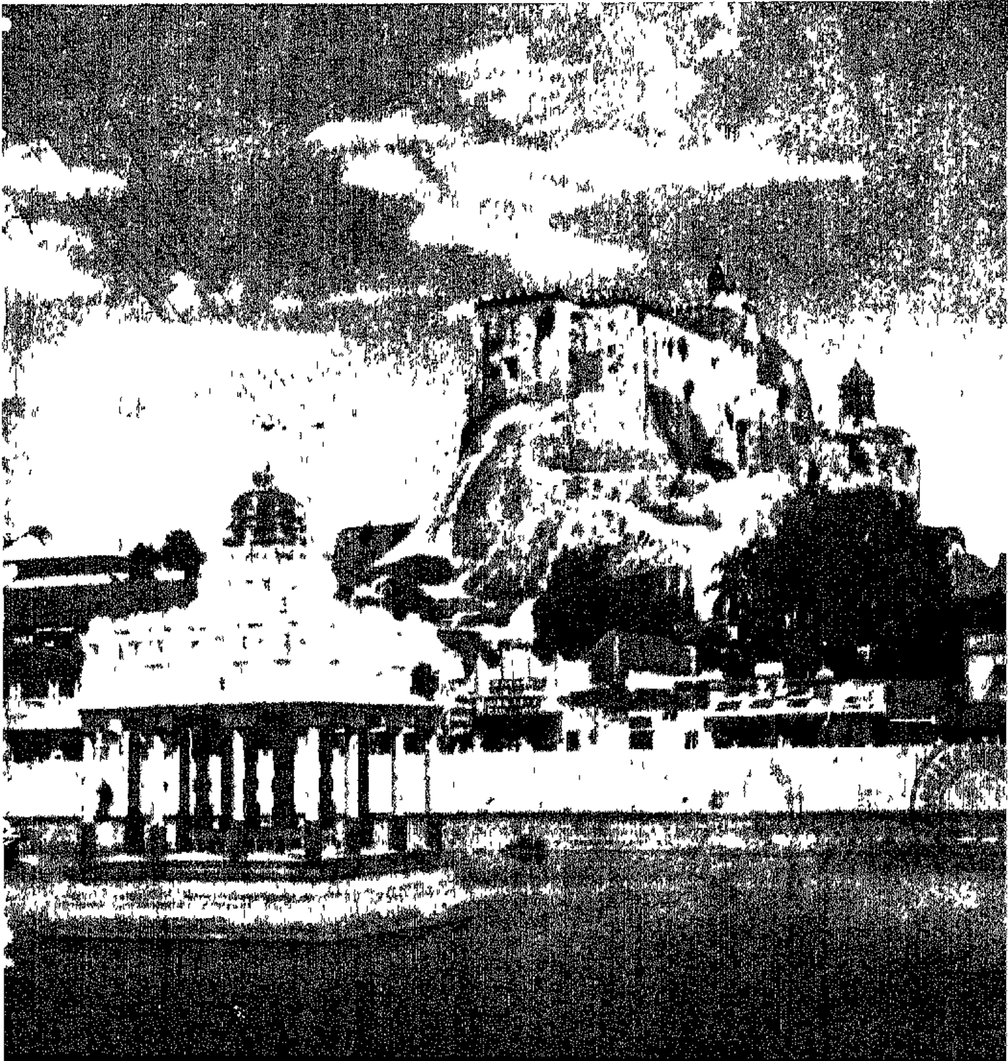
Regd. No D—510

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

पचास नये पैसे

दिसम्बर १९५९





भविष्य के लिये

एक बुढ़ापा—झुर्रियों भरा हुआ है माथा
और दो आँखें—मद्धम मद्धम जलते दिये—
सिहर सिहर कर देख रही हैं
एक नये दिये की जगमग जगमग बाती

आज बुढ़ापे ने बच्चे पर सब कुछ किया न्योछावर अपना
और ज्ञान की मशाल थमाई उस के हाथों
ताकि देख सके वह अपनी मंजिल अन्धकार में खोई।

जीवन के संघर्षों में से होकर यौवन
सीखेगा, पायेगा, पहुँचेगा मंजिल तक
और साकार करेगा औरों के संग मिलकर
एक नये संसार का सपना—
एक नया संसार कि जिस में
चिन्तायें कम होंगी, होंगी खुशियाँ ज्यादा।

आज, हमेशा की तरह हमारे उत्पादन घरों को अधिक स्वच्छ, स्वस्थ और सुखी बनाने में सहायक होते हैं। लेकिन आज हम प्रयत्नशील हैं .. आनेवाले कल के लिये, जब और अधिक सुन्दर जीवन के लिये दिन प्रति दिन बढ़ती हुई आकांक्षा हम से और अधिक प्रयत्नों की माँग करेगी। और हम अपने नये विचारों, नये उत्पादनों और अधिक विस्तृत साधनों के साथ उस समय भी आप की सेवा के लिये तैयार पाये जायेंगे..

आज और हमेशा ... घर घर की सेवा ... हिन्दुस्तान लीवर का आदर्श

PR 4X52 HI



वर्ष १५ अंक ८ पूर्णांक १८६

दिसम्बर १९५९

(१० मार्गशीर्ष से १० पौष १८८१)

आवरण चित्र "तिरुचिरपल्ली में शिला पर मन्दिर"
इस मास का चित्र : 'शयन सुख', फोटो भूपेन्द्रसिंह ढिल्लन
अन्तिम पृष्ठ का चित्र 'पुरी का जगन्नाथ मन्दिर'

'दिवोदास' की तीसरी धारा अगले अंक में प्रकाशित होगी

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८



वार्षिक मूल्य—६ रुपए, सवा डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नए पैसे, बारह सेंट या नौ पैंस



'शयन सुख'

फोटो । भूपेन्द्रसिंह किरतन



वर्ष १५ दिसम्बर १९५९ अंक ८

सत्य

हरप्रसाद मित्र

तदुपरान्त एक दिन
परियो की ओर ताकते हुए मैंने कहा,
तुम लोग अब चली आओ
चली आओ और भी ऊंची मंजिल में,
नीचे है बड़ा झंझट,
वहा सिर्फ भीड़-भाड़ ही रहती है,
सम्मन के बहाने प्यादा
सिर्फ परेशानियां ही बढ़ाता है,
मैं हूं भिन्न हवा में सिहरित उत्तुंग पथिक
जहां पूर्ण चांद बहुत ही नजदीक,
बिल्कुल हाथ ही में।
चम्पई, लाल, कत्थई और हरी परियां
चली आईं ऊपर की मंजिल में।
कितना मीठा लगता कानों को
ताल-ताल पर बजते नूपुर।
हवा ने कितना सुख पहुंचाया
परियों ने दी वासना गम्भीर
वासना को देख
न जाने क्या जाग उठा था—
तदुपरान्त वह इसी हृदय में जागा था।
यह देख गया सभी कुछ
प्रेम में कण्टक है ईर्षा।
प्रेम बहुत ही हिंस्र और बर्बर!

चम्पई, लाल कत्थई—
हरी, सुनहरी और हीरक
सभी थीं उस मीना बाजार में।
क्योंकि, वे सभी वासना की ही मणिमाला—
उन्होंने ही दिया प्रकाश अन्धकार में।
मिट गया वह रूप।
जीवन के नाना गत सत्यों से—
फिर-फिर लगी विचरने स्मृति
चिन्तन की शक्ति को करती तीक्ष्ण।
कौन नवजन्म लेगा,
कौन देगा देखने की नई दृष्टि?
कौन हटा देगा निज के इस अहंमय विघ्न को?
यह जो निशिदिन मेरुदण्ड को कुतर रहा विष
कर दिया विपाक्त सुखी स्वत्व
इतने में म्लान हंसी हंस
शुचि सेविका के वेष में
कपाल पर रखा हाथ—सत्य ने!
तदुपरान्त देखता हूं एक अपूर्व
छाया-माया आलोक औ' अवतमसा के बीच
चल रहा निरंकुश
मानो वह अखिल रूप।
वह क्या प्रेम?
वह क्या निर्लिप्त?

अनुवादक हरिशंकर शर्मा

अहिंसा परमो धर्म

आरसीप्रसाद सिंह

गीत

मरण की डगर पर अमर कौन वह, जो
अमृत के चरण धर चला आ रहा है?
निशा है प्रलय की, हृदयहीनता के
घनीभूत तम में दिशा खो रही है।
लुटी शांति की माँग-सिन्दूर-लाली,
मनुजता दनुज पाश में रो रही है।
अशांति के उसी क्षुब्ध वातावरण से
उषा का विजय-स्वर ढला आ रहा है।
मरण की डगर पर अमर कौन वह, जो
अमृत के चरण धर चला आ रहा है?
जहाँ सभ्यता के अभागे क्षितिज पर
घृणा-द्वेष के घन मँडला रहे हैं।
अविश्वास की अग्नि में दग्ध मानव
सहज स्नेह खोते चले जा रहे हैं।
व्यथा के उसी अश्रु की घन घटा में
मिलन का मधुर स्वर पला आ रहा है।
मरण की डगर पर अमर कौन वह, जो
अमृत के चरण धर चला आ रहा है।

वाचक

सदियाँ बीतीं, जब भूतल था पीड़ित इसी प्रकार
एक महामानव आया था, करुणा का अवतार।
पहली बार मिला मानव को वह स्वर्गीय प्रकाश,
जो जन-जीवन की पतझड़ में ले आया मधुमास।

वाचिका

हाँ, ऐसा ही युग था कोई, जिस में बढ़ा अधर्म।
हिंसा ही जब एक मात्र थी बनी सबल का कर्म।
वे थे गौतम बुद्ध, जिन्होंने देख मनुज का क्लेश,
दिया 'अहिंसा परमो धर्मः' का पावन सन्देश।

गीत

अपने दिल में प्यार बसा ले। प्यार बसा ले।
ओ मतवाले,
दुनियावाले, अपने दिल में प्यार बसा ले।
घृणा न जाती कभी घृणा से,
रे कब मल से मल धुलता है?
बढ़ता द्वेष द्वेष से, मैत्री—
द्वार प्रेम से ही खुलता है।
कर दे ढाल क्षमा की आगे,
जब कोई तलवार निकाले। प्यार बसा ले।
ओ मतवाले,
दुनिया वाले,
अपने दिल में प्यार बसा ले। प्यार बसा ले।
आग न बुझती कभी आग से,
वैर वैर का शमन न करता।
होता सदा असत्य पराजित,
सत्य किसी से कभी न डरता।
रह निष्पाप, पाप से बच कर,
पर, पापी को गले लगा ले। प्यार बसा ले।
ओ मतवाले,
दुनियावाले,
अपने दिल में प्यार बसा ले। प्यार बसा ले।

वाचक

किया बुद्ध ने जन-समाज में जिसका विपुल प्रचार,
देशान्तर भेजा अशोक ने जिसको सागर-पार,
सत्य, अहिंसा और दया का वह शाश्वत उद्घोष
इस युग में बापू के द्वारा प्रकट हुआ निर्दोष।

वाचिका

जग ने देखा सत्य-अहिंसा का बल पहली बार।
किस प्रकार साम्राज्यवाद ने डाल दिये हथियार।
भारत की वह पूर्ण अहिंसक क्रांति बनी दृष्टांत।
आत्म-शक्ति सम्मुख झुकता पशुबल भी दुर्दान्त।

गीत

हम मानव की जय गाते हैं।
हम सैनिक हैं सत्य मार्ग के,
हम न किसी से भय खाते हैं।
हम मानव की जय गाते हैं।
कोई दुश्मन नहीं हमारा।
प्रेम-निकेतन भूतल सारा।
सब के प्रति समभाव दिखाते,
सब जन को हम अपनाते हैं।
हम मानव की जय गाते हैं।
भेद नीति से हम सुदूर हैं।
जन-सेवा के व्रती शूर हैं।
सत्याग्रह है अस्त्र हमारा।
शांति-पताका फहराते हैं।
हम मानव की जय गाते हैं।
समता, मैत्री, मुदिता मधुकण,
जन-जन में हम करते वितरण।

अरुणोदय के किरण-दल हम,
हिम-निशान्त में मुस्काते हैं।
हम मानव की जय गाते हैं।

वाचक

जहां कहीं देखा बापू ने जग में अत्याचार,
बर्बरता से छिनते देखा मानव का अधिकार।
वहीं प्रेम की वाणी बोली, सत्य उठा ललकार।
नहीं अहिंसा हो सकती है कायर का हथियार।

वाचिका

जब तक बदलेगा न मनुज का हृदय, न तब तक स्नेह
हो सकता मानव-मानव में, जा सकता सन्देह।
इसीलिये है मार्ग अहिंसा का आत्मा की ओर।
ईश्वर पर विश्वास और आन्तर जीवन पर जोर।

गीत

खोलो मन्दिर-द्वार, पुजारी।
यह कैसा है वेष, तुम्हारा
हो जिस पर अधिकार, पुजारी।
खोलो मन्दिर-द्वार, पुजारी।
जग-व्यापक कहलाने वाले,
सीमा में न समाने वाले,
उसी असीम को भी दे डाला
तुमने कारागार, पुजारी।
खोलो मन्दिर-द्वार, पुजारी।
प्रतिमा में यदि प्राण नहीं है,
तो जिस में भगवान नहीं है,
मुझे बता दो, क्या कोई है
ऐसा भी आकार, पुजारी?
खोलो मन्दिर-द्वार, पुजारी।
जड़ में भी नारायण पाया,
फिर कैसे नर को ठुकराया?
हरि-हरिजन के बीच खड़ी की
यह कैसी दीवार, पुजारी?
खोलो मन्दिर-द्वार, पुजारी?

वाचक

अणुयुग का विज्ञान प्रमाणित करता प्रति पल आज,
कितना है संसार तुच्छ यह, कितना तुच्छ समाज।
जिसे नष्ट कर सकता केवल, केवल एक प्रहार।
कितना सस्ता जीवन, कितना सरल लोक-संहार।

वाचिका

बचा अहिंसा ही सकती है मानवता की लाज।
वही रोक सकती है भावी प्रलय-नृत्य को आज।
पशु न रहेगा अब मानव, कर बर्बरता का अन्त
लाएगा जग में सहजीवन का आनन्दवसन्त।

गीत

आज नहीं तो कल, गांधी की वाणी युग को बदलेगी।
शक्ति प्रेम की अणु-उदजन अस्त्रों को निष्फल कर देगी।
ये विनाश के काले बादल प्रलय-क्षितिज से बिखरेंगे।
थके मुसाफिर भूले-भटके अपने घर जा पहुंचेंगे।
भारत से वह किरण ज्योति की दिशा-दिशा में फूटेगी।
आज नहीं, तो कल गांधी की वाणी युग को बदलेगी।
सत्य-अहिंसा का स्वर उनके अन्तर में भी गूंजेगा,
जिनके एक इशारे पर आकाश हलाहल उगलेगा।
आशा है, फिर निर्भय होकर जन-मानवता विचरेगी।
आज नहीं, तो कल गांधी की वाणी युग को बदलेगी।

वाचक

घनीभूत तम में आवश्यक होता तीव्र प्रकाश।
आतप में ही सुखद प्राण का लगता मलय-सुवास।
आज विषमता इतनी जग में, इतना है अंधेर।
शिव के शव पर लगा विनाशक अस्त्र-शस्त्र का ढेर।

वाचिका

चन्द्र लोक का एक ओर है होता जय अभियान।
और दूसरी ओर नाश का गरज रहा तूफान।
संकट की ऐसी घड़ियों में एक मात्र है धर्म
आज अहिंसा ही मानव का, जीवन का सत्कर्म।

गीत

चन्द्र लोक की जय के पहले
मिट्टी का संसार दे। जीने का अधिकार दे।
अंतरिक्ष के आरोही-दल,
मानवता को प्यार दे। जीने का अधिकार दे।
अन्धकार में डूबी जब तक
हैं नीचे की घाटियां,
तब तक नहीं बदल सकती हैं
शिखरों की परिपाटियां।
तुगंशृंग की चोटी से
करुणा की किरण उतार दे। मानवता को प्यार दे।
चन्द्र-लोक की जय के पहले
मिट्टी का संसार दे। जीने का अधिकार दे।
टूटेगा पाषाण घृणा का
प्रीति-ज्योति के बाण से।
बदलेंगे वे हृदय, आज जो
फूले हैं अभिमान से।
ऐटम बम को फेंक बाहरें,
वीणा में झंकार दे। मानवता को प्यार दे।
चन्द्र-लोक की जय के पहले
मिट्टी का संसार दे।
जीने का अधिकार दे।

खुदा के मसखरे के घर

स० ही० वात्स्यायन

स्टेशन से बढ़ कर वेल्लि आजेली (फ़रिश्तों वाली मरियम) के गिरजाघर के पास से, जिसमें वसन्त में कांटकहीन गुलाब खिलते हैं और असीसी के सन्त फ्रांसिस की असीसें लोगों तक पहुंचाते हैं, होती हुई सड़क असीसी की उपत्यका पार करती हुई, शिखर पर बने हुए प्राचीन दुर्ग की सीढ़ियों से कतराती हुई, पगडण्डी बना कर जैतून के उद्यानों में खो गई है। थोड़े अन्तर पर बने हुए आरम्भिक मध्य काल के दुर्ग असीसी की बस्ती के ऊपर छाए हुए हैं और चारों ओर दूर तक लहराते प्रदेश की मानो आज भी रखवाली कर रहे हैं। बस्ती के दूसरे छोर पर बना हुआ सन्त फ्रान्सिस का गिरजाघर और विहार इस दुर्ग से देखने पर बहुत छोटा जान पड़ता है और नीचे स्टेशन के निकट बना हुआ देल्लि आजेली गिरजाघर तो और भी छोटा। पार्थिव सत्ता के प्रतीक सर्वदा पारलौकिक सत्ता के प्रतीकों से बड़े होते हैं या होना चाहते हैं। यहां तक कि धर्म-सत्ता भी, जिसे पारलौकिक ही होना चाहिए, जब इहलौकिक के लोभ में पड़ती है तब उसे भी बड़प्पन का चस्का लग जाता है। रोम का सान् पियेत्रो (सन्त पीटर) गिरजाघर, जो कि पोप का विशिष्ट गिरजाघर होता है, संसार का सबसे बड़ा गिरजाघर है और गिरजे के लिए उससे बड़ी इमारत की योजना को रोम की स्वीकृति नहीं मिल सकती क्योंकि बड़प्पन के पार्थिव लक्षण का महत्व अब बहुत हो गया है। सान् पियेत्रो के फ़र्श पर निशान लगा कर संसार के अन्य बड़े गिरजाघरों की आनुपातिक लघुता प्रत्येक आगन्तुक के लिए मानो पटिया पर लिख कर रख दी गई है। श्रद्धालु लोग आकर पाते हैं कि छत की सजावट और फ़र्श पर लिखे हुए पैमाइशी आंकड़ों की नाप से नप कर उनकी श्रद्धा मानो बहुत छोटी हो गई है या और भी अधिक सकुचाती जा रही है। भारत में भी सम्पन्नतर मन्दिरों में जाने पर लोगों का ध्यान ठाकुर की ओर नहीं बल्कि ठाकुर की पन्ने की आंखों या मानिक के तिलक की ओर आकृष्ट किया जाता है, क्योंकि मूल्यवान् तो रत्न है, ठाकुर का क्या मूल्य हो सकता है!

किन्तु यह जो पगडण्डी बस्ती को पार करती हुई और दुर्ग से कतराती हुई, जैतून के उद्यानों के पार, निरन्तर वनाच्छादित शिखर की ओर बढ़ती गई है, उसे किसी भी सत्ता से सरोकार नहीं है। वह वास्तव में पर्वत-शिखर की ओर भी नहीं बढ़ती। सुबासियो शिखर के एक पार्श्व पर छाए हुए घने जंगल के भीतर एक गली में चट्टान काट कर बनाई गई गुफा-रूपी कुटिया ही उसका लक्ष्य है। बनडिक्ट सम्प्रदाय के उदासियों ने यह गुफा सन्त फ्रांसिस को एकान्त वास के लिए भेंट की थी। अब यद्यपि गुफा के साथ कुछ और कोठरियां भी बन गई हैं और 'एरेमो देल्ल कार्चेरी' दर्शनीय स्थान माना जाकर सैलानियों के लिए प्रस्तुत की गई सूचना-पुस्तकों में स्थान पाने लगा है, तथापि उसका एक कक्ष अब भी वैसा ही असम्पृक्त तटस्थता लिए हुए है। वहां पहुंच कर सैलानी को भी हठात् अवाक् हो जाना पड़ता है, जो सन्त फ्रांसिस के जीवन और साधना से परिचित हैं, उनका तो कहना ही क्या—वे तो गुफा-द्वार के निकट बने हुए छोटे से उपासनागृह में प्रवेश करते न करते विभोर हो जाते हैं। एक गहरा मन्त्रपूत मौन उनके अन्तःकरण में भर जाता है, और मन नीरव निष्कम्पन लय में गा उठता है। सुबासियो शिखर के पथ पर ही सन्त फ्रांसिस को क्रूस पर टंगे हुए ईसा का वह स्वप्न दीखा था जिसके सम्मोहन में वह ईसा से इतने एकात्म हो गए थे कि उनकी हथेलियों पर कीलों के घाव बन गए थे। साधना-गुफा का यात्री, श्रद्धा-भरा होकर भी, ऐसी एकात्मता तो नहीं प्राप्त कर सकता, लेकिन सन्त फ्रांसिस का स्नेह-स्पर्श मानो उसे छू जाता है, उनका वह विश्व-प्रेम जो कि गधे को भी 'भाई गधा' और शरीर को दागने वाली आग को भी 'भाई आग' बना देता था, मानो उसके लिए भी सुलभ हो जाता है।

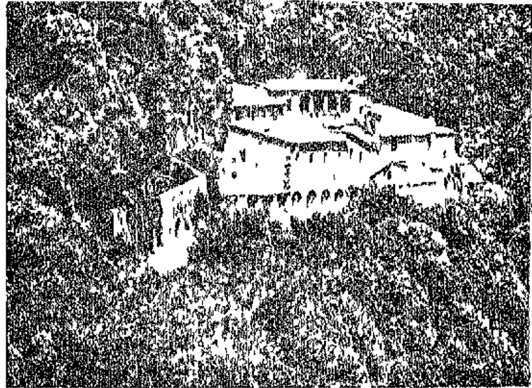


'दूसरा ईसा' असीसी का सन्त फ्रांसिस (एक मध्यकालीन प्रतिमा)

मध्य इटली का उम्ब्रिया प्रदेश मानो इटली का वक्ष है, असीसी मानो उम्ब्रिया का, और इसीलिए इटली का, हृदय है। इटली में नगर-राज्य और छोटे-बड़े देश राज्य अनेक होते रहे, और प्रत्येक राजधानी का अपना-अपना सौन्दर्य है। रोमा, फिरेंजे, वेनेत्सिया—तीनों का सौन्दर्य जगद्विख्यात है। मिलानो, नैपोली और जैनोआ इतने प्रसिद्ध या प्रिय नहीं हैं, पर अपने-अपने समर्थक रखते हैं। अनेक छोटे-छोटे नगर भी हैं, जिनके अलग-अलग हिमायती हैं। ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि अगर उन्हें अपने रहने के लिए संसार में कोई स्थान चुन लेने की छूट हो तो

ये पेरूजिया में रहेंगे, या काप्री में रहेंगे। किन्तु मै अपने सम्मुख जब यह विकल्प रखता हू तो भारत के बाहर जो दो-तीन स्थान मेरे सम्मुख आते है उनमें असीसी कदाचित् पहला है। या यो कहू कि यूरोप-भर में जो दो स्थान इस दृष्टि से मुझे रुचते है, असीसी और फिरेंजे है। फिरेंजे नगर है, नगर की सब सुविधाए वहा मिलती हैं, असीसी छोटी जगह है। किन्तु असीसी में जो है वह मध्य इटली में या उम्ब्रिया में भी और कहीं नही है। और इसका श्रेय जितना उस की भौमिक स्थिति को है, उतना ही सन्त फ्रासिस की छाया को, जो आज भी असीसी के रूप में इटली के जीवन को और सवेदना को मानो अनुच्छायित किए है।

यो असीसी पेरूजिया प्रान्त मे ही है, पेरूजिया से पन्द्रह मील दक्षिण-पूर्व। सागर-तल से उसकी ऊचाई लगभग १,६०० फुट है, दुर्ग प्राय तीन सौ फुट और ऊचा है और कार्चेरी की गुफा बस्ती से प्राय एक हजार फुट ऊची है। असीसी से टेवेरो (टाइबर) और टोपिनो नदियो की घाटिया दीखती है। सारी बस्ती पहाड की ढाल पर बसी हुई है। बारहवी शती से लेकर आधुनिक काल तक के आठ सौ वर्षों में बने हुए मकानो में ऐसी आश्चर्यजनक एकरूपता हे कि उसका दूसरा उदाहरण कदाचित् ससार में न होगा। ऐसा जान पडता है कि सारी बस्ती एक ही समय में एक ही वास्तुकार के निर्देशन में बनाई गई होगी और वह वास्तुकार भी सतर्क रहा होगा। क्योकि सभी इमारतें एक ही सन्दली रग के पत्थर की बनी हुई हैं। आधुनिक नगर निर्माण में तरह-तरह के द्रव्यो का और रगो का जैसा उपयोग सौन्दर्य और विविधता के लिए अनिवार्य माना जाता है, उसका यहा कोई लक्षण नही है। वह मानो किसी की कल्पना में ही नही आया। वास्तव में विविधता के द्वारा सामजस्य लाने का उद्योग वहा अपेक्षित हे जहा बहुत-सी चीजें अलग-अलग हो और बेमेल हो, जहा अधिक से अधिक उनके बेमेलपन को चित्र-विचित्र पैटर्न मे गूथा जा सके। किन्तु जहा है ही इकाई, वहा विविधता का प्रश्न कैसे उठ सकता है? और असीसी वास्तव में इकाई है। आज भी उसमें एक विस्मयकारी एकरूपता और एकप्राणता हे। इसी एक और अखण्ड असीसी की सडको और गलियो में सन्त फ्रासिस अपने रगीले और मनचले सहचरो के साथ रगरेलिया करते रहे, यही पर उन्होने अपने दिव्य स्वप्न देखे, यही पर वह कोढी से गले मिले, यही पर उन्होंने ईंट-पत्थरो और काँच-कावो की बौछारें सही, यहीं उन्होने नाम-गान किया, यही डाकुओ द्वारा पकडे जाने पर अपने को एक 'राजाधिराज का दूत' बताया और यही नगरवासियो की ठिठोलियो के जवाब में अपने को 'खुदा का मसखरा' या 'भाड' घोषित किया। यहीं पर उन्होने निर्धनता की प्रशस्ति की और अन्त में मृत्यु के समय यही स्वय अपने जीर्ण शरीर से यह कह कर क्षमा मागी कि "मेरे गधे भाई, मेरे शरीर, तू मुझे इसके लिए क्षमा कर देना कि मै इतनी निर्ममता से तुझे हाकता रहा हू।" सब कुछ बीत जाता है, धार्मिक उत्साह और आवेश भी क्षीण हो जाता है, सेवा-धर्म लुप्त हो जाता है और सेवादारो के सगठन के रूप में अपना ककाल छोड जाता है। लेकिन विचार वास्तव में कभी नही मरते, वे समाजों, जातियो और युगो को नया सस्कार दे जाते है। असीसी में अलग-अलग युगो के और धर्म सस्कारों के अवशेष अभी हैं, रोमिक काल के सभा-भवन और देवी-मन्दिर भी हें, लेकिन असीसी का सस्कार ईसाई सस्कार



'असीसी' सुबासियो पवन के अचल मे कार्चरी गुफा-विहार

है, ईसाई में फ्रासिस्कन सस्कार, और फ्रासिस्कन सस्कारो में समचे जीवन की एकता का सस्कार।

फ्रासिस का जन्म असीसी में सन् ११८२ में हुआ। मृत्यु भी यही पर सन १२२६ में हुई। सन् १२२८ में उन्हे पोप द्वारा 'सन्त' का पद प्रदान किया गया और उसी वर्ष फ्रासिस्कन सम्प्रदाय के विहार का निर्माण आरम्भ हुआ। सन् १२५३ में यह पूरा हुआ। सन १८१८ में इसका तलघर बनाया गया और उस समय सन्त फ्रासिस का कफन भी वहा मिला जिसे अब तलघर में ही समाधि दी गई है। विहार के साथ का निचला गिरजाघर जिओत्तो, चिमाबुए आदि के बनाए हुए भित्ति-चित्रो से अलकृत है।

फ्रासिस का जन्म उच्च मध्यवर्ग में एक सम्पन्न व्यापारी के परिवार में हुआ। उनका यौवन रगरेलियो और साहस-कर्मों में बीता। आमोद-प्रमोद में वह असीसी भर के युवको के नेता थे। इक्कीस वर्ष की आयु में वह असीसी की रक्षा के लिए युद्ध में गए और बन्दी हुए। एक वर्ष बाद पुन असीसी लौटने पर वह सख्त बीमार हुए। इस बीमारी से उठने पर यद्यपि उन्होने फिर आमोद-प्रमोद का जीवन आरम्भ कर दिया, तथापि यही से कदाचित् वह आध्यात्मिक परिवर्तन आरम्भ हुआ जिसने शीघ्र ही बडे नाटकीय ढग से उनके जीवन का ढाचा बदल दिया। फ्रासिस ने एक दिन यार-दोस्तो को दावत दी। खा पीकर सब लोग मशालें लेकर जलूस बनाकर शहर की सैर के लिए निकले—

'असीसी' छोटे दुर्ग (रोका मिनोरे) का दृश्य



फ्रासिस को 'रसिकराज' की उपाधि देकर उसका अभिषेक किया गया था और मालाएं पहनाई गई थीं---और वास्तव में मशालों का जुलूस इसी अभिषेक की शोभा-यात्रा थी। चलते-चलते अचानक लोगों ने लक्ष्य किया कि फ्रासिस उनके मध्य में नहीं हैं। खोज हुई, लेकिन कोई पता नहीं मिला। चकित और विमूढ जलूस उसी पथ से वापिस लौटा। फ्रासिस रास्ते में नि:संज्ञ पड़े हुए थे---उस नि:संज्ञ अवस्था को मूर्छा कहा जाय या समाधि या योग-निद्रा ... जब वह जागे, तब वह फ्रासिस नहीं थे। न उनके संगी उन्हें पहचान सकते थे, और न वही संगियों को। किसी भीतरी आघात से मानो उनका जीवन यान हठात् किसी दूसरे आयाम में चला गया था और नई पटरी पर चलने लगा था ... फ्रासिस ने घर लौट कर एकान्त अपनाया, फिर रोम की तीर्थयात्रा की जहां सान् पियेत्रो के बाहर एक भिखमंगे के साथ उन्होंने पोशाक बदल ली और चिथड़ों में वापिस असीसी लौटे। घर लौटते समय राह में एक कोढ़ी को देख कर वह ग्लानि से पीछे हट गए, फिर इस ग्लानि पर भी उन्हें इतनी आत्मग्लानि हुई कि लौट कर उन्होंने कोढ़ी का हाथ चूमा और उससे गले मिले।

इस परिवर्तन को फ्रासिस के संगी-साथी न पहचानें, यह स्वाभाविक ही था। उसकी वे अवज्ञा करें यह भी अप्रत्याशित नहीं था। उन्होंने राह चलते फ्रासिस का ढेलों और कीचड़ से सत्कार किया। अपमानित और विरक्त पिता ने फ्रासिस को उत्तराधिकार से वंचित करने का निश्चय किया और बेटे को लेकर असीसी के बिशप के सम्मुख पहुंचे। जब सब समझाना-बुझाना व्यर्थ हुआ और फ्रासिस को सम्पत्ति-च्युत करने का दस्तावेज़ तैयार किया जाने लगा, तब फ्रासिस ने अपने शरीर के सब कपड़े उतार कर पिता के सामने रख दिए और कहा, अब मैं अधिक सच्चाई से प्रार्थना का यह पद दोहरा सकता हूं कि "हे मेरे स्वर्ग में रहने वाला पिता!" बिशप की दी हुई पोशाक पहन कर वह गाते हुए सुबासियो पर्वत के जंगल की ओर चले गए। वन में उन्हें डाकुओं ने पकड़ लिया तो वह खिलखिला कर हंसे, अपना परिचय उन्होंने यह दिया कि मैं एक बहुत बड़े राजाधिराज का दूत और सन्देशवाहक हूं।

तीन वर्ष बाद मारिया देग्लि आंजेली गिरजे में मैथ्यू के एक पाठ पर उपदेश देते हुए उन्होंने अपने 'अकिंचनता के सिद्धान्त' की प्रतिष्ठा की। "अपने पथ पर सर्वत्र उपदेश दो और कहो कि ईश्वर के राज्य

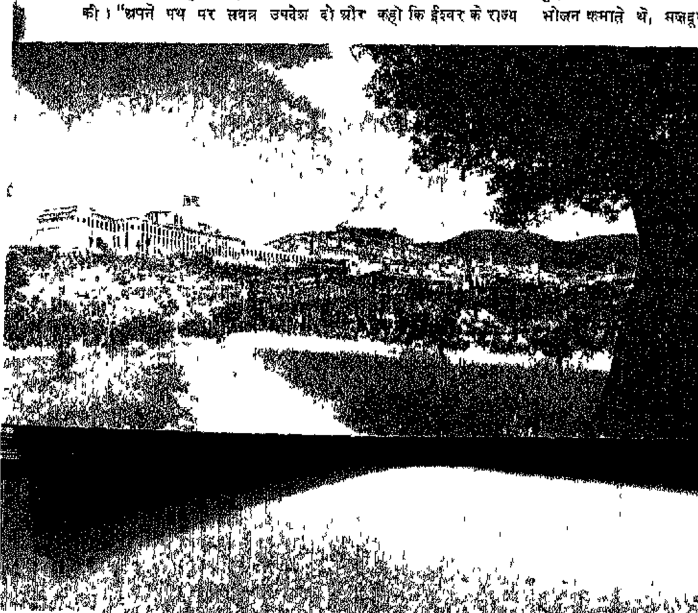


फरिश्तों वाली मरियम का गिरजाघर

की प्रतिष्ठा होने वाली है। रोगियों की सेवा करो ... कोढ़ियों के घाव धोओ ... तुम्हें खुले हाथों जो मिला है उसे खुले हाथों लौटाओ... सोना-चांदी मत रखो, अंटी में पैसा न रखो, न झोला न दूसरी पोशाक, न जूता, न लाठी। जो श्रमिक है वह उतने का ही अधिकारी है जितना वह श्रम से कमाता है ..."

असीसी के 'शोधकों' का यह सम्प्रदाय सन् १२०९ अथवा १२१० में स्थापित हुआ। असीसी के नीचे की समतल भूमि में बना हुआ 'फरिश्तों वाली माता मरियम' का गिरजाघर उपदेश के लिए उन्हें मिल गया। फ्रासिस और उनके शिष्यों ने इसी के आसपास डालें और पत्तियां बीन कर छप्पर बना लिये, किन्तु उनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं था। निर्धन मजदूर की भांति वे मटमैले रंग का एक झोला पहनते, रोज़ मजदूरी करके गुज़र करते और गिरजाघर के छज्जों या खलिहानों में रात काट देते। अपाहिजों, मजदूरों, कोढ़ियों और बहिष्कृतों के बीच उनका समय कटता और हमेशा वे प्रसन्न भाव से गाते रहते। 'खुदा के मसखरे', 'ईश्वर के भांड़, --अपने लिए इसी नाम और चरित्र का उन्होंने वरण किया था। ईसा का निर्धनता का सिद्धान्त उनका धर्म था, उसका व्यवहार करते हुए सम्पत्ति रखना उनके लिए निषिद्ध था। प्रति दिन मजदूरी करके वे भोजन कमाते थे, मजदूरी न मिलने पर ही भिक्षा की अनुमति थी। कुछ भी बचाना, कुछ भी जेब में रखना, धन ग्रहण करना या भीख में लेना, भविष्य के या आगामी दिन के लिए भी किसी तरह का सामान जुटाना उनके लिए निषिद्ध था। खान-पान का कोई निषेध नहीं था; जो दे दिया जाए उसी को प्रसन्न मन से ग्रहण किया जाए इतना ही अपेक्षित था।

नि:स्वता, आनन्द और रहस्यमय समर्पण---सन्त फ्रान्सिस के जीवन के ये तीन बीज मन्त्र थे। निर्धनता की स्तुति में उन्होंने गाया था, "(क्रूस पर) जहां माता ने भी तुझे छोड़ दिया, वहां भी तेरी नि:स्वता ने तुझे नहीं छोड़ा, तेरे साथ शूली



'असीसी' गाईं और फ्रासिस्की सम्प्रदाय का विहार और गिरजाघर

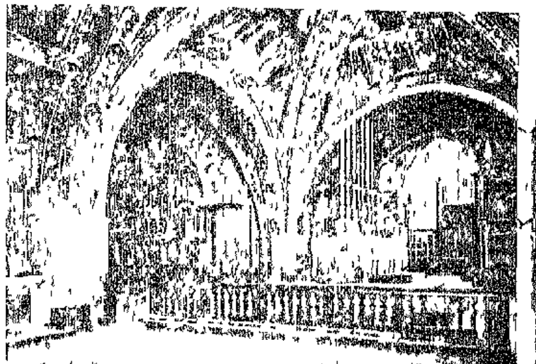
पर चढ़ गई। तू जब प्यासा था, तब तेरे लिए उसने विष का प्याला तैयार किया। उसी नि स्वता के आलिंगन में तू मरा। मरने पर भी उसने तेरा साथ न छोड़ा, क्योंकि तेरी देह को नगनी की कब्र के सिवाय दूसरा ठौर न मिला   ओ नि स्वतम, ओ नि स्वतम यीशु, चरम नि स्वता की यह निधि तू मुझे प्रदान कर   ।"

आनन्द का सिद्धान्त सभी को उनका आत्मीय और सुहृद् बनाता था; निर्जीव वस्तुएं भी उनके लिए भाई और बहन थी। अन्तिम बीमारी में जब रोगी अंग को दागने के लिए लोहे की सलाख गर्म की गई तब उन्होंने उसका भी उसी मुदित भाव से स्वागत किया—"भाई आग, मेरे साथ दया का ही व्यवहार करना!" राह चलते वह रुक कर पक्षियो को भी उपदेश देते थे, और उनके भक्त मानते हैं कि पक्षी चुपचाप उनकी बात सुनते थे।

शरीर के साथ उनका जैसा अनासक्त सम्बन्ध था वह सच्चे जितेन्द्रिय का ही हो सकता है। मृत्यु के समय करुण-विगलित भाव से उन्होंने स्वय अपनी देह से क्षमा मागी थी। अन्तिम दिनो में वह अन्धप्राय हो गए थे, लेकिन इससे उनके आनन्द-विभोर भाव को या स्तवगान को कोई आघात नही पहुचा। खुदा का यह मसखरा हँसता-गाता हुआ ही अन्त में स्वय अपने आनन्द और अपनी आस्था में विलीन हो गया।

सुबासियो शिखर के नीचे वन प्रदेश में खोया हुआ कार्चरी का गुफा-विहार अब भी ज्यो का त्यो खड़ा है। साय-प्रात गन्ध-द्रव्यो का धुआ उसके पूजागृह से उठता और वन-गन्धो में विलीन हो जाता है। जिन *पक्षियो को सन्त फ्रान्सिस उपदेश देते थे, उनके वंशधर गुफा के आस-पास* कूजन करते है और चुप हो जाते हैं। यह एक परम्परा है— असम्पृक्त, आत्मस्थ और किसी अलौकिक स्वर के साथ एकतान।

दूसरी ओर असीसी की बस्ती की चहल-पहल है, रोमिक काल के मन्दिर के अवशेष से सटा हुआ नया नगर-भवन है, रोमिक काल की वापी के निकट सड़क बनाते हुए आधुनिक इजन है, और बस्ती के सिरे पर, बस्ती से विमुख फ्रासिस्कन सम्प्रदाय का विहार और गिरजाघर है। बीच में ऊचाई पर उजड़ा हुआ दुर्ग है, अब बिल्कुल निर्जन, किन्तु फिर भी अपनी अतीत सत्ता की सूचना देता हुआ। ये सब भी एक परम्परा



फ्रासिस के कथेड्रल के भीतर

में बधे है। *किन्तु यह परम्परा असम्पृक्त नही है,* ऐतिहासिक होने के नाते देश-काल से और मानवीय राग-विरागो से निविडता के साथ बधी है। यह परम्परा आत्मस्थ भी नही है, क्योंकि बहिर्मुख और सामाजिक और कर्मरत है। और उसमें अलौकिक भाव भी नही है हम क्रमश भी सकते है तो इसी के लिए कि लौकिक होते हुए भी उसने ऐसी एकतानता का निर्वाह किया है कि असीसी अपने ढग का एकमात्र नगर हो गया है। स्टेशन से ही देखने पर वह सम्पुजित एकता का जो *प्रभाव देता है वह घूमने-फिरने के बाद भी ज्यो का त्यो बना रहता है,* और यात्री वहा से जो प्रसन्न और रस-पूरित भाव लेकर लौटता है, उसमें जितना योग सन्त फ्रान्सिस की आनन्दपूर्ण तन्मयता का होगा उतना ही असीसी के सस्मित मर्यादा-निर्वाह का भी। अगर लोग सन्त फ्रासिस को 'दूसरा ईसा' कहते हैं अथवा असीसी को 'समूचे इटली के सरक्षक सन्त' का नगर मानते हैं, तो उचित ही करते है। यूनान यूरोपीय सभ्यता का पिता है तो इटली उसकी माता है, असीसी उस मातृ-रूप के चेहरे का स्मित भाव है—मुदित, करुणामय और सर्वदा एक-सा वात्सल्य-भरा।

भारतीय अंग्रेजी कविता

कृतान्त

योगिराज अरविन्द

व्यर्थ, कहा है उन्होंने, हे मनुज का
    आह्निक उद्योग व उसका परिताप,
व्यर्थ ही करते पार 'काल' के खिल सु
    'शाश्वत' प्रति बनजारे उसके सार्थ।
उसकी तेजोमयी सकल स्पृहाओ का
    करती सामना गहरी 'निशा' आगही,
काटती लावणी-सी उसकी सेना, सकुलताओ को
    दारुण दतिया 'कृतान्त' की।

हो गया विफल यदि जीवन सकल भी,
    क्या मान ले इसे विफलता निरन्तर?
क्या नहीं है युग हमारे पुरस्तात्
    अद्यापि उद्योग हेतु उर्वर?
एक जगत सकट किंकरकारी में,
    क्या नही प्राप्त हमें 'शोभा' समन्तात्,
क्या नही प्रेर रहे अनन्त आह्वान प्रति
    हमारे पदो को 'शौर्य', 'साहस' और 'विचार'।

—अनुवादक : वसिष्ठ

नेहरू जी की काव्यानुभूतियां

शान्तिप्रिय द्विवेदी

जो लोग नेहरू जी को केवल सार्वभौम राजनीतिक नेता के रूप में जानते हैं, उन्हें यह विषय नया लगेगा। किन्तु नेहरू जी ने अपनी आत्म-कथा ('मेरी कहानी') में प्रसंगानुसार अनेक काव्य-पंक्तियां भी उद्धृत की हैं जिन में उनके स्वगत क्षणों की प्रतिध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। ये उद्धृत काव्य पंक्तियां किसी वक्ता अथवा विचारक की केवल बौद्धिक युक्तियां नहीं हैं, बल्कि स्पन्दनशील मानव की हार्दिक समवेदनाएं भी हैं।

इन उद्धरणों में किसी आधुनिक भारतीय कवि की पंक्तियां नहीं हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि नेहरू जी ने अपनी आत्म कथा उस ब्रिटिश शासन-काल में लिखी है जब देश में स्वाधीनता का आन्दोलन चल रहा था और उसको दबाने के लिए घोर दमन किया जा रहा था। केवल आंग्ल कवियों की ही पंक्तियां शायद इसीलिए उद्धृत की गई हैं कि ब्रिटिश शासक यदि भारत की आवाज नहीं सुन सकते तो अपने सजातीय कवियों की कविता से ही मानवता की आवाज सुन सकें, गुन सकें।

नेहरू जी की आत्म-कथा में जैसे किसी भारतीय कवि की पंक्तियां नहीं हैं वैसे ही किसी रोमैण्टिक अंग्रेजी कवि की भी पंक्तियां नहीं हैं। क्या उन्होंने पढ़ी नहीं? ऐसा कैसे कहा जा सकता है। रवीन्द्रनाथ के प्रत्यक्ष सम्पर्क में वे रह चुके हैं, अंग्रेजी के रोमैण्टिक कवियों से भी उनकी कृतियों द्वारा मानसिक सम्पर्क स्थापित कर चुके हैं। श्री नयनतारा सहगल (नेहरू जी की भाजी) ने अपने जीवन संस्मरण में लिखा है, "बायरन के बजाय शैली उन्हें पसन्द है।"

शैली मानवता के उज्ज्वल भविष्य का स्वप्नदर्शी था। नेहरू जी भी स्वप्नदर्शी हैं, किन्तु वे स्वप्न को कर्म में साकार देखना चाहते हैं, कल्पना को जीवन देना चाहते हैं, भविष्य को वर्त्तमान बनाना चाहते हैं। कविता को केवल कविता के लिए नहीं पढ़ना चाहते। यह क्यों? इसका उत्तर उपन्यासों के सम्बन्ध में उनके इस मन्तव्य से मिल जाता है—"उपन्यास पढ़ने से दिमाग में एक ढीलापन-सा मालूम होने लगता है।"—केवल कलात्मक होकर कदाचित् कविता भी नेहरू जी के लिए उपन्यास मात्र रह जाती है।

अपनी आत्म-कथा में नेहरू जी ने रोमैण्टिक कवियों की पंक्तियां क्या इसलिए भी नहीं उद्धृत की हैं कि वातावरण उसके अनुकूल नहीं था? किन्तु उसी वातावरण में गान्धी का अध्यात्मवाद और रवीन्द्रनाथ का छायावाद (रोमाण्टिसिज्म) सजीव हुआ। नेहरू जी को न तो गान्धी जी के अध्यात्म पर आस्था है, न कवियों के रोमाण्टिसिज्म पर। अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में वे आदर्शवादी हैं, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण में यथार्थवादी हैं। ठोस पढ़ना और ठोस गढ़ना चाहते हैं। गान्धी और रवीन्द्र-युग के वातावरण को भी बदलना चाहते हैं और रचनात्मक प्रक्रिया को भी बदलना चाहते हैं, इसीलिए जैसे मध्ययुग को स्वीकार नहीं करते, वैसे ही चर्खा और खादी को भी नहीं स्वीकार करते। कहा जा सकता है, वे प्रगतिवादी हैं।

कदाचित् नेहरू जी को किसी 'वाद' के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, उनका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। यद्यपि उनका व्यक्तित्व सार्वजनिक हो गया है, बिन्दु से सिन्धु हो गया है, सब्जेक्टिव से आब्जेक्टिव हो गया है, तथापि व्यक्ति के साथ व्यक्ति का वह तन-मन तो है ही जो विश्व के भीतर उसी तरह हर्षित-विमर्षित होता है जैसे समष्टि सृष्टि के भीतर कोई प्राकृतिक प्राणी। इसीलिए वे भावना-शून्य नहीं हैं, उनके मर्मस्थल में भी रागोद्रेक-भावोद्रेक-रसोद्रेक होता है। वक्ष-स्थल पर कठोर वास्तविकता झेलते हुए भी वे कोमलता और सुघरता की ओर आकर्षित हो जाते हैं। छायावादी कवियों की तरह उनका भी रागात्मक तादात्म्य प्रकृति के साथ स्थापित हुआ है। अपनी आत्म-कथा के आरम्भिक पृष्ठों में अपनी पहिली काश्मीर-यात्रा को याद करते हुए उन्होंने वाल्टर डि ला मेयर की इन (अनूदित) पंक्तियों में अपने स्मृति-विभोर हृदय की सांस ली है —

> "मेरे अन्तर्पट पर इन गिरिश्रृंगों की पड़ती छाया—
> सान्ध्य गुलाबों से रंजित है जिनकी भीषण दुर्गमता,
> फिर भी मेरे प्राण मुग्ध पलकों पर बैठे अकुलाते,
> शान्त शुभ्र हिम के ये प्यासे, है कैसी पागल ममता!"

'गिरिश्रृंगों की भीषण दुर्गमता' की तरह क्या नेहरू जी के जीवन की बीहड़ता भी 'सान्ध्य गुलाबों से' रंजित है? नहीं, ब्रिटिश-काल के बन्दी जीवन के बाद आज भी उनका जीवन विश्व की समस्याओं से अत्यन्त क्लान्त है, फिर भी उनके बटनहोल में गुलाब का फूल उनके भावात्मक हृदय को प्रत्यक्ष करता है, बहिर्जगत में उनके अन्तर्गत का प्रतिनिधित्व करता है। वह प्रकृति के साथ उनके रागात्मक सम्बन्ध का प्रतीक भी है।

अतीत के बन्दी जीवन में उन्होंने प्रकृति के दृश्यावलोकन में अपने एकाकीपन को भुलाया है। लखनऊ जिला जेल के संस्मरण में वे लिखते हैं—"खुले हिस्से में लेट कर मैं आकाश और बादलों को निहारा करता था, और जितना पहले कभी नहीं किया इतना महसूस करने लगा कि ये बादल कितने गजब के सुन्दर-सुन्दर रंग बदलते हैं

> "अहो! मेघमालाओं का यह पल-पल रूप पलटना,
> कितना मधुर स्वप्न है लेटे-लेटे इन्हें निरखना!"

गुलाब के फूल और रंगीन बादल के आकर्षण से ज्ञात होता है कि चित्रकारों की तरह ही नेहरू जी को भी रंगों से प्रेम है।

केवल प्रकृति की शोभा ने ही नहीं, उसकी प्राणवन्त क्रियाशीलता ने भी नेहरू जी को आकर्षित किया है। उनके जैसे सक्रिय व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक है। देहरादून जेल में उनका ध्यान ऋतुओं के

परिवर्तन की ओर गया। वे लिखते हैं—"देहरादून में वसन्त ऋतु बड़ी सुहावनी होती है और नीचे के मैदानों के बनिस्बत ज्यादा समय तक रहती है। जाड़े ने प्राय सब पेड़ों को पतझड़ कर दिया है और वे बिल्कुल नंग-धड़ंग हो गए हैं। जेल के फाटक के सामने जो चार विशाल पीपल के पेड़ हैं, उन्होंने भी, आश्चर्य तो देखिए, अपने करीब-करीब सब पत्ते नीचे गिरा दिए हैं और खड़ और उदास बन करके वहां खड़े हैं। फिर वसन्त ऋतु आती है और उसकी जीवनमय बयार उन्हें उत्साहित करती है और उनके ठेठ अन्दर के एक-एक जर्रे को जीवन का सन्देश भेजती है। तब सहसा, क्या पीपल और क्या दूसरे पेड़ों में, एक हलचल होती है और उनके आस-पास कुछ रहस्य-सा दिखाई पड़ता है, जैसे किसी परदे के अन्दर छिपे-छिपे कोई प्रक्रिया हो रही है और मैं तमाम पेड़ों पर हरे-हरे अखुओं और कोपलों को उझक-उझक कर झांकते हुए देखकर चकित रह जाता। वह बड़ा ही हर्ष-पूर्ण और आनन्ददायी दृश्य था। फिर बड़ी तेजी से लाखों पत्ते उमड़ आते, सूर्य की किरणों में चमकते और हवा के साथ अठखेलियां करते। एक अखुए से लेकर पत्ते तक यह रूपान्तर जल्दी हो जाता है और कितना आश्चर्यजनक !"

—प्रकृति की इस नाटकीय लीला में जनता और उसके जीवन के उतार-चढ़ाव का भी दर्शन हो जाता है।

जैसा कि नेहरू जी ने लिखा है—"प्रकृति की लीला में कुछ रहस्य-सा दिखाई पड़ता है, जैसे किसी परदे के अन्दर छिपे-छिपे कोई प्रक्रिया हो रही है", किन्तु वे रहस्य और परदे में अदृश्य 'प्रक्रिया' के प्रति कुतूहल रखते हुए भी आकर्षित दृश्य जगत के प्रति हैं। रहस्य और अदृश्य को देख-समझ न पाने पर भी उन्हें उसका दिव्य दर्शन मानव के सात्त्विक मनोविकास में मिल जाता है। वे कहते हैं—"हममें से बहुत कम लोग इतने भाग्यशाली हैं जो—

'पिण्ड में ब्रह्माण्ड को अवलोकते,
वन-सुमन में स्वर्ग को हैं देखते,
अजली में बांधते निस्सीम को
एक पल से नापते चिरसीम को।'

दुर्भाग्य से, हममें से बहुतेरे प्रकृति के रहस्यपूर्ण जीवन की अनुभूति से दूर हैं। वह रहस्य-ध्वनि हमारे कानों के पास तो गूंजती है, लेकिन हम सुन नहीं पाते। उसके स्पर्श के मधुर कम्पन का सुख नहीं उठाते। वे दिन अब चले गए, लेकिन चाहे अब हम पहले की तरह प्रकृति की दिव्यता के दर्शन न कर सकें, तो भी मानव जाति के गौरव और कारुण्य में, उसके बड़े-बड़े स्वप्नों और आन्तरिक तूफानों में, उसकी पीड़ाओं और विफलताओं में, उसके संघर्षों और विपत्तियों में, और इन सबसे बढ़कर एक महान् उज्ज्वल भविष्य की आशा में तथा उन महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति में हमने उसे पाने का प्रयत्न किया है।"

मनुष्य के सात्त्विक निर्माण पर नेहरू जी को विश्वास है, किन्तु ईश्वर की सृष्टि पर उनका विश्वास नहीं है। कवि के शब्दों में उनके मन में भी यह प्रश्न उठता है—

"जब तारों ने अपनी झिलमिल किरणें डाली जगती पर,
और गगन-मण्डल से उतरीं बूंदें रिमझिम धरती पर,
देख-देख कृति अपनी कैसे स्मिति ओठों पर ला सकता !
मेष-वत्स रचने वाला क्या भीषण सिंह बना सकता ?"

नेहरू जी लिखते हैं—"परमात्मा की कृपालुता में लोगों की जो श्रद्धा है उस पर कभी-कभी आश्चर्य होता है। किस प्रकार यह श्रद्धा चोट पर चोट खाकर भी जीवित है और किस तरह घोर विपत्ति और कृपालुता का उलटा सबूत भी इस श्रद्धा की दृढ़ता की परीक्षाएं मान ली जाती हैं। जेराड हापकिन्स की ये सुन्दर पंक्तियां अनेक हृदयों में गूंजती हैं—

"सचमुच तू न्यायी है स्वामी, यदि मैं करूं विवाद,
किन्तु नाथ, मेरी भी है यह न्याययुक्त फरियाद।
फलते और फूलते हैं क्यों पापी कर-कर पाप ?
मुझे निराशा देते हैं क्यों सभी प्रयत्न कलाप ?"

—इस सांसारिक कुव्यवस्था को बदलने और मनुष्य का आत्म-विश्वास जगाने के लिए नेहरू जी की नास्तिकता है। वे कहते हैं—"विश्वास उन्नति में, शुभकार्यों में, आदर्शों में, मानवीय सज्जनता में और मानव-भविष्य की उज्ज्वलता में। क्या ये सब परमात्मा की श्रद्धा के साथ मिलते-जुलते नहीं हैं ?"

मनुष्यत्व की साधना से जैसे प्रकृति की रहस्यमयता पीछे छूट जाती है, वैसे ही ईश्वर की दैवी सत्ता भी। लेकिन मनुष्यत्व की साधना भी अभी है कहां ! 'पंचशील' तथा 'सह-अस्तित्व' स्वप्न बना हुआ है।

अलीपुर जेल (कलकत्ता) न केवल ब्रिटिश शासन का नरक था, बल्कि वर्तमान विश्व के विषण्ण वातावरण का मनहूस प्रतीक भी था। पिछली जेल-यात्राओं की तरह नेहरू जी की यह जेल-यात्रा उत्साह-पूर्ण नहीं थी। दमन से सरकार ने देश में मरघट की-सी शान्ति स्थापित कर ली थी, उधर प्रकृति ने क्षुब्ध होकर बिहार में भूकान्ति (भूकम्प) कर दी थी। सारी परिस्थितियों के पुंजीभूत विषाद-सा अलीपुर जेल नेहरू जी के लिए रोमांचक हो गया। कवि के शब्दों में उन्होंने अनुभव किया—

"फेंक यकायक कहां दिया है इतनी दूर मुझे लाकर !
कबतक यों टकराना होगा इन अदृष्ट की लहरों पर ?
किधर खींच ले जाएंगे अब झोंकों के यह उलझे तार,
दिखता नहीं प्रदीप, न जाने कहां लगेगी किश्ती पार !"

अलीपुर-जेल की नीरसता और राष्ट्रीय प्रगति की शिथिलता से नेहरू जी में निराशा व्याप गई। उनकी तत्कालीन मन स्थिति का परिचय कवि के इन उद्गारों से मिलता है—

"अब तो यही लालसा है मां ! जाऊं आकुल लेट वहां,
ठंडा-ठंडा हरा सुमंजुल मधुर घास हो बिछा जहां,
मां वसुधे ! चरणों पर तेरे निपट निराशा-अधीन,
परिश्रान्त इस बालक के ये स्वप्न सभी हो गए विलीन।"

देश की जागृति और लक्ष्य ओझल हो जाने के कारण नेहरू जी नैनी-जेल (इलाहाबाद) में भी दुखी थे। उनकी अन्तर्वेदना कवि की इन पंक्तियों में उच्छ्वसित हो उठी थी।

"होता है यह अरुण उषा का नूतन उदय निशा के बाद,
पर न हमारे जीवन के दिन पुन लौटते हैं कर याद।
आंखों के भीतर बसता है क्षितिज दूर का सुषमावन्त,
किन्तु घाव अन्तर में गहरा कर जाता है निठुर वसन्त।"

अपने स्वभाव के सम्बन्ध में नेहरू जी लिखते हैं—"खुशकिस्मती से मैं बड़ा खुशमिजाज हूं और मायूसी के हमलों से बड़ी जल्दी सम्हल जाता

नेहरू जी ने अपनी आत्म-कथा किस युग में लिखी थी ! इसे उन्होंने अलमोड़ा जेल में १४ फरवरी सन १९३५ में समाप्त किया था। तबसे अबतक इतिहास कहाँ से कहाँ चला गया ! नेहरू जी अवकाश पाकर यदि कभी अपनी आत्म कथा को आगे बढ़ाए तो उनके विचार, उनके उद्गार, उनके भाव क्या होंगे ! आत्म-कथा के अन्तिम पृष्ठों में उन्होंने कहा है—"अगर अपने मौजूदा ज्ञान और अनुभव के साथ मुझे अपने जीवन को फिर से दुहराने का मौका मिले तो इसमें कोई शक नहीं कि मैं अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक तब्दीलियाँ करने की कोशिश करूंगा, जो कुछ पहले मैं कर चुका हूं, उसको कई तरह से उन्नत करने का प्रयत्न करूंगा, लेकिन सार्वजनिक विषयों में मेरे निर्णय ज्यों के त्यों बने रहेंगे।"

शुरू से ही साम्यवाद और संस्कृति नेहरू जी का सार्वजनिक लक्ष्य है। साम्यवाद और संस्कृति ? दोनों में विरोधाभास जान पड़ता है, क्योंकि एक से आधुनिकता का और दूसरे से प्राचीनता का आभास मिलता है। साम्यवाद स्थूल राजनीतिक जान पड़ता है, संस्कृति सूक्ष्म आध्यात्मिक जान पड़ती है। राजनीति और अध्यात्म दोनों में यदि जीवन है तो देश-काल और स्थूल-सूक्ष्म से खण्डित न होकर चिरन्तन अविभक्त रह सकते हैं।

यों तो राजनीति और अध्यात्म पुराकाल में भी और भारत के सत्याग्रह-आन्दोलन के समय में भी एकमेव हो गए थे। किन्तु नेहरू जी साम्यवाद और संस्कृति को युग-विकास की दृष्टि से देखते हैं, और दोनों को नए सामाजिक स्तर पर एक कर देते हैं। साम्यवाद के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"यह भारत के पुराने ब्राह्मणोचित सेवा के आदर्श से बहुत भिन्न नहीं है।"

विचारों में आधुनिक होते हुए भी नेहरू जी अतीत के अनुरागी हैं। वे लिखते हैं—"शायद मेरे विचार और जीवन का मेरा रास्ता पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी अधिक है, लेकिन हिन्दुस्तान जैसा कि वह अपने सब बच्चों के हृदय में रहता है, अनेक रूप से मेरे हृदय में भी है और अन्तर के किसी अनजान कोने में कोई सौ (या संख्या कुछ भी हो) पीढ़ियों के ब्राह्मणत्व की जातीय स्मृतियां छिपी हुई हैं। मैं अपने पिछले संस्कार और नूतन अभिज्ञान से मुक्त हो नहीं सकता।"

अपने भारतीय संस्कारों के कारण नेहरू जी को भी हिमालय पर अभिमान है। भारत चीन के सीमा-विवाद पर भाषण देते हुए उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा है—"हम चीन को हिमालय नहीं दे सकते।"

देहरादून जेल में वे हिमालय की पर्वत-श्रेणियों को देखकर सान्त्वना पाते थे। अपने उस समय के एकाकी और एकाग्र क्षणों को उन्होंने कवि के इन शब्दों में व्यक्त किया है—

"पक्षिपुंज ये उड़-उड़ ऊंचे निकल गए हैं कितनी दूर !
जलद-खण्ड भी इसी तरह वह नभ-पथ से हो गया विलीन,
एकाकी मैं, सम्मुख मेरे पर्वत-शृंग खड़ा है शान्त—
मैं उसको, वह मुझे, देखते दोनों ही हम थके कभी न।"

क्या नेहरू जी हिमालय को प्राकृतिक दृष्टि से ही देखते हैं ? उनके लिए उसका केवल भौगोलिक महत्त्व है ? नहीं, प्रत्येक भारतीय की तरह वे भी उसे सांस्कृतिक दृष्टि से देखते हैं। उन्हीं के शब्दों में "उसकी दृढ़ता और स्थिरता में लाखों वर्षों का ज्ञान और अनुभव" है।

हिमालय की भांति ही नेहरू जी प्राचीन भारतीय वाङ्मय को भी आदर की दृष्टि से देखते हैं। उपनिषद् के इन वाक्यों का सूक्ष्म आध्यात्मिक मर्म वे पा चुके हैं—

"असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा ऽमृतं गमय।"

उड़िया कविता

दो दर्द

रामप्रसाद पुरोहित

(१)

एक घायल व्यस्त सांझ में,
कितने सुनहरे सपनों को जलाकर—
गुलाब एक मुरझा जाता है।
आंखों में मेरी भर आता है आंसू,
वह आंसू दर्द का—
वह दर्द प्यार का।

(२)

हिलाकर छाती को सुनसान रात की,
छू छू कर होंठ तूफान का—
आत्मा एक चिल्ला उठती है।
आंखों में मेरी भर आता है आंसू,
वह आंसू दर्द का—
वह दर्द रोटी का।

अनुवादक श्रीनिवास उद्‌गाता

कुरुजनपद की वर्तमान संस्कृति

जगदीशचन्द्र जैन

सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ जिलों, तथा बुलन्दशहर और बिजनौर जिलों के कुछ हिस्से को प्राचीन कुरुजनपद माना जाता है। कुरु की गणना मध्य प्रदेश के पाच जनपदो में की गई है। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति का यह केन्द्र था। गंगा-घाटी पार करके आर्य लोग ब्रह्मर्षि देश--कुरु, मत्स्य, पचाल और शूरसेन--में फैल रहे थे, और यहा से काशी, कोसल और विदेह आदि जनपदो की ओर बढ रहे थे। आर्यों को अपनी संस्कृति का बडा अभिमान था, और जो उसे अस्वीकार करते थे, उन्हें अनार्य (अपभ्रशरूप अनाडी) के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

कुरु जनपद कौरवो की जन्मभूमि थी। यही पर कौरवो ने अपने भाई पाडवो को ललकारा था कि बिना युद्ध के हम तुम्हें सूई की नोक जितनी जगह भी नहीं दे सकते। आगे चलकर कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवो और पाडवो मे घनघोर युद्ध मचा, जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। हस्तिनापुर कुरु जनपद की राजधानी थी, जो गंगा के किनारे बसी हुई थी। बाद में यमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को राजधानी बनाया गया। बौद्ध जातको के अनुसार यहा राजा युधिष्ठिर का राज्य था। बौद्ध काल में भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर इस जनपद के बहुत से लोग उनके अनुयायी बने थे। जैन आगमो के अनुसार हस्तिनापुर कुरु जनपद की राजधानी थी। हस्तिनापुर की गणना जैनों के अतिशय क्षेत्रों में की गई है। कार्तिक के महीने में यहा आजकल भी जैनियों का बडा मेला लगता है, जिस में दूर-दूर से लोग आते हैं।

आजकल का हथनापुर (हस्तिनापुर) उजाड पडा हुआ है। गंगा यहा से कुछ दूर हट गई है। कहते हैं कि गंगा में बाढ आने के कारण यह नगर ध्वस्त हो गया था। दूर तक फैले हुए यहा के टीले इस नगर की प्राचीनता को सूचित करते हैं। हस्तिनापुर के अलावा देवबन्द, (स्थानीय उच्चारण देव्बण अर्थात् देवों का बन, महाभारत का द्वैतवन, जिला सहारनपुर), सुक्करताल (यहा अब भी बहुत बडा मेला भरता है, जिला मुजफ्फरनगर) परीच्छितगढ, गढ-मुक्तेश्वर (यहा भी मेला भरता है), बागपत (व्याघ्रप्रस्थ, जिला मेरठ), मडावर (जिला बिजनौर) आदि प्राचीन स्थान कुरु जनपद की शोभा बढा रहे हैं।

आगे चल कर पृथ्वीराज चौहान का इन्द्रप्रस्थ पर शासन हुआ। यहा राजपूतों, जाटों और गूजरो का आधिपत्य हो गया। १३वी सदी में दिल्ली की सल्तनत कायम हुई। फिर शेख, सैयद और पठान सत्तारूढ हुए। सन् १३९९ में तैमूर ने मुजफ्फरनगर जिले पर आक्रमण किया। तुगलकपुर (आजकल का तुगलपुर) मे घमासान युद्ध हुआ, जबकि तैमूर के घुडसवारो ने आक्रमण विरोधी प्रजा को मौत के घाट उतार दिया। बादशाह अकबर के जमाने में मुजफ्फरनगर सहारनपुर की 'सरकार' के मातहत था और यहा बहुत से लोगों को जागीरें इनाम में बाटी गई थी।

मुजफ्फरनगर में सैयदों का जोर बढा और उनके बहुत से लोगो को सरकारी अदालत मे अफसर बना दिया गया। इनके पुरखे सन् १३५० से ही यहा आकर बस गए। १८वी सदी में यहा सिक्खो का हमला हुआ, जिसमें गूजरो ने उनकी मदद की। सन् १७८८ में मराठों का अधिकार हो गया। फिर १८०३ मे अलीगढ के पतन के बाद सारा दोआब अंग्रेजो के अधिकार में चला गया। सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध का श्रीगणेश मेरठ से ही हुआ था। गावों के बडे-बूढे इस युद्ध की कहानिया बडी तन्मयता से सुनाते हैं--किस प्रकार आतक पैदा करने के लिए अंग्रेज सरकार ने हिन्दुस्तानियों की लाशें पेडों से लटका कर छोड दी थी, और लोगो ने भय के मारे मन्दिरो की मूर्तियों और कीमती गहनों आदि को तहखानों में छिपा दिया था। मुजफ्फरनगर के अंग्रेज कलैक्टर ने शासन की बागडोर सम्हालने में असमर्थता प्रकट की। शामली और थानाभवन आदि की जनता ने अंग्रेजी सेनाओं से डट कर मोर्चा लिया।

गंगा यमुना के बीच का यह प्रदेश हमेशा से बहुत उपजाऊ रहा है। पहले जमाने में यहा के लोग बुद्धिमान और स्वस्थ माने जाते थे। यहा खादर का बहुत बडा जगल है, जिसे आजकल खेती करने लायक बनाने का उद्योग किया जा रहा है, अनेक स्थानों पर विस्थापितों को बसा दिया गया है। इस प्रदेश में गेहू, चना और गन्ना बहुतायत से पैदा होता है। दिल्ली-मुजफ्फरनगर रेलवे-लाइन पर कितने ही चीनी के कारखाने खुल गए हैं। किसानो को गन्ने के अच्छे दाम मिल जाते हैं और ईख पेलने आदि के झझट से छुट्टी मिल जाती है, इसलिए वे अपने खेतो में ज्यादातर गन्ना ही बोने लगे हैं। हिन्दुस्तान में मुजफ्फरनगर गुड की बहुत बडी मण्डी है। जहा से गुड, सिक्षा, राब और शक्कर दूर-दूर तक भेजे जाते हैं।

साधारणतया इस प्रदेश के लोग बलिष्ठ और खुशहाल हैं। खेतो में किसानो को बहुत मेहनत नहीं करनी पडती, नहरो के कारण खेतो की सिंचाई होती रहती है। नहरो की झाल से बिजली भी निकाली जा रही है। किसानो के अलावा, मध्यम स्थिति के लोग भी गाय, भैंस पालते हैं। उडद की दाल खाने और सोते समय दूध पीने के शौकीन हैं। वैश्यो के घर शाम को प्राय पूरी-पराठे बनते हैं। कच्ची रोटी को रोटी और पक्के खाने को खाणा (खाना) कहा जाता है। यहा भूमिया माई, शाकम्भरी देवी, बूढा बाबू, जोगा पीर, पीर बहराम आदि के मेले भरते हैं। लोग माता, सती, देवता, पीपल, शिवजी और पीरो को पूजते हैं। होली, दीवाली, तीज, सलूनो, बरसैत, होई, करवाचौथ, सक्रान्ति, सकट, भइयादूज, दसहरा आदि त्यौहार मनाते हैं। रामलीला, साग, तमाशे आदि देखते हैं और बरसात के दिनो मे आल्हा गाते हैं।

देहातो की दशा में विशेष परिवर्तन हुआ नहीं जान पडता। ग्राम्य-संस्कृति पहले जैसी सुबुक मालूम होती है। लाला जी, वैद्य, हकीम,

पसारी, पाधा, पुरोहित, स्याने, पटवारी, बढई, लुहार, चमार, धोबी आदि का स्थान सुनिश्चित है। हिन्दू-मुसलमानो मे भाईचारे का सम्बन्ध है। जै राम जी की, राम-राम, बन्दगी, पालागन आदि से एक दूसरे का अभिवादन किया जाता है। जैन लोग परस्पर जयजिनेन्द्र या जुहार करते हैं। छोटे लोग बडो को बाबा जी, ताऊ जी, चाची जी, बोब्बो (बहन), भाई साहब आदि शब्दो से सम्बोधन करते हैं। ब्याह-काज और मरने-जीने में सब इकट्ठे होते हैं। गाव मे कोई भूत प्रेत और नजर उतारते, कोई बच्चो की डुड्ढी और पसली चढाने, कोई डगर-ढोरो का इलाज करने, कोई खाट-पलग बुनने और कोई चिट्ठी-पतरी लिखने पढने आदि के कामो में होशियार होते हैं। लोग जरा तेज मिजाज के होते हैं। साधारण सी बात को भी जोर जोर से बोलकर कहते हैं। तू-तडाक और टी-अरी की बोली बहुत है। मुकदमेबाजी खूब चलती है। इलाहाबाद हाइकोर्ट में मेरठ और मुजफ्फरनगर जिलो से बहुत बडी सख्या में मुकदमे पहुंचते है।

विवाह आदि सामाजिक समस्याए पहले जैसी बनी हुई हैं। लडकी वाले को दहेज देना पडता है। वैवाहिक जीवन में पुरुष और स्त्री का क्षेत्र जुदा हैं, दोनो की चर्चाओ के विषय भी अलग-अलग है। बहू सबसे पहले उठती हैं, झाडू-बुहारी देने, गोबरी पोता फेरने, दूधने, कातने, सीने-पिरोने, खाना पकाने और बाल-बच्चो को सम्हालने आदि का काम करती हैं। परदा घट रहा है। साधारण जनता आर्थिक विषमता की शिकार है। शहरी जीवन में बहुत से परिवर्तन हो गए है। स्कूल, कालिजो मे पढनेवाली लडकिया बिना पर्दे आने जाने लगी हैं, ढाबो (भोजनालयो) में खाने के लिए मेज-कुर्सिया लग गई है, जगह-जगह बिजली आ गई है, डाक्टरो और वकीलो की सख्या बढ गई है और साइकल रिक्शो की भरमार हो गई है।

कुरु जनपद में आर्य-सस्कृति, जाट-गूजर सस्कृति और मुस्लिम सस्कृति की प्रधानता रही है। मुझेडो (जिला मुजफ्फरनगर) आदि स्थानो में १६वी–१७वी सदी में बनी मुसलमानो की मसजिदें मौजूद हैं। तिस्सा, तिसग, जौली, शाहपुर, आदि में तो अभी तक सैयदो का दबदबा रहा है। हिन्दू लोग मुसलिम पीरो की पूजा-उपासना करते है। उल्फतराय, हुकुमचन्द, उमरावसिह, मुसद्दीलाल, हजारीमल, गुलशनराय, हसमत आदि हिन्दुओं के नामो से पता लगता है कि इस प्रदेश में हिन्दू-मुसलिम सस्कृति कितनी घुलमिल गई है। छज्जू, घसीटा, सुक्कन, रोड्‌डा आदि नाम हिन्दू मुसलमान इन दोनों मे प्रचलित है। लाम (युद्ध-फारसी लाम), रिजक (रोज के निर्वाह के लिए भोजन-सामग्री, अरबी रिज्क), हमाम जिस्ता (फारसी हावनदस्तर), भारतक (फारसी भारकश), लिहाफ (अरबी), गबरून (चार खाने की तरह का मोटा कपडा, फारसी), हिरस (अरबी), बुगचा (अरबी बुकचा), कम्मच (तुर्की कमची), पासग (फारसी), गुल्लक (फारसी), असामी (अरबी आसामी), बिगाना (फारसी बेगाना) आदि सैकडो अरबी-फारसी के शब्द यहा की बोली के अनिवार्य अग बन गए है। उर्दू यहां के लोगो की प्राय आम जबान है और उर्दू लिपि का भी प्रचलन है। यहां की जबान को हिन्दुस्तानी नाम दिया गया है। इस प्रदेश की भाषा को शुद्ध खडी बोली माना जाता है जो हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल भाषा है।

यहा की भाषा के अनेक शब्द सस्कृत-प्राकृत भाषाओ से होकर आए है, जिनको उनके असली रूप में पहचानना कठिन है। उदाहरण के लिए, जव (यवा), क्यश (किन्तु), करसी (कडा, करीष), पाधा (उपाध्याय), सिवाल्ला (शिवालय), आला (ताख, आलय), बैयर (वधूवर), तिरिया (स्त्री), चिल्हत्तर (चरित्र), सथा (पाठ सहिता), धी (लडकी, दुहिता), ऊत (अपुत्र, जिसके पुत्र न हो), उड (तरफ), रयाऊ (होई), नेष्ठम (बिलकुल न इष्टम्), पच्छेता (बाद मे होने वाला, पश्चात्) जातकत (बालक, जातक), सोण (शकुन), मदूकडी (मधुकरी), मुठा (साथ), बेसवा (वेश्या), तत्ता (तप्त), तिरखा (तृषा), सोब्बा (दहेज, शोभा), कूड (कुड), गौना (गमन), विरता (वीरता), ओना मासी घ (ओ नम सिद्ध), भबूत (विभूति), चाल्जा (चाल), नेडे (निकट), कनागत (कन्यागत), नौरते (नवरात्र), धण (जहा गाए चरने जाती हे, धन), अदवायन (खाट या चारपाई की रस्सियो को खींचे रखने के लिए पैताने की ओर छेदो मे पडी रस्सी, अध बान), अणसण पट्टी (अनशन पाटी), पौ (प्रभा), पैड (पीढी), बटा (वटक), लहीक (लीख, रेखा), बोछार (कमजोर, अबोध), चकचाल (चकचक करने वाली चकचाल), धोरे (पास, घर), छुकडा (शकर), गाडा (गन्ना, काड), डहर (पानी का स्थान, डगर), मनियार (चूडी पहनाने वाला, मणिकार), बगड (आगन, प्रघण), परात (पात्र, टाड स्थाणु), टेवा (टिप्पन), बढिहार (वर आहार), जोस्ती (ज्योतिषी), नाड (गर्दन, नाल), तबिया (एक बर्तन, ताम्र शब्द से), पोता (पोता फेरना, पवित्र देवबन्द में पोत्ता बोला जाता है) आदि शब्दो को लिया जा सकता है।

जाट-गूजरो की सस्कृति का प्रभाव कुरु जनपद पर काफी मात्रा में रहा। जिला मुजफ्फरनगर में बसेडा की रानी के नाम से आज भी यह गाव रानी का बसेडा प्रख्यात है। इसके अलावा मुजफ्फरनगर जिले के तेजलहेडा, शोककरेडी, सभलेडा, सेवडा, बिदावडा, मुझेडा, नन्हेडा, खाईखेडी आदि गावो में प्राय जाटो का ही आधिपत्य है। शामली और बडौत के आसपास जाटो के बहुत से गाव हैं, जहा से कुरुजनपद की प्राचीन बोली सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री एकत्रित की जा सकती है। इस क्षेत्र की अनेक कथा-कहानिया, कहावते, और चुट-कुले लोगो में प्रसिद्ध हैं—बहुत सी कहानिया अश्लील हैं। यहा की जाटू बोली बडी जोरदार है और धड्ल्ले के साथ बोली जाती है, मानो लठ मार दिया हो। इस बोली में अक (कि), मका (मैंने कहा), तु (तू), कका (कहा का), काधी (कभी), जद (जब), व्हासिक (वहा), झटबेसी (झट से), अतेक-सा (इतना-सा), इबजा (अब), किरेक-सा (जरा सा), क्युक्कर अथवा किक्कर (क्योकर), पाणी (पानी), दाल (दान) चोक्खा (अच्छा), केरला (बिजनौर जिले मे इकल्ला), बटिया (बाट), धुल्हैंडी (धूल उडना), धौला (धवल), गुठा (अगूठा), कट्ठा (इकट्ठा), एल्ले ले (यह ले लो), मेट गया, नासपिट्टा, जनमैदा, घरबसी, घरघाई, बारी, बिरकी, भणेल्ली (सहेली), ठारली (निठल्ला), ठाड्डा (बडा), ठोस्सा (ठेंगा), लौंडा या लहडा, सेती (से), इभी (अभी), होर (और), खात्तर (लिये), हाम्बी (स्वीकृति), बिदून (बिना), ढब (तरफ), जौणसी (जो), बोल्ला—बोल्ला (चुपचाप), हौलू, (बेवकूफ, हाली), कलसैंडिया (बहुत काला), लिफाडू (प्रसिद्ध), कमीण (नीच काम करने वाले), मुधा (औंधा), दिलद्दर (दरिद्र से), भूड (रेत का मैदान), ओड्डा (बहाना), रडका (झाडू), कल्लर (बजर जमीन), खब्बा (बाया), खधा (कधा), धियाने (सम्बन्धी), सातल (जाघ), दडाक (तमाचा), तावला (जल्दी), खटोल्ला (छोटी खाट,) सियाल

(मुक्ष सियाल --मुक्ष जैसा), आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं जो भाषा शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

बहुत से शब्द बनावट की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए गोबरी (गोबर से), भाज्जड़ (भगदड़) बोहनी (जो सीको से बुनकर बनाई गई हो), सुहाला (जो सुख से किया गया हो, आसान) बूरा (भूरा), भाज्जी (जो पकवान तलकर भर्जन करके बनाया जाता हो), अलसेट (अलस से), गोसा (उपला, गूसा), हडया (जो फाड़खाने के लिए दौड़े,) गलहेड़ी (जिससे हड्डी का गला पकड़ा जाता हो), घड़ोंची (घड़ा रखने की ऊँची जगह), दीवट (जिस पर दीपक रक्खा जाता हो), पोतपुरा (जिस का पोत, फारसी फोतह लगान, पूरा कर दिया हो, काम पूरा पाड़ना), मोतीछड़ा (बढ़िया किस्म के चावल जो छड़ने से मोती जैसे हो जाते हैं), जोहड़ (पहराबी आबे जोहर पवित्र जल, छोटा तालाब), रुगनाथ (रघुनाथ), कान जी हौस (अंग्रेजी काइन हाउस), मारकीन (अंग्रेजी नैनकिन), कचोड़ी (जिसके अन्दर उड़द की दाल की पिट्ठी भरी जाती हो), पलोत्थण (परथन) आदि।

कुछ शब्द मिलते-जुलते शब्द जोड़कर बनाए जाते हैं, जैसे अड़ग बड़ग, आल-बिलाल, हमका-डिमका, चट्टे-बट्टे, डगर-ढोर, लौंडी-लारे, अणाप-शणाप (अणाप अनाप्त), अजल-मजल (मंजिल), चमार-चट्टे, सधे-मधे, आण-बिणाण (टोरका), उतारा-पुतारा, टुनटुने, झुनझुने, इधै-उधै, ओरे-धोरे, स्याम-स्याम (मुफ्त), अबेर-सबेर, बीर-बांदी (औरतें), गेल्लो मेल (साथ-साथ), अन भी पन भी (ऐसे भी वैसे भी), छड़ी-छटाक (अकेली), अडभीड, ओडबड़ा (इतना बड़ा) आदि। इसके अतिरिक्त बोत (दाव), रेहडू (छोटी बैलगाड़ी), गडूलना (छोटी गाड़ी), रावारू (गाय का छोटा बछड़ा), भूंडा (भोंडा, खराब), भसरा (मह), चूहड़ा (भंगी, बाहर वाला भी), टुंडा (जिसके एक हाथ हो), डला (प्राकृत में डलक शब्द है), बहली (बहिलय शब्द प्राकृत में मिलता है), दसोहन (दसूठन दस उठना, बच्चा पैदा होने के दस दिन बाद मनाया जाने वाला उत्सव), नेज्जू (रज्जू कुए से पानी भरने की रस्सी), पसर (रात का चौथा पहर), डाडा (रेतीला प्रदेश), भूड (रेतीला प्रदेश), भुब्बल (गरम राख), कुतार (खराब), दिसौरा (कठिनाई), बलौड (घमंड), स्यामतुल्ली (गैरत), लाड्डो (लाडली), गोड्डा (घुटना), निवाच (गरमाई), पहलड़ी (वह स्थान जहा पानी के घड़े आदि रखे जाते हैं), कसेडी (भारी पतीली), चामचिरड (चाम की चिडिया, चमगीदड़), बूर (आटे का छानस), छोतरे (छिलके), मण (मैंड), बिजार (साड), पठे (पटिया), भिरड (ततैया), रुगा (लुभाव), टडीरा (माल-असबाब), छडीजा (पक्की ईंटों का बनाया हुआ), पजियार (साग-भाजी), खोडी (कोरी, बिना कपड़ा बिछाई खाट आदि), गोहरे (गाव के बाहर का प्रदेश), टेहले (अरबी टेहले फैलना, विवाह से पहले जो नून-हल्दी छुआने आदि की विधि की जाती है), सियल (माता-पिता की ओर से कन्या को दिया जाने वाला साडी वगैरह सामान), गौते (गन्नो के ऊपर का छोत जिसकी कुट्टी काटकर पशुओ को खिलाई जाती है), कुचा लगाना (आग लगाना), भेनकल (भ्रष्टाचार), खोड़िया (वर जब कन्या को ब्याहने जाता है तो उसकी अनुपस्थिति में स्त्रिया नाच-गाकर यह उत्सव मनाती हैं), होलर (छोटा बच्चा), तोणी (छोटी हडिया), घास (विघ्न-बाधा), सिदारा (सिदारे में विवाहिता कन्या को साडी, चूडियो का जोडा आदि सामान भेजा जाता है), बरी (वरपक्ष की ओर से दिखाया जानेवाला सामान), बोहिया (बोहिये में मिठाई आदि रखकर भेजी जाती है), टीरा (गेंद का बल्ला), चिट्टा (सफेद), दिक्कड (मोटी रोटी), जोक्खो (डर, खतरा), सुत्थण (स्वस्थान, लडकियो का पायजामा), गौ (चाह), कौछा पीटना (जाघो पर हाथ मारकर ललकारना), पिन्नस (फारसी फीनस, डोली जिसमें बधू बैठकर जाती है), माड़ा (कमजोर), खुसखल्ला, चुकडायत, साढसती कजरी, गडवल्लो, ताज्जो, तेरहताली, फिड्डा, लोबडा, फिसड्डी, ढींगड़ा, बजरबट्टू, बुक्कल, बन्ना (या बनड़ा), बिहाई (माता), बैड़ा, ढोबरा, दोगड़ा (वर्षा), आदि सैकडो शब्द ऐसे हैं, जो कुरुजनपद में बोले जाते और भाषा-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। शब्दों की भाति अनेक मुहावरे, कहावतें और पहेलिया भी यहा से एकत्रित की जा सकती हैं। लोकगीतों का तो यहा भंडार है। जन्म-दिन, विवाह-शादी, तीजो, होली आदि के अवसरो पर गाए जाने वाले गीतों के अलावा यहा की स्त्रियो ने भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियो की वीरता के भी गीत जोड़े हैं।

पुराना और नया

"अंग्रेजी हुकूमत क्या करती थी? ठीक है कि वे देखते थे कि मुल्क मे अमन रहे, क्योकि कोई हुकूमत अपने दायरे मे झगडा-फसाद नही चाहती। कोई बाहर से हमला न करे, मुल्क के अन्दर चोरी-डकैती न हो, यह सब वह देखते थे। और उनका दूसरा काम यह था कि टैक्स जमा किया जाए। अंग्रेजी हुकूमत के यही दो खास काम थे। और भी फुटकर काम थे, लेकिन असल मे यही दो थे। अब हुकूमत के सामने और भी बहुत काम आ गए हैं, क्योकि अंग्रेजी हुकूमत के सामने जो काम थे उसके माने यह थे कि मुल्क जैसा है, वैसा ही रहे। हुकूमत चलती जाए, लोग काम करते रहे, बस। लेकिन अब हमारे और आपके सामने यह सवाल आया कि मुल्क जैसा था वही नही रहेगा, वह आगे बढेगा और जोरो से आगे बढेगा। इस हालत मे अंग्रेजी हुकूमत के जमाने मे जो तरीके थे, वे अब नही चल सकते। वे उसी वक्त चल सकते थे, जब मुल्क को वैसा का वैसा ही रखना सरकार का काम था। अब हमे उस हालत को बदलना है, अपने मुल्क को आगे बढाना है, अब हमें दूसरे ढग से चलना होगा।"

--जवाहरलाल नेहरू

सफेद घोड़ा

रमेशचन्द्र सेन

अगस्त, १६४६।

कई दिनो के रक्तस्नान के बाद कलकत्ता की परिस्थिति कुछ सुधरी। हिन्दू और मुसलमान अपने मुहल्लो में निकलने लगे। किन्तु फिर भी एक स्तब्धता का भाव विद्यमान था। एक दिन शाम को मुहल्ले की ठेका गाडियो के सूने अड्डे पर एक सफेद घोडा दिखाई पड़ा। एक दम सफेद—कही एक भी धब्बा तक नही। चवर जैसी पूछ पर धूप पडने से लगता था, मानो यह घोडा भूला-भटका पथिक हो। इस मुहल्ले में इससे पहले कभी किसी ने उसे देखा नही था। आश्रय खोकर, आश्रय-दाता को खोकर वह आ पहुचा है।

खिडकी के रास्ते नजर दौडाती हुई शीला की मा ने कहा—"हाय, बेचारे ने कुछ भी खाया नही होगा। सईस कोचवान उसे छोडकर भाग गए होगे।" उनकी नवविवाहिता कन्या निकट ही खडी थी। बोली—"हो सकता है, किसी ने उनको मार डाला हो।"

"ऐसा!"—शीला की मा का मुखमण्डल कागज-सा सफेद हो गया।

इस महिला ने अभी तक एक भी मृत्यु नहीं देखी, किन्तु दो-एक नृशस घटनाए उसे अवश्य देखनी पडी। और हत्या की ऐसी बहुतेरी कहानियाँ वह सुन चुकी है जो हत्या से भी निर्मम थीं।

क्षण भर चुप रहकर मा बोली—"हो सकता है—कोचवान जिन्दा हो।"

दगे से विध्वस्त उस मुहल्ले में इस सफेद घोडे ने नई प्रेरणा ला दी। मुहल्ले के लडके उसे लेकर उत्साहित हो उठे? कुछ नन्हें बच्चे दूर से उसे देख रहे थे और कुछ लडके उसके शरीर पर हाथ फेर कर खुश हो रहे थे। गर्दन पर हाथ रखने पर हिही-हिही कर घोडा हर्ष प्रकट करता था।

घोडे के बारे में सम्भव-असम्भव बातें होती रही। सभी की यह राय थी कि किसी राजा या महाराजा का यह घोडा होगा। उसके लिए चारे का प्रश्न भी उठ खडा होता। एक ने कहा, "जानते हो, घोडा शराब पीता है विलायती शराब!"

नन्दू कहता है—"शराब पिए बिना इतना तेज कैसे होता।"

एक छोकरे को सनक सवार हुई तो बोला—"हो सकता है, किसी छकडा गाडी का घोडा हो" उपस्थित सभी लोगो ने उसकी खिल्ली उडाई।

यमुना प्रसाद ने कमाल कर दिखाया। उसने झट घोडे के मुह में लगाम चढा दिया और सवार हो गया। हाथ में ले ली एक सटी।

यमुना प्रसाद लगभग बाइस तेइस साल का नौजवान था सावला रग, दुबला पतला, शरीर पर केवल एक बनियान। सिनेमाघर के सामने खडे होकर ऊचे दाम में टिकट बेचता है। फुटपाथ पर जुआ खेलता है और आधे घण्टे में सारी कमाई जुए में फूक देता है। कभी कुछ बच गया तो ठर्रा पीकर बकने लगता है।

किन्तु दगो के इन दिनो में यमुना विशेष जनप्रिय हो उठा है। जब भी निकट का कोई देव मन्दिर या महिला आक्रान्त हुई, सब से पहले यमुना प्रसाद का ही कण्ठ स्वर सुनने में आता। वह सब से आगे दौडता हुआ जाता। गोरे फौजियो के साथ भी उसने उन्हें सिगरेट और चाय पिला कर मित्रता साध ली थी। लडको ने उसका नाम रख छोडा है—'मिलिटिरी कैन्टीन'।

इधर दो दिनो से उसे और कुछ करने का अवसर ही नही मिला। दिन भर घोडे पर सवार रह कर कहता है—"हम सारजेंट बन गया।" लडके पीछे-पीछे दौडते है। पर वह किसी और को सवारी नही देता।

हाबुल ने कहा—"वाह रे, तुम अकेले ही घोडे की सवारी करोगे, और हम सब हाफते रहेंगे। यह नही हो सकता।"

यमुना प्रसाद ने जवाब दिया—"जा, मोड की दुकान से पान और सिगरेट ले आ। फिर घुडसवारी करना!"

"पैसा?"

"हमारा नाम बोलेगा। बोलना—यमुना प्रसाद मागता।"

दो चार मिनट में हाबुल लौट कर आया और बोला—"नही दिया! कहता—पैसे ले आओ।"

"साला भेड का बच्चा! साले की दुकान हम ने बचा दी। हम से जुए में भी कितना पैसा कमा लिया। अब एक खिल्ली पान और एक सलाई सिगरेट के लिए पैसा मागता है? अभी खबर लेता हू!"

घोडे को पान वाले की दिशा में दौडा दिया। हाबुल के घोडे की सवारी स्वप्न ही रह गई।

सफेद घोडे का नाम रखा गया—चाद।

चाद की चमक न रही। पैर खीच-खीच कर चलने लगा। पीछे के बाए पैर के पास एक घाव हो गया था। शीला के पिता मुहल्ले के मुखिया व्यक्ति ठहरे। उन्होंने पूछा—"घोडे को खाना देते हो?"

हाबुल ने उत्तर दिया—"नन्दू भइया देता होगा।"

नन्दू से पूछने पर उत्तर मिला—"मैं तो जानता नही। यमुना प्रसाद कह सकता है।"

पति से यह सब सुनकर शीला की मा ने अपने लडके को कुछ पैसे देकर नीचे वाली दुकान से थोडा सा भूसा मगवा भेजा। किन्तु खाली भूसा देखकर चाद ने मुह फेर लिया।

सन्तू के मित्र खोकन ने कहा—"चाद के गले में भूसा अटक गया होगा। चलो उसे पानी ला दें।"

किन्तु बर्तन का मुह छोटा होने से वे पानी पिलाने में भी सफल न हुए।

अन्त में दो मित्रो ने पडोस की चाय की दुकान से एक टूटी प्लेट में थोडी चाय लाकर चाद से कहा—"गोकुल की दुकान की चाय बडी अच्छी होती है। थोडी-सी—पी लो, चाद

किन्तु गोकुल की चाय का महत्व चाद को आकृष्ट न कर सका।

चाद की हालत खराब होती गई। केशव बाबू ने यमुना प्रसाद से कहा—"उसको जरा आराम भी करने दो। नहीं तो मर जाएगा बेचारा।"

यमुना प्रसाद नशे में चूर था। उसने आधा हिन्दी, आधा बगला में जो कुछ जवाब दिया उसका साराश है—"जहा हजारो मनुष्यो के प्राण पखेरु उड गए, वहा एक सामान्य जानवर के लिए क्या दुख ?"

सन्ध्या के समय लडको की सहायता से केशव बाबू ने चाद को खाली गैरेज में रखवा दिया और एक बालटी में पानी और थोडा घास वहा रख आए। गैरेज से ये लोग निकल ही रहे थे कि एक शान्ति रक्षक दल लारी पर आ धमका और चिल्लाया "अन्दर जाओ! अन्दर जाओ।"

दूसरे दिन सुबह देखने को मिला कि गैरेज में ताला बन्द है। फाटक के पास बाहर ही केशव बाबू की बालटी रखी थी और पास ही चाद निस्पन्द खडा था। आखो में दीप्ति नही। पूछ हिला कर मक्खियो को उडाने तक की शक्ति उसमें नही थी।

सन्टू ने एक मुट्ठी चना लाकर चाद को दिया। चाद ने उसे छुआ भी नही।

दिन के दस बजे थे। कडी धूप मानो बदन पर चाबुक मार रही थी। चाद बेचैनी से छटपटाता रहा। लडको ने उसे धीरे-धीरे एक बरामदे में नीचे ले जाकर खडा कर दिया। नन्दू लडको को आश्वासन देता रहा—सफेद रग का जानवर है न। धूप बरदाश्त नही कर सकता। इतने में सडक के मोड पर एक नाटे कद की मनुष्य मूर्त्ति का आविर्भाव हुआ। इधर-उधर ताकते हुए वह गली में घुसा। पकी सफेद दाढी, नगा बदन, पहनावे में एक मैली लुगी—हाथ में टिन का मग। मग धूप में चमक रहा था। उसमें लोगो की दृष्टि आकर्षण करने योग्य बहुत कुछ था। इस परिस्थिति में यहा उसकी उपस्थिति बडी ही आश्चर्यजनक जान पडने लगी। केशव बाबू के मुह से निकला—"अरे, इसकी यहा आने की हिम्मत कैसे हुई ?"

चाद को देखते ही वृद्ध दौड कर उसके पास आया और उसके बदन पर हाथ फेरने लगा। वृद्ध के मुह से निकला "ओ', सुहराब, तेरी यह हालत!"

परिचित स्पर्श से चाद भी चचल हो उठा। चाद ने आखें उठा कर देखने की चेष्टा की। मनुष्य की दृष्टि की भाति जानवर की अर्थपूर्ण दृष्टि भी बहुत कुछ प्रकट कर सकती है। भाषा के माध्यम से उतना कहना सहज नही था।

बुड्ढे ने हिन्दी और बगला की अपूर्व सम्मिश्रित भाषा में कहा—"उसका नाम बुझि सोराब ? हम इसे चाद बोल के।"

वृद्ध सईस बोला—"वह तो एक ही बात है।"

नन्दू ने पूछा—"घोडा तोमारा हाय ?"

"नही बाबू, किराये की गाडी का घोडा है। मै सईस और कोचवान हू।"

नन्दू ने फिर से पूछा—"घोडा तोमारई ?"

"ठीक है"—वृद्ध ने मुस्करा कर जवाब दिया। हाथ के मग से पानी लाकर दिया और चाद एक सास में पानी पी गया। लडके आनन्द विभोर हो चिल्ला उठे—"जै हिन्द!"

सईस एक दोने में कुछ चना ले आया।—चाद खुशी से वह सब खा गया।

उपस्थित लडको से उसने पूछा—"थोडा चना और मिल सकता है ?"

सब लडके दौड पडे।

चाद के कुछ स्वस्थ होने पर वृद्ध बोला—"बीमार होने से सुहराब और किसी के हाथ का खाना नहीं खाता।"

वृद्ध को पुरानी बातें याद आने लगी—कितने रुपए में वह कब खरीदा गया, क्या उम्र रही होगी—कितने दात निकले थे आदि।—सुहराब की चाल देखकर लोग उससे पूछा करते थे—"बाजी जीतने वाले इस घोडे को किराए की गाडी में क्यो जोत रखा है।"

माथे पर हाथ रख कर वह उत्तर देता था —"नसीब है भाईजान! इन्सान की तरह जानवरो के भी तो नसीब होता है!"

केशव बाबू से वृद्ध ने पूछा—"कब यह सब खतम होगा बाबू ? फिर कब से गाडी ठीक चलने लगेगी ? रास्ते में खतरा नही रहेगा ?"

वह शाति के दिनो के स्वप्न देख रहा था। केशव बाबू से कुछ बोलते न बना।

सहसा मानो दानव की निद्रा भग हो गई! और उसने निकट के चौराहे के मोड पर अगडाई ली! हवा के वेग से उडती खबर आई—लाल पट्टी में फिर से खूनखराबी शुरू हो गई है। नाले में बाढ का पानी जिस तरह घुसता है उसी तरह बडी सडक के जनस्रोत का एक अश इस छोटी बस्ती में घुस पडा। भाग-दौड, चीख-पुकार और 'मार-मार' का शोर आरम्भ हो गया।

वृद्ध सईस इधर-उधर ताकने लगा। सुहराब की आखो में भी एक अद्भुत करुणा दृष्टि थी। हो सकता है, वह भी अपने पालक के खतरे को समझ गया हो।

बाहर के १०, १२ व्यक्ति आगे बढ कर आए। यमुनाप्रसाद, नन्दू, हाबुल आदि सईस को घेर कर खडे हो गए।

केशव बाबू आक्रमणकारियो को शान्त करने की व्यर्थ चेष्टा करते रहे। वह कहते रहे—"यह एक निरीह व्यक्ति है। इसे मत मारना!"

जनता में से प्रतिवाद हुआ—"वह मनुष्य नही है शैतान है।"

किसी ने क्रोध से कहा—"इतनी जल्दी ही मटिया बुरुज भूल गए आप ?"

तीसरे ने कहा—"जान के बदले जान!"

केशव बाबू ने जवाब में कहा—"कितनी जगह इन लोगो ने हम लोगो को बचाया भी तो है।"

"हमने भी बचाया है। जाने दीजिए ये सब व्यर्थ की बातें।" समझाने की चेष्टा, तर्क करना व्यर्थ ही था। नन्दू ने कहा जाने दीजिए, चाचा जी। किन्तु यमुनाप्रसाद छाती तान कर खडा हो गया और बोला—"है कोई मारने वाला, आ जाओ।"

एक छोकरा चिल्लाया—"सफेद घोडे के सईस को, चांद के सईस को लोग मारने नही पाएंगे।"

जनता क्षण भर के लिए निस्तब्ध खडी रही। फिर कलरव शुरू हो गया। लड़कों के बदन पर ढेले पडने लगे।

चौराहे के मोड पर के चार मजिले मकान से कोई चिल्ला उठा—मिलिटरी आ गई।

दौड़ धूप शुरू हो गई। आस-पास के गली कूचो में खुले दरवाजे में जहा भी हो सका लोग छिपने लगे। वृद्ध सईस को गोद में उठा कर यमुनाप्रसाद केशव प्रसाद के मकान के अन्दर पहुंच गया।

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

मज़ाक

राजेन्द्र यादव

कम्बल ओढे, सास के दौरे को उठने से दबाते अंकल सफेद गोमुखी में जल्दी-जल्दी उंगलियां चला रहे थे। । वे बगुले की तरह गर्दन ताने आलथी-पालथी मारे दीवान पर तने बैठे थे। माला का घेर पूरा करके मानो अपने आपसे ही बोले—"मजाक-मजाक में मान लो किसी ने कुछ कह ही दिया तो कहीं इस तरह बुरा माना जाता है ?"

लेकिन उनकी बात किसी ने भी नहीं सुनी। । उमा ने दूसरे हाथ से अपनी कलाई घुमाकर घडी देखी और सामने दीवाल की घडी पर निगाह डालकर बोली, "आध घण्टे से कम तो क्या हुआ होगा ? शशि जरा पूछो न " आगे उससे बोला नहीं गया।

बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी और खिडकी के ऊपर लगी टीन की नालियों से पानी लगातार इस तरह गिर रहा था जैसे किसी ने पारदर्शी कांच की उमेंठी हुई सीधी छडें खडी कर दी हों। खपरेल की टाइलें और खिडकियों की टीनें इस तरह बज रही थी जैसे बारात चली जा रही हो । खिडकी के आस-पास बौखलाई हुई उमा कभी इधर और कभी उधर घूम रही थी। वह अपनी दोनों हथेलियां साबुन से हाथ धोने की तरह मसलती जा रही थी। रह-रह कर रुआंसे स्वर में उसके मुह से निकल जाता—"हाय, राम . जाने क्या होगा अब ? हाय राम, जाने क्या होने वाला है. " और भयानक मानसिक उत्तेजना से एक-एक मिनट बाद खिडकी के बाहर झांक लेती । लेकिन वहां बारिश में भीगते पेड पिटे कुत्तों-से सहमे खडे थे। बूंदों की भूरी-भूरी लहराती चादर के पार घाटी की हरियाली ढलान में बीरबहूटियों से जडे मकानों की लाल-लाल छतें दीख जाती थी छपक् छपक् छपक् उमा को लगा जैसे बारिश में कोई उनके बंगले की तरफ आ रहा है । वह दौडकर दरवाजे पर गई। पर्दे उठाकर पहले भीगते शीशों से झांका । कुछ भी दिखाई नहीं देता था। किवाड खोले, सिर, मुह या साडी पर पडती बौछार की चिन्ता न करके देखती रही. छाता लगाए कोई बगल के बंगले की ओर जा रहा था। हारकर किवाड भेंडे, भौंहों का पानी पोंछती जल्दी-जल्दी हाथ मलती टेलिफोन की तरफ लौट आई. ।

"मिला ?" घबराकर डायरेक्टरी के पन्ने पलटती शशि से पूछा।

"दो बार मिला चुकी हूं। लाइन खाली नहीं है।"

"टेलीफोन में आज ऐसी क्या आग लग गई . ? वहां नहीं मिलता तो सी० आई० डी० को ही मिला । कहीं तो मिला ..पता नहीं इतनी देर में जाने क्या हो जायेगा ?"

शशि ने डायल घुमाया, "इनक्वायरी इनक्वायरी . हलो. " फिर उसका स्वर फट गया। जरा-सा खांसकर बोली, "जाने कहां मर गए सब, कोई बोलता ही नहीं है ..."

"बीडी पीने गये होंगे . या पास की लडकियों से गप्पें ठोंक रहे होंगे .." अंकल ने कडवा मुंह बना कर कहा।

तभी शशि बोल पडी, "हलो, इनक्वायरी ? जरा इण्टैलिजैन्स आफिस का नम्बर दीजिये जरदी " फिर माउथ-पीस पर हाथ लगाकर उमा से कहा, "भाभी, लिखना जरा, हाथ हटा लिया, "हां जी थ्री-टू एट-वन। थैंक्यू जी "

"हाय, मेरे तो हाथ कांप रहे हैं। मुझ से तो लिखा भी नहीं जा रहा।" उमा के हाथ की पेंसिल सचमुच इस तरह हिल रही थी जैसे हाथ लकवे में बेबस कांप रहा हो। शशि ने उसके हाथ से पेंसिल छीन ली, "भाभी, तुम तो सच इस तरह घबरा जाती हो जरा धीरज रखो देखो, भगवान ने चाहा तो कुछ नहीं होगा " उमा पल्ला आंखों पर लगा कर आंसू पोंछने लगी।

नम्बर लिखकर उसने फिर डायल घुमाया, "हलो, इण्टैलिजैन्स आफिस ? कौन साहब बोल रहे हैं ? देखिये, मैं नाइन-फाइव-फोर-टू से बोल रही हूं मिसेज वीरेश्वर वर्मा देखिए जी, एक बहुत ही अर्जेण्ट केस है यहां से एक साहब अचानक गाडी लेकर निकल गये हैं नहीं जी, नाराज-वाराज नहीं हलो, बस कुछ यों ही सनकी दिमाग के हैं कभी कभी उन्हें होश नहीं रहता कि क्या कर रहे हैं। खत छोड गये हैं कि उन्हें खोजने की कोशिश न की जाये... हलो, जी इस लाइन में शायद इस बारिश की वजह से कुछ गडबडी है जी नहीं, साथ में कुछ भी नहीं है घड़ी, पर्स, जूते सब उतार गये हैं सिर्फ सूती कमीज-पतलून में हैं। जी, खत में उन्होंने लिखा है एक सैकिंड प्लीज उत्तेजना के मारे शशि सब कुछ भूली जा रही थी . फिर भी गर्व था कि अपना सन्तुलन बनाये हुए है। उसने डायरेक्टरी के नीचे दबा पीला कागज निकालकर टेलीफोन पर पढ़ा, हां जी, लीजिये म पढे देती हूं —"मेरी मौत के लिये कोई दोषी नहीं है । मैं अपने आपको इस संसार में रहने लायक नहीं समझता। मुझे खोजने की कोशिश न की जाए नमिता का दुबारा विवाह कर दिया जाये" ...बस जी, नीचे नाम है। कुछ देर चुपचाप सुनती रहकर बताया, "खाना खाने के बाद हम लोग यों ही बैठे कैरम-वैरम खेल रहे थे। अचानक वे उठे और भीतर चले गए हमने समझा यों ही किसी काम से गये होंगे काफी देर बाद जब न मिले, हां जी, उनकी वाइफ, भीतर गई तो देखा कि कपडे रखे हैं घडी के नीचे यह खत है। पीछे का दरवाजा खुला है। शायद वहां से जाकर ड्राइवर को जगाकर चाबी ली और चले गये; हो गया कोई आधेक घण्टा। अभी-अभी मिस्टर वर्मा भी गये हैं। शायद डी० आई० जी० स बातें हुई थी ,, जी होंगे यही कोई बाइस-तेइस साल के। बाईं कनपटी पर घाव का निशान है। जरा खुलता हुआ गेहुआ रंग. ..बीच से मांग निकालते है. जी गाडी गाडी का नम्बर है जी, बी० एम० जे० हां जी, बी० एम० जे० थ्री-नाइन सेविन.. मैरून डाज-किंग्जवे है जी थैंक्यू जी, आप फोन करेंगे न अभी..? जरा जल्दी प्लीज ."

शशि ने फोन रखा। कुहनी मेज पर टिकाकर बातें करने से बालों की लटें इधर-उधर कनपटियों पर झूल आई थीं, उन्हें दोनों हाथों से कानों के ऊपर अटकाया। उसे हल्का संतोष हुआ। कितनी सफलता से उसने कितना कठिन काम सरंजाम दे दिया। फिर एक टक अपनी ओर देखती उमा को समझाया, "भाभी, वो कहते हैं, आप बिल्कुल भी मत घबराइये, अगर उन्होंने अब तक कुछ कर नहीं डाला तो शायद अब डरने की जरूरत नहीं है। हां, कोई सीरियस बात हो गई हो तो बता दीजिये मैं सब चौकियों को फोन किये देता हूं कि उस नम्बर की गाड़ी अगर अभी तक वहां से नहीं गुजरी हो तो रोक ली जाये "

"गुजर गई होगी तो क्या कर लेंगे ?" अधीर होकर लगभग उमा चीख पड़ी। निराशा से गर्दन झटकती हुई बिना जवाब दिये खिड़की की तरफ आ गई। जैसे हाथ जल गये हों इस तरह दोनों कलाइयों से पंजे झटकारती हुई बोली, "हाय मेरा तो दिल डूबा जा रहा है जाने क्या होगा किसका मुंह देखा था मेरा भैया " वह मुंह पर दोनों हाथ रखकर रोने लगी।

अब सहसा शशि को लगा कि सी० आई० डी० वालों को खत सुनाकर और ये सारी बातें बताकर उसने शायद अच्छा नहीं किया। बाद में दुनिया भर की खींचातानी होगी। पुलिस वाले तंग करेंगे जाने क्या हो। लेकिन फिर अपने आपको समझाया कि अगर नहीं बताती तो वे लोग क्यों इतनी दिलचस्पी लेते ? उसने सब को बता कर असली स्थिति भी तो छिपा ली। फिर वह खुद भी जब इन सारी बातों और स्थिति को सोचती तो अपने को बड़ा बौखलाया और नर्वस-सा महसूस करती। उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि कैसे वो अपने पर काबू किए हुए है। मुसीबत के वक्त वह आत्म-विश्वास नहीं खोती, इस पर उसे खुशी भी थी। उसने पास जाकर कंधे पर हाथ रखकर समझाया, "भाभी, यों मत घबराओ। भगवान ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा। आखिर शंकर भैया गए हैं, साथ में 'ये' भी हैं। अगर चौकियों से गाड़ी निकल भी गई होगी तो शायद पुलिस की गाड़ी में ये लोग पीछा करेंगे "

"लेकिन यह भी तो पता चले कि आखिर गया किधर है ?" बेचैनी से अंकल ने बैठक बदली। दोनों टांगें मोड़ कर खोलें और निहायत ही हताश-भाव से ढीली गर्दन झटक कर जांघ पर दूसरा हाथ पटक कर कहा, "अरे कोई ऐसी बात थी तो हमसे कहता अब ये बेचारी पराए घर की लड़की " और उन्होंने रुंधे गले से आधी बात छोड़कर नमिता को देखा

नमिता सोफे पर दोनों पांव समेटे, हत्थे पर सिर टिकाये इस तरह ढेर हुई बैठी थी कि लगता ही नहीं था कि वहां कोई है। बस, एक आसमानी साड़ी जैसे किसी ने लापरवाही से डाल दी हो, और वह जगह-जगह हवा भरने से फूल गई हो जरा-जरा सी देर बाद सबकी निगाहें उसी की ओर उठ जाती थीं कि हाय, इस लड़की के भाग्य में जाने क्या है अभी एक साल भी तो नहीं हुआ.

"बीबी जी, अमित बाबू की कमीज कहां रक्खी है ?" स्थिति की गम्भीरता से आतंकित बड़े डरते हुए-से नौकर ने उमा के पास जाकर पूछा।

उमा को शशि ने कुर्सी पर बैठा दिया था और खुद खिड़की के बाहर तार पर सरकती बूंदों को देखने लगी थी। स्तब्ध उमा अपलक आंखों से पीतल की बड़ी-सी सैण्टर टेबिल पर रक्खे खिलौनों को घूरे जा रही थी। वह झटके से मुड़ी और दोनों हाथ माथे तक जोड़कर बोली—

"भैया, मुझ से कुछ मत पूछो। मुझे कुछ भी नहीं मालूम जो तुम्हारी समझ में आये सो करो "

"अमितबाबू रो रहे हैं" अपराधी की तरह नौकर बोला।

"रो रहे हैं तो रोने दो हमें तंग मत करो जाओ " शशि ने घूम कर डांटा। सोचा, इतने बड़े लड़के की आदत बिगाड़ रखी है।

नौकर के जाते ही जैसे भयानक सन्नाटा छा गया एकरस बरसते पानी की आवाज भी मानो सुनाई देनी बन्द हो गई थी। लगता था अभी खिड़की से कोई बेतहाशा भागता आता दिखाई देगा दरवाजे पर जोर से दस्तक पड़ेगी या अभी इसी क्षण टेलिफोन की घण्टी बजेगी कोई झपट कर उठाएगा और फिर एक चीख के साथ टेलीफोन हाथ से छूट कर गिर पड़ेगा। शशि को रह-रहकर आश्चर्य हो रहा था कि इतनी बड़ी घटना हो रही है एक आदमी आत्म-हत्या करने गया है खुद उसके घर आकर ठहरा हुआ एक निकटस्थ रिश्तेदार, और न वह घबरा रही है न रो रही है मानो यह सब कुछ सचमुच हो रहा है, इसका उसे विश्वास ही नहीं होता

घनन घनन घनन टेलीफोन बजा तो शशि उस पर भूखी चील की तरह टूट पड़ी। अंकल की माला रुक गई। चिहुंक कर उमा उठ खड़ी हुई। उसने आगे बढ़कर मेज पर दोनों हथेलियां टिका दीं। नमिता ने सिर उठाया जैसे दिल की धड़कन होंठों पर आकर रुक गई हो।

"नाइन-फाइव-फोर-टू। नहीं जी, रोंग नम्बर नहीं जी, यहां कोई फर्नीचर नहीं बिकता आप दुबारा डायल कीजिये " और होंठ कसकर शशि ने जोर से रिसीवर दोनों हाथों से खट से वापस रख दिया। "हुं" नाक से हवा निकाली। मन हुआ टेलीफोन को उठाकर पटक दे जोर से जमीन पर।

धनुष की खिंची प्रत्यंचा-सा वातावरण ढीला हुआ और छूटी हुई स्प्रिंग-सी अटकी सांस लौटकर आई जिस टेलीफोन की आशा, नहीं आशंका कर रहे थे यह वह नहीं है। नमिता ने फिर सिर हत्थे पर टेक दिया। उसके बिना तेल के धुले बाल बांह पर बिखर आये। शशि अपनी जगह से उठकर अपने कपड़े समेटती धीरे-धीरे चलकर नमिता वाले सोफे के दूसरे हत्थे पर बड़े आहिस्ते-से बैठ गई। बड़े हौले से उसके रूखे बालों पर हाथ फेरा। रुंधे और भीगे स्वर में कहा "नमिता, घबरा मत दिल कड़ा कर इतनी समझदार होकर अगर तू ऐसे करेगी तो तो कैसे होगा ? देख, भगवान ने चाहा तो सब ठीक हो जायेगा ." नमिता ने सिर उठाया और मुड़कर जोर से बैठी हुई शशि की जांघ पर पटक दिया, "मैं क्या करूं दीदी ?" वह फफक-फफक रोने लगी। शशि सिर्फ उसके हिलते कन्धों और रूखे बालों को सहलाती रही—"नहीं इस तरह हिम्मत नहीं छोड़ते निम्मी " खुद उसके गालों पर आंसू ढुलक आये। अगर आज वह नमिता की स्थिति में होती तो क्या इसी तरह शांत बैठी दूसरों को समझाती होती ? मान लो बटूबाबू की जगह धीरेश्वर ही गए होते .। नमिता ने अपने शरीर का हर भाग ऐसी सावधानी से कपड़ों में छिपा लिया था मानो अपने मनहूस अंग की उंगली दिखाते भी उसे शर्म आ रही हो अभागिन...! उमा फिर खिड़की के पास जाकर बरसते पानी को देखने लगी थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कराहने की-सी आवाज निकालकर अंकल भकुओं की तरह चारों ओर ताक रहे थे। शशि नमिता का एक हाथ अपने हाथों में लेकर उसकी कलाई और उंगलियों को सहलाती, सान्त्वना देती रही ..

नमिता के नाखून बड़े सुन्दर हैं, जैसे प्याज के भीतर का चमकदार गुलाबी झलक मारता रंग हो उसकी पतली-पतली काली चूड़ियों पर हाथ फेरते हुए अचानक उसे लगा हो सकता है हो सकता है बात इतनी भयानक थी कि उसे सोचते डर लगता था।

टक-टक टक-टक ! लगता था जैसे एक बड़ा भारी पेण्डुलम इस दीवार से उस दीवार तक हिल रहा है और इन सब लोगों को तहखाने में बन्द करके एक टाइमबम रख दिया गया है—इस तरह सबकी निगाहें और कान टेलिफोन पर लगे थे जैसे इस बार की 'टक' के साथ ही बम फट पड़ेगा पता नहीं कितनी चाबी और बची है अगली 'टक' भी हो पाए या नहीं। घुटन का अजगर वातावरण में बैठा जहरीली सासें छोड़ रहा था। रह-रह कर फुरहरी दौड़ जाती है, उफ जाने क्या होगा ?

भगवान के दरबार में सच्चे दिल से प्रार्थना करना समाप्त करके अंकल ने इतनी देर बाद मानो ध्यान हटाने को फिर अपनी बात दुहराई, "मजाक-मजाक में मान लो, किसी ने कुछ कह ही दिया हो तो कहीं इस तरह बुरा माना जाता है ? पता नहीं ये आजकल के लड़के भी काहे के बने हैं जब हम इतने बड़े थे "

शशि को बड़ी चिनचिनाहट छूट रही थी। अंकल इस वक्त भी अपनी वही बेवकूफी की दकियानूसी बातें किये जा रहे हैं। कितने संकट का क्षण है, वे जरा चुप नहीं रह सकते ? वे वीरेश्वर के दूर के चाचा हैं, लेकिन यहीं रहते हैं। पेंशन पाते हैं। सास का रोग है। चेहरा कमजोरी और बुढ़ापे की झुर्रियों से सूखकर छुहारा हो गया है। सिर पर एक-एक इंच के सफेद खड़े बाल और चार दिन की बनी हजामत, बाहर की ओर निकले कान, चिपचिपाती आंखों के साथ चेहरे पर बेवकूफी का भाव देखकर शशि को अजब-सी अकारण झुंझलाहट होती है। झल्ला कर उसने जवाब दिया, "और कोई मजाक भी हो "

उमा मुड़ी। उसके चेहरे की रेखाएं उमड़ती रुलाई और उत्तेजना से अभी भी इस तरह कांप रही थीं जैसे लहरों पर पड़ा कपड़ा कभी सिकुड़ जाता है, कभी सिमिट जाता है। सहारे के लिये खिड़की के खुले किवाड़ को पकड़े हुए उसने कहा, "अच्छे खासे सभी लोग बैठे खाना खा रहे थे। सभी तरह के मजाक होते हैं। रोज ही होते हैं। जो जिसके जी में आता है बकता है। कोई नई बात तो थी नहीं। वीरेश्वर बाबू ने अगर कोई बात कह भी दी तो "

पति की बात आते ही शशि ने नमिता का सिर थपकना छोड़कर कहा, "भाभी, तुम तो सुन रही थीं, उन्होंने तो कुछ ऐसा कहा भी नहीं था। सिर्फ इतना ही पूछा था कि मेल हो गया ?"

"सो बस, यही तो गजब हो गया' " उमा ने एक हाथ से दूसरे पर ताली बजाई। "बद्दू जी को लगा नमिता के सिवा इस बात को घर भर में फैला ही कौन सकता है ?"

"इसमें फैलाने की बात क्या है भाभी ? तुम्हीं बताओ, ऐसी बातें कहीं छिपी रहती हैं ? लेकिन हमारे यहां तो अजब रीत है न, दुनिया चाहे जान जाये, लेकिन घरवालों के कानों में भनक न पड़े " शशि ने गर्दन हिलाकर कहा, "यहां तुमने बात छिपा ली, और जब कल अखबार में ये सारी बातें बड़े-बड़े हरफों में निकलेंगी तब क्या होगा ?"

इस बात का जवाब न देकर उमा ने फिर गहरी सांस ली, "मैं तो उसी वक्त समझ गई थी कि बद्दू भैया को वीरेश्वर जी का मजाक चुभ गया है। एक दम चेहरा उतर गया।"

"यों भाभी, कहने को चाहे जो कह लो, उसमें कोई ऐसी बात तो थी नहीं । होनहार बात, किसी के सिर पड़ गई। नमिता और बद्दू बाबू में अबोला चल रहा है, घर में इसे कौन नहीं जानता ? नौकर-चाकर तक तो जानते हैं।" अगर कहीं कुछ हो-हवा गया तो सारा दोष उसके पति के सिर मढ़ा जायेगा, इस आशंका से शशि वीरेश्वर का बचाव किये जा रही थी।

बटेर की तरह कभी इधर और कभी उधर की बातें सुनते हुए अंकल बीच में बोल पड़े, "लेकिन, अगर नमिता बी० ए० में एडमीशन लेकर पढ़ने लगे, तो इसमें ऐसी लड़ाई और न बोलने की बात क्या है ?"

शशि झल्ला उठी, "आप समझते तो हैं नहीं अंकल, बीच-बीच में अपनी छौंकते हैं।"

अंकल खिसिया गए। शशि का लहजा और फिर उसका प्रभाव—उमा को बहुत बुरा लगा। मुझे तो अभी समझा रही थी और खुद इस तरह काटने को दौड़ती है। उसने मुलायम स्वर में बताया—"अंकल जी, बात यह नहीं थी। यह तो तय हो ही गया था। यों नमिता बी० ए० करे, इसमें बद्दू भैया इतना बुरा क्यों मानते ? कहीं किसी से इसने यह कह दिया बताते हैं कि—इन की हरकतें देखते हुए कम से कम मौके पर अपने पांव पर खड़े होने के लिये मुझे बी० ए० तो कर ही लेना चाहिए। पढ़ा तब भी खाऊंगी।—उसे भी जिद आ गई कि सौत भी लाकर बैठाऊंगा और तुझे बी० ए० भी नहीं करने दूंगा। खैर फिर इस बात पर तो राजी हो गया था ."

"धम-धम" एक दूसरे को भाग कर पकड़ने की कोशिश करते हुए रीना और अमित ने उमा की बात तोड़ दी। दोनों ने पहले भागते हुए कमरे का एक चक्कर लगाया और फिर अमित शशि को आड़ में लेकर पैंतरे बदलने लगा। शशि को लग रहा था जैसे वह अपनी पर्याप्त सफाई नहीं दे पाई है और अंकल के प्रति मुलायम व्यवहार दिखाकर उमा ने उसकी अशिष्टता को और भी उजागर कर दिया है। कड़े हाथों से अमित को भीतर धकेलती हुई बोली—जाओ, भीतर जाओ अभी तुम्हें मना किया था न ? —हम अपनी परेशानी में मरे जा रहे हैं और तुम्हें हुड़दंग सूझ रहा है।

'अपनी परेशानी' की बात याद आते ही मानो स्थिति की गम्भीरता फिर नए सिरे से सारे वातावरण पर तारी हो गई। सब अपनी-अपनी बात भूल गये। एक साथ ग्लानि कचोट उठी। ऐसे संकट के गम्भीर अवसर पर भी सब अपना-अपना मोर्चा साध रहे हैं। साथ ही शशि को लगा कि स्थिति की गंभीरता को ही भुलाए रखने के लिये जान-बूझकर वे लोग व्यर्थ की बातों में उलझे थे। खुशामद से उमा बोली, "शशि, पूछो न क्या हुआ ?"

शशि का एक कान फोन पर लगा था। उसने धीरे-से थपककर नमिता का सिर अपनी जांघ से उठाया—जैसे कह रही हो, नमिता, तुम तो गलत मत समझना। नमिता अपनी बड़ी-बड़ी रुआंसी लाल-लाल आंखें उठाकर डायल घुमाती शशि की पीठ को देख रही थी।

"हल्लो, पुलिस हैडक्वार्टर ? जी मैं नाइन-फाइव-फोर-टू से बोल रही हूं जी कुछ पता लगा ? एक साहब गाड़ी लेकर जी हां, जी हां, वे ही लोग उनके पीछे गए हैं डी० आई० जी० उन्हें लेकर खुद गए हैं ? जी जी देखिये, जैसे ही खबर मिले, हमें फौरन ही रिंग कीजिये जी, यहां हम लोग तो बहुत ही घबरा रहे हैं... चौकियों पर खबर भेज दी है ? जी बहुत ब-हु-त शुक्रिया ."

वैभवपूर्ण

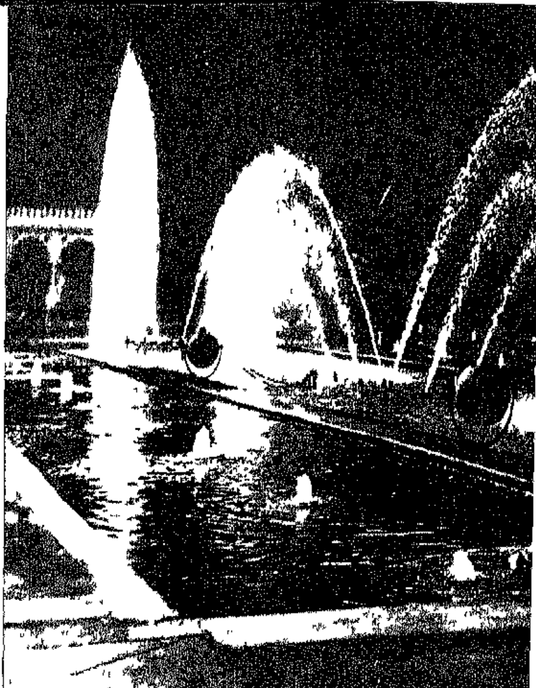
मैसूर



जोग प्रपात



लाल बाग

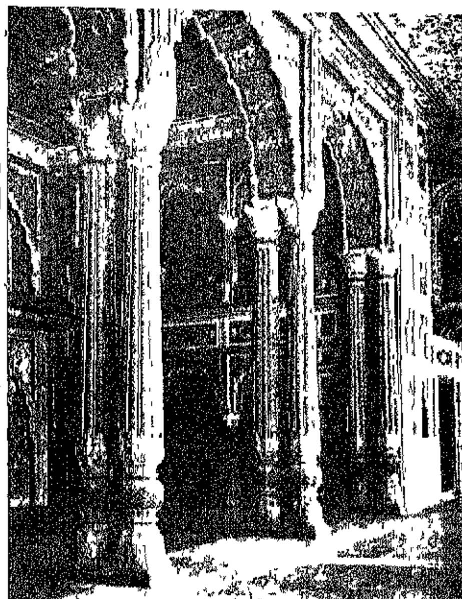


वृन्दावन उद्यान के फ

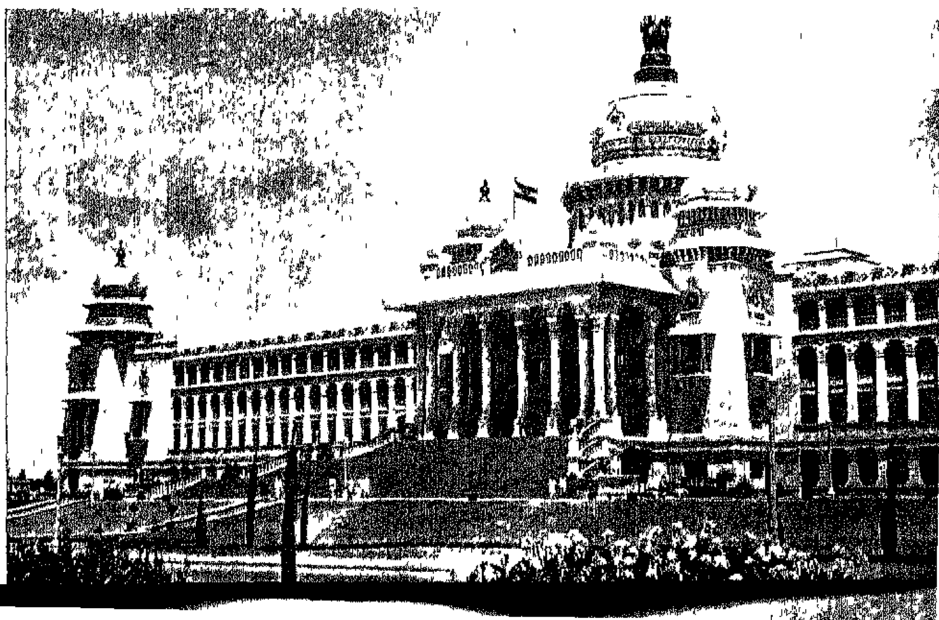


मैसूर के महलों
का मुख्य द्वार





टीपू सुल्तान का ग्रीष्म महल



र में
ा भवन



दर्पण में चेहरा देखते हुए नारी
(मदनिका)

गोमतेश्वर



उग्र नर सिंह



फिर टेलिफोन रखकर बताया, "कहते हैं, डी० आई० जी० खुद उन लोगों को बैठा कर जीप में पीछे गये हैं चौकियों पर कार का नम्बर वगैरा तो सब दे दिए हैं अभी तक कोई खबर नहीं मिली है लेकिन जल्दी ही कुछ न कुछ सूचना मिलेगी ही "

यह पानी है कि आफत, लगातार एकरस बरसे ही चला जा रहा है। शशि के मन में आया कि काश, इस समय एक प्याला काफी का मिल जाता गरम-गरम लेकिन इस अवसर पर तो ऐसी बात सोचना भी अनुचित है . अजब-अजब तस्वीरें उसके सामने कौंध रही थीं।

अकल की सांस फिर उभरने लगी थी। उसे दबाने के लिये ठण्डी हाथ भरकर हाथ को कलाई से घुमाया और झटका देकर अपने आप से बोले —"पागलपने में जाने क्या करे ?"

उमा की ठोढ़ी और निचला होंठ कांप रहे थे। होंठ को दांतों से समेटकर दबाए हुए उसने दोनों हाथ सामने छाती पर बांध लिये थे और बांहों पर उंगलियों को जल्दी-जल्दी चला रही थी—मानो जबर्दस्ती आंसू रोक रही हो । मुड़कर बोली "शशि, मुझे तो चक्कर आ रहे हैं। जाने क्या कर डाले ? कहीं गाड़ी ही कुदा दे या पेड़ों से टक्कर ही मार दे ."

पहला खयाल शशि को आया कि कम्पनी के चालीस हजार गाड़ी के देते-देते जिन्दगी निकल जायेगी बीमे और प्रोवीडेण्ट-फण्ड दोनों को मिलाकर मुश्किल से आधा हो पायेगा. । उसके दिमाग में फिल्मों और अखबारों में देखी तस्वीरें कौंध गईं टूटी-फूटी मुड़ी-तुड़ी एक गाड़ी पहाड़ी ढलान पर लुढ़कती हुई औंधी-सीधी किसी पेड़ या चट्टान से अटक कर रुक गई है और बटू बाबू विंडस्क्रीन तोड़ते हुए कपड़े के पुतले की तरह खड्डे में गिरते चले जा रहे हैं दूसरी तस्वीर पीछे से जीप में पहुंच कर ये लोग देखते हैं कि एक भारी से पेड़ से टकराकर गाड़ी चकनाचूर हो गई है। उसके कल पुर्जे बिखर गये हैं और उसमें आग लग गई है धुएं के बगूलों के साथ शरीर जलने की चिड़ायंध भी आ रही है . भीतर जली हुई रबर के ढेर-सा कुछ पड़ा है शशि के दोनों कन्धों को जैसे किसी बर्फीले हाथ ने पकड़कर झकझोर दिया .सारा शरीर झनझना उठा। उसने एक हाथ की दो उंगलियों से कसकर पलकें दबालीं और सिर पीछे टेक दिया पता नहीं जाने क्या खबर आने वाली है ? उधर से भरीए और घबराए गले से शंकरबाबू या वीरेन्द्र कहें, "शशि " और हो सकता है कि अगली बात कही जाए या न कही जाए. फिर वह सुहाग की भीख मांगती निगाहों से देखती हुई नमिता के पास उठकर चली जाएगी और फिर उसकी दोनों कलाइयां पकड़कर चरर-चरर सारी चूड़ियां तोड़ देगी हो सकता है एकाध चूड़ी खुद भी उसके चुभ जाए, लेकिन ऐसे समय उसका खयाल ही क्या ? और तब नमिता इतनी जोर से चीख पड़ेगी कि इस घर की छत उड़ जाएगी .तभी अचानक सब देखेंगे कि यह बारिश थम गई है यह बारिश भी तो आज कैसी मनहूसियत से बरसे जा रही है—जैसे किसी की जान लेकर ही बन्द होगी। कौन जाने शायद पानी इसी लिए बरस रहा हो। उसे याद आया उमा ने कुछ कहा था । पलकें मसलती जैसे नींद से जागी हो, वह बोली—"खैर, गाड़ी-वाड़ी की तो कोई बात नहीं है। बस, बटू बाबू लौट आएं ।"

टहलती हुई उमा पहले नमिता के पास आई। कुछ देर खड़ी रही। नमिता के सफेदी पुते चेहरे पर बड़ी बड़ी-आंखें ही खुली थीं। वह अपलक, एकटक बल्ब को देखे जा रही थी। बादलों के कारण दिन में भी बिजली जली थी। आंसुओं की दो धारियां गालों से बहकर ठोढ़ी के दोनों ओर होती हुई गोद में रक्खे उसके हाथों पर गिर रही थीं। फिर उमा ठण्डी सांस छोड़कर टेलिफोन के पास आ गई और ठीक उन्हीं निगाहों से उसे घूरने लगी जैसे सांप को कील रही हो। अब यह अशुभ नहीं करेगा—अगर मैंने जिन्दगी में कुछ भी अच्छा किया हो तो आज की मेरी यह आत्मा की आवाज सच्ची हो जाए। उसे लगता था जैसे टेलिफोन अब बजा अब बजा हर क्षण होता जैसे एक कड़कड़ाती हुई बिजली है जो इन अभिशप्त लोगों की छत पर मंडरा रही है जाने कब टूट पड़े जैसे उसे अब टूटना ही है. ।

और सचमुच टेलिफोन बजने लगा। कलेजे उछलकर मुंह को आ गए जाने क्या खबर आई। अकल का छाती पर लटका सिर झटके से सीधा हो गया। घण्टी जरा-सी बजकर चुप हो गई नहीं, यों ही कोई खराबी होगी। मगर पलभर बाद ही पूरे जोर से बजने लगी, उमा ने उठाया तो शशि ने झपटकर रिसीवर उसके हाथों से छीन लिया उमा का दिल कमजोर है, कोई एसी-वैसी खबर सुनकर जाने क्या हो जाए। उसे फिर गर्व हुआ अपने साहस से वही तो सारी स्थिति को संभाले हुए है, वर्ना इन लोगों से कुछ हो पाता ? नमिता की आंखों में जिंदगी और मौत झूल गई, लगा जैसे इस घण्टी की आवाज भी सामान्य नहीं है उसमें कुछ भयापन है।

"क्यों ?" शशि की भौंहें और एक ओर का गाल झुंझलाहट से सिकुड़ गए। वह नाक से स्वर में बोली।—"ट्रंक ? कहां से ? जबलपुर से ? नहीं जी, यहां इस समय कोई नहीं है। आप कैंसिल कर दीजिए . जी, वे हैं नहीं कहीं बाहर गए हैं कोई भी नहीं है एकदम ठीक नहीं है, कब आएंगे ?" गुस्से से उसने फोन रख दिया । दांत पीसकर बोली, "जितने भी बेकार के फोन हैं सभी को अभी आना है . "

तनी हुई नसें फिर ढीली हुईं। फिर गहरी सांस निकल गई और फिर उमा टहलती हुई खिड़की के पास चली गई बेचारी नमिता .। शशि को अपनी ही बात खटकी। उसे यों नहीं कहना चाहिए था कि "उनके आने का एकदम ठीक नहीं है" कुछ और ही कह देती। कह देती, बाहर गए हैं। कहीं उसकी बात ही सच्ची न हो जाए जैसे उस दिन झूलते अमित को देखकर उसने सोचा था कि कहीं गिर न जाए, और तभी वह गिर पड़ा था। उसका अच्छा सोचना चाहे सच हो या न हो, लेकिन बुरा सोचना अक्सरकर सच हो जाता है। जाने क्यों उस लग रहा था, जैसे इस सारे काण्ड की जिम्मेदारी उसी पर है अगर नमिता का सिंदूर पुछ गया तो अपनी अदालत में दोषी वही होगी। अजब-सा खयाल आया, नमिता सिन्दूर लगाए हुए भी या नहीं उमा से तो कुछ होगा नहीं—वह तो बेहोश ही जाएगी। चाहे बेहोश हो या न हो, गिरने का बहाना तो करेंगी ही। इसलिए उन्हें यों ही छोड़कर वह नमिता के पास जाएगी। हां, बिना घबराए पहले वह टेलीफोन जगह पर रख देगी। नमिता का सिर अपनी छाती से चिपका कर सान्त्वना देगी। तब दूसरे हाथ में पल्ला लेकर धीरे से उसकी मांग का सिंदूर पोंछ देगी। (सिंदूर तो शायद धोबी के यहां धुल जाता है) लेकिन उसे यह भी तो नहीं पता कि पहले सिंदूर पोंछा जाता है या चूड़ियां तोड़ी जाती हैं ..? कैसी लगेगी नमिता...? वह उसे एकटक देखती रही.... आसमानी साड़ी सफेद बिना किनारे

की साड़ी में बदल गई आंखों के आस-पास गोल दायरे खिंच आए कोई साज-सिंगार नहीं खुले हुए केश बेचारी की सारी जिन्दगी ! और हो सकता है नमिता इस वेश में और भी खिल उठे

फिर शशि ने अपने को धिक्कारा छि कैसी-कैसी बातें सोचती है वह ? हो चाहे जो, लेकिन कम से कम उसे सोचना तो नहीं ही चाहिये। जाने कैसे नमिता न जान लिया कि शशि उसे ही देख रही है। एक बार गलाबी-गुलाबी डोरोंवाली आंखों में मुस्कुराहट उभरी घबराओ मत, मैं हर स्थिति को स्वीकार करने को तैयार हूं। नमिता ने अब अपने आप को तैयार कर लिया है शशि को लगा नमिता उसके मन में उठने वाले हर भाव को पढ़ रही है क्या सोचेगी? वह घबरा उठी, उसे पहली बार नमिता पर अफसोस हुआ, तरस आया। वीरेश्वर ने ऐसा मजाक बहू बाबू से क्यों किया ? सचमुच मजाक में इन्हें कहनी-अनकहनी बात का ध्यान नहीं रहता। यों बात तो इतनी ही थी कि "हो गया मेल?" लेकिन उसमें छिपा था, अब मेल हो गया तो फिर तुम गहने और रुपए बीबी से मांग कर ले जाओगे फिर उस क्रिश्चियन स्टेनो मलेंडिल्ला पर उड़ाओगे और हो सकता है फिर वह किसी होटल या रेस्त्रां में हार या घड़ी पहने मिल जाए और नमिता पहचान ले कि चीज उसकी है. फिर घर पर वही दृश्य उपस्थित हो इतना सब था उस एक जरा सी मजाक की बात में। बात खुद उसे भी तो खटकी थी। लगा था कि उसे वीरेश्वर को यह सब बताना नहीं चाहिए था जानती है इनके पेट में बात नहीं पचती, फिर भी । बहू बाबू समझते हैं कि नमिता ही सबसे कहती हुई उसके खिलाफ मोर्चा बनाने में लगी है। बेचारी नमि

तभी सहसा भीतर किसी ने रेडियो खोल दिया तो सब इस तरह चौंक उठे मानो भीषण घुटन में सहसा किसी ने खिड़कियां खोल दी हो मद्रास टैस्ट मैच की कमेण्ट्री आने लगी, अमित होगा। उसे झुंझलाहट आई इतना बड़ा हो गया, इसे इतना खयाल नहीं है कि यहां इतनी बड़ी घटना होने जा रही है और ऐसे जोर-जोर से रेडियो बजाकर कमेण्ट्री सुन रहा है धीमे ही सुन ले। मन में आया जोर से चिल्लाकर रेडियो बन्द करा दे। ध्यान हुआ अगर टेलीफोन आया तो इस शोर के कारण बात भी साफ नहीं सुनाई देगी — और रेडियो की आवाज से ज्यादा तो मौसम की खड़खड़ है । उमा से उसने खुशामद के स्वर में कहा—"भाभी, इसे जरा बन्द करा दो न, अच्छा नहीं लगता " उमा दूसरे कमरे में चली गई। रेडियो सहसा एकदम ही बन्द हो गया

अचानक लगा जैसे भीषण शान्ति छा गई हो बस पानी की टपर-टपर और मेंढकों या झींगुरों की आवाजें बहुत ही असहनीय हो उठा तो शशि उठकर फिर नमिता के पास आ बैठी यहां से, भीतर के कमरे में माथे पर कलाई रक्खे चित लेटी उमा का धड़ दिखाई देता था। किसी को कुछ बोलने को नहीं था . बस थी उस अपरिहार्य की निरुद्विग्न प्रतीक्षा नमिता के कंधे से लग कर पूछा —"फिर कुछ कहा सुनी हो गई थी क्या ?"

"नहीं तो। कसम से दीदी, एक भी बात नहीं हुई।" अकल दीवार से टिक कर आंखें बन्द किए मानो होठों ही होठों में प्रार्थना कर रहे हो काश, इस समय इन ही की प्रार्थना काम आ जाए।

"कुछ कहते थे क्या ?" शशि को अनिच्छापूर्वक मन ही मन स्वीकार करना पड़ रहा था कि उसके पति का मजाक ही इस सबका कारण है।

"कुछ भी नहीं " गला साफ करके इस बार जरा संयत स्वर में, नमिता ने सिर घुमा कर कहा। उसके चेहरे से लगा मानो वह जताना चाहती हो कि जितना कमजोर उसे समझा जा रहा है उतनी निरीह और निर्बल वह है नहीं अगर कुछ हो भी गया तो वह सहेगी

और तब फिर घण्टी बजी दहशत-जदा आंखों से नमिता ने इस तरह देखा जैसे टेलीफोन से दो हाथ निकल कर उसकी गर्दन घोट देंगे और शशि फोन को इस तरह देखती रही जैसे युद्ध के मैदान में आराम करते सिपाहियों के बीच अचानक दुश्मन का गोला आ पड़े और चकर-घिन्नी की तरह फटने के लिये घूमना शुरू कर दे निश्चय ही इस बार वही सूचना है जिसकी इतनी देर से राह देख रहे हैं इस बार की आवाज तो निश्चय ही बड़ी मनहूस-सी है शशि को लगा जैसे उसकी दाहिनी आंख फड़कने लगी हो समझ में नहीं आया कि उसे करना क्या है, फिर मन हुआ कि काश, वह दुस्संवाद उसे न सुनाना पड़े। टेलिफोन बजता रहा उठने की ताकत नहीं थी फिर भी पांव घसीटती हुई पहुंची उमा चौखट से टिकी बिना हिले स्तब्ध सुन रही थी अकल दोनों हाथ सामने टेक कर बन्दर की तरह झुक आए थे

"हां जी नाइन-फाइव-फोर-टू, बोल रही हूं " रिसीवर कान से लगाते ही लगा कि वह नमिता को आखिरी बार इस वेश में देख रही है "जी क्या कहा ? बिशनपुर चौकी से थ्री-नाइन-सेविन गाड़ी पास हुई है ?—पीछे-पीछे जीप में वो लोग भी है और कोई खबर तो नहीं है ? थैंक्यू जी बहोत ब-हो-त शुक्रिया "

शशि ने टेलीफोन रक्खा तो एक अद्‌भुत रोमांच से उसके हाथ कांप रहे थे। चेहरे की तनावट कम हुई और सन्तोष की सांस उभरी। "चलो, पता तो लग गया ! भाभी, अभी तक तो कुछ किया नहीं है।"

मुस्कुराहट नमिता के चेहरे पर भी आई। पल्ले से उमा ने आंसू पोंछे, लेकिन लगा इतने बड़े खतरे की सम्भावना का यों समाप्त हो जाना किसी के गले नहीं उतर रहा था खतरा टल गया है, विश्वास नहीं होता था। थोड़ी देर चुप्पी रही। लगा, पानी कुछ कम हुआ है।

"असली खतरा तो अभी है . " अकल ने मानो फिर वातावरण के धनुष की डोरी को खींचकर चढ़ा दिया—"ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी सड़क है। पानी बरस रहा है, न मालूम कहां सड़क कट-फट गई हो या कोई चट्टान ही लुढ़क आई हो पुलिस की जीप पीछे दल कर जाने बौखलाहट में क्या कर बैठे ? जरा सी में बैलेन्स बिगड़ जाए, ब्रेक काम न करें और स्टीयरिंग न सम्भले " वे खुद अपने आप से बोलते रहे।

और सभी के दिमाग में फिल्म की तरह एक दृश्य घूम गया तेज बौछारों में चर्र-चर्र पानी उछालती आंधी की तरह भागती चली जाती गाड़ी हर मोड़ पर ब्रेकों की रगड़ कें-कें कर उठती है विण्डस्क्रीन पर लहरों में पानी उतरा चला आ रहा है और पतले-पतले वाइपर जल-सर्पो-से मचल रहे हैं ड्राइवर की एक आंख आड़े किए हुए शीशे पर लगी है और उसमें पीछे से आती जीप के हिस्से दीख रहे हैं . लौंग-शाट में एक दृश्य . पहाड़ के मोड़ों पर आंख-मिचौनी खेलती एक लम्बी-सी गाड़ी और पीछा करती जीप मोड़ पर एक-एक करके दीखती है तो चढ़ाव पर दोनों .. सारी घाटी मोटरों की जूं-जूं से गूंज रही है. और फिर सहसा झटके से सारी रील टूट जाती है . . अन्तिम सीन ही बस कौंधता रह जाता है . . सड़क के मोड़ पर सम्भल न पाने

के कारण पानी में फिसलती अपनी पूरी तेजी से छलांग लगा कर पेडो के ऊपर से घाटी में कूदती लम्बी-सी गाडी और बुरी तरह झटका लेकर रुकती जीप

शशि अचानक चौंकी। आया आकर पूछ रही थी—"मुन्ना बाबू को ग्लैक्सो दे दें या ओवल्टीन?" उसके दिमाग में आया, ये नौकर बार-बार बच्चों के बहाने आ-आकर स्थिति का पता लगा रहे हैं। इन्हें भी तो लगा होगा कि आखिर क्या हुआ? और नौकरों की चालाकी पर उस स्थिति में भी वह मुस्कुरा पडी। नर्मी से आया के सयत चेहरे को गम्भीरता से देखती बोली—"आया, उसे ओवल्टीन पिला दो" और फिर दिमाग में आए हुए दृश्य को जबर्दस्ती झुठला कर बोली—"अब तो मेरा मन कहता है—कुछ नहीं होगा। भगवान से मनाओ, कुछ न हो" और इतनी देर में पहली बार उसने सच्चे दिल से भगवान से प्रार्थना की कि प्रभो, जैसे भी हो इस बार पति की लाज रख लो। फिर जो इच्छा हो सो करना" आया चली गई थी। उसके मन में आया, नमिता से प्यार में डाट कर कहे—यहा खडी क्या है, जाकर भगवान की प्रार्थना कर बुद्धू, तू नहीं जानती तेरे ऊपर आई कितनी बडी मुसीबत को उन्होंने टाल दिया है। लेकिन अभी यह सब कहना, सोचना ठीक नहीं है। हो सकता है, सारा पासा ही पलट जाए अकल उमा से कुछ कह रहे थे उसने नहीं सुना। यही कह रहे होंगे कि बटू को पहाड पर गाडी चलाने का अभ्यास नहीं है।

फिर टेलिफोन बजा। इस बार उधर शकर थे, "हा शकर भैया, मैं ही हू शशि। पेट्रोल बिल्कुल नहीं बचा था क्या? तभी रुकराई-रुकराई तो नहीं? खैर गाडी के खरोंचे तो ठीक हो जाएगे कुछ और तो नहीं हुआ न?" आनन्द से उसकी आखो में आसू आ गए। फिर भी मजाक में बोली—"थोडा पैट्रोल और डलवा दो ना, जरा और रेस हो जाए? आए तो बटू बाबू यहा भाभी तो अपने भैया को जब तक आखो से नहीं देख लेंगी उन्हें चैन नहीं पडेगा।" फिर खुद उसने टेलिफोन पटका और बच्चो की तरह ताली बजाती उछल पडी ऊपर की ओर हाथ जोडकर अकल रो पडे

और सब जैसे गहरे पानी के दमघोटू तले से उभरकर ऊपर आ गये मानो इतनी देर में पहली बार सास ली। उमा धम से धरती पर बैठ गई—जैसे मीलो की चढाई पैदल करके आई है ओस लदे फूल-सी नमिता मुस्कुराई मानो वह पहले से जानती थी कि कुछ भी नहीं होगा। एक क्षण को सब कुछ रुक गया। फिर शशि बोल पडी—"आने दो आज बटू बाबू को, ऐसे आडे हाथो लूगी कि याद रखेगे। पूछूगी, ऐसा मज़ाक भी किस काम का? हमारे तो सब प्राण निकाल लिए" हसकर कहा—"भाभी, तुम्हें दिल का दौरा नहीं पडा? मैं तो डर रही थी कि कहीं तुम्हें दौरा पड गया तो ऐसे में सभालना भी मुश्किल पड जाएगा।"

फिर सब एक दूसरे से अधिक आवेश में, बिना दूसरे की बात सुने बताते रहे कि इस बीच में किस-किस ने क्या-क्या सोचा। उमा ने कितने का प्रसाद बोला था और कैसे सबको एकदम विश्वास था कि कुछ भी नहीं होगा। ऊपर से शोर और खुशी थी लेकिन भीतर पहले से भी अधिक उदासी और घना सन्नाटा छा गया था। लग रहा था जैसे उनके साथ गहरा धोखा किया गया है मानो दिनभर की तैयारी के बाद कोई दुनिया भर की मुसीबतें उठाकर खेल देखने पहुचे और वहा जाकर पता चले कि खेल तो स्थगित हो गया।

सफेद घोडा—(पृष्ठ २१ का शेषांश)

गुम, गुडुम, गुम।

गाड़ी से उतर कर गोरे सैनिक राजपथ पर टहलने लगे। उनके भारी बूटो के शब्द को छोड कर और कोई शब्द मुहल्ले भर में न था।

एक अद्भुत निस्तब्धता। दरवाजे-खिडकियां—सब बन्द—। खिडकी के 'शटर' को थोडा उठा कर बाहर ताकने का साहस तक किसी में नहीं था। सभी के मुख पर अज्ञात उद्वेग की छाया।

प्रायः एक घण्टे के बाद प्रथम बाहर आया नन्दू। उसके बाद यमुनाप्रसाद, पीछे बूढ़ा सईस। दरवाजा खोलते ही इनकी दृष्टि आकर्षित हुई—रौद्र दग्ध राजपथ के रिक्त रूप के प्रति। बाईं ओर मुह फेरते ही तीनो व्यक्ति काप उठे। याद सडक पर पडा है। काले पीच के प्रस्तर पर उसका सफेद रंग और भी जंच रहा था। शरीर सडक पर, सर पटरी पर। दाहिने कान के पास एक चिह्न। वृद्ध सईस ने पुकारा—सुहराब।

सुहराब ने जवाब नहीं दिया। वृद्ध की पुकार का पहली बार सुहराब ने जवाब न दिया।

सुहराब आकाश की ओर एकटक देख रहा था। हीरक स्वच्छ आकाश जैसी उसकी आखें, उन आखो में कोई वेदना, कोई ग्लानि नहीं थी।

केशव बाबू ने एक ठण्डी सास ली।

अनुवादक : गोविन्दलाल चटर्जी

निमाड़ी लोकगीतों में बेटी की विदा

हीरालाल शर्मा

फूल कहां नहीं खिलते ? बेटियां कहां नहीं होतीं ? फूल सब दूर खिलते हैं, बेटियां भी प्रायः सब घरों में होती हैं, फूलों का दूसरा नाम ही सुन्दरता है, ये जहां खिलते हैं वहां का ससार सौंदर्य और सुगन्ध से महक उठता है, बेटियों का दूसरा नाम ममता है, वे जहां जनमती हैं वह घर आंगन भी प्यार और दुलार से महक उठता है, उनके सौंदर्य से दमकता रहता है।

लेकिन एक दिन आता है, जब फूल तोड लिये जाते हैं, और फूल तो क्या कलियां तक तोड ली जाती हैं। फिर भी कई फूल बिन तोडे रह जाते हैं। पर बेटियां ? उन्हें तो एक न एक दिन पराए घर जाना ही पडता है। एक न एक दिन उन्हें अपना प्यारा-प्यारा घर, माता-पिता का स्वर्गिक दुलार, भाई-भावजों व सखी-सहेलियों का प्यार सब को त्याग पीहर से पी-घर जाना ही पडता है।

भारत के गार्हस्थिक जीवन में सब से करुण, सब से हृदयस्पर्शी दृश्य होता है, बेटी की विदा का। विदा की इस करुण वेला में परम विरागी विदेह जनक और महर्षि कण्व तक असह्य दुःख का अनुभव कर बिलख उठे थे, तब साधारण व्यक्तियों की तो बात ही क्या ?

बेटी की विदा के प्रसग को लेकर अनादि काल से अनेक ज्ञात व अज्ञात कविगण स्नेह व करुणा की कभी न सूखने वाली मदाकिनी बहाते आए हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं में इस हृदयस्पर्शी प्रसग को लेकर अनेक अमर गीतों की रचना हुई है। बेटी की विदा के गीत सीधे हृदय से निकलते हैं और सीधे हृदय में आकर घर कर लेते हैं।

विन्ध्य और सतपुडा के मध्य नर्मदा के दोनों ओर दूर-दूर तक फैले निमाड प्रदेश के लोकगीतों में इस प्रसग को लेकर अनेक श्रेष्ठ गीतों की रचना हुई है, निमाडी का एक हृदयस्पर्शी लोकगीत इस प्रकार है :—

फूलड़ा टोचण ख तू गई थी लाडकली,
अपणा दादाजी की बाग मऽ।
कई टोच्या कइ टोचण लाग्या,
एतरा म आया दुल्लव राज जी॥

"हे लाड़ली, अपने पिता जी के बाग में तू फूल तोडने गई थी। तूने कुछ फूल तोडे और कुछ तोड ही रही थी कि इतने में तेरे दूल्हे राजा आ पहुंचे।"

उठो लाडकली तम बठो पालकडी,
चालो ते देस हमारा जी।

दूल्हे राजा बोले—"हे लाड़ली, तुम इस पालकी में बैठो और हमारे देश चलो।"

कायन कारण बाबुल पाली व पोसी
कायन पाया काचा दूद जी।
सजना सारु बाबुल पाली रे पोसी,
वर राजा सारु पाया काचा दूद जी॥

दुल्हन पूछती है—"आखिर मेरे पिता ने मुझे क्यों पाल-पोस कर बड़ा किया और कच्चा दूध किस लिए पिलाया ?"

और उसे उत्तर मिलता है—"रानी, तेरे इस साजन के लिए ही तेरे पिता ने तुझे पाल-पोस कर बडा किया और इस वर राजा के लिए ही तुझे कच्चा दूध पिलाया।"

विदा के लिए बेटी तोरण में खडी है। अब उसकी विदाई में देर नहीं है, जिस घर को उसने आज तक एक सुन्दर बाग के समान बना रखा था, वह अब उजडने जा रहा है। मां का ही नहीं सब का हृदय टुकडे टुकडे हो रहा है।

हऊं असी जो मनडा म जाणती !

आह ! मैं ऐसा क्या जानती थी कि ऐसा समय भी आवेगा।

हऊं असी जो मनडा म जाणती
मैं तो बागा लगाऊं बेउचार॥
बयणा इन घर आनन्द बधावणी,
ए तो आई मालेण फूलडा लई गई।
म्हारी बागा पराई क्यों होय,
बयणा इन घर आनन्द बधावणी॥

"मैं क्या जानती थी कि ऐसा समय भी आएगा जब बेटी हम सबको छोडकर चली जाएगी। मैं तो दो-चार बाग लगाती। बहनो, इस घर में आज आनन्द छा गया है। पर यह क्या ? मालन आई और फूल तोडकर ले गई। मेरी बगिया आज पराई क्यों हो रही है ?"

आखिर वह क्षण आ ही गया। पीहर पर दुःख के पहाड को पटक दूर देश में बसे पी-घर के लिए बेटी रवाना हो रही है। वह रही पालकी ! आंसू बह रहे हैं। बहते जा रहे हैं। और तो और स्वयं दूल्हे के पैर भी उठ नहीं रहे हैं। चींटी से भी धीमी चाल से पालकी की ओर कदम सरक रहे हैं।

इन्हीं असीम वेदना भरे क्षणों में वाणी बेचारी मौन पड़ी है। सिसकता हुआ हृदय बडी कठिनता से कह पाता है। उसे कहना पडता है, गाना पडता है क्योंकि आखिर बेटी की विदा है। उसे तो गीत सगीत के साथ गाते बजाते ही विदा करना होगा।

हरा नीला बास की बासणी,
वा बी बाजती जाय।
रामू भाई की सोनू बहन लाड़ली,
वा बी सासर जाय॥

"हरे-नीले बास की बंसी है वह भी बज रही है। रामू भाई की सोनू बहन बडी लाडली है। वह भी ससुराल चली जा रही है।"

पछा फिरो पछा फिरो लाड़ी बाई,
दादाजी से मिलता ही जाओ।

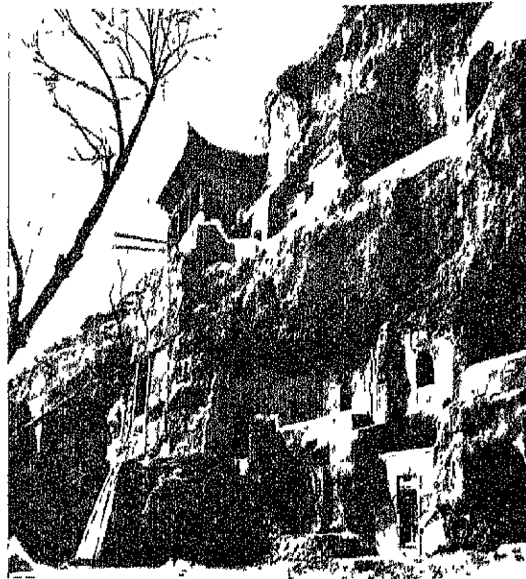
(शेष पृष्ठ ४८ पर)

तुङ्-ह्वान

राहुल साकृत्यायन

तुङ्-ह्वान चीन की अजन्ता है। जिस तरह भारतीय संस्कृति और कला का विद्यार्थी अजन्ता देखे बिना भारत से लौट जाए, तो उसकी यात्रा को बिल्कुल अपूर्ण समझा जायेगा, वही बात चीन की संस्कृति और कला के विद्यार्थी के लिए कहनी होगी, कि यदि तुङ्-ह्वान गए बिना वहा से लौट आए। मै अपने साढे चार महीनेकी चीन यात्रा को कभी पूर्ण नही समझ सकता था, यदि तुङ्-ह्वानको न देख पाता। अजन्ता प्राय ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से सातवी-आठवी सदी तक निर्मित होती रही। अजन्ता की बहुत सी गुफायें और चित्र भी तैयार हो चुके थे, जबकि चौथी पाचवी सदी मे तुङ्-ह्वान में निर्माण आरम्भ हुआ। इस प्रकार यद्यपि तुङ्-ह्वान आयु में तीन-चार शताब्दी पीछे का है, पर उसकी गुफाओ, मूर्तियो और चित्रो का निर्माण चौदहवीं शताब्दी तक होता रहा। तुङ्-ह्वान चीनी कला के हजार वर्ष के विकास का सग्रहालय है। यद्यपि उसके ऊपर भी धर्मान्धो और विद्यान्धो दोनो का हाथ पडा है, पर अभी भी विशाल सामग्री वहा मौजूद है। धर्मान्ध मुस्लिम तुर्क एक दो बार वहा पहुचे थे, जिससे तुङ्-ह्वान को क्षति पहुची। विद्यान्धो में ओरेल स्टाइन का नाम लिया जा सकता है। वह कितने ही भित्ति-चित्रो को उखाड कर ले गए, और जब किसी बडी मूर्ति को हटाने में अपने को असमर्थ पाया तो मूर्ति के सिर को ही काट ले गए। आजकल का चीनी शिक्षित स्टाइन के इस अपराध को क्षमा करने के लिए तैयार नही है, चाहे उनकी गवेषणाओ को वह सम्मान की दृष्टि से भी देखता हो।

तुङ्-ह्वान पेकिंग से हजार मील से अधिक दूर है, वह हमारे दार्जि-लिंग के सीधे उत्तर शायद उतनी ही दूर पर पडेगा। हृद्रोग के आक्रमण के कारण डाक्टर मुझे इस यात्रा के लिए आज्ञा देने में हिचकिचा रहे थे, पर मेरा आग्रह भी जबरदस्त था। अन्त में उन्होने स्वीकृति दी और हम १६ सितम्बर को रेल से सियान के लिए चल पडे। दुभाषिया साथी चाउ जैसे कलाविद् और संस्कृति-साहित्य प्रेमी मिले। अगले दिन सियान पहुचे। पेकिंग से तार द्वारा सूचना दे दी गई थी, पर लन्-चाउ के विमान में स्थान नही मिल सका और हम अट्ठारह को रेल द्वारा प्रस्थान करके उन्नीस को लन्-चाउ पहुचे। यहा से चीन गणराज्य के पश्चिमोत्तर छोर तक विमान जाता है। हमारे लिए जगह सुरक्षित हो गई थी। न होती तो यहा से चार सौ चार किलोमीटर च्यू-च्वाङ् तक रेल से जाना पडता। यह मध्य एशिया होते सोवियत सीमा तक पहुचने वाले नए रेल मार्ग पर स्थित है। २० सितम्बर को सवा सात बजे सवेरे विमान उडा। हवाई अड्डा विशाल था, पर सब कच्चा था। जब तक अत्यावश्यक न हो, तब तक खर्च मे पूरे सकोच से हाथ डालना यह चीनी गणराज्य का सिद्धान्त है। लन्-चाउ चारो ओर पहाडो से घिरा ह्वाङ-हो के किनारे बसा हुआ है। इसे हिमालय के गर्भ में बसी नगरी समझना चाहिए। नगरी भी एक डेढ लाख से बढकर पिछले नौ वर्षों में सात-आठ लाख से ऊपर पहुची है। इसमें शक नही कि अगले दस वर्षों में वह पन्द्रह लाख की हो जाएगी। पहाडो के भीतर अब भी इतनी समतल भूमि है, कि बस्ती के बढाने में कोई सकोच नही होगा।



तुङ्-ह्वान मे 'सहस्र बुद्ध गुफा' का बाह्य दृश्य

पहले पहाड नगे मिले, जिन पर मनुष्य ने जगल लगाने का गम्भीरता से प्रयत्न शुरू किया है। पर यह ऐसा प्रदेश है, जहा आदमी कम और भूमि अधिक है। सुङ्-शान पर्वतमाला फिर ची-लिन-शान् आई। ची-लिन शान् को हिमालय कहना चाहिए। तिब्बत वस्तुत चारो ओर से हिमालयो से घिरा हुआ है। साढे सात बजे हमारा विमान जिन पहाडो के ऊपर से उड रहा था, वह देवदार से ढके हुए थे, अर्थात् वहा लकडी का कोई अभाव नही था। बीच-बीच में नदियो के किनारे विस्तृत उपत्यकाओ मे एक दूसरे से बहुत दूर गाव बसे हुए थे। आठ बजे फिर हमारे नीचे वृक्ष वनस्पतिहीन पहाड थे। हमारे दाहिने अर्थात् उत्तर दिशा में मरुभूमि थी, जो आगे बढने की ताक में बैठी थी, पर अब इन मरुभूमियो के जमाने लद गए हैं। इस मरुभूमि को देखकर मुझे याद आ रहा था कि इसका सम्बन्ध चीनी मध्यएशिया होते सोवियत मध्येशिया के विशाल रेगिस्तानो—कराकुम् और किजिलकुम् से है। बीच में थोडी दूर तक सम्बन्ध विच्छिन्न है। सोवियत के रेगिस्तानो के आगे थोडी सी भूमि छोडकर फिर ईरान की प्यासी भूमि आ जाती है, जिसका सम्बन्ध थोडे से अन्तर के साथ बलूचिस्तान के रेगिस्तानो और फिर सिध के कुछ भाग को छोडकर राजस्थान की मरुभूमि के साथ है। युगो तक चीन का रेगिस्तान चाहे अनुत्पादक रहा हो, पर अब तो वह अपने नीचे से रत्नराशि उगल रहा है। इसके भीतर जगह-जगह मिट्टी के तेल और पट्रोल के कुए बन चुके और बनते जा रहे हैं। यहा भी सरदा (खरबूजा) नाशपाती, सेब, अगूर इतने मीठे होते है कि जिनका मुकाबला दूसरे देश शायद ही करते हो।

नौ बज कर चालीस मिनट पर अर्थात ढाई घन्टे में हमारा विमान च्यू-च्वाङ् अड्डे पर उतरा। यहा का दृश्य मुझे बिल्कुल ईरान सा दीख पड रहा था। उसी तरह तृणहीन छोटे छोटे पहाड दूर दिगन्त तक दिखाई

पड़ते थे। उसी तरह जलहीन नदियों की चौड़ी धाराएं थीं। उसी तरह कच्ची मिट्टी की दीवार और छतवाले घर गांवों में दिखाई पड़ते थे।

तुङ्-ह्वान के एक अधिकारी हमारे स्वागत के लिए अड्डे पर तैयार थे। भोजन हुआ, फिर पौने ग्यारह बजे जीप में अब चार सौ बारह किलोमीटर की यात्रा आरम्भ हुई। इस भूमि में सड़क बनाना कठिन नहीं है। वर्षा कभी कभी बरस दो बरस बाद कुछ फुहारों के रूप में हो जाती है। बर्फ कुछ अधिक पड़ती है और पहाड़ों में वह और भी उदार होती है। इस चिर प्यासी भूमि के कंठ को तर करने के लिए बस यही हिमद्रवित जल है। पहाड़ दूर दूर हैं और सड़क उनके किनारे कभी कभी पहुंचती थी। हवाई अड्डा छोड़ने के आध घंटे बाद हम चीनी महादीवार के पास पहुंचे। पन्द्रह सोलह सौ मील लम्बी महादीवार का छोर यहीं पर था। यहां भी आठ दस गज चौड़ी दीवार खड़ी थी। इसकी मिट्टी को गीली करने के लिए कितने जल की आवश्यकता पड़ी होगी। जीप उसके द्वार के भीतर से चली। द्वार क्या एक पूरा महल था, जिसकी मरम्मत शायद पिछली आधी शताब्दी में बहुत कम हुई, पर वर्षा के अभाव के कारण यहां की इमारतें दीर्घजीवी होती हैं। दूर दूर पर कभी कोई भूला भटका गांव मिल जाता। मकान वही पुराने मिट्टी के, पर साफ सुथरे थे। नर-नारियों के शरीर पर शौकीनी के वस्त्र नहीं थे, पर वह सुआच्छादित थे। उनके शरीर में हड्डी कहीं नहीं दिखाई पड़ती थी। पुराने जमाने में बीच बीच में मार्ग रक्षा के लिए पुलिस या मिलिटरी के किलेबन्द अड्डे थे। यहां एक या अधिक विशाल सरायों का रहना आवश्यक था। अब यह इमारतें ढह छिमला चुकी हैं। पर, आज से ढाई हजार वर्ष पहले से यह दुनिया का सबसे लम्बा मूल्यवान व्यापार मार्ग उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक चालू रहा। इस मार्ग पर एशियाई ही नहीं योरोपीय व्यापारी भी अपने कारवां के साथ आया करते थे।

दो सौ तिरासी किलोमीटर पार करने के बाद अनशी कसबा मिला, जिसमें चार हजार आदमी बसते हैं। पुराने जमाने में इसकी आबादी और रही होगी। जीप धूल का तूफान उड़ाती चल रही थी, सब हमारे ऊपर नहीं पड़ रही थी, पर जो पड़ी थी वह धूसरित करने के लिए काफी थी। सड़क ऐसी थी, कि जिसमें कार से चलने पर मुसीबत आ सकती थी। इसलिए हमें सर्वत्रगामिनी जीप मिली थी। अनशी में आध घंटा विश्राम करने के लिए हम ठहर गए। बस्ती को भीतर से देखा। दो हजार वर्ष पूर्व यहां चीनी लोग नहीं रहते होंगे, पर अब तो एक मात्र वही दिखाई पड़ते हैं। चाय से स्वागत या बातचीत आरम्भ करना चीन का सर्वमान्य धर्म है। यद्यपि चार हजार फीट से ऊपर होने के कारण यहां सितम्बर के महीने में गर्मी की शिकायत करना उचित नहीं होगा, पर हरियाली से शून्य दिगन्त को देखकर आंखें अवश्य गर्मी महसूस कर रही थीं। श्री चाउ ने कोशिश की कि कहीं से एक खरबूजा या दूसरा फल मिल जाए, पर



गुफा संख्या १५८ में 'शिकारी' (काल वही)

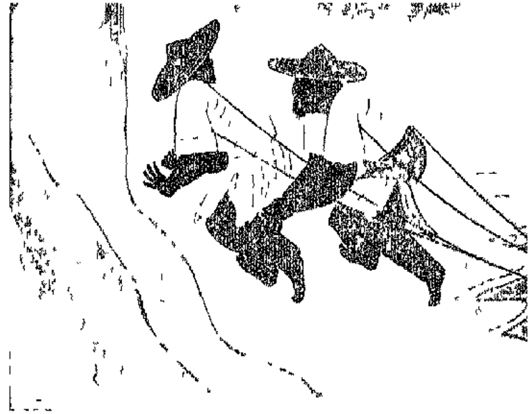


नही मिला । मिले कैसे, जब कि दुकान मे आते ही उसके गाहक पहले ही से भीड लगाए होते है ।

चार बजे हमारी यात्रा फिर आरम्भ हुई । यह भूमि देखने से भले ही रेगिस्तान सी मालूम होती हो, पर यहा बालू नही बल्कि मिट्टी है, जो जल के अभाव के कारण कण-कण बिखरी हुई है । रास्ते के गाव में नहरें बह रही थी और कही कही पानी जरूरत से अधिक मालूम हो रहा था । पानी की समस्या तो हल हो सकती है, पर इस निर्जन भूमि को बसाने के लिये आदमियो की बडी समस्या है । चीन के पूर्वी और दक्षिण पूर्वी प्रदेश बहुत घने बसे हुये है । वहा के तरुण तरुणिया भी बडे साहसी है । इसमें शक नही, इस निर्जन भूमि को सजन करने में दिक्कत नही होगी । सवा ८ बजे हम तुङ-ह्वान पहुचे । तुङ ह्वान शहर आठ दस मील आगे पडता है, हमें वहा जाने की आवश्यकता नही थी, इसलिए बगल की सडक पर प्राय उतने ही मील चलकर पहाडो के भीतर दाखिल हुये ।

विद्वान् और स्वय कलाकार शाग महाशय यहा के सचालक थे । उनके कथनानुसार तुङ-ह्वान में कभी कोई गाव नही बसा । यहा सदा भिक्षु ही रहते आए । जब वर्षों वृष्टि होने का नाम न हो, तो सीमेंट और चूने की दीवारो की अपेक्षा नही रह जाती । इस पुनीत स्थान पर दुनिया के कोने कोने से यात्री आते है । उनके आराम के ख्याल से सरकार ने कुछ अतिथि-गृह बनाए है, जिनकी सख्या बढती जा रही है । बिजली भी लग चुकी है । हो सकता है कुछ सालो बाद कोई दुमजिला तिमजिला होटल भी तैयार हो जाए । तुङ ह्वान गुहा के पास की भूमि सूखी नही है । बर्फानी जल की एक पतली नहर बीच से बहती है । जल का स्वाद मधुर नही है । पर वह सुशीतल है । अतिथिगृह में यात्री के आराम की सभी चीजें थी—अच्छा साफ सुथरा नरम पलग, कुर्सिया, मेज, और अल्मारिया । पर चार सौ किलोमीटर की धूल हमारे देह पर सवार थी, इसलिए सबसे पहले इच्छा हुई नहाने की । अतिथिगृह में स्नान-कोष्ठक का प्रबन्ध नहीं था, पर शाग महाशय ने दूसरे एक कमरे में प्रबन्ध करवा दिया । पानी गरम था, पर हमें नहाने में सकोच हो रहा था । सोच रहे थे, धूल क्या खा थोडे ही जाएगी । रात्रि भोजन शाग महाशय के साथ हुआ । वह छ वर्ष तक पेरिस मे रहे । फ्रेंच के अतिरिक्त कुछ अग्रेजी भी बोल लेते थे । पानी के अभाव के कारण नदी तो नही कही जा सकती थी, लेकिन वह काफी चौडी थी । उसके परले पार कितने ही मिट्टी के स्तूप भारतीय (या तिब्बती) ढग के थे, जो चौदहवी शताब्दी में मगोलो के शासनकाल में बने थे । उनकी आयु और स्थिति को देखकर अचरज करने की जरूरत नही थी । हमारे घर के पिछवाडे एक मिट्टी का स्तूप आठवी शताब्दी में बना था, जो अब भी सुरक्षित था । उस दिन गुहाओ की पक्तियो को दूर से ही देखकर सतोष कर लिया था । इक्कीस और बाइस सितम्बर को भी हमें यहीं रहना था, इसलिए कोई जल्दी नही थी ।

यह स्थान समुद्र तल से चौदह सौ मीटर अर्थात् पाच हजार फुट से अधिक ऊचाई पर है । इसलिए साल के किसी समय मे भी गर्मी की सभावना नही है । जिस पहाडी में गुहायें खुदी है, वह नरम पत्थरो और रोडो का है शायद इसके कारण इसे गुहा खोदने के लिए चुना गया । गुहाओ की सख्या चार सौ अस्सी है अर्थात् अजन्ता से पाच गुनी । शाग महाशय कह रहे थे कि सख्या पाच सौ से कम नही होगी । नीचे खुदाई करने पर उन्हें एकाध गुहायें मिली थी । पहाडी के परले पार बालुका भूमि है, हवा तेज होने पर वह बालू को उडा कर इस तरफ डाल गुहाओ को मूदने की कोशिश करती



गुफा सख्या ३२२ मे 'नाव खीचने वाले' (६१८ से ७४१ ईसवी)

है, जो गुहाए आज खुली है, उनमे से भी कितनी ही कुछ वर्षों पूर्व बालू में ढकी और बालू से भरी थी । शाग महाशय ने बालू हटवाकर एक गुहा खाली करवाई । टार्च से देखने पर दीवारो के भित्ति-चित्रो को देखकर आखें चौंधिया गईं । रग से मालूम होता था, जैसे कल ही चित्रकारी समाप्त हुई है । बहुत खुशी हुई, पर दो दिन बाद देखा, कि सारे चित्र लुप्त हो चुके हैं । हवा और ताप के खतरे से बालू ने इन चित्रो को सुरक्षित रखा था । शताब्दियो बाद जब इन्हें अपने शत्रुओ से सामना करना पडा, तो उनके सामने वह टिक न सके । श्री शाग कह रहे थे, कि जब तक चित्रो की सुरक्षा का कोई उपाय नही निकलता, तब तक नीचे गुफाओ को खोलना महापाप होगा ।

तुङ-ह्वान गुहा सरक्षण सस्थान में दस कलाकार विद्वान काम करते हैं । मरम्मत के लिए दस स्थायी कमकर हैं । वैसे काम देखकर कमकरो की सख्या बढाई जा सकती है । पत्थरो की नर्मी के कारण गुहा की खुदाई में उतने परिश्रम की आवश्यकता नही पडी होगी, जितनी कि अजन्ता और एलोरा के कठिन-कठोर सगखारा के पत्थरो को काटने में । पर इस नर्मी के कारण ये पत्थर भगुर भी है । कई जगहो पर उनकी स्वाभाविक आकृति की रक्षा करते हुए सीमेंट की रक्षा दीवारें खडी की गई हैं । इक्कीस सितम्बर को हम सत्ताइस गुहाए देख सके । शाग महाशय स्वय हमारे पथप्रदर्शक थे । रात्रि के समय घटो हमारी ज्ञान-चर्चा चली, इससे उन्हें मालूम हो गया कि मध्येशिया के इतिहास से मेरा काफी परिचय है । मुझे भी मालूम हो गया कि शाग निरे कलाकार और विद्वान ही नही हैं, बल्कि एक उच्च आदर्शवादी पुरुष भी हैं ।

उनकी जीवनी सुनने के बाद मेरी श्रद्धा बहुत बढ गई । चीन में चित्र-कला में अधिकार प्राप्त करने के बाद उन्होने छ वर्ष पेरिस में कला सीखने में लगाए । वही एक चीनी कलाकार तरुणी से इनका परिचय प्रेम में परिवर्तित हो गया । दोनो स्वदेश लौटे । योरप जाने पर तुङ-ह्वान का पूरा मूल्य उन्हें मालूम हुआ । स्वदेश लौटने पर वह राजधानी चु किंग में पहुचे । अधिकाश भाग चीन का जापानियो के हाथ में था । चुंगकिंग में च्यागकाई-शेक के मत्रियो ने जब तुङ-ह्वान जाने का प्रस्ताव किया, तो शाग को मुह-मागा वर मिल गया । लेकिन एक चीनी सभ्रांत कुल की लाडली कन्या तथा पेरिस की मारखाई तरुणी में वहा जाने का उत्साह नहीं था । उसने

यही कहा, कि पहले जाकर देख आओ, तो मैं चलूंगी। शाग अपने तीन सहायकों के साथ स्थानीय अधिकारियों के लिए च्यागकाईशेक का फरमान लेकर तुङ-ह्वान के लिए रवाना हुए। लन्-चाउ से आगे प्रायः हजार किलोमीटर की यात्रा खच्चरों, घोड़ों या बैलगाड़ियों से करनी पड़ी। रास्ते में ही आटे-चावल का भाव मालूम हो गया। खाद्य-सामग्री वैसे भी यहां सुलभ नहीं थी, पर यह तो द्वितीय महायुद्ध का जमाना था। जैसे तैसे कई हफ्तों बाद वह तुङ-ह्वान गुफाओं में पहुंचे। तुङ-ह्वान कस्बे के अधिकारियों ने चागकाईशेक के फरमान को जितना गौर से पढ़ा, उतना उसके अनुसार काम करने के लिए उत्साह नहीं दिखाया। तुङ-ह्वान कस्बा सोलह-अठारह मील दूर था, यदि वहां रहना होता, तो भूख मरने की आवश्यकता न होती, पर उन्हें तो जंगल में डेरा डालना था। शाग महाशय कह रहे थे कि उस समय की भूख और कठिनाइयों को कहना संभव नहीं है। अधिकारियों से कोई सहायता नहीं मिली। सौभाग्य से गुहा के पास तथा गुहा से सम्बद्ध चार लामा रहते थे। लामा वैसे तिब्बती भिक्षुओं को कहते हैं। मंगोलों के वक्त में हो सकता है यहां तिब्बती लामा भी रहते हों, पर अब तो शताब्दियों से चीनी ही लामा यहां रहते हैं। वह जाति और भाषा दोनों से चीनी हैं, पर पूजा-पाठ तिब्बती पुस्तकों के आधार पर करते हैं। पोशाक भी उनकी तिब्बती लामाओं जैसी है। च्यागकाईशेक जापानियों के साथ कहीं भी डटकर मुकाबला करने में सफल न हुआ। १९४२ में अब अमेरिका की सहायता उसके पास पहुंच रही थी, सेना भी उसने बहुत भर्ती की थी, पर उसे वह जापानियों से लड़ने की अपेक्षा चीनी कम्यूनिस्टों को घिराव में रखने के लिए इस्तेमाल कर रहा था। तुङ-ह्वान कसबे में भी उसकी सेना मौजूद थी। सेना की उच्छृंखलता का तो इसी से प्रमाण मिलेगा, कि बेचारे साग भिक्षु को बेकसूर उन्होंने मार डाला।

शाग महाशय और उनके साथियों का जीवन दुस्सह हो जाता, यदि यहां के लामाओं ने उनकी सहायता न की होती। वे बतला रहे थे कि उनके पास खाने-पीने का सामान बहुत भरा पड़ा था। हर पर्व-त्यौहार के समय यहां मेला सा लग जाता था। नर-नारी पूजा और मनौती के लिए हजारों की संख्या में पहुंचते थे। खाद्य-सामग्री ही नहीं मुर्गी मुर्ग, रुपयों और पैसों का चढ़ावा चढ़ाते थे। वह इतना होता था, कि तीन चार लामा दो तीन साल भी खाकर समाप्त नहीं कर सकते थे। हमारी स्थिति को जानते ही भोजन की ओर से उन्होंने हमें कुछ निश्चिन्त सा कर दिया। लामा अब दो ही रह गए हैं। उनमें से एक गृहस्थ बनकर गुहा की मरम्मत के काम में लगा हुआ है। पार्श्ववर्ती चीनियों में धर्म के प्रति अब उतना उत्साह नहीं रह गया है। पहले बीमार लोग लामा के मन्त्र और गुहा मन्दिरों की दया से रोगमुक्त होना चाहते थे, अब वह जगह जगह स्थापित अस्पतालों में जाते हैं। बेकारी, गरीबी से त्राण पाने के लिए अब उन्हें देवता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि चीन में मनुष्य काम को नहीं ढूंढ रहा है बल्कि काम मनुष्य को ढूंढ रहा है। सोलह वर्ष बाद आज तुन-ह्वान के लामाओं की वही स्थिति हुई होती, जैसी कि १९४२ में शाग महाशय की हुई थी, क्योंकि धनागम का स्रोत बन्द हो चुका है। सरकार बड़े लामा को पचास युवान (सौ रुपया) मासिक तथा गर्मी जाड़े के कपड़े देती है, छोटे लामा को अपने मठ के खेतों से जरूरत से अधिक आमदनी हो जाती है। यहां की नाखें (नाशपातियां) देखने में बेशर्म मालूम होती हैं, क्योंकि पेड़ों में पत्तों से अधिक फल लगे हुये थे। लेकिन खाने पर मालूम हुआ, कि कश्मीर की नाखें भी इनके सामने कुछ नहीं हैं। इस समय तुङ्-ह्वान में यह सबसे सरस और मधुर फल था।

कुछ मासों बाद इधर की सेना का जनरल शाग महाशय का अपने प्रदेश का आदमी निकल आया। उससे परिचय हो जाने के बाद उनकी आर्थिक कठिनाइयां ही नहीं दूर हो गई बल्कि, गुहा के प्रांगण से बालू हटाने के लिए उसने सैकड़ों सिपाही भेज दिए। शाग बड़े उत्साह से अपने काम में लग गए। वह मुख्यतः चित्र और मूर्ति के पंडित हैं। अब एक सुशिक्षित सुसंस्कृत विद्वान होने के नाते उन्होंने इतिहास को भी पढ़ने का गंभीर प्रयत्न किया। अपने तीन साथियों के साथ सात मास की कठिन तपस्या का अन्त हो चुका था। उनके आने के कुछ ही समय पहले ताउ-ह्वाङ् साधु को चीनी सैनिकों ने मार डाला था। यह वही ताउ भिक्षु था, जिसको एक गुहा की मरम्मत करते समय एक छोटी सी कोठरी का पता लगा जो तालपत्र और कागज के सैकड़ों ग्रंथों तथा बहुत से अनमोल चित्रपटों से भरी हुई थी। स्टाइन को पहले खबर मिली और वह तुङ्-ह्वान पहुंच कर बहुत सी चीजों को हथियाने में सफल हुआ, फिर फ्रेंच विद्वान पेलियो पहुंचे और उन्होंने भी बहती गंगा में हाथ धोया। कुछ सुविधा हो जाने पर भी शाग महाशय अपने बनाए चित्रों को बेचकर अपना खर्च चला सकते थे। सैनिकों ने जहां बालू हटाने का काम किया, वहां वृक्षों को लगाने में भी हाथ बंटाया। कुछ वर्षों तक पत्नी यहां नहीं आई। च्याग के समय की सारी कठिनाइयां दूर हो गईं, जब १९४९ में कम्युनिस्टों का शासन स्थापित हुआ। वह शाङ् महाशय की हर तरह से सहायता करने के लिए तैयार थे। तुङ्-ह्वान की अनमोल राशि का मूल्य उन्हें मालूम था। अंत में पत्नी आई। यद्यपि वह भी चित्रकला की पंडिता थी, पर तुङ्-ह्वान में केवल कलाकार नहीं रह सकता। इस निर्जन बयाबान में न कहीं सिनेमा था, न क्लब, न संगीत और नृत्य का सुभीता। पत्नी पेरिस की बन चुकी थी। उन्होंने अन्त में प्रस्ताव किया, कि मुझ में और तुङ्-ह्वान में से तुम्हें एक को पसन्द करना होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शाङ् किसी मूल्य पर भी तुङ्-ह्वान को छोड़ने को तैयार नहीं थे। पत्नी अपनी एक लड़की और एक बेटे को छोड़कर चली गई। पुत्री उस वक्त किसी विद्यालय में पढ़ रही थी, जहां से उसे निकलना पड़ा। चित्रकार पिता की पुत्री थी। उसकी चित्र की ओर स्वाभाविक रुचि थी। एक अमेरिकन महिला ने उन्हें देखकर लड़की को विशेष शिक्षा के लिए अमेरिका ले जाने की इच्छा प्रकट की। १९४७ से १९५० तक वह अमेरिका में रही फिर स्वदेश लौटी। आजकल पेकिंग में वह किसी विशेष पद पर काम कर रही है।



'सुसज्जित घोड़े' गुफा संख्या ३२१ (६१८ से ९०७ ईसवी)

शाङ्-महाशय कलाकार और विद्वान है, पर साथ ही चीनी राष्ट्र और संस्कृति के अनन्य भक्त भी हैं। इस नाते कम्युनिस्ट न होने पर भी उनके हृदय में कार्य भावना देखकर कम्युनिस्टों के प्रति श्रद्धा उनके मन में बढ़ती गई। तुङ्-ह्वान की सेवा के लिए उन्होंने कितना त्याग किया ? उनकी वर्तमान पत्नी भी चित्रकला और मूर्तिकला में निष्णात हैं और साथ ही अपने पति की तरह ही तुङ्-ह्वान में भक्ति रखती है। चीन में हर जगह आगन्तुक से कोई सलाह मागने का रिवाज है। मैंने कहा—यहा एक हजार वर्ष के कितने ही स्त्री-पुरुषों के चित्र और कुछ मूर्तिया भी हैं। उनसे वेशभूषा के साथ नमूने तैयार किए जाए। मुझे क्या मालूम था कि शाग-पत्नी दर्जनों ऐसी मूर्तिया तैयार कर चुकी है। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी कृतियों को दिखलाया।

शाङ् महाशय का प्रतिदिन घंटों साथ रहा। और उन्होंने तुङ्-ह्वान के समझाने में बड़ी मदद की। गुहाओं में थाङ् काल (सातवी शताब्दी) की विशेष महत्व रखती है। १०३ नम्बर की गुहा में बुद्ध की प्रतिमा सुन्दर है और भित्ति चित्र में विमलकीर्ति का प्रसन्नमुख अत्यन्त दर्शनीय है। आठवी नौवी शताब्दी वाली ११२ नम्बर की गुफा के भित्ति-चित्र भी अद्भुत है। ९८ नम्बर की गुहा पचवश कालीन (हमारे यहा के गुप्तकाल की) है। इसमें भीतरी दरवाजे के बायी ओर राजा और दरबारियों का चित्र है। ये चीन शासक तुर्क थे, जो धीरे धीरे चीनी बन गए। ६१वी गुफा सुङ् राजवश के सामन्त साङलो ने बनवाई थी। इसमें उसके सारे परिवार का चित्र अंकित है। गुहाए बनाने वाले सभी धन में एक समान नही थे। जो अधिक धन-सम्पन्न था, वह बड़े कुशल कलाकारों को नियुक्त करता था। पर थाङ् काल हमारे यहा के गुप्तकाल के समान था, जो इससे दो सौ वर्ष बाद स्थापित हुआ था। राज्यों और बड़े सामन्तों की गुहाए अधिक बड़ी हैं। सातवी सदी (थाङ् काल) में १६वी गुफा बनाई गई थी। प्रवेशद्वार के भीतर दाहिनी ओर की दीवार में वह छोटी (१७वी) गुहा थी, जिसमें ग्यारहवी शताब्दी में पुस्तकों और चित्रों को छिपा कर ऐसे बन्द कर दिया गया था कि बाहर से निरी दीवार दिखाई पड़ती थी। यह कोठरी प्राय आठ फुट लम्बी छ फुट चौड़ी और आठ फुट ऊची थी। उसकी दीवारों में थाङ्कालीन सुन्दर रेखा-चित्र अब भी दिखाई देते थे। १६ नम्बर गुहा विशाल है। कहीं-कही पीछे के लोगों ने भी पुराने चित्रों को धूमिल देखकर उन्हें पुन: अंकित करने या नए चित्र बनवाने की कोशिश की है। सोलहवी गुहा में मंगोलकाल में भित्ति के ऊपर सहस्र भुजायुक्त अवलोकितेश्वर का चित्र इसी तरह बनाया गया।

सवेरे के दर्शनकृत्य को समाप्त कर हम लौटे, फिर यहा के छोटे से म्यूजियम को देखा। अनेक मूर्तियां, शिलालेख और कितनी ही पुरानी पुस्तकें दो कमरों में सजाकर रखी थी। यहीं पर वृद्ध काले पत्थर पर छठी शताब्दी के संस्कृत शिलालेख को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह तुङ्-ह्वान नगर से छ किलोमीटर दूर मिला था। शिला खडित है। अक्षर सुन्दर पर सूक्ष्म हैं। साथ में चीनी अक्षरों में शायद वही बात लिखी हुई है। जल्दी जल्दी में लेख का पढ़ना सम्भव नहीं था। शाङ् महाशय ने उसे कागज पर उतरवा कर दे दिया।

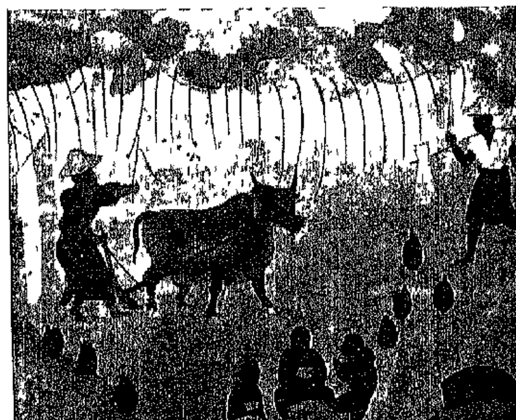
अपराह्न में फिर हम गुहा देखने में लगे। उत्तरवेइ (४२८ ईसवी) की गुफाए और मूर्तिचित्र सबसे पुराने है। थाङ्कालीन कला का सौन्दर्य उनमें नहीं है, पर वह आदिम कृति है और उनकी अकृत्रिमता तथा ताजगी स्वय लुभावनी है। दीवारों पर चित्रांकित करने से पहले पुआल मिली मिट्टी का प्लास्टर किया जाता था। यद्यपि यह सीमेंट या चूने की तरह मजबूत नहीं था लेकिन यहा के लिए वह काफी दृढ़ था। १५वी गुहा मंगोल काल की है, जिसमें छ भुजाओं वाली प्रज्ञापारमिता चित्रित है। ९६वी गुहा थाङ् काल की है। यह बहुत विशाल है। इसमें स्थापित तैतीस मीटर ऊची बुद्ध प्रतिमा तुङ्-ह्वान की सबसे बड़ी मूर्ति है। बुद्ध कुर्सी में बैठे हुए है। ९७वी गुहा पच-वशकालीन अर्थात् पुरातनतम है, इसके भित्ति-चित्र सुन्दर हैं। गुहा छोटी है।

थाङ्कालीन गुहाए अधिक विशाल है और कला की दृष्टि से सुन्दर भी। इस काल की १४८वी गुहा में पन्द्रह मीटर लम्बी बुद्ध की निर्वाण प्रतिमा है। इसमें भित्ति-चित्र के अतिरिक्त सैकड़ों भिक्षुओं और दूसरों की मूर्तियां भी हैं। सिर और हाथ टूटे बतला रहे थे, कि मुसलमानों का यहा प्रहार हुआ था। खडित अगों को फिर से बनाने की कोशिश की गई है। पर उनमें वह सफाई नहीं आ सकी। दक्षिण और अंतिम गुहा १३१ नम्बर की है। इस गुहा में कितने ही सामन्तों और मन्त्रियों की मूर्तिया है।

उस दिन शाम को हम लामा मठ में गए। लामा तनजिनसमडुब की आयु सत्तासी वर्ष की है। जब वह बारह वर्ष के थे, तो यहा आकर भिक्षु बने थे। तुङ्-ह्वान में भिक्षुओं की सख्या कभी अधिक नहीं रही। मैंने पूछा, आपके बाद कौन इस स्थान को सभालेगा। उन्होंने दूसरे भिक्षु का नाम लिया, पर वह भी साठ वर्ष के हो चुके थे। अब भी प्रधान भिक्षु को आशा है, कि कोई तरुण शिष्य होने के लिए आएगा, पर चीन के तरुणों की वर्तमान मनोवृत्ति उसके अनुकूल नहीं है।

बाइस सितम्बर को आसमान में बादल दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन वह लोगों में किसी तरह की आशा का सचार नहीं कर सकते थे। लोग समझते हैं कि ये दिखावे के बादल है। इस सारे साल यहा वर्षा की बूदें नहीं पड़ी।

नाश्ते के बाद हम फिर गुहा की ओर चले। चीन में चाय का कोई विशेष स्थान खानपान के रूप में नहीं है। वह तो पीने के गरम पानी का काम देती है। हम २८ नम्बर की गुहा में पहुचे। भारत और तिब्बत में कभी भी बुद्ध की मूर्ति मूछों सहित नहीं दिखाई जाती पर यह मूर्ति मुछन्दर थी। सचालक ने बताया कि यहा की मूर्ति को स्टाइन उठा ले गया। इस प्रदेश को चीनी भाषा में ली-युवान् कहते हैं। इसका अर्थ है नाशपातियों (नाखों) का उद्यान। तुङ-ह्वान की नाशपातिया इसका समर्थन कर रही थी। तिब्बती भाषा में इसका नाम ली-युल है। जिसका अर्थ



गुफा सख्या २२ में 'वर्षा' में काम करते हुए किसान, (६१८ से ९०७)



तुङ्-ह्वाग मे 'गाधिमत्व'

कासे (धातु) का देश। ली शब्द का दोनो भाषाओ मे भिन्न भिन्न अर्थ है। नवी शताब्दी में कुछ समय के लिए सारे सिङ-क्याङ पर तिब्बत का शासन था। यह हो नहीं सकता था कि तिब्बती बौद्ध शासक तुङ-ह्वान की पवित्र भूमि की उपेक्षा करते। उनके समय में दस से अधिक गुहाए बनाई गईं। लेकाक, रिझवेडल, स्टाइन, पेलियो आदि ने तुङ-ह्वान और मध्य-एशिया की सामग्री पर जो पुस्तकें लिखी, शाङ महाशय ने बड़े प्रयत्न से उनका सग्रह किया है। वस्तुतः तुङ-ह्वान महीनो देखने और पढने का स्थान है तो भी दो-ढाई दिन में हमने उसके दर्शन का सुख प्राप्त किया।

२२ तारीख को चार बजे सचालक महाशय हमें तुङ ह्वान नगर में ले गए। जो यहा से १८ किलोमीटर है। पुराने नगर का ध्वसावशेष मुख्य सड़क के किनारे पहले ही पड़ता है। रास्ते की भूमि मरुभूमि जैसी विशाल थी, यद्यपि वह बालू की भूमि नही थी। इसमें जहां-तहा स्तूपाकार मिट्टी के छोटे-बड़े चबूतरे दिखलाई पड़ते थे। सचालक महाशय ने बताया, कि ये सभी प्राचीनकाल की कबरें है। इस प्रदेश का इतिहास अतीत के गर्भ में विलीन है। चीनी इतिहासकार जब तब इसका कुछ उल्लेख जरूर करते है, पर उनसे अधकार दूर नही होता। इन कब्रो में कोई ईसवी सन् के आरभ की भी हो सकती हैं। वह वे लोग थे, जो मगोलायित जाति के नहीं थे। कबें उस समय के रहन-सहन के बारे में बहुत-सी बातें बतला सकती है, क्योकि शक और पुराने घुमन्तू सरदार जीवन की बहुत सी सामग्री के साथ दफनाए जाते थे।

निर्जल भूमि में जल पहुचाकर आबाद करने का प्रयत्न दीख पड रहा था। खेतो में मिसरी कपास खड़ी थी। मुझे तो ख्याल आता था, यहा तरबूजो की भी खेती होनी चाहिए। वर्तमान तुङ-ह्वान नगर की आबादी दस हजार है। कितने ही घर गिरे पडे है, जिनसे मालूम होता है, कि नगर पहले और बड़ा रहा होगा। अब तो जरूर बढ़ेगा। रेल यहा से दो ढाई सौ किलोमीटर दूर से जा रही है, पर चीन के एक बहुत समृद्ध तेल क्षेत्र चदम तक के लिए, पास से रेल की नापी हो चुकी है, और जल्दी ही रेल बन जाएगी। फिर तुङ-ह्वान में कपड़े के कारखाने बनके रहेंगे। यहा की आबादी मुख्यत चीनियो की है, पर कुछ उइगुर (तुर्क) परिवार भी रहते है। दोनो के चेहरे-मुहरे एक से होते है, इससे कौन चीनी है और कौन उइगुर यह बतलाना मुश्किल है, पर, हमारे एक चीनी मेजबान कह रहे थे, कि हम बतला सकते हैं—उइगुरो का रग ज्यादा सफेद होता है। वस्तुत इधर के उइगुर शको और तुर्कों की सम्मिलित सन्तान है। शक तो पीले बालो वाले अत्यन्त गोरे होते थे। इसलिए उइगुर का अधिक गोरा होना स्वाभाविक है। कस्बे की नई सड़क दुकानो से भरी थी, जिनमें हर तरह की सामग्री सजाकर रखी हुई थी। यह कहने की आवश्यकता नही, कि इन दुकानो में से कोई वैयक्तिक नही थी। पेकिंग से बहुत दूर यहा भी किसी नर-नारी या बच्चे को मैंने नगे पैर नही देखा, आर्थिक तल कितना ऊंचा उठा है, इसकी जानकारी पहले से ही मैं चीन में किया करता था। नगर के अतिथिगृह में हम थोडी देर के लिए ठहरे। उसी के आगन में दो सौ तरुणिया जमा थी। सब कम्यून से सम्बद्ध थी और किसी सभा-सम्मेलन में आई थी। आगन के एक छोर पर हाई स्कूलो के लड़के-लड़किया लोह-यज्ञ म लगे हुए थे। १९५८ का उत्तरार्ध चीन के लिए लोह-यज्ञ का समय था। सन् १९५७ के अन्त तक, ५३ लाख टन फौलाद के उत्पादन को एक करोड़ सात लाख टन फौलाद में परिणत करना था। तुङ-ह्वान कैसे चुप रह सकता था। इस विशाल प्रयत्न ने १९५८ के अत तक एक करोड़ सात लाख की जगह एक करोड़ कम लाख टन फौलाद बनाकर दिखा दिया। लोहे के पत्थर (धुन) की खान तुङ्-ह्वान गुहा से थोडी ही दूर पर थी। लौटते वक्त हमने देखा कि रबर टायर वाली गद्दी, घोडो और खच्चरो की धुनो से भरी हुई गाड़िया सैकडो की तादाद में गुहा के सामने से निकलकर जा रही थी। एक चूल्हे को लड़के-लड़किया ईंटो से तैयार कर रहे थे। दूसरे तारकोल के बड़े पीपो के भीतर ईंटे लगाकर चूल्हा बना रहे थे।

हमारी प्यास चाय से बुझ नही सकती थी। इसलिए एक बड़ा तरबूज लाया गया। यद्यपि यह हामी का नही था पर बहुत मीठा था। हमें किताब की दुकान देखनी थी। इसी महीने से चीन में रोमन लिपि में पढ़ाई आरम्भ हुई थी। अभी पहली ही कक्षा में उसे लिया गया था। मैंने पेकिंग में प्राइमर खरीदने की कोशिश की, पर जवाब मिला, जब तक स्कूलो को पुस्तकें नही दे दी जाएगी, तब तक बाहरी आदमी को नही दी जा सकती। मुझे वह यहा आसानी से मिल गई।

२३ सितम्बर को हमने भोजन के बाद साढ़े-सात बजे प्रस्थान किया। दो ही दिन में तुङ्-ह्वान घर-सा परिचित हो गया था। उसे छोड़ने में दुःख हो रहा था। जीप साठ किलोमीटर प्रति घटा से दौड़ रही थी सवा-चार घटे बाद ओमन नामक नए कस्बे में भोजन और विश्राम के लिए ठहर गए। यहा एक मजिली विशाल अतिथिशाला थी। पाच बजे हम च्यूछ्वाङ् के होटल में पहुचे। शहर देख लिया। आबादी यहा की पचास हजार है। रात के रहने का प्रबन्ध हवाई अड्डे के होटल म था, इसलिए हम वहा चले गए।

मेरे जीवन-संस्मरण

सन्तराम

सन् १९२४ में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती गंगादेवी का देहान्त हो गया। वह पीछे दो बच्चे छोड़ गई, बड़ा लड़का देवव्रत और छोटी लड़की गार्गी। पत्नी के इस अनन्त वियोग से मुझे दुःख तो बहुत हुआ, परन्तु बच्चों के प्रेम में मैं उसे भूल-सा गया। घर वाले और दूसरे मित्र मुझे पुनर्विवाह करने को कहते थे। परन्तु एक तो मुझे अपनी स्वर्गीया पत्नी की स्मृति पुनर्विवाह से रोकती थी और दूसरे मैं सोचता था कि मुझे तो पत्नी मिल जाएगी, परन्तु मेरे बच्चों को मां नहीं मिल सकती। इसलिए जब भी कोई हितैषी मेरे सामने पुनर्विवाह की बात करता था तो प्रसन्नता के बजाए मुझे दुःख होने लगता था। अनेक बार तो आंखों से आंसू भी टपक पड़ते थे। मैंने सोचा था कि लड़का बड़ा होकर काम पर लग जाएगा और लड़की का मैं विवाह कर दूंगा। इस प्रकार गृहस्थी के बोझ से मुक्त होकर मैं अपना शेष जीवन किसी लोक सेवा के काम में लगा सकूंगा। सारांश यह कि मैंने पुनर्विवाह न करने का निश्चय कर लिया। इस बीच में विवाह के कई प्रलोभन भी आए परन्तु मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा।

एक दिन की बात है, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री रामेश्वर मेरे यहां आए। उन्होंने फलित ज्योतिष और सामुद्रिक विद्या का कुछ अध्ययन किया था। मेरे हाथ की रेखा देख कर वह बोले कि आप के दो विवाह हैं। मैंने कहा, आप की बात झूठ है। मैंने पुनर्विवाह न करने का निश्चय कर रखा है। वह बोले मैं नहीं जानता, परन्तु आपकी हस्तरेखा के अनुसार आप के दो ही विवाह हैं। सच-झूठ की राम जाने। बात आई गई। मैं उनके भविष्य कथन को भी भूल गया। परन्तु विधि की विडम्बना देखिए। मेरा लड़का देवव्रत लाहौर के दयानन्द हाई स्कूल की दसवीं कक्षा में पढ़ता था। मई सन् १९२८ में उसे एकाएक डबल न्यूमोनिया हो गया। वह बहुत चुपचाप रहने वाला लड़का था और अपनी कक्षा में सदा प्रथम या द्वितीय रहा करता था। रोग में उसे चित्तविभ्रम हो गया। एक दिन वह अपनी बहन को सम्बोधन करके बोला—"गार्गी, वह देखो तुम्हारी मां खड़ी मुझे बुला रही है।" फिर वह मुझ से बोला—"पिताजी, मुझे छाती से लगा लीजिए।" उस दिन से पूर्व उसने कभी मुझ से ऐसा अनुरोध नहीं किया था। मैं समझा कि यह चित्त विभ्रम के कारण प्रलाप है। मैंने उसकी बात को अनसुना कर दिया। परन्तु उसने अपनी उसी प्रार्थना को फिर से दो-तीन बार दुहराया। तब मैंने उसे छाती से लगा कर प्यार किया। उसके कोई दो घण्टे उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई। मैं अभागा नहीं समझ सका था कि उसकी आत्मा मुझ से सदा के लिए विदा ले रही है। मैंने अपने माता, पिता, भाई और पत्नी आदि की मृत्यु देखी थी। परन्तु सच जानिए, प्रिय पुत्र के इस अनन्त वियोग से जो दुःख मुझे हुआ, वह अवर्णनीय था। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो मेरा शरीर बल्कि मेरी आत्मा तक सब फटे जा रहे हैं। जी चाहता था कि मेरी मृत्यु हो जाए तो इस असह्य वेदना से छूट जाऊं। भावी जीवन का जो कार्यक्रम मैंने सोच रखा था, वह सब उलट-पुलट गया। मेरे मन कुछ और था, विधना के कुछ और। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं अब शेष आयु के लिए नाकारा हो गया हूं। मेरी ऐसी दशा देख मित्रों को बहुत चिन्ता हुई। वे मेरे दुःख को दूर करने के उपाय सोचने लगे।

जात-पात तोड़क मण्डल के महोपदेशक और मेरे परम मित्र श्री भूमानन्द जी मण्डल के कार्य से कराची गए। वहां उनकी एक महाराष्ट्र परिवार से भेंट हुई। उस परिवार की बड़ी लड़की बाल विधवा थी। परिवार सुधारक था। उन्होंने श्री भूमानन्द जी से उस लड़की के लिए कोई उपयुक्त वर ढूंढ देने के लिए कहा। श्री भूमानन्द जी ने मेरी अनुमति लिए बिना ही उनके सामने मेरा नाम प्रस्तुत कर दिया उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। लाहौर लौट कर भूमानन्द जी ने मुझ से यह बात कही, तो मैं उनसे नाराज हो गया। मैंने कहा यह आपने अच्छा नहीं किया। मेरे मन में कोई उल्लास नहीं है। दुःख से छुटकारा पाने के लिए मैं तो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हूं और आप मुझे फिर से विवाह के झंझट में जकड़ना चाहते हैं। मेरी दशा पर दया कीजिए। वह बोले—यह आपके दुःख की ही दवा हो रही है। यह समाज सुधार का व्यावहारिक कदम है। इससे एक तो जात-पात टूटती है, दूसरे प्रान्त-भेद दूर होता है और तीसरे विधवा विवाह को प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही इस विवाह से आपका शोक भी धीरे-धीरे दूर हो जाएगा और आप फिर से जीवन में काम करने योग्य हो जाएंगे।

उन्होंने इस प्रकार की बातें कह कर मुझे समझाने का बहुत यत्न किया। परन्तु मैं उनके साथ सहमत न हो सका। इधर वह भी हताश हो जाने वाले नहीं थे। वे मुझसे बिना पूछे ही अपने आप कराची से पत्र-व्यवहार करते रहे। कराची वाले जब विवाह जल्दी करने पर बल देते, तो श्री भूमानन्द जी मेरे सम्बन्ध में कोई-न-कोई बहाना कर उसे स्थगित करा देते थे। मेरे बार-बार स्पष्ट इन्कार कर देने पर भी भूमानन्द जी ने कभी उनको मेरे इन्कार की सूचना नहीं दी। वे मामले को लटकाते ही चले गए। इसी प्रकार कोई दो वर्ष बीत गए। वह महाराष्ट्र परिवार कराची छोड़ कर अहमदाबाद के समीप नारोडा नामक स्थान में चला गया।

सन् १९२९ का दिसम्बर मास था। एक दिन मुझे एक लिफाफा मिला। खोलने पर पढ़ा, तो वह नारोडा से उसी कराची वाली देवी का लिखा हुआ था, जिसके साथ विवाह करने के लिए मुझे भूमानन्द इतने दिन से कह रहे थे। उस पत्र में सुन्दर बाई प्रधान ने लिखा था कि आपके साथ मेरे विवाह की बात इतने दिनों से चल रही है। पर आप कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे रहे। तंग आकर मेरे माता-पिता किसी दूसरी जगह मेरा विवाह करने की सोचने लगे हैं। परन्तु लड़ाई के मैदान से भागने वाला

सिपाही और किसी के साथ विवाह का निश्चय कर उससे मुड़ने वाली स्त्री दोनों निन्दनीय होते हैं। मैंने तो जब से आपके साथ विवाह की बात चली है तब से ही मन में आपको ' '। कब आप आएंगे? स्वयं आए तो अनुगृहीत होऊंगी।

मुझे जीवन में पहली बार ही ऐसा पत्र मिला था। मैं विचलित सा हो गया। मन में सोचने लगा कि जो देवी मेरे प्रति ऐसा प्रेम भाव प्रदर्शित कर रही है, एक बार उसके दर्शन अवश्य करने चाहिए। बस मैं और श्री भूमानन्द जी बिना किसी को बताए, चुपचाप लाहौर से अहमदाबाद के लिए चल दिए। नारोडा पहुंच कर दूसरे दिन हम कुछ चीजें खरीदने और नगर देखने के उद्देश्य से अहमदाबाद आए। अब मेरा मन फिर विवाह के विचार से घबराने लगा। मैंने भूमानन्द जी से कहा कि मेरा मन नहीं मानता। मैं विवाह नहीं करूंगा। मैं चुपके से लाहौर खिसक जाता हूं, आप पीछे से सामान लेकर आ जाइए। वह बोले—अच्छा, जब आपका मन ही नहीं मानता तो फिर क्या करना है। मेरे मन में अन्तर-द्वन्द्व चल रहा था। मैं एक नाई की दुकान पर हजामत बनवाने बैठा। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे इस समय कुछ नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं और क्या न करूं। मैंने कुछ और निश्चय कर रखा था। मैं दो वर्ष तक इस काम को टालता रहा भी, परन्तु वह टल नहीं रहा। इसी क्षण एकदम मेरे मन में बिजली की भांति यह विचार कौंधा कि यह जो कुछ हो रहा है इसे होने ही देना चाहिए। विधि का विधान ऐसा ही जान पड़ता है। मैं यहां से चुपके से भाग जाऊंगा, तो यह उस देवी का बड़ा भारी अपमान होगा। बस १४ दिसम्बर, १९२९ को नारोडा में हम दोनों ने विवाह कर लिया। विवाह के उपरान्त लाहौर आकर मैंने अपने कुछ चुने हुए मित्रों को प्रीति भोजन के लिए बुलाया। परन्तु मेरी स्त्री के अनुरोध से नियम यह रखा गया कि सब लोग सपत्नीक आएं। पति और पत्नी को दोनों को एक ही थाली में भोजन परोसा गया। पहले तो लाज के कारण सब लोग घबराए क्योंकि उन दिनों पंजाब के लिए यह एक अनोखी बात थी। इतने में मेरी नव-विवाहिता महाराष्ट्र स्त्री भी झटपट आकर मेरी थाली में खाने बैठ गई। मैं भौंचक्का-सा रह गया। मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा—"सतन संग बैठ बैठ लोक लाज खोई।" इस पर मेरी स्त्री ने झट कहा—"अब तो बात फैल गई, जानत सब कोई।" इस फबते हुए आशु उत्तर को सुनकर सभी पाहुने खिलखिला कर हँस पड़े और सहभोज प्रारम्भ हो गया।

डाक्टर भीमराव अम्बेडकर से मेरा पत्र व्यवहार द्वारा कुछ वर्ष से परिचय था। प्रचलित वर्ण व्यवस्था के अनुसार हम दोनों शूद्र थे। मैं सत शूद्र था क्योंकि जात-पात तोड़कर अध्यक्ष होने के नाते बहुत से लोग मेरा बायकाट करते थे तो वह असत शूद्र थे। जात-पात से होने वाले सामाजिक तिरस्कार का कटु अनुभव हम दोनों को था। सन् १९३५ में उन्होंने घोषणा की कि यद्यपि मैं हिन्दू उत्पन्न हुआ हूं, तो भी मैं मरूंगा हिन्दू नहीं। अछूतों के इस महान नेता की इस विकट घोषणा से सारा समाज कांप उठा। मैंने १२ दिसम्बर १९३५ को जात-पात तोड़क मण्डल के वार्षिक सम्मेलन का प्रधान पद स्वीकार करने के लिए डाक्टर साहब को पत्र लिखा। डाक्टर साहब ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उनकी स्वीकृति का पता जब लाहौर के गण्यमान्य हिन्दुओं को लगा तो उन्होंने हमारा विरोध किया और धमकी देते हुए कहा कि यदि आप डाक्टर साहब को बुलाएंगे तो हम रेलवे स्टेशन पर काली झण्डियों से प्रदर्शन करेंगे। हिन्दू नेता डाक्टर अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन के निश्चय को युक्ति और तर्क द्वारा बदलने में असफल रहे थे। मैं उनको मण्डल के सम्मेलन का प्रधान बनाकर उनके हृदय को परिवर्तित करना चाहता था। इन काली झंडियों के प्रदर्शन से डाक्टर अम्बेडकर के और भी चिढ़ जाने का डर था। इसलिए मैंने यह सम्मेलन न करना ही उचित समझा। डाक्टर अम्बेडकर ने इस सम्मेलन के लिए अपना जो अभिभाषण लिखा था, वह 'दि एनाहिलेशन ऑफ कास्ट' नाम से छप तो गया, परन्तु सम्मेलन में पढ़ा न जा सका। वह सचमुच एक बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण निबन्ध था। जाति-भेद पर उससे अच्छा भाषण शायद ही पहले कभी लिखा गया हो।

इस घटना के कुछ वर्ष बाद डाक्टर साहब एक सरकारी कमीशन के साथ उसके एक सदस्य के रूप में लाहौर आए। वह उन दिनों सवर्ण हिन्दुओं से इतने तंग आए हुए थे कि वे उनसे मिलना तक पसन्द न करते थे। इसलिए वह गवर्नर की कोठी में ठहरे। वहां कोई अनुमति लिए बगैर जा नहीं सकता था। हमने उन्हें मण्डल की ओर से एक चाय पार्टी देने का निश्चय किया। पहले तो डाक्टर अम्बेडकर माने नहीं, क्योंकि उन्हें डर था कि वहां उन्हें सवर्ण हिन्दू व्यर्थ ही तंग करेंगे। परन्तु बाद को जब उन्हें बताया गया कि यह जल पान जात-पात तोड़क मण्डल की ओर से होगा और उसमें कोई जीर्णमताभिमानी हिन्दू नहीं बुलाया जाएगा, तो वह मान गए। डाक्टर गोकुलचन्द नारंग हमारे मण्डल के प्रेमी थे। जब हम उनको निमन्त्रण देने गए तो वे बोले—"मण्डल को जल-पान के खर्च का बोझ उठाने की आवश्यकता नहीं। आप मेरे ही मकान पर जल पान रख दीजिए।"

मैंने कहा—"हम डाक्टर अम्बेडकर के हृदय को प्रेम से जीतना चाहते हैं। आप के यहां कई एक ऐसे लोगों के आ जाने का डर है जो अपनी ऊटपटांग और कटु आलोचना से उन्हें और भी चिढ़ा देंगे।"

डाक्टर गोकुलचन्द ने कहा—"इस बात की जिम्मेवारी मैं लेता हूं। मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति को नहीं बुलाऊंगा जो इस तरह की हरकत कर सकता हो।"

फलतः डाक्टर गोकुल चन्द की कोठी पर चाय पार्टी दी गई। उसमें मण्डल के सदस्य के अतिरिक्त लाहौर के कितने गण्यमान्य नागरिक भी आए। बात-चीत में नानकचन्द पण्डित ने डाक्टर अम्बेडकर से पूछा—"क्या कोई ऐसा उपाय भी है जिससे आप अपने धर्म परिवर्तन के निश्चय को बदल दें?"

अम्बेडकर साहब ने उत्तर दिया—"हां है। यदि हिन्दू समाज जात-पात तोड़क मण्डल के कार्यक्रम को अपना ले तो फिर अछूतों को धर्मान्तर की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। परन्तु मुझे विश्वास है कि यह बात १०० वर्ष में भी न होगी।" इस पर पंजाब के आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान राय बहादुर बद्रीदास जी बोले—"डाक्टर साहब, १०० में से एक शून्य उड़ा दीजिए। दस वर्ष में सब छूत-छात, और जात-पात मिट जाएगी।"

एक सज्जन ने कहा—"दक्षिण भारत में चाहे कितनी ही छूत-छात हो। परन्तु पंजाब में ऐसी कोई छूत-छात नहीं है—"

इस पर डाक्टर साहब ने कहा—"बहुत अच्छा आप मुझ और मेरे साथ कुछ भंगी चमारों को किसी सनातन धर्मी मन्दिर में ले चलिए। मैं मान जाऊंगा।"

इस पर वे सज्जन चुप रह गए।

पार्टी में आकर मैंने महात्मा हंसराज जी से डाक्टर अम्बेडकर की चुनौती कह सुनाई तो वह मजाक में बोले--"किसी मन्दिर के पुजारी को पचास रुपए दे देना और कहना कि अछूतों के चले जाने के बाद मन्दिर को पचगव्य और गंगा जल छिड़क कर शुद्ध कर लो। इस प्रकार डाक्टर साहब का मुह बन्द हो जाएगा।"

सागर के डाक्टर हरीसिंह गौड हमारे मण्डल के बडे प्रेमी थे। एक बार वह किसी सरकारी कमीशन के साथ लाहौर आए। उनके साथ उनकी एक पुत्री भी थी। उन्होंने उसके लिए कोई वर खोजने के लिए मुझ से कहा। एक कुमार डाक्टर मेरे परिचित थे। मैंने उनको डाक्टर जी से मिला दिया और कहा कि आप और आपकी पुत्री इनसे मिलकर बात-चीत कर लीजिए। वह बोले--"विवाह तो छोकरा-छोकरी को करना है। मेरा इसमें क्या काम है? यह मेरी लडकी से मिल लें। यदि वह इनको पसन्द कर लेगी तो मैं विवाह कर दूगा।" उन दिनों कम से कम पजाब में विवाहार्थी युवक युवतियो का एकान्त में मिलना अच्छा नही समझा जाता था। लडकी वाले इसके लिए कभी तैयार नही होते थे। इसलिए डाक्टर साहब की बात सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। अस्तु, लडके और लडकी को आपस में बात चीत करने के लिए एक कमरे में बैठा दिया गया। वह युवक अपने को सर्वगुण सम्पन्न कुवर कन्हैया समझता था। छोटी-मोटी लडकी तो उसकी दृष्टि में ही नही आती थी। उसे अभिमान था कि कोई युवती उसे अस्वीकार नही कर सकती। परन्तु उसके भेंट करके चले जाने के उपरान्त जब सर हरिसिंह ने अपनी लडकी से उसका अभिमत पूछा तो वह बोली--"पिता जी, मैं नही समझती कि इस युवक के साथ मैं सुखी रह सकूगी।"

उसकी बात सुनकर हम चकित रह गए। हमारे यह पूछने पर कि तुम इस परिणाम पर कैसे पहुची, उसने उत्तर दिया --"इस युवक ने पहले मेरी आयु पूछी। जब मैंने उसे आयु बताई तो उसने मेरे कथन पर विश्वास नही किया। वह बोला--नही तुम्हारी आयु इतनी नही। इस पर मैंने मन में सोचा कि जो मनुष्य मेरी आज एक बात पर विश्वास नही करता वह कल दूसरी बातो पर कैसे विश्वास करेगा? इसके बाद इस युवक ने दूसरा प्रश्न यह किया कि तुम्हारे पिता की आय कितनी है? इससे मैंने समझ लिया कि यह मेरे साथ नही वरन मेरे धन के साथ विवाह करना चाहता है।

लड़की की यह बुद्धिमत्तापूर्ण बात सुन मुझे प्रसन्नता और आश्चर्य दोनो ही प्रभूत मात्रा में हुए।

सन् १९३१ की जनगणना में हमारे मण्डल ने यत्न किया कि किसी व्यक्ति की जाति न लिखी जाए। इसी उद्देश्य से हमारे मण्डल का एक डेपुटेशन शिमला में भारत के तत्कालीन सेंसस कमिश्नर डाक्टर हट्टन से मिला। पहले दिन थोडी-सी बात-चीत करने के बाद डाक्टर साहब ने हमें दूसरे दिन मिलने के लिए समय दिया। जब दूसरे दिन हम लोग उनसे मिलने के लिए निश्चित समय पर उनकी कोठी पर पहुचे तो क्या देखा कि उनकी मेज पर पुस्तको का एक बडा ढेर लगा है। बात-चीत आरम्भ होने पर मैंने कहा--"जो लोग जात-पात नही मानते, जनगणना में उनको जाति लिखाने पर विवश न किया जाए।"

इस पर वह बोले--"ऐसे हिन्दू की कल्पना करना भी सम्भव नही, जिसकी कोई जाति न हो।" उन पुस्तको में से पढ कर उन्होंने बताया कि --"देखो स्मृतियां क्या कहती हैं। एक स्मृति कहती है कि यदि अमुक जाति का पुरुष अमुक जाति की स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे, तो उनकी वह सन्तान चाण्डाल होती है और यदि उच्च वर्ण की स्त्री किसी नीच वर्ण के पुरुष से सन्तान उत्पन्न करे तो उनकी सन्तान अस्पृश्य या अन्त्यज कहलाती है।"

मैंने कहा--"यह सब पुरानी बातें हैं। इन पुरानी पोथियो को अब कोई नही मानता। देखिए, हम आप के सामने बैठे हैं। हम हिंदू हैं पर जात-पात को नही मानते।"

इस पर वह बोले--"सरकार ने मुझे यहा पर समाज सुधार के काम पर नही लगाया। मुझे तो हिन्दू समाज की इस समय जैसी अवस्था है, वैसी ही लिखने को कहा गया है।" इस पर मैंने उनसे कहा कि आप एक मित्र के रूप में हमें परामर्श दीजिए कि जात-पात को मिटाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। इस पर वह बोले--हमारे इंग्लिश समाज में भी मिस्टर कार्पेंटर, (श्री बढई), मिस्टर पाटर (श्री कुम्हार), मिस्टर गोल्ड स्मिथ (श्री सुनार) आदि हैं। परन्तु हम सब आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार करते हैं। इसलिए हम लोगो में जन्मगत ऊच-नीच का कोई भाव नहीं। ये शब्द केवल नाममात्र हैं। विवाह शादी में इनसे कोई रुकावट नही पडती। आप भी कथित ऊची जातियो में परस्पर इसी तरह के आदान-प्रदान का प्रचार करें। अछूत जातियो को आप को नही छेडना चाहिए। सरकार उनकी सामाजिक आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी अवस्था का पता लगाना चाहती है। वह यह भी जानना चाहती है कि इन लोगो की सख्या बढ़ रही है या घट रही है और यह भी कि ये लोग उन्नत हो रहे हैं या अवनत। यदि आप इनको अपनी जाति न लिखाने को कहेंगे, तो सरकार का यह उद्देश्य पूरा न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त उनको सवर्ण हिन्दुओ की भावना पर भी सन्देह होने लगेगा। वे समझेंगे कि सरकार हमको उन्नत करना चाहती है, परन्तु ये सवर्ण हिन्दू सब कुछ आप ही हड़प जाने के लिए स्वार्थवश रास्ते में रोडा अटका रहे है। जब सवर्ण हिन्दू आपस में जाति भेद को मिटा देंगे तो इसका प्रभाव अछूतों पर भी अवश्य पडेगा वे अपने आप जात-पात तोड डालेंगे।

उसके बाद मण्डल की ओर से सर हरिसिंह गौड और एक दूसरे सज्जन भारत सरकार के गृह मत्री से मिले और सरकार की ओर से घोषणा करा दी गई कि जो हिन्दू जात-पात में विश्वास नही रखता, उसे जन गणना में जात लिखने पर विवश न किया जाए। यद्यपि यह घोषणा बहुत देर से निकली, इतनी देर से कि तब तक गणना का अधिकाश काम सम्पूर्ण हो चुका था। तो भी जाति न लिखाने वाले हिन्दुओं की सख्या कई सहस्र तक पहुच गई।

कंजूसी

ब्रजकिशोर 'नारायण'

एक बार की बात है। क्या बात, घटना भी दुर्घना ही कहिए उसे। मुझे अपने घर सत्यनारायण बाबा की कथा कहवानी पड गई। 'पड गई' इसलिए कह रहा हू कि मुझे पूजा-पाठ कराके, कथा सुनने में भी कोई दिलचस्पी नहीं रही। किताबों के बाद, बातूनी लोगों से कथा सुनने का सौभाग्य मुझे इतना सुलभ हो जाता है कि गाठ का कुछ गवा कर, हजार बार की सुनी हुई कथा को, पलथी मार कर श्रद्धा भक्ति के साथ सुनने का सब्र, मैं अपने बूते के बाहर पाता हू। मगर मर्जी के मुताबिक चलने का मौका जीवन में कितनी बार मिलता है। उस बार भी जिन्दगी के ऊट ने दूसरे पहलू से ही करवट ली और श्रीमती के अनुल्लघनीय आदेश के वशीभूत होकर मुझे अपने ही घर में अपने मन के खिलाफ पूर्णिमा की रात में, अमावस की कल्पना करनी पड गई। सब कुछ उलटा पड गया। मैं ही किसी तरह उलटने से बच गया, यही खैरियत हुई।

श्रीमती जी ने पहले नन्हें मुन्ने की रफ कौपी पर उसके बाद मेरी डायरी में कई बार हिसाब-किताब लगाया और मीठी मुस्कान में कहा—"सिर्फ आठ रुपए में ही सब कुछ हो जाएगा। !"

मैंने अन्दर से उबलते पर ऊपर से उछलते हुए पूछा—"मेरा हिसाब-किताब भी ?"

श्रीमती जी मेरी, पढ़ी तो आठवीं तयी क्लास तक ही हैं, मगर मेरे साथ रहने के कारण व्यग्य को अभिधा से भी शीघ्र समझ जाती है। उन्होंने अपनी मुस्कान और मीठी कर दी और कहा—"आपका हिसाब-किताब इस में नही है। आप पूर्णिमा के दिन नही, अमावस के दिन अपनी पूजा कराइएगा। उसी दिन आप का लेखा-जोखा ठीक बैठेगा।"

मैं श्रीमती जी का पूर्ण पति होने के बावजूद, उनकी रहस्यमयी भविष्य-वाणी का भाव नहीं समझ सका। मुझे अकबका कर अपनी ओर ताकते हुए पाकर उन्होंने कहा—"अमावस को कुन्दनजी के यहा डिनर है। मुर्ग मुसल्लम पर हाथ साफ कीजिएगा ही। आज तो कम से कम प्रसाद के प्रति आस्थावान हो जाइए !"

पत्नी के प्रिय मुख से 'आस्थावान' जैसा पवित्र और सस्कृत विशेषण सुनकर मेरा हृदय और मस्तिष्क दोनो एक साथ सुसस्कृत हो गए ! मैंने अपनी खीझ को रीझ में बदल लिया और उन्हीं की तरह मुस्करा कर कहा—"जैसी तुम्हारी आज्ञा ! ये आठ रुपए क्या हैं, कहो तो अठारह रुपए का बन्दोबस्त कर दू !"

श्रीमती जी मेरे जन्मजात कवित्व से कलात्मक तो हो ही गई थीं, इस पैदाइशी उदारता को देखकर वह और अधिक सुर्खरू हो गई। उन्होंने खाकसारी दिखाते हुए कहा—"नही जी, मैं आठ ही रुपए में अठारह का कमाल दिखा दूगी। आप देखते तो रहिए।"

उनकी इस साहसिक घोषणा को सुनकर मैं सचमुच उन्हें देखता ही रह गया ! उन्हें मेरा इस प्रकार का घूरना शायद बुरा लगा। बोली—"ऐसे क्या देख रहे हैं मुझे ? मैं अपन को नही, बल्कि अपनी बुद्धि के चमत्कार को देखने को कह रही हू !"

मैं जैसे होश में आकर बोला—"ओ ! समझा !!"

खैर, श्रीमती जी से फुरसत तो मिली, मगर गरीब की गाठ में आठ रुपयो की बरामदी का सवाल, एक अहम मसला बनकर सामने आ खडा हुआ। बरामदी की समस्या थी, इसलिए मैं बरामदे में ही घूमघूम कर बडे जोर-शोर से उस पर विचार करने लगा। बीस पच्चीस चक्कर लगाने के बाद भी रुपयो की बरामदी का उपाय तो नही सूझा, मगर एक तरकीब हाथ लग गई ! हर्रे लगे न फिटकरी, रग भी चोखा आए ! तरकीब यह सूझी कि प्रसाद वगैरह तो पाच रुपयो का आ ही जाए, मगर पण्डित जी को किसी तरह टरका दिया जाए। पूजा मैं स्वय कर लू। सस्कृत की थोडी-बहुत जानकारी तो है ही, कथा भी खुद ही बाच लू। इस तरह पूरे तीन रुपयो की बचत हो जाएगी और पास पडोस की भक्त महिलाओ पर मेरे पाण्डित्य की धाक भी जम जाएगी। मैंने आगन में जाकर श्रीमती जी को पुकारा और बडे प्रेम तथा बडप्पन के साथ उन्हें अपनी सूझ सुझा दी। पत्नी जी पैसो का प्रश्न लेकर सहमत सी हो गई, मगर कुछ सकपका कर बोली—"मगर एक मुश्किल है। मैंने पण्डित जी को खबर कर दी है। वे तो एकदम तैयार बैठे होगे !"

मैंने दबग बन कर कहा—"तो मैं भी एकदम तैयार हो कर अभी जाता हू और उन्हें मना कर आता हू। इसमें क्या लगता है !"

श्रीमती जी कुछ सोचने लगी और बोली—"खुद आपका जाना ठीक नही होगा। मैं नौकर भेज कर उन्हें मना करवा देती हू।"

मुझे भी श्रीमती जी का यह सुझाव बेहतर लगा और मेरी सूझ कारगर हो गई।

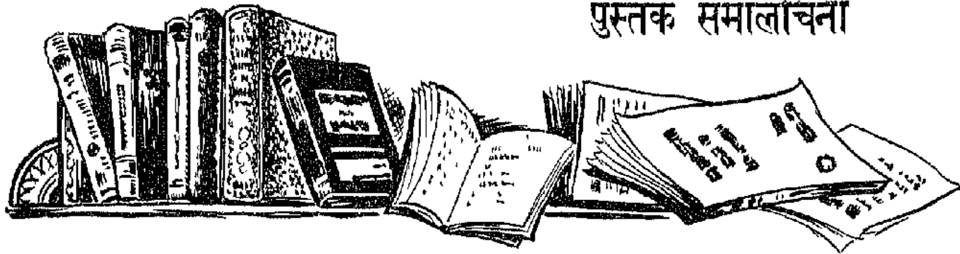
कथा रात में आठ बजे से शुरू हो, ऐसा विचार हुआ नन्हें की मा का। मेरा उसमें क्या था ! आठ बजे से हो, दस बजे से हो और न भी हो तो कोई मुजायका नही। इसलिए मैंने कहा—"हा, हा, एकदम ठीक है। आठ रुपयो का खर्च है। आठ बजे से ही कथा होनी चाहिए।"

मेरी इस दूसरी सूझ पर मेरी पत्नी जी के साथ-साथ मेरी साली जी को भी हसी आ गई ! जब दोनो जी भर कर हस चुकीं तो मैंने कहा—"मगर देखिए, आठ बजने में बस आठ-दस मिनटो की ही देर है। अब अपनी पूजा का सारा साज-सामान चौकी पर सजाकर रख दीजिए। मैं नीचे से तुरन्त नहाकर आता हू।"

श्रीमती जी, उनकी छोटी बहन और नन्हें तीनो ने देखते-देखते पूजा का सारा सामान चौकी पर सजाकर ऐसे रख दिया कि चौकी मन्दिर को मात कर बैठी। नौकर दौड-दौड कर पास-पडौस की सभी श्रद्धालु महिलाओ को बटोर लाया। घडी देख कर मैंने ठीक और पूरे

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

पुस्तक समालोचना



पार उतरि कहं जइहौ लेखक—प्रभाकर द्विवेदी, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड, वाराणसी-१, पृष्ठ संख्या—२४८, मूल्य—३) सजिल्द।

श्री प्रभाकर द्विवेदी की यह पहली रचना मैंने पढ़ी है और २४ वर्ष के इस युवक की इस रचना से मैं लगभग उतना ही प्रभावित हुआ हूं, जितना आज से ६, ७ वर्ष पूर्व मोहन राकेश की 'चट्टान से पूछ लो' से हुआ था। गोंडा और बस्ती में बहने वाली मनवर नदी के किनारे बिना किसी साजो-सामान के एकाकी और लगभग पैदल की गई यात्रा का यह चित्रण है। न विषय नया है और न शैली ही। सारी यात्रा भी बहुत छोटी-सी है, सम्भवतः एक सौ मील भी न होगी। पर एक ऐसी ताजगी इस रचना में प्रारम्भ से अन्त तक ओत-प्रोत है कि पढ़ कर जी खुश हो गया। श्रीकान्त की तरह यह यात्री, जिसे लेखक ने स्वीकार किया है कि वह स्वयं है, जगह-जगह अनायास ही मिल जाने वाले नेह-बन्धन काट कर निरुद्देश्य आगे बढ़ता चला जाता है। यात्री के संसर्ग में आने वाले कितने ही पात्र—मदभा मां, कजरौटा वाली दीदी, बड़का बाबू, जीजी, नोरा और तीन भाभियां—पाठक के हृदय को छूए बिना न रहेंगे। जैसे किसी सिद्धहस्त कलाकार के हाथों मिनट भर लगा कर बनाए गए पैंसिल स्केच हों। रचना में कुछ कमजोरियां भी हैं। कुछ अत्यन्त मामूली बातों का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है। पर एक विशेष प्रकार की ताजगी पूरी रचना में दिखाई देती है। रचना की शैली कितनी कवित्वपूर्ण है, उसका एक शानदार उदाहरण इस उद्धरण से मिलेगा—

"गंध फूलों में होती है, मंजरियों में होती है, पौधे और कचरे की जड़ में होती है। पर इन सब की—हम सब की जो मां है, इस आद्या पृथ्वी की तुष्टि-निश्वास में भी गन्ध होती है। वह गन्ध है जो इन्द्रिय को, मन को खींचती है।

—असख्य बूंदें गिरीं, बादलों ने भटकना छोड़ा, तब पृथ्वी ने सुवास दी।

मां पृथ्वी तुम्हें असंख्य प्रणाम!"

इस रचना के लिए मैं श्री प्रभाकर द्विवेदी को हार्दिक बधाई देता हूं।

मुक्ता: लेखक—सत्यकाम विद्यालंकार, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, जी, टी रोड, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—१२८, मूल्य—१)

हिन्दी पाकेट बुक्स के प्रथम प्रकाशनों की चरचा इन कालमों में यथा समय की गई थी। उसी ग्रन्थमाला का यह १३वां प्रकाशन है। 'मुक्ता' सहित ५ नए प्रकाशन हमें मिले हैं। इन सब की छपाई-सफाई का स्तर लगभग वही है, जो प्रथम प्रकाशनों का था। यह जानकर हमें विशेष सन्तोष हुआ है कि हिन्दी जगत में यह ग्रन्थमाला यथेष्ठ लोकप्रिय सिद्ध हो रही है।

'मुक्ता' श्री सत्यकाम विद्यालंकार का दूसरा उपन्यास है। सत्यकाम जी हिन्दी के एक अत्यन्त लोकप्रिय साप्ताहिक पत्र के यशस्वी सम्पादक हैं, साहित्यकार के रूप में बहुत अच्छी कोटि की हास्यरस पूर्ण रचनाएं उन्होंने लिखी हैं। उनका 'सोमा' नामक प्रथम उपन्यास बुरा नहीं था। पर 'मुक्ता' लिखने में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जब तक लेखक अपनी किसी रचना से पूरी तरह सन्तुष्ट न हो, उसे वह रचना प्रकाशित नहीं करवानी चाहिए।

उमर खैयाम की रूबाइयां रूपान्तरकार—बच्चन, हिन्द पाकेट बुक्स का पन्द्रहवां प्रकाशन।

बच्चन द्वारा अनुवादित उमर खैयाम की ये रूबाइयां सबसे पूर्व १९३५ में प्रकाशित हुई थीं। उमर खैयाम के हिन्दी में जितने अनुवाद हुए हैं, सम्भवतः उन में यह सर्वाधिक लोप्रिय सिद्ध हुआ, यद्यपि लेखक ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि इस रूपान्तर में रूबाई की तुक-योजना नहीं निभ सकी। उक्त रूपान्तर का यह छठा संस्करण हिन्द पाकेट बुक्स में लेकर प्रकाशकों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पुस्तक की छपाई-सफाई बहुत सुन्दर है, पर जो रेखा चित्र, विशेषतः पूरे पृष्ठों के, इस प्रकाशन में दिए गए हैं, वे घटिया दर्जे के हैं।

आप का शरीर:—लेखक आनन्दकुमार, हिन्द पाकेट बुक्स का चौदहवां प्रकाशन।

शरीर रचना के सम्बन्ध में यह छोटी-सी पुस्तिका बहुत अच्छे और सरल ढंग से लिखी गई है। विभिन्न अध्यायों में जो ४५ रेखाचित्र दिए गए हैं, वे उपयोगी होने के साथ स्पष्ट और सुन्दर भी हैं। इस छोटी-सी रचना के लिए श्री आनन्दकुमार बधाई के पात्र हैं। हमें विश्वास है कि हिन्द पाकेट बुक्स में जन-साधारण के लिए इस तरह की उपयोगी और ज्ञानवर्धक पुस्तकें अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित की जाएंगी।

ज्वार भाटा लेखक मन्मथनाथ गुप्त, हिन्द पाकेट बुक्स का १२वां प्रकाशन।

हिन्द पाकेट बुक्स के प्रथम सेट की चरचा करते हुए मैंने लिखा था कि इस माला में विशेषतः श्रेष्ठ विश्व साहित्य का अनुवाद तथा पुरानी प्रसिद्ध पुस्तकों के संस्करण छपने चाहिए, क्योंकि इस माला के लिए अच्छे लेखक अपनी नई अच्छी रचनाएं शायद ही दें। यह उपन्यास मेरी उक्त स्थापना को खूब अच्छी तरह सिद्ध करता है।

प्यार की जिन्दगी : लेखक—काउण्ट लीओ टाल्स्टाय, अनुवादक—शिवदान सिंह चौहान तथा विजय चौहान, हिन्द पाकेट बुक्स का ११वां प्रकाशन ।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार टाल्स्टाय के एक छोटे से उपन्यास का यह अनुवाद चौहान दम्पती द्वारा किया गया है। अनुवाद अच्छा और प्रवाहमय है। मूल रचना का नाम नहीं दिया गया, जो देना आवश्यक था।

हिन्द पाकेट बुक्स के संचालकों को मैं फिर से यही सलाह देना चाहता हूं कि वे अपना प्रकाशन एक सुनिश्चित और खूब सोच-विचार कर की गई योजना के अनुसार करें। अच्छा यह रहेगा कि वे अगली ५० पुस्तकों की सूची अभी से घोषित कर दें और उन पुस्तकों में श्रेष्ठ शैली में अनुवादित विश्व तथा भारतीय साहित्य के अतिरिक्त 'हमारा शरीर' जैसी जन साधारण के लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद पुस्तकों की अधिकता हो ।

नीड़ से आगे : लेखक—मोहन चोपड़ा, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—१६८, मूल्य—३) रु० सजिल्द।

किसी नए लेखक की प्रथम रचना मैं विशेष दिलचस्पी से पढ़ता हूं। 'नीड़ से आगे' नामक इस लघु उपन्यास के लेखक श्री मोहन चोपड़ा का कोई परिचय रचना के साथ नहीं दिया गया। पर उपन्यास की भाषा स्पष्टतः एक नए पंजाबी लेखक की हिन्दी है। हमारे देश में आज हजारों अविवाहित और विवाहिता अध्यापिकाएं अपने परिवार से पृथक् रह कर स्कूलों में पढ़ाती हैं। इस उपन्यास के पात्र इसी तरह की ६-७ अध्यापिकाएं हैं, जिन में से ४ कुमारियां हैं तो २ ऐसी, जिनके पतियों ने उन्हें छोड़ रक्खा है। लेखक की शैली आकर्षक होते हुए भी भाषा पर उसका अधिकार प्रतीत नहीं होता। भाषा और शब्दों सम्बन्धी कितने ही शिथिल प्रयोग आपको इस लघु उपन्यास में मिलेंगे। इस पर भी इस रचना में एक विशेष तरह की ताजगी और शक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विषय तो नया है ही, उस का निबाह खूब अच्छी तरह हुआ है। श्री मोहन चोपड़ा को मैं इस लघु उपन्यास के लिए बधाई देता हूं। बड़ी उम्र तक अविवाहिता रहने वाली तथा पति परित्यक्ता अध्यापिकाओं की मनोदशा का खूब अच्छा खाका इस रचना में है। कथानक की कल्पना भी निस्सन्देह कलापूर्ण है।

यह बस्ती यह लोग : लेखक—हरिदत्त शर्मा, प्रकाशक—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज, दरीबा कलां, दिल्ली, पृष्ठ संख्या—१६८, मूल्य—साढ़े तीन रुपया, सजिल्द

एक पत्रकार द्वारा मजदूरों के सम्बन्ध में लिखे गए इस उपन्यास को एक ओर जहां वास्तविकतापूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है, वहां दूसरी ओर इसे आदर्शपूर्ण भी बनाया गया है। उपन्यास का क्षेत्र सब्जी मंडी (दिल्ली) की कपड़े की एक मिल है, जहां बोनस के मामले में मिल के मैनेजर के हथकंडों के कारण मजदूरों पर गोली चलाई जाती है और उनका दमन करने का प्रयत्न किया जाता है। पर राज्य के मुख्य मन्त्री के युक्तियुक्त रुख से यह परिस्थिति वश में आ जाती है और मजदूरों का आदर्श संगठन, उनके अपने भीतर के उचित नेतृत्व के कारण, कायम हो जाता है। उपन्यास सोद्देश्य है और लेखक उसके द्वारा अपने विचार प्रकट करने में भी सफल हुआ है। पर एक उपन्यास की दृष्टि से इस रचना को अधिक गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता।

शासन पथ-निदर्शन : लेखक—पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के)—३१६, मूल्य—छः रुपए, सजिल्द।

इस ग्रन्थ का परिचय श्रद्धेय टण्डन जी के अपने शब्दों में इस प्रकार है—

"शासन सम्बन्धी विषयों पर मेरे कुछ भाषणों का यह संग्रह है। इस संग्रह के आरम्भ में संविधान सभा में दिए हुए दो भाषण हैं, जिनमें से पहला संविधान सभा के पहले प्रस्ताव पर सन् १९४६ में और दूसरा राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर सन् १९४९ में हुआ था। शेष संसद् की लोकसभा में सन् १९५२ और सन् १९५७ के बीच दिए गए थे। संविधान सभा में राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर सन् १९४९ में दिया हुआ भाषण अंग्रेजी भाषा में था। इस संग्रह में उसका अनुवाद दिया गया है। इस संग्रह का अन्तिम भाषण भी, जो २८ मार्च सन् ५७ का है, अंग्रेजी में था। उसका भी अनुवाद दिया गया है। शेष सब भाषण हिन्दी में हुए थे। वे प्रायः उसी रूप में हैं जैसे वे संसद् के सरकारी प्रतिवेदनों में प्रकाशित हुए हैं। इने-गिने स्थानों में भाषा अथवा स्पष्टता की दृष्टि से शब्दों में बहुत कम अन्तर किया गया है। पढ़ने वालों की सुविधा के लिए भाषणों में एक-एक मुख्य शीर्षक तथा प्रत्येक भाषण में कुछ छोटे शीर्षक इस संग्रह का सम्पादन करने में दिए गए हैं।

"इन भाषणों में शासन सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार प्रगट किए गए हैं। उनमें से एक विचार की ओर मैंने एक से अधिक स्थान पर ध्यान आकर्षित किया है। वह है ग्राम-निर्माण के सम्बन्ध में वाटिका-गृह की योजना। इस योजना को मैं ग्रामोन्नति की आधार-शिला मानता हूं।"

(आमुख)

कुल मिला कर इस ग्रन्थ में बाबूजी के ४६ भाषण दिए गए हैं। एक युग हुआ, श्रद्धेय टण्डन जी ने हिन्दी में कुछ सृजनात्मक रचनाएं भी लिखी थीं। उसके बाद उन्हें साहित्य सेवा का अवसर मिलने ही नहीं पाया। फिर भी उनकी प्रतिभा से हिन्दी की जो मूल्यवान सेवा हुई है, वह निःसन्देह अनन्य है। हिन्दी को भारत में आज जो गौरवमय स्थान प्राप्त है, उसका श्रेय जिन महापुरुषों को है, उनमें श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन भी हैं।

इस संग्रह में दिए गए भाषणों से जहां विभिन्न राजनीतिक तथा भाषा सम्बन्धी विषयों पर श्रद्धेय टण्डन जी के विचारों का परिचय मिलता है, वहां इन भाषणों की शैली और व्यंजना भी ऊंचे दर्जे की है। बाबूजी ने स्वयं सेवा से इन भाषणों का सूक्ष्म सम्पादन किया है। ये भाषण पार्लियामेंट तथा संविधान सभा में सन् १९४६ से १९५७ के बीच दिए गए थे।

टण्डन जी के बारे में कुछ क्षेत्रों में यह धारणा है कि उनके विचार एक हद तक प्रतिक्रियावादी हैं, पर उनके भाषण के निम्नलिखित उद्धरण से पता चलता है कि वह कितने स्वतन्त्र विचारक भी हैं।

"मैं यह सुझाव देता हूं कि सरकार इस इलैक्शन ऐक्सपैंसेज, चुनाव-व्यय, के विषय में ध्यान दें। चुनाव अदालतों ने भी इधर ध्यान दिया है। उनका ध्यान इस ओर जाना ही पड़ता है, क्योंकि प्रायः इस प्रकार की आपत्तियां चुनाव में की जाती हैं कि जो ब्यौरा खर्च का दाखिल हुआ है,

वह ठीक नहीं है। मेरा निवेदन है कि हमारे सदस्यगण अनुभव से जानते हैं कि कितनी कठिनता होती है ठीक-ठीक हिसाब रखने में। जब तक कि स्वयं जो मताभिलाषी है, कैण्डिडेट है, वह अधिक चौकन्ना न हो एक एक ब्यौरे के बारे में, तब तक बहुत सम्भावना होती है कि उसमें भूल हो जाए। पीछे होता यह है कि अनुमान से और अन्दाज से तमाम इलैक्शन ऐक्सपेंसेज, चुनाव व्यय, के ब्यौरे भरे जाते हैं। स्वभावतः जब अनुमान चलता है तब सत्य से हटना पड़ता है। मैं यह भी जानता हूं कि बहुत से लोग बताए हुए खर्च से बहुत अधिक खर्च करते हैं और उसका पता पाना बहुत कठिन होता है।

---मेरा निवेदन है कि यह जो इलैक्शन ऐक्सपेन्स, चुनाव-व्यय, दाखिल करने का नियम है यह बिल्कुल उठा दिया जाए, तब स्थिति कहीं अच्छी होगी।"

(पृष्ठ ८२)

मुझे विश्वास है कि इस भाषण सग्रह को वह सम्मान का स्थान प्राप्त होगा, जिसका यह अधिकारी है।

हड़प्पा : लेखक---केदारनाथ शास्त्री, प्रकाशक---आत्माराम एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के)---२५४, मूल्य---८ रु० सजिल्द।

हड़प्पा और मोहन-जोदड़ो सिन्धु सभ्यता के आदि केन्द्र थे। दोनो के बीच लगभग ३०० मील का अन्तर है। उस प्रदेश में यात्रा करते हुए मुझे बहुत बार यह ख्याल आया है कि अभी कितने ही अन्य अवशेष उस ओर सिन्धु नदी के किनारे सैकड़ो मीलो तक फैले रेत के टीलो के नीचे से खोज निकाले जा सकेंगे।

इस ग्रन्थ के लेखक श्री केदारनाथ शास्त्री सिन्धु सभ्यता के इस आदि-केन्द्र से उत्खाता के रूप में बीस वर्षों तक सम्बद्ध रहे हैं। लेखक के सम्पर्क-पूर्ण ज्ञान की गहरी छाप इस रचना पर है और इस प्रकार यह ग्रन्थ अपने विषय की एक अत्यन्त प्रमाणिक रचना है। काल निर्णय के अतिरिक्त हड़प्पा से प्राप्त वस्तुओं के आधार पर उस युग की सभ्यता का अत्यन्त श्रेष्ठ विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। अन्तिम ३ अध्याय रगपुर और रोपड़, हस्तिनापुर तथा सौराष्ट्र में प्राप्त खण्डहरो के सम्बन्ध में है, जिन से इस रचना का मूल्य और भी बढ़ गया है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

---चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

वल्लभ विद्यानगर शोध पत्रिका पुस्तक १, अंक १-२, सपादक---अमृत वसन्त पण्ड्या, प्रकाशक---चारुतर विद्यामण्डल, वल्लभ विद्यानगर, आनन्द के पास (बम्बई राज्य), वार्षिक चन्दा---१०) रु०।

गुजरात में आनन्द के निकट अवस्थित सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ की यह शोध-पत्रिका है। गुजरात के शोध क्षेत्र में अपना छोटा-सा योग देने के स्तुत्य उद्देश्य से 'चारुतर विद्यामण्डल' ने इसे प्रकाशित किया है। इस अर्ध वार्षिक पत्रिका के प्रथम अंक में तीन विभाग हैं---गुजराती, हिन्दी तथा अंग्रेजी। गुजराती विभाग में प्रख्यात शोध कर्ताओं--श्री प्रह्लाद च० दिवानजी, डा० हरिप्रसाद ग० शास्त्री, श्री कन्हैया लाल दवे, श्री अमृत पण्ड्या आदि--के अध्ययन पूर्ण लेख हैं। हिन्दी विभाग में सुप्रसिद्ध विद्वान डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री अगरचन्द नाहटा आदि के विद्वत्तापूर्ण लेख हैं। अंग्रेजी विभाग में अमृत पण्ड्या एवं अन्य विद्वानो के शोधपूर्ण लेख हैं।

द्वितीय अंक में गुजरात की इस ग्राम विद्यापीठ के शिल्पी श्री भाईलाल भाई पटेल की ७०वीं वर्ष गाठ के अवसर पर 'अभिनन्दन विशेषांक' के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसमें श्री भाईलाल भाई को उनकी ७०वीं जन्मतिथि के अवसर पर अभिनन्दित करने वाले लेखो का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त श्री अमृत पण्ड्या का लेख 'लोथल को हड़प्पा संस्कृति और गुजरात' एवं डा० भोगीलाल साडेसरा का लेख 'अज्ञात कविकृत वर्णबत्रीसी' विशेषत पठनीय हैं।

हम इस पत्रिका का स्वागत करते हैं।

--रमणलाल भट्ट

कजूसी

(पृष्ठ ४२ का शेषांश)

आठ बजे पूजा शुरू कर दी आम्र-पल्लव से इधर-उधर बस बारह बार जल छिड़क कर गायत्री मत्र पढ़ा और कथा की पोथी खोल कर पढ़ने लगा। पोथी पास के एक पुस्तक-प्रकाशक-विक्रेता मित्र से माग ली थी और एक-दो बार सरसरी निगाह से उसे देख भी गया था, इसलिए पढ़ने में कोई कसरत मुझे नही करनी पड़ी। हा, एक बात विशेषता के रूप में जरूर हुई कि जब मैं कथा कहने लगा तो उपस्थिति का समा देखकर धार्मिक के साथ-साथ साहित्यिक लालसा भी जाग्रत हो गई। मैंने मौका ढूढ़-ढूढ़ कर जहां-तहां अपनी कविताए सुनानी शुरू कर दी और शेर-वेर भी पेश कर दिए। ऐसी सरस, रसीली और लुभावनी कथा किसी को भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था, ऐसा सभी महिलाओ ने, कथा के बाद, मेरी देवी जी से कहा। उन लोगो के जाने के बाद, जब मेरी पत्नी जी ने मुझे यह सम्वाद सुनाया तो मुझे रोमाच हो आया। ओह! धर्म कार्य में साहित्य का सुहागा कितना जरूरी है। आज मै सचमुच सत्य का सच्चा स्वरूप समझ गया। नारायण तो मैं यो भी हू, मगर कभी-कभी झूठ बोल लेने के पाप के कारण, आज की इस नई आध्यात्मिक अनुभूति से अब तक सर्वथा वचित रह गया था

खैर, अपनी धार्मिकता और साहित्यिकता का स्वय ही लोहा मानते हुए जैसे ही मैं बाहर आया कि पण्डित जी को थैला उतारते हुए देख कर पिलही चटक गई। मेरे कुछ पूछने के पहले ही पण्डित जी बोले--- "क्या कहू जजमान, कुछ देर हो गई। मगर कोई बात नहीं! मेरी पूजा-दक्षिणा तो रखी ही होगी। हा, जरा जल्दी कर दीजिए। मुझे एक जगह और पूजा कराने जाना है।"

मुझे काटो तो खून नही। श्रीमती जी भी तब तक बाहर आ गई। पण्डित जी को देखकर उनका हाल भी मेरे हाल से बीस ही हुआ, उन्नीस नही। मगर पण्डित भला क्यो पसीजते। हाथ फैला कर बोले--- "लाओ बिटिया, बड़ी देर हो रही है।"

श्रीमती जी का मुह चढ़ गया और मेरा उतर गया, जैसे चिरैता पी लिया हो। मन मार कर तीन रुपए पण्डित जी के हाथ में रख देने पड़े! जब पण्डित जी रुपया लेकर वहां से चल पड़े तो मेरी साली साहबा, जो मनोविज्ञान के एम० ए० में पढ़ती है मेरी पीठ पर चढ़ गई और ठहाका मार कर बोलीं---"मजा आ गया! और कीजिए कजूसी, सारी की सारी सूझ रखी की रखी ही रह गई न?"

मैं क्या बोलता! मगर सच पूछिए तो उस दिन की कजूसी में कुछ मुझे भी मजा आ गया और कुछ-कुछ श्रीमती जी को भी



हार्दिक स्वागत


राष्ट्रपति आइसन हावर

अमेरिकन राष्ट्रपति ड्वाइट आइसन हावर इसी मास भारत के मेहमान के रूप में हमारे देश मे आ रहे है। भारत की जनता और भारत सरकार उनका हार्दिक स्वागत करती है। अमेरिका आज ससार का सबसे अधिक सम्पन्न देश है। भारत जिन दिनो स्वाधीनता के लिए प्रयत्न कर रहा था, उन दिनो भी अमेरिकन जनता की पूरी सहानुभूति उसे प्राप्त थी। स्वाधीन भारत को नव-निर्माण के कार्य में अमेरिका से जो सहायता प्राप्त हुई है, वह भारत के प्रति अमेरिका की सद्-भावना का सूचक है। राष्ट्रपति आइसन हावर वर्तमान मानव जाति के सर्वोच्च नेताओ में है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त शानदार और प्रभाव-शाली है। अमेरिकन राष्ट्रपति का पद ससार का सबसे अधिक व्यस्त पद है। इतना कार्य-व्यस्त होते हुए भी राष्ट्रपति आइसन हावर ने भारत का निमन्त्रण स्वीकार किया है। हम 'आजकल' परिवार की ओर से उनका हार्दिक स्वागत करते है।

ब्रिटेन के नए चुनाव

पिछले ८ अक्तूबर को इग्लैण्ड में हाउस ऑफ कामन्स का जो नया चुनाव हुआ, उसमें एक लम्बे युग के बाद एक दल को बहुत बडा बहुमत प्राप्त हुआ है। हाउस ऑफ कामन्स की कुल सदस्य सख्या ६३० है। नए चुनाव के अनुसार विभिन्न दलो की सदस्य सख्या इस प्रकार है ' कजरवेटिव--३६६, मजदूर---२५८ और उदार--६। कुल मिला कर इस नए चुनाव में कन्जरवेटिव दल २६ नई सीटें जीता है और ६ पुरानी सीटें हारा है, मजदूर दल ५ नई सीटें जीता है और २८ पुरानी सीटें हारा है, उदार दल एक नई सीट जीता है और एक पुरानी सीट हारा है। इस तरह सब मिलाकर पिछले चुनाव की तुलना में कन्जरवेटिव दल की सदस्य सख्या २३ बढ गई है, मजदूर दल की सदस्य सख्या २३ घटी है और उदार दल की सदस्य सख्या वही रही है। पिछले हाउस ऑफ कामन्स में कन्जरवेटिव दल का बहुमत ५६ था, अब वह बढ़ कर १०२ हो गया है।

इस चुनाव का विश्लेषण यदि प्राप्त वोटो की दृष्टि से किया जाए तो वह इस प्रकार है कन्जरवेटिव दल को इस वर्ष १,३७,५०,६३५ वोट मिले है, जो १९५५ के चुनाव से ५,४०,०४४ अधिक हैं। इस वर्ष के चुनाव में २,७८,६२,७०८ मतदाताओ ने अपने मत देने के अधिकार का प्रयोग किया, जबकि १९५५ के चुनाव में यह सख्या २,६७,५९,७२९ थी। इस तरह कुल प्रदत्त वोटो की सख्या में ११ लाख से अधिक की वृद्धि हुई। मजदूर दल को इस चुनाव में १,२२,१६,१६६ वोट मिले हैं, जो पिछले चुनाव से १,८८,०८८ कम हैं। उदार दल को इस वर्ष १६,४०,७६१ वोट मिले, जो पिछले चुनाव से ९,१८,३५८ अधिक हैं। अनुपात की दृष्टि से यह प्रतिशत विभाजन इस प्रकार है

	१९५९	१९५५	प्रतिशत
कन्जरवेटिव	४९.४	४९ ८	(४ कम)
मजदूर	४३.८	४६.४	(२ ६ कम)
उदार	५.८	२ ७	(३ २) अधिक
कम्यूनिस्ट	० १	०.१	(वही)
अन्य	०.८	१.०	(२ कम)

उक्त विश्लेषण से कुछ आश्चर्यजनक परिणामो का पता चलता है। उदार दल को पहले की अपेक्षा देश भर में ३ २ प्रतिशत वोट अधिक मिले, पर उसकी सदस्य सख्या वही रही, जो पहले थी। उसकी तुलना म कन्जरवेटिव दल को पहले की अपेक्षा .४ प्रतिशत वोट कम मिले, इस पर भी उसकी सदस्य सख्या में २३ की वृद्धि हुई और पार्लियामेंट में उनका बहुमत ५६ से १०२ हो गया। दूसरा यह कि हाउस आफ कामन्स में १०२ का बहुमत होते हुए भी कन्जरवेटिव दल ब्रिटिश जनता द्वारा दिए गए कुल वोटो का ५० प्रतिशत भी प्राप्त नही कर सका। इस सम्बन्ध में भारत का उदाहरण देना युक्तियुक्त नहीं होगा, क्योकि भारत में कुल वोटो का एक अच्छा-खासा भाग स्वतन्त्र उम्मीदवार ले जाते हैं। प्रजातन्त्र में दल-पद्धति (पार्टी सिस्टम) से सरकार चलाई जाती है, इस कारण स्वतन्त्र व्यक्तियो को दिए गए मत एक अर्थ में व्यर्थ गिने जाने चाहिए। भारत में १६ से २० प्रतिशत मत स्वतन्त्र उम्मीदवारो को मिलते हैं। उनकी सख्या निकाल दी जाए तो पिछले दोनो आम चुनावो में शेष ८४ या ८० प्रतिशत वोटो में स्पष्ट बहुमत कांग्रेस को मिला था। ब्रिटेन के इस चुनाव में केवल .८ प्रतिशत मत स्वतन्त्र उम्मीदवारों को मिले। इन .८ प्रतिशत को निकाल कर शेष ९९.२ में भी ४९.४ प्रतिशत आधे से (.२) कम ही रहता है। सानुपातिक चुनाव के

पक्षपाती इस सम्बन्ध में जो बातें कह सकते हैं, उनका जिक्र न कर हम इस तथ्य का उल्लेख भर पर्याप्त समझते है।

एक भी स्वतन्त्र उम्मीदवार इंग्लैण्ड के चुनाव में कामयाब नही होता, यह बात इंग्लैण्ड के जन-साधारण की राजनीतिक समझदारी और परिपक्वता का प्रमाण है।

चुनाव से कुछ दिन पहले जो लोगो का खयाल था, उसे देखते हुए कन्जरवेटिव दल का बडा बहुमत कुछ अश तक सचमुच अचम्भे में डालने वाला सिद्ध हुआ। यह स्पष्ट है कि श्री मैकमिलन इंग्लैंड में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए है। जहा तक भारत का सम्बन्ध है, इंग्लैण्ड की किसी भी सम्भावित सरकार से भारत के सम्बन्ध पूरी तरह मैत्रीपूर्ण रहेंगे।

●

हिन्दी की एक प्रमुख आवश्यकता : अर्थ-निश्चय

प्राचीन और सुदृढ़ परम्पराओ के रहते भी हिन्दी को एक दृष्टि से नई भाषा कहा जा सकता है। हिन्दी का वर्तमान रूप न सिर्फ बहुत नया है, अपितु अभी तक उस पर नए-नए इतने प्रभाव पड रहे है कि हिन्दी भाषा का प्रमानीकरण (स्टैण्डरडाइजेशन) इस समय तक भी नही हुआ। इस का एक प्रमाण यह है कि सैकडो ही नही बल्कि हजारो शब्दो के हिन्दी में दो-दो रूप प्रचलित है। यहा तक कि विभक्तियां भी इस व्याधि से बचने नहीं पाई। 'हुए', 'हुये', 'हुवे' आदि एक ही विभक्ति के कितने ही रूप आपको हिन्दी में प्रचलित मिलेंगे। यहा तक कि वाक्य रचना (सिन्टैक्स) के सम्बन्ध में भी नए-नए प्रयोग आपको हिन्दी में मिलेंगे।

उक्त बातो पर ध्यान दने की आवश्यकता निर्विवाद है। पर हमारी राय से एक अन्य आवश्यकता की पूर्ति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह आवश्यकता है शब्दो का अर्थ पूरी तरह निश्चित कर देने की। यह ठीक है कि शब्द एक जीवित वस्तु है और उसका अर्थ भी क्रमश वृद्धि (ग्रो) करता है। पर बिना समझे बूझे एक ही अर्थ के लिए विभिन्न शब्दो का व्यवहार खतरनाक है।

वर्तमान हिन्दी स्पष्टत तीन भाषाओ से विशेषत प्रभावित हुई है। महत्व की दृष्टि से क्रमवार ये भाषाए है सस्कृत, उर्दू और अग्रेजी। इन तीनो भाषाओ के शब्द भी हिन्दी में आए है, मुख्यत प्रथम दो भाषाओ के। अत हजारो शब्दो के सस्कृत तथा उर्द दोनो रूप हिन्दी में प्राप्त होते है। हमारी राय से अब समय आ गया है जब उक्त सभी शब्दो के अर्थ और प्रयोग निश्चित कर दिए जाए। इस प्रक्रिया में बहुत से अर्थों के लिए दो-दो शब्द भले ही ले लिए जाए, पर जहा तक सम्भव हो, प्रचलित शब्दो के अर्थों का सूक्ष्मार्थ (हमारा मतलब यहा 'शेड' से है) निश्चित कर दिया जाए। उदाहरण के आकाश से गिरने वाली हिम (स्नो) के लिए 'हिम' शब्द नियत किया जाए और जमा कर बनाई जाने वाली बरफ (आइस) के लिए 'बरफ'। इसी तरह 'डेंजर' के लिए 'खतरा' और 'फीअर' के लिए 'भय', 'कौमन' के लिए 'सामान्य' तथा 'आर्डिनरी' के लिए 'साधारण'।

हिन्दी में अभी हमें लाखो नए वैज्ञानिक तथा टैकनिकल शब्दो की आवश्यकता है। हमारी यह दृढ धारणा है कि जब तक हिन्दी में व्यवहृत होने वाले वर्तमान डेढ लाख शब्दो के अर्थ निश्चित नही कर दिए जाएगे, तब तक नए शब्द बनाने में भी हमें भारी अडचनो और असुविधाओ का सामना करना पडेगा, क्योकि आखिर नए शब्द भी तो प्राय इन्ही वर्तमान शब्दो के आधार पर बनाए जाएगे। अगर हमारा धात्वर्थ ही अनिश्चित है, तो उसके आधार खडी की गई इमारत कितनी कच्ची होगी।

निमाडी लोकगीतो में बेटी की विदा---(पृष्ठ ३२ का शेषांश)

पछा कसा फिरा म्हारा दादाजी
जान उतावली जाय ॥

"ओ दुल्हन, जरा सुनो, पछा फिरो पछा फिरो ! पीछे फिरो, पीछे फिरो । अपने पिता जी से तो मिलती जाओ ।"

दुल्हन कहती है---"अब भला मै वापिस कैसे लौटू ? अब तो मै परवश हू , मेरे पिता जी, देखो मुझे ले जाने वाले उतावले हो रहे है ।"

छोड्यो छे मायके रो मायरो,
छोड्यो छे दादाजी रो लाड ।
छोड्यो छे सई के रो सईपणू
छोड्यो छे फुतल्या रो ख्याल ॥
पछा फिरो, पछा फिरो !!

"आज तुमने मा की ममता को, पिता के दुलार को, सहेलियो के साथ को और अब इस घर के सारे खेल खिलौनो को त्याग दिया है ' ओ दुल्हन ! जरा सुनो, पछा फिरो, पछा फिरो ! अपने पिताजी को, मा को, भाई, भौजाई व मामा जी को, दु ख में डूबे इन सबको एक बार तो मिलती जाओ । पछा फिरो ! पछा फिरो ' !!